KADMBINI OCT-JULY 1973-77 G.K.U.

कथा अंक
मासिक
कादम्बिनी
...य भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका
• 'हरेकृष्णे' संप्रदाय की रामलीला
• काशी में तुलसीदास
• शिल्प में रामकथा
• विदेशों में रामकथा के रूप
१.७५ रुपया

सितार सम्राट
चोटी के बल्लेबाज़
माननीय सभापति
शहनाई के जादूगर
चित्रपट कवि
गुरु पत्रकार
हृदय-रोग-विशेषज्ञ

# एयर-इंडिया के महान यात्री

## आप उन्हें जानते हैं, हम उन्हें हवाईसफ़र कराते हैं.

कौन हैं ये एयर-इंडिया के महान यात्री?

आप तो इन्हें जानते ही हैं. वे जिन्होंने दुनिया के औद्योगिक नक्शे में अपने देश को एक विशिष्ट स्थान दिलाया है; जिनके स्वर्गीय संगीत ने विदेशियों को भी मंत्रमुग्ध किया है; जिन्होंने चलचित्रों में नयी काव्यात्मक शैली की रचना की है; जिनके तालमय नृत्य पर समग्र संसार के कलाप्रेमी झूम उठते हैं; जो खेल-कूद, विज्ञान और तंत्रज्ञान में अग्रणी हैं. ये हैं एयर-इंडिया के महान यात्री जिन्हें अपने देश पर नाज़ है और जो अपनी स्वदेशी एयरलाइन से ही यात्रा करना पसंद करते हैं.

एयर-इंडिया से यात्रा करते समय आप अपने देशवासियों के साथ सफ़र करते हैं, अपनी संस्कृति और अपने राष्ट्रीय ध्वज के साथ-साथ चलते हैं.
वास्तव में जब आप एयर-इंडिया से सफ़र करते हैं तो मानो अपनी ख़ास एयरलाइन से ही सफ़र करते हैं.

AI. 6127

• विशालाक्ष

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइए और पृष्ठ १० पर दिये उत्तरों से मिलाइए।

१. **समाहार**—क. एकत्र करना, ख. स्थापन, ग. संयोग, घ. संहार।

२. **प्रज्ञाचक्षु**—क. बहुपठित, ख. केवल ज्ञान-नेत्र से देखनेवाला, ग. चालाक, घ. धूर्त।

३. **मातरिपुरुष**—क. पिता, ख. दुलारा, ग. कायर, घ. माता-पिता।

४. **परिपंथी**—क. भटका हुआ, ख. डाकू, ग. बटमार, घ. यात्री।

५. **समारोपण**—क. पुनः स्थापन, ख. अभियोग, ग. उलाहना, घ. टकटकी।

---

## आपके शब्द-ज्ञान की परीक्षा

**१० या अधिक सही . . . . . जीनियस**
**९—७ सही . . . . . . . . . . उत्तम**
**६—५ सही . . . . . . . . साधारण**

---

६. **भणित**—क. कहावत, ख. भूना हुआ, ग. मंडित, घ. सुंदर।

७. **विपाक**—क. अपवित्र, ख. परिपक्व होने की क्रिया, ग. दुर्दशा, घ. उपसंहार।

८. **यौतुक**—क. कौतुक, ख. तुकबंदी, ग. दहेज, घ. तंद्रा।

९. **खचित**—क. खींचा हुआ, ख. जड़ा हुआ, ग. सुंदर, घ. प्यारा।

१०. **श्रमजित**—क. थकान को जीतनेवाला, ख. थका, ग. आलसी, घ. हारा हुआ।

११. **अत्याहित**—क. अति अहित, ख. बहुत लाभ, ग. महाविपद, घ. अपघात।

१२. **विदग्ध**—क. जला हुआ, ख. निपुण, ग. चरित्रहीन, घ. शोषित।

१३. **विपर्यय**—क. बिगाड़, ख. रोग, ग. निष्कासन, घ. उलट-पुलट।

१४. **ईषत**—क. किंचित्, ख. दैवी, ग. विपुल, घ. दुःखी।

१५. **श्रीहत**—क. श्रीयुत, ख. तेजस्वी, ग. निस्तेज, घ. थका-मांदा।

●

**मनुष्य के भाग्य प्रायः उनके गुणों की अपेक्षा उनकी वाणी से ही बनते और उनके अवगुणों की अपेक्षा उनकी वाणी से ही बिगड़ते भी हैं।**

—सर वाल्टर रैले

**छपा हुआ भाषण सूखे हुए फूल की तरह है, जिसमें से रंगो-बू उड़ जाती है।** —लोरेन

१. **समाहार**—क. एकत्र करना, संग्रह, समुदाय, मन को शांत करने के लिए बिखरी हुई चित्तवृत्ति को एकाग्र करना। सैन्य, लेखों, चित्तवृत्तियों का **समाहार। समाहरण, समाहृत।**

२. **प्रज्ञाचक्षु**—ख. केवल ज्ञान-नेत्र से देखनेवाला, ज्ञानी। रूढ़ अर्थ में अंधा। **प्रज्ञाचक्षु** की स्मरणशक्ति और ज्ञान दोनों अधिक हैं। **प्रज्ञा, प्रज्ञान, चक्षु।**

३. **मातरिपुरुष**—ग. कायर, केवल मातृ के सामने बढ़-बढ़कर बातें करनेवाला, डींग हांकनेवाला। वह **मातरिपुरुष** है, रण से उसका क्या वास्ता!

४. **परिपंथी**—ग. बटमार, रास्ता रोककर लूटनेवाला। **परिपंथियों** का वहां साम्राज्य छाया था। **परिपंथिनी, परिपंथक।**

५. **समारोपण**—क. पुन: स्थापन, पौधे आदि को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाना, जमाना। इस पौधे का **समारोपण** यहां संभव नहीं।

६. **भणित**—क. कहावत, कहा हुआ। यह **भणित** तुमने सुनी है? भूषण-**भणित** शिवाजी-प्रशस्ति। **भणिति, भणन।**

७. **विपाक**—ख. परिपक्व होने की क्रिया, विकसित होना, परिणाम, फल। कर्म-**विपाक** अर्थात पूर्वजन्म के कर्मों का फल। उसका वाचा-**विपाक** तो देखो! **पाक, परिपाक, पुटपाक।**

८. **यौतुक**—ग. दहेज, जो धन विवाह के समय वर को मिलता है। वधू को मिलनेवाले दहेज को **यौतक** या **यौतकी** कहते हैं। **यौतुक-यौतकी** की प्रथा अब समय के प्रतिकूल है।

९. **खचित**—ख. जड़ा हुआ, चित्रित। रत्न-**खचित**, अर्थात जगह-जगह रत्नों से जड़ा हुआ। **खचितरत्ना** भारतभूमि।

१०. **श्रमजित**—क. थकान को जीतने वाला, जो बहुत श्रम करने पर भी थकता न हो। श्रांत-क्लांत मनुष्य **श्रमजित** से ईर्ष्या करता है।

११. **अत्याहित**—ग. महाविपद, भयंकर दुर्भाग्य या दुर्घटना, संकट, अपघात। मोटर उलट गयी, दूकान चौपट हो गयी, यह **अत्याहित** वे सह न सके।

१२. **विदग्ध**—ख. निपुण, विद्वान, रसिक। वह इस विद्या में **विदग्ध** है। **विदग्धा, दग्ध।**

१३. **विपर्यय**—घ. उलट-पुलट, व्यतिक्रम, विपरीतता। काव्य-**विपर्यय**, बुद्धि-**विपर्यय**। सामान को **विपर्यस्त** देखकर वह झुंझला उठा। **विपर्यास, विपर्यस्त, विपर्याय।**

१४. **ईषत**—क. किंचित, थोड़ा-सा। उन्होंने **ईषत** हास्य के साथ उत्तर दिया।

१५. **श्रीहत**—ग. निस्तेज, निष्प्रभ। परशुराम का क्रोध देखकर सब राजा **श्रीहत** हो गये। **श्रीयुत, श्रीभ्रष्ट, श्रीहीन, श्री।** ●

सितंबर अंक में [illegible] के अंतर्गत एक साहसिक अभियान की प्रेरणाप्रद तथा मार्मिक कथा प्रस्तुत की गयी है ।

सरोजनी प्रीतम की 'हंसिकाएं' साहित्यकारों के व्यक्तित्व एवं उनके कृतित्व का सार-भूत परिचय कराने में बेजोड़ हैं। 'क्षणिकाएं' खूब पैनी थीं ।

डॉ. नगेन्द्र ने 'महाभारत' के अगाध सागर में गोते लगाकर सौंदर्य-तत्त्व रूपी मुक्ताओं की खोज की है । एस. शमशेर अली ने अपने निबंध 'मूल्यों की यात्रा : ईसा पूर्व से अब तक' में बढ़ती कीमतों के प्रति बड़ी खूबी से ध्यानाकर्षण किया है।

'काल-चिंतन' में आपने राजनेता और जनता, दोनों को 'लक्ष्यहीन' करार करके, दोनों को ठीक ही नहीं बख्शा है ।

**—श्याम वशिष्ठ, सुजानगढ़**

दलाईलामा का मार्मिक विवरण पढ़ा । कथनी और करनी में अंतर चीनियों की पुरानी आदत है । न जाने कब और कैसे तिब्बत मुक्त होगा ? 'मूल्यों की यात्रा . . ' में तालिकाएं देखने पर अवाक रह गया । कहां-से-कहां मूल्य पहुंच गये । 'बढ़ती कीमतें' लेख में भागवत झा आजाद ने सत्तारूढ़ दल का सदस्य होने के बावजूद तथ्य प्रस्तुत करके सरकार के कुशासन की आलोचना करने का बहुत बड़ा साहस किया है । सार-संक्षेप बहुत रोचक था। 'समय के हस्ताक्षर' एवं 'काल-चिंतन' में पत्रकार की तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय मिलता है । नये स्तंभ 'विज्ञान : नयी उपलब्धियां' का स्वागत है ।

**—शिवनारायण शिवहरे, सोहागपुर**

'बढ़ती कीमतें' तथा 'मूल्यों की यात्रा . . . ' सामयिक और रोचक लेख लगे।

**—रमेश खंडेलवाल, इंदौर**

सितंबर अंक में श्री भागवत झा आजाद का महंगाई पर लेख पढ़ा । इसे पढ़कर मुझे अकबर साहब का यह शेर याद आया —

**चार दिन की जिंदगी में कुफ्त से क्या फायदा**
**खा डबलरोटी, कलर्की कर, खुशी से फूल जा**

पर अकबर को यह क्या मालूम था कि इस देश में वह दिन भी आएगा जब डबलरोटी, मक्खन तो दूर, लोग मामूली रोटी के भी मोहताज होंगे। आज कहीं गेहूं नहीं मिल रहा है, तो कहीं (जैसे बंबई में ) चावल नदारद ! और यदि मिलता भी है तो ऐसी कीमत पर जो आदमी का कचूमर निकाल ले । मैं उस दिन दिल्ली के एक बाजार में मछली खरीदने गया—१६ रुपये किलो ! उलटे

गांव लौटा । चीजों में मिलावट ऐसी कि खाइए और बीमार पड़िए । अभी पिछले दिनों कुछ लोगों ने बेसन खाया तो पक्षाघात के शिकार हो गये ।

बड़े-बड़े मंत्री कहते हैं कि पेट्रोल का खर्च घटाइए, पर स्वयं शानदार कारों पर चढ़ते हैं, जो एक लीटर में दो-चार मील से अधिक नहीं चलतीं । लेकिन मैंने गौर से पढ़ा और सोचता रहा कि आखिर इस देश का क्या होने जा रहा है । दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, खाद्य की कमी, सुरसा-जैसी बढ़ती महंगाई—क्या यही वह देश है जिसके संबंध में कहा गया है—

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि,**
**धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ॥**

**—राजेश्वर प्र. ना. सिंह, नयी दिल्ली**

दो साल से 'कादम्बिनी' पढ़ रही हूं । यह एक आदर्श पत्रिका है । इसके द्वारा ज्ञानवर्धन होता है । रोचक और उपयोगी सामग्री वाली यह पत्रिका मुझ बहुत पसंद है । **—विजयलक्ष्मी, हैदराबाद**

अगस्त अंक (स्वतंत्रता विशेषांक ) पढ़ा । निस्संदेह 'कादम्बिनी' एक उच्च स्तर की पत्रिका है । हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ने की प्रेरणा मुझ इससे ही मिली है ।

दलाईलामा के बारे में लेख बहुत पसंद आया ।

'क्यों और क्यों नहीं' स्तंभ हम लोगों के लिए महंगा पड़ा, क्योंकि इसमें चर्चित अधिकांश लेखकों की पुस्तकें हमारे यहां नहीं मिलती हैं ।

**—रेशम बहादुर कार्की, भेरी अंचल, नेपाल**

हमारी साहित्य की शिक्षिका ने कहा कि 'कादम्बिनी' पढ़ा करो और जुलाई का अंक पढ़ने को दिया। मुझे 'शब्द-सामर्थ्य', 'प्रेरक प्रसंग,' 'क्यों और क्यों नहीं' तथा 'समय के हस्ताक्षर' स्तंभ बहुत पसंद आये। अब मैं नियमित रूप से 'कादम्बिनी' पढ़ूंगी।

—बसन्ती मेहता, जोधपुर

'कादम्बिनी' मुझे बराबर आकृष्ट करती रही है। अब की बार यह बढ़े हुए मूल्य में मिली है। कोई परवा नहीं, क्या ही अच्छा हो यदि आप इसे पाक्षिक कर दें!

अगस्त अंक में अमृत मेहता का लेख 'राष्ट्रीय झंडे और उनकी कहानी' ज्ञानवर्द्धक था। मेरे विचार में राष्ट्रीय ध्वंज में नारंगी रंग हमारी शक्ति का द्योतक है। हरा रंग बताता है कि भारत कृषि-प्रधान देश है। सफेद रंग यह सूचित करता है कि भारत शांतिप्रिय है। बीच में बना चक्र भारत की औद्योगिक प्रगति का प्रतीक है।

—अजेयकुमार गोयल, मुरादाबाद

अगस्त अंक में 'दलाईलामा : चीनी विस्तारवाद का शिकार' लेख में यह छपा था कि कुल्लू घाटी में जन्मा एक बालक संभवतया दलाईलामा है।

वास्तव में वह बालक केवल एक लामा है।

—संपादक

# क्यों और क्यों नहीं

## चौदहवें लेखक

## उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

इस लेखमाला के अंतर्गत अमृतलाल नागर, सुमित्रानंदन पंत, अज्ञेय बच्चन, यशपाल, भारती, जैनेन्द्र कुमार दिनकर, 'रेणु', महादेवी वर्मा, भगवती चरण वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी के संबंध में पाठकों के प्रश्न एवं मोहन राकेश के संबंध में पाठकों के पत्र आमंत्रित किये जा चुके हैं, अब चौदहवें लेखक हैं : उपेन्द्रनाथ अश्क

इस लेखमाला का उद्देश्य लेखक तथा पाठक को आमने-सामने लाने का प्रयास है। प्रत्येक अंक में हम एक लेखक के नाम की घोषणा करेंगे, पाठक उस लेखक के साहित्य, जीवन, जीवन-दर्शन, पात्र और पात्रों की कमियों अथवा अच्छाइयों, कृतियों में उपलब्ध विरोधाभासों या जीवन से संबंधित किसी भी विषय पर प्रश्न पूछ सकते हैं।

एक प्रश्नकर्त्ता दो से अधिक प्रश्न नहीं पूछ सकेगा। लिफाफे के ऊपर एक कोने पर यह अवश्य लिखिए—'क्यों और क्यों नहीं' स्तम्भ के लिए। प्रश्न सम्पादक के पास पहुंचने की अंतिम तिथि है १५ अक्तूबर, १९७३। इस अंक के लिए

## उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्रमुख कृतियां : गर्म राख, गिरती दीवारें, बड़ी-बड़ी आंखें, शहर में घूमता आईना, एक नन्ही किंदील, बैंगन का पौधा, चट्टान, पलंग इत्यादि।

वर्ष १३ : अंक १२
अक्तूबर, १९७३

आकल्पं कवि नूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

## निबंध एवं लेख

संपादक

# राजेन्द्र अवस्थी



मुखपृष्ठ : छायाकार—प्रेम कपूर, एम. एस. अग्रवाल (तुलसीदास)

## समय के हस्ताक्षर

इन दिनों मानस-चतुश्शती वर्ष मनाया जा रहा है। तुलसी की देन व्यापक है।उन्होंने अपने समय की सोयी हुई शक्तियों को स्वर दिया था। भटकी और शक्तिहीन जनता को तुलसीदास ने एक रास्ता दिखाया। उन्होंने राम-जैसे चरित्र का निर्माण किया, जो इसके पहले इतना प्रबल नहीं था।

यह सत्य है कि किसी को आराध्य माने बिना सीमा तक नहीं पहुंचा जा सकता। यदि तुलसी यह न मानते तो अपने अंतर्चक्षुओं से राम के दर्शन नहीं कर सकते थे। इसलिए तुलसीदास ने कहा भी है—'रामकथा सुंदर करतारी, संसय बिहग उड़ावनिहारी।' जब तक आदमी संदेह और संशयों में पड़ा रहता है, कोई रास्ता नहीं खोज सकता।

तुलसी का 'रामचरितमानस' समय-सापेक्ष रचना थी। उस समय के शासन से आक्रांत जनता के लिए इससे बड़ा सुलभ मार्ग दूसरा नहीं मिल सकता था। तुलसी के जीवन के साथ यह भी एक विडंबना ही है कि जो व्यक्ति प्रेम में पागल, बरसती हुई रात को अपनी पत्नी के कमरे में पहुंचे, उसे प्रताड़ना और लांछन मिले। यह एक दूसरी बात है कि नारी-पीड़ित तुलसीदास (और वाल्मीकि भी) महाकवि हुए, लेकिन यह प्रसंग समस्त नारी-जगत के सामने एक प्रश्न भी तो छोड़ जाता है। कितना भी क्यों न कहा जाए, हम रत्नावली को न एक आदर्श नारी मान सकते और न उसके प्रति हमारी सद्भावना हो सकती।

हमने कितनी बार 'मानस' पढ़ा है—बचपन से लेकर अब तक और हर बार वह नया लगा है। राम, सीता, मंथरा, विभीषण, भरत, कैकेयी, सुग्रीव, बालि और न जाने कितने ऐसे चरित्र हैं जो हर बार एक नयी दृष्टि दे जाते हैं। इसलिए 'रामचरितमानस' आज भी उतना ही नया और आधुनिक है। भाषा के व्यवधान के बावजूद वह हिंदी साहित्य का अप्रतिम और महान ग्रंथ है और कई बार तो तुलसीदास की मानसिक चेतना पर ईर्ष्या होने लगती है। उन्होंने भक्ति का रास्ता लेकर और संसार त्यागकर इतना बड़ा 'संसारी ग्रंथ' कैसे लिख दिया ? 'मानस' के पहले और अब चार सौ वर्षों के बाद भी इसके समकक्ष ग्रंथ क्यों नहीं लिखा जा सका ? कैसे तुलसीदास इस देश की निरक्षर और पीड़ित जनता के कंठ में जाकर बैठ गये ?

अपनी हाल की वाराणसी यात्रा में हमें तुलसी के वे सारे केंद्र देखने मिले, जहां रहकर उन्होंने इस महाप्राण महाग्रंथ की रचना की थी । इसी संदर्भ में 'तुलसी मानस मंदिर' (जिसका रंगीन चित्र इसी अंक के पृष्ठ ६७ पर छपा है) को देखने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ । निश्चय ही यह मंदिर आकर्षक और सुंदर तथा सुगठित है । इसी मंदिर के ऊपरी खंड में महाकवि तुलसीदास की प्रतिमा है । प्रतिदिन उसका पूजन होता है । मंदिर के आसपास 'मानस' के कुछ प्रसंगों को आकार दिया गया है (ये भोंडे, अनगढ़ तथा बेकार हैं, इनमें कोई कला नहीं है) । कुल मिलाकर वह एक दर्शनीय स्थान है ।

महाकवि तुलसीदास जहां रहे और जहां उन्होंने 'मानस' की रचना की वह 'अस्सीघाट' भी हमने देखा है । तुलसीदास सीधे-सादे (आज के अर्थ में निर्धन भी) व्यक्ति थे, लेकिन निर्भीक और जीवन भर समाज के कुचक्रों का सामना करते रहे । उनकी भावना का पता इन पंक्तियों में मिलता है :

मांग के खइवो मसीत को सोइबो, लइबे को एक न दइबे को दोऊ ।
काहू की बेटी सो बेटा न व्याहब, काहू की जात बिगारन सोऊ ।

तुलसी मानस मंदिर में तुलसीदास की प्रस्तर-प्रतिमा

स्पष्ट है कि तुलसीदास उस समय के समाज और सामाजिक परंपराओं के विरोधी रहे हैं । इसी नयी दृष्टि ने उन्हें कालातीत और समयातीत बनाकर अमरत्व प्रदान किया है । ऐसे महाकवि को देवता बनाना सही नहीं है । जो वैभव और आकर्षण से निरंतर भागता रहा हो, उसे मंदिर के भीतर प्रतिमा के रूप में सजाकर रखना और देवता की भांति पूजना अनुचित है ।

दूसरी विशेष बात उनकी प्रतिमा और चित्र के बारे में है । अभी तो केवल चार सौ वर्ष बीते हैं और उनकी परंपरा व.राणसी में विद्यमान है । अस्सीघाट में तुलसी का मूल मकान अब भी है । गुसाइं परंपरा के पुरोहित भी हैं । वहीं हमें तुलसीदास का पहला चित्र देखने को मिला (मुखपृष्ठ) । 'तुलसी जन्म-शताब्दी समारोह समिति' ने तुलसीदास का दूसरा चित्र वितरित किया है, लेकिन तुलसी की पारिवारिक परंपराओं को देखते हुए अस्सीघाट में सुरक्षित चित्र ही उनका निकटतम सही चित्र है ।

# काल-चिंतन

—व्यतीत को समझने का माध्यम है इतिहास। इतिहास व्यक्तियों के जीवन-वृत्तांतों की काल-रचना है
—उनके छोड़े हुए पद-चिह्नों की छाप वह तुरंत अपने पृष्ठों पर अंकित कर लेता है
—मैं इतिहास के पन्नों को फड़फड़ाते हुए देखता हूं। कबूतर की तरह विवश वह पीछे भागता है
—विक्रम, ईसा, शक, हिजरी—इन सारे काल-खंडों को पार करता हुआ वह त्रेता और द्वापर युग में जा पहुंचता है
—त्रेता युग में राम हुए थे
—और द्वापर में कृष्ण
—राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के कंठहार, भारतीय संस्कृति के प्राण, भारतीय संस्कृति के आधार

●

—मैं इस आस्थावान देश को देखता हूं
—खेतों में हल जोतने वाला किसान या करोड़ों की संपत्ति का स्वामी व्यापारी
—यहां का पंडित, यहां का भिखारी, यहां का वैज्ञानिक, यांत्रिक, शोधकर्त्ता अथवा धर्म से लड़ता हुआ एक पागल व्यक्ति
—सभी एक आस्था के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे हैं
—सोचता हूं इस देश का क्या होता, यदि यहां राम और कृष्ण-जैसे महान व्यक्ति न हुए होते
—क्या कहा : महान व्यक्ति ?
—आवाजों के दायरों में मैं घिर जाता हूं
—तुम नास्तिक तो नहीं हो ?
—तुम संस्कृति के विरोधी प्रतिगामी पुरुष तो नहीं हो ?
—निश्चय ही तुम भारतीय नहीं हो ?
—आवाजें प्रतिध्वनि बनकर मुझे आक्रांत करने लगती हैं
—लेकिन मैं नास्तिक नहीं हूं
—मैं भारत की महान संस्कृतियों पर गौरवान्वित होने वाला एक ऐसा नागरिक हूं, जो हर युग और हर संस्कृति में उसके साथ जुड़ा रहा है

●

—राम और कृष्ण मेरे संबल हैं
—अंधेरे में भटकते हुए मेरे संतप्त मन और चक्रवात में फंसे क्षणों में वही मेरे आधार हैं
—राम : एक निर्भीक आदर्श के प्रतीक
—राम : भारतीय समाज के उच्छ्वास (वास्तविक जीवन में राम कब सामाजिक बन पाये—जब उन्होंने होश सम्हाला तो वनवास; वनवास की संकटपूर्ण अवधि पार की तो पत्नी-वियोग; शासन में समस्याएं; पुत्रों का प्रतिरोध और अंत में सरयू में डूबकर आत्महत्या !)

—राम : इस देश की जनता और संस्कृति के प्राण हैं
—और कृष्ण
—कर्म ही जीवन है
—कृष्ण ने भारतीय राजनीति को नया स्वरूप दिया
—वे निरंतर समय के साथ जूझते रहे और उस पर विजय पाते रहे

●

—मैंने कहा था, इतिहास के पन्नों में खो जाना मेरी कमजोरी है
—मैं कैसे कह दूं कि ये दोनों प्रेरणा-पुरुष इतिहास के पृष्ठों में नहीं हैं
—मैं कैसे कहूं :
'बिनु पद चले, सुने बिनु काना ।
कर बिनु कर्म करे विधि नाना ।
आननरहित सकल रस भोगी ।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी !'
—नहीं, मैं यह कहकर एक व्यक्ति के महान जीवन का अंत नहीं कर सकता
—जिस दिन उन्हें व्यक्तियों के घेरे से निकाल दूंगा, वे मेरे आदर्श-स्तंभ नहीं रहेंगे
—वे मेरे प्रतीक-पुरुष नहीं बन सकेंगे
—तब मेरी संस्कृति लंगड़ाती नजर आएगी
—भारतीय जीवन का रस-स्रोत सूख जाएगा
—संकटपूर्ण घड़ियों में मैं अकेला प्रलाप करता हुआ भटकता फिरूंगा

—क्योंकि 'ईश्वर', 'भगवान', 'गॉड' या 'अल्लाह'—ये सब व्यक्तियों से परे हैं
—उनके अस्तित्व के साथ-साथ 'भाग्यवादी' होने का भान भी कहीं जुड़ा है

●

—मेरे दोस्त ! अपने आदर्श की स्थापना के लिए इतिहास को मत झुठलाओ
—अपने संयमित और शाश्वत जीवन के लिए बने हुए प्रेरणा-केंद्रों पर स्याही न पोतो
—निम्नतम जिंदगी से ऊपर उठकर उच्चतम स्तंभ तक पहुंचने के लिए अपने सामने फैले हुए इन आदर्श महापुरुषों को अपनी पहुंच के परे मत करो
—क्योंकि मनुष्य ही मनुष्य की गति पा सकता है और इतिहास के पृष्ठों में जाकर 'देवता' बन सकता है
—क्या हम सब वह नहीं बनना चाहते ?
—क्या हमारी आकांक्षाओं और स्पर्धाओं की कोई अंतिम केंद्र-रेखा है ?

●

—मैं राम और कृष्ण, दोनों के सामने विनत हूं
—उन्होंने अपने कर्मों और अर्थों से इतिहास को आवाज दी है
—आकाशगंगा की तरह वे हमारे लिए एक निरभ्र-पथ छोड़ गये हैं, आओ बंधु, हम उस पर चलें !

# शिल्प में रामकथा

● जैनेन्द्र वात्स्यायन

भारतीय इतिहास में अयोध्या के रघुवंशी नरेशों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन नरेशों के वैभव की चरम सीमा दाशरथि राम के राज्यकाल में हुई। वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य रामायण में राम का चरित्र-चित्रण उन्हें एक आदर्श पुरुष-श्रेष्ठ मानकर किया है। राम के जीवन में आदर्श पुत्र, आदर्श पति एवं आदर्श राजा—इन तीनों आदर्शों का अद्वितीय संगम हुआ है। अहिंसा, दया, अध्ययन, सुस्वभाव, इंद्रिय-दमन और मनोनिग्रह—इन छह गुणों से युक्त एक आदर्श व्यक्ति का जीवन-चरित्र लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना ही वाल्मीकि-रामायण का मुख्य उद्देश्य है। वाल्मीकि ऋषि नारद से पृथ्वी के एक आदर्श व्यक्ति का जीवन-चरित्र सुनाने की प्रार्थना करते हैं, **'कोन्वस्मिन् सांप्रतं लोके, गुणवान् कश्च वीर्यवान्।'**

वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र राम को राम ही कहा गया है, किंतु एक स्थल पर राम को 'चंद्र' की उपमा दी गयी है। हो सकता है कि 'चंद्र' से इस सादृश्य के कारण इन्हें उत्तरकालीन साहित्य में 'रामचंद्र' नाम प्राप्त हुआ। वाल्मीकि ने अपनी रामायण में इन्हें कई स्थलों पर विष्णु के समान पराक्रमी कहा है, किंतु कहीं भी विष्णु के अवतार के रूप में इनकी चर्चा नहीं की है।

महाभारत के अनुसार राम अट्ठाईसवें त्रेतायुग में पैदा हुए थे। पौराणिक साहित्य में राम को विष्णु का सातवां अवतार कहा गया है। उत्तरकालीन साहित्य में रामभक्ति की कल्पना का जो क्रमिक विकास देखने को मिलता है, उससे लगता है कि राम के अवतारवाद की कल्पना क्रमशः दृढ़ होती गयी। रामभक्ति विषयक रचनाओं में राम को मात्र विष्णु का नहीं, बल्कि साक्षात परब्रह्म का ही अवतार मान लिया गया है। भारतीय परंपरा के अनुसार वैवस्वत मन्वंतर के चौबीसवें त्रेतायुग में राम का जन्म हुआ था।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि राम के अवतार की कल्पना अति प्राचीन है, किंतु भारतीय मूर्ति-कला में राम की कल्पना अति प्राचीन नहीं कही जा सकती। पुरातात्त्विक साक्ष्यों को यदि दृष्टि में रखा जाए तो हम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में राम की मूर्तियां बनने लगी थीं। इस साक्ष्य की पुष्टि देवगढ़ के गुप्तकालीन दशावतार मंदिर और भितरी गांव (कानपुर) के मंदिर से भी होती है, जिसमें हमें उनका स्वतंत्र रूप

और रामायण की कथाओं का चित्रण प्राप्त होता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि जैन एवं बौद्ध धर्म में भी राम को महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि विमलसूरि विरचित 'पउमचरियम', हेमचंद्र रचित 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र', संघदास रचित 'वसुदेवहिण्डी,' रविषेण रचित 'पद्मपुराण', गुणभद्र रचित 'उत्तरपुराण' आदि जैन ग्रंथों से होती है।

**देवगढ़ दशावतार मंदिर में राम-कथा**

देवगढ़ (झांसी) के गुप्तकालीन दशावतार मंदिर की भित्तियों पर रामकथा की झांकी देखने को मिलती है। इसमें राम द्विभुजधारी हैं और उनके हाथों में धनुष और बाण है। 'अहल्या उद्धार-कथा' में राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र और अहल्या का चित्रण है। राम को बायां पैर नीचे लटकाये हुए और जटाजूट, हार आदि से युक्त दायीं ओर प्रदर्शित किया गया है। बायें हाथ में प्रत्यंचारहित लंबा धनुष और दायां हाथ आशीर्वाद-मुद्रा में अहल्या के सिर पर स्थित है। नीचे की ओर अहल्या को दोनों हाथ जोड़े और कुछ उपहार लिये चित्रित किया गया है। राम के दायें, पीछे की ओर द्विभुजधारी लक्ष्मण हैं, जिनका दायां हाथ जांघ पर आराम की मुद्रा में है। बायां हाथ प्रत्यंचारहित धनुष से युक्त है। बायीं ओर कोने पर जटाजूटधारी ऋषि विश्वामित्र हैं। संपूर्ण चित्रण

बायें से : लक्ष्मण-सुग्रीव वार्त्ता (मुगल शैली) सीता की अग्नि-परीक्षा (अकबर शैली) राम-सुग्रीव मिलन (मुगल शैली) सभी चित्र भारत कला भवन के सौजन्य से।

के ऊपर वृक्षों और फलों का अंकन है।

**सूर्पणखा नासिका-छेदन कथा**

इस अंकन में राम को दोनों पैर लटकाये, दायां हाथ अभय-मुद्रा में और बायें हाथ में प्रत्यंचारहित लंबा धनुष धारण किये हुए चित्रित किया गया है। राम आभूषणों से सुसज्जित हैं। राम की बायीं ओर पीछे सीता खड़ी हैं। लटकती हुई दायीं भुजा में कोई वस्तु है और बायीं भुजा वक्षस्थल के सम्मुख मुड़ी है। सीता की बायीं ओर क्रोधित मुद्रा में लक्ष्मण की मूर्ति है। लक्ष्मण बायें हाथ से सूर्पणखा के केशों को पकड़े हुए हैं और दायां हाथ वार की मुद्रा में है। यह हाथ खड्ग-युक्त है। सूर्पणखा की निरीह आकृति नीचे चित्रित है।

इसके अतिरिक्त अन्य दृश्य भी प्राप्त होते हैं, जैसे परशुराम का दर्प-भंग आदि। भितरी गांव मंदिर में भी रामकथा से संबंधित दृश्य प्राप्त होते हैं। इन समस्त दृश्यों को हम राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में देख सकते हैं। ग्वालियर संग्रहालय में राम-सीता की एक आलिंगन-मूर्ति देखी जा सकती है।

**खजुराहो की कला में राम**

डॉक्टर रामाश्रय अवस्थी को खजुराहो में चंदेल नरेशों द्वारा निर्मित राम की छह स्वतंत्र मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें पांच में राम अकेले और एक में सीता तथा हनुमान के साथ चित्रित हैं। चार मूर्तियां पार्श्वनाथ नामक जैन मंदिर में और दो लक्ष्मण मंदिर में उत्कीर्ण हैं

पहली मूर्ति में राम चतुर्भुज हैं और किरीट-मुकुट, वनमाला एवं अन्य सामान्य आभूषणों से सुसज्जित हैं। वे प्रथम और तृतीय हाथों में गदा और शंख धारण किये हैं। शेष दो हाथ खंडित हैं। अन्य चार प्रतिमाएं समान हैं, ये चारों द्विभुजी और त्रिभंग हैं। इनमें राम किरीट के स्थान पर करंड-मुकुट धारण किये हैं। दोनों हाथों से बाण पकड़े हैं और बायें कंधे पर धनुष है। राम-सीता की आलिंगन-मूर्ति में राम आभूषणों से युक्त त्रिभंग खड़े हैं। उनका पहला हाथ दायें, पीछे खड़े हुए हनुमान के सिर पर पालित मुद्रा में, दूसरा और चौथा लंबे बाण से युक्त है और तीसरा हाथ सीता का आलिंगन करता हुआ उनके बायें कंधे पर स्थित है। सीता के बायें हाथ में कुंडलित नीलोत्पल है और दायां हाथ राम के दायें स्कंध पर स्थित है। राम के दायें, पीछे खड़े हुए हनुमान की छोटी आकृति है, जो करंड-मुकुट से अलंकृत है।

**रामायण की झांकी : बालि-वध**

एक पतली रूप-पट्टिका में उत्कीर्ण होने के कारण बालि-वध चित्रण की आकृतियां अत्यंत छोटी हैं। झांकी दो भागों में विभक्त है : बायीं ओर के आधे भाग में वानरराज सुग्रीव, राम और लक्ष्मण प्रदर्शित हैं। सुग्रीव मस्तक नीचे की ओर झुकाये जांघ पर हाथ रखे चिंतित मुद्रा में बैठा है। राम सामने खड़े हैं। राम के

पीछे लक्ष्मण अपने दोनों हाथों से एक माला-सी पकड़े खड़े हैं। सुग्रीव की लज्जित और चिंतित मुद्रा से यह आभास होता है कि वह बालि से पराजित होकर लौटा है और राम से कुछ पूछ रहा है। राम उसे सांत्वना दे रहे हैं। लक्ष्मण के हाथों की माला सुग्रीव के लिए है। पहचान के लिए उसे पहनकर वह बालि से पुनः युद्ध करेगा। दायीं ओर के भाग में बालि और सुग्रीव का युद्ध और राम द्वारा बालि पर बाण चलाने का दृश्य चित्रित है।

**अशोकवाटिका में सीता**

पार्श्वनाथ मंदिर की एक रथिका में उत्कीर्ण एक दृश्य में अशोकवाटिका में सीता और हनुमान के बीच हो रहे वार्त्तालाप का प्रदर्शन है। यह चित्रण रामायण के सुंदर-कांड पर आधारित है। हनुमान का दायां हाथ व्याख्यान-मुद्रा में है और इस हाथ के अंगूठे में वे एक अंगूठी पहने हैं। हनुमान के पीछे दो राक्षसियां बैठी हैं। एक के दायें हाथ में खड्ग और बायें में खेटक है और दूसरी के बायें हाथ में खेटक तो है, किंतु उसका दायां हाथ छिपा है।

**शिल्प-शास्त्र में राम**

प्रतिमा-लक्षण ग्रंथों में राम की मूर्ति बनाने का विधान प्राप्त होता है। इन ग्रंथों में उल्लेखनीय हैं—वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता', 'अग्निपुराण', 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण', 'रूप मंडन' 'वैखानस आगम' आदि। वराहमिहिर की बृहत्संहिता के अनुसार राम की मूर्त्ति १२० अंगुल लंबी होनी चाहिए—**दशरथतनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतविंशम्** (पृष्ठ ३९२/३०)।

राम-दरबार : समय-१७ वीं शती (भारत कला भवन के सौजन्य से)
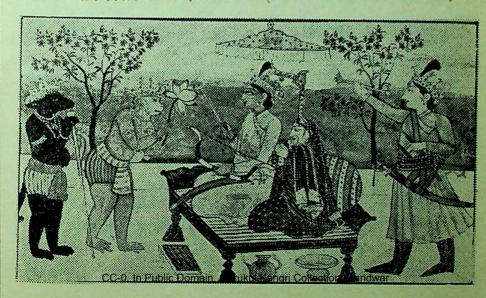
रूपमंडन में श्यामवर्ण राम की धनुष-बाण धारी द्विभुज प्रतिमा का विधान प्राप्त है——

**रामःशरेषुधृक् श्यामः ससीरमुसलो बलः ।**

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार राम राज-लक्षणों से युक्त हों एवं उनके साथ भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी हों। ये राम के समान हों किंतु किरीट न पहने हों।

**रामो दाशरथिः कार्यो राजलक्षणलालितः ।**
**भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाशयाः ।।**
**तथैव सर्वे कर्त्तव्याः किन्तु मौलि विवर्जिताः ।।**

अग्निपुराण (४९ अध्याय) के अनुसार राम की प्रतिमा धनुष, बाण और खड्गयुक्त चतुर्भुज अथवा द्विभुजी होनी चाहिए——

**रामश्चापी शरी खंड्गी वा द्विभुजस्स्मृतः ।**

वैखानस आगम में राम की प्रतिमा विधान का वर्णन बहुत ही सुंदर है——

राम की मूर्ति द्विभुजी होनी चाहिए । राम त्रिभंग मुद्रा में खड़े हों और उनके दायें हाथ में बाण एवं बायें हाथ में धनुष होना चाहिए । किरीट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत हों। उनके पार्श्व में सीता खड़ी हों। उनका सिर धम्मिल्ल और करंड-मुकुट से युक्त हो। उनके बायें हाथ में नीलोत्पल पुष्प हो और दायां हाथ फैला हुआ हो। वे अपने प्रफुल्ल लोचनों से राम की ओर देखती हों। इसके साथ ही लक्ष्मण और हनुमान भी हों।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम की स्वतंत्र मूर्तियां अथवा मंदिर उत्तर भारत में विशेष पूज्य होते हुए भी कम संख्या में उपलब्ध होते हैं। प्रायः सभी मंदिरों में राम को सीता और लक्ष्मण तथा कहीं-कहीं हनुमान के साथ चित्रित किया गया है, किंतु यह बात दक्षिण भारत के मंदिरों में देखने को नहीं मिलती है । वहां हमें राम की स्वतंत्र मूर्तियां प्राप्त होती हैं। इनको देखने से ऐसा लगता है कि शिल्पी की साधना ही मूर्तिमंत हो उठी है। प्रत्येक का शृंगार, अंग-सौष्ठव एवं रूप अवर्णनीय है । यह सत्य है कि शिल्पशास्त्र के निश्चित प्रतिमा-लक्षणों ने शिल्पी की स्वतंत्र कल्पना-शक्ति को अपने बंधनों में जकड़-सा दिया, पर उसकी मौलिकता की सुरभि ने उनमें वास किया ही——कला के ये पद्म जिस शिल्प-शैली के सरोवर में खिले उसको उन्होंने अपने नये-नये रूपों से भर दिया। इन सबके पीछे जो भावना काम कर रही थी, वह थी धार्मिक भावना जिसने आराध्य के दर्शन के लिए छेनी और हथौड़ी उठाने के लिए मजबूर कर दिया। कला के यह अंग थकी आतमा में नवोन्मेष भरते हैं।

**——मेसर्स कलाधरप्रसाद एंड संस,**
**नीचीबाग, वाराणसी-२२१००१**

**परीक्षार्थी ने उत्तरपुस्तिका के प्रथम पृष्ठ पर लिखा——"यहां लिखे विचार मेरे अपने हैं । अधिकृत पाठ्य-पुस्तक के लेखक से मेरी सहमति होना अनिवार्य नहीं ।"**

डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र, एम. ए, डी. लिट्, मध्यप्रदेश विधान-सभा के सदस्य। तुलसी-साहित्य के प्रकांड विद्वान। सिद्धहस्त कवि और लेखक। रामचरित्र ८र एक बृहत काव्य 'कोशलकिशोर' का सृजन

# युगों-युगों के तुलसीदास

**● डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र**

युगपुरुष का काल अपने युग के बाद प्रायः बीत जाता है, किंतु जो युग-युग का पुरुष होता है उसका काल शायद ही कभी काल-कवलित हो पाता हो। गोस्वामी तुलसीदास को मैं केवल युग-पुरुष नहीं, युग-युग का पुरुष मानता हूं। वे अकबर, जहांगीर के समय में रहे थे। अकबर, जहांगीर की धार्मिक सहिष्णुता के बाद औरंगजेब की कट्टर धर्मांधता के दिन भी इस देश ने देखे, फिर मराठों तथा सिखों का उत्कर्ष तथा विचार-स्वतंत्रता और आचारों में अंगरेजों की अनास्था भी देखी। न जाने कैसे-कैसे आमूलचूल परिवर्तन हुए। किंतु तुलसी-दास चिर-प्राचीन होते हुए भी चिर-नवीन होते जा रहे हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वे नयी-नयी अर्थ-गरिमा से मंडित होकर समाज को अपनी नये ढंग की उपयोगिता का परिचय देते चले जाते हैं। भूतकाल के होते हुए भी वे भविष्य के प्रकाशक हैं।

यह सोचना भ्रमात्मक है कि तुलसीदास सामंतवादी युग के हैं अथवा भक्तिकाल की ही विभूति हैं। उनको किसी देश अथवा काल से बांधकर नहीं रखा जा सकता। श्रद्धावादी परंपरा के होते हुए भी वे परम वैज्ञानिकता के इस युग में एक सुदृढ़ प्रकाश-स्तंभ के समान हैं। उनके समय की राजनीति वर्ग-विशेष की—राजा-रईसों की—राजनीति थी, किंतु उन्होंने जन-साधारण का हित ही सदैव अपने ध्यान में रखा।

लेखक

उन्होंने अपना वर्ण्य आराध्य ऐसा चुना जो शाश्वत प्रभाव-शाली रहकर दीनबंधु है, पतित-पावन है, करुणा-वरुणालय है। आदर्श को चित्रित कर देना एक बात है और उसे प्रभावशाली ढंग पर हृदय में अंकित कर देना बिलकुल दूसरी ही बात है। यह तुलसीदास की ही अनोखी कला है, जिसके बारे में हरिऔध लिख गये हैं **"कविता करके तुलसी न लसे कविता लसी पा तुलसी की कला!"**

भविष्य के [illegible] निरवधि विस्तार में कौन-कौन-से युग आएंगे, यह कौन कह सकता है। नित्य नयी साजसज्जा लेकर नया युग आता है और अपने से भी नये युग के लिए मंच छोड़कर परदे के पीछे चुपचाप चला जाता है। परंतु जिसने जीवन के शाश्वत सत्यों की पकड़ पहचान ली है वह कभी पुराना नहीं हो सकता। चार सौ वर्षों से आज तक भारतीय संस्कृति की नदियों में न जाने कितनी बाढ़ें आयी हैं, परंतु तीर के घाटों की भांति तुलसीदास की प्रतिभा अब भी अपनी कल्याणप्रद स्थिरता वैसी ही सुदृढ़ रखे है। इस युग के लिए उनकी कल्याणप्रदता कैसी है, यह देखना हो तो पहले इस युग की उन विशेषताओं की ओर लक्ष्य किया जाए जो तथाकथित आधुनिकता को तथाकथित पुरातन-पंथियों से पृथक करती हैं। तब हम समझ सकेंगे कि तुलसीदास की वे कौन-सी विशेषताएं हैं जो इस युग में भी उन्हें स्पृहणीय बना रही हैं और हमें उनका शानदार चतुश्शताब्दी समारोह मनाने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हो रही है।

तुलसी मानस मंदिर की दीवारों पर अंकित सम्पूर्ण रामायण का एक अंश

पहली बात तो यह है कि गोस्वामीजी ने देवपूजा से बढ़कर चारित्रिक निर्मलता को मान दिया है। उनके प्रभु कहते हैं, "**निर्मल मन जन सो मोहिं पावा, मोहिं कपट छल छिद्र न भावा।**" जिस व्यक्ति में यह चारित्रिक निर्मलता हो उसी से प्रभु अपना नाता जोड़ते हैं, अर्थात उसी के जीवन की कृतार्थता मानी जानी चाहिए। "**कह रघुपति सुनु भामिनि बाता, मानहुं एक भगति कर नाता।**" ब्राह्मण हो या शूद्र, आर्य हो या अनार्य, स्त्री हो या पुरुष—जिसने राम कहा, अर्थात जिसने मन की निर्मलता पर आस्था रखी वह परमपावन हो जाता है। "**श्वपच शवर खस यवन जड़ पांवर कोल किरात, राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात।**" गोस्वामीजी ने जन्म की अपेक्षा कर्म को मान देते हुए कहा है, "**उपजत एक संग जल माहीं, जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।**" चारित्रिक उदात्तता पर उनका इतना अधिक जोर है कि अपने इष्ट राम में वे किसी प्रकार की चारित्रिक न्यूनता की कल्पना तक नहीं कर सकते।

परंपरागत कथन है कि राम ने गर्भिणी सीता को मात्र लोकापवाद पर निर्वासित कर दिया, शंबूक का केवल इसलिए वध कर दिया कि वह शूद्र होकर तपस्यारत था, भले ही वह तपस्या किसी विशिष्ट महत्त्वाकांक्षा वाली रही हो। परंपरा के राम भरत को भी राजमद के चक्कर में आ जाने वाला सामान्य राजकुमार समझकर वन जाते समय सीता को हिदायत देते न चूके कि वे भरत के सामने उनकी (राम की) प्रशंसा न करें। तुलसीदास ने ये सब बातें अपने मानस से दूर ही रखी हैं। उन्होंने राम का नहीं, ऐसे रामत्व का वर्णन किया है जिसमें दुर्गुणों अथवा चारित्रिक न्यूनताओं की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज की सबसे बड़ी समस्या है चरित्रबल की। अपनी कलापूर्ण रचना से तुलसीदास ने जिस प्रकार चरित्र-उन्नयन की जीवंत प्रेरणाएं दी हैं, वह इसी युग के लिए नहीं, युगों-युगों के लिए संग्राह्य तत्त्व है।

दूसरी बात यह है कि तुलसीदास ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज के कल्याण पर विशेष ध्यान दिया है। व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र उन्हें अधिक प्रिय है। उनके मानस के राम इस धराधाम पर आकर यहीं रम गये। यहां का हर मानव और कण-कण उनके लिए राममय हो गया—**"अति प्रिय मोहिं इहां के वासी, मम धामदा पुरी सुख रासी।"** उनकी यह जन्मभूमि ही 'स्वर्गादपि गरीयसी' हो गयी। उनके

अस्सीघाट में तुलसी के घर की दीवार पर अंकित सम्पूर्ण हनुमान चालीसा

कथासूत्रधार शिवशंकर गा उठे —

**धन्य देश सो जहं सुरसरी,**
**धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।**
**धन्य सो भूपु नीति जो करई,**
**धन्य सो द्विज निज धरम न टरई।**
**सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सु पुनीत**
**श्री रघुवीर परायन जेहि नर उपज बिनीत**

तुलसीदास की इस देशसेवा और समाजसेवा का ही तकाजा है कि उन्होंने परहित को धर्म का सबसे श्रेष्ठ तत्त्व कहा है—**"परहित सरिस धरम नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई।"** इस प्रकार गोस्वामीजी ने अनायास ही धर्म की धुरी

को व्यक्ति से हटाकर समाज पर केंद्रित कर दिया। उनके राम एक ऐसा तत्त्व बन गये जिसमें समग्र राष्ट्र का, समग्र मानव-समाज का तथा पशु-पक्षियों और देवों-दानवों तक का हित समाहित है। **"सपनेहु धरम बुद्धि कह काऊ, यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ"** कहने वाले असभ्य कोल, किरात ही नहीं, आमिषभक्षी गिद्ध और नरभक्षी राक्षस तक गोस्वामीजी के उस मानस आराध्य से प्रभावित हो गये और इस पृथ्वी पर ही ऐसा स्वर्गिक साम्राज्य स्थापित हो गया कि रामराज्य हमारी कल्पना का एक शाश्वत स्रोत बन गया है। क्या कभी कोई ऐसा भी बाजार होगा जहां क्रय के लिए आयी कोई भी वस्तु बिना मूल्य बिक सकेगी? तुलसीदास के रामराज्य में यह भी संभव था—**"वस्तु बिनु गथ पाइए।"** उन्होंने उस युग में समता का उद्घोष किया था जिस में **'इरिषा परुशाच्छर लोलुपता, भर पूरि रही'** के कारण **'समता बिगता'** हो गयी थी। वह रावणराज्य था, कलियुग का राज्य था। उस युग में उन्होंने दीनों के बंधु से समता ही की मांग की है—**"मनसंभव दारुन दुख दारय, दीनबंधु समता बिस्तारय।"** क्या यह पुकार सामूहिक पुकार नहीं है? क्या यह पुकार युग-युग की पुकार नहीं है?

तीसरी बात यह है कि उन्होंने समन्वयवादी विवेक पर आधारित आत्मविश्वास को जगाया है, जो प्रत्येक युग के लिए अभीष्ट कहा जा सकता है। आज के युग में आस्था की बड़ी आवश्यकता है, अतएव तुलसीदास की भी बड़ी आवश्ययकता है। आप मूर्तिपूजक नहीं हैं तो न सही, ईश्वर को मानने वाले नहीं हैं तो न सही, आप शबरी के प्रति कही गयी नवधाभक्ति का प्रकरण देखें। यदि आपको संतों का संग रुचता है (**पर-उपकार बचन मन काया, संत सहज सुभाव खगराया**) तो आप कृतकृत्य हैं। आपको निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं। **"नव महु एकहु जिनकें होई, नारि पुरुष सचराचर कोई। सोइ अतिसय भामिनि प्रिय मोरे।"** यह है **'प्रथम भगति संतन कर संगा'** का रहस्य। आप परमेश्वर के प्रति शंकालु रहे हों; यज्ञ, दान, तप से दूर रहते रहे हों; स्वर्ग-नरक पर आपको विश्वास न हो; स्वार्थ और परमार्थ अथवा अर्थ और काम या धर्मनीति और राजनीति की उलझनों से आप उबर न पा रहे हों और निराशा की अंतिम सीढ़ी तक पहुंच चुके हों, तो भी तुलसीदास आपको आत्मविश्वास का अमर घूंट पिलाने के लिए यह कहते हुए उपस्थित मिलेंगे—**"पाई न केहि गति पतितपावन, राम भजि सुनु सठ मना।"** और, यह उपदेश वे ऐसी काव्यमयी वाणी में दे गये हैं कि बस देखते ही बनता है।

**—विधायक विश्रामगृह नं. २,**
**कमरा नं. १९, भोपाल**

# रामकथा सुंदर करतारी

● डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

गोसाईंजी स्वयं को कवि नहीं कहते थे। उनके साधक कहते हैं कि वे कवि हैं। उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि 'रामचरितमानस' उन्होंने रचा। यह तो न जाने कबसे शिव के मन में था—

**रचि महेस निज मानस राखा।**
**पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥**

अवसर आया तो उन्होंने पार्वती से कहा। स्पष्ट है कि तुलसी निमित्त-मात्र हैं और मानस की रचना के पीछे किसी विशिष्ट शक्ति का हाथ है।

इस देश में 'पार्वती' कितना सुंदर शब्द है। 'पार्वती' देश के तीन खंडों का प्रतीक है—एक इसका पर्वत, दूसरा इसका मैदानी और तीसरा इसका समुद्री खंड। इन तीन स्थानों की तीन देवियां हैं और पता नहीं किस काल से संयम और प्रेरणा उपस्थित करती आ रही हैं। पर्वत-कन्या पार्वती से अधिक महिमामय शब्द हम शायद कोई न पा सकें। सीता को आशीर्वाद देते समय अनुसुइया ने कहा था—'पार्वती के समकक्ष हो।' दूसरी देवी हैं भूमि-सुता सीता, जानकी। तीसरी हैं सागर-पुत्री लक्ष्मी। ये तीन देवियां इस देश में हमारे गृहस्थ जीवन, हमारी माताओं और हमारी बहनों का आदर्श रही हैं और इसी आदर्श के सहारे हम जीवित हैं। वस्तुतः सारी नदियां पार्वती हैं। शिव की जो दो पत्नियां कही जाती हैं, वे हैं गंगा और पार्वती, ऐसी पार्वती जो पवित्रता की अंतिम कोटि हैं। ऐसी पार्वती के मन में कुछ संदेह है। 'संदेह' और 'संशय'—इन दो शब्दों को तुलसीदास ने बार-बार कहा है, कितनी बार कहा है यह मैं आपको बता नहीं सकता। उनके मन में कोई ऐसी बात थी कि इस युग में लोग संशय या संदेह में पड़े हैं। वह संशय या संदेह उन्होंने भरद्वाज के मुख से कहलवाया, गरुड़ के मुख से कहलवाया और पार्वती के मुख से कहलवाया। सबसे अधिक उन्होंने यह पार्वती के मुख से कहलवाया—

**नाथ एक संसउ बड़ मोरें।**
**करगत बेदतत्व सब्रु तोरें॥**

### दक्ष-सुता को शंका

"क्या राम वही हैं जो दशरथ के बेटे हैं या कोई दूसरे हैं ?"—इस प्रकार की शंकाएं पार्वतीजी ने कहीं। पार्वतीजी का तो यह है कि वे जब पर्वत-कन्या नहीं थीं, दक्ष-सुता थीं, सती थीं, तब से ही उनके मन में संदेह था। उसका फल भी भोगा उन्होंने। एक बार शिव, सती के साथ

लेखक

विचरण कर रहे थे। उसी समय राम लक्ष्मण के साथ सीता के वियोग में भटक रहे थे। सती ने अब राम को साधारण नर की तरह यों विलाप करते देखा तो उनके मन में संदेह हुआ कि ये ब्रह्म नहीं हैं। शिव ने उन्हें बहुत समझाया और संदेह दूर करने का बहुत यत्न किया, पर उनका संदेह दूर नहीं हुआ। इस पर शिव ने कहा—

**जौं तुम्हरें मन अति संदेहू ।**
**तौ किन जाइ परीछा लेहू ।।**

सती ने सीता का भेस धारण किया। राम ने उन्हें देखा तो पूछा, "आप यहां कैसे आ गयीं ? वृषकेतु कहां हैं ?" राम सती के छलावे में नहीं आये।

शिव से भी उन्होंने झूठ बोला, "आपके कारण मैंने उनकी कोई परीक्षा नहीं ली, उन्हें प्रणाम करके ही चली आयी।" तुलसीदास कहते हैं कि यह सब भगवान की माया है।

**पार्वती की शंका : शिव द्वारा निवारण**

एक दिन पार्वती ने बड़े प्रेम और विनयपूर्वक शिव से कहा कि मेरे संदेह मिटा दीजिए। पार्वती के रूप में अवतरित होकर भी उनके मन से संदेह नहीं गया—'क्या राम वही अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र हैं या अजन्मा और निर्गुण ब्रह्म हैं ? अगर राजा के बेटे हैं तो ब्रह्म कैसे ?" शिव ने प्रसन्न होकर कहा, "अच्छी बात है, जो तुम्हें पूछना है, पूछो।" पार्वती ने बारह सवाल किये। इनका उत्तर 'रामचरितमानस' में है। पहला प्रश्न था कि जो निर्गुण है वह मनुष्य-वेश कैसे धारण कर सकता है ? इसके बाद पार्वती ने रामचरित की कथा पूछी। कथा के बाद चार सवाल और किये। सात सवालों में कथा आ जाती है। शिव ने भक्ति का स्वरूप स झाया और यह भी बताया कि ज्ञानी लोग किस अवस्था में रहते हैं। अंत में शिव ने यह भी कह दिया कि जो कुछ पूछने से रह गया है, उसका भी जवाब ले लो। इसलिए तुलसीदासजी ने बार-बार इस कथा के बारे में कहा है—

**रामकथा सुंदर करतारी ।**
**संसय बिहग उड़ावनिहारी ।।**

**तुलसी के दो रूप**

तुलसीदासजी के दो रूप हैं—एक तो बहुत ही सचेत कलाकार का रूप और दूसरा वह रूप जिसमें वे स्वयं को बिलकुल भूल जाते हैं और एकमेक हो जाते हैं। वे समष्टि चित्त में एकमय हो जाते हैं। शिव के साथ एकमेक होने की स्थिति यह है—**'रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।'** तुलसीदासजी का 'रामचरितमानस' उमा-शंभु संवाद है। कथा की योजना इस प्रकार की गयी है कि बाद में यह भरद्वाज-याज्ञवल्क्य

संवाद भी हो जाता है और गरुड़ तथा कागभुशुंडि-संवाद भी। लेकिन तुलसीदास-जी के मन में यह उमा-शंभु संवाद है। कथा समाप्त होने पर भी उमा-शंभु संवाद कहा गया है। 'उत्तरकांड' के ५२वें दोहे के बाद, सातवीं चौपाई के बाद कथा सचमुच समाप्त-सी हो गयी है। बहुत-से आधुनिक समालोचक कहते हैं कि काव्य को तो यहीं समाप्त कर देना चाहिए था, क्योंकि इसके बाद भक्ति का उल्लेख मिलता है। पार्वती ने कहा है—

**हरिचरित्रमानस तुम्ह गावा।**
**सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥**

लेकिन पार्वती के मुख से यह नहीं निकला कि संदेह दूर हो गया। जब कथा समाप्त होती है तब पार्वती कहती हैं—

**नाथ कृपा मम गत संदेहा।**
**रामचरन उपजेउ नव नेहा॥**

यहीं कथा समाप्त होती है। सच है, जब तक प्रश्नकर्ता का संदेह दूर नहीं हो जाता, तब तक बात कैसे खत्म हो सकती है?

**समालोचकों का पूर्वाभास**

लगता है कि उन्हें यह आभास था कि आगे चलकर कभी समालोचक यह कहेंगे कि कथा तो उत्तरकांड के ५२वें दोहे के बाद समाप्त होनी चाहिए थी, अतः उन्होंने शिव के मुख से कहलवा दिया—

**रामचरित जे सुनत अघाहीं।**
**रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥**

आधुनिक आलोचक रस तक तो जाते हैं, पर रस-विशेष तक नहीं जाते। रस-विशेष क्या है? तुलसीदासजी ने

राजापुर का तुलसी स्मारक

संकेत दिया है—

**ब्रह्म पयोनिधि मंदर ज्ञान संत सुर आहिं ।**
**कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि ॥**

—यह ब्रह्म समुद्र है, संत देवता हैं और ज्ञान मंदराचल पर्वत है । इस प्रकार मथने पर जो अमृत निकला है उसका नाम 'हरि-कथा' है । पर बात यहीं खत्म नहीं होती । हरि-कथा ठीक है, वह अमृत है, लेकिन भक्ति उसकी मधुरता है । जब तक वह नहीं तब तक कोई लाभ नहीं; इसलिए रस-विशेष और कुछ नहीं 'भक्ति' ही है ।

भक्ति क्या है ? इसे भी तुलसीदासजी ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा है—

**बिरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि ।**
**जय पाइअ सो हरिभगति देखु खगेस बिचारि ॥**

चर्म ढाल को कहते हैं । बुरे कर्मों से स्वयं को अलग रखना, इसे विरति कहते हैं । अतः बिरति ढाल है और ज्ञान तलवार है । इससे मद, मोह, लोभ शत्रुओं को मारकर जो भक्ति पायी जाती है, वह हरि-भक्ति है । मद, मोह, लोभ से युक्त जो है, वह भक्ति नहीं है । यह हरि-भक्ति उस अमृत की मधुरता है ।

तुलसीदासजी ने कई स्थानों पर अपने भक्तिभाव को निचोड़कर रख दिया है । उस युग के लोगों में जो संदेह थे, 'रामचरितमानस' उन्हें दूर करने के लिए था । एक स्थान पर कहा गया है कि जो विषयी, लंपट, बगुले, कौवे हैं वे मानस-स्वरूप इस सरोवर के निकट जाने का साहस नहीं करते । जब कथा समाप्त हुई तो शिव से पूछा गया कि आपने तो कहा था कि बगुला, काग, लंपट आदि मानस-रूपी सरोवर के पास भी नहीं जाते, फिर काग-भुशुंडिजी से यह कथा कैसे सुनी ? इस दृष्टांत द्वारा उन्होंने सारे भक्ति-तत्त्व को निचोड़कर रख दिया है, सारे उपनिषदों को दुहकर रख दिया है ।

**पार्वती के मुख से ही क्यों ?**

तुलसीदास के मन में जो प्रश्न है उसे वे भरद्वाज से भी कहलवाते हैं और गरुड़ से भी, लेकिन पार्वती से वे उसे बहुत विस्तृत रूप में इसलिए कहलवाते हैं कि पार्वती की गरिमा बहुत है, उनके मुख से जो प्रश्न निकलते हैं वे स्वतः गुरुतापूर्ण हो जाते हैं ।

'रामचरितमानस' एक तीसरा भागवत-रूप है । यह एक भविष्य-निरपेक्ष और व्यक्ति-सापेक्ष रूप के बीच का रास्ता है । समष्टिगत चित्त की ऐतिहासिकता के रूप में राम की कल्पना है । इसीलिए तुलसीदास ने कहा कि पथ बहुत अच्छे हैं, लेकिन पथ में अनन्य भक्त सबसे बड़ा है । अनन्य भक्त की बुद्धि स्थिर रहती है । वह क्षणिक नहीं होती, नित्य बनी रहती है । उसे यही भासता है कि यह जो चर-अचर सांसारिक रूप दिखायी दे रहा है , वह भगवान का रूप है । इसी रूप में सगुण भगवान है । रामायण की स्थापना इसी रूप में है ।

**—रवीन्द्रपुरी, वाराणसी**

# हे पथिक ! संभलकर चलो यहां

यह है तुलसी की जन्मभूमि
यह है तुलसी की धराधाम
जिसकी रजकण के अणु-अणु में
बिखरी उनकी गाथा प्रकाम
हे पथिक ! संभलकर चलो यहां
हे पथिक ! चलो निज पांव थाम
धूमिल न कहीं पड़ जाय धूलि
से उनकी कोई स्मृत ललाम
उन चरणों पर जो चले सदा
खोजा न कहीं पथ पर विराम
उन चरणों पर जो चले सदा
जब तक न मिल गया इष्ट राम
उन चरणों पर, जी करता है
लोटूं बनकर पदतल प्रणाम
आश्चर्य नहीं मेरा वंदन
महके चंदन बन याम-याम

—सोहनलाल द्विवेदी

● डॉ. शिवप्रसादसिंह

# आधुनिक परिवेश में मानस की प्रासंगिकता
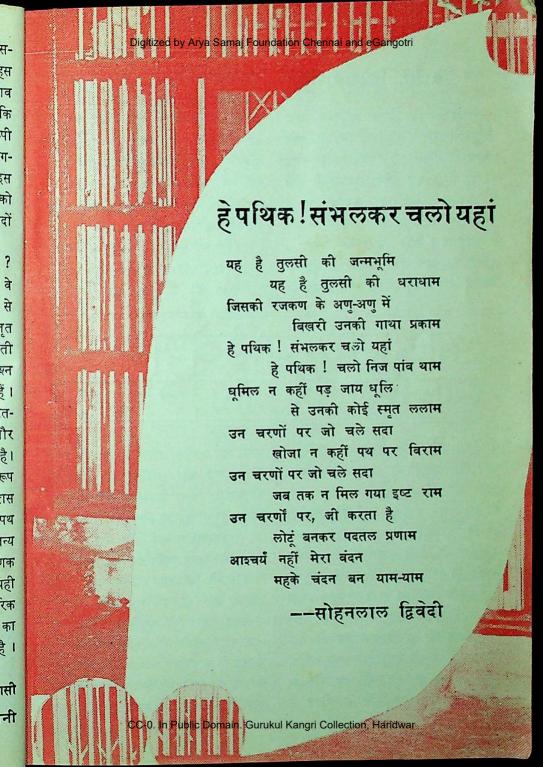
तुलसी अपने काल के क्रुद्ध युवा भले ही न रहे हों, विद्रोही कवि अवश्य थे। संस्कृत की अपनी समृद्ध परंपरा थी। धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में उसका असंदिग्ध वर्चस्व था। अभिव्यक्ति की दृष्टि से संस्कृत की क्षमता में अविश्वास नहीं किया जा सकता। तुलसी के पहले किसी कवि ने धार्मिक क्षेत्र में संस्कृत की उपेक्षा करके जनभाषा में अपनी बात कहने का साहस नहीं किया था। विद्यापति, कबीर, सूर आदि ने जन-भाषा को वरीयता दी, पर इनका क्षेत्र सीमित था, इसलिए इनकी रचनाओं का विरोध नहीं हुआ। कबीर-जैसे फक्कड़ और तीखी बातें कहने वाले व्यक्ति भीतर से नहीं, बाहर से हमला कर रहे थे। उनकी वाणी का असर संस्कृतज्ञ जनता पर नहीं, तथाकथित निचले तबके तक ही सीमित था, इसलिए कबीर की कटू-क्तियों को या तो सह लिया गया था या उनकी उपेक्षा कर दी गयी। दूसरी ओर तुलसी का आक्रमण किले के भीतर से शुरू हुआ था। कटूक्तियों की जगह विनय-पूर्ण अवज्ञा का रूप अपनाकर तुलसी ने एक दूसरा ही अंदाज पैदा किया। संस्कृत की उपेक्षा के लिए अपने को कोसते हुए उन्होंने 'भाखा' में काव्य लिखने के लिए बार-बार क्षमा मांगी, पर वे कहीं से 'भाखा भनिति' के प्रण से हटे नहीं। इस जनभाषा की स्वीकृति के कारण 'नाना-पुराण निगमागमसम्मत' होते हुए भी मानस संस्कृत-परंपरा से काफी अलग हो गया। रामभक्ति को जनसुलभ और सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उन्होंने प्रकारांतर से ब्राह्मणों के कर्मकांड और पुरोहिती को नकारने की कोशिश की। उन्होंने स्पष्टतः घोषित किया कि पौरोहित्य निकृष्ट कर्म है—

**उपरोहित्य कर्म अति मंदा।**
**बेद पुरान सुमृति कर निंदा ॥**

तुलसी के द्वारा संकोचपूर्वक कही हुई यह बात ब्राह्मण धर्म जानने वालों के लिए कबीर की कटूक्तियों से ज्यादा चोट करने वाली थी। परिणामतः काशी में तुलसी का जैसा भयानक विरोध हुआ वैसा शायद ही किसी अन्य कवि को सहना पड़ा हो। तुलसी को शास्त्र से नहीं शस्त्र

से धमकाया जाने लगा। काशी में रह पाना हराम हो गया। उसी स्थिति में उन्होंने लिखा था—

धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो जुलहो कहो कोऊ
भांगि के खइबो मसीति में सोइबो लेने को एक दइबे को दोऊ

हो हरि का है, वहां जात-पांत का भेद व्यर्थ है। तुलसी ने जानकर रावण के ब्राह्मण होने की बात को रेखांकित किया है, इसी प्रकार जैसे उन्होंने श्रीराम द्वारा शूद्रक-वध के प्रकरण को छोड़ दिया है। रावण ब्राह्मण होते हुए भी राक्षस था। राक्षस निःसंदेह प्रतीक है।

**गोपाल मंदिर वाराणसी : जिसके एक कक्ष में मानस की रचना की गयी**

प्रश्न उठता है कि क्या उन्होंने मानस में विप्रपूजा और शूद्र की निंदा की व्यवस्था नहीं दी है? उत्तर कांड में श्रीराम के मुख से संत-असंत के लक्षण सुनकर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी के लिए जाति का उतना महत्त्व नहीं था जितना भक्त का। हरि को भजने वाला

उत्तम पुलस्त्य कुल में उत्पन्न रावण प्रजा के लिए शोषक सिद्ध हुआ। क्या हमारा आधुनिक परिवेश इस प्रकार के अत्याचारों से मुक्त है? यदि नहीं, तो मानस की प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है, क्योंकि मानस के नायक ने ऐसे राक्षसों के विनाश को ही अपना प्रमुख कर्तव्य

माना था । लोग समझते हैं कि सीता-हरण के कारण रावण का बध हुआ । किंतु सीता-हरण तो उपलक्षण है । राम ने पथ से जाते हुए अस्थियों का पहाड़ देखा और यह जानकर कि ये अस्थियां उन लोगों की हैं जो रावण और अन्य राक्षसों के शोषण के शिकार हुए हैं, यह प्रतिज्ञा की——

**निसिचरहीन करउं महि भुज उठाइ प्रण कीन्ह ।**
**सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ-जाइ सुख दीन्ह ।।**

याद रखना चाहिए कि यह प्रसंग सीता-हरण के पहले का है ।

राम-रावण युद्ध के प्रसंग में तुलसी ने विशद रूप से भ्रष्टाचारी राक्षसी शक्तियों की विपुलता का वर्णन किया है । रावण शस्त्रसज्जित, वाहनयुक्त सेना के साथ था, दूसरी ओर राम थे पैदल । सेना थी बंदर, भालुओं की यानी सामान्य जंगली अनपढ़ लोगों की । विभीषण ने शंका की—इस तरह रावण को कैसे पराजित किया जा सकता है ? श्रीराम ने उत्तर में कहा था, "जिस रथ से विजय मिलती है, वह इस स्थूल रथ से भिन्न होता है । शौर्य और धैर्य उस रथ के चक्के हैं । सत्यशील दृढ़ ध्वजा-पताकाएं हैं । बल, विवेक , दम, परोपकार के चार घोड़े उसे खींचते हैं । क्षमा, कृपा और समता के रज्जु से वे घोड़े बंधे होते हैं । विज्ञान का कोंदड होता है । ऐसा रथ जिसके पास होता है उसे कोई जीत नहीं सकता ।"

वस्तुतः तुलसी-मानस की प्रासंगिकता आज के युग में उसकी इस सक्रिय मान-सिकता में है जिसके बिना विरथी को विजय रथी नहीं बनाया जा सकता । हमें देखना चाहिए कि तुलसी के परिवेश से हमारा परिवेश कितना बदला है ।

तुलसी ने मानस में कलियुग का जो वर्णन किया है उसमें अपने समय का ही साक्ष्य दिया है । लोभ-मोह से ग्रस्त प्राणी व्याकुल हैं । सभी पाप-परायण हैं ।

तुलसीकालीन समाज की नैतिकता-वादी रूढ़ियों को इस वर्णन से निकाल दें तो बाकी सब कुछ आधुनिक परिवेश पर ज्यों-का-त्यों लागू होता है । किसी भी कवि की रचना की बाहरी परिधि पर ऐसी बहुत-सी बातें मान्यताएं और रूढ़ियां होती हैं जो उसके परिवेश की देन होती हैं । किसी भी कवि की प्रासंगिकता पर विचार करने के पहले हमें वैज्ञानिक ढंग से बाह्य परिधिगत ऐसे उपादानों को छांट देना चाहिए । हमें निरंतर रचना के केंद्र-बिंदु की ओर संतरण करना चाहिए और गहराई में उतरकर उन सूक्ष्म तंतुओं को खोजना चाहिए जो किसी कालजयी-रचना को भविष्योन्मुखी बनाये रहते हैं । वैसे यह सत्य है कि मानस-जैसे काव्य के परिधिगत स्थूल तत्त्व भी तत्कालीन संस्कृति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री का कार्य करते हैं; परंतु मानस की प्रासंगिकता के संदर्भ में उनका मूल्य नहीं के बराबर है

आज मानस एक ओर जहां अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है, वहीं वह मानव-चेतना के निर्माण का अद्भुत रसायन भी है। इस दृष्टि से मानस का मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। भानुप्रताप की कथा में 'एब-सर्डिटी', भरत का अकेलापन और तनाव, कैकेयी की स्वार्थपरता और व्यक्ति-केंद्रिता, नारद-मोह की उपहासास्पद स्थिति, राम का साधनहीन संघर्ष, अशोकवाटिका में सीता की नजरबंदी आदि स्थितियां आधुनिक परिवेश से सीधे मेल खाती हैं। परंतु जिस तत्त्व के कारण मानस आधुनिक व्यक्ति के लिए प्रामाणिक साथी सिद्ध होता है, वह है उसकी चेतना को विकसित और लोचदार बनाने की क्षमता। अकेलापन, अजनबीपन, विसंगति आदि स्थितियां कोई चाहकर नहीं अपनाता, बल्कि वे परिस्थितियों के द्वारा उसके ऊपर आरोपित कर दी जाती हैं।

मानस ऐसी स्थितियों में मनुष्य की तरह जीने की कला बताता है। भरत अकेलेपन से उबर सके, आत्म-निर्वासित से टूटे नहीं क्योंकि उनके सामने राम का राज्य ज्यों-का-त्यों लौटा देने तथा भातृ-प्रेम से च्युत न होने का लक्ष्य था। सीता अशोकवाटिका में शत्रुओं के बीच अश्रु-पूरित नेत्रों से राम के आने की प्रतीक्षा करती रहीं। राम के प्रति विश्वास ही उनकी दारुण स्थिति में सहारा बना। रावण से लड़ते हुए राम को बार-बार संशय घेरता है, पर अपनी प्रतिज्ञा और प्रिया के उद्धार का लक्ष्य उन्हें अंततः विजयी बना देता है।

इस प्रकार आधुनिक परिवेश के जिन दबावों से हम पिस जाते हैं, उनमें उबरने में मानस काफी सहायता करता है। वह हमें जीने और संघर्ष करने का विश्वास प्रदान करता है।

तुलसी ने मानस क्यों लिखा ? उत्तर दिया जा सकता है कि भक्ति की स्थापना के लिए। पर तुलसी इतने सीधे ढंग से पकड़ में आने वाले व्यक्ति नहीं हैं। उन्होंने आरंभ में 'स्वान्तःसुखाय' शब्द का प्रयोग किया है और अंत में 'स्वान्तः तमः शांतये' का, अर्थात वे चेतना के विकास की दोहरी प्रक्रिया मानते हैं। अंतश्चेतना पर पड़े हुए तमस को दूर करना और चेतना को सुख और मुदिता से आप्लावित करना उनका उद्देश्य था—आधुनिक मनोवैज्ञानिक शब्दों में उसे मन का रिलेक्सेशन और मनोन्नयन कह सकते हैं।

लोग कहते हैं कि आज के निरर्थक परिवेश में कोई सुधार संभव नहीं। पूरी मशीनरी नीचे से ऊपर तक भ्रष्ट हो गयी है। वे ऐसा कहकर प्रकारांतर से पूरे देश की जनता के मनोबल के ह्रास का विज्ञापन करते हैं। यह मनोबल नष्ट इसलिए हुआ है क्योंकि हम व्यक्तिगत रूप से अपनी चेतना के विस्तार और विकास का कोई प्रयत्न नहीं करते। मानस एक

# तुलसी का प्रामाणिक चित्र एक प्रश्न-चिह्न !
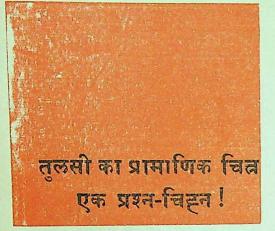
गोस्वामी तुलसीदास के सही मूल-चित्र को लेकर काफी विवाद है। इसी अंक के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित गोस्वामी तुलसीदास का चित्र वाराणसी के अस्सीघाट अथवा तुलसीघाट स्थित इतिहास-प्रसिद्ध के उस स्थान से लिया गया है, जहां वे रहते थे। महाकवि का यह निवास-स्थान आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है तथा वहां युगों से चली आ रही गोसाई-परंपरा के वर्तमान उत्तराधिकारियों के अनुसार मुखपृष्ठ पर प्रकाशित चित्र ही गोस्वामीजी का निकटतम सही चित्र है।

इधर मानस चतुश्शती समारोह के आयोजकों ने गोस्वामी तुलसीदास का जो चित्र वितरित किया है (पृष्ठ ४३), वह गोस्वामीजी के संबंध में प्राप्त विवरणों से किंचित भी साम्य नहीं रखता। वह किसी चित्रकार की मात्र-कल्पना पर आधारित है और भ्रामक है। ●

ऐसा मानसहृद है, जिसमें जाकर कोई भी आदमी यत्किंचित परिवर्तन के बिना बाहर नहीं आ सकता। हमें वह और कुछ दे या न दे, किंतु यह भी सही है कि वहां मानवीय रिश्तों की ऐसी बुनावट भी है जो हमें प्रभावित कर सकती है और मानव बनने की प्रेरणा देती है।

ईश्वर, भक्ति, शरणागति, आदि हमारी युवा पीढ़ी के लिए प्रतिक्रियावादी शब्द हो गये हैं। इन्हें छोड़ भी दें तो भी मानस में ऐसा बहुत कुछ बच रहता है जो हमारे काम का सिद्ध हो सकता है। स्वयं तुलसीदास इस प्रक्रिया के भीतर से गुजरकर दृढ़ आत्मविश्वास और अद्भुत मानवीयता प्राप्त कर सके। बुद्धि की विमलता हंसने की वस्तु नहीं है—

**अस मानस मानस चख चाही।**
**भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥**

मैं उन चीजों को यहां दोहराना नहीं चाहता जिन्हें आचार्य शुक्ल ने लोकमंगल कहकर बहुत विस्तार से चर्चित किया है। मैं यह भी मानता हूं कि तुलसी का रामराज्य खालिस 'यूटोपिया' है। जो लोग भारतीय जन के सुख-दुःख में शामिल हैं, जो समाज को मानवीय और समंजस रूप में देखना चाहते हैं, उन्हें मानस आज भी अप्रासंगिक नहीं लगना चाहिए। तुलसी की दूसरी रचनाएं तो और भी लोकधर्मी होने के कारण हमारे लिए निकट मालूम होंगी।

**—१३ गुरुधाम, वाराणसी-२२१००५**

● लक्ष्मीनिवास बिरला

रामचरितमानस की रचना चार सौ साल पुरानी हो गयी। तुलसीदास उस युग में हुए थे, जब संस्कृत के सिवा भाषा में ग्रंथ लिखने का प्रायः साहस ही नहीं किया जाता था। आम लोग संस्कृत नहीं समझते थे, इसलिए पढ़ने वाले कुछ लोगों तक ही सीमित थे। संस्कृत के पंडित होते हुए भी तुलसीदास ने जनसाधारण को राम की कथा सुनाने के लिए भाषा में लिखकर जान-बूझकर खतरा मोल लिया था। संस्कृत के पंडितों ने उन्हें बुरा-भला कहा, उनकी निंदा की। किंतु सामान्य जनता में रामचरितमानस इतना अधिक लोकप्रिय होने लगा कि पंडितों को बाध्यतः अपना मत बदलना पड़ा। उन्होंने घोषणा की—

**आनन्दकानने ह्यस्मिन् तुलसी जंगमस्तरूः।**
**कविता मंजरी यस्य् रामभ्रमरभूषिता॥**

कालांतर में गोस्वामी श्रीमन्नारायणाचार्य ने मानस का संस्कृत में बड़ा सुंदर अनुवाद किया।

यह अलौकिक रचना इतने वर्षों बाद भी आज कहीं अधिक लोकप्रिय बन गयी है। रामचरित रूपी मानसरोवर में पढ़े और अनपढ़े सभी सहर्ष गोता लगाते हैं, और जिसकी मुट्ठी में जितने रत्न आते हैं वह निकाल लाता है।

मानस बड़ा ही अगाध है, उसके तल का एक-एक कण अनमोल मणि है। उसे निरखने व समझने के लिए गहरा उतरना पड़ता है। पर यह नहीं कि किनारे बैठा हुआ कोई कोरा ही रह जाए। उसे भी कुछ-न-कुछ तो मिल ही जाता है।

बाल्यकाल की लीला के बाद ही वास्तव में कथा राम के बनवास से शुरू होती है। यों सारी ही कथा ज्ञान एवं भक्ति-रस से परिपूर्ण है, किंतु अयोध्याकांड का प्रमुख भाग पितृ-आज्ञा का पालन करना है।

महाराजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ से सलाह करके राम के राज्याभिषेक का निश्चय किया। यह समाचार फैलते ही अयोध्या भर में बधावे बजने लगे। जहां-तहां स्त्रियां मंगलगीत गाने लगीं। तुलसीदासजी लिखते हैं, "कोयल की-सी मीठी वाणीवाली, चंद्रमा के समान मुखवाली और हरिण के बच्चे-के-से नेत्रवाली स्त्रियां मंगलगान करने लगीं। वसिष्ठजी ने आज्ञा दी, "नगर में अनेक सुंदर मंडप सजाओ, फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो। मनोहर मणियों के चौक पुरवाओ और बाजार को खूब सजाओ।"

अयोध्या में यह महोत्सव हो ही रहा था कि आनंद में विभोर राजा दशरथ ने कैकेयी के महल में जाकर सुना कि वह तो कोप-भवन में हैं। वे सहम गये। डरते-डरते कैकेयी के पास पहुंचे। बहुत मनाया, पर हठीली रानी ने राम की शपथ दिलाकर दो वर मांग लिये, एक तो भरत को राज, दूसरा राम को चौदह वर्ष का वनवास!

राम ने पिता की आज्ञा का पालन किया। माता कैकेयी से बोले——

**सुन जननी सोइ सुत बड़भागी**
**जो पितु-मातु बचन-अनुरागी।**

और माता कौशल्या से विदा मांगते हुए कहा——
**"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू"**। अयोध्या के नागरिक बड़े क्षुब्ध और रुष्ट थे——
**"मिलेहि मांझ बिधि बात बिगारी, जहं तहं देहिं कैकइहि गारी।"**

सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम वन को विदा हुए। मंत्री सुमंत्र उन्हें गंगा तक छोड़कर जब लौटे तो तुलसीदास कहते हैं कि राम को लौटा न देखकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतों का निवास-स्थान हो।

प्रश्न अब यह उठता है कि सारी प्रजा, माताओं, मंत्रियों और यहां तक कि राजा दशरथ को भी, जिन्होंने अंत में प्राण ही छोड़ दिये, त्यागकर एक कैकेयी के प्रति वचनबद्ध राजा की आज्ञा मानना राम को उचित था क्या?

उधर, भरत ननिहाल में थे। जब लौटे तो देखा, कौए बुरी तरह कांव-कांव कर रहे हैं। गधे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। चारों ओर भयानक सन्नाटा। विक्षुब्ध लोग घरों में बैठे रहे, उनकी अगवानी करने नहीं गये। भरत माता कैकेयी के पास गये और सबका कुशल-क्षेम पूछा। पिता का मरण और राम का वनवास सुनकर सन्न रह गये वे। माता कौशल्या ने भरत से कहा, "बेटा काल और कर्म की गति अमिट है।" वसिष्ठजी ने आकर कहा——**"राय राज-पद तुम्ह कहं दीन्हा"**, माता कौशल्या ने भी समझाया, **"पूत पथ्य गुरु आयसु अहई!"** मंत्रियों ने विनती की——**"कीजिअ गुरु-आयसु अवसि।"**

भरत ने प्रजा की तरफ देखा, पर सब चुप थे। भरत का स्वयं का मन भी शोक-युक्त था। बोले——**"पितु सुरपुर सिय राम बन करन कहहु मोहि राजु!"** **"मोहि राज हठि देइहहु जबहीं, रसा रसातल जाइहि तबहीं।"** मुझे तो श्रीराम के पास जाने की ही आज्ञा दीजिए।

भरत श्रीराम के पास चित्रकूट गये और उनकी खड़ाऊं लेकर लौट आये। खड़ाऊं राज-सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर उनकी ओर से राज बड़ी अच्छी तरह चलाया। कैकेयी ने भरत के लिए राज मांगा था। भरत ने चौदह वर्ष राज तो किया, पर श्रीराम के एक प्रतिनिधि के

रूप में ।

ऐसे संघर्ष प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते ही रहते हैं। बड़ों की आज्ञा मानना उचित है या अनुचित ! राम ने भी आज्ञा मानी और भरत ने भी आज्ञा मानी, और प्रतिनिधि के रूप में राज भी चलाया।

प्राणी को मिली प्रज्ञा, और इस प्रकार हुआ मनुष्य का निर्माण। उसने नये इतिहास का सृजन आरंभ किया। उसके पास मस्तिष्क था। उसके माध्यम से भगवान द्वारा सर्जित जीवों के बीच अपने ढंग से मनुष्य भी नव-सृजनकर्ता
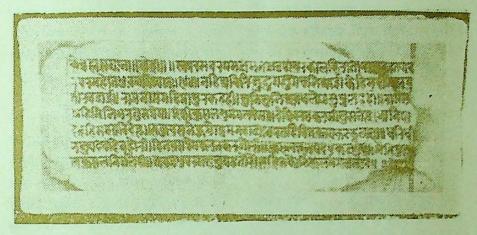
**मानस की सोरों वाली प्रति : तुलसीदास ने इसे अपने शिष्यों से लिखवाकर अपने भतीजे महाकवि नंददास के पुत्र सोरों-निवासी कवि कृष्णदास को वि. सं. १६४३ में भेंट किया था**

राम ने आगे चलकर एक प्रसंग पर कहा था,

**सुनहु सकल पुरजन मम बानी,**
**कहउं न कछु ममता उर आनी।**
**नहिं अनीति, नहिं कछु प्रभुताई,**
**सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई॥**

प्रभुताई के भय से मेरी कोई बात आप लोग स्वीकार न करें। कहीं भी अनीति की आशंका हो, तो वह बात ग्रहण न करें। सोचकर, विचारकर जो मन में ठीक जंचे वही करें।

बना। उसकी गरिमा का मापदंड उसकी वैचारिक विशिष्टता है।

वह अपने विचारों, आदर्शों, यथार्थों एवं प्रतीकों का अपना संसार बनाता है। उसकी कला और उसके शिल्प उसकी बुद्धि की देन को प्रतिबिंबित करते हैं। इस अर्थ में वह सृष्टिकर्ता की प्रतिमूर्ति-स्वरूप है।

कोई भी उचित निर्णय लेने के लिए विचारों का समुचित उपयोग आवश्यक है। विशेष तौर से व्यस्त लोग सदा ही

किसी चीज को ठीक से न सोचने का कुछ-न-कुछ बहाना करते हैं । पश्चिमी साहित्य भी हम देखें तो डिकेन्स ने अपनी 'ब्लीक हाउस' पुस्तक में उनका परिहास करते हुए कहा है, **"सोचो, मुझे बिना सोचे हुए बहुत कुछ करना है, जबकि प्रतिदान में उससे बहुत कम उपलब्धि होती है ।"** सभी कार्यों में विशेष रूप से दो पहलू होते हैं । चिंतन में खो जाना या विचार खोने की स्थिति में होना बुरा है । बहुधा यह कष्टप्रद भी है । किंतु विचार करने से भागना स्पष्ट रूप से मनुष्य के अपेक्षित गुणों को अस्वीकार करना है । शेक्सपीयर ने इन दोनों पहलुओं पर विचार किया है,

**"वह बहुत सोचता है . . . ऐसे व्यक्ति खतरनाक होते हैं ।" (जूलियस सीजर)**

जूलियस सीजर का तानाशाही राज्य था, और तानाशाह को स्वतंत्र विचार से चिढ़ होती है । दूसरी तरफ 'ओथेलो' में उलटी बात है, **"मैं कुछ भी नहीं हूं, यदि मुझमें आलोचनात्मक प्रवृत्ति नहीं है ।"**

बहुधा सभी विपत्तियां, जैसा कहा जाता है, खतरनाक नहीं होती हैं । कुछ विपत्तियां स्वागत करने योग्य होती है, क्योंकि वे मनुष्य की परीक्षा लेती हैं । मनुष्य ऐसी विपत्तियों का सामना करता है, जिनसे या तो समाज का कल्याण होता है या समाज के कल्याण की संभावना होती है । कभी-कभी उच्च विचारों का पूरा मूल्य चुकाना होता है, और ये मूल्य उन विचारों की उच्चता आंकते हैं । इसके साथ ही, मानव-जाति का कल्याण करने के पश्चात यह सदा के लिए उसकी प्रकृति बन जाती है । वर्डसवर्थ ने कहा है, **"छोटी सेवाएं वास्तविक सेवाएं हैं, यदि वे टिकाऊ हों ।"** वे लोग भी सेवाव्रती हैं, जो चिंतन करते हैं या चिंतन का प्रसार करते हैं । यद्यपि शारीरिक कार्य नहीं करते, तथापि कार्य के लिए सही दिशा और प्रेरणा प्रदान करते हैं । मानसिक कार्य ही आधारभूत कार्य है ।

किंतु चिंतन चाहे कितने ही अच्छे ढंग का हो, उसमें सारी बातों का समावेश नहीं हो सकता । इसीलिए उसकी संपूर्ति करनी पड़ती है । इस तरह मति-भ्रम और विचार-द्वंद पैदा होते हैं । लेकिन चिंतन की अपूर्णता मात्र विचारक का दोष नहीं है । विचारों में ऐसी प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से होती है । जहां तक सृजन का प्रश्न है, कोई भी सृजन अपने-आप में पूर्ण नहीं होता, क्योंकि कुछ भी सरल नहीं है । इसके अतिरिक्त, मौलिक विचारक किसी के आदेश से स्वीकृत पुरानी लीक पर नहीं चल सकता । इस समय एक बड़ा प्रश्न उपस्थित होता है । सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में सत्ता-संपन्न लोग चिंतन के लिए पर्याप्त अवसर नहीं देते । येन-केन-प्रकारेण विविध प्रतिबंध रख देते हैं । वे एक निश्चित लीक पर चलने के लिए सुझाव देते हैं, या दबाव डालते हैं । क्रांतिकारी एवं वास्तविक विचारक ऐसी

मांगों की पूर्ति करने में असमर्थ होते हैं। उनका अपना एक दृष्टिकोण तथा अपनी एक अभिलाषा होती है, और इस तरह वर्तमान तथा भावी जनमत द्वारा अपना मूल्यांकन और प्रतिदान चाहते हैं। जिनके हाथ में शक्ति है, उनसे वे कुछ लेकर अपने विचारों को बेचना नहीं चाहते। इस प्रकार विचारों में सदैव एक द्वंद्व बना रहता है, और यह द्वंद्व विभिन्न मतों, सिद्धांतों और परिप्रेक्ष्यों में होता है।

आज मनुष्य के 'स्वयं' को अपने तक ही सीमित रखना एक कष्टसाध्य परीक्षण है। वर्तमान समय ने जीवन को निश्चित आदर्शों एवं संस्थाओं में सीमाबद्ध कर दिया है। यह बात नहीं कि प्राचीन-काल में विचार-स्वातंत्र्य पर आक्षेप नहीं होता था। संभवतः वह मानव स्वभाव के अनुकूल था, किंतु वह आज की तरह जटिल बंधनों में नहीं बांधा गया था।

प्रत्येक काल, जलवायु, देश और मानव-हृदय में यह बात आती है कि जीव जन्म लेता है और उसे पार्थिव मृत्यु का भय अवश्य रहता है। यह भयंकर स्थिति प्रत्येक मनुष्य अच्छी तरह समझता है, जब आत्मा किसी राजनीतिक दंड-विधान के समक्ष नहीं झुकती। यह निर्णय मनुष्य का विद्रोही व्यक्तित्व स्वयं लेता है, और वह इस बात को स्वीकार नहीं करता कि किसी के दबाववश वह अपनी जिह्वा पर प्रतिबंध लगाये। किंतु कभी-कभी अरुचिकर समझौते की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परीक्षण के अंतिम क्षणों में भी आत्मविश्वासी आलोचक कभी नहीं झुकता। संतुलित विचारक सुविधाओं के व्यसन को अपने पास नहीं फटकने देता।

**गोस्वामी तुलसीदास का प्रचलित चित्र**
**(नागरी प्रचारणी सभा के सौजन्य से)**
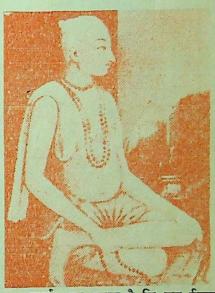
इमर्सन का कहना है कि जब ईश्वर एक दार्शनिक को इस भूतल पर उतारता है, तो मानव को सतर्कता की आवश्यकता होती है। ये विचार भारतीय विचार-धाराओं व परंपराओं के विशेष समीप हैं। प्राचीन भारत का संपूर्ण आध्यात्मिक वाङ्मय ज्ञान को प्रयोग की कसौटी पर कसने पर बल देता है और पहले से चली आनेवाली बातों को यथार्यतः स्वीकार नहीं करता। वेद और उपनिषद स्वतंत्र

चिंतन को प्रोत्साहन देते हैं । यह बात और है कि वे भी मान्यताओं की बात करते हैं, और यह प्रत्येक युग के लिए अपरिहार्य है । लेकिन सामान्य दृष्टिकोण यह है कि 'विचार स्वतंत्र है' ।

प्राचीन भारत की शिक्षा-प्रणाली अनुसंधानों द्वारा सत्य के उद्‌घाटन के पक्ष में थी । इसीलिए प्रश्न के लिए 'जिज्ञासा' शब्द प्रचलित था । शिक्षक छात्रों को जिज्ञासा करने तथा प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित कर उनके संदेहों का समाधान करते थे । दार्शनिक साहित्य वस्तुतः निर्भीक जिज्ञासा पर आधारित था । इन दार्शनिक ग्रंथों में वेदों की प्रामाणिकता पर भी प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिये गये हैं । यहां तक कि ईश्वर के अस्तित्व में भी कभी-कभी अनास्था प्रकट की गयी है । इन सत्यों को चुनौती देकर ही विश्व को अग्रगति मिली है । भगवान बुद्ध भी निर्भीक आलोचना द्वारा ज्ञानोपलब्धि के पक्ष में थे । उन्होंने अपने शिष्यों को स्वयं सोचने के लिए प्रेरित किया और किसी भी वस्तु को सत्य की कसौटी पर कसे बिना स्वीकार करने से मना किया है ।

'कोई भी विचार केवल इसलिए स्वीकार नहीं करना चाहिए कि वह हमारे ग्रंथों में वर्णित या सर्वमान्य है। इस आधार पर भी उसे नहीं मान लेना चाहिए कि वह हमारे गुरुओं का वचन है ।' यदि भारतीय गणतंत्र को सुरक्षित रखना है, तो पूर्वोक्त दृष्टिकोण का उपयोग वर्तमान युग तथा गणतांत्रिक परिवेश में विशेष महत्त्व रखता है । गोस्वामीजी ने 'कवितावली' के उत्तरकांड में लिखा है,

**गारी देत नीच हरिचंदहू दधीचिहू को,**
**आपने चना चबाइ हाथ चाटियतु है ।**
**आप महापातकी, हंसत हरि-हरहू को,**
**आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है ।**
**कलि को कलुष मन मलिन किए महत,**
**मसक की पांसुरीं पयोधि पाटियतु है ॥**

स्वयं भाग्यहीन होकर भी वह भाग्यशालियों को लांछित करता है । वह हरिश्चंद और दधीचि-जैसे महादानियों को भी गाली देता है, जबकि स्वयं अपने चने खुद ही चबा जाता है—एक दाना भी किसी को देना नहीं चाहता । कलियुग के कलुष ने मन को पूरी तरह मलिन कर दिया है । मच्छर की पसलियों के भरोसे सागर को पार करने का दुस्साहस करता है ।

राज्य एवं व्यक्ति के बीच की स्पर्धा अत्यंत असंतुलित तथा असमान है, फिर आत्मा की शक्ति को कम करना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता है । यह सत्य है कि सांसारिक आकर्षण सर्वत्र बिखरे पड़े हैं, और मानव की दुर्बलताएं समझौता करने के लिए बाध्य होती हैं । जो व्यक्ति भूल न करें या आत्म-हनन न करें, बहुत कम हैं, किंतु हैं कुछ अवश्य । ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है । यह तभी संभव है, जबकि लोग अपने विचारों के प्रति ईमानदार हों । ऐसे गंभीर और संतुलित विचारों की

सृजनात्मक भूमिका वृहदारण्यक उपनिषद में दी गयी है।

सनतकुमार उपदेश देते हैं, "पृथ्वी, वायुमंडल, आकाश, जल, पहाड़, देवता तथा मनुष्य सभी अपने ढंग से ध्यानावस्थि होते हैं। मनुष्यों में जिस किसी ने भी महत्ता प्राप्त की है, उसने इसे अपनी ध्यानमग्नता के पुरस्कारस्वरूप प्राप्त किया है। ध्यानावस्था की प्रतिष्ठा करो।" स्पष्ट है कि मनुष्य जब सोचता है, तभी समझता है। बिना चिंतन किये मनुष्य समझ नहीं सकता। किसी वस्तु के समझने के मूल में चिंतन ही है, किंतु मनुष्य के अंदर विचारों को समझने की इच्छा जाग्रत होनी चाहिए।

दूसरों के विचारों का जब हम आदर करते हैं, तब अपने विचारों को भी समादृत करते हैं। रामचरितमानस की शिक्षा भारत की एक अमर शिक्षा है। यदि भारत को प्रतिष्ठित और गौरवमय जीवन बिताना है, तो इसे सर्वोच्चि शिक्षा के रूप में मानना होगा तथा इसे श्रद्धापूर्वक हृदयंगम करना होगा।

राम और भरत दोनों ने ही पिता की आज्ञा का पालन किया, किंतु बिना सोचे-समझे नहीं। पूरे विचार के बाद राम ने तय किया कि जिस सद्उदेश्य को, जिस आदर्श को उन्होंने जन्म भर निभाया, उसके लिए उनका वन जाना जरूरी था। माता कौशल्या को उन्होंने बताया, **"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू, जहं सब भांति मोर बड़ काजू।"** यह तो प्रकट ही है कि उन्होंने महान स्वार्थ-त्याग किया।

भरत ने भी पितृ-आज्ञा का पालन किया, थोड़े से हेर-फेर के साथ। भरत ने रामजी से बहुत विनती की कि वे अयोध्या लौटें। और बोले,

"सब समेत पुर धारिअ पाऊं,
आपु यहां अमरावति राऊ।"

भरतजी का बुरा हाल था—

"निसि न नींद नहिं भूख दिन
भरत विकल सुचि सोच।"

रामजी ने सब कुछ भरतजी पर ही छोड़ दिया। सारा भार अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सके। अंत में बोले,

**"अब कृपाल जस आयसु होई,**
**करों सीस धरि सादर सोई॥**
**सो अवलंब देव मोहि देई,**
**अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥**

रामजी ने खड़ाऊं दे दी और भरतजी ने बड़े प्रेम से उन्हें सिर माथे पर लगाया। यह प्रतीयमान है कि राम के वन जाने पर अयोध्या राज-विहीन हो जाती। वहां के नर-नारियों का दुःख और शोक से त्राण हुआ तथा राम के राज्य में कोई उत्पात न हो, इस आदर्श को लेकर भरत ने प्रतिनिधि के रूप में राज चलाया। भरत का स्वार्थ-त्याग कितना महान था कि मिले हुए राज्य को तृणवत छोड़ा।

**—९/१ आर एन. मुखर्जी रोड, कलकत्ता-१**

# साथी

• मालती जोशी

दाल पीसते-पीसते उनका बूढ़ा शरीर हांफ उठा था। हर आहट पर वे चौंक उठती थीं—कभी इस आशा से कि रामलाल होगा, कभी इस डर से कि बहूरानी क्लब से न लौट आयी हो।

यों देखा जाए तो बहूरानी बेचारी कभी कुछ नहीं कहती। खुद ही आगे बढ़-बढ़कर उनकी हर इच्छा, हर जरूरत को पूरा करने की कोशिश करती है, फिर भी कभी-कभी संकोच हो ही जाता है।

# आत्म-कथ्य

लेखिका

शुरू-शुरू में मैं गीत ही लिखती थी किंतु कभी-कभार कहानी पर भी कलम चला लेती थी। शायद पहली कहानी सन '५२ में 'अरुण' के वर्षांक में प्रकाशित हुई थी।

उसके बाद काफी लंबे अंतराल के बाद मैंने लिखा था 'कादम्बिनी' के लिए, सन '६६ के आस-पास। पहली कहानी थी--'नैहर छुटो जाय'।

प्रेरणा-स्त्रोत के बारे में तो ठीक से कहा नहीं जा सकता। हां, शरत-साहित्य खूब भाता था और अब भी बार-बार पढ़ने को जी करता है। महादेवीजी की गद्य-रचनाएं भी अच्छी लगती हैं।

कहानी, मेरे विचार में, जीवन से जुड़ी होनी चाहिए। यथार्थ का चित्रण तो उसमें हो ही, किंतु वह जुगुप्सा न पैदा करे, इसका मुझे खयाल रहता है। पारिभाषिक शब्दावली के साथ लिखना मुझे नहीं आता।

रही परिचय की बात, सो एक एम. ए. (हिंदी) की डिग्री को छोड़कर कहने लायक कुछ भी नहीं है। न कोई पुस्तक प्रकाशित हुई है, न प्रकाशन की राह पर है। महाराष्ट्रीय परिवार में जन्म लिया है। हिंदी के अहिंदी-भाषी लेखकों की सूची में एक नाम यह भी।

पिछले हफ्ते से बाबूजी दो तीन बा कचौड़ी खाने की बात कह चुके हैं। य यह कोई बड़ी बात भी नहीं थी, लेकि उनकी खांसी बढ़ जाने के डर से इध तली हुई चीजें करीब-करीब बंद-सी हैं मांजी इस बात के औचित्य को समझतं न हों ऐसा भी नहीं। फिर भी बाबूज का यों जरा-सी चीज के लिए तरसते रहना उन्हें अपार कष्ट पहुंचाता है।

इसीलिए आज उन्होंने मुंह अंधेरे उठ कर दाल भिगो दी थी। बहूरानी के क्ल में जाने के बाद मैदा गूंधकर रख दिया थ और दाल पीसने बैठ गयी थीं। वे सारं सामग्री तैयार रखना चाहती थीं, जिस प्रोग्राम में हेरफेर की गुंजाइश न रहे।

घड़ी में साढ़े चार बजे रामलाल तथ बहूरानी ने साथ ही रसोई में प्रवेश किया।

"ये क्या हो रहा है माताजी ?" रामलाल ने सिल-लोढ़े का चार्ज लेते हु पूछा।

"थोड़ी कचोड़ी बना लेंगे आज जब देखो मरी डबलरोटी बच्चों के आं रख देते हो ! पता नहीं रोज-रोज कैसे खा लेते हैं बेचारे !" मांजी ने कहा।

रामलाल ने बहूरानी की तरफ देखा मान लो कहना चाहता हो कि माताजी ने किस खूबी से बात बनायी है। पर बहू रानी के गंभीर चेहरे को देखकर चुपचाप अपना काम करने लगा।

"आपने क्यों तकलीफ की ? रामलाल ग्राइंडर में पांच मिनट में पीस देता।"

बहू ने कहा । उसकी सहृदयता से मांजी का मन तरल हो उठा ।

"अरे करने को यहां है ही क्या ? लेकिन एकदम काम करना छोड़ दूंगी तो ये हाथ-पैर एकदम बेकार नहीं हो जाएंगे ।" कहते हुए वे रसोईघर से बाहर आ गयीं । मंदिर से कीर्तन की आवाज आ रही थी । दो चार बार बड़के ने पूछा भी था । पड़ोसवाले एस. पी. साहब की माताजी भी रोज मंदिर जाती हैं, पर मांजी ने मना कर दिया था । कह दिया था, "मेरे तो 'काशी-विश्वेश्वर' घर में ही हैं ।"

तब शर्म भी आयी थी । बहू क्या सोचती होगी कि बुढ़ापे में भी इन्हें घर का मोह नहीं छूटता । वे क्या करें ? सचमुच ही उनका घर से पांव नहीं निकल पाता ।

"मांजी ! कचौड़ियां गरम-गरम बन रही हैं । आप और बाबूजी खा लीजिए ना !" बहूरानी पास खड़ी होकर बड़े प्रेम से कह रही थी ।

"आ जाने दो बच्चों को । उनके साथ खा लूंगी । हां. अपने बाबूजी को तुम दे आओ ।" मांजी ने कहा ।

जब भी खाने की कोई चीज बाबूजी के कमरे में भेजनी होती तो वे बहूरानी को ही भेजतीं । बहू जब माथे पर पल्ला खींचकर बड़े अदब से ट्रे लेकर कमरे में जाती तो गर्व से उनका सीना फूल उठता । लगता कि इस वक्त हर कोई आकर देखे कि उनकी बहू कितनी सुशील है । मेजर की बेटी है, कलेक्टर की बीवी है, पर जरा-सा भी गरूर नहीं है ।

बाबूजी को भी अच्छा लगता है कि बहू उनकी सेवा कर रही है । उन्हें नौकरों के भरोसे नहीं छोड़ दिया गया है ।

शाम हुई और बच्चे किलकारियां मारते घर में दाखिल हुए । दोपहरी में

सोया हुआ घर एकाएक जाग पड़ा।

बहूरानी को बच्चों में उलझा देखकर मांजी बाबूजी के लिए फिर एक प्लेट भरकर ले गयीं। वे खा-पीकर तृप्त होकर लेटे थे।

"और नहीं लोगे ?"

"नहीं भाई। फिर रात में खांसी चैन नहीं लेने देगी। तुम क्या रसोईघर में थीं इतनी देर ?"

"मैं क्या करूंगी रसोईघर में ? मुझसे भला होता है ये काम अब ! वो तो आपकी लाड़ली बहूरानी है ना, जानती है कि ससुरजी को कचौड़ी पसंद हैं; इसलिए इतना सरंजाम किया है उसने।"

"अच्छा !" बाबूजी ने कहा। चेहरे पर एक तृप्ति का भाव था। मांजी शायद इसीके लिए दिन भर से खट रही थीं।"

वैसी-की-वैसी प्लेट लेकर जब लौटीं, तब तक लड़का भी आ चुका था।

"आज बड़ी देर कर दी बेटा ?"

"नहीं अम्मा ! रोज का ही तो समय है। आज क्या कचौड़ियों का प्रोग्राम है ? बाबूजी को ज्यादा तो नहीं...?"

"अरे कहां खाते हैं वे ! देख पूरी की पूरी प्लेट लौट आयी है। वे तो खुद ही बेचारे डर-डरकर रहते हैं।

"अम्मा, जरा एक बात थी। बाबूजी ने अलका को बुलाया है क्या ?"

"पता नहीं रे ! क्यों ?"

"देखो, एकदम इस तरह से मत बुला लिया करो। अभी राखी पर ही तो नीलिमा यहां से गयी है। तुम तो जानती हो, लड़कियों का बुलाना इतना सहज नहीं है। फिर बच्चों की परीक्षाओं के दिन हैं। घर में मेहमान हों तो सब-कुछ 'अपसेट' हो जाता है।"

"कब आ रही है वह ?" मांजी ने उत्सुकता और आशंका से भरकर पूछा।

"लिखा है, शायद अगले महीने आये। लेकिन बाबूजी से कहो, अब चुप कर जाएं। आएगी तो देखा जाएगा।" और उसने इधर-उधर देखकर एक पोस्टकार्ड मांजी के हाथों में रख दिया।

अपनी छोटीवाली बेटी का पोस्टकार्ड वह देर तक पढ़ती रहीं। थोड़ी ही देर में उनके आंसुओं में सारी लिखावट धुंधली होकर रह गयी। उफ, क्या जिंदगी है ! लड़कियों को मन भर के बुला भी नहीं सकते। इससे तो अपना गांववाला घर अच्छा था। जब जी चाहा, बुला लिया। किसी से पूछताछ करने की जरूरत नहीं। लेकिन बाबूजी बार-बार बीमार पड़ते रहे। बच्चे क्या हर बार छुट्टी लेकर देखने आ सकते थे ! बड़े बेटे ने कहा, "यहां आप लोग किसलिए पड़े हैं ? हम लोग आखिर किस दिन काम आएंगे ?"

आखिर आना ही पड़ा था। बड़ा-सा बंगला, मोटर, नौकर-चाकर।

बेटे-बहू ने सेवा-सुश्रूषा में कुछ भी उठाकर नहीं रखा था। दोनों लड़कियां और दोनों छोटे लड़के भी जब तब मिलने आ जाते हैं। सारा खर्च चुपचाप उठाते हैं

दोनों, पर बड़े बेटे का भी कहना ठीक है—लड़कियों के बुलाने पर सौ खर्चे होते हैं। दोनों अपनी-अपनी ससुराल में नाक ऊंची किये हुए हैं कि मेरा भाई कलेक्टर है। हर बार उनकी बिदाई पांच सौ से कम में नहीं पड़ती।

और मुसीबत यह कि बाबूजी से ये बातें कहना भी मुश्किल है। कहेंगे, '१५० रुपये पेंशन के पाता हूं। लड़कियों को अपनी हिम्मत पर बुलाता हूं।'

अब इनसे कौन कहे कि डेढ़ सौ में आजकल होता क्या है? सौ रुपये की दवाई ही आ जाती है। लड़का बेचारा कर रहा है इसलिए पता नहीं चलता।

कमरे में जाकर देखा, सोनू दादाजी को अखबार पढ़कर सुना रहा है। हर दो पंक्तियां पढ़ने के बाद खिड़की से बाहर झांकता हुआ लंबी उबासियां भर रहा है।

वे सोच ही रही थीं किस उपाय से सोनू को मुक्ति दिलायें कि एक चमचमाती हुई कार अहाते में मुड़ती दिखायी।

"ओ शुक्ला अंकल आये हैं! मीनू-टीनू आये हैं।" कहता हुआ ताली पीटता सोनू बाहर भाग गया।

बाबूजी ने भी अतिथि से मिलने की इच्छा व्यक्त की तो मांजी का मन घबरा गया। बैठक के कमरे में पहुंचते ही बाबूजी दूसरे आदमी बन जाते हैं। 'हमारे जमाने में' से शुरू करके पता नहीं क्या-क्या किस्से सुना डालते थे। कमरे के वातावरण में अजीब-सा तनाव भर जाता था।

इसीलिए उनके बैठकखाने में जाने के प्रस्ताव से घबराकर मांजी ने कहा, "सुनो! लक्ष्मीनारायण मंदिर में बड़ी अच्छी झांकी लग रही है आज। बड़का कह रहा था, आप लोग जाएं तो गाड़ी तैयार करवाऊं।"

"अरे वाह! तब तो जरूर जाएंगे भाई। हमारा सूट निकाल दो। अभी तैयार हुए जाते हैं।"

छुटकारे की सांस लेते हुए मांजी ने सूट निकाला। यह पुलोवर कनटोप और दस्तानों का सेट था, जो मंझली बहू ने बुनकर भेजा था। इसे निकालते हुए मांजी ने बड़ी सफाई से अलका की चिट्ठी संदूक में डाल दी। अब कभी भी बात छिड़ने पर वे कह सकती थीं कि आप चिट्ठी पढ़कर भूल गये हैं।

"वाह, क्या चीज बुनी है हमारी माया बिटिया ने! मजाल है जो जरा भी हवा लग जाये। माया ने तुम्हारे लिए भी तो जर्सी भेजी है न! वह कहां है? पहनो न? बढ़िया लगती है।"

मांजी ने घबराकर इधर-उधर देखा। बहूरानी का दूर-दूर तक कहीं पता नहीं था। गनीमत थी, नहीं तो मंझली बहू की इतनी तारीफ वह सह नहीं पाती।

"चलना नहीं है?" बाबूजी ने कहा तो उनकी तंद्रा टूटी।

शाम को बाबूजी के साथ उन्हें मंदिर जाना बड़ा अच्छा लगता था। ड्रायवर अदब से दरवाजा खोलकर खड़ा हो जाता

था, नौकर हाथ देकर दोनों को उतारता था। सारे दृश्य को दर्शनार्थी बड़े मनोयोग से देखते थे। आंखों में श्रद्धा और आदर लिये हुए वे जब हाथ जोड़ते तो मन गौरव से भर उठता।

हमेशा की तरह बाबूजी मंदिर में शास्त्रार्थ करने बैठ गये। मांजी बेचैनी से प्रतीक्षा करनेवाले ड्रायवर और सुखलाल को देखती रहीं। उन्हें लगा कि बाबूजी ज्यादा देर लगा रहे हैं। जरूर ड्रायवर उन्हें मन-ही-मन कोस रहा होगा।

दो-चार बार याद दिलाने के बाद बाबूजी उठे, अपने ही जैसे दो-तीन बुजुर्गों को उन्होंने गाड़ी में बैठने के लिए निमंत्रित किया। मांजी को फिर एक बार ड्रायवर की नाराजी का डर हुआ। सारे रास्ते वे उसे कुरेद-कुरेदकर उसके घर-परिवार के संबंध में पूछती रहीं।

बंगले में पांव रखते ही भुने हुए प्याज की गंध उनके नथुनों में भर गयी। उन्हें रामलाल पर क्रोध हो आया। कितनी बार कहा है, सोमवार को प्याज मत छौंका कर, तेरे बाबूजी खाते नहीं। लेकिन उसका क्या है! नौकर आदमी है। लेकिन इन लोगों से क्या एक दिन भी सब्र नहीं होता!

वे भागी-भागी रसोई में गयीं!

"सब्जी प्याज में छौंक दी रामलाल, अब उन्हें क्या परोसूंगी मैं?" उन्होंने रोष में कहा।

"हुजूर, बड़े साहब के लिए लौकी अलग बना रखी है। एक बार कहने से मैं भूलता थोड़े ही हूं।" रामलाल ने गर्वोक्ति से कहा। मांजी खुश हो गयीं।

रात बाबूजी की थाली उन्होंने कमरे ही में पहुंचा दी, "तुम यहीं खा लो।

उन लोगों ने तमाम चीजों में प्याज डाल रखा है।"

"उससे क्या फर्क पड़ता है।" बाबूजी ने निरीह भाव से कहा। उन्हें नाती-पौत्रों के साथ, लड़के के साथ बैठकर खाना अच्छा लगता था। पर मांजी हफ्ते में तीन-चार बार किसी न किसी बहाने उन्हें कमरे में ही खिला देती थीं। उन्हें मालूम था, बाबूजी के होने से बहू को बैठने में दिक्कत होती थी। बच्चे भी उतना खुलकर हंस-बोल नहीं पाते थे।

मांजी के सामने आखिर बाबूजी को झुकना ही पड़ा। उन्हें खाना खिलाने के बाद उन्होंने खुद खाया। फिर बाबूजी को टॉनिक, टॉनिक के बाद गोली और गोली के साथ दूध दिया। फिर उनका बिस्तर ठीक किया। दिन भर की मुड़ी-तुड़ी चादर बदली। सिरहाने मफलर, कनटोप, बिस्तर के नीचे चप्पलें रखीं। स्टूल पर थर्मस में गरम पानी, खांसी दबाने के लिए प्लेट में मुलहठी, लौंग और मिश्री के टुकड़े रखे। उन्हें बिस्तर पर लिटाने के बाद ही उन्हें चैन मिला।

और फिर एकाएक उन्हें लगा कि वे बहुत थक गयी हैं। सुबह से जैसे पांवों में भौंरी बांधकर काम करती रही हैं। अब जाकर याद आता है कि वे उम्र की बासठ सीढ़ियां पार कर चुकी हैं। हमेशा जैसी मेहनत उनके बस की नहीं रही।

बड़ा लड़का रोज की तरह जब कमरे में आया, तब वह पांवों पर आयोडेक्स मल रही थीं।

"लाओ मैं मल दूं," उसने हाथ से शीशी छीनते हुए कहा, "क्यों दिनभर हाय-हाय करती रहती हो। कितनी बार कहा है कि बस बैठकर हुक्म किया करो। देखो, बहू कुछ करती भी है या नहीं।"

"कहां करती हूं रे कुछ!" उन्होंने कहा। पर उन्हें अच्छा लग रहा था। उनके थके शरीर को उसके बलिष्ठ हाथों का आधार बड़ा अच्छा लग रहा था।

"सुबह आठ बजे से पहले उठना नहीं।" कहकर जब वह चला गया था तो उन्हें बड़ा अच्छा लग रहा था। अपने भाग्य पर उन्हें ईर्ष्या हो आयी। कभी सोचा भी नहीं था, इतनी बड़ी गृहस्थी, इतनी आसानी से पार हो गयी। तीनों लड़के पढ़-लिख गये, ऊंचे ओहदों पर पहुंच गये। लड़कियां खाते-पीते घरों में चली गयीं। बहुएं भी आयीं तो सुंदर, सुशील। कभी किसी ने लौटकर जवाब तक नहीं दिया। आदमी को और क्या चाहिए।

"बस, भोलेनाथ! अब इस भरे दरबार में से मुझे हाथों-हाथ उठा लो। यही प्रार्थना है।" उन्होंने दोनों हाथ माथे से टेककर कहा।

लेकिन उनकी बंद आंखों के सामने असहाय एकाकी बाबूजी की मूर्ति नाच उठी और उन्हें लगा—बुलावा आ ही गया तो क्या वे निश्चित मन से जा सकेंगी।

—१०५|१२, दक्षिण तात्या टोपे नगर,
भोपाल

# हंसने का मौसम

सरकस में महिला रिंगमास्टर ने मुंह में चीनी का क्यूब रखा और एक खूंख्वार शेर को इशारे से बुलाया। शेर चुपचाप आया और क्यूब निकालकर खा गया। पर एक आदमी चिल्लाकर बोला, "यह तो कोई भी कर सकता है !"

"आप कर सकते हैं ?" रिंगमास्टर भवों पर बल डालकर पूछ बैठी।

"क्यों नहीं ? मैं भी इतनी ही सफाई से यह काम कर सकता हूं जितनी सफाई से यह शेर !"

★

एक रेस्तरां के बाहर लिखा हुआ था—'यहां सब भाषाएं बोली जाती हैं।' एक विदेशी उसमें घुसा और मैनेजर से कहने लगा, "आपको तो काफी भाषा-विज्ञ अपने यहां रखने पड़े होंगे ?"

"एक भी नहीं !"

"तो ये सारी भाषाएं कौन बोलता है ?"

"ग्राहक ।"

★

एक चिंतित अपराधी ने अपने वकील से प्रश्न किया, "क्या आपको विश्वास है कि मेरे प्रति न्याय किया जाएगा ?"

"शायद नहीं हो सकेगा, जूरी में दो व्यक्ति ऐसे हैं जो मृत्यु-दंड के विरोधी हैं।"

★

आगंतुक ने होटल के मैनेजर से पूछा, "क्यों साहब, आपके होटल में गरम और ठंडे पानी का प्रबंध है ?"

"हां, जाड़ें में ठंडे और गरमी में गरम पानी का प्रबंध है, " मैनेजर ने कहा।

★

एक संस्था के अध्यक्ष वार्षिक रिपोर्ट पढ़कर सुना रहे थे, "प्रायः संस्थाओं में यह होता है कि कुछ सदस्य काम नहीं करते, और अधिकांश सदस्य काम करते हैं, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि हमारी संस्था में इसका ठीक उलटा है।"

★

पत्नी : पहले तो तुम अपनी थाली में से भी निकाल-निकालकर सब्जियां मुझे दे देते थे, पर अब ऐसा नहीं करते ! जरूर तुम्हारा प्यार कम हो गया है।

पति : सही बात तो यह है कि तुम अब पहले से खाना अच्छा बनाती हो।

डॉक्टर : ( दूसरे डॉक्टर से ) आप हर रोगी से यह क्यों पूछते हैं कि आज तुमने क्या खाया ?
दूसरा : इससे मैं उसकी आर्थिक स्थिति का अंदाजा लगा लेता हूं।

★

प्रेमिका : जब तक तुम कोई साहसिक काम नहीं करोगे, मैं तुमसे शादी नहीं करूंगी।
प्रेमी : महंगाई के इस जमाने में तुम्हारे सामने शादी का प्रस्ताव रखना ही क्या कम साहसिक काम है ?

★

डॉक्टर ने अपनी रोती हुई पत्नी से कहा, रोने का मुझ पर असर नहीं पड़ेगा। आंसुओं में रखा ही क्या है—३० प्रतिशत लाइसोजाइज्म, ४० प्रतिशत ग्लोब्यूमींस और ३० प्रतिशत अल्यूमींस, बस !

★

"आपका बेटा दांतों का डॉक्टर कैसे बन गया ? आप तो कहते थे कि वह आंखों का डॉक्टर बनेगा।"

"उसने सोचा कि दांतों की डॉक्टरी में ज्यादा कमाई है क्योंकि दांत ३२ होते हैं और आंखें केवल दो।"

★

सिपाही : तुम कार इतनी तेज क्यों चला रहे थे ?
ड्राइवर : कार के ब्रेक खराब हो गये हैं। मैंने सोचा कि कोई दुर्घटना होने से पहले ही घर पहुंच जाऊं।

# हंसिकाएं

## अधिकार

विद्रोही जनता को
आश्वस्त करते हुए
नेताजी बोले—
'नये विधान में हम कुछ ऐसी
व्यवस्था करेंगे, कि
प्रजातंत्र के सर्वाधिकार
हमारे पास ही सुरक्षित रहेंगे'

## बीवी और बंदरिया

वह फरमाते हैं
कि जब से बीवी मैके गयी
रोज बंदरिया को सैर पर
ले जाते हैं

## क्षमा-याचना के साथ

## प्रभाकर माचवे के लिए

जी !
मेरे कारखाने का ट्रेडमार्क
खरगोश के सींग
तेल की पकौड़ियां
और दूकान एक
'साहित्य' की—

## नेमीचंद्र जैन के लिए

तार सप्तक के पानी को
काई ने सोखा
अब शेष—
निस्तेज दीवारें नाटकों की !

• सरोजनी प्रीतम

● डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

# मानस : मन की कथा

ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जिन्हें तुलसीकृत रामायण—रामचरितमानस—की कथा मालूम न हो, याद न हो। बहुधा सुनकर और प्रायः मानस पढ़कर यह कथा मन प्राणों में जाकर सहज ही बैठ जाती है। फिर भी बार-बार हम इसकी कथा क्यों सुनना चाहते हैं? इसमें ऐसा क्या है, जिसके बारे में लगातार मन यह कहता है कि यह मात्र घटनाओं, अनुक्रमों, कार्यों से बना हुआ कोई कथानक नहीं है, बल्कि लगता है, इसकी कथा में जो विविध कांडों से होती हुई आगे बढ़ती है, उनके ( कांडों के ) बीच कुछ ऐसा छूट जाता है, जिसे पाने, जानने, स्पर्श मात्र करने के लिए मन तड़प उठता है, भूखा रह जाता है और मन मृग हो जाता है।

तभी तो शायद तुलसी ने कहा है—जिसने केवल इसकी कथा से संतोष पा लिया, उसने मानस का मर्म कहां जाना? वह आनंद कहां मिला, जो शब्दातीत है, अभिव्यक्ति से परे है, जो गूंगे का गुड़ है! वही मर्म ऐसा है, जहां शब्द और अर्थ एकाकार हो जाते हैं।

दरअसल तुलसी के रामचरितमानस की कथा मानव-मन और प्राणों का आख्यान है। उसके अंतर्जगत और बाह्य जगत—अर्थ और शब्द की पावन कथा।

मानस में एक रूपक द्वारा तुलसी ने मानसकथा का संकेत किया है; जिसके अनुसार मानसकथा एक सरोवर है—एक विचित्र सरोवर, गुप्त रहस्यमय चमत्कारपूर्ण सरोवर, जिसको हृदय के नेत्रों से देखकर और जिसमें गोता, डुबकी लगाकर कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी है, हृदय आनंद से भर गया है।

मानस की कथा सात कांडों में कही गयी है—बाल कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड, किष्किधा कांड, सुंदर कांड, लंका कांड और उत्तर कांड। ये प्रत्येक कथाकांड जीवन के एक-एक चरण हैं। इस चरण का प्रारंभ एक अत्यंत शांत और सुंदर बिंदु से होता है—मतलब बाल कांड में रामजन्म से—सत्य के प्रादुर्भाव से। धर्महानि, अधर्मबुद्धि—इन्हीं ही मिटाने के लिए राम का जन्म हुआ है। एक ओर राक्षसी सेना है, जो ऋषियों को तपस्या, यज्ञ नहीं करने देती। दूसरी ओर है रावण—समस्त आसुरी प्रवृत्तियों का प्रतीक, जिसके अत्याचारों से पृथ्वी तक कांप जाती है और देवता भी निरुपाय हो जाते हैं। तीसरी ओर है, शापित

अहल्या--पत्थर बनी हुई। विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम में राम-लक्ष्मण जाते हैं, ताड़कावध करते हैं। रास्ते में शिला-रूप में पड़ी अहिल्या का उद्धार करते हैं—जड़ को चेतन बनाते हैं और इस जययात्रा का सुंदरतम शिखर है धनुषयज्ञ, सीता-स्वयंवर। इस शिखर पर परशुराम का संदेह, अहंकार मिटता है।

हर ले जाता है—क्यों? जटायु भी उन्हें नहीं बचा पाता--क्यों? सीता स्वयं क्यों रावण के उस कपट का शिकार बनती हैं? इसीलिए कि सत्य (राम) स्वयं मोह (मृग) के जाल में आ गया। यह लीला-मात्र है क्या? नहीं, सत्य का दूसरा पक्ष है असत्य, जैसे प्रकाश का दूसरा छोर है अंधकार—इसी दूसरे पक्ष के साक्षात्कार

**तुलसी के आराध्य: राम लक्ष्मण और सीता (तुलसी मानस मंदिर के सौजन्य से)**

अयोध्या कांड में वही मानव संदेह, मोहमाया का दूसरा चरण शुरू होता है और राम का वनवास होता है। मोह के सामने सत्य का वनवास। पर यह वनवास भूमिका है उस सत्य, मर्यादा के यज्ञ की, जहां सती–जैसी देवी तक के मोह, संशय का नाश होता है। सीता को रावण

और संघर्ष से ही तो कर्म जन्म लेता है वरना सत्य अपने आप में निर्गुण है, सूक्ष्म है, राग-विराग से परे है। जो परे है, उसी को सामने लाना, जगत के सामने उजागर करना, यही तो महिमा है सत्पुरुष की।

मानस की कथा जब अरण्य कांड से आगे किष्किंधा और सुंदर कांड में प्रवेश

करती है और निराशा, अंधकार की शक्तियां, सत्य, प्रेम और प्रकाश की शक्तियों से लोहा लेने आगे बढ़ती हैं तभी तो उस संघर्ष, अंतर्द्वन्द्व में से निकलती है शबरी की भक्ति, परमनिष्ठा। उसी में से निकलकर सामने आते हैं—हनुमान, अंगद, सुग्रीव, मैनाक, विभीषण !

सुंदरकांड से मानसकथा जब लंका कांड में आगे बढ़ती है तो ऐसा लगता है, जैसे राम के तरकश के तीर इस कांड में सबसे गंभीर घाव करते हैं। लंकाकांड मानस का सबसे ज्यादा अंधकारमय, विषाद-मय, दुःस्वप्नमय परिच्छेद है—माया, छल, कपट, हिंसा, अहंकार, कुतर्क से परिपूर्ण। पशुता और अहंकार के दानव अपने अंधे संसार में प्रेम, मैत्री के मूल्यों पर अट्ट-हास करते हैं।

पर अंत में विजय सत्य की होती है। राम सीता सहित, वनवास की पूरी अवधि संपूर्ण करके अयोध्या वापस लौटते हैं। इस कथा सूत्र में मणिदीप की तरह भरत चरितकथा एक ऐसा प्रसंग है, जहां तुलसी ने मानवता का सबसे बड़ा संदेश दिया है—निष्ठा का, श्रेष्ठ मानवीय चरित्र और वैराग्य का—ऐसा वैराग्य जो प्रेम और कर्म के भीतर से चमकता है। भरत वही हैं, जो अंततः मनुष्य होना चाहता है। राम वही हैं, जिन्हें मनुष्य अपने माथे पर धारण किये रहना चाहता है। हनु-मान वही हैं, जिन्हें मनुष्य हमेशा स्मरण करना चाहता है। सीता वही हैं, जिन्हें मनुष्य प्रणाम करना चाहता है। इस तरह मनुष्य की सारी श्रेष्ठ वृत्तियों, संस्कारों को मानस में विश्रामधाम प्राप्त होता है। जो इस कथा में छूट जाता है, जो शून्य है कांडों के बीच, वही है वह अदृश्य सेतु, जिसकी मनुष्य को स्वयं अपने भीतर रचना करनी होती है। वही सेतु उसकी अपनी उपलब्धि है—शेष कथा है—साधन है, सहारा है, मन की लता को ऊपर चढ़ा-कर बढ़ने, फूलने, फलने का।

उत्तरकांड में, मानस के अंत में, रामराज्य वर्णन में तुलसी ने चराचर प्रकृति के सर्वोन्मुख विकास और राम के ईश्वरत्व का निरूपण करके उनमें दिव्य-भाव के आयोजन की प्रतिष्ठा की है। इसके बाद मानस का उपसंहार है—कलि-युग वर्णन और कागभुशुंडि संवाद। एक अंध, एक शुभ्र। एक जड़, एक सूक्ष्म। एक भौतिक, एक अपार्थिव।

पर सार तत्त्व क्या है इस मानस कथा का ? यह है मानव आत्मा की ईश्व-रीय कृपा के नवप्रभात में अंकुरित और पुष्पित होने की कथा। तभी यह कथा पारंपरिक ढंग से नहीं कही गयी है, ना ही यह भौतिक, पार्थिव स्तर पर कही गयी है। यहां तो जैसे पार्थिव, भौतिक स्तर पर कुछ विशेष घटा ही नहीं है। यह कथा घटी है उन्मुक्त, दिव्य प्रेमियों के अंतरतल में—शिव के हृदय में, याज्ञ-वल्क्य के प्राणों में, कागभुशुंडि के अंतस में और तुलसी के मानस में। ●

• डॉ. इन्दुजा अवस्थी

डॉ. इंदुजा अवस्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी की प्राध्यापिका हैं। उन्होंने स्वयं काशी जाकर तुलसी-केंद्रों से यह सामग्री परिश्रमपूर्वक एकत्रित की है।

मुकुति जनम महि जानि ज्ञानखानि अघहानिकर।
जहं बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न ?
(दोहावली)

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी ।
समनि सोक संताप पाप रुज सकल सुमंगल रासी।
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कला सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी ।।
(विनयपत्रिका)

तुलसीदास की रचनाओं में काशी का उल्लेख बार-बार ऐसी ही प्रशंसा के साथ किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवपुरी काशी का तुलसी के हृदय के इस प्रकार निकट होना उनकी अनूठी समन्वयवादी चेतना का प्रभाव है, जिसका

काशी में गोपाल मंदिर के पीछे की वह कोठरी जहां तुलसीदास ने विनयपत्रिका की रचना की

प्रमाण बार-बार हमें उनकी कृतियों में मिलता है—

**शिव द्रोही मम दास कहावा।**
**सो नर सपनेहुं मोहिं न पावा ।।**
**संकरप्रिय मम द्रोही सिवद्रोही मम दास ।**
**ते नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महं बास ।।**

(रामचरितमानस)

तुलसीदास के अनुसार सद्गति का उपाय है हरपुरी में निवास करके राम का जप करना ।

**अयोध्या में 'रामचरितमानस'**

तुलसीदास की प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती अतः उनके जीवन के संबंध में कुछ अंतःसाक्ष्य और कुछ बहिर्साक्ष्य को मिलाकर अनुमान किये गये हैं। उन्हीं के आधार पर हम यह मानते हैं कि तुलसी का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ था (**भलि भारतभूमि भले कुल जन्म** ) और माता-पिता ने जन्म के तुरंत बाद ही उन्हें त्याग दिया था (**मात-पिता जग ज्याइ तज्यौ**) । उनके जन्मस्थान का निश्चय नहीं किया जा सका है, परंतु यह जान पड़ता है कि उनका बचपन बड़े कष्टों में बीता (**बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन**) परंतु तभी किसी समय उन्हें कृपालु गुरु का साथ मिला (**कृपासिंधु नररूप हरि**), जिन्होंने बार-बार रामकथा सुनाकर (**तदपि कही गुरु बारहिं बारा**) उन्हें राम-उन्मुख कर दिया। यह निश्चित है कि प्रारंभिक वर्षों में वे अयोध्या में र और वहीं पर 'रामचरितमानस' लिख प्रारंभ हुआ । ( **अवधपुरी यह चरि प्रकासा**) । अयोध्या में उन दिनों सखं संप्रदाय की भक्ति-पद्धति प्रचलित चुकी थी। संभव है इसी से मर्यादावा तुलसी का मन वहां अधिक दिन न र हो और उन्हें वहां अपनत्व और समाद प्राप्त न हुआ हो।

**काशी का आकर्ष**

लगता है उसके बाद ही पंडितों औ विचारकों का आकर्षण उन्हें काशी आया। काशी में उनका अधिकांश जीव सुख-समृद्धि में बीता। इस बात का संके 'कवितावली' और 'विनयपत्रिका' में अने स्थलों पर मिलता है (**छाछी को ललात ते राम नाम के प्रसाद, खात खुनसात सों दूध की मलाई हैं**, या **रामनाम क प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप तुलसी से ज मनियत महामुनी सो**।) इसी प्रकार राम भक्ति के परम प्रसाद के रूप में अपने महत्त्व का उल्लेख तुलसी ने अनेक स्थलो पर किया है। जिस नगरी में दर-दर भट कने वाले अनाथ 'रामबोला' को महामुनि का आदर प्राप्त हुआ उसके प्रति उनक प्रेम स्वाभाविक है।

'कवितावली' में उस समय काशी में फैली हुई महामारी का वर्णन करते समय जिस तरह तुलसी की लेखनी दुःख से बोझिल हो उठी है उससे उनका काशी प्रेम और काशी की दशा से उनका अंत

रंग परिचय प्रकट होता है--

**संकर सहर सर, नरनारि बारिचर,**
**विकल सकल महामारी मांजा भई है।**
**उछरत उतरात हहरात मरि जात,**
**भभरि भगत जलथल मीचु मई है।**

इसका उन्हें बहुत दुःख है--

**बिरचि बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की,**
**प्रानहु ते प्यारी पुरी केसव कृपाल की।।**

**हाहा करै तुलसी दयानिधान राम। ऐसी कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की**

## 'हनुमान फाटक'--कहां है?

काशी में एक पुरानी मान्यता चली आ रही है, जिसके अनुसार तुलसी का काशी में पहला निवास 'हनुमान फाटक' नामक स्थान पर हुआ। यह भी कहा जाता है कि तुलसी उन दिनों मानस लिख रहे थे और उसका कुछ अंश इस स्थान पर भी लिखा गया। 'हनुमान फाटक' स्थित मंदिर नया है और उसमें प्राचीनता की कोई झलक नहीं है, परंतु वहां के पुजारी का कहना है कि तुलसी द्वारा स्थापित प्राचीन मंदिर जब गिरने लगा तो उसका जीर्णोद्धार करके यह नया मंदिर बनाया गया है। अब जिस कक्ष में हनुमानजी की मूर्ति है उसके पीछे की कोठरी में तुलसी रहते थे। तुलसी की हनुमान-भक्ति सर्वविदित है और जहां-जहां वे रहे उन्होंने हनुमान-मंदिर की स्थापना की, अथवा पहले से प्रतिष्ठित मंदिर का आश्रय लिया। अतः 'हनुमान फाटक' की भी तुलसी द्वारा स्थापना असंभव नहीं है। वैसे भी प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में सैकड़ों वर्षों से चली आयी अनुश्रुतियों को मान्यता देनी पड़ती है।

## 'विनय-पत्रिका' की रचना-भूमि

तुलसीदास कुछ दिन वृंदावन के कृष्ण-भक्तों के प्राचीन गोपाल-मंदिर में भी रहे थे। कथा प्रचलित है कि काशी आने पर तुलसी की रामभक्ति और उनके आचार्यत्व दोनों का ही शिवभक्तों ने तीखा विरोध किया था (**साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा, का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को**)। यहां तक कि उनके जीवन को भी खतरा था और भजन-पूजन की सुविधा तो नहीं ही रहती थी। गोपाल-मंदिर काशी के प्राचीन मंदिरों

**अस्सीघाट में पीपल का पेड़। कहा जाता है यहीं तुलसीदास को प्रेत मिला था।**
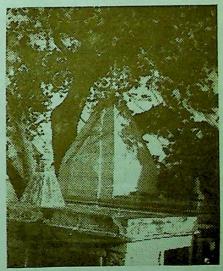
में से है और उसमें वृंदावन की पद्धति के अनुसार राधामाधव की उपासना होती है। वहां के गोसाइयों ने तुलसी को वैष्णव-भक्त के रूप में अपनाया और शैवों के प्रबल आतंक के विरुद्ध उन्हें आश्रय दिया।

तुलसीदास का कृष्ण-मंदिर में निवास मानो सभी देवताओं में राम को देख पाने की क्षमता की अभिव्यक्ति थी। हो सकता है 'कृष्ण-गीतावली' लिखने की प्रेरणा इसी मंदिर में रहते समय मिली हो। यह तो निश्चयपूर्वक ज्ञात है कि इसी गोपाल-मंदिर के पीछे वाली एक कोठरी में 'विनय-पत्रिका' लिखी गयी। लगभग १०० वर्ष पहले इस संबंध में प्रचलित अनुश्रुतियों के आधार पर शोध करके तत्कालीन कलेक्टर ने गोपाल-मंदिर की उस कोठरी पर अंगरेजी में लिखवा दिया था—'विनय पत्रिका की रचना इस कक्ष में हुई'। तब से यह कोठरी काशी में आये तुलसीभक्तों के लिए एक अनिवार्य तीर्थ बन गयी है।

**अस्सीघाट—तुलसी का रचना-केंद्र**

काशी में गोस्वामीजी का सबसे अधिक समय अस्सीघाट (अब तुलसीघाट के नाम से विख्यात) स्थित एक विशाल भवन 'तुलसी-मंदिर' अथवा 'गोस्वामी तुलसी-दास का अखाड़ा' में बीता। इसी स्थान पर उनकी मृत्यु हुई—इस संबंध में एक दोहा प्रचलित है—

**संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।**
**श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर।।**

जीवन के अंतिम वर्षों में तुलसीदास यहीं रहे। बहुत दिनों तक तुलसी-जीवनी के अन्वेषकों ने इसको विशेष महत्त्व नहीं दिया और यह मानते रहे कि तुलसीदास के साथ गोस्वामी का उल्लेख मात्र आदर-सूचक है; परंतु गोस्वामी वैष्णव मठाधीशों की सर्व-प्रचलित उपाधि है। तुलसीदास ने स्वयं कहा है—

**'तुलसी गुसाईं भयो भोंडे दिन भूलि गयो'**

इस अखाड़े का महंत बनने पर तुलसी-दास को विधिवत गोस्वामी की उपाधि मिली होगी।

**अस्सीघाट में**

तुलसी-मंदिर के वर्तमान महंत श्री वीरभद्र मिश्र से बातचीत करने पर पता चला कि २०० वर्ष पहले, १७७५ ई. में काशी के राजा चेतसिंह द्वारा जारी किये गये एक फरमान में गोसाईं तुलाराम नाम से तुलसी-मंदिर के महंत का उल्लेख किया गया है। १७४० ई. की लिखी हुई 'न्याय-सिद्धांत मंजरी' की एक हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका में '**लोलार्के तुलसीदास मठे**' लिखा है। डेढ़ सौ वर्ष पहले 'बनारस गजेटियर' में भी इस अखाड़े का उल्लेख है। इस तरह इस अखाड़े की प्राचीनता और जनश्रुतियों के आधार पर इसे तुलसी-दास का अंतिम निवास-स्थल मानना होगा। उनकी मृत्यु के संबंध में जो दोहा प्रचलित है उससे भी तुलसी का अस्सीघाट पर रहना प्रमाणित होता है, फिर अपने जीवन के अंतिम वर्षों में जिस प्रतिष्ठा

और संपन्नता का अनुभव उन्होंने किया (रामनाम के प्रभाउ पाउ महिमाप्रताप) वह भी इस प्रकार के किसी बड़े अधिकार को पाने का ही द्योतक है।

अखाड़ा नाम का इतिहास भी मनोरंजक है। मठ के अंतर्गत एक व्यायाम-शाला भी है जहां विद्यार्थियों को मल्ल-विद्या सिखायी जाती है। वीरभद्रजी ने बताया कि उनके पिता के समय तक महंत ही विद्यार्थियों को मल्लविद्या सिखाते थे। दल बनाकर साथ रहने और शारीरिक क्षमता से अपने को सुरक्षित बनाने की वृत्ति के कारण वैष्णव मठों को अखाड़ा कहा जाता होगा। वृंदावन और अयोध्या में ऐसे अनेक अखाड़े हैं। यह विशेषता भक्तिकाल में इन संप्रदायों के जन्म के समय की विशेष राजनीतिक परिस्थिति के कारण होगी।

**टोडरमल और तुलसीदास**

मठ की भूमि के बारे में वीरभद्रजी ने बताया कि यह भूमि टोडरमल की थी। टोडरमल तुलसीदास के बड़े प्रशंसक थे। एक बार गंगा बहुत बढ़ी थीं। बाढ़ उतरने पर अस्सी-घाट के पास की यह भूमि निकल आयी थी। इसमें टोडरमल ने तुलसीदास के कहने पर तिलहन बुवाया था, जिससे उन्हें बहुत लाभ हुआ। तब से उन्होंने यह भूमि तुलसीदास के नाम पर कर दी और उस पर तुलसी-मठ की स्थापना करके उसके महंत-पद पर तुलसीदास की प्रतिष्ठा की। टोडरमल के वर्तमान वंशज श्री आनंदबहादुर सिंह आज भी तुलसी-मठ

**तुलसी मंदिर के वर्तमान महंत वीरभद्र मिश्र, जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, इंजीनियरिंग विभाग में रीडर भी हैं। १४ वर्ष की उम्र से मिश्र जी तुलसी-मंदिर के महंत हैं।**

के कार्यक्रमों से संबंधित रहते हैं। उन्होंने भी इस कथन की पुष्टि की।

**'संकटमोचन' की कथा**

तुलसी-मठ से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित संकटमोचन-मंदिर की भूमि को प्राचीन पत्रों में 'बाग गोसाईं तुलसीदास जी' कहा जाता है—परंतु पता नहीं चलता कि यह भूमि उन्हें किसने दी। संकटमोचन-मंदिर तुलसीदास द्वारा स्थापित है, इस संबंध में एक कथा प्रचलित है।

इस कथा का उल्लेख 'इंडियन ऐंटीक्वेरी' के अप्रैल, १८९३ के अंक में जार्ज ग्रियर्सन ने भी किया है। तुलसीदास नित्य संध्या-वंदन के लिए अस्सी के तट पर जाते थे। वहीं एक पीपल के पेड़ पर स्थित प्रेत से उनकी भेंट हुई, जिसने उन्हें बताया कि हनुमानघाट पर आयोजित रामायण की कथा सुनने जो रोगी-सा वृद्ध प्रतिदिन आता है, वह हनुमानजी हैं। तुलसीदास ने दूसरे दिन कथा के तुरंत बाद जाते हुए उस वृद्ध के चरण पकड़े। तब

हनुमानजी ने दर्शन देकर उन्हें आशीर्वाद दिया और रामदर्शन के लिए चित्रकूट जाने को कहा, जहां रामघाट पर तुलसीदास को राम के दर्शन हुए। आगे चलकर उसी स्थल पर तुलसीदास ने हनुमान-मंदिर बनाया और संकटमोचन का नाम दिया। प्रेत की इस कथा का मूल उस समय सगुण रामभक्ति के साथ हनुमान की भक्ति के अनिवार्य संबंध पर जोर देना रहा होगा। रामभक्ति और राम के दर्शन के लिए हनुमान एक माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किये गये हैं। शायद तभी काशी में तुलसीदास ने राम के नहीं, हनुमान के मंदिरों की स्थापना की। तुलसीदास ने कहा भी है—**'राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत'** और **'संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटै मकरी के से जाले'** कहकर हनुमान की प्रशंसा की है।

तुलसी-मंदिर के चारों ओर तुलसीदास ने हनुमान की चार मूर्तियों को स्थापित किया था। प्रमुख मूर्ति गुफा वाले हनुमानजी कहलाते हैं, उनकी प्रतिमा बालरूप की है। मुझे इस संबंध में एक तथ्य बड़ा रोचक प्रतीत हुआ। अस्सीघाट पर तुलसी प्रवर्तित रामलीला में अशोकवाटिका प्रसंग में रामदूत हनुमान सीता को पहले बाल-रूप में दिखायी देते हैं और उनके संदेह प्रकट करने पर—

**हे सुत कपि सब तुम्हहि समाना।**
**जातुधान अतिभट बलवाना ॥**
**मोरे हृदय परम संदेहा।**

इस संवाद के बीच में क्षण-भर के लिए प्रकाश हटा लिया जाता है और मंच पर विशालकाय हनुमानजी सीता के सम्मुख आ जाते हैं। यह बदलना इतनी तेजी से होता है कि लगता है वे बालरूप हनुमान ही अचानक बड़े हो गये हैं। पाठ आगे चलता है—

**सुनि कपि प्रकट कीन्हि निज देहा ॥**
**कनक भूधराकार सरीरा।**
**समर भयंकर अति बलबीरा ॥**

दो हनुमानों को लीला के लिए सजे देखकर मुझे ऐसा लगा मानो यह तुलसी-मंदिर में स्थापित 'बाल-हनुमान' और संकटमोचन के 'विशाल हनुमान' के प्रतिरूप हों, क्योंकि अस्सी की इस लीला के अतिरिक्त देश के अन्य क्षेत्र की रामलीला में दो हनुमान बनाने की परंपरा नहीं है।

### तुलसी की नाव और पादुकाएं

तुलसी-मंदिर के एक कक्ष में रामचरितमानस संपूर्ण हुआ और दोहावली, गीतावली और कवितावली का प्रणयन भी इसी स्थान पर हुआ। मंदिर में गोस्वामीजी की पादुकाएं, उनका एक प्राचीन चित्र—जिसको तुलसी-मंदिर वाले उनका प्रामाणिक चित्र मानते हैं—और उनके द्वारा प्रयुक्त नौका का एक खंड सुरक्षित है। आज भी इन सबके दर्शन के लिए वहां दर्शकों की जो अपार भीड़ एकत्र होती है उससे पता चलता है कि काशी की जनता को इस मठ के तुलसीदास से संबंधित होने में कोई संदेह नहीं है। संकटमोचन के

मंदिर पर भी उन्हें अटूट आस्था है।

**तुलसीदास के अंतिम दिन**

तुलसीदास जीवन के अंतिम वर्षों में वातरोग-ग्रस्त हुए थे। उन्हें तीव्र बाहु-पीड़ा थी। कवितावली और हनुमान-बाहुक में इस पीड़ा का तथा काशी में फैली महामारी का विस्तृत वर्णन है। कदाचित इन्हीं रोगों से पीड़ित होकर उनका शरीरांत हुआ।

मठ में तुलसीदास की पुण्य तिथि इसी दिन मनायी जाती है। तुलसी-मंदिर में वर्ष भर अनेक रामोत्सव मनाये जाते हैं। यह मान्यता है कि इन उत्सवों का प्रवर्तन तुलसीदास ने स्वत: किया था। चैत्र में रामजन्म का उत्सव मनाया जाता है। मार्गशीर्ष में रामविवाह की तिथि पर भी संगीत और रामायण के पाठ का आयोजन तथा युगलस्वरूप की झांकी सजती है।

अखाड़े के राम-उत्सवों के साथ-साथ कार्तिक में कृष्णलीला का आयोजन भी होता है। वीरभद्रजी ने बताया कि पहले लीला के साथ श्रीमद्भागवत का पाठ होता था, अब ब्रजविलास पर आधारित है। कृष्णलीला की नागनथैया-लीला बड़ी प्रसिद्ध है। यह अस्सीघाट पर होती है।

अखाड़े का प्रमुख उत्सव है आश्विन मास में दशहरे के दिनों में आयोजित रामलीला। कहा जाता है कि काशी में बहुत पहले से वाल्मीकि रामायण के आधार पर रामलीला होती आ रही थी, परंतु तुलसीदास ने रामलीला के आयोजन को

हनुमान मंदिर : महाकवि तुलसीदास का काशी में प्रथम निवास-स्थल

विस्तार और व्यापकता प्रदान की।

१४ तथा १५वीं शताब्दियों में भारत के सभी धार्मिक नाट्यरूपों में राम-कथा का प्रस्तुतीकरण होने लगा था। तुलसी को अपनी देशव्यापी यात्राओं में इन प्रस्तुतीकरणों की लोकप्रियता और रामकथा की नाटकीय क्षमता का परिचय मिला होगा, तभी उन्होंने रामभक्ति के प्रचार का सबसे सक्षम उपकरण समझकर रामचरितमानस के आधार पर रामलीला के प्रवर्त्तन की योजना बनायी होगी। ●
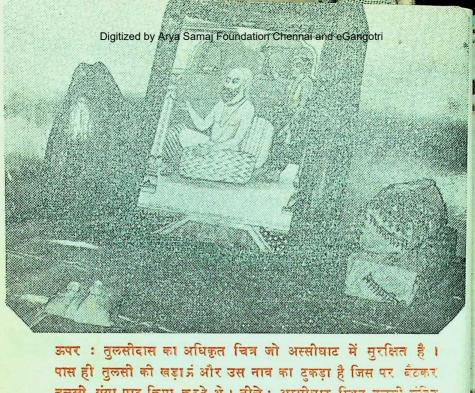
ऊपर : तुलसीदास का अधिकृत चित्र जो अस्सीघाट में सुरक्षित है। पास ही तुलसी की खड़ाऊं और उस नाव का टुकड़ा है जिस पर बैठकर तुलसी गंगा पार किया करते थे। नीचे : अस्सीघाट स्थित तुलसी मंदिर जिसमें तुलसी का अखाड़ा है यहीं बैठकर तुलसी ने मानस रचना की



छाया:
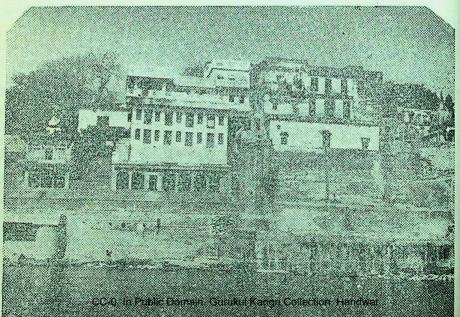
छाया : एम.एस अग्रवाल

- वाराणसी में तुलसी मानस मंदिर
- तुलसीदास रचित मानस की सोरोंवाली प्रतिलिपि का एक अंश

जोवन जानि तुहेसि पतंग मजुरसना प्रभु नाही करसि सदा सतसंग ८८॥ इति श्रीम
कलकलि कलुषविध्वसने विमलवैराग्यसंपादिनी षटसुजनसंवादे रामवनचरि:
मत्यतियो सोपान आरन्यकांड समाप्त॥३॥ श्री तुलसीदास गुरु की प्रथा में से [illegible]
सुत कृष्णदास सोरों छेत्र निवासी हेत लिखितं लछिमनदास कासीजी मध्ये
[illegible] सुके इति ॥

छाया:एम.एस.

## क्यों और क्यों नहीं ?

इस लेखमाला के अंतर्गत अब तक अमृतलाल नागर, पंत, अज्ञेय, बच्चन, यशपाल, धर्मवीर भारती, जैनेन्द्र एवं रेणु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दे चुके हैं, इस अंक में प्रस्तुत हैं— महादेवी वर्मा ।

# महादेवी वर्मा
## कविता एक रागात्मक मानसिक स्थिति

**उमा त्रिपाठी, नयी दिल्ली : 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक की काव्य-रचनाएं क्या किसी एक संबंध-सूत्र से जुड़ी हुई हैं ? यदि हां, तो किससे ?**

कवि के भावबोध के अनेक आयाम होते हैं, जो उसकी अनुभूति तथा बौद्धिक विकास के सम्मिलित परिणाम हैं। पुस्तकों के नाम संकेत मात्र होते हैं, जिनके मूल में कोई कविता विशेष या बोध विशेष रह सकता है, किंतु उनमें कवि की समग्र भाव-भूमि को समेटना संभव नहीं होता।

मेरे काव्य-संग्रहों के नामकरण कविताएं लिख चुकने के उपरांत हुए हैं, अतः संबंध-सूत्र कविताओं में व्यक्त जीवन-दृष्टि में प्राप्त हो सकेगा। न 'नीहार' में सब कुहराच्छन्न है, न 'दीपशिखा' में केवल रात है।

**शंकरलाल भांवरकर, रावनवाड़ा (छिंदवाड़ा) : आपके ही अनुसार आपकी सर्वोत्तम रचना कौन-सी है ?**

मुझे स्वयं यह ज्ञात नहीं। जिसको लिखने के उपरांत आत्मतोष चरमसीमा तक पहुंच जाएगा, उसी को अपनी सर्वोत्तम रचना कहना उचित होगा। ऐसी स्थिति अभी दूर जान पड़ती है।

**'क्या देखूं' कविता के माध्यम से आप क्या कहना चाहती हैं तथा इसको रचने का क्या अभिप्राय है ?**

कविता में ऐसी जिज्ञासा व्यक्त की गयी है जो मनोमंथन का परिणाम है।

प्रकृति अपने विविध रूपात्मक सौंदर्य में समृद्ध है और मानव महत्त्वपूर्ण चेतना का अधिकारी होने पर भी जीवन की विषमताओं का बंदी, अतः अकिंचन हो जाता है। एक ओर मन प्रसन्नता का अनुभव करता है, दूसरी ओर करुणाजनित वेदना का। कविता में दोनों स्थितियों का अंकन है। कविता किसी भाव की ही अभिव्यक्ति

होती है—कोई उपदेश या प्रवचन नहीं, जिसमें विषय पूर्व निश्चित होता है।

**उषारानी जैन, खेकड़ा (मेरठ) : कई बार अपने गीतों में पीड़ा को सुरक्षित रखने के लिए प्रियतम के मिलन तक को आप ठुकरा देती हैं, ऐसा क्यों ?**

दार्शनिक दृष्टि से मिलन अद्वैत की स्थिति है और गीत तीव्र अनुभूति का की अभिव्यक्ति गेय कविता में होती है वह व्यक्ति की निजी और जटिल मानसिक क्रिया है, जिसमें अनुभूति के अंतर्गत स्मृति, अनुमान, भावयित्री कल्पना, भावबोध आदि अनेक मानसिक वृत्तियां कार्य करती हैं। गीत में इसी संश्लिष्ट अनुभूति का संप्रेषण होता है, जिसका आधार अलौकिक भी हो सकता है, लौकिक भी।

महादेवी वर्मा : भाव-बोध के विभिन्न आयाम

छंदायित गेय बिंब है। प्रथम स्थिति को स्वीकार करने के उपरांत गाने की आवश्यकता ही नहीं रहती।

**'आपके अधिकांश गीत कल्पना और विचार के आधार पर लिखे गये हैं तथा उनका आलंबन अलौकिक है, जिसका प्रत्यक्ष रूप में साक्षात्कार पाठक नहीं कर पाता।' इस संबंध में आपकी प्रतिक्रिया ?**

गीत कल्पना तथा विचार के आधार पर नहीं लिखा जाता। जिस अनुभूति

व्यवहार-जगत में भी, इंद्रियों की क्षमता की विभिन्नता और वस्तु की विविध स्थितियों के कारण एक व्यक्ति का प्रत्यक्ष दूसरे के निकट उसी मात्रा तथा उसी रूपरेखा में प्रत्यक्ष नहीं होता। सफल गीत वही है जो श्रोता के मन की ऋतु बदल दे। निर्गुणवादियों ने अपने निराकार ब्रह्म की मानसी भावना की है और सगुणवादियों ने अपने साकार इष्ट की परंपरागत रूप-कल्पना की है, परंतु दोनों

ही मर्मगीत हमें समान रूप से तन्मय कर देते हैं।

**राकेशकुमार भाटिया, आगरा : प्रायः करुण या शृंगाररस ही आपकी रचनाओं में स्थान पा सका है। हास्यरस, वीररस आदि रसों से विमुखता क्यों ?**

मैंने कथात्मक काव्य नहीं लिखा है, जिसमें विभिन्न चरित्र, स्थितियां तथा घटनाएं हों। गीत में विशेष मानसिक स्थिति का ही संप्रेषण आवश्यक होता है। अतः जो अनुभूति मेरे लिए स्वयं संवेद्य है, वही मेरे गीतों में अभिव्यक्ति पाती है।

स्वतंत्रता – संग्राम के अवसर पर मैंने अवश्य ही ओज और उद्‌बोधन संबंधी कुछ कविताएं लिखी थीं, किंतु उनका उपयोग तात्कालिक ही था।

किसी रस से विमुखता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

**आपने एक समय राजनीति में भाग लिया था। उस समय लगा था कि हिंदी की एक महान कवयित्री राजनीति के पंक में शायद फंसने वाली हैं ? राजनीति में आप सफल क्यों नहीं हुईं ?**

मैं न कभी किसी राजनीतिक दल की सदस्य रही हूं, न किसी दलगत मतवाद के प्रति प्रतिबद्ध। जिस सत्य के प्रति मैं प्रतिश्रुत हूं, वह समग्र जीवन में व्याप्त है।

मुक्ति प्रत्येक मानव का और प्रकारांतर से प्रत्येक देश का जन्मसिद्ध उत्तराधिकार है। इस दृष्टि से अपने राष्ट्र के मुक्ति-संघर्ष में अपनी क्षमतानुसार सहयोग देना तो मेरा पवित्र कर्तव्य था; किंतु स्वतंत्र होने के उपरांत हमारे राजनीतिक जीवन में उपभोगवाद को जो महत्त्व मिल गया है, उसका मैंने निरंतर विरोध किया है।

लेखक और प्रकाशक—महादेवी जी शीला सन्धु के साथ श्रीमती सन्धु राजकमल प्रकाशन की व्यवस्थापिका हैं।

यदि यह असफलता है, तो मैं अपनी ही नहीं, अपने अन्य साहित्यिक बंधुओं की भी असफलता की कामना करती हूं।

**फूलचंद्र जायसवाल 'रत्न', इटारसी : आप स्वयं को 'मैं नीर भरी दुख की बदली' क्यों समझती हैं ?**

समष्टि में अपने आपको लय कर देना ही मैं कवि की मुक्ति मानती हूं। अपनी इस धारणा का उपयुक्त प्रतीक मैंने बादल ही को पाया है, जो धरती को हरा-भरा करके और हर चीज को विकास का वातावरण देकर स्वयं मिट जाता है।

इसमें दुःख किसी व्यक्तिगत अभाव का पर्याय न होकर एक संवेदनशील करुणभाव का ही प्रतीक है।

**कर्नल अजय सिन्हा, औरंगाबाद: आपके गीत विरह-वेदना का प्रतिनिधित्व करते हैं। आपको विरह के प्रति इतना लगाव क्यों है ?**

दर्शन का द्वैत ही मेरी कविता में विरह की संज्ञा पा जाता है। अद्वैत-स्थिति लक्ष्य हो सकती है, किंतु उस तक पहुंच जाने पर न कवि की अस्मिता रह जाती है और न गीत की संभावना।

**छायावाद की प्रेरणा क्या है ? आप ऋग्वेद का पद्यानुवाद कर रही हैं, आपको ऋग्वेद में छायावाद का संकेत मिलता है ?**

किसी भी युग के काव्य में एक प्रवृत्ति प्रधान जान पड़ने पर भी, उसमें अंतःसलिला के समान अनेक प्रवृत्तियां अपनी स्थिति रखती हैं। छायावाद भी इसका अपवाद नहीं है। उसके जन्म के पूर्व ही हमारे स्वातंत्र्य-संघर्ष की भूमिका बन चुकी थी, किंतु स्वतंत्रता की मांग किसी देश के नदी, पर्वत नहीं करते— उस धरती पर विकास करनेवाली मानव-समष्टि ही इस मांग की अधिकारिणी होती है।

मनुष्य यदि अपनी ही मानसिक संकीर्णता में बंदी हो तो बाह्य मुक्ति उसे मुक्त नहीं कर सकती, इस सत्य के परीक्षण के लिए गत पच्चीस वर्षों की अवधि पर्याप्त होनी चाहिए।

छायावाद की मूल प्रेरणा वह मानववाद है, जो व्यक्ति-मानव की मानसिक मुक्ति का लक्ष्य रखता है। मनुष्य समष्टि का ही नहीं, सृष्टि का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण चेतन अंश है, अतः प्रकृति की विराट और विविध पृष्ठभूमि में वह और अधिक उद्भासित हो उठता है। समुद्र की अकूल अथाह असीमता में उठी हुई छोटी तरंग भी असीमता का ही बोध देती है।

ऋग्वेद में प्रकृति तथा मानव परस्पर ऐसे प्रतिच्छायित और प्रतिछंदक होकर आये हैं कि एक का बादल दूसरे में विद्युत बन जाता है, एक का सौंदर्य दूसरे में दर्शन बन जाता है।

छायावाद अपने उदात्ततम क्षणों में ऋग्वेद का स्मरण दिला देता है।

**कुंदनसिंह सजल, गुरारा (खंडेला), सीकर: आपके अंतर की पीड़ानुभूति आपकी लेखनी द्वारा कविता बनकर उतरी है। कविता बनने पर भी आपकी पीड़ा वही है या उसका कुछ शमन हुआ ?**

प्रत्येक अनुभूति अभिव्यक्ति चाहती है, परंतु शब्द-संकेतों में उसका पूर्णतया व्यक्त होना कठिन होता है।

कवि अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति

ही नहीं, उसका समग्रतः संप्रेषण भी चाहता है। अतः उसे भाषा की सभी शक्तियों का उपयोग करना पड़ता है। फिर भी पूर्ण आत्मतोष—जैसी स्थिति दुर्लभ है, क्योंकि प्रायः लगता रहता है कि कुछ कहने को शेष है। न अनुभूति रोग विशेष है और न अभिव्यक्ति औषध विशेष, जिससे उसका शमन होना है।

अनुभूति या संवेग की विविधता और निरंतरता जीवन का चिह्न है और उसकी अभिव्यक्ति मनुष्य का स्वभाव।

**आपकी कविता ने आपकी कीर्ति में चार चांद लगाये हैं। क्या गद्य से भी आपको वह कुछ मिला जिसकी आपको अपेक्षा थी ?**

कीर्ति की इच्छा से कोई अच्छी कविता लिख सकता है, यह माना जाए तो सभी अच्छे कवि हो सकते हैं।

जहां तक मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है, मैं कविता में अपनी अनुभूति को समग्रता में व्यक्त करना चाहती हूं और गद्य में बोध या जीवन-दृष्टि को। लिखते समय मुझे अभिव्यक्ति की पूर्णता की ही अपेक्षा होती है—न कीर्ति की, न अपकीर्ति की। न मैं कीर्ति या अपकीर्ति को काव्य या गद्य की उपलब्धि मानती हूं।

मैं भवभूति के **'कालोहि अयं निरवधि विपुला च पृथिवी'** में ही विश्वास करती हूं।

**दिनेशचंद्र बिड़ला, कासगंज : कविता का वास्तविक और मूल स्वर क्या होना चाहिए ?**

कविता का मूल स्वर उसके उद्देश्य से संबंध रखता है, जिसके विषय में अतीत युगों से अब तक अनेक विवाद चलते आ रहे हैं।

महादेवी वर्मा : दो मनःस्थितियां

वैसे मेरे विचार में कविता मनुष्य के व्यक्तित्व के अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा रागात्मक अंश की ऐसी सामंजस्यपूर्ण अभिव्यक्ति है जो उसे अपने समान मानवों से ही नहीं, जीवमात्र की सुख-

दुःखात्मक स्थितियों से तादात्म्य करने की क्षमता देती है।

लौकिक स्तर पर वह ऐसा जीवनवाद है जो मानव की ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को सृजनात्मक दिशा में मोड़ सकता है। ज्ञान अधिकार देता है—कविता अधिकार का स्वेच्छया विसर्जन है।

कवि अपने युग में जीवित रहता है, अतः अपने युग के वैषम्य और सामंजस्य की पीठिका पर ही उसका युगांतर तक फैलने वाला भावसत्य स्थापित हो सकता है।

वृक्ष के शिखर पर खिला और दिन की प्रथम किरण से अभिषिक्त फूलों का गुच्छा जैसे धरती के अंधकार में फैलने वाली जड़ों से जुड़ा हुआ है वैसे ही मनुष्य की चेतना अनंत लक्ष्य और अलक्ष्य चेतनांशों से जुड़ी हुई है। काव्य का मूल लक्ष्य इसी अव्यक्त बंधन की मर्मानुभूति देना है।

**कमलेश्वरी शर्मा, मुरलीगंज : आपमें भ्रांति, जड़ता, मूक प्रणयानुभूति अधिक है। वेदना है, किंतु आप उसमें घुलती नहीं हैं, वरन सुख का अनुभव करती हैं, ऐसा क्यों ?**

भ्रांति विक्षिप्तता या रस्सी को सांप समझने का अज्ञान है और जड़ता एक प्रकार से चेतना का अभाव या मृत्यु का लक्षण है। ये विशेषताएं न किसी काव्य की हैं, न कवि की। अनुभूति मात्र ऐसा सम्वेदन है जो अपनी तीव्रता में अनिर्वचनीय रहता है। शब्दों में उसका अंशमात्र व्यक्त हो सकता है—शेष अव्यक्त या मूक ही रह जाता है। अनुभव करने वाला अनुभूति में घुलता नहीं, वरन वह अनुभूति उसमें घुलकर जीवनरस बन जाती है और तब एक आत्मतोष सहज हो जाता है, जिसे लौकिक दृष्टि से सुख कह सकते हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार के सभी करुण काव्य व्यर्थ हो जाते। वेदना एक मर्मानुभूति का ही पर्याय है।

**गीता श्रीवास्तव, छपरा : कविता लिखना आपके लिए मजबूरी (आदत) है या मनोरंजन ?**

मेरी कविता किसी तीव्र अनुभूति के क्षण की अभिव्यक्ति है। ऐसे क्षण योजना बनाकर प्राप्त नहीं किये जा सकते।

अनुभूति स्वतःप्राप्त सम्वेदन है, किंतु उसे व्यक्त करने की इच्छा को विवशता कहा जा सकता है। अभिव्यक्ति के उपरांत कवि को एक प्रकार का आत्मतोष होना स्वाभाविक है, किंतु उसे सस्ते मनोरंजन की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

ऐसे मनोरंजन बाह्य साधनों से प्राप्त हो सकते हैं। पर कविता एक रागात्मक मानसिक स्थिति है, जो किसी बाह्य रूप से उत्पन्न होकर भी उससे स्वतंत्र रहती है।

**सुरेशकुमारी, नयी दिल्ली : 'अतीत के चलचित्र' में आपकी सहानुभूति का पात्र सबसे अधिक कौन-सा रहा है ?**

सहानुभूति ऐसी सम्वेदनशीलता है, जिसकी नापतोल संभव नहीं। पाठक ही इसका निर्णय कर सकता है।

**—१७ सी, अशोकनगर, इलाहाबाद**

## रामकथा की दिग्विजय-यात्रा

राम हमारे देश में पैदा हुए और हमारे हैं, इस बात का हम सभी को गर्व है। विशेष रूप से इसलिए कि उनके मर्यादा-युक्त जीवन से भारतीय समाज और राष्ट्र को ही नहीं बल्कि लगभग संपूर्ण विश्व को सतत पथ-प्रदर्शन मिला। सारे विश्व के लिए भी यह महान जीवन अपूर्व था। इसलिए यदि यह कहा जाए कि राम जैसे मर्यादायुक्त महान जीवन ने भारत को कभी विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित

● ललनप्रसाद व्यास

करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया तो युक्तिसंगत ही होगा। राम ने इस देश में अपने जीवन से जो मर्यादाएं बांधीं और आदर्श उपस्थित किये, वे विदेशों के लिए राम की अपनी मर्यादाओं और आदर्शों से अधिक भारतवर्ष की मर्यादाएं और आदर्श बन गये। इस प्रकार आर्यपुत्र स्वयं आर्यावर्त्त बन गये। किसी महापुरुष के जीवन की इससे भी बड़ी सिद्धि या सार्थकता कोई और हो सकती है?

### राम के सामने विनत इस्लामी संस्कृति

भारत और उसके अमरपुत्र राम की इसी महानता की कुछ झलक मुझे दक्षिण-पूर्व एशिया की अपनी यात्राओं में मिली। सच बात तो यह है कि विश्व के इसी भाग ने राम और उनके देश को भली भांति समझा तथा उनकी महत्ता स्वीकार की। यह महत्ता इस भूभाग की धरती में इतनी गहराई से प्रविष्ट हो चुकी है कि हजारों वर्षों की प्राकृतिक और मानवकृत उथल-पुथल के बावजूद यह पूर्णतः अप्रभावित एवं सुरक्षित है। इसीलिए आज भी चाहे हिंदू द्वीप बाली हो, चाहे बौद्ध देश थाईलैंड, या मुस्लिम-बहुल देश मलेशिया तथा शेष इंडोनेशिया—राम के अमर व्यक्तित्व के सामने सभी नतमस्तक हैं, उनको नमन करते हैं। थाईलैंड के शास्त्रीय नृत्यों में रामकथा के अनेक प्रसंग और मलेशिया में इस्लामी संस्कृति के केंद्र कुआलालम-पुर में छायाचित्रों में राम के जीवन की अनेक घटनाओं को देखा जा सकता है।

### राम और बुद्ध में सह-अस्तित्व

थाईलैंड के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में राम पूर्णतः समरस हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इस देश में राम और बुद्ध के बीच पृथकता की कोई बड़ी रेखा नहीं है। यहां के जीवन में दोनों का सहअस्तित्व है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण बैंकाक स्थित वह प्रसिद्ध बुद्ध-मंदिर है जिसमें नीलम की मूर्ति है। दूर

दूर से लोग इसके दर्शनार्थ आते हैं। इस मंदिर की दीवारों पर संपूर्ण रामकथा चित्रित है, जिसे देखने में ५-६ घंटे लगते हैं।

**धनुर्धारी राम की मूर्ति**

बैंकाक स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय में राम के दर्शन भव्य रूप में होते हैं। धनुर्धारी राम की ऐसी सुंदर मूर्ति अपने देश में भी बहुत कम स्थानों पर मिलेगी। अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि थाईलैंड में 'अयोध्या' और 'लवपुरी' ( लोपबुरी ) भी है। 'अयोध्या' में राम का कोई विशेष चिह्न तो नहीं मिला, हां, एक 'रामा पार्क' अवश्य दिखायी पड़ा। इसी प्रकार बैंकाक के एक प्रमुख होटल का नाम 'रामा होटल' है।

**अंगकोरवाट में राम**

कंबोडिया में राम के महत्त्व का जीता-जागता सबूत है अंगकोरवाट, जो दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा प्रतीक है। यह मंदिर कंबोडिया की राजधानी नोमपेन्ह से प्रायः २०० मील की दूरी पर स्थित है और कई वर्गमील के क्षेत्रफल में फैला है। यहां बुद्ध, शिव, विष्णु, राम आदि सभी भारतीय देवों की मूर्तियां हैं। इसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में सूर्यवर्मन द्वितीय ने कराया था। मंदिर के कई भाग हैं—अंगकोरवाट, अंगकोरधाम, बेथोन आदि। अंगकोरवाट में रामकथा के अनेक प्रसंग दीवारों पर उत्कीर्ण हैं, जैसे—सीता की अग्निपरीक्षा, अशोकवाटिका में रामदूत हनुमान का आगमन, लंका में राम-रावण युद्ध, बालि-सुग्रीव युद्ध आदि।

**बाली के मुसलमान और रामलीला**

मैंने रामलीला देखी इंडोनेशिया में, जहां जावा द्वीप के नगर जोगजाकर्ता से मैं कार में बैठकर विश्वप्रसिद्ध बोरोबुदूर

**थाईलैंड के राष्ट्रीय संग्रहालय के लॉन में स्थापित धनुर्धारी राम की प्रतिमा**

मंदिर देखने जा रहा था। रास्ते में एक स्थान पर मैंने देखा कि अच्छी-खासी भीड़ जमा है और बड़ी तन्मयता से रामकथा से संबंधित नाटक या रामलीला देख रही है। मैं भी कुछ देर तक वहां ठहरकर देखने लगा। इस सुदूर देश में रामलीला मेरे लिए बहुत आनंददायी थी। विशेष बात तो यह थी कि सड़क के किनारे अत्यंत साधारण स्थान पर हो रही रामलीला को लोग बड़ी निष्ठा और तत्परता से खेल रहे थे, जो उनके अभिनय, अभिनेताओं के मूल्यवान वस्त्राभूषणों, आकर्षक साज-सज्जा, मेकअप आदि से स्पष्ट विदित हो रहा था। एक भारतवासी के लिए तो इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक और बात थी, वह यह कि यह रामलीला हिंदू नहीं, मुसलमान खेल रहे थे! इंडोनेशिया में केवल बाली द्वीप को छोड़कर शेष सारा देश इस्लाम-धर्मावलंबी है।

इस देश में राम उतने ही लोकप्रिय हैं और उनकी कथा यहां के जन-जीवन में उतनी ही प्रचलित है जितनी कि भारत में। अंतर सिर्फ इतना है कि भारतवासी हिंदू राम को भगवान के रूप में देखते हैं और यहां के निवासी इन्हें अपना एक राष्ट्रीय महापुरुष मानते हैं। किंतु राम के प्रति श्रद्धा और भक्ति में मुझे दोनों देशों में कोई अंतर नहीं दिखायी पड़ा। इंडोनेशियावासी, चाहे वे बाली के हिंदू हों या जावा-सुमात्रा के मुसलमान, सभी राम-साहित्य तथा राम-संबंधी ऐतिहासिक अवशेषों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर समझते हैं। जोगजाकर्ता से लगभग १० मील की दूरी पर स्थित परभवनन के मंदिर की प्रस्तर-भित्तियों पर सारी रामकथा उत्कीर्ण है। जब मैं इस मंदिर को देख रहा था तब मुझे ऐसा लग रहा था मानो मैं अपने देश के किसी दक्षिणी भाग में होऊं। मंदिर की संपूर्ण स्थापत्य-कला भारत-जैसी लगती है। इन रामकथा-प्रसंगों में कुछ तो दर्शक का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। एक स्थान पर मैं यह देखने के लिए रुक गया कि कुंभकर्ण महोदय अपनी गहन निद्रा में लीन हैं और उनको जगाने के लिए शंख बजाया जा रहा है, यहां तक कि हाथी भी चिंघाड़ रहा है।

**विदेशी मुद्रा कमाने के साधन**

बाली में रामलीला या रामकथा से संबंधित नृत्य-नाटिकाओं की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस द्वीप का वातावरण पूर्णतः संस्कृतिमय है। बालीवासी अपने आनंद के लिए तो इस सांस्कृतिक कला का आयोजन करते ही हैं, साथ ही इसके द्वारा विदेशी पर्यटकों से विदेशी मुद्रा भी कमाते हैं।

इसके बावजूद राम विदेशों में भगवान न बन सके। इसका सबसे बड़ा कारण शायद यही है कि उन देशों ने रामकथा तो ली, किंतु आदर्शों के उस उच्चतम धरातल के साथ नहीं जो नर से नारायण बना देता है। इन देशों ने राम और उनकी अनुपम गाथा को तो लिया, पर अपने स्थानीय

रंग उन पर चढ़ा दिये। अपनी मान्यताओं के साथ उन्हें और रामायण के अन्य पात्रों को जोड़ दिया। उन्हें अपने यहां वाल्मीकि या तुलसी-जैसा सशक्त कवि नहीं मिल सका, यद्यपि कुछ देशों में व्याप्त रामकथा का स्रोत वाल्मीकि-रामायण ही है।

**सीता का भिन्न रूप**

दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों—थाईलैंड, वियतनाम, बर्मा, कंबोडिया, लाओस, मलेशिया, इंडोनेशिया, चीन आदि देशों में रामायण या रामकथा किसी-न-किसी रूप में है, या रही है; किंतु इसके प्रसंगों में बड़े विचित्र अंतर दिखायी पड़ते हैं।

लाओस की रामायण 'फालम फा-लाम' अर्थात 'फ्रा लक्ष्मण और फ्रा राम' में पहले तो यह वर्णन आया है कि रावणासुर अपने चाचा दशरथ से उनकी पुत्री सीता को ले जाता है। फिर राम और लक्ष्मण उससे युद्ध करके अपनी बहन को छुड़ा लाते हैं।

एक अन्य प्रसंग के अनुसार लंका में रावणासुर की रानी से सीता का जन्म होता है। जन्म होते ही वह अपने पिता रावणासुर पर प्रहार करती है। क्रुद्ध होकर रावणासुर उसे एक बेड़े पर बिठाकर नदी में छोड़ देता है। एक ऋषि उसे नदी में से निकालकर आश्रम में ले जाते हैं और उसे अपनी कन्या बना लेते हैं। सीता के सौंदर्य की चर्चा फैलने पर रावण उससे शादी करना चाहता है, बिना यह जाने कि सीता उसकी पुत्री है। ऋषि के धनुष का प्रयोग रावण
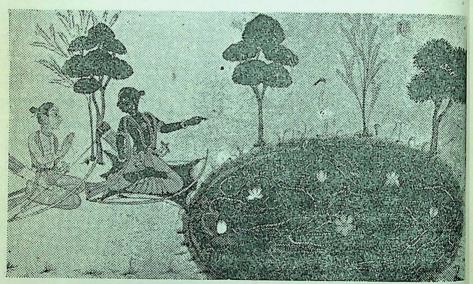
पम्पा झील के किनारे राम और लक्ष्मण (भारत कला भवन के सौजन्य से)

नहीं कर पाता है, राम ही कर पाते हैं अतएव सीता की शादी उन्हीं से होती है। शेष कथा कमोवेश वही है।

लाओस की दूसरी रामायण 'फोम्म चक' अर्थात ब्रह्मजात है। इसमें सीता रावण की पुत्री तो नहीं, परंतु उसीके बगीचे के एक पेड़ से उत्पन्न वर्णित है। माली ने जब इस कन्या को रावण को भेंट किया तो कन्या ने अपना स्वरूप ही बदल दिया। इस पर रावण ने उसे एक घड़े में रखकर नदी में फेंक दिया। सीता जनक को मिल गयी। तथा उसके परिवार के विनाश का कारण बनेगी। दशकंठ ने इसे नदी में फिंकवा दिया। यह राजा जनक को मिल गयी। आगे की कथा वही है, किंतु सीता के निष्कासन और बाद की कथा बहुत भिन्न है।

कम्बोज रामायण 'रामकेर' में सीता रावण की ही पुत्री है, जिसके बारे में उसके ज्योतिषी भाई विभीषण ने बताया कि यह कन्या उसके विनाश का कारण बनेगी। इस पर रावण ने सीता को नदी में फिंकवा
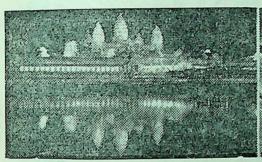
कम्बोडिया के अंकोर मंदिर जिनकी दीवारों पर राम-कथा उत्कीर्ण है।

पेरम बनन (जावा) के मंदिर की दीवाल पर राम के राज्याभिषेक का दृश्य।

फिर कहानी की धारा वही चलने लगती है।

**'दशकंठ को मारो'**

थाई रामायण 'रामकियेन' या रामकीर्ति में सीता-जन्म की कथा इस प्रकार आती है : दशकंठ ( रावण ) की रानी मंडो ( मंदोदरी ) के एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसने जन्म लेते ही चिल्लाना शुरू किया—'दशकंठ को मारो।' इस पर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की कि यह कन्या दशकंठ दिया, जो बाद में राजा जनक को मिल जाती है। इसमें सीता को अपने पूर्वजन्म में इंद्र की पत्नी बताया गया है। रावण ने उस समय इसका अपमान किया था, जिसका बदला लेने के लिए ही वह पहले उसकी पुत्री और बाद में राम की पत्नी बनकर उसके विनाश का कारण बनी।

चीन में प्रचलित एक रामायण 'दशरथ जातक' में तो सीता रामपंडित और

राजकुमार लक्ष्मण की बहन के रूप में वर्णित है।



**राम एक पत्नीव्रती नहीं**
**हनुमान ब्रह्मचारी नहीं !**

राम को मर्यादापुरुषोत्तम और हनुमान को शक्तिप्रदायक देवता के रूप में मानने के सबसे बड़े आधार क्रमशः उनके एक-पत्नीव्रत तथा ब्रह्मचर्य हैं, जिन्हें इन देशों की रामायण में प्रायः समाप्त कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि चरित्र-श्रेष्ठता की नैतिक कल्पना जैसी भारत की है वैसी इन देशों की नहीं। राम का एक-पत्नीव्रत तो कुछेक रामायणों में ही भंग है, किंतु हनुमान का ब्रह्मचर्य अधिकांश रामायणों में भंग है। लाओस की रामायण 'फालक फा लोम' में तो हनुमान राम के ही पुत्र दिखाये गये हैं। इसमें कथा इस प्रकार है कि राम और लक्ष्मण वन में सीता की खोज करते घूम रहे थे। तभी राम ने एक फल खा लिया जिसके प्रभाव से वे वानर हो गये। एक ऋषि-पुत्री ने भी भूल से उस फल को खा लिया और वह वानरी हो गयी। वन में उसे वानर रूप में राम मिल गये। दोनों की शादी हो गयी और फलस्वरूप हनुमान का जन्म हुआ। बाद में इसी रामायण में राम का बाली की पत्नी से भी विवाह वर्णित है। भारत के जो मर्यादा-पुरुषोत्तम अश्वमेध-यज्ञ के समय पत्नी की अनिवार्यता के क्षणों में भी दूसरी शादी की भावना मन में नहीं लाते और सीता की मूर्ति वाम पक्ष में बिठाकर काम चला

तैवान के प्रधान मंत्री श्री सी. के. येन को रामचरित मानस की प्रति भेंट करते हुए लेखक।

लेते हैं उन्हीं राम का चित्र बाहर की कुछक रामायणों में भिन्न प्रकार का है। इससे उनके समाज का जीवन-दर्शन ही व्यक्त होता है। मानव के आत्मिक विकास का जो चरमबिंदु भारत ने स्पर्श किया है वह निश्चय ही अन्य देशों के द्वारा नहीं हो पाया है।

**हनुमान की कई शादियां**

थाई रामायण, खमेर रामायण आदि में हनुमानजी कई शादियां करते हुए पाये जाते हैं। गनीमत यही है कि उन्होंने ये शादियां राम के कार्य को संपन्न करने के सिलसिले में की हैं। इन शादियों के बाद उनके पुत्र भी उत्पन्न हुए हैं। उनकी स्त्रियां तथा पुत्र राम-कारज में हनुमान की सहायता करते पाये जाते हैं। इस प्रसंग में भी भारतीय कल्पना से भिन्नता इसी-लिए है कि भारत में असाधारण शक्ति और सामर्थ्य का स्रोत ब्रह्मचर्य ही माना

गया है, जो भारत से बाहर अनिवार्य तत्त्व नहीं। शायद यही कारण है कि निर्वासित सीता से उत्पन्न राम के पुत्रों द्वारा युद्ध में हनुमान का जैसा अपमान किया गया है वैसा भारत की कल्पना से परे है।

**सीता-वध की आज्ञा**

थाई और खमेर रामायणों में एक प्रसंग में राम के दुर्लभ चरित्र के साथ ऐसा प्रतीत होता है कि न्याय कतई नहीं हो सका है, जब अयोध्या लौटने के बाद निर्वासन के समय सीता से राम वन में पुनः मिलते हैं और सीता पुत्रवती हो जाती हैं। इन रामायणों में राम ने सीता के चरित्र पर संदेह करके (अग्नि-परीक्षा के बाद भी) उनका वध कर डालने की आज्ञा लक्ष्मण को दी, किंतु वे अपने सतीत्व के कारण बच जाती हैं। राम को पहले यह पता नहीं चला, जब उन्हें पता चलता है कि उनकी वध-आज्ञा के बावजूद सीता जीवित हैं और निर्दोष हैं तो वे सीता से क्षमायाचना करके अयोध्या लौट चलने का आग्रह करते हैं, पर वे नहीं जाती हैं। इस पर राम कहते हैं कि वे सीता के बिना मर जाएंगे। सीता को जब यह पता चला तो उन्होंने कहा कि यदि ऐसी दुर्घटना हुई तो वे अपने पति के अंतिम दर्शन के लिए आएंगी। यह जानकर राम ने झूठमूठ ही हनुमान से कहला दिया कि राम मर गये। सीता यह सुनकर विलाप करती हुई आयीं, परंतु राम को वहां जीवित देखकर पाताल भाग गयीं। राम द्वारा यह असत्य प्रचार एवं बाद की कुछ घटनाएं किसी प्रकार भी राम के उज्ज्वलतम चरित्र के अनुकूल नहीं। निश्चय ही इस प्रकार के मूलभूत अंतर सामाजिक जीवन की मान्यताओं के अंतर हैं।

इन अंतर्विरोधों के बावजूद हमें यह देखकर प्रसन्नता और गौरव की अनुभूति होती है कि भारत के राम ने ही नहीं, रामकथा ने भी दिग्विजय की है; मात्र कथा-कल्पना के आधार पर नहीं, मानव की श्रेष्टतम जीवन-गाथा के रूप में। यह दिग्विजय आज तक बनी है और भारत की सांस्कृतिक धरोहर को इन देशों ने इतनी निष्ठा के साथ संजोया है, यह संतोष का विषय है।

**—के.-३७ ए, ग्रीन पार्क,**
**नयी दिल्ली-११००१६**

●

**एक पत्रकार मरने के बाद जब स्वर्ग के फाटक पर पहुंचा तो उसे प्रवेश की इजाजत नहीं मिली। नरक के द्वार से भी उसे निराश लौटना पड़ा, क्योंकि शैतान भी उसे नहीं रखना चाहता था। पत्रकार ने एक उजड़े हुए ग्रह पर जाकर एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आरंभ कर दिया।**

**दूसरे दिन ही उसे स्वर्ग और नरक का प्रेस-पास मिल गया।**

बगदाद में उन दिनों संत फलीज की धूम थी। लोग उनके ईश्वर-संबंधी ज्ञान से अत्यंत प्रभावित थे। उनकी प्रशंसा बगदाद के खलीफा हारुन-उल-रशीद तक भी पहुंची। उनके हृदय में भी संत के दर्शन की इच्छा जागी। एक दिन वे अपने एक खास वजीर के साथ संत फलीज के पास पहुंचे। संत की असाधारण विद्वत्ता से खलीफा बहुत प्रभावित हुए। ज्ञानचर्चा के बाद जब वे चलने लगे तो उन्होंने एक हजार दीनारों की थैली संत के चरणों पर रख दी। संत ने मुसकराकर थैली लौटा दी और कहा, "जहांपनाह! मैंने आपको जन्नत तक जाने का रास्ता बताया। बदले में आप मुझे दोजख की राह पर क्यों धकेल रहे हैं?"

चीन के राजा क्वांग का प्रधानमंत्री था सुन शू आओ। किसी कारणवश राजा ने सुन शू आओ को इस पद से हटा दिया। किंतु कुछ दिन बाद फिर उन्हें प्रधानमंत्री का पद सौंप दिया गया। संयोग से ऐसी घटना तीन बार हुई। राजा क्वांग ने देखा कि सुन शू आओ इन घटनाओं के दौरान न कभी प्रसन्न हुआ न उदास। वह निर्लिप्तता से अपने काम में लगा रहता।

एक दिन राजा क्वांग ने सुन शू आओ से इस निर्लिप्तता का कारण पूछा। सुन शू आओ ने उत्तर दिया, "श्रीमान, जब मुझे प्रधानमंत्री का पद दिया गया तब मैंने सोचा कि सम्मान को अस्वीकार करना ठीक नहीं, और जब पदच्युत किया गया तो सोचा, जहां आवश्यकता नहीं वहां चिपके रहना बेकार है। फिर प्रश्न उठता है कि वह सम्मान मेरा था या पद का? यदि पद का था तो मुझे उससे क्या लेना देना! और यदि मेरा था तो पद के रहने, न रहने से उसमें क्या फर्क पड़ेगा!"
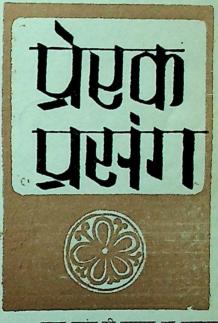
राजा क्वांग की समस्या का समाधान हो गया। वे समझ गये कि हर मनःस्थिति में व्यक्ति किस तरह प्रसन्न रह सकता है।

**—नीरज अभिजीत**

राम वन जाने के लिए जब सबसे विदा ले चुके तो अंत में आशीर्वाद लेने के लिए गुरु वसिष्ठ के पास गये।

वसिष्ठजी ने कहा, "राम, यदि वन जाने के लिए तुम्हारा मन न हो तो निःसंकोच मुझसे कह दो, मैं स्वयं महारानी कैकेयी से कहकर यह आज्ञा रद्द करवा दूंगा।"

राम की आंखें छलछला आयीं। वसिष्ठजी के चरणों में सिर नवाकर वे बोले, "क्षमा करें, भगवन ! राम को सुख नहीं चाहिए। राम तो आज आपसे दुःख मांगने आया है। दुःख का आशीर्वाद दें।"

"दुःख क्यों, वत्स ?"

राम ने कहा, "देव, इन श्रीचरणों की ही तो शिक्षा है कि सुख का देश केवल

योजन-भर का है, लेकिन दुःख का देश है आकाश की तरह निस्सीम। मुझ योजन-भर के देश का राजा बनना मान्य नहीं है। मैं सूर्यवंशी हूं, पराक्रमी हूं और आपका शिष्य हूं। मुझे निस्सीम देश का राज्य चाहिए।" राम की लगन में देश की सनातन-साधना को इस प्रकार फलीभूत होते देख मुनि वसिष्ठ का हृदय आनंद-विभोर हो उठा। राम को हृदय से लगा-कर वे बोले, "जाओ वत्स, दुःख की खोज में जाओ। सीमाएं ही नहीं, काल भी तुम्हें शीश नवाएगा।"

—कमला

एक बार गुरु गोविंदसिंह कहीं धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनके शिष्य बड़े ध्यान से सुन रहे थे। चर्चा समाप्त होने पर गुरु गोविंदसिंह ने शिष्यों से कहा, "कोई जाकर पवित्र हाथ से मेरे लिए पानी ले आये।"

एक शिष्य दौड़ा-दौड़ा गया और चांदी के गिलास में स्वच्छ, शीतल जल ले आया। गिलास लेते हुए गुरु गोविंदसिंह ने उसकी हथेली की ओर देखा, और बोले, "तुम्हारे हाथ तो बड़े कोमल हैं !"

गुरुजी की बात सुनकर शिष्य बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अनुभव किया कि गुरु उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। बोला, "गुरुदेव, मेरे हाथ इसलिए कोमल हैं कि मुझे इन्हें कोई काम भी नहीं करना पड़ता। मेरे यहां बहुत से नौकर-चाकर हैं।"

गुरु गोविंदसिंह गिलास मुंह से लगाने वाले थे कि उनका हाथ ठिठक गया। गंभीर स्वर में उन्होंने कहा, "वत्स, जिस हाथ ने कभी कोई सेवा नहीं की, कभी कोई काम नहीं किया, मजूरी से जो मजबूत नहीं हुआ और जिसकी हथेली में मेहनत करने से गांठ नहीं पड़ी, उस हाथ को पवित्र कैसे कहा जा सकता है ! पवित्रता तो सेवा और श्रम से प्राप्त होती है। मैं तुम्हारे हाथ से पानी नहीं पी सकता।"

—यशपाल जैन

## बंधु रे !

बंधु रे !
हम-तुम
घने जंगल की तरह होते
नाम भर वाले अगर
रिश्ते नहीं ढोते
बंधु रे हम-तुम !

फिर न रेगिस्तान होते
देह में ऐसे
फिर न आते द्वार पर
मेहमान हों जैसे
हड्डियों को काटती क्यों
औपचारिकता
खोखली मुसकान की
तह में नहीं रोते
बंधु रे हम-तुम !

चेहरों से उड़ गयी
पहचान बचपन की
अजनबी से कौन फिर
बातें करे मन की
बात करने के लिए
अखबार की कतरन
फेंक देते हैं हवा में
जागते-सोते
बंधु रे हम-तुम !

दृष्टि स्नेहिल दूसरों के
वास्ते रखकर
खून होकर हो गये
नाखून से बदतर
कनखियों के दंश
दरके हुए आंगन की
आड़ में कांटे नहीं बोते
बंधु रे !

## अंतराल

आंगन की कोंपली उंगलियाँ
बढ़ गयी होंगी
बहुत सारे दिन गये
बिन गये

पल्लू के पीछे चलना
नन्हे पांवों का
छत पर जलना
फिर धीरे-धीरे आकर
मेघों का व्योम में टहलना
दुख-सुख के कितने आमुख
छिन गये, बिन गये
क, ख, ग पढ़ गयी होंगी
उंगलियाँ
बढ़ गयी होंगी

—रमेश रंजक
(२ आराम बाग स्क्वायर, चित्रगुप्त रोड,
नयी दिल्ली—५५)

# जदपि सुधा बरसहिं जलद

● शिवकुमार त्रिपाठी

एक फारसी कहावत के अनुसार रत्न की पहचान या तो राजा या जौहरी ही कर पाते है । रामचरितमानस का एक गुटका भी जिसके पास है, वह अपने-आपको मानसमणि का पारखी मानता है । ऐसे ही हमारे एक रिश्ते के मामाजी हैं, जो यह कहते कभी नहीं थकते कि तुलसीदास ब्राह्मण जाति के पक्षपाती तथा निम्न-वर्ग और नारी के प्रति अनुदार थे ।

यह सुनते-सुनते जब कान पक गये तो मैंने नये सिरे से रामचरितमानस का पूरा अध्ययन कर डाला । पहली बार तो लगा कि सचमुच बालि, समुद्र तथा रावण के मुख से नारी को तिरस्कृत और हीन दर्शाया गया है । पर मन नहीं माना, बोला, बालि या समुद्र या रावण न तो तुलसीदास के मस्तिष्क की उपज थे और न वाल्मीकि के मस्तिष्क की । वह तो एक लोक-कथा है, जो जम्बूद्वीप - काल से इस देश में कही, सुनी और खेली जाती रही है । और जहां तक राम का प्रश्न है, उन्होंने तो बालि से स्पष्ट ही कह दिया—

**मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना।**
**नारि सिखावन करसि न काना॥**

जिस समुद्र ने कहा :

**ढोल गंवार शुद्र पशु नारी ।**
**ये सब ताड़न के अधिकारी ॥**

उसे भी राम ने एक सांस में इतने कटु वचन कहे—शठ, कुटिल, सहजकृपण, ममतारत, अतिलोभी, क्रोधी, कामी और ऊसर । साथ ही काकभुशुंडिजी ने उसी समय उसे नीच बताया ।

ऐसे बालि या समुद्र या रावण की वाणी संतवाणी या राम-मत कैसे कही जा सकती है ?

तुलसी - मत के प्रतीक और प्रचारक केवल राम हैं । अन्य पात्र अपने मत और मार्ग के स्वयं उत्तरदायी हैं ।

सहसा बुद्धि ने कहा कि ये जो मुनि लोग थे, वे थे तो बड़े बलिदानी । सारे माया-मोह को वश में कर जंगल में कुटी या आश्रम बनाकर भविष्य के लिए वर्तमान युवा पीढ़ी को शिक्षित, दीक्षित करके सुयोग्य बनाने का काम करते थे, पर उनमें स्वाभाविक और नितांत तर्कसंगत एक अवगुण भी होता था। अनुशासन और नियम संबंधी छोटी-बड़ी भूलों को सहन न कर उन्होंने अगणित मानवों, गंधर्वों, देवताओं, यहां तक कि भगवान को भी शाप देकर त्रस्त किया था।

अगस्त्य के शाप से शुकजी राक्षस

बने और उन्हें रावण-जैसे आततायी की सेवा करनी पड़ी। राम ने उन्हें उबारा। कबंध गंधर्व था। दुर्वासा ने उसे शाप दिया तो बेचारा सैकड़ों वर्ष तक राक्षस होकर सड़ा मांस खाता रहा? राम के हाथ से मरते समय जब उसने अपनी मुक्ति के लिए आभार-प्रदर्शन किया तो राम के मन में यह बात आयी कि विप्रों और ऋषियों की वाणी में किसी को हानि पहुंचाने की शक्ति उस त्याग और तप से आती है जो वे समाज के कल्याण के लिए करते हैं। उस शक्ति को कोई छीन नहीं सकता। अतः राम ने सोचा कि कबंध और शुक-जैसों को चाहिए कि यदि किसी कारण गुरु या शिक्षक अशांत हो तो ऐसा कार्य न करें कि वे कुपित होकर शाप दे डालें। उन्होंने कहा :

**सापत ताड़त परुष कहंता।**
**विप्र पूज्य अस गावहिं संता।।**

शाप या ताड़ना देता अथवा कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण (उसका त्यागी और जन-कल्याणरत व्यक्तित्व) पूज्य होता है—ऐसा संत लोग कहते हैं।

**पूजिय विप्र शील गुणहीना।**
**शूद्र न गुन-गन ज्ञान प्रवीना ।।**

ब्राह्मण यदि कभी शालीन न हो तो भी उसके गुरु-पद और त्यागी व्यक्तित्व का मान होना चाहिए और यह भी ठीक है कि शूद्र यदि गुण-गण-ज्ञान-प्रवीण भी हो तो भी उसकी पूजा नहीं हो सकती। यह जानने, समझने और मानने वाली बात है। साधुओं को लूटने वाला व्याध वाल्मीकि सम्मान का अधिकारी नहीं था, पर परिजन के यह कहने पर कि वे उसके पापों द्वारा कमायी गयी दंडराशि में साझीदार नहीं होंगे, वह मायामोह-विमुक्त होकर ज्ञान-ध्यान में जुटा और ब्रह्मर्षि बना। वह वाल्मीकि श्रद्धा, आराधना, पूजा-जैसी सभी भाववाचक वस्तुओं का अधिकारी है। खरे शब्दों में इसी बात को यों कहिए कि जो गुण-गण-ज्ञान-प्रवीण है, वह शूद्र है ही नहीं। वह तो विप्र है। जैसे बाद का वाल्मीकि।

व्याध (अथवा शूद्र) अपने व्यवसाय के अनुसार होता था और विप्र (अथवा

---

**"माफ करना भइया! मैं सचमुच रावण नहीं हूं, मैं छेदीलाल हलवाई हूं।"**
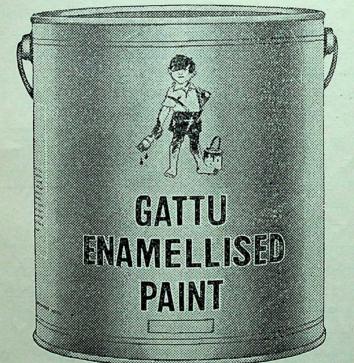
ब्राह्मण) अपने व्यवसाय के अनुसार । जन्म से न वाल्मीकि ब्राह्मण थे, न विश्वामित्र, जो राजपूत थे, राजा थे । उन्होंने भी रजपूती छोड़ी, राजपाट छोड़ा और अध्ययन, चिंतन, मनन के द्वारा विप्र (ब्रह्मर्षि) बने । विप्र की पूजा की मान्यता है, अपूर्ण ज्ञानी ब्राह्मण की नहीं, जैसे कि परशुराम की परशुरामी के बखिये भरे-दरबार में लक्ष्मण ने उधेड़े और जब अभिमान-आहत परशुराम ने राम से शिकायत की तो उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया

**जो तुम अउते मुनि की नाईं . . .**

यदि आप ब्राह्मण के रूप में और विप्र के ढंग से आते तो हम आपके चरणों की धूल माथे से लगाते, पर आप आये क्षत्रिय के रूप में, धनुष-बाण और कुठार आदि अस्त्रों से सुसज्जित और चुनौती देते हुए, तो क्षत्रियोचित सम्मान आपको मिला । इसमें लक्ष्मण ने अपना कर्तव्य निभाया । परशुरामजी का डंक झड़ गया । उनका अब्राह्मण लुप्त हो गया । ब्राह्मण परशुराम ने धनुष-भंग को अपराध के स्थान पर शौर्य कर्म माना और उन्हें बधाई और आशीर्वाद दिया । अपूर्ण ज्ञानी ब्राह्मण न माना जाए, इसकी पुष्टि के लिए ही परशुराम को धनुषयज्ञ में लाया गया था।

तुलसीदास ने कलियुगी ब्राह्मणों की परिभाषा भी की, "जो नाखून और केश बढ़ाने को ब्राह्मणत्व माने और अपने शिष्य का अज्ञान लूटने के बजाय उसका धन लूटे।" और ऐसे ब्राह्मण के लिए ही तो राम ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

**कोटि विप्र वध लागहि जाहू ।**
**आये शरण तजहुं नहि ताहू ।।**

यदि कोई अब्राह्मण, जिस पर एक करोड़ (खोटे) ब्राह्मणों की हत्या का अभियोग हो, उनकी (राम की) शरण में आये, तो वे उसकी रक्षा करेंगे ।

पुलस्त्य ऋषि का नाती रावण ब्राह्मण था, तपस्वी राजा था । जीवन भर उसने कोई अनीति नहीं की थी । वह अपनी तिरस्कृत अंग-भंग बहन के मन की शांति के लिए सीता को उठाकर ले गया था । उनके साथ उसने किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया । उनके प्रेम की भीख मांगी तो उत्तर में उसे अपमान और कटु वचन सहने पड़े; पर उसने बलात उस प्रेम को प्राप्त नहीं किया और सीता सती ही रही । फिर भी वह मारा गया और बड़ी निर्दयता से । और चूंकि ब्राह्मण था, जो अपनी त्रस्त और अपमानित बहन का मन समझाने के लिए इतना छोटा-सा अपराध भी नहीं कर सकता, सदियों से हर साल और गा-बजाकर मारा जाता है कि ब्राह्मण के आंख, कान खुले रहें और वह यह कभी न भूल सके कि उसकी एक साधारण-सी अनीति के लिए प्राणदंड और युग-युग तक उपहास से कम कुछ दंड नहीं है ।

शबरी के झूठे बेर राम ने प्रेम से खाये । निषाद को मित्र और भाई माना, उसे

सदैव छाती से लगाया और उसका मान राम ने ही नहीं, उनके गुरु वसिष्ठ ने भी किया। वह ज्ञानी निषाद लक्ष्मण को, भरत को और दशरथ के मंत्री सुमंत को पढ़ाता है और सब उसका आदर करते हैं। तो रामायण में सामान्य ज्ञानी शूद्र की मान्यता है (पूजा नहीं)। पर अपूर्ण ज्ञानी ब्राह्मण का तिरस्कार और अनीतिवान ब्राह्मण का वध और अपमान है।

राम ने जीवन में निम्न वर्ग, वन्य जातियों और शूद्रों के सिवा किसी और जाति के किसी पुरुष को न तो जाना और न माना। ऋषियों का सम्मान सदैव किया। यह भी उनके गुरु-पद के कारण, उनकी जाति या वर्ण के कारण नहीं।

रही बात नारी समाज की। सो जैसा कुछ भी रामायण में है उसमें तो एक मंथरा को छोड़कर शेष सभी देवियां हैं। दानवों की पत्नियां तो ऋषि-पत्नियों से भी अधिक नीतिवती, चरित्रवती और विदुषी हैं। तारा अपने पति को कितना समझाती है। मंदोदरी की बातें, जो उसने अपने मदांध पति के कल्याण के लिए बार-बार कहीं, न्याय और नीति के हीरे-मोती हैं। और तो और लक्ष्मण द्वारा तिरस्कृत और ताड़ित वासना-ग्रस्त शूर्पणखा जब रावण के पास गयी तो उसने जो कुछ कहा, उसे समाज-नीति और जीवन-धर्म का सार कहा जा सकता है।

रामचरितमानस पढ़कर ऐसा लगता है कि बुद्धि-विवेक के एक क्विंटल का नब्बे किलो नारी के और दस किलोग्राम ही पुरुष के हिस्से में आया। राम ने स्वयं मानवोचित भूलें कीं और स्वर्ण - मृग - जैसे भ्रम के आखेट बने। नारी ने कहीं भी ऐसी कोई दुर्बलता का प्रमाण नहीं दिया।

तो मामाजी की बात से लगा कि वे या तो किसी आधुनिक दल विशेष की नारेबाजी के चक्कर में आ गये हैं, या फिर उनकी समझ का प्रवाह देवनागरी लिपि के प्रतिकूल, दायें से बायें होता है और उनका स्थान रामचरितमानस की उस परिभाषा से सिद्ध है, जिसे तुलसीदास ने सीधे दोहे के द्वारा न करके उसके उलटे इस सोरठे के सहारे करना ठीक समझा था :

**फूलहिं फलहिं न बेत**
**जदपि सुधा बरसहिं जलद।**

—ब्रह्म भवन, ११, दरियागंज, दिल्ली-६

**रोगी ने डॉक्टर से कहा, "मुझे कुछ ऐसा चाहिए जिससे मैं एकदम लड़ने - झगड़ने के 'मूड' में आ जाऊं...मतलब यह कि मेरा आलस दूर हो जाए। मैं उठ, बैठकर किसी को कुछ कहने-सुनने लायक बन सकूं। नुस्खे में कुछ ऐसी चीज रखी है आपने ?"**

**"नुस्खे में नहीं, वह चीज आप बिल में पाएंगे," डॉक्टर ने जवाब दिया।**

# हिमालय में तीन दिन

शिकार कथा

**कुंवर विक्रमसिंह**

हम सुबह जल्दी ही उठ गये, लेकिन जब आठ बजे तक दूसरे शिकारी न पहुंचे तो उनके बारे में पूछताछ के लिए हम सीधे गांव के मुखिया के घर पहुंचे। वहां हमें थोड़ी देर इंतजार करना पड़ा। तब दो आदमी सामने आये। देखने में वे बिलकुल डाकू लग रहे थे। बदन पर चमड़े का कोट और लंबी पाइपगनों से लैस। हमें बाद में पता चला कि उनके फ्यूज बांस के रेशों से बने होते हैं और वे उसी से कमाल हासिल करते हैं। उनके पैरों में बांस और रस्सी के जूते थे। जिस सपाट और तंग दर्रे से गुजरकर हमें शिकार के लिए जाना था, वहां चमड़े के जूते बेकार थे। हमें भी वैसे ही जूते पहनने पड़े। अभी हम थोड़ी ही दूर गये होंगे कि छह शिकारी अपने कुत्तों के साथ इंतजार करते मिले।

शिकार के लिए निर्धारित स्थान तक पहुंचने वाली हमारी कठिन चढ़ाई अब शुरू हुई। तीन शिकारी अपने कुत्तों के साथ नीचे ही छोड़ दिये गये ताकि वे शिकार को हमारी तरफ हांक सकें। अभी हम अपने स्थान पर पहुंचे भी नहीं थे कि कुत्तों ने भौंकना शुरू कर दिया। हम अपनी बंदूकें तैयार करें, इससे पहले ही एक कस्तूरीमृग हमारे सामने से भाग निकला। मुझे लगा, दिन की शुरुआत ही गलत हुई।

कोई डेढ़ घंटे बाद हम नियत स्थान पर पहुंच गये। दल के नेता ने, जिन्हें हम 'चीफ' कहते थे, पहले से ही हमारी जगहें तय कर दी थीं। एक बजते-बजते हम अपनी जगहों पर तैनात थे।

कुत्तों के भौंकने की आवाज लगातार आ रही थी। स्पष्ट था कि शिकार पास ही था। इसी समय ठंडी हवा का एक तेज झोंका सारे शरीर को बेधता हुआ अंदर प्रवेश कर गया। हड्डियां सुन्न पड़ने लगीं। चढ़ाई थी या आफत! जैसे-तैसे हम सीधी, खड़ी चट्टानों को पारकर अपेक्षाकृत एक बड़ी चट्टान पर पहुंचे। यहा से नीचे की बस्तियां देखी जा सकती थीं। ऊपर बर्फ

---

**कुंवर विक्रम सिंह एक विश्वप्रसिद्ध शिकारी हैं। अब तक वे एक हजार हिंस्र पशुओं का शिकार कर चुके हैं। अपने पिता राजा रणवीरसिंह के साथ जब वे पहली बार शिकार-पार्टी में गये तब ग्यारह वर्ष के थे। प्रस्तुत है उनकी हिमालय की पहली शिकार-यात्रा-कथा**

---

से ढकी चोटियां थीं। प्रकृति के इतने निकट आने का मेरा यह पहला मौका था। मन जरा देर के लिए भटक गया, लेकिन बस जरा देर के लिए। हम फिर चल पड़े। मैं सोचने लगा, यदि इस समय कुत्ते मेरी ओर शिकार हांकें तो क्या मैं निशाना साध सकूंगा? मेरे लिए ठंड से मुक्ति पाना जरूरी था। मुझे बता दिया गया था कि इधर के जानवर धुएं से डरते नहीं। पहाड़ों पर इधर-उधर खेमों में जल रही मशालों के वे आदी होते हैं। अतः मैंने थोड़ा झाड़-झंखाड़ इकट्ठा कर उसमें आग लगा दी। इससे बड़ी राहत मिली। तीर की तरह चुभने वाली ठंड कुछ कम हुई।

तभी पहाड़ के एक कोने से गोली चलने की आवाज आयी। सहसा न जाने कहां से एक जंगली सूअर हमारे सामने आया। मैंने झटपट चट्टान की ढलान पर लेटकर गोली दागी, लेकिन निशाना शायद चूक गया था। जंगली सूअर तेजी से मुझ पर झपटा किंतु मैंने फुरती से फिर गोली चला दी। उसने सूअर का काम तमाम कर दिया। इस शिकार के बाद हम लोग खेमों में लौट आये।

दूसरे दिन शिकारियों से पता चला जहां हम पिछले दिन गये थे वहीं पर कुछ और शिकार मिलने की संभावना है। हम जल्दी ही उस ओर चल पड़े। दो शिकारियों के साथ मैं निचली चट्टान पर ही रुक गया। अपने साथी जिमी को मैंने चीफ के साथ ऊपर की ओर भेज दिया था।

जिमी और चीफ अभी अपनी जगह पहुंचे भी नहीं थे कि शिकारियों की आवाजें सुनायी पड़ीं। दूसरे ही क्षण एक सेरो (बकरी और हिरन के बीच का एक जानवर) ऊपर से नीचे की ओर तेजी से भागा और देखते ही देखते बर्फ की सफेदी में खो गया। अब मेरे सक्रिय होने की बारी थी। पहाड़ों पर चढ़ना, बर्फ पर फिसलना बचपन से मेरा शौक रहा है, मैं झटपट दूसरी ओर की ढालू चट्टान पर बैठकर फिसलने लगा। सेरो के नीचे पहुंचने से पहले ही मैं वहां पहुंच चुका था। अचानक मझे सामने देखकर सेरो एकदम पीछे मुड़ा और उलटी दिशा में भागने लगा। मैं उसे एकदम से नहीं मारना चाहता था और वह शायद जीवित पकड़े जाने के लिए तैयार न था। मौका हाथ से निकल गया। पिछले दिन भी एक चूक हो गयी थी। मैं मन ही मन झुंझला पड़ा। मन तो हुआ राइफल फेंक दूं। मुझे शिकार की कोई तमीज नहीं! लेकिन शिकारियों ने आश्वासन दिया कि अभी गोराल (एक भारतीय हरिण) के मिलने की आशा थी। उन्होंने बताया दोपहर तक वे शिकारियों के डर से छिपे रहते हैं और शाम के धुंधले में चारे की तलाश में बाहर आते हैं।

शिकारियों ने आवाज देकर कुत्तों को इकट्ठा किया और फिर उन्हें विपरीत दिशाओं में भेज दिया। उनके भौंकने की प्रतिध्वनि देर तक गूंजती रही। बहुत देर तक तो कहीं कुछ भी नहीं हुआ।

लेकिन अबकी शायद साइत अच्छी थी। ठीक सामने मुझे एक गोराल दिखायी पड़ा। मुझे देखकर वह पलभर को ठिठका। शाम का धुंधलका बढ़ने लगा था, फिर भी उसकी आंख मेरी आंखों पर टिकी हुई थीं। मेरी अंगुली राइफल का घोड़ा दबाते-दबाते रुक गयी। तभी लगभग दो सौ गज के फासले से जिमी ने अपनी बंदूक चलायी और उसे बुरी तरह घायल कर दिया। वह चट्टान से लुढ़कता हुआ नीचे जा गिरा। मैं समझ गया, उसका अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो गया होगा। काफी देर के बाद हम नीचे उतरकर उसके पास पहुंचे, लेकिन उस समय हमारे आश्चर्य की सीमा न रही, जब वह एकदम से उठा और हमारे राइफलें संभालने के पहले ही नौ दो ग्यारह हो गया। मुझे अचंभे में पड़ा देखकर चीफ ने कहा, "कुंवर साहब, यह हिमालय का गोराल है!"

चीफ की बात पर ध्यान देते हुए मैंने गोराल का पीछा किया। लगभग पांच सौ गज दौड़ने के बाद वह रुका। उसके प्रति एक अजीब-सा मोह मैंने अनुभव किया था, लेकिन जिमी फिर आड़े आया। उसने गोलियों की बौछार कर दी। गोराल घायल होकर कुछ देर छटपटाया, फिर शांत हो गया। दो शिकारियों को उसे उठा लाने के लिए भेजकर हम वापस अपने पड़ाव के लिए चल पड़े।

दूसरे दिन सुबह जब मैं उठकर बाहर आया, शिकार पहुंच चुका था लेकिन

दोनों शिकारियों को उसके साथ खासी मेहनत करनी पड़ी थी। दरअसल जब हम उसे मरा हुआ समझकर चल पड़े थे, तब भी वह मरने का नाटक कर रहा था। शिकारियों के वहां पहुंचने पर वह फिर जी उठा था और उसे मारने के लिए ही शिकारियों ने गोलियां चलायी थीं। गोराल क्षत-विक्षत हो चुका था अतः स्मृति-स्वरूप रखने लायक कुछ न बचा।

हम सिर्फ तीन दिन की शिकार-यात्रा पर गये थे। पिछले दो दिन पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने में जिमी बुरी तरह थक गया था लेकिन मेरे हौसले अभी बाकी थे। दोपहर बाद का समय हमने मुखिया के घर गांव में बिताया था। सुबह का वक्त बरबाद न हो इसलिए तड़के ही उठा था। मैंने चुपचाप एक शिकारी और उसके कुत्तों को साथ लिया और पहाड़ की ऊंचाइयों पर खो गया। मैंने मन में ठान लिया था कि यादगार के तौर पर कुछ न कुछ जरूर ले जाऊंगा। शिकार की दृष्टि से एक अच्छी जगह देखकर मैं हट गया। जल्दी ही शिकारी और कुत्तों की हांक पर एक सांभर सामने आया। मैंने निशाना साधा लेकिन वार खाली गया। सांभर बेतहाशा भाग रहा था मैंने उसे कुछ दूर भागने दिया फिर उसके आगे और पीछे के एक-एक पैर पर क्रम से निशाना साधा। उसका सरपट

भागना रुक गया। वह पलभर को रुका फिर लड़खड़ाते हुए कुछ दूर और निकल गया। तब तक कुत्ते वहां पहुंच चुके थे। उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते, इससे पहले ही हम वहां पहुंच गये। मैंने राहत की सांस ली। हिमालय की मेरी पहली शिकार यात्रा बेकार नहीं गयी। यादगार के तौर पर ले जाने के लिए भी हमें वहां कुछ मिल ही गया था। ●

• शिवशंकर त्रिपाठी

रामकथा प्रारंभ से ही कवि-वाणी के साथ-साथ लोकवाणी में भी गूंजती रही। यही कारण है कि लोकाख्यानों पर आधारित पालि-जातकों में इस कथा के प्रामाणिक संदर्भ मिलते हैं। कुछ कथांशों से तो ऐसा प्रतिभासित होता है कि रामकथा तथा बुद्ध-कथा एक-दूसरे में समाहित हैं। तथागत की चर्चा रामायण के अयोध्याकांड (२।१९।३४) में आयी है, इसी प्रकार राम की चर्चा निम्नलिखित गाथा में देखिए—

**दसवस्स सहस्सानि सट्ठिवस्स सतानि च।**
**कम्बुगीवो महाबाहु रामो रज्जं अकारयि॥**

(दसरथ जातक। १३)

# पालि जातक
## रामकथा के संदर्भ में

जातकों में रामकथा का सर्वांगीण नहीं किंतु कथा की मूल-प्रवृत्ति, संघटना-क्रम आदि कतिपय परिवर्तनों के साथ संयोजित मिलते हैं। रामकथा में अयोध्या की प्रधानता है, जातकों में वाराणसी की। रामकथा के सूत्र हमें मुख्यतः देवधम्म जातकं, जयद्दिस जातकं, साम जातकं, अलम्बुस जातकं तथा नलिनिका जातकं में दृष्टिगत होते हैं। दसरथ जातकं में तो रामकथा से पर्याप्त साम्य है। सभी जातकों में पात्रों के नाम और चरित्र में अंतर है।

देवधम्म जातकं का चरितनायक महिंसासकुमार और उसकी विमाता का पुत्र सूर्यकुमार रामकथा के राम और भरत के रूप में चित्रित हैं। पिता ने पुत्र महिंसासकुमार को वन में निवास करने और अपने मरणोपरांत राज्य-भोग की सलाह दी है। कथा का संक्षेप इस प्रकार है—महिंसासकुमार वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त का ज्येष्ठ पुत्र है। उसका छोटा भाई चंद्रकुमार है तथा विमाता से उत्पन्न भाई का नाम सूर्यकुमार है। सूर्यकुमार के जन्म के समय राजा ने अपनी रानी को वरदान देने के लिए कहा तो रानी ने आवश्यकता होने पर मांग लेने का वचन ले लिया था। सूर्यकुमार के बड़ा होने पर उसकी माता ने राजा से उस वरदान की याचना करते हुए कहा, "मेरी अभिलाषा है कि आप राज्य-भोग का सर्वाधिकार मेरे पुत्र सूर्यकुमार को दे दें।" पिता के आदेश पर महिंसासकुमार वन चला गया। वनवास व्यतीत करते हुए एक दिन महिंसासकुमार ने नक्षत्र देखकर पिता की मृत्यु का रहस्य जान लिया। वह वाराणसी आया। राज्य का स्वयं अधिकारी बना, चंद्रकुमार को उपराजा तथा सूर्यकुमार को सेनापति का स्थान दिया।

दूसरा संदर्भ जयद्दिस जातकं में मिलता है। काम्पिल्य नगर के राजा जयद्दिस का पुत्र अलीनशत्रु पिता के

प्राणों की रक्षा-हेतु यक्ष के पास खाद्य-वस्तु के रूप में उपस्थित होता है। उसकी दृढ़ धारणा को देखकर माता-पिता और कुटुंबीजन आशीष-वचनों के संदर्भ में राम और दंडकारण्य वन का उल्लेख करते हैं।

उसकी माता कहने लगी, "दंडकारण्य में गये राम का जैसे उनकी माता ने कल्याण चाहा वैसे ही तुम्हारा कल्याण मैं चाह रही हूं। मुझे यह स्मरण नहीं है कि प्रकट अथवा अप्रकट रूप में कभी मैंने अलीनशत्रु के प्रति क्रोध किया हो। अनुमति प्राप्त कर जाने वाले पुत्र तुम्हारी रक्षा सब देवता करें।"

तीसरा संदर्भ दसरथ जातकं में प्राप्त होता है। रामकथा के सभी चरित्र यथानाम उसमें चर्चित हैं। भिन्नता मात्र कार्य की है। जातकट्ठ-कथा का वर्णन इस प्रकार है—वाराणसी के राजा दसरथ की पहली महिषी से तीन संतानें थीं—रामपंडित, लक्खण और सीतादेवी। रानी की मृत्यु के पश्चात दूसरी महिषी से भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस रानी को राजा ने वर दिया। भरत जब सात वर्ष का हुआ तब उसकी माता ने पुत्र

के लिए राज्य की याचना की। राजा ने अस्वीकार कर दिया, पर रानी के बार-बार कहने पर, षडयंत्र के भय से राजा ने अपने दोनों पुत्रों से कहा, "पुत्रो! वन में चले जाओ। बारह वर्ष बाद आकर राज्य पर अधिकार करना।" सीतादेवी भी साथ गयीं। राजा दसरथ पुत्र-शोक के कारण नौ वर्ष के बाद ही मर गये। भरत ने राज्य-

भोग अस्वीकार कर दिया। वह राम को लाने के लिए वन में पहुंचा। राम ने यह कहकर आना नहीं स्वीकारा कि पिता ने मुझे बारह वर्ष का वनवास दिया है। अंत में रामपंडित ने अपनी तृण-पादुकाएं देकर भरत को राज्य करने का आदेश दिया।

रामकथा से संबंधित कुछ अन्य प्रसंग नलिनिका, साम और अलम्बुस जातकं में मिलते हैं। ऋषि शृंग रामकथा के प्रमुख पात्र हैं। शृंग की तपस्या से इंद्र तक भयभीत हो उठते हैं। उनकी तपस्या से बादल वर्षण तक नहीं करना चाहते। नलिनिका जातकं के अनुसार राजपुत्री ऋषि का तप खंडित करने जाती है—"जनपद जल रहा है, राष्ट्र विनष्ट होना चाहता है। हे नलिनिके! आ और उस ब्राह्मण को अपने वश में कर।"

अलम्बुस जातकं में मृगी संभूत ऋषि शृंग के तप से भयभीत इंद्र ने अलम्बुस नामक अप्सरा को उसका तप विनष्ट करने के लिए भेजा। इंद्र ने कहा, "कल्याणी! तुम समस्त स्त्रियों में श्रेष्ठ हो, परम विचक्षणा हो, अतः अपने रूप-लावण्य से उस तपस्वी को वशीभूत करो।"

इंद्र की आज्ञा शिरोधार्य कर अलम्बुस ऋषि शृंग के आश्रम के समीप पहुंचती है। उसके रूप लावण्य से विस्मित ऋषि ने पूछा, "विद्युत की भांति प्रदीप्तमान तुम कौन हो? ओषधीश-नक्षत्र के समान ज्योतित तुम कौन हो? हाथों में विचित्र आभरण धारण करने वाली तुम कौन हो? कानों में मुक्ता एवं मणि-कुंडलों को धारण किये तुम कौन हो?"

साम जातकं का काव्यमय वर्णन वाल्मीकि-रामायण के वर्णन से कम उत्कृष्ट नहीं है। रामकथा का कोई स्पष्ट सूत्र तो नहीं है, किंतु कथा की पृष्ठभूमि अवश्य विवेचित हो गयी है। स्पष्ट है कि बौद्धों में रामकथा की पावन-भावना का पर्याप्त प्रभाव था। उनके मानस में उसके प्रति आस्था के भाव अवश्य रहे होंगे अन्यथा इन जातकों में ऐसे प्रसंग कदापि समाविष्ट न होते।

**—लोकायन, दारागंज, इलाहाबाद-६**

**वनवास की चौदह वर्षों की लंबी अवधि समाप्त कर जब श्रीराम लक्ष्मण और सीता-सहित अयोध्या लौटे तो मानो सबको अपना-अपना प्रिय मिल गया—भरत को अपना प्राण-प्रिय भाई, उर्मिला को अपना पति, माताओं को अपने नयनतारे पुत्र और प्रजा को अपना राजा। किंतु श्रीराम को जो मिला वह किसी को नहीं मिला। अयोध्या की भूमि की धूल को श्रद्धा के साथ बार-बार अपने सिर पर चढ़ाते हुए प्रेम-विगलित वाणी में वे बोले, "जिसके सामने तीनों लोकों का सारा वैभव तुच्छ है, संसार के सारे स्नेह-संबंध जिसके सामने गौण हैं, कीर्ति और मोक्ष जहां अपना मूल्य नहीं रखते, उस पावन जन्मभूमि को यह भाग्यवान राम फिर से पा गया है।"**

सहस्राब्दियों से भारतीय जनमानस पर राम की अमिट छाप है। जब-जब राम की यशःध्वनि से आकाश निनादित होता रहेगा, उनके प्रबलतम एवं शिष्टतम शत्रु रावण की भी आकृति सबके सम्मुख किसी-न-किसी रूप में उपस्थित रहेगी।

लंका पहले दैत्यकुल की नगरी थी। आदि-पुरुष ब्रह्मा के पुत्र मरीचि की तेरह पत्नियां थीं। उनमें तीन प्रसिद्ध थीं— दिति, अदिति एवं दनु, जिनसे क्रमशः दैत्य, देव, दानवों की उत्पत्ति हुई। तात्पर्य यह है कि दैत्य, देव एवं दानव आपस में दायाद थे। हेति एवं प्रहेति नाम के दो संपन्न दैत्य उन दिनों लंका नगरी के संरक्षक थे। हेति के प्रपौत्र माली, सुमाली एवं माल्यवान थे। देवों एवं दैत्यों में आरंभ से ही वैर भाव रहता था। दैत्यों को अपने शारीरिक बल का अभिमान था और देवों को अपनी बुद्धि पर मिथ्या भरोसा। कैस्पियन सागर पर बसे दैत्यों के परिवार उन दिनों अत्यंत समृद्ध थे। हिरण्यकशिपु उनका राजा था। उसने अतुल रत्न अर्जित किये थे। देवों को यह बात खली। विष्णु की सहायता से उन्होंने उसकी सारी राशि छीन ली। तब से देव एवं दैत्यों में निरंतर युद्ध होते रहे। उसी संग्राम में दैत्यों से लंका भी छीनी गयी। सुमाली वहां से भागकर पाताललोक चला गया, जहां आज मैडागास्कर द्वीप है।

**कैकसी-पुत्र——रावण**

सुमाली अब बूढ़ा हो चला था। लेकिन

राम-रावण युद्ध, उड़ीसा शैली (१७वीं शती) : भारत कला भवन के सौजन्य से

अपनी छिनी हुई लंका की याद उसे बार-बार सताती रही । उसे यह भी पता था कि विश्रवा का पुत्र विश्रवण कुबेर लंका का अधिपति बना है और असंख्य यक्षों के साथ वहां का राज-सुख भोग रहा है । विश्रवा तब विधुर हो चुके थे । सुमाली अपनी परम रूपवती कन्या कैकसी को लेकर आंध्रालय पहुंचा । विश्रवा की उम्र उस समय आधी बीत चुकी थी, किंतु तपःकांति की प्रोज्जवलता से दीप्त थे। सांध्य-वेला थी । कैकसी विश्रवा के पास पहुंची । उस दैत्यात्मजा के रूप-लावण्य पर ऋषि का मन ठिठक गया। विश्रवा ने उसी वन में एक रम्य नगर की स्थापना की, वैभव की सभी विभूतियां वहां एकत्र कीं और अनेक वर्ष तक स्निग्ध चांदनी-सी देह वाली कैकसी के साथ रहे । केकसी से चार संतानें हुईं—रावण, कुंभकर्ण, विभीषण एवं एक परम रम्य बाला चंद्रनखा ।

**दशशीश नाम क्यों ?**

रावण अत्यंत पराक्रमी, वीर योद्धा एवं परम सुंदर था । एक बार बचपन में वह शीशे की माला पहने था । विश्रवा ने देखा कि बालक रावण शीशे की माला पहने कितना प्रिय लग रहा है ! शीशे में उसकी अनेक आकृतियां परलक्षित थीं । पिता को लगा मानो बाल-रावण दश शीशों में शोभा पा रहा हो। उन्होंने उसे 'दशशीश' कहकर पुकारा और तभी से उसका यह नाम पड़ा ।

देवों एवं दैत्यों के बीच अब तक तेरह युद्ध हो चुके थे । देवों ने अपनी निर्मित आचार-संहिता के विरुद्ध आचरण करने वाले असंख्य लोगों को दक्षिणालय की ओर भगा दिया था । उन्होंने दैत्यों के समूल विनाश के लिए कुछ भी उठा न रखा । दैत्यों को लालच दिखाकर उन्होंने समुद्र का मंथन किया। दैत्यों को मोर्चे पर रखा और स्वयं पीछे रहे। जब रंभा, गज, रत्न, अमृत आदि अच्छी चीजों की उपलब्धि हुई तो वे उन्हें लेकर भाग गये । एक बूंद अमृत पीने वाले राहु-केतु के सिर उन्होंने धड़ से उड़ा दिये। विष्णु के भाई नृसिंह ने हिरण्यकशिपु का वध किया और विष्णु ने उसके पुत्र प्रह्लाद से मित्रता स्थापित की। लेकिन यह मित्रता भी अधिक दिनों तक चल नहीं पायी। प्रह्लाद के पौत्र संत राजा बलि का वैभव देवों से देखा न गया । देवों के नेता विष्णु ने वहां भी एक चाल चली और छल से उसके राज्य को तीन डग में नाप कर हड़प लिया ।

**एक समाजवादी नेता**

किशोर रावण बड़ी सतर्कता से इन घटनाओं का मनन कर रहा था। उसने दक्षिण के सभी लोगों को एक सूत्र में बांधने के ध्येय से 'वयं यक्षामः' के स्थान पर 'वय रक्षामः' का उद्घोष किया । उसका नारा बना 'हम रक्षा करते हैं' । इस प्रकार रावण ने 'राक्षस संस्कृति' की नींव डाली। इसका अर्थ था सब लोग एक सूत्र में रहकर

अपनी रक्षा करते हुए सबकी रक्षा का बीड़ा उठाएं। 'राक्षस' दो शब्द-ध्वनियों से निर्मित है–रा+क्षस। 'रा' मिस्री भाषा में सूर्य को कहते हैं। भारत में सूर्य आदि बारहों भाई आदित्य कहलाते हैं, जिनका संबंध देवकुल से है। आदित्यों की सभ्यता का प्रतीक है 'रा' और यक्ष संस्कृति का 'क्षस'। रावण ने देव एवं यक्ष संस्कृतियों का समावेश करके अपनी मिश्रित संस्कृति––'राक्षस संस्कृति' की स्थापना की। रावण का ध्येय था धन-वैभव की रक्षा, जिससे समाज के सभी व्यक्ति उसका भोग कर सकें। धन एक जगह सिमटा न रहे। वह तथाकथित अनार्य संस्कृति एवं उत्तर की आर्य संस्कृति को एक करके एक सार्वभौम समाजवाद की संरचना करना चाहता था। दरअसल 'राक्षस संस्कृति' का संस्थापक रावण ही इस धरती का सर्वप्रथम एवं अन्यतम समाजवादी नेता था।

आर्य-सहित देवगण रावण के इस आचरण से असंतुष्ट थे। उन्होंने रावण को पराजित करने का संकल्प कर लिया। इसलिए देव एवं आर्यों के नेता राम एवं रावण का दुर्द्धर्ष संघर्ष वैयक्तिक नहीं, अपितु दो विचार-सरणियों, दो संस्कृतियों का संघर्ष था। इसमें रावण पराजित भी हुआ। इससे यह पता चलता है कि दैत्य संस्कृति में आपसी फूट थी और उनमें कई बड़ी कमजोरियां भी घर कर गयी थीं।

**रूपवान रावण**

रावण रूपवान था। उसके रूप को देखकर मय की पुत्री मंदोदरी मोहित हो गयी। उन दिनों वे दोनों गोकर्ण आश्रम में सैन्य-शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अपने विद्वान पिता के सान्निध्य में रहकर उसने समस्त विद्याओं पर अल्पकाल में ही अधिकार प्राप्त कर लिया था। वह स्वयं विद्याधर था और विदुषी कन्याओं से उसने ब्याह भी किया था। उसने किसी कन्या से बलात ब्याह नहीं किया था। उसके रूप एवं शौर्य को देखकर कन्याएं रीझ उठती थीं। उसके जीवन में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि उसने किसी की ब्याही पत्नी को अपने महल में रखा हो। वाल्मीकि ने कहा है कि हनुमान को लंका में उसके महल में किसी 'अन्यकामा' या 'पूर्वकामा' स्त्री का दर्शन नहीं हुआ।

**तीन संस्कृतियों का संगम**

रावण के व्यक्तित्व में तीन संस्कृतियां समाहित थीं––पितृकुल से आर्य संस्कृति, मातृकुल से दैत्य संस्कृति एवं बहिष्कृत व्रात्य संस्कृति। वह महापंडित, तेजस्वी एवं दिग्विजयी सम्राट था। अपने पराक्रम के बल पर ही वह लंका का अधिपति बना और समस्त 'राक्षस संस्कृति' का नेता। अपने शौर्य के बल पर उसने सभी दिग्पालों को पराजित और विंध्य के दक्षिण में अपनी 'राक्षस संस्कृति' का विकास किया था। उत्तरी भारत में भी दंडकारण्य एवं नेमिषारण्य में उसकी सैन्य

छावनियां थीं । उसकी बहिन चंद्रनखा स्वयं दंडकारण्य क्षेत्र की महिषी थी । उसकी राजधानी लंका देखकर हनुमान को वह सहसा देवलोक की भांति दिखायी दी, जहां रावण प्रज्वलित अग्नि के समान स्वर्णिम आसन पर आसीन था ।

**कवि और भावुक भक्त**

रावण दुर्दांत योद्धा ही नहीं, भावुक, भक्त, संगीतज्ञ और कवि भी था । उसने 'पंचमवेद' की रचना की थी, जो 'कृष्ण-यजुर्वेद' के नाम से अभिहित किया गया । वह अत्यंत व्यवहारकुशल था । वह प्रजातांत्रिक भी था । राम से युद्ध के लिए उसने जो संसद बुलायी थी उसे उसने एक दिन के लिए इसलिए स्थगित कर दिया कि मंत्रिमंडल का एक सदस्य उस दिन उसके मत से सहमत नहीं हो पाया था । उसके मंत्री बिना भय के उसके विरोध में मत दे सकते थे । जब उसका भाई विभीषण, जो मंत्री भी था, उसकी राय से सहमत नहीं हुआ तो वह उसके शत्रु राम से जा मिला ।

**निंदनीय रावण ?**

रावण ने बदला लेने की भावना से वशीभूत होकर ही सीता का हरण किया, किसी वासना के कारण नहीं । यही कारण था कि उसने सीता को अशोकवाटिका में शरण दी । यदि उसने चाहा होता तो सीता को जबरन राजमहल में रखता । इसके बावजूद रावण को माफ नहीं कि[या] जा सकता । लगता है, रावण की बुद्धि [में] कहीं न कहीं भटकाव आ गया था और [वह] ऐसा कार्य कर बैठा जो क्षमा-योग्य न[हीं] कहा जा सकता । इसीलिए रावण की नि[ंदा] भी जाती है । यह घटना न होती तो शा[यद] रावण का रूप ही दूसरा होता । इतना [ही] नहीं, रामेश्वरम में राम द्वारा शिवलि[ंग की] स्थापना एवं उनकी उपासना को फल[ी]भूत बनाने के लिए उसने वहां सीता [को] राम के पास पहुंचाया और स्वयं पुरोहि[त] का कार्य किया । ऐसे शिष्ट शत्रु का उद[ा]हरण संसार में अन्य नहीं है ।

वैसे कहा जाता है कि रावण का [यह] प्रण था कि जो स्त्री उसे मन से वरण न[हीं] करेगी, उसको वह हाथ नहीं लगायेगा । नलकूबर की पत्नी ने जब रावण के [रूप] एवं शौर्य पर रीझकर उससे प्रेम-प्रस्ता[व] किया तो उसने यह कहकर टाल दिया [कि] पति के रहते परपुरुष से संसर्ग स्थापि[त] करना उचित नहीं है ।

रावण पर उसकी जनता का अग[ाध] स्नेह था । युद्धभूमि में गिरे हुए रा[वण] को देखकर लंका के स्त्री-पुरुष, आबा[ल]वृद्ध एक स्वर में कराह उठे थे । [वै]भाई विभीषण भी रावण को गिरा देख[कर] अपने को संभाल न सका ।

**एक नये डॉक्टर ने किसी अनुभवी डॉक्टर से पूछा, "डॉक्टरी में सफल होने का रहस्य क्या है ?"**

**"नुस्खे ऐसे अक्षरों में लिखो जो कोई न पढ़ सके और बिल ऐसे अक्षरों में लिखो जो सब पढ़ सकें," सलाह मिली ।**

## अहसास

लगता है—
भोर होते ही
एक रात
मुझसे भटकने लगती है
सब ओर उभरा
कुछ क्षण पहले का
भयावह अंधकार
सिमट आता है
मुझ तक ही
लगता है—
कितने-ही प्रश्न
कितने-ही प्रसंग
कितने-ही अहसास
शब्द मांगते हैं मेरे द्वार पर
जबकि—
किसी प्रश्न का
दे सकने वाला उत्तर नहीं
कि—
शब्दों की परिधि से कहीं दूर
संदर्भहीन-से प्रसंग
बस अहसास-से
भीतर-ही-भीतर ढहते हैं
और मैं
विश्वास के ढहते कगारों पर खड़ी
मौन को ही अर्थ दिये जा रही हूं
हर सांस में

—आशा शर्मा
—ब्लाक एच, ५।१८, कृष्णनगर, दिल्ली

## अंतहीन संभावनाएं

जुड़ते जरूर कभी
भाग फिर अधूरे के
कुंकमी कछारों पर
गुनगुनी हिलोरों पर
फुदक रही वनपाखी
चितकबरी ज्वारों पर
मन की मृगछौनी यह
फिकर नहीं करती है
तनिक भी धतूरे की

सपने भी लौटे
हर डाल के
लेकिन वे रेख नहीं
मिटे मेरे भाल के
बस थाती इतनी-सी
अपनी है
कुहरा पल-छिन का ही
होता है
दुख भी तो एक-सा
न रहता है
निश्चित दिन लौटते हैं घूरे के

—मीना भारती
—अभिनव निवास, खबरा रोड,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

**● महेश्वर दयाल**

# चांदनी चौक में कत्ल

मुगल सम्राट औरंगजेब आलमगीर एक दिन सवेरे के समय लाल किले के झरोखे-दर्शन में बैठा था। सावन-भादों का मौसम था। मूसलाधार पानी बरस रहा था। नदी का पाट दूर तक चला गया था। यमुना लाल किले की नींव को चूम रही थी। बादशाह ने देखा कि मिट्टी की एक गोल (मिट्टी का बड़ा पक्का मटका) दरिया में डूबती-उछलती चली जा रही है। औरंगजेब ने नौकर की तरफ हाथ का इशारा किया कि दरिया में लुढ़कती-लुढ़कती चली जा रही उस गोल को पानी से निकलवा कर हाजिर करो। हुक्म की देर थी। तैराक नदी में कूदे और गोल निकालकर बादशाह के सामने ले आये। उसका मुंह ढकने से कसकर बंद किया गया था और उसके ऊपर कपड़ा बंधा हुआ था। बादशाह ने भांप लिया कि दाल में कुछ काला है। उसने कोतवाल को बुलाने के लिए आदमी भेज दिये। कोतवाल के आते ही औरंगजेब ने कहा, "इस गोल को खोलकर देखो। इसमें क्या है ?" कोतवाल ने ढकना खोला तो अंदर से एक आदमी की नंगी ल निकली। मृतक की आयु पचास वर्ष रही होगी। मुंह पर दाढ़ी, मूंछें क हुई, सिर के बाल कंधे तक। उसके ग तांत का फंदा पड़ा था। इससे ही मारा गया था।

लाश गोल से निकालकर चार पर रखी गयी। हुक्म हुआ कि इसे चां चौक की कोतवाली के दरवाजे पर ले जा और ढिंढोरा पिटवा दो कि शहरवाले ल को पहचानें। शहर में सनसनी फैल ग दिल्लीवाले लाश को देखने आते लेकिन उसे कोई पहचान नहीं सका।

बादशाह को खबर मिली तो उ लाश को दफन करने का हुक्म दे दिया कोतवाल से कहा कि हत्यारे का प लगाओ। कोतवाल ने शहर के सब कुम्ह को कोतवाली में बुलाकर गोल दिखा और हर एक से पूछा कि बताओ, तु से किसने यह गोल बनायी है ? कोई कुम्ह गोल को पहचान नहीं सका, लेकिन थो देर बाद तेलीवाड़े का एक कुम्हार आय उसने कहा कि यह गोल मेरे हाथ की ब हुई है। मैंने ऐसी सात गोलें बनायी और उन्हें जिस-जिसके हाथ बेचा, उन जानता हूं। यह गोल अन्य गोलों से बड़ी इसे मैंने एक बावर्ची को बेचा था। उस चांदनी चौक में दूकान है। कुम्हार की ब सुनकर कोतवाल बावर्ची की दूकान गया। बावर्ची ने कहा, "हां, यह गोल इस कारीगर से ली थी और मुंह बंद

मैंने ही इसे यमुना में डाला। यही नहीं, गोल में लाश भी मैंने ही रखी थी।"

बावर्ची को पकड़कर कोतवाल लाल किले ले गया और उसे बादशाह के दरबार में ले जाकर खड़ा कर दिया। औरंगजेब ने बावर्ची से पूछा, "क्या तुमने इस आदमी का खून किया है?"

बावर्ची बोला, "हुजूर, मैं जो कुछ कहूंगा, सच-सच कहूंगा। मैं बहुत ईमानदार आदमी हूं। मेरी दूकान पर खाने की बिक्री

जाने का रास्ता है। आप कमरे में चले जाइए। मैं खाना भेजता हूं।' वह कोठे पर गया और मेरा लड़का उसे खाना दे आया। थोड़ी देर बाद दो अन्य यात्री आये। उन्होंने मुझसे पूछा कि हमारा भाई तुम्हारे यहां खाना खाने तो नहीं आया? उन्होंने उसका हुलिया भी बताया। वह इस मृतक से मिलता था। मैंने कहा, 'आया है। ऊपर कमरे में खाना खा रहा है?' वे बोले, 'ठीक है। लो यह रुपया, हमारे लिए भी

बहुत है। मेरी दूकान के दो हिस्से हैं। एक में खाना पकता है। दूसरे में खाना खिलाया जाता है। यहां चांदनी का फर्श है। मेरे पास दूकान के ऊपर भी एक कमरा है। उसकी सजावट भी कुछ कम नहीं। नीचे जगह नहीं रहती तो खानेवालों को ऊपर भेज देता हूं। एक यात्री मेरी दूकान पर दिन के पहले पहर आया और कहने लगा, 'खाना लाओ।' नीचे जगह नहीं थी। मैंने कहा, 'यह ऊपर

खाना ऊपर भेज दो।' यह कहकर दोनों यात्री धम-धम करते कोठे पर चढ़ गये। मेरा लड़का उन दोनों को भी खाना दे आया। कुछ देर बाद जब लड़का ऊपर गया तो उसने देखा कि पहले यात्री के गले में तांत का फंदा है और वह फर्श पर मरा हुआ नंगा पड़ा है। बाद में ऊपर पहुंचने वाले दोनों यात्री भी वहां नहीं थे। लड़के ने मुझसे यह हाल कहा तो मैं उधर गया।

लाश एक तरफ पड़ी थी। बाद में उसके कपड़े एक कोने में पड़े मिले। उन्हें देखने से मालूम हुआ कि उसकी कमर में जो थैली थी, खाली है। जो कुछ उसमें था, वह कोई निकालकर ले गया है। मैंने रात के अंधेरे में इस लाश को वहां से निकालकर एक अन्य कोठरी में छिपा दिया और कमरे में ताला डाल दिया। सवेरा होते ही तेलीवाड़ा गया और वहां कुम्हार से एक बहुत बड़ी गोल खरीदी। फिर हम दोनों बाप-बेटों ने लाश को गोल में ठूंसा और यमुना के किनारे-किनारे चंद्रावल गांव से आगे जाकर गोल यमुना में बहा दी। गोल किले तक बहती चली आयी, लेकिन फिर भंवर में ऐसी फंसी कि निकल न सकी। सच्ची बात तो यह है कि हमने खून नहीं किया।"

औरंगजेब ने बावर्ची और उसके बेटे को अपने घर चले जाने का हुक्म दे दिया और कोतवाल से कहा, "कातिल को ढूंढ़कर लाना तुम्हारा काम है। हत्यारे का पता नहीं चला तो तुम कातिल समझे जाओगे।"

कोतवाल से कुछ कहते न बना। गरदन झुकाये खड़ा रहा। शहर में चार दिन तक छानबीन करता रहा, पर कातिल का पता नहीं चला। कोतवाल ने सोचा, यह काम किसी दिल्ली वाले का नहीं, बाहर के आदमी का मालूम होता है। हो न हो, यह कत्ल किसी ठग ने रुपये के लालच में किया है। अगले दिन वह दरबार में पहुंचा और खूनी का पता चलाने के लिए दिल्ली से बाहर जाने की आज्ञा मांगी।

बादशाह ने कहा, "ठगों को पकड़ना आस नहीं। लेकिन हम तुम्हें कुछ बातें बता हैं। उन्हें पल्ले में बांधो। मरनेवाले तहबंद, कुरता साथ लो और शेरशाह सड़क (ग्रैंड ट्रंक रोड) पर अपने आ मियों का जाल बिछा दो और दोषी पकड़कर दरबार में हाजिर करो।"

कोतवाल ने २० बर्कअंदाजों (बंदू चियों) का घुड़सवार दस्ता साथ लिया सिपाहियों के कपड़े उतारकर उन्हें दे तियों के कपड़े पहनाये। फिर उन्हें ले दिल्ली दरवाजे से बाहर मथुरा की सड़ पर चल दिया।

मथुरा पहुंचने से पहले कोतवाल उसके सिपाही जिस किसी सराय में उन्हें भटियारों और यात्रियों ने यही चेत वनी दी कि शाकिर खां, रोशन और गु शेर खां ठगों की टोलियों ने इधर आ जाने वालों का नाक में दम कर रखा है कोतवाल ने हर एक से इन ठगों का अत पता पूछना चाहा, लेकिन कोई कुछ ब नहीं सका।

एक दिन आगरा जाने वाली सड़ पर जब कोतवाल घोड़े पर सवार आगे-आ और उसके साथी सड़क से थोड़ा हट पेड़ों की आड़ में पीछे-पीछे आ रहे थे, उ किसी औरत के रोने-चीखने की आवा सुनायी दी। कोतवाल घोड़ा दौड़ाता हु आगे निकल गया। सिपाही रुक गये कोतवाल ने देखा, एक सुंदर युवती सड़ के बीचों-बीच बैठी रो रही है। उसके

घने बाल खुले हैं। कोतवाल ने लगाम थाम ली और पूछा, "तुम कौन हो ? क्यों रो रही हो ?" यह सुनकर वह लड़की सिसकियां और आहें भरने लगी।

कोतवाल तजुर्बेकार, घाघ आदमी था। वह भांप गया कि लड़की जो कुछ कर रही है, सब छल-कपट की बातें हैं। वह अबला नहीं, वेश्या है जो ठगों से मिली हुई है। ठग भी यहीं-कहीं आस-पास छिपे होंगे। लेकिन यह जानते हुए भी उसने लड़की से हमदर्दी जतायी और उसे अपने घोड़े पर बैठा लिया। उसने अपना पैर रकाब में रखा ही था कि उसे पीछे एक ऊंचे पेड़ में पत्तों की खड़बड़ सुनायी दी। उसने बड़ी फुर्ती से अपने घोड़े का मुंह मोड़ दिया। इतने में एक गोली चली। कोतवाल के एक साथी ने पेड़ पर छिपे बैठे आदमी को ऐसा ताककर निशाना मारा था कि वह घायल होकर नीचे गिर पड़ा। उसके हाथ में तांत का फंदा था। वर्कअंदाजों ने उसे पकड़ लिया। वह आदमी कोई और नहीं, ठगों का सरदार शाकिर खां था। कोतवाल और उसके साथी शाकिर खां और उस लड़की को साथ लिये पास की एक सराय में पहुंचे। यहां शाकिर खां की मरहम-पट्टी की गयी। जब वह अच्छा होने लगा तो कोतवाल ने उससे भेद जानने की कोशिश की, लेकिन शाकिर खां आसानी से मानने वाला न था। दो-तीन दिन तक उसे कोड़े लगे और शिकंजे में कसा गया तो उसने दिल्ली में खून करने वाले साथियों रोशन और गुल-शेर खां का पता, हुलिया, लिबास सब बता दिया। कोतवाल ने शाकिर खां और उस लड़की को आगरे की काल-कोठरी में बंद किया और अपने साथियों सहित शाकिर खां के बताये हुए रास्ते पर पूर्व की ओर चल दिया।

बनारस पहुंचने से पहले उसने देखा कि सड़क पर पेड़ों की छाया में सात ऊंट-सवार कुएं से डोल भर-भरकर अपने जान-वरों को पिला रहे हैं। उनकी रंगत काली और शक्लें डरावनी हैं। उनकी दाढ़ियां बकरों-जैसी, डील-डौल लंबा-चौड़ा है। सबके गले में लंबा कुरता और टांगों में मोटे कपड़े का तहबंद है। पांव में भारी-भारी अधोड़ी अस्तर के जूते हैं। उन्होंने अपनी गठरी में से लकड़ी के दो बरतन निकाले। थैलों में से सत्तू और गुड़ निकाला और खा-पीकर चिलम सुलगायी। कोतवाल और उसके साथी उन ऊंटसवारों के पास पहुंचे तो उन्होंने पलक झपकते ही भांप लिया कि वे कौन हैं ? शाकिर खां ने जो हुलिया बताया था, हू-बहू वही था।

कोतवाल ने ऊंटसवारों से कहा, "प्यास लगी है, पानी पिलाइए। हम भी मुसलमान हैं। आप भी मुसलमान।" ऊंटसवार चिलम पीकर नशे में ऊंघ रहे थे। उन्होंने इशारे से कहा, "पी लो।"

कोतवाल बोला, "भाइयो ! आपने कभी दिल्ली देखी है ? लाल किला देखा है? चांदनी चौक देखा है ? यह कपड़े देखे हैं ?"

ऊंटसवारों ने कत्ल हुए आदमी के

कपड़े देखे तो बौखलाकर बोले, "नहीं, नहीं ! हमने दिल्ली नहीं देखी। चलते बनो, नहीं तो जान से हाथ धो बैठोगे।"

वे अभी अपने हथियार उठाने वाले ही थे कि कोतवाल और उसके साथियों ने उन्हें रस्सियों से बांध लिया और कहा, "अच्छा ! तुमने दिल्ली नहीं देखी, तो अब हम तुम्हें दिल्ली दिखाएंगे।" ठगों के हाथों में हथकड़ियां डालकर कोतवाल और उसके बंदूकचियों ने ऊंट सवारों को अपने घेरे में ले लिया। कई दिन का रास्ता तयकर वे सब दिल्ली पहुंच गये।

दिल्ली में उन कातिलों और ठगों को देखने के लिए सारा शहर उमड़ आया। कत्ल का मुकदमा था, बादशाह के सामने पेश हुए। सबसे पहले बावर्ची और उसके लड़के को, जिनके यहां वे ठग खाना खाने आये थे, पहचानने के लिए इशारा हुआ।

गुलशेर खां और रोशन पहचान लिये गये। उन्हें कठघरे में खड़ा किया गया और बयान लिये गये। गुलशेर खां ने कहा, "हुजूर ! हम ठग हैं। पीढ़ियों से ठगी हमारा पेशा है। हमारे बहुत-से चेले हैं, जो ढाका से पेशावर तक फैले हुए हैं। सौ-सौ कोस तक एक सरदार की सीमा है। हम उसी सीमा में अपने असामी का काम तमाम कर देते हैं। लूट-मार में रुकावट होती है तो हम असामी को दूसरी सीमा के हाथ बेच देते हैं। जैसा असामी, वैसा दाम ! कभी-कभी एक असामी लाख-लाख रुपये में बिक जाता है। हममें से कुछ ठग कस्बों की सरायों में जाकर हल बेचते हैं। सराय की कोठरी में जा जहर का हलवा खिलाते हैं। आद मर जाता है और हम माल ले चंपत हो जाते हैं। हम लोग तेल-मालि भी करते हैं। यात्री सो जाता है अ हम उसका माल बांधकर उड़नछू हो ज हैं। हमारी टोलियों में एक से एक बढ़ सुंदर जवान लड़कियां हैं, जिन्हें देख यात्री अपने होश खो बैठता है। वे अप अदाओं ही से आदमियों को अपने व में कर लेती हैं, लेकिन अगर कभी को उन्हें उड़ाकर ले जाने की कोशिश करता तो वे लड़कियां अपने आप और क हमारी मदद से भी उसका काम तम कर देती हैं। यह यात्री, जिसका चांद चौक में कत्ल हुआ है, राजमहल ना की जगह से चला था। रास्तेवालों इसे मोल न लिया। बदशगुनी हो गयी दिल्ली पहुंचकर दांव लगा। हम इस कमर से ५०० अशर्फियां खोलकर दिये। इनमें से छह अशर्फियां खर्च की है बाकी कोतवाल साहब के पास हैं।

गुलशेर खां के बयान के बाद कोतव ने वे अशर्फियां, तांत के फंदे, भंग, चर गांजा, धतूरे के बीज, जो ठगों की गठरि में मिले थे, बादशाह को दिखाये। औरंग ने कोतवाल को इनाम देकर मालाम किया और ठगों को फांसी का हु दे दिया।

**—९६, बाबर रोड नयी दिल्ली-११००**

# क्षणिकाएं

## गजरा

कांटों की नोक पर खड़ा था गुलाब
नन्ही चमेली कुशलता पूछ रही थी
तभी . . .
सुई ने बेध कर गजरा बना दिया।

## जलन

सूरज ने चाहा था चांद से बांट ले
अपनी जलन
रात बड़ी स्वार्थी निकली
रोशनी लेकर भाग गयी

—नसीम रहमान

## हरित क्रांति

नेताजी के प्रयत्न से
हो गयी
हरित क्रांति
हरी कैडलॉक में घूमने लगी
उनकी बिटिया—
शांति

—शेरसिंह काम्बोज

## अकाल

तीन महामारियों की
रामबाण औषध है
अकाल
आबादी में कमी
बेकारी दूर
और
गरीबी गायब

—शिवनारायण जोशी

## कवि-सम्मेलन

कुछ कंठ
कुछ साजबाज
कविता के क्षेत्र में
संगीत का राज

—रविशंकर

## निर्णय

जिस पीपल-तले
समाज के वर्ग-विभाजन पर
विचार-गोष्ठी आयोजित हुई
उसकी देह पर
एक बरगद पनप रहा था

—बलराम अग्रवाल 'रवि-रश्मि'

● डॉ. शिवनंदन कपूर

आज से हमारी दोस्ती पक्की रही। इस पर मजबूती की मुहर लगाने के लिए हम अपनी पगड़ियां बदल लें—नादिरशाह के ये शब्द दरबार में गूंज उठे।

दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने नादिरशाह की नजरों से बचाकर जिस कोहनूर हीरे को अपनी पगड़ी में छिपाये रखा था, वह भरे दरबार में इस तरह लुट गया। पगड़ी बदलना मित्रता का प्रतीक जो रहा!

पगड़ी प्रतिष्ठा का भी प्रतीक रही है। युवराज को राजा बनाते समय पगड़ी बांधी जाती थी। आज भी परिवार में पिता की मृत्यु होने के बाद बेटे के पगड़ी बंधने की रस्म होती है। पराजित राजा की पगड़ी उतार ली जाती थी। इसी के आधार पर 'पगड़ी उतारना' ल... का व्यंजक हुआ। 'पगड़ी उछालना'... इज्जत करने का संकेत है।

**नारियां भी पहनती...**

प्राचीन काल में भारतीय पुरुष... नहीं, नारियां भी पगड़ी पहनती थीं... 'यजुर्वेद' में गाय की रस्सी को इंद्राणी... 'उष्णीशो' कहा है। प्राचीन ईरानी साहि... में भी नर-नारी दोनों के पगड़ी पह... की परंपरा का उल्लेख है। 'शतप... ब्राह्मण' में इंद्राणी की पगड़ी का व... है। राज्य-प्राप्ति के समय पहले महारा... भी पगड़ी धारण करती थी। 'अथर्वे... में श्रद्धा के वेश-वर्णन में भी पाग (पगड़ी... का उल्लेख है।

सांची के चित्रों में साधुनियों का अं... है, जो ढीली-ढाली पगड़ियां या ऊंचा सा... बांधे हैं। मथुरा-संग्रहालय में एक पह... दार नारी लट्टूदार ऊंची पगड़ी बांधे है... कुषाण-काल में भी महिलाएं सिर ढक... के लिए पगड़ी ही बांधा करती थीं, ... जूड़े पर चक्करदार फेंटे बनाकर बां... जाती थी। कभी-कभी शीर्षपट्ट में अ... भी लटकाया जाता था। अजंता के भि... चित्रों में पगड़ी पहने नारियां अंकित हैं... शुंग-काल की नर्तकियां भी पगड़ी बांध...

थीं। अन्य नारियां पट्टियों की पगड़ी धारण करती थीं। ये पट्टियां एक-दूसरे को काटती हुई लपेटी जाती थीं।

'नाट्यशास्त्र' में पुरोहितों के पगड़ी पहनने का उल्लेख है। यज्ञ के अवसर पर ऋत्विज लाल रंग का उष्णीष पहनते थे, जो उष्णता शांत कर मस्तिष्क शीतल रखता था। राजसूय और वाजपेय यज्ञों में राजा अनिवार्य रूप से पगड़ी पहनते थे।

प्राचीन ग्रंथों में अनेक प्रकार की पगड़ियों का उल्लेख है। राजाओं के यहां कलात्मक ढंग से पगड़ी बांधने वाले सेवक रहते थे। रईसों के यहां इस काम के लिए निपुण नाई थे। जातक ग्रंथों में ऐसे कुशल नाइयों का उल्लेख है। ईसवी-पूर्व दूसरी शती में दक्षिण भारत की अटपटी, पेंच-वाली पगड़ी का वर्णन है। इससे दायां कान ढका रहता था।

**शुंग-काल एवं सातवाहन-युग में**

शुंग-काल में कामदार पगड़ियों का प्रचलन रहा। उस काल में सिर पर जूड़ा बनाकर पगड़ी बांधते थे। शुंग-काल की पगड़ियों के नमूने भरहुत में देखने को मिलते हैं। उनमें लट्टूदार साफों की बहार है। साफों में बुंदकियों और पत्तियों का काम है। लट्टू में बेलें बनी हैं। किसी लट्टूदार भारी साफे पर झालर भी झमक रही है। सादे झालरदार तथा चौफुलिया साफे भी हैं। किसी का छोर ऊपर निकला है, कहीं झालर कानों को ढक रही है। फूल-पत्तियों के अलावा कुछ पागें आभूषणों से सजी हुई हैं। कुछ पगड़ियां लंबोतरी-सी, कुछ पंखे के आकार की हैं। कहीं किसी साफे को मालाओं आदि से सजाया गया है। कुछ पान के आकार के हैं।

सातवाहन-युग में अनेक प्रकार की पगड़ियां पहनी जाती थीं। तीन-चार बार लपेटकर, आगे लट्टू-सा बना देते थे, कभी एक-दो फेंटे देकर कुछ नीचा बांधा जाता था। कुछ लोग ऐसे महीन कपड़े की पाग बांधते जिससे उनके केशों की झलक मिलती रहती थी। कभी मोती की लड़ियां लटकायी जातीं, कभी आगे मुकुट-जैसा लट्टू बनाया जाता।

**कुषाण एवं हर्ष-काल में**

कुषाण-युग में लंबी पट्टी से बनी पगड़ी विशेष प्रिय थी। रईसों की पगड़ियां सोने के काम से झिलमिलाती रहती थीं। उन पर गोल शीर्ष-पट्ट ही नहीं, रत्न-जटित कलगी भी लहराती थी। अमरावती के चित्रों से कुषाण-कालीन दक्षिण-भारत की पगड़ियों का अनुमान होता है। वे दो-

तीन फेरों की तथा ढीली-ढाली पहनी जाती थीं। मध्य में धातु का शीर्ष-पट्ट रहता था। इसके सिरे पर मयूरपंख-जैसे आकार का आभूषण भी पहना जाता था। अमरावती के चित्रों में पानाकार शीर्ष-पट्ट हैं।

गुप्त-कालीन साहित्य में पगड़ियों का उल्लेख है। समुद्रगुप्त के सिक्कों पर राजा शीर्ष-पट्ट वाली पगड़ी पहने हैं। अजंता के एक भित्ति-चित्र में बिंबसार की पगड़ी पर सिर-पेंच लहराता दिखाया गया है। रण-क्षेत्र में राजकुमार भारी पगड़ियां पहना करते थे। सामान्य जन की वेश-भूषा भी धोती, दुपट्टा और पगड़ी थी। विदेशी सेवक भी धारीदार पगड़ियां पहने हैं।

हर्ष-काल में सिपाहियों की पगड़ी फूलों से सजी दिखायी गयी है। 'हर्षचरित' में मलमल के महीन पाग का वर्णन है। बीच में उसे स्वस्तिक-ग्रंथि या लट्टू से सजाते थे। मुगल-काल में जामा, पाजामा के साथ पगड़ी पहनने की प्रथा थी। सामंतों की पगड़ियों में सोने के फूल लगे होते थे। बादशाह भी पगड़ी पहनते थे। राजस्थान में राजपूत राजाओं की तो यह शान रही। पगड़ी की आन पर वे जान भी देने के लिए प्रस्तुत रहते थे। देवताओं की पगड़ी-युक्त प्रतिमाएं एवं चित्र प्राप्त हुए हैं। ग्वालियर में उदयगिरि के अंतर्गत प्राप्त वराह के चित्र में उन्हें पगड़ी पहने दिखाया गया है।

**स्थापत्य-कलाओं तथा चित्रों में**

प्राचीन मूर्तियों, गुफाओं के चित्रों आदि में पगड़ियों के अनेक प्रकार हैं। सांची में शंखाकार पगड़ियां देखने को मिलती हैं। कहीं शंखाकार लट्टू हैं। कहीं कई फेरों में बंधी पगड़ी पर अलंकार शोभित हैं। कहीं-कहीं इनके लट्टू कमल या बेलन-जैसे भी हैं। राजा की माले-मनकों से सजी गुंबददार पगड़ियां भी देखने में आयी हैं। ध्वज-वाहक तीन फेरों वाली पगड़ियां पहना करते थे। द्वारपालों की भी पगड़ियां मोती-मनकों से सजी हैं। गांधार-कला में चमकदार लट्टू वाली तथा तिकोने अलंकार से सजी पगड़ियां भी हैं। अमरावती में पंख खुंसी पगड़ियों के चित्र मिले हैं।

शिवाजी की ऊंची कलगी वाली पगड़ी दूर से ही पहचान में आ जाती है। अकबर की पगड़ी पर राजपूत प्रभाव लक्षित होता है। गुरु गोविंदसिंह ने सिखों के लिए पगड़ी अनिवार्य कर दी थी। मारवाड़ियों, पंजाबियों, मराठों सभी की पगड़ियां अलग-अलग ढंग से बांधी जाती हैं। सिंधी, जाट आदि अपनी पगड़ी से अलग पहचान लिये जाते हैं। शादी पर दूल्हे को पगड़ी बांधी ही जाती है। वह तीन दिनों का बेताज का बादशाह जो बन जाता है। बच्चों को भी विशेष अवसरों पर 'पगिया' बांधी जाती है।

इस प्रकार पगड़ी भारत की वह प्राचीन वेश-भूषा है जो प्रतिष्ठा का प्रतीक रही है। यद्यपि टोपी, हैट और नंगे सिर रहने के फैशन ने उसे उड़ाने की बहुत चेष्टा की, तथापि उसका लोप नहीं हो पाया है।

**—३८७, टपाल चाल, खंडवा, म. प्र.**

• चन्द्रप्रकाश माथुर 'चन्द्र'

भारतीय फिल्मों का 'स्वर्णकाल' तब था, जब उनका निर्माण होते हुए दस वर्ष हो चुके थे। उस समय अगर कोई फिल्म दर्शकों द्वारा पसंद की जाती थी तो उसकी सफलता का श्रेय निर्माता-कंपनी को ही प्राप्त होता था, हालांकि यह सफलता सारे सहयोगियों के श्रम से ही प्राप्त होती थी। कला का मापदंड तब ग्लैमर न होकर अभिनय-क्षमता होती थी। निर्देशक को तब गुरु माना जाता था।

प्रारंभिक वर्षों में कई प्रमुख फिल्म-कंपनियां थीं -- 'कारदार प्रोडक्शन,' हिमांशुराय की 'बांबे टाकीज', व्ही. शांताराम की 'प्रभात फिल्म कंपनी', सरकार का 'न्यू थियेटर्स,' भट्ट बंधुओं का 'प्रकाश पिक्चर्स,' महबूब खां का 'महबूब प्रोडक्शन,' 'रणजीत फिल्म्स' आदि।

**अनेक सफल फिल्मों का निर्माण**

१९३५ में सोहराब मेहेरवानजी मोदी ने सिंह चिह्न वाले 'मिनर्वा मूवीटोन' की स्थापना की। सोहराब मोदी का जन्म २ नवंबर, १८९७ को बंबई में हुआ था। उन्होंने ग्वालियर में शेक्सपीयर के कई नाटकों को रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया था।

१९३६ में उन्होंने 'हैमलेट' को मिनर्वा मूवीटोन के अंतर्गत 'खून का खून' नाम से बनाया था। नसीम इसी चित्र से फिल्मों में आयी थीं। सोहराब मोदी नायक बने। पार्श्वगायिका शमशाद बेगम ने भी इसमें अभिनय किया था। इस चित्र की सफलता के बाद मोदी साहब ने 'सैयद-ए-हवस', 'आतमतरंग', 'खान बहादुर', 'डाइवोर्स', तथा 'जेलर' का निर्माण, निर्देशन किया।

१९३९ में उन्होंने 'पुकार' का निर्माण किया। मोदी साहब ने इस चित्र में वैभव-पूर्ण अतीत की कल्पना को बड़े पैमाने पर दर्शकों के सामने रखा। उन्हें आश्चर्य-जनक सफलता मिली। इस चित्र में ऐति-हासिक स्थानों के वास्तविक दृश्यों के साथ-

# सोहराब मोदी और मिनर्वा मूवीटोन

साथ वातावरण की वास्तविकता और उर्दू, हिंदी के शुद्ध संवाद थे। कमाल अमरोही द्वारा संवाद लिखे गये थे।

'पुकार' के विज्ञापन पर अपार धन-राशि व्यय की गयी थी। इसके बाद 'सिकंदर' का निर्माण प्रारंभ हुआ। 'सिकंदर ने भारत पर सैनिक विजय तो की, पर वह भारतीयों का हृदय जीतने में नितांत असफल रहा'—यह लक्ष्य सामने था। युद्ध-दृश्य काफी बड़े, पर सजीव थे। इन दृश्यों में कई हजार एकस्ट्राओं ने पहली बार भाग लिया। स्व. पृथ्वीराज कपूर एवं सोहराब मोदी ने सिकंदर एवं पोरस की अविस्मरणीय भूमिकाएं की थीं।

**पहली भारतीय टेकनीकलर फिल्म**

१९५३ में 'झांसी की रानी' प्रदर्शित

की गयी। भारत के इस प्रथम टैक्नीकलर चित्र में मोदी साहब का निर्देशन काफी मंजा था। लाखों रुपयों की लागत के इस चित्र की नायिका मेहताब (उनकी पत्नी) थीं, पर यह चित्र वीररस की पूर्ण अनुभूति न करा सका।

सफलतापूर्वक निर्देशन किया। निर्मा- निर्देशक एवं चरित्र अभिनेता जागीर- ने भी मिनर्वा मूवीटोन की दो फि- 'मेनहरी' और 'घर-घर में दीवाली' का निर्देशन किया। नितिन बोस ने 'वासि-

'झाँसी की रानी' में मेहताब और सोहराब मोदी

१९५४ में 'मिर्जा-गालिब' का निर्माण हुआ। इसमें गालिब की शायरी के माधुर्य को पूर्णतया सुरक्षित रखा गया।

कई सामाजिक फिल्मों का निर्माण भी किया गया। इनका कथात्मक गठन और प्रदर्शन बहुत प्रभावशाली था। फिल्म 'जेलर' में कुरूप जेलर दर्शकों से गहरी सहानुभूति एवं आदर पा जाता है। मिनर्वा मूवीटोन की पटकथा में सम्वेदना को आवश्यक स्थान दिया जाता था।

**साथियों को आगे बढ़ाया**

उन्होंने कई साथियों को भी निर्देशन का अवसर दिया, जैसे के. एम. मुल्तानी ने 'वासंती', 'वसीयत', के. ढेबर ने 'उलटी गंगा,' 'भक्त रैदास', एस. मादामी ने 'प्रार्थना', किशोर शर्मा ने 'डॉ. कुमार' तथा विश्राम बेडेकर ने 'मेरा मुन्ना' का और वी एम. व्यास ने 'दो गुंडे' का निर्देशन किया।
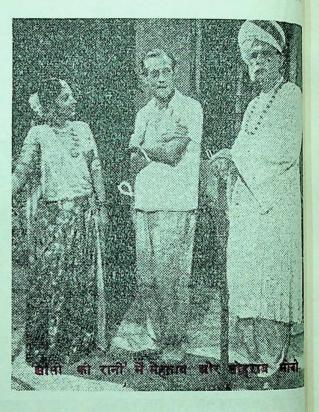
मीर साहब और गुलाम मोहम्मद ने अधिकांश फिल्मों में संगीत दिया। फिर उस समय के नये संगीतकारों को भी अवसर दिया गया। पहली महिला संगीतकार

सरस्वती देवी ने 'प्रार्थना', 'डॉ. कुमार' और 'पृथ्वी-वल्लभ' में संगीत दिया था। सी. रामचन्द्र ने 'नौशेरवाने आदिल' और 'मेरा मुन्ना', में अनिल विश्वास ने 'वारिस' में, रोशन ने 'घर-घर में दीवाली' में, शंकर-जयकिशन ने 'राजहठ' में, मदन मोहन ने 'जेलर' में, सरदार मलिक ने ( 'मेरा घर मेरे बच्चे' ) एवं उषा खन्ना ने 'समय बड़ा बलवान' में बड़ी मधुर धुनें दी थीं।

फिल्म 'दीवानी' के दो गीत 'मुझे बरबाद कर डाला गुलाबी ने' (ज्ञानदत्त के स्वर में) एवं 'वफाएं न तुम आजमाना' (अमीर बाई कर्नाटकी एवं जी. एम. दुर्रानी के स्वरों में) अत्यंत लोकप्रिय हुए थे। 'दौलत' का गीत 'ठंडी हवा का झोंका आया बालम तेरी गली से' (जोहरा बाई अंबालेवाली की आवाज) बहुत लोकप्रिय है। इसका संगीत हनुमान प्रसाद ने दिया था। 'सिकंदर' में रामानंद एवं पार्टी द्वारा गाया गीत 'जिंदगी है प्यार से, प्यार से बिताये जा' श्रोता कभी न भूल पायेंगे।

**वे शालीन फिल्में बनाते थे**

उस काल के सभी निर्माताओं एवं निर्देशकों ने फिल्मों में भारतीय समाज की शालीनता का बराबर ध्यान रखा और बिना चुंबन एवं अश्लील प्रदर्शन के एक-से-एक लाजवाब चित्र बनाये।

प्रश्न यह है कि क्या ऐतिहासिक फिल्मों का वैसा दौर लौटकर आ सकेगा? वर्तमान स्थिति को देखते हुए यही लगता है कि यह असंभव है। आज के अधिकांश निर्माता, निर्देशक ऐतिहासिक घटनाओं की वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। ऐसी फिल्मों के निर्माण में व्यय एवं परिश्रम अधिक है।

मिनर्वा मूवीटोन के अंतर्गत बनी फिल्मों की तालिका इस प्रकार है——

**खून का खून (१९३५), सैयद-ए-हवस (१९३६), आत्म-तरंग, खान बहादुर (१९३७), डाइवोर्स, जेलर, मीठा जहर, वासंती (१९३८), पुकार (१९३९), भरोसा, मेनहरी, वसीयत (१९४०), सिकंदर (१९४१), फिर मिलेंगे, उलटी गंगा (१९४२), भक्त रैदास, प्रार्थना, पृथ्वीवल्लभ (१९४३), डॉ. कुमार, पत्थरों का सौदागर (१९४४), एक दिन का सुलतान (१९४५), शमा (१९४६), दीवानी, मंझदार (१९४७), मेरा मुन्ना (१९४८), दौलत, नृसिंह अवतार (१९४९), शीशमहल (१९५०), झांसी की रानी (१९५३), मिर्जा गालिब, वारिस (१९५४), घर-घर में दीवाली, कुंदन (१९५५), राजहठ ( १९५६ ), नौशेरवान-ए-दिल ( १९५७ ), जेलर (१९५८), दो गुंडे(१९५९), मेरा घर मेरे बच्चे ( १९६० ), समय बड़ा बलवान (१९६९)।**

१९४४ में सेंट्रल स्टूडियों की फिल्म 'परख' का निर्देशन सोहराब मोदी ने ही किया था। नायिका मेहताब थीं। संगीत था खुर्शीद अनवर और सरस्वती देवी का।

**——सोहन भवन', २४८.१ क्रिश्चियनगंज, अजमेर-३०५००१**

# स्व-विवेक की महत्ता

दो ब्रह्मचारी शिक्षा समाप्त होने पर घर लौट रहे थे। दोनों गुरुभाई थे—समान विषयों के ज्ञाता। मार्ग में उन्होंने एक वृक्ष पर किसी पक्षी को बोलते सुना। शकुन विचारकर पहले ने कहा, "आज खीर खाने को मिलेगी।"

"हां, खीर तो खाने को मिलेगी, पर नमकीन खीर!" दूसरे ने कुछ सोचकर कहा। थोड़ा आगे गये तो पानी-भरे मटके को सिर पर लाती एक ग्रामवधू मिली।

एकाएक उसका मटका गिरकर फूट गया। शकुन-शास्त्र के अनुसार पहले ने कहा, "इसका पति बिछुड़ जाएगा।"

"नहीं, पति मिल जाएगा," दूसरे ने थोड़ा विचारकर कहा।

निकट ही गांव था। दोनों अपने पांडित्य के प्रदर्शन के लिए वहीं रुक गये। संयोगवश पनिहारिन का प्रवासी पति लौट आया। उसने प्रसन्न हो दोनों ब्रह्मचारियों से भोजन करने का आग्रह किया। उसने खीर बनायी, किंतु पति-आगमन की प्रसन्नता में वह कुछ ऐसी भूली कि उसने नमक डाल दिया।

पहले ब्रह्मचारी को शंका हुई—गुरु ने ज्ञान-दान में भेद किया है। अतः दूसरे दिन दोनों गुरु के पास पहुंचे और अपनी शंका कहीं। गुरु बोले, "मैंने विद्या तुम दोनों को समान निष्ठा से पढ़ायी—पक्षी पेड़ पर बैठकर विशेष प्रकार से बोले तो खीर खाने को मिलती है और पनिहारिन का घड़ा फूटे तो प्रिय-वियोग होता है। पर तुमने ध्यान नहीं दिया कि पक्षी इमली के पेड़ पर बैठा था। घड़ा पक्की सीढ़ियों पर फूटा था, सो पानी पुनः कुएं के जल में जा मिला था। तुमने तोते की तरह पढ़ा अवश्य, पर मनन नहीं किया। इसी कारण तुम सही निर्णय न ले सके। **—कुसुम मेघवाल**

# सच्ची दौलत

एक सेठ के पास बड़ी संपत्ति थी, पर उसे संतोष नहीं था। वह और संपत्ति चाहता था।

एक दिन नगर में एक महात्मा आया। सेठ ने उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी कि जो चाहो, वह दे देता है। सेठ उसके पास पहुंचा और कहा, "महाराज, मुझे इतनी संपत्ति चाहिए कि मैं भोगूं, मेरे

बच्चे भोगें, उनके बच्चे भोगें, फिर भी खत्म न हो।"

महात्मा ने कहा, "ऐसा ही होगा, पर एक काम करना।"

सेठ ने नम्रता से पूछा, "क्या ?"

महात्मा बोले, "तुम्हारे घर के पास एक टूटी-फूटी झोपड़ी में सास-बहू रहती हैं। कल उनको एक दिन के खाने-जितना सीधा दे आना। बस, तुम्हें अटूट संपत्ति मिल जाएगी।"

दिन निकलते ही वह सीधा लेकर झोपड़ी पर पहुंचा। देखा, सास ध्यान में लगी है और बहू झोपड़ी की सफाई कर रही है। झोपड़ी थी तो छोटी-सी पर बहुत ही साफ-सुथरी थी।

सेठ ने कहा, "यह लीजिए, आपके लिए मैं दाल-आटा, घी, चीनी आदि लाया हूं।"

बहू ने उत्तर दिया, "सेठजी, आज के खाने भर का हमारे पास है। हमें आपका सामान नहीं चाहिए।"

सेठ बोले, "है तो क्या हुआ, कल काम आ जाएगा!"

बहू ने कहा, "हम कल के लिए संग्रह नहीं करते। भगवान पर विश्वास रखते हैं और वह नित्य खाने को भेज देता है।"

सुनकर सेठ चकित रह गया —एक ओर ये लोग हैं, जो कल की चिंता नहीं करते और दूसरी ओर मैं हूं, जिसे इतनी संपत्ति होने पर भी संतोष नहीं है। उसकी आंखें खुल गयीं। उसे सच्ची दौलत मिल गयी।

## अनमोल संपदा

एक बहुत बड़े नगर के किसी महल्ले में एक भिखारी रोज एक ही स्थान पर भीख मांगा करता था। सालों तक यह क्रम चलता रहा। अंत में एक दिन वहीं उसके प्राण निकल गये। नगर-निगम-गाड़ी आयी और लाश उठाकर ले गयी। मसान में उसका क्रिया-कर्म कर दिया गया।

महल्ले के लोग उस भिखारी को बराबर देखते थे। उन्हें लगा कि वह इतने दिनों से उस जगह पर बैठा रहा है अतः वहां की मिट्टी गंदी हो गयी होगी उसे साफ कर देना चाहिए। फावड़े लाकर उन्होंने मिट्टी खोदनी आरंभ की। वे चाहते थे कि ऊपर की जितनी मिट्टी हटा सकें, उतना ही अच्छा होगा।

पर ज्योंही उन्होंने थोड़ी-सी मिट्टी हटायी कि देखते क्या हैं, वहां बड़ा भारी खजाना है। वे चकित रह गये। बेचारा भिखारी पैसे-पैसे के लिए तरसता रहा, जबकि उसके नीचे अपार धन मौजूद था।

जिस समय वे लोग विमस्य से उस खजाने को देख रहे थे, कहीं से आवाज आयी—"हम सबकी यही हालत है। हमारे अंदर भी तो अनमोल संपदा छिपी पड़ी है, पर हम उसे जानते नहीं और दिन-रात दुनिया के आगे दीन बने रहते हैं।"

—यशपाल जैन

# हरेकृष्ण संप्रदाय की रामलीला

● हमारा पृष्ठ

ग्रीनविच विलेज की यात्रा करते हुए मुझे कुछ और ही एहसास हो रहा था। धन-संपन्न अमरीका से यह हिस्सा एकदम अलग और निराला है। चारों ओर हरियाली और पक्के खुले हुए मकान। घरों के सामने छोटे-छोटे उद्यान——फूलों से भरे हुए। सामने का खुला मैदान लाल रंग के ट्यूलिप से ढका था। बटनहोल की तरह ये ट्यूलिप इतने आकर्षक और खूबसूरत होते हैं कि सहसा ही सारा ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं।

यहां पहुंचकर यह आभास ही नहीं होता कि यंत्रों से भरी नगरी का यह एक हिस्सा है। पक्षियों के स्वर, खुला आकाश और तैरते हुए बादल। कहीं धुआं नहीं और न यह भय है कि वातावरण दूषित हो रहा है।

छोटे-छोटे घरों के बाहर उस दिन लाल, नीले फूलों का एक शामियाना सजा था। शाम हो रही थी और उस शामियाने से हल्के-हल्के घंटों की ध्वनियां आ रही थीं। निश्चय ही ये किसी चर्च के घंटे होंगे। मैं उस ओर बढ़ा तो देखा, शामियाने में खूब हलचल थी।

ग्रीनविच विलेज में मैं मिस्टर हारमन का मेहमान था। सान फ्रांसिस्को से एक मित्र ने उनके नाम पत्र दिया था और जब मैं मिस्टर हारमन से मिला तो मुझे आभास हुआ, मैं किसी व्यस्त अमरीकन से नहीं मिल रहा। उनका ड्राइंगरूम कृष्ण के विभिन्न चित्रों की झांकी से सजा था। वे स्वयं सफेद पायजामा और रंगीन शर्ट पहनते थे। उनकी पत्नी (असल में वह पत्नी नहीं थीं, लेकिन वे दोनों पति-पत्नी की तरह दो वर्षों से रह रहे थे और अब उनके एक बच्चा भी था) जूलिया भारतीय घर में रोज सुबह पूजन का इंतजाम करती थीं। फिर बस्ती के और लोग एकत्रित हो जाते और 'हरे रामा, हरे कृष्णा' की अनवरत, अटूट ध्वनि-शृंखला आरंभ हो जाती। वही आरती, वही धूप और वैसी ही लगन। हाथों में खंजरी लिये भक्ति-विभोर पुरुष-स्त्रियों की एकाग्रता देखते बनती थी। लगता था, सारी आस्तिकता उनमें समा गयी है।

शामियाने में वही मिस्टर हारमन दौड़धूप में लगे थे। यहां पहुंचकर पता चला कि उस दिन दशहरा है और उन्होंने मिलकर उत्सव का आयोजन किया है।

भारत से कई महीने दूर हो जाने और अमरीका की चकाचौंध में खो जाने से यह ध्यान भी नहीं था कि वह इतने महान पर्व का दिन है। तभी मुझे बरबस भारत की याद आयी। वहां कितनी हलचल होगी! भारतीय जनता के सांस्कृतिक जीवन से दशहरा का कितना अटूट संबंध है! वह एक संस्कृति की पराजय और उस पर दूसरी संस्कृति के विजय के इतिहास का दिन है।

देखते-ही देखते शामियाना आगंतुकों से भर गया। उनमें प्रायः सभी अमरीकी थे और अधिकांश ग्रीनविच विलेज के निवासी। सभी पुरुष पायजामा या धोती पहने थे! ऊपर नंगे बदन थे और 'रामनामी' दुपट्टे डाले थे। स्त्रियां या तो लहंगों में थीं, अन्यथा साड़ियों में या फिर एकदम मॉड। उनके कंधों पर भी दुपट्टे थे—वे सब 'हरे कृष्ण' से छपे हुए थे। बाल बिखराये वे अत्यंत भक्तिभाव में कैद थीं। उसी समय दो-तीन भारतीय लड़कियां भी शामियाने में आयीं। वे भी 'हरे कृष्ण हरे कृष्णा' लिखा हुआ दुपट्टा ओढ़े थीं।

मैं आश्चर्य से यह सब देख रहा था, वहां राम और कृष्ण का संगम था। थोड़ी ही देर में भजन शुरू हुआ तो सबसे पहले मिस्टर हारमन ने अंगरेजी में बताया कि वे सब भारत के राम की विजय का पर्व मना रहे हैं। उन्होंने बताया कि राम अपनी प्रेमिका 'राधा' के साथ कृष्ण के गीत और भजन गाया करते थे। राम ने रावण का वध किया और राधा को वहां से छुड़ाकर लाये। आगे चलकर मिस्टर हारमन ने यह भी बता दिया कि कृष्ण राम का ही दूसरा नाम है। भारत बहुत बड़ा देश है और पहले वहां संचार-व्यवस्था इतनी द्रुत नहीं थी, इसलिए उस समय एक ही व्यक्ति को कहीं राम और कहीं कृष्ण कहा जाता था।

मैं मिस्टर हारमन का भाषण सुनकर दंग था! मेरा मन बार-बार हुआ कि उन्हें रोककर राम और कृष्ण का भेद

## वचन-वीथी

जो सावधानी से निरीक्षण और विचार करके सही तथा दृढ़ निश्चय करता है, वह अनजाने ही महान हो जाता है।
—बुलसर

हमें कोई धोखा नहीं दे सकता, हम स्वयं अपने-आपको धोखा देते हैं।
—गेटे

पुरुष अकसर कोई बात एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते हैं, परंतु स्त्रियां दोनों कानों से सुनती हैं और मुंह से निकालती हैं।
—अज्ञात

जिंदगी में आधी गलतियां तो महज इसी कारण होती हैं कि जहां हमें विचार से काम लेना चाहिए, वहां हम भावना से काम लेते हैं और जहां भावना की आवश्यकता होती है, वहां विचारों को अपनाते हैं।
—जॉन कॉलिस

यदि हमारे भीतर राई के दाने के बराबर भी आत्मविश्वास है तो हमारे लिए कोई भी काम असंभव नहीं है। —ईसा

बता दूं, लेकिन मैं उन्हें रोकता कि उसी समय वे स्वयं रुक गये और फिर भजन का अटूट सिलसिला शुरू हो गया। हाथ में खंजरी लिये 'हरे रामा, हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे, रामा रामा हरे' .. के साथ सारे पुरुष और स्त्रियां धमा-चौकड़ी करने लगे।

आधी रात तक वे भजन-मुद्रा में लगे रहे। उनके इस उत्साह को देखकर मैं खुश था, राम या कृष्ण चाहे जो हो, इनके मन में किसी भारतीय पुरातन पुरुष के लिए इतनी लगन तो है। उस पुरुष-प्रतीक ने इन्हें अपनी संस्कृति से काटकर अपने आप में रमा तो लिया है।

मुझे बाद में पता चला कि ग्रीनविच के वे निवासी अपने को 'हरे कृष्ण संप्रदाय' का सदस्य मानते हैं और स्वीकार करते हैं कि दुनिया में जो एक ही 'गॉड' या देवता हुआ है, वह 'कृष्ण' है। वे ईसा को भी कृष्ण में देखते हैं, ठीक वैसे ही जैसे राम का रूप उनके सामने है।

उस दिन का भजन समाप्त हो गया। दूसरे दिन से विधिवत रामलीला का आयोजन शुरू होना था। मेरे पास ठहरने के लिए समय नहीं था, अन्यथा 'हरे कृष्ण संप्रदाय' की रामलीला कम रोचक न रही होगी। वहां कृष्ण रावण का वध करते नजर आते होंगे और साथ ही मथुरा में माखनचोरी भी करते दिखाये गये होंगे! 'हरे कृष्ण' का दुपट्टा पहनकर 'हरे रामा' का भजन करना दो देवताओं को एक-साथ प्रसन्न करना नहीं तो क्या है? ●

• रवीन्द्रनाथ त्यागी

# तीसरे दरजे का सफर

मुझे यात्राएं करना बहुत पसंद है। जब भी जंगल में रेल गुजरते देखता हूं, तभी कहीं बाहर निकल पड़ने की इच्छा फिर से जोर पकड़ने लगती है। हालांकि उसी रेल को जब मैं स्टेशन पर देखता हूं तो उत्साह काफी ठंडा हो जाता है। जनसंख्या की वृद्धि का सबसे ज्यादा प्रभाव रेलों पर ही पड़ा है। यात्री बढ़ गये, कुली बढ़ गये और दुःख की बात यह है कि टिकट-चेकर भी बढ़ गये। मुझे रेल से यात्रा करना इतना पसंद है कि कवि रसखान के शब्दों में इसके लिए मैं सब कुछ निछावर कर सकता हूं। वह छुक-छुक की आवाज और आंखों में वह कोयला गिरना—ये ऐसे सुख हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता। लगता है आंख में कोयला गिरने के बाद ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'आंख की किरकिरी' लिखी होगी। दक्षिण भारत में रहन-सहन का स्तर इतना ऊंचा होता जा रहा है कि वहां सिगनल भी गिरने के बजाय ऊपर को उठने लगे हैं। भाप-इंजन के बंद होने के साथ-साथ यदि सिग-नलों ने भी पतित होने को मना कर दिया तो रेल में सिवा यात्रियों के और कोई आनंद शेष ही नहीं रहेगा।

पिछले दिनों मैं एक समीपस्थ नगर में एक नये प्रकाशन-संस्थान के उद्घाटन के अवसर पर गया। जाकर पता लगा कि मैं मुख्य अतिथि हूं। गौरव से मस्तक झुक गया। बात यह थी कि सिवा प्रकाशक के और मेरे वहां कोई और था ही नहीं। पुस्तकों के पहले सेट का विमोचन करने के बाद मैंने वापस आने के लिए रेल पकड़ने की सोची। दोस्तों ने समझाया कि वह गाड़ी रोज दो घंटे लेट आती है और इस नित्य कर्म में कभी कोई व्यवधान नहीं पड़ता। मगर मैं जानता हूं कि जिस दिन मुझे रेल पकड़नी होती है उस दिन खराब से खराब गाड़ी भी वक्त से पहले आती है! रेलवे बोर्ड मेरे प्रति इतनी शत्रुता क्यों रखता है, इसका मुझे पता नहीं। मैंने दोस्तों से विदा ली और स्टेशन पहुंचा। पता लगा कि गाड़ी आ ही नहीं गयी है बल्कि छूटने वाली भी है। बड़ी हड़बड़ाहट में तीसरे दरजे का टिकट लिया और सबसे पिछले डब्बे में घुसा। इधर मैं डब्बे में घुसा, उधर गाड़ी प्लेटफार्म से बाहर निकली।
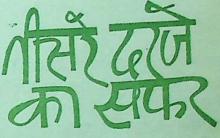
गाड़ी में घुसकर मैंने एक सीट ग्रहण की और डब्बे के वातावरण पर दृष्टिपात किया। तीसरे दरजे के मजे और किसी क्लास में कभी नहीं मिलते। हां, अलबत्ता डब्बा पिछला था, इसलिए झटके जरूर
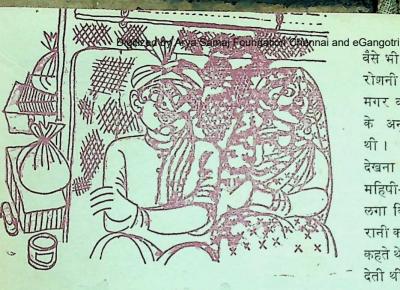
लग रहे थे। इस समस्या पर रेलवेवालों ने एक बार विचार भी किया था और फैसला किया था कि रेल में आखिरी डब्बा लगाया ही न जाया करे, पर शायद कुछ टेकनिकल परेशानियों के कारण यह बेहतरीन सुझाव कार्यान्वित नहीं किया जा सका । खैर, झटकों के अतिरिक्त शेष सब कुछ ठीक था । दिन छिपने वाला था । खिड़की के बाहर वातावरण यह था कि खेत अपनी आदत के मुताबिक हरे थे, और उनमें खड़ी हुई कुछ भैंसें अपनी आदत के मुताबिक गोबर निकाल रहीं थीं । डब्बे के अंदर स्थिति यह थी कि मेरे सामने एक नवदंपति बैठा था। पति की आयु लड़की के पिता के बराबर थी और वे देख भी उसे उसी भाव से रहे थे । पति और पिता शब्दों में मात्रा को छोड़कर और कोई अंतर वैसे भी नहीं है । गाड़ी में रोशनी जल गयी थी, मगर वह गाड़ी की गति के अनुसार काफी मंद थी । मैंने फिर बाहर देखना शुरू किया । वही महिषी-कांड। फिर सोचने लगा कि संस्कृत में पटरानी को राजमहिषी क्यों कहते थे ? वह दूध ज्यादा देती थी या गोबर ?

कुछ देर बाद एक छोटा-सा स्टेशन आया और वह नवदंपति उतर गया । गांव की कुछ युवतियां नीचे खड़ी गीत गा रही थीं । ग्राम-गीत राधा-कृष्ण की प्रेमकथा कहते थे । मैं हमेशा यह सोचा करता था कि राधा-कृष्ण पर इतना काव्य बंगाल में क्यों लिखा गया ? एक लोकोक्ति के अनुसार राधा का विवाह अयन घोष नामक व्यक्ति से संपन्न हुआ था जो, जैसा कि जाहिर है, सरासर बंगाली थे।

इधर डब्बे में कुछ हंगामा हो गया जिससे मेरा चिंतन-क्रम टूट गया । दो तगड़े देहाती खिड़की के पास वाली सीट पर बैठने के लिए झगड़ा कर रहे थे। एक कहता था कि उसे ताजी हवा पसंद है और दूसरा कहता था कि अगर तुम्हें ताजी हवा का इतना शौक है तो मैं तुम्हें खिड़की से बाहर फेंकने को एकदम तैयार हूं; सब कुछ बिना फीस, जितनी तबीयत

हो उतनी ताजी हवा खाना।

शांति के लिए युद्ध हमेशा से जरूरी रहा है, और फिर वैसे भी इन लोगों पर क्रोध करने से लाभ? ३ सितंबर, १९७२ के 'हिंदुस्तान टाइम्स' के अनुसार एक स्थान पर सेशन जज और कमिश्नर की कहासुनी हो गयी, मारपीट हुई और अंत में उन दोनों ने इतना निकट संपर्क स्थापित कर लिया कि पुलिसमैन ने एक को दूसरे से अलग किया। इसे कहते हैं कार्यकारिणी और न्यायपालिका का पृथकीकरण! डब्बे में झगड़ा कुछ और भी चलता, पर बदकिस्मती से टिकटचेकर आ गया। झगड़ा करनेवालों में से एक बगैर टिकट था। टिकटचेकर ने उसे अगले स्टेशन पर जबरदस्ती उतार दिया। नीचे उतरने पर उस देहाती ने टिकटचेकर को बताया कि उसे वैसे भी इसी स्टेशन पर उतरना था।

इसके बाद एक आदमी एकदम कहीं से प्रकट होकर 'लक्कड़-हजम पत्थर-हजम' चूर्ण का विज्ञापन करने लगा। एक देहाती ने थैले में से कुछ लकड़ियां और पत्थर निकाले और कहा कि पहले तुम इन्हें खाओ तो हम भी चूर्ण लेंगे।

मैं फिर सोचने लगा कि तीसरे दरजे के ये मजे और दरजों में कहां! इसी कारण तो कई कवि प्रथम श्रेणी का किराया लेने के बाद भी कवि-सम्मेलन में जाते तीसरे दरजे में ही हैं। एक प्रसिद्ध साहित्यकार तो कवि-सम्मेलन का सभापतित्व करने तक के लिए एक हजार मांगते हैं जो कि एकदम ठीक है। लड़की का पति बनने पर दहेज मिलता है तो सभापति बनने पर क्यों नहीं? और वह भी ऐसी हालत में जबकि पता नहीं कब सभापति को जूते खाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाए!

स्टेशन आ गया और मुझे विवश

होकर उतरना पड़ा, क्योंकि यह गाड़ी इस स्टेशन से आगे जाती ही नहीं थी।

—डिप्टी सेक्रेटरी (पेंशन), रक्षा-मंत्रालय,
नयी दिल्ली—११००११

# बुद्धि-विलास

१. **एक** प्याले में पानी और दूसरे प्याले में शरबत रखा हुआ है। यदि प्याले में से थोड़ा-सा पानी शरबत वाले प्याले में डाल दिया जाए, फिर उतना ही मिश्रण उसमें से पानी वाले प्याले में डाला जाए तो बताइए क्या शरबत वाले प्याले में पानी का परिमाण पानी वाले प्याले के शरबत के परिमाण से अधिक होगा? कितना अधिक? प्रतिशत बताइए।

२. **वह** कौन-सी धातु है जो एक बच्चे द्वारा भी सरलता से तोड़ी जा सकती है?

३. **चार** वर्षीया मोना स्कूल पढ़ने तो जाती थी, पर वह हमेशा गुणन-चिह्न और योग-चिह्न को पहचानने में भूल कर जाती थी। वह ४५ डिग्री के कोण की स्थिति में लिखा करती थी, अतः अध्यापिका यदि बोलती थीं × का चिह्न तो वह उसे लिखती थी + का चिह्न। एक बार उससे कहा गया कि २ का २ में गुणन करो, पर उसने उन्हें जोड़ डाला और हल सही आया। अब उसे और भी विश्वास जम गया कि × चिह्न और + चिह्न एक ही हैं।

अगली बार उसे गुणन करने के लिए तीन अंक दिये गये, उसने उन्हें भी जोड़ डाला, पर इस बार भी हल सही निकल आया। गणित के सूत्र के अनुसार, अ + ब + स, द के बराबर तथा अ × ब × स = द ही होता है। जरूरी नहीं कि अ, ब, स समान न हों, पर वे पूर्ण अंक होना चाहिएं। चूंकि मोना को गणित के इस सूत्र का ज्ञान होना संभव नहीं है, अतः यह बताइए कि मोना को दिया गया प्रश्न इस बार क्या था?

४. **सम्राट** सोलोमन की कहानी आपने जरूर पढ़ी होगी। कहानी यों है—

**अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए। उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे। यदि आप सभी प्रश्नों के सही उत्तर दे सकें तो अपने साधारण ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए, आधे से अधिक में सामान्य और आधे से कम में अल्प।**

**—संपादक**
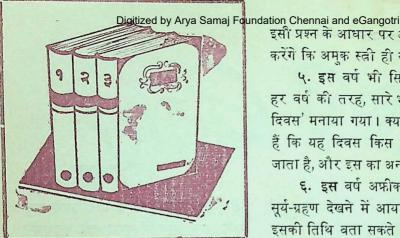
विश्वकोश

एक बार दो स्त्रियां उसके दरबार में एक-दूसरे पर दोषारोपण करती हुई आयीं कि इसने मेरा बच्चा छीन लिया है। सोलोमन ने सत्यता का पता लगाने के लिए आज्ञा दी कि बच्चों के दो टुकड़े करके इन स्त्रियों में बांट दो। वास्तविक मां रो पड़ी और बोली कि बच्चा इसी को दे दीजिए।

पर मान लीजिए कि यह समस्या आपके सामने है, और आप सोलोमन हैं। आपने यह अनुमान लगा लिया है कि उनमें से एक सरासर झूठ बोलने की आदी है, भले ही कोई भी बात पूछी जाए। क्या आप केवल एक सवाल पूछकर वास्तविक मां को पहचान सकते हैं? आपको उन दोनों स्त्रियों से केवल एक प्रश्न करने की छूट है। साथ ही यह शर्त भी है कि आप किसी एक स्त्री से ही यह प्रश्न पूछें। इसी प्रश्न के आधार पर आप कैसे निश्चित करेंगे कि अमुक स्त्री ही बच्चे की मां है?

५. **इस** वर्ष भी सितंबर के माह में हर वर्ष की तरह, सारे भारत में 'शिक्षक-दिवस' मनाया गया। क्या आप बता सकते हैं कि यह दिवस किस तिथि को मनाया जाता है, और इस का अन्य क्या महत्त्व है?

६. **इस** वर्ष अफ्रीका में बहुत बड़ा सूर्य-ग्रहण देखने में आया था। क्या आप इसकी तिथि बता सकते हैं? यह भी बताइए, इस ग्रहण की परछाई का कितना व्यास था, उस समय पृथ्वी पर क्या स्थिति थी?

७. **एक** पुस्तकालय में एक रैक पर विश्वकोश के तीन वृहद खंड रखे थे। अवकाश के दिन चेकिंग करते वक्त पुस्तकालयाध्यक्ष ने तीनों खंड उठाये, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रथम खंड के प्रथम पृष्ठ से तीसरे खंड के अंतिम पृष्ठ तक एक दीमक ने छेद करके यात्रा कर डाली थी। प्रत्येक खंड की मोटाई २ ३/४ इंच तथा प्रत्येक गत्ते की मोटाई १/८ इंच है। बताइए, दीमक ने कितने इंचों की यात्रा की थी?

**वर्षा के कारण दो बच्चे एक हॉल में घुस गये, जहां अमूर्त चित्रकला की प्रदर्शनी लगी थी। चित्रों पर नजर पड़ते ही एक बच्चे ने कहा, "चलो, भाग चलें! लोग यह न कहने लगें कि हमने तसवीरें खराब कर दीं!"**

• विश्वमोहन तिवारी

आधुनिक चित्रकला में क्यूबिज्म (घनवाद) ने क्रांति का सूत्रपात किया है। पाब्लो पिकासो ने १९०७ में 'ल देम्वाजेल दविनियां' चित्रित किया था। पिकासो लगभग १९०६ तक, केवल २४ वर्ष की आयु में, अपने नीले तथा गुलाबी चित्रों द्वारा पेरिस के अग्रणी चित्रकारों की श्रेणी में आ गये थे।

आज 'ल देम्वाजेल' को देखकर हम चाहे निरुत्साहित, हताश और स्तंभित न हों, किंतु इस चित्र के मानवी रूपों के क्रूर विरूपण के कारण पिकासो के मित्रों के साथ यही हुआ था।

आखिर ऐसी क्या बात है कि इस तरह की प्रथम प्रतिक्रिया के बाद भी वह चित्र कलाकारों के लिए किसी देव-चित्र के समान हो गया? किसी भी कलाकृति का आनंद मूलरूप से उस चित्र के मूल तत्त्वों, यथा रेखा, रूप, रंग, घनत्व, प्रकाश आदि की तथा उनके आपसी संबंध की तत्काल, सीधी और अंतःप्रज्ञ अनुभूति से मिलता है। आज अधिकांश लोगों को यह अनुभूति प्राप्त नहीं होती, क्योंकि इस शताब्दी के प्रारंभ में ही चित्रकला की परंपरा में एक आमूल परिवर्तन हो गया था।

**कैमरे की कलाकार को चुनौती**

समय-समय पर कला के रूप तथा विषय में परिवर्तन होता आया है। इस परिवर्तन को समझने के लिए तत्कालीन

सामाजिक तथा कलात्मक परिवर्तनों को समझना पड़ेगा। कैमरे ने कलाकार को चुनौती दी थी। प्रभाववादियों ने उसे स्वीकार कर उस प्रतियोगिता की निरर्थकता को समझ लिया था। उत्तर-प्रभाववादियों ने उनसे एक बड़ा डग आगे भरकर उस सत्य को अभिव्यक्त तथा सृजित किया जिसे कैमरा नहीं पा सकता।

औद्योगिक क्रांति ने भी कलाकार तथा समाज के संबंध को बदल दिया था।

कलाकार अब अपने आश्रयदाता या संरक्षक के वजाय एक अज्ञात ग्राहक के लिए चित्र बनाना शुरू कर रहा था। साहसी पिकासो ने यह तय किया कि कलाकार की जिम्मेदारी केवल अपने तथा कला के प्रति है। औद्योगिक क्रांति के कारण ज्यामितीय रूपों की लोकप्रियता भी बढ़ी।

जो वैज्ञानिक प्रवृत्ति कांस्टेवल से शुरू हुई थी, सेजान तक आते-आते चुक गयी थी। यथार्थवाद का पूरा दृष्टिकोण बदल चुका था तथा यह स्पष्ट हो रहा था कि ऐसा कोई वैज्ञानिक सत्य नहीं है जो सभी के लिए एक ही हो। कला के आलोचकों का महत्त्व कलाकृति-विक्रेताओं द्वारा बढ़ाया जा रहा था, अतः कला के विकास में दर्शन का महत्त्व बढ़ गया था। फलतः एक ओर वादों की संख्या बढ़ी और दूसरी ओर वे अल्पकालिक होते गये। कलाप्रेमी भी सीधी-सादी कहानी के स्थान पर यांत्रिकी, प्राकृतिक शक्ति विषयक ज्ञान, गणितीय, दार्शनिक सिद्धांतों आदि में रुचि लेने लगे थे।

**युग-धारा मुड़ गयी**

इस तरह कुल मिलाकर कला में क्रांति के लिए बम-सा तैयार था। केवल एक प्रतिभाशाली तथा साहसी पिकासो के उसके पलीते में आग लगाने भर की देर थी। वास्तव में 'ल देम्बाजेल' उस चित्र का आदिरूप मात्र है जो एक नये युग का प्रवर्त्तक है। कलाकार की स्केच-बुक पर वह नये युग के कठिन प्रश्नों का समाधान करने वाला स्केच है। पिका[सो] ने 'ल देम्बाजेल' को कभी प्रदर्शित न[हीं] किया। यह चित्र ऐसी अनुभूति का नि[रू]पण है, ऐसी अनोखी दृष्टि का रेखांक[न] है तथा ऐसी अंतःप्रेरणा का सृजन है जिस[ने] कला को मात्र दृश्य यथार्थता के पुरा[ने] किंतु असंगत बंधनों से मुक्त कर दिया।

चित्र के आदिरूप में पिकासो ने [५] नारियों तथा २ मल्लाहों द्वारा एक नैति[क] रूपक चित्रित करने की योजना बना[यी] थी। वर्तमान रूप में इस चित्र ने अप[ना] यह नाम प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात पाया। 'अविनियां' वार्सिलोना में वेश्याओं के ए[क] महल्ले का नाम है। शीर्षक का सीधा अ[र्थ] हुआ, 'अविनियां की महिलाएं'। पिकासो ने चित्र की सारी संविरचना को बीच [में] बदला, अर्थात अपने समय के महत्त्वपू[र्ण] प्रश्नों को तथा उनके समाधानों [को] पिकासो ने जैसे अधबीच में अंतःप्रेर[णा] द्वारा समझ लिया।

'ल देम्बाजेल' परिसज्जित चि[त्र] नहीं है तथा एक कलाकृति के दृष्टिको[ण] से भी इसकी विभिन्न आकृतियां भिन्न-भिन्न शैलियों में बनायी गयी हैं। चित्र[कार] ने इसकी संविरचना, शैली आदि क[ई] बार बदली है। वास्तव में यह चित्र जै[से] किसी उपकरण अथवा उपस्कर का निर्मा[ण] प्रतिरूप न होकर प्रयोगशाला में विकसि[त] वह प्रायोगिक प्रतिरूप है, जिसके विभिन्न घटकों को कई बार समाधानों की खो[ज] में ठीक-ठाक किया गया है।

चित्र में बायें से नजर डालने पर ( पढ़ने के अनुसार ) सबसे कम उम्र वाली वेश्या दीखती है। उसकी पार्श्वमुद्रा, जिसमें दाहिना हाथ शरीर से लगा हुआ है, यह बताता है कि उसमें अभी भी लज्जा है। पैने समतल, जो कि उसके शरीर को बहुत ही क्रूरतापूर्वक काटते हैं, उसकी भोली आत्मा द्वारा भोगे हिंस्र व्यवहार को निरूपित करते हैं। उसकी आंखों से लगता है कि आघात पहुंचाने वाले अनुभवों के कारण वह सदमे की स्थिति में है। उसका चेहरा जैसे संसार के दुःखों का घर है। वह घिरी हुई हिरनी की भांति डरी तथा सहमी है।

दूसरी आकृति पूर्ण विकसित स्त्री की है। उसके चेहरे पर गहरे दुःख के साथ विवशता का भाव है। उसकी आंखों से दिल को पिघला देने वाली निस्सहायता जैसे टपकी पड़ती है। उसमें पहली की अपेक्षा कम लज्जा है (दाहिने हाथ की उठी मुद्रा)। सदमों के कारण उसकी संवेदनशीलता क्षीण हो चुकी है। उसने नियति से समझौता कर लिया है।

तीसरी वेश्या की आंखें जैसे गुस्से और बदले की भावना से सीधा प्रहार करती हैं। वह कठोर, स्नेहशून्य तथा लज्जाहीन हो गयी है। ऊपर उठे दोनों हाथ उसकी नग्नता को और बढ़ा देते हैं। वह स्वयं को बिक्री के लिए किसी हृदय-हीन वस्तु के रूप में समझना स्वीकार कर चुकी है। दाहिनी दो आकृतियां तो जैसे हमें सदमा देती हैं। वे दोनों मानवी यगुणों से बिलकुल रिक्त हो चुकी हैं तथा डंके की चोट पर यह दर्शा रही हैं कि समाज ने उन्हें पूरा जानवर बना दिया है।

**विदूषक (१९१५)**

थोपे गये शैतानी विपर्यासी अनुभवों के परिणामस्वरूप पांचवीं तो चौथी से भी अधिक जानवर तथा शैतान-सी लगती है। पांचवीं आकृति द्वारा पिकासो हमें दाहिने किनारे से नीचे तथा बीच की ओर वापस

लाते हैं। तब हमारी नजर फलों पर टिक जाती है, मानो हमने स्त्रियों को मात्र अपनी भूख बुझाने की सामग्री समझा है।

सारी आकृतियां ऊर्ध्वाधर समानांतरों के रूप में रची गयी हैं। इससे इन आकृतियों के बीच मानवीय स्नेह की कमी दीखती है, एक-दूसरे को टिककर सहारा देने के स्थान पर सब अपने-अपने लिए खड़ी हैं। एक-दूसरे के निकट होते हुए भी एक-दूसरे से उदासीन हैं। पार्श्व-भूमि को और अग्रभूमि को जबर्दस्त रूप से दबाकर एक समतल में चित्र बनाया गया है। इससे यथार्थ के त्रिविमतीय दृश्य को दबाकर कैनवस के समतल को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसमें यथार्थ के भ्रम को चित्रित न कर, कैनवस के यथार्थ को स्वीकारने का प्रयत्न है। इस गुण को 'क्यूबिज्म' में बहुत उत्साहपूर्वक अपनाया गया है। इस दबाव के कारण इन वेश्याओं को बहुत ही संकरे प्रदर्शन-झरोखे में प्रदर्शित किया गया है, जैसा कि आज लंदन की न्यू बांड स्ट्रीट आदि में देखने को मिलता है।

मानवीय आकृतियों का क्रूर विरूपण मन के विरूपण से भी ऊपर उनकी आंतरिक आत्मा का सत्य-सा लगता है।

**अन्य प्रभाव**

१९०६ में जब पिकासो ने इस चित्र पर काम शुरू किया तब पेरिस में आधुनिक कला के जन्मदाता सेजान की तृतीय कला-प्रदर्शनी चल रही थी। सेजान मानवीय आकृतियों को ज्यामितीय रूप दे[illegible] थे। वे चित्र की गढ़न पर बल देते थे तथ[illegible] चित्र को सरल कर, उसकी आंतरिक सचा[illegible] निरूपित करना चाहते थे। पिकासो[illegible] ज्यामितीकरण में सेजान से आगे बढ़े।

'ल देम्वाजेल' में सबसे स्पष्ट प्रभाव आदिम कला (आइबीरियाई तथा हब्शी) का है। पिकासो ने स्वच्छंद रूप से अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्त करने के लिए आदिमकला की मानवीय आकृतियों के निरूपण को आत्मसात किया। 'ल देम्वाजेल' में पिछले चित्रों (मातिस, व्लामिंक आदि) की अपेक्षा शरीर कहीं अधिक सपाट, निरूपित तथा नुकीले हैं। सिर भी वास्तव में आदिम हैं। बायें किनारे की आकृति के मुखौटे के समान सिर में मूर्ति तराशने की-सी शैली अपनायी है। इस तरह के ठोस रूपों का अनुसंधान क्यूबिज्म का महत्त्वपूर्ण लक्षण था।

'ल देम्वाजेल' का एक और गुण आधुनिक कला का क्रांतिकारी गुण बन गया है—एक ही चित्र में विभिन्न कोणों से देखे गये दृश्य का चित्रण। पांचवीं आकृति पारंपरिक दृश्य के नियमों का हिंसात्मक तरीके से उल्लंघन करती है। 'ल देम्वाजेल' ने यह आंशिक रूप से कर दिखाया कि कलाकृति कैनवस पर यथार्थ के भ्रम का सृजन नहीं वरन वह स्वयं एक सत्य है। क्यूबिज्म का सबसे महत्त्वपूर्ण गुण यही था।

सामने के पृष्ठ पर—
पिकासो के कुछ अन्य चित्र
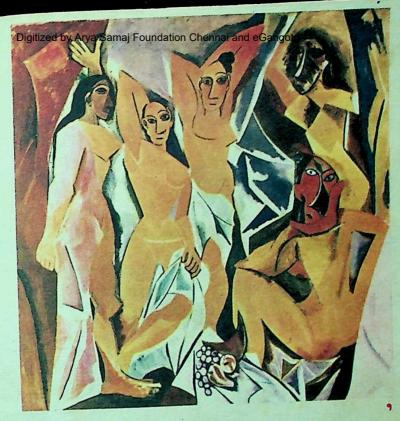
१· एविग्नॉन की स्त्रियां (१९०७: तैल-चित्र) – इस कलाकृति के माध्यम से ही चित्रकला में घनवाद (क्यूबिज्म) का जन्म हुआ।

२· भूमध्यसागर का प्राकृतिक दृश्य (१९५२)
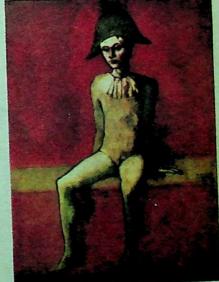
३. बैठा हुआ विदूषक (१९०५)

# विश्व की अद्वितीय घड़ी

छाया: एम.एस. अ
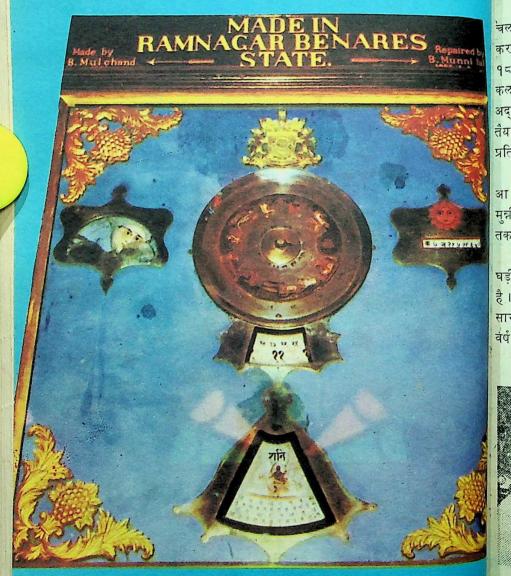
यह है विश्व की अन्यतम घड़ी। आज तक ऐसी घड़ी का कहीं निर्माण नहीं हुआ। भारत में भी यह अकेली घड़ी है और काशी के भूतपूर्व महाराजा के रामनगर स्थित निवासस्थान में लगी है।

यह घड़ी केवल एक पेंडुलम के सहारे चलती है, जिसे सप्ताह में एक बार ऊपर करना होता है। घड़ी का निर्माण सन १८७२ में श्री बी. मूलचन्द नाम के एक कलाकार ने किया था। रामनगर के इस अद्भुत कलाकार ने घड़ी के सारे पुर्जे वहीं तैयार किये थे और इस दृष्टि से यह शत-प्रतिशत भारतीय घड़ी है।

सन १९२३ में इस घड़ी में कुछ खराबी आ गयी थी और तब रा.नगर के ही श्री मुन्नीलाल ने इसे सुधारा था। तब से आज तक इस घड़ी में कोई खराबी नहीं आयी।

घड़ी की अपनी विशेषता है। मूल घड़ी के गोलार्ध में ग्रह-मालाओं की स्थिति है। इसका आधार विज्ञान है, जिसके अनुसार पृथ्वी सूर्य का एक पूरा चक्कर एक वर्ष में लगाती है। घड़ी में सही समय और नव-ग्रहों की स्थिति का पता लगाया जा सकता है। ग्रहों के नाम पढ़े जा सकते हैं और स्थिर तथा चल-ग्रहों की उस समय क्या स्थिति है, यह जाना जा सकता है। नक्षत्र और मुहूर्त भी दर्शाये गये हैं।

घड़ी के दाहिनी ओर उस दिन सूर्य के उदय होने का समय और अंगरेजी महीने का नाम तथा तारीख देखे जा सकते हैं।

बायीं ओर चंद्रमा की स्थिति और विक्रम संवत के अनुसार हिंदी महीनों का नाम है।

नीचे की ओर उस सप्ताह के दिन का नाम और उस समय विशिष्ट ग्रह की स्थिति बतायी गयी है।

**काशी के भूतपूर्व महाराजा एवं उनके निवासस्थान पर लगी विचित्र घड़ी**

कहानी

## ● ईश्वरचन्दर

अस्पताल से ले जाने के बाद भी वह ठीक कहां रहने लगा था ! घंटों बिस्तर पर पड़ा रहता । फिर कभी जब हवाएं और ठंडी हो जातीं, या थोड़े बादल घिर आते तो घुटनों के दर्द की या 'कमर गयी ... कमर गयी' की उसकी शिकायत और बढ़ जाती ।

डॉक्टरों ने तो उसके घरवालों को

मना भी किया था कि अभी उसे घर मत ले जाओ, उसका इलाज पूरा नहीं हुआ है; लेकिन घरवाले ही जिद किये हुए थे कि नहीं, जब मरीज स्वयं ही कह रहा है कि अब मैं ठीक हूं, तो फिर जबरदस्ती क्यों की जाए ! घरवालों की जिद देखकर डॉक्टरों ने उसे डिस्चार्ज तो कर दिया लेकिन उसे 'फिटनेस सर्टिफिकेट' नहीं दिया । बोले, "अभी तो कुछ दिन मरी॰ घर पर आराम करने दो, उसके बा॰ वह आफिस जाने लायक होगा ।"

घर वाले भी राजी हो गये थे॰ असल में, लग तो उन्हें भी र॰ कि बूढ़े को अभी तक चलने-फिरने में॰ लीफ हो रही है, लेकिन वे लोग अस॰ आते-आते थक गये थे । दिन में दो॰ चार-चार बार अस्पताल आते, और॰ अगर डॉक्टर कहीं कोई इंजेक्शन॰ दवा लाने को कहते तो शहर तक॰ एक चक्कर और हो जाता ।

यहां तक हो तो भी ठीक, ले॰ कभी-कभी रात में भी उनके पा॰ कर्नल साहब के घर डॉक्टर का टेली॰ आ जाता कि उन लोगों से कहें कि म॰ बहुत नर्वस हो गया है और घरवालों॰ वहां बुलाने के लिए जिद कर रहा॰ तब बुढ़िया को भी यह अच्छा नहीं ल॰ फिर भी घरवाले अस्पताल पहुंच जा॰ वहां जाकर देखते कि बूढ़ा पलंग पर॰ बैठा जल्दी-जल्दी बीड़ी के कश ले र॰ और सोये हुए अन्य मरीजों को॰ गौर से देख रहा है, जैसे वे सब म॰ हों, या जैसे वह कहीं लाशों के बीच॰ गया हो !

बुढ़िया जब पूछती कि क्या बा॰ तो वह बस इतना भर ही कहता॰ खिड़की के पासवाला परदा जब हिला॰ तो मैंने देखा, काले भैंसे पर सवार,॰ नीग्रो-जैसा, काला-सा एक मोटा आ॰

बाहर खड़ा है ।

बुढ़िया को लगता कि यह बात कहते-कहते बूढ़े का चेहरा आतंक से न जाने कैसा हो जाता है !

बार-बार ऐसी बातें सुनकर बुढ़िया डर गयी थी कि कहीं कुछ ऐसा-वैसा तो नहीं होने वाला । लोग बताते हैं कि काल-देवता इसी तरह भैंसे पर सवार होकर आते हैं ।

ऐसा ही डर बूढ़े को भी लगा था, और शायद इसी कारण वह सोचने लगा

आ जाए और अपने बाप को कुछ ढाढ़स बंधवा जाए कि वे जल्दी ही अच्छे हो जाएंगे ।

बाकी, बूढ़े को यह डर लग ही गया था कि अब क्या बचना-बचाना है ! अब तो बस, चला-चली का खेल है ! आशा सिर्फ एक रह गयी थी कि वह जीवित रहते रिटायर हो जाए और इस सुख का आनंद भी ले ले कि रिटायर होने पर लोग कैसे बैंड-बाजों के साथ घर तक छोड़ने आते हैं और एक ही बार में हथेली पर कैसे पी.

था कि उसे अब घर जाना चाहिए । यहां अस्पताल में ही मर जाना उसे स्वीकार्य नहीं था ।

अब घर आ जाने के बाद भी वह घुटनों के दर्द और 'कमर गयी . . . कमर गयी' की शिकायत करता रहता ।

कभी-कभी बुढ़िया को लगता कि अपनी बड़ी बेटी को लिख भेजे कि घूमने-घामने के बहाने वह हम लोगों के यहां

एफ. के हजारों रुपये आ जाते हैं । उस सुख की कल्पना भर से वह उल्लसित हो उठता ।

उसके रिटायर होने में केवल चार महीने रह गये थे ।

पहली बार जब उसने बीवी को आकर बताया था कि गजट में उसके रिटायरमेंट के संबंध में तिथि आदि छप गयी है, तब उसे इस बात से कोई खुशी नहीं हुई थी ।
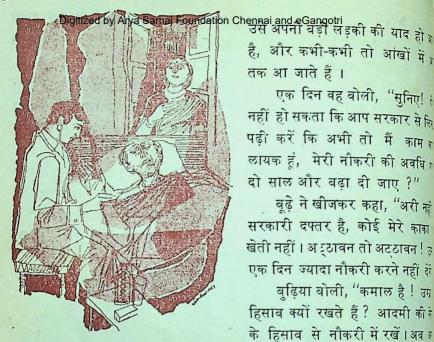
उसे चिंता हो गयी थी, पति के रिटायर हो जाने के बाद, घर की कमाई का जो एक ही रास्ता है, वह बंद हो जाएगा, और कोई कमाने वाला तो है नहीं।

तब उस दिन बुढ़िया को अपनी बड़ी लड़की की बहुत याद आयी थी। वह लड़की नहीं, लड़का थी। मैट्रिक पास करने के तुरंत बाद उसने टीचरी कर ली थी और सिलाई-कढ़ाई आदि कर दो-ढाई सौ कमा लाती थी। जब उसकी शादी हुई थी तो उसे ऐसा लगा था, जैसे एक कमाऊ पूत मां-बाप से अलग जाकर रहने लगा है।

आज भी बुढ़िया जब कहीं किसी के घर में जवान लड़की को देखती है, तो उसे अपनी बड़ी लड़की की याद हो आ... है, और कभी-कभी तो आंखों में ... तक आ जाते हैं।

एक दिन वह बोली, "सुनिए! ... नहीं हो सकता कि आप सरकार से लि... पढ़ी करें कि अभी तो मैं काम ... लायक हूं, मेरी नौकरी की अवधि ... दो साल और बढ़ा दी जाए?"

बूढ़े ने खीजकर कहा, "अरी न... सरकारी दफ्तर है, कोई मेरे काका... खेती नहीं। अट्ठावन तो अट्ठावन! ... एक दिन ज्यादा नौकरी करने नहीं दे...

बुढ़िया बोली, "कमाल है! उम्... हिसाब क्यों रखते हैं? आदमी की ... के हिसाब से नौकरी में रखें। अब ... लालाजी को देखो, कितने बूढ़े दीखते... तो भी लखन की मां बता रही थी कि ... तीन-चार साल और नौकर रहेंगे।"

बूढ़ा बोला, "उसने तो अपनी ... झूठी लिखवायी है।"

"तो आप भी गलत लिखवा लो ... जब सरकार के सामने झूठ-सच में ... अंतर ही नहीं है, तो आप भी झूठ बोल... फायदा क्यों नहीं उठाते?"

बूढ़े को लगा कि औरतें कि... लालची होती हैं!

अब जब अस्पताल से बूढ़े को घ... आये हैं, तो वह बैठा-बैठा, व्यर्थ की ... सोचने लगा है। वह देख रहा है कि उ... एकमात्र बेटा यों ही इधर-उधर के ... खा रहा है। बड़े सपने संजोये थे ...

अपने बेटे को लेकर कि इसे इतना पढ़-वाऊंगा, ऐसी-ऐसी नौकरी की कोशिश करूंगा। कोई अच्छी-सी नौकरी नहीं मिली, तो विदेश ही भिजवा दूंगा।

लेकिन बूढ़े को अब लग रहा है कि सब धरा का धरा रह गया है। बेटा हर क्लास में एक, दो साल फेल होता रहा है। उसने अपने कई खर्चों में कटौती कर उसे होस्टल में रखवा दिया, लेकिन उसने वहां भी एक लड़के का पाकेट-ट्रांजिस्टर चुरा लिया। फादर ने उसे स्कूल से ही निकाल दिया। तब से वह आवारा छोकरों के साथ घूमता रहता है। सिगरेट और चरस पीता है। रात में देर-देर से घर लौटता है, फिर जब देखता है कि घर के सब लोग सो रहे हैं, तब कोई न कोई 'ब्लू-बुक' पढ़ने लगता है।

यह सब देखकर बूढ़े ने आशा छोड़ दी थी कि लड़का उसके जीते-जी उनके किसी काम आ सकता है।

अब ले-देकर उसकी अगर आशा बंधी हुई है तो दूसरी लड़की से, जिसने इस वर्ष बी.एस-सी. कर लिया है।

इससे पहले तो बूढ़े या बुढ़िया दोनों में से किसी ने भी यह नहीं सोचा था कि छोटी लड़की को कहीं नौकरी करने के लिए कहा जाए।

लेकिन अब, जबकि बूढ़े का रिटायर-मेंट नजदीक आ गया है, बुढ़िया की समझ में यह बात आ गयी है कि छोटी लड़की को नौकरी ही करवायी जाए, ताकि आयकी अगर एक राह बंद हो जाए, तो दूसरी खुल जाए।

वैसे, छोटी लड़की को नौकरी करवाने की बात अचानक ही बुढ़िया के मन में नहीं आयी थी। हुआ ऐसा था कि पीछे-वाली कालोनी के काका मंगतूराम की, रिटायर होने से कुछ दिन पहले ही मृत्यु हो गयी थी। घर में कोई और कमाने
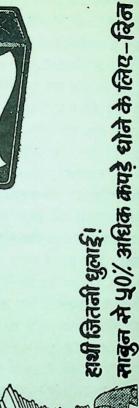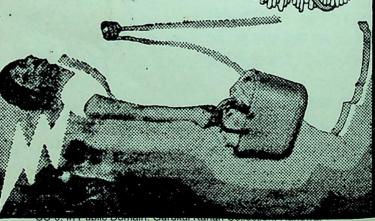
बिजली की सफ़ेद चमकार
रिन से
रिन
हाथी जितनी धुलाई!
साबुन से ५0% अधिक कपड़े धोने के लिए–रिन!
लिंटास-RIN. 7 .-694 HI
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लायक नहीं था, तो सरकार ने बाप की जगह बेटी को नौकरी में रख लिया था।

कीर्तन में गयी थी, तब बुढ़िया यह बात सुन आयी थी। घर आकर उसने अपने पति से पूछा कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आपके रिटायर होते ही, छोटी को आपकी जगह नौकरी में रख लें ? पहले राजा-महाराजाओं के जमाने में क्या ऐसा नहीं था ? . . और फिर अंगरेजों के जमाने में भी तो ऐसा ही हुआ करता था।

बूढ़े ने कहा, "क्या पता !... मैंने ऐसा कभी पूछा नहीं है।"

"तो पूछ देखिए ना !"—और तब ही बुढ़िया ने उसे बता दिया कि किस तरह काका मंगतूराम की जगह पर सरकार ने उसकी लड़की को नौकर रख लिया है।

बीवी के कहने में आकर तब उसने सरकार से लिखा-पढ़ी शुरू कर दी, लेकिन जवाब में उसके बड़े साहब ने केवल इतना भर लिखा कि नौकरी में रहते किसी की मृत्यु हो जाने पर सरकार उसके परिवार में से किसी को अगर योग्य पाये, तो नौकरी में रख सकती है। बाकी, रिटायर हो जाने के बाद, उसके किसी लड़के या लड़की को नौकरी में रखने का फिलहाल कोई प्रबंध नहीं है।

उसे सरकार की यह बात गलत लगी थी कि कोई रिटायर हो जाए या मर जाए, क्या फर्क पड़ता है ! एक घर की आय तो खत्म हो जाती है !

लेखक

घर आकर उसने बुढ़िया को साहब के उत्तर का मसविदा बता दिया कि मेरे जीते-जी तो छोटी लड़की को मेरी जगह रख नहीं सकते, चाहे रिटायर हो जाऊं, तो भी।

बुढ़िया तभी से सोच में पड़ गयी थी। उसे लगने लगा, जैसे उसके पति के बुढ़ापे के साथ इस घर के भविष्य का भी बुढ़ापा नजदीक आ रहा है।

लड़का अगर बुरी सोहबत और आवारागर्दी में न फंस गया होता, तो भी आगे आशा की कोई किरण दिखायी दे जाती। लेकिन अब तो...

घर के भविष्य की चिंता अब बूढ़े को भी लग गयी थी।

बड़े साहब के उस उत्तर के तुरंत बाद ही बूढ़ा बीमार पड़ गया था। हुआ यों कि काका मंगतूराम की लड़की को जो नौकरी मिल गयी थी, तो बूढ़े को छोटी लड़की के प्रति कुछ आशा बंध गयी थी कि शायद उसके रिटायर होने के बाद उसको उसकी जगह पर नौकरी में रख लेंगे। लेकिन बड़े साहब का उत्तर आ जाने के बाद वह रही-सही एक उम्मीद भी जैसे टूट गयी। तब से. अपनी हर सुस्त घड़ी में बूढ़ा अपने परिवार के भविष्य के प्रति सोचता रहता। ऐसा सोचते-सोचते, कभी-कभी उसके सिर

में चक्कर भी आ जाता। तभी एक दिन आफिस की सीढ़ियां उतर रहा था कि सिर चकरा गया, और बूढ़ा काफी सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरा था। गिरते ही बेहोश हो गया। आफिस के लोग उसे उठाकर घर ले गये थे। घर पर भी जब बूढ़े को होश नहीं आया, तो उसे अस्पताल ले गये। वहां अस्पताल में जब होश आया, तो उसने बता दिया कि कैसे उसका सिर चकरा गया था, और कैसे अब उसके घुटनों और कमर में बहुत दर्द हो रहा है।

बस, तभी से उसे घुटनों में दर्द और कमर में पीड़ा की शिकायत हो गयी थी।

बुढ़िया अपने पति की देखभाल तो करती, लेकिन उसे लगने लगा था कि न जाने क्यों बूढ़े की बीमारी या उसके ठीक हो जाने से जैसे उसे कोई मोह ही नहीं रहा।

एक दिन घर पर बैठे-बैठे ही, न जाने क्या सोचकर बुढ़िया ने पति से पूछा, "वो... वो एक बार आप बता रहे थे कि आपको एक काला भैंसा दिखायी दिया था और उस पर नीग्रो-जैसा एक काला सवार भी दीखा था। कैसा था उसका हुलिया— यानी वह कैसा लग रहा था?"

बूढ़ा बोला था, "उसकी लाल-लाल-सी आंखें थीं। सिर पर एक टोप था। हाथ में एक मोटा रस्सा था।...और...और वो मेरी तरफ घूर-घूरकर देख रहा था।"

"फिर?" बुढ़िया बोली।

"फिर... फिर उसने मुझे अंगुली से इशारा किया।" बूढ़े का आतंकित चेहरा जैसे सिकुड़-सा गया।

"तो?"

"तो क्या... मैं नहीं गया। मैं बोला, "नहीं आऊंगा।"

बुढ़िया आगे नहीं बोली। थोड़ी देर बाद, उसे खुद ही लगा कि उसने बड़ा ही बेहूदा और बेतुका-सा सवाल पति से पूछा था। लेकिन वह खुद ही उस गुत्थी को नहीं सुलझा पा रही थी कि उसने ऐसा सवाल क्यों पूछ लिया था!

अचानक एक दिन बूढ़े की तबीयत फिर बिगड़ गयी। हुआ ऐसा कि बत्ती जलने के बाद उसने कोई ठंडी-सी चीज पी ली थी, जिसके कारण वह ठंड खा गया था और रात भर बुखार में बहकता रहा। एक बार तो उसने अपनी आंखें फेर लीं। उसके ऐसा करते ही घरवाले घबरा गये।

जल्दी से कर्नल साहब के यहां से डॉक्टर को फोन पर बुलाया गया। डॉक्टर आया, तो मरीज की हालत देखकर उसका भी चेहरा उतर गया। केस बहुत सीरियस था—डाक्टर ने ऐसा ही कहा। वह मरीज के पास बैठ गया। कुछेक दवाएं और इंजेक्शन लिखकर उसने उनकी सूची बुढ़िया के हाथ में थमा दी, कि ये जल्दी से, बिना किसी देर के, मंगवायी जाएं।

बुढ़िया ने तब इधर-उधर देखा कि उसका लड़का कहां है, जिसे भेजकर वह दवाएं मंगवा ले। लेकिन छोटी लड़की ने बताया कि वह तो अभी किसी लड़के के

साथ बाहर निकल गया है। बुढ़िया को गुस्सा आया कि यह भी कैसी औलाद है ! इधर बाप को तो कुछ ऐसा-वैसा हो रहा है, और बेटे को आवारागर्दी से फुरसत नहीं है !

तभी फिर पास वाले कर्नल साहब के लड़के को जल्दी से स्कूटर पर दवाइयां लाने के लिए शहर भगाया गया ।

दवाइयां अभी आयी ही नहीं थीं कि बूढ़े ने फिर छटपटाना शुरू कर दिया । उसके हाथ-पैर ठंडे होने लगे । शरीर ऐंठने लगा । कंपकंपी-सी उठने लगी । डॉक्टर खुद परेशान हो गया । वह बार-बार दरवाजे की तरफ देखने लगा कि कब कर्नल का लड़का दवाइयां आदि ले आये और कब वह मरीज को इंजेक्शन लगाकर उसकी कंपकंपी शांत करवाये ।

डॉक्टर ने एक-दो बार आशा-निराशा के बीच की दृष्टि से बुढ़िया की तरफ देखा ।

लेकिन बुढ़िया चुपचाप खड़ी अपने पति की छटपटाहट और कंपकंपी देख रही थी । उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि वह रोये या ऐसे ही चुपचाप खड़ी, जो कुछ हो रहा है, उसे होता देखती रहे ।

तभी दूसरे क्षण, बिजली के हलके करेंट-सा एक विचार उसके मस्तिष्क को छू गया ।

उसे लगा, कहीं छोटी लड़की की नौकरी का रास्ता तो नहीं खुल रहा है!

एक हलकी-सी मुसकान बुढ़िया के होठों पर आयी और फिसल गयी ।

तभी डॉक्टर को भी शायद यह अजीब-सा लगा, जब उसने देखा कि बुढ़िया के होंठों पर कुछ देर पहले एक मुसकान उभर आयी थी ।

कर्नल का लड़का अभी तक नहीं लौटा था, और इधर बूढ़े की छटपटाहट बढ़ती जा रही थी ।

—१४०२।बी, रेलवे क्वार्टर्स, मेयो कालेज
के सामने, श्रीनगर रोड, अजमेर

---

**न्यायाधीश ने प्रश्न किया, "क्या तुम्हें अदालत में बयान देने के लिए किसी ने कुछ सिखाकर भेजा है ?"**

**"जी हां !" बच्चे ने उत्तर दिया ।**

**न्यायाधीश ने फिर पूछा, "तुम्हें किसने सिखाया है ?"**

**"मेरे पिता ने ।"**

**न्यायाधीश का अगला प्रश्न था, "क्या सिखाया गया है तुम्हें ?"**

**"यह कि अदालत में एक वकील तुमसे ऊटपटांग प्रश्न पूछेगा, पर तुम सच्ची बात ही कहना," बच्चे ने बताया ।**

# कुत्ता आपके इशारों पर

● आनंदप्रकाश कानोड़िया

पशुओं में कुत्ता मनुष्य का सबसे अच्छा दोस्त माना जाता है। वह वफादार भी बहुत होता है। धर्मराज युधिष्ठिर जब स्वर्ग को प्रयाण कर रहे थे तब एक कुत्ता उनके पीछे-पीछे चल दिया। हिमालय के भीषण शीत में धर्मराज के सारे भाई और द्रौपदी एक-एक करके गल गये, पर शीत के बावजूद कुत्ते ने उनका साथ नहीं छोड़ा। इतना वफादार होता है कुत्ता।

बहुत-से देशों में नियमित 'डॉग क्लब' हैं जिनमें कुत्तों के पालन आदि के संबंध में जानकारी दी जाती है। यों कुत्तों की सौ से अधिक जातियां हैं, पर इन जातियों को तीन समूहों में बांटा गया है—बड़ा, छोटा और खिलौना। हरेक जाति की अपनी विशेषता है। जाति चुनने के बाद पालने के लिए कोई पिल्ला चुन लेना चाहिए। यद्यपि किसी भी पिल्ले के बारे में निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वह आगे कैसे बनेगा, पर उसकी वंशावली एवं व्यवहार द्वारा विशेषज्ञ उसके बारे में अनुमान लगा सकते हैं।

यह अध्ययन करने की आवश्यकता होती है कि किन परिस्थितियों में पिल्ला कैसा व्यवहार करता है। उसे उचित व्यवहार करने की शिक्षा भी देनी चाहिए।

विश्व का प्रथम 'ओब्रीडियंस चैंपियन' कॉकर स्पैनियल हैरी खेल में व्यस्त

यदि उसे प्रेमपूर्वक सिखाया गया तो वह हर प्रकार से स्वामी को प्रसन्न रखने का पूर्ण प्रयत्न करेगा, पर उसे यह भी सिखाना चाहिए कि वह किस कार्य से प्रसन्न होगा। उसका नियमित प्रशिक्षण आवश्यक है।

प्रशिक्षण अनेक प्रकार के हैं—सौंदर्य प्रतियोगिताओं के लिए,सर्कस, पशुओं अथवा पक्षियों के आखेट के लिए, भेड़ों की देख-भाल के लिए, दृष्टिहीनों के पथ-प्रदर्शन के लिए, पानी में डूबते व्यक्तियों की रक्षा के लिए, अपराध-अन्वेषण के लिए, उच्छृंखल भीड़ पर नियंत्रण के लिए, खोये हुए मनुष्यों एवं वस्तुओं की खोज के लिए तथा सैनिक एवं आज्ञाकारिता के लिए, आदि। आज्ञा-कारिता का प्रशिक्षण प्रथम महत्त्वपूर्ण कदम है।

**कुत्ता और बालक**

कुत्ते को प्रशिक्षण देना यद्यपि एक विशेष कला है, पर उसे ठीक उसी प्रकार से शिक्षा देनी होती है जिस तरह किसी मनुष्य के बच्चे को। उसकी स्थिति ठीक निर्बोध बच्चे की तरह होती है, जिसे बोलना भी न आया हो।

उद्दंड, हठी और खिलाड़ी बालक को जिस तरह बार-बार सुधार एवं डांट-डपट की आवश्यकता पड़ती है उसी तरह उस कुत्ते को भी जो स्वामी की आज्ञा का जान-बूझकर उल्लंघन करता है। चिड़चिड़ा एवं दुष्ट कुत्ता एक गंभीर समस्या है और यदि इसके साथ कठोरता से व्यवहार न किया जाए तो यह सार्वजनिक कष्ट का कारण बन सकता है। कायर कुत्ते को साहस दिलाते रहने की आवश्यकता है। लेशमात्र भी कठोर व्यवहार से यह स्वामी से दूर भागने लगेगा। दुर्बल स्नायुवाले भावुक कुत्ते के साथ नम्र व्यवहार ही उचित है। अच्छे कार्यों के लिए पुरस्कार तथा अधिक प्रोत्साहन से ही काम बन सकता है।

**कुत्ता : स्वभाव और प्रकृति**

स्वभाव से कुत्ते भावुक, बुद्धिमान और चतुर होते हैं और अधिकतर किसी प्रकार के शब्द, सनसनी और आंदोलन का सजग होकर प्रत्युत्तर देते हैं। भगवान ने इन्हें स्मरण-शक्ति भी प्रदान की है। सिखाते समय कुत्ते का ध्यान स्वयं में ही केंद्रित रखने का प्रयत्न वांछनीय है। प्रारंभिक प्रशिक्षण में कुत्ते से कभी भी अधिक काम न लिया जाए। प्रत्येक अभ्यास को उस समय तक चालू रखना चाहिए जब तक वह कुत्ते का स्वभाव ही न बन जाए। इच्छित स्वभाव बन जाने के पश्चात कुत्ता उसे स्थिर रख सकता है, पर यदाकदा उस अभ्यास की पुनरावृत्ति की आवश्यकता बनी रहती है।

कुत्ते को एक समय में ही अभिप्सित सिखा देना चाहिए, क्योंकि कुत्ते ने यदि किसी क्रिया को सीखने में एक बार उदासीनता दिखायी तो दूसरी बार वह और भी अन्यमनस्क हो जाएगा।

उद्दंडता के लिए, यदि अधिक आवश्यकता प्रतीत हो, पट्टा और गरदन पकड़कर उसे थोड़ा हिला देना ही पर्याप्त है।

बिना किसी भूल के प्रसन्नता से पूंछ हिलाते हुए आज्ञापालन करना ही उसके प्रशिक्षण की सफलता का चिह्न है।

कुत्ता अपने स्वामी पर पूर्ण विश्वास करता है, अतः स्वामी को अपने कुत्ते का प्रशिक्षण स्वयं करना चाहिए। यदि नियमित प्रशिक्षण का समय न निकाल सके तो स्वामी को इतना अवश्य सीख लेना चाहिए कि कुत्ते से कैसे काम लिया जाए तथा उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाए। केवल प्रशिक्षक पर निर्भर रहना उचित नहीं है।

**विभिन्न मत**

कुत्तों की विभिन्न जातियों के प्रशिक्षण के संबंध में विशेषज्ञों में मतांतर है। बहुत-से व्यक्तियों के विचार में छोटी नस्ल का कुत्ता कॉकर स्पैनियल बच्चों का प्रिय और मिलनसार कुत्ता है, जबकि कुछ के विचार में यह केवल एक 'गन डॉग' (पक्षियों के शिकार में सहायक कुत्ता) है और आज्ञाकारिता के प्रशिक्षण-योग्य नहीं। अलसेशियन, डोबरमैन, पिंशर, लेब्राडोर, रिट्रीवर तथा अन्य बड़ी नस्ल के समझदार कुत्ते ही प्रशिक्षण-योग्य हैं। खिलौने कुत्ते फैशनेबल स्त्रियों की गोद की शोभा माने जाते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार इस नस्ल के कुत्तों को आज्ञाकारिता के लिए प्रशिक्षण देना उनकी खेलकूद की उमंग ही समाप्त कर देना है।

कुछ के विचार में कुत्ते स्वतंत्र रहने चाहिए। ऐसे लोग न तो अपने कुत्तों का ध्यान रखते हैं और न उन्हें प्रशिक्षण देना उचित समझते हैं। कुत्ते को प्रशिक्षण देने से उन्हें घृणा होती है। स्वतंत्र कुत्ते पड़ोसियों अथवा राह चलते व्यक्तियों को काट लेते हैं। असावधानी के कारण ही कुत्ते अनमेल संबंध, दुर्घटना, संक्रामक रोग और पागलपन के शिकार होते हैं। कुत्तों को स्वभाव से ही अपना घर प्यारा होता है।

**सावधान! ये पागल कुत्ते हैं** (लेख पृष्ठ १४९ पर देखें)

यदि उन्हें प्रेम से रखा जाए तो साधारणतया वे बाहर नहीं जाते और न ही आवारा होकर घूमते हैं।

विभिन्न नस्ल के कुत्ते विभिन्न प्रकार से मनुष्यों की सेवा कर सकते हैं, अतएव उन्हें उद्देश्यानुसार ही प्रशिक्षण दिया जाए। मेरे विचार में सभी नस्ल के कुत्तों को आज्ञाकारिता के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

**अंतर्राष्ट्रीय आज्ञाकारिता-प्रतियोगिता**

कुत्तों की आज्ञाकारिता का प्रशिक्षण ब्रिटेन से अनेक देशों में फैला है। विभिन्न देशों में आज्ञाकारिता-प्रतियोगिताओं की क्रियाओं तथा इनके नियमों में कुछ अंतर है। 'ओबिडियेंस चैंपियन' तथा 'यूटिलिटी डॉग' दो प्रमुख उपाधियां हैं जो विभिन्न देशों में कुत्तों को आज्ञाकारिता में उच्च सफलता के लिए प्रदान की जाती हैं। यह उचित होगा कि विश्व में आज्ञाकारिता-प्रतियोगिताओं की क्रियाओं, मानदंडों एवं नियमों में समानता हो। यदि विभिन्न देशों के डॉग-क्लब प्रयत्न करें तो सभी क्लबों का एक विश्व-संगठन बन जाना कठिन नहीं।

'फेडरेशन सिनोलॉजिक इंटरनेशनल' नामक एक अंतर्राष्ट्रीय श्वान-संस्था बेल्जियम में है। भारत तथा अनेक देशों के डॉग-क्लब इसके सदस्य हैं। यह संस्था श्वान-प्रेमियों को एक-दूसरे के करीब लाने में अच्छा काम कर रही है।

—४२६, कूचा बृजनाथ,
चांदनी चौक, दिल्ली-११०००६

## रेबीज़ या कुत्ते का पागलपन

'रेबीज' रोग के कारण कुत्ता पागल हो जाता है। ऐसा कुत्ता यदि किसी मनुष्य को काट ले तो वह मनुष्य भी पागल हो जाता है। १०० से १५० माईक्रान का विषाणु केवल नाड़ी के रास्ते होकर मस्तिष्क में पहुंच जाता है। कुत्ते के काटने के बारह सप्ताह में रोग होता है। इसका पहला लक्षण है—बुखार, सिर-दर्द, बेचैनी, घाव की जगह दर्द या जलन, अनिद्रा आदि। दूसरा लक्षण है—बहुत ज्यादा बेचैनी। पानी दिखाने पर रोगी के मुंह और उसकी श्वास-नलिका में ऐंठन। तीसरा लक्षण है—पक्षाघात। इलाज तुरंत कराना चाहिए, नहीं तो मृत्यु अवश्यंभावी है। डॉक्टर की सुविधा मिलने तक घाव को साबुन और पोटेशियम परमेंगनेट से अच्छी तरह धोना चाहिए। घाव का, जितना भी हो सके, रक्त निकाल देना चाहिए। ऐसा कुत्ते के काटने के तीन मिनट में ही करना चाहिए।

# सम्मोहन जादू नहीं

• डॉ. पोलाटि[illegible]

सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) कोई जादू नहीं है। यह एक प्रकार की मोहनिद्रा या योगनिद्रा है, जिसमें व्यक्ति जाग्रत अवस्था में ही सोया हुआ होता है। सम्मोहन पैदा करने के लिए डॉक्टर मरीज को सोने का सुझाव देता है, फिर इस सुझाव को वह बार-बार दोहराता है। कुछ ही देर में मरीज निद्रावस्था को पहुंच जाता है। किसी व्यक्ति में यह अवस्था लाने के लिए प्रायः दस से तीस मिनट लगते हैं, पर कुछ व्यक्ति एक मिनट में ही सो जाते हैं। जिस व्यक्ति की इच्छाशक्ति जितनी ही कमजोर होगी, उतना ही उस पर सम्मोहन का असर जल्दी होगा।

किसी व्यक्ति को सम्मोहित करने के लिए पहले उसे एक शांत और अंधेरे कमरे में, मेज या आरामकुरसी पर लेटने के लिए कहा जाता है। फिर कहा जाता है कि वह उस चमकदार चीज पर अपना ध्यान केंद्रित करे जो उसकी आंखों से लगभग एक फुट की दूरी पर रखी गयी होती है। तब डॉक्टर मरीज के सिर पर नरमी से हाथ फिराता हुआ, एकरसता-भरी आवाज में, उसे बार-बार सोने का सुझाव देता है। कुछ ही देर में मरीज ऊंघने लगता है। डॉक्टर तब तक अपना सुझाव दोहराता रहता है जब तक कि मरीज गहरी नीं[illegible] में नहीं डूब जाता। डॉक्टर जितने अ[illegible] के लिए चाहे, मरीज में सम्मोहन पैदा [illegible] सकता है। फिर जागने का सुझाव दे[illegible] वह उसे तोड़ भी सकता है। एक या दो [illegible] के बाद सम्मोहन का असर जाता र[illegible] है और मरीज खुद ही जाग उठता है।

सम्मोहन के प्रभाव में क्या होता है? सबसे पहले उसका सचेतन मन काम क[illegible] से हट जाता है और उसके अचेतन मन [illegible] दुनिया साकार हो उठती है। डॉक्टर [illegible] पूछने पर मरीज अपने अचेतन मन में छि[illegible] बातों को बताने लगता है। इस प्रक[illegible] डॉक्टर मरीज की किसी बीमारी के [illegible] मनोवैज्ञानिक कारणों को जान पाता है [illegible] उसके अचेतन मन में छिपे हुए होते होते हैं।

आज मनोवैज्ञानिक बीमारियों [illegible] इलाज में सम्मोहन का बहुत प्रयोग [illegible] रहा है। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति [illegible] दायीं बांह को पक्षाघात हो गया है औ[illegible] हर तरह के डॉक्टरी परीक्षण के बाद प[illegible] लगता है कि उसका कोई शारीरिक कार[illegible] नहीं है। तब उस पक्षाघात का मानसि[illegible] कारण होना जरूरी है। ऐसा मरीज [illegible]

किसी मनोवैज्ञानिक डॉक्टर के पास जाएगा तो वह सम्मोहन द्वारा, इस प्रकार बोलता हुआ उसका इलाज करेगा—

"हां, एकदम गहरी नींद में सो जाइए, बिलकुल गहरी नींद में। देखिए, आप बड़े आराम से सोये हुए हैं। हां, आप अपनी दायीं बांह को हिला भी सकते हैं। जरूर हिला सकते हैं। जब मैं एक-दो गिनता हुआ तीन पर पहुंचू तो आप अपनी बांह को हिलाइए, धीरे-धीरे हिलाइए और फिर हाथ उठाकर अपने सिर को छुइए। लीजिए मैं गिनने लगा हूं। एक-दो-तीन हां, हिलाइए बांह को। देखिए, अब वह हिलने लगी है और आपका हाथ सिर की ओर उठने लगा है, सिर के नजदीक पहुंच गया है, सिर को छूने लगा है। बहुत खूब! देखा, आप अपनी दायीं बांह को हिला पाये हैं; वह पक्षाघात की शिकार नहीं है। जब आप जागेंगे तो इस बांह को स्वाभाविक रूप से हिला सकेंगे। अब मैं आपको इस मोहनिद्रा से जगाता हूं। जब मैं गिनता हुआ तीन पर पहुंचूंगा तो आप जाग जाएंगे। एक दो-तीन!"

मरीज जाग उठता है। डॉक्टर के कहने पर वह किसी चीज को उठाने लगता है तो उसे आश्चर्य होता है कि उसने उसे अपने दायें हाथ से उठाया है!

पर, यह पक्षाघात हमेशा के लिए नहीं गया। एक-दो दिन के बाद, एक-दो हफ्ते के बाद उसकी बांह फिर पक्षाघात का शिकार हो जाएगी, क्योंकि तब हिप्नोटिज्म द्वारा दिये गये सुझाव का असर जाता रहेगा। हिप्नोटिज्म द्वारा किसी बीमारी को जड़ से नहीं मिटाया जा सकता। इस के लिए मनोविश्लेषण आवश्यक है।

पिछले विश्वयुद्ध में असंख्य सिपाहियों के मनों में युद्ध की बर्बरता और तबाही का इतना बड़ा डर समा गया था कि उन्हें दौरे पड़ा करते थे। हिप्नोटिज्म द्वारा ये डर बाहर निकाले गये।

आपरेशन के पहले कुछ व्यक्ति इतने भयभीत हो जाते हैं कि सम्मोहन द्वारा उनके मन को शांति दी जाती है। प्रसूति के समय होने वाली पीड़ा को भी सम्मोहन द्वारा कम किया जा सकता है।

बिना किसी शारीरिक नुक्स के हकलाना, लगातार हिचकी आना, उल्टी होना, घबराहट के कारण भूख न लगना आदि ऐसी बीमारियां हैं, जिन्हें दूर करने में सम्मोहन ने बहुत सहायता की है। मानसिक तनाव कम करने में भी यह सहायक सिद्ध हुआ है।

सम्मोहन का प्रयोग हर किसी को करने की इजाजत नहीं है। इसका प्रयोग करने की इजाजत सिर्फ डॉक्टरों को दी जाती है।

सम्मोहन जादू नहीं है, इसका वैज्ञानिक आधार है। कोई भी व्यक्ति इसे सीख सकता है। पर इसे सीखने की उसी व्यक्ति को इजाजत मिलती है, जो डॉक्टर हो।

**नंदकुमार भारद्वाज, पिलानी : समुद्र में जब दो जहाज एक-दूसरे के पास से गुजरते हैं तो वे किसी आकर्षण से पास खिंच आते हैं, जिससे दुर्घटना भी हो सकती है। इसका क्या कारण है, और इसके पीछे कौन-सा सिद्धांत काम करता है?**

इसे समझने के लिए आप किसी नाली में बहते हुए पानी को देखें। नाली के किनारे जहां संकरे हो जाते हैं, वहां पानी के उस दबाव में अंतर आ जाता है, जो वह किनारों पर डालता है। नाली के अपेक्षाकृत चौड़े हिस्सों में उसके किनारों पर पानी का दबाव अधिक होता है और संकरे हिस्से में कम, क्योंकि संकरे हिस्से से गुजरते समय पानी में तेजी आ जाती है जिससे नाली के किनारों पर दबाव कम पड़ता है, जबकि चौड़े हिस्से में धीरे-धीरे बहता हुआ पानी नाली के किनारों पर ज्यादा दबाव डालता है। यह 'बेर्नाडली प्रिंसपिल' कहलाता है। इसे यों देखा जा सकता है—
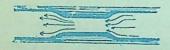
समुद्र में जब दो जहाज निकट आ जाते हैं तो द्रवों के प्रवाह का यही सिद्धांत लागू हो जाता है। दोनों जहाजों के पास आ जाने से दोनों के बीच एक चैनल (नाली ) बन जाता है, जो दोनों जहाजों की दूसरी तरफ फैले समुद्री विस्तार की तुलना में बहुत संकरा होता है। नतीजा यह होता है कि दोनों जहाजों के बीच पानी का दबाव कम हो जाता है और दूसरी तरफ के पहलुओं पर दबाव बढ़ जाता है, जिसके कारण दोनों जहाज एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होने लगते हैं। इसे यों समझा जा सकता है—
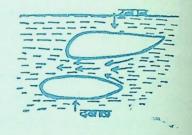
**केष्टो बंद्योपाध्याय, कलकत्ता : 'ऐंटीक्राइस्ट' से क्या अभिप्राय है? क्या क्राइस्ट (ईसा) की भांति यह भी कोई धार्मिक व्यक्ति था?**

'ऐंटीक्राइस्ट' किसी व्यक्ति का नहीं, एक धारणा का नाम है। ईसाई धर्मग्रंथों में इसका उल्लेख सबसे पहले 'सेंट जॉन' में मिलता है। धारणा यह है कि भविष्य में जब इस सृष्टि का अंत होगा, एक अत्यंत शक्तिशाली शासक पैदा होगा। यह शासक ईश्वर का शत्रु होगा। 'ऐंटी' का अर्थ होता है 'विरोधी', अतः 'ऐंटीक्राइस्ट' का अर्थ है ईसा का विरोधी या शत्रु। यहूदी धर्मग्रंथों में 'ऐंटीक्राइस्ट' के संबंध में यह मान्यता पायी जाती है कि सृष्टि के अंत में एक अत्याचारी शासक होगा जिसके पास विशाल सेनाएं होंगी और वह तीन अन्य शासकों को नष्ट करेगा, संत-महा-

त्माओं को मृत्यु दंड देगा और ईश्वर के मंदिरों को ध्वस्त कर डालेगा। मान्यता है कि तब 'क्राइस्ट' और 'ऐंटीक्राइस्ट' में युद्ध होगा और 'ऐंटीक्राइस्ट' मारा जाएगा। वास्तव में 'ऐंटीक्राइस्ट' शैतान की धारणा से मिलती-जुलती धारणा है।

**शकुन, मेरठ : एलिफैंटा की गुफाएं कहां हैं ? ये किस काल की हैं तथा इनका नाम एलिफैंटा क्यों है ? क्या ये भारत में नहीं हैं ?**

एलिफैंटा की गुफाएं भारत में ही, बंबई से पांच मील दूर टापू पर स्थित हैं। पुर्तगालियों के आगमन के समय इस टापू पर पत्थर का एक विशालकाय हाथी बना हुआ था। हाथी (एलिफैंट) को देखकर उन्होंने इस टापू को एलिफैंटा कहना शुरू कर दिया। इस टापू का प्राचीन नाम गिरिपुर है तथा कुछ इतिहासकारों का मत है कि गुप्त राजाओं की राजधानी यहीं थी।

**आशारानी बडोला, इंदौर, : क्या विद्युत-आवेश तारों (वायर ) के बिना भी किसी अन्य चीज को प्रभावित कर सकता है ?**

एक छोटा-सा प्रयोग खुद ही कर देखिए। बूंद-बूद टपकते नल के पास जाइए और अपने सूखे बालों में कंघा फिराकर जरा नल से टपकते पानी के पास ले जाइए। आप देखेंगी कि इससे दो बातें होती हैं। एक तो पानी की बूंदें एक धार बन जाती हैं और वह धार कंघे की तरफ आकृष्ट होकर कुछ टेढ़ी हो जाती है। यह नजारा कुछ-कुछ ऐसा होगा :

**सुमंत भारद्वाज, जौनपुर : अरघुल वाद्य क्या होता है ?**

मिस्र और अरब देशों में पाया जाने

वाला 'अरघुल' फूंक से बजनेवाली बांसुरी जैसा ही होता है, लेकिन अंतर यह है कि बांसुरी में एक ही बांस या नरकुल होता है, अरघुल में दो होते हैं। दोनों नरकुल आपस में इस प्रकार बंधे रहते हैं कि वादक दोनों के सिरे (जो बांसुरी के मुंह-जैसे होते हैं) मुंह में दबाकर बजा सके।

## एक प्रश्न चलते-चलते

**कु. क. ख. म. : यदि पति परमेश्वर है तो पत्नी ?**

परमेश्वर की पत्नी . . . जी नहीं, हम दूसरों की पत्नियों की जानकारी नहीं रखते।

**—बिंदु भास्कर**

● डॉ. एम. एस. अग्रवाल

# दिल की तरह आंखों का दर्द भी खतरनाक

आंख का तनाव मन के तनाव से जुड़ा है। मन सदैव तनाव में रहे तो आंखों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भोजन में असंतुलित पदार्थों का होना और समुचित आराम न मिलना भी नेत्रों में तनाव बढ़ाने का कारण होते हैं। आंखों के इस तनाव को अंगरेजी में 'टेंशन' कहते हैं।

युवावस्था की तरंगों में की असावधानियां चालीस वर्ष की आयु बीतने पर आंखों में 'कालामोतिया' (ग्लाकोमा)-जैसा रोग उत्पन्न कर देती हैं। रोग की प्रारंभिक अवस्था में हलका-हलका दर्द कनपटियों एवं आंखों में होता है। बाद में एक स्थिति ऐसी आती है कि दर्द असह्य हो उठता है। प्रायः लोग पेटेंट 'आई ड्राप्स' या दर्द दूर करनेवाली गोलियां ले लेते हैं, लेकिन रोग की गति कम नहीं होती। रोग को भयानक स्थिति तक पहुंचने से रोकने के लिए किसी अनुभवी नेत्र-विशेषज्ञ से परामर्श कर लेना चाहिए। रोग बढ़ने पर दृष्टि क्षीण होती जाती है। परिधि में असमानता प्रतीत होने लगती है।

प्रायः कम अनुभवी नेत्र-विशेषज्ञ समुचित जांच न करके सफेद मोतिया घोषित कर देते हैं और उसे पूरी तरह पकने तक प्रतीक्षा करने को कह देते हैं। फलस्वरूप अंधेपन की स्थिति आ जाती है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में वैज्ञानिक गिफोर्ड ने घोषित किया कि कालामोतिया की अवस्था प्रारंभिक मोतियाबिंद के साथ होती है अतः मोतियाबिंद का कांच निकाल देने से राहत मिल सकती है। बाद में अनेक विशेषज्ञों ने इस विचार की सत्यता मानी।

**कालामोतिया की तीन अवस्थाएं**

नेत्र-तनाव के साथ कम आयु या प्रौढ़ अवस्था में कालामोतिया, पचास वर्ष की आयु के बाद नेत्रों में हलका-सा दर्द या नेत्रों के सामने कभी-कभी धुंध आ जाना, एक या दोनों नेत्रों में मोतियाबिंद के आपरेशन के कारण टेंशन अनुभव होना—ये कालामोतिया की तीन अवस्थाएं हैं।

भारत एवं अन्य देशों में कालामोतिया ५० से ६० वर्ष के समीप देखने में आया है। ४० वर्ष की आयु में यह कम ही होता है। कालामोतिया दो प्रकार का होता है—प्रारंभिक (बिना किसी अन्य नेत्र-रोग के साथ) और द्वितीय (नेत्र में पहले से ही कोई अन्य रोग होना)।

प्रारंभिक अवस्था दो प्रकार की होती है—पहली, नेत्रों की दुखती अवस्था के साथ और दूसरी नेत्रों में किसी प्रकार की दुखन न होने पर। दुखती अवस्था भी दो प्रकार की होती है—तीव्र और मध्यम।

**कालामोतिया क्यों ?**

एक्युअस चैंबर के बढ़ जाने से नेत्रों में तनाव आ जाता है। यह विभाग कानीनिका के पीछे एवं कृष्णमंडल के मध्य में होता है। कालामोतिया में यह भाग काफी

**पैरीमीटर: नेत्रों की दृष्टि-परिधि का ज्ञान कराने वाला एक यंत्र**

गहरा दृष्टिगत होता है। विशेषज्ञों की दृष्टि में एक्युअस चैंबर के लिंफ में अधिकता आने से यह अवस्था होती है और इसी कारण कृष्णमंडल एवं छायापट पर इसका प्रभाव पड़ता है। परिवार-नियोजन के आसान साधनों को छोड़कर आपरेशन करा लेने से मानसिक अवस्था असंयत हो जाती है।

**तीव्र कालामोतिया के लक्षण**

दृष्टि में क्षीणता एवं पैरीमीटर टेस्ट द्वारा दृष्टि की परिधि सिकुड़-सी जाती है। धुंध से इंद्रधनुषी रंग गोलाकार दौड़ते दीखते हैं। कभी-कभी रोगी सिर में तीव्र पीड़ा अनुभव करता है। आंखों में तनाव अधिक बढ़ जाता है। कानीनिका की वाह्य परिधि के चारों ओर रक्त की नाड़ियां उभरी प्रतीत होती हैं। लक्षणों में घटोत्तरी

**नेत्र-परीक्षण आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा**

एवं बढ़ोत्तरी हो सकती है। वृद्धावस्था में नेत्र-दृष्टि में शीघ्र दुर्बलता आ जाने से इस रोग का डर हो जाता है। यह नेत्र-अवस्था मानसिक तनाव, कम भोजन या असंतुलित भोजन, बहुत कब्ज का होना, अधिक गरम भोजन का सेवन एवं अधिक एट्रोपीन के प्रयोग से भी हो जाता

लेखक

है । शुरू में रोग का दौरा सप्ताह या महीनों बाद होता है, लेकिन बाद में जल्दी - जल्दी भी पड़ने लगता है ।

दृष्टि में अधिक गिरावट आ जाती है और पैरीमीटर टस्ट से ज्ञात होता है कि दृष्टि सामने की ही रह गयी है । नेत्रों में काफी दर्द होता है जिसका संबंध पांचवीं नस से रहता है । कभी-कभी दर्द से शरीर में गिरावट और अन्य कष्ट होता है । नेत्रों में तनाव से कानीनिका में धुंध छा जाती है । पुतली का रूप अंडे के समान एवं रंग हरा हो जाता है । उपचार शीघ्र न हो तो दृष्टि चली जाती है । इसका कोई इलाज नहीं है ।

कालामोतिया के रोगी को दृष्टि में क्षीणता, किसी भी प्रकाशमय वस्तु को देखते समय इंद्रधनुषी रंग के गोलाकार घेरे दीखना, धुंधलापन, कनपटी, नेत्रों के डेले एवं सिर में दर्द, नेत्रों के ऊपर हलकी-सी सूजन, दृष्टि की परिधि में कमी आदि अनुभव होते हैं ।

**चिकित्सा**

कालामोतिया के लिए ये उपचार किये जा सकते हैं—आम देखभाल, औषध और ऑपरेशन ।

आम देखभाल—देर से सोने एवं देर से उठने पर नेत्रों में भारीपन एवं तनाव में वृद्धि हो जाती है । चाय, कॉफी शराब बिलकुल न पियें । तेज मिर्च, म अचार एवं बादी चीजें न खायें । मा हारी उबला मांस और सब्जियां मिल खायें । दालों में मूंग और मसूर की ही लें । दही का सेवन करें । मिठा दूध से बनी ही खायें । नमक का प्र कम करें । हलका भोजन नेत्रों के लि लाभदायक रहता है । फलों में रस फल लें । जब भी सिर-दर्द या नेत्रों में ल हो तो पहले पेट साफ करें । ठंडे प से आंखें बार-बार धोयें और हथेलियों आंखें ढक लें । इससे आराम मिलता है गाजर या सेब का रस उपयुक्त है । को मन शांत रखना चाहिए ।

कब्ज दूर करने के लिए तांबे के ब तन में रात भर रखे पानी को प्रातः पि

उपच

जब औषध आदि से कोई लाभ हो और नेत्रों में तनाव बढ़ता रहे आपरेशन ही एकमात्र उपाय है । मंडल का कुछ भाग डॉक्टर काट देता जिसके कारण तनाव में कमी आ जाती है

कालामोतिया में कुछ रोगियों दर्द का अनुभव नहीं होता, तनाव भी होता है, पर वह बढ़ता जाता है । अवस्था में दृष्टि की क्षीणता और परि में कमी पहले चिह्न होते हैं ।

घरेलू दवाओं द्वारा उपचार क नेत्रों के साथ खिलवाड़ करना होता है

**—१५ दरियागंज, दिल्ली–११००**

# प्रवेश

## बेबसी

मीलों-मीलों चलना है
और पल-पल रुकना
थके पांव
धुंधली दीखती दूर कहीं
मंजिल है
एक सीधी नजर से भी
दूर तक जाती
पगडंडी-सा सफर
किनारे के खिले फूलों पर नजर है
छूना नहीं !
देखते हुए पास से
गुजरते भर जाना है

## एकाकी

टूटकर माला से
मोतियों-सी बिखर पड़ी बरखा
घटाओं-सी घनी पलकें मूंद
सो गया एक सपना
और रातरानी महकती रही
एक छोटी-सी उदासी को
बाहों में भींचे
चुपचाप पड़ा रहा मन
बरस-बरसकर थकी घटा
वही एक अटका हुआ क्षण
फिर तड़पा गया मन

"दिल्ली विश्वविद्यालय से बी. ए. । जीवन में कुछ अनचाहा झेला है। असहनीय हो जाने की मन:स्थिति में कुछ लिखा है। कड़वाहट को भी सरलता से अपना लेना सच्चा जीवन मानती हूं ।"

——पूर्णिमा मेहता
——५० महिला कालोनी, गांधीनगर,
दिल्ली——११००३१

कालेज में प्रवेश पाने के बाद मैं छात्रों द्वारा संचालित 'साहित्य-परिषद' का सदस्य बना। हर रविवार को बैठक होती थी। उसमें सदस्य अपनी रचनाएं पढ़ते तथा उन पर आलोचनाएं होती थीं। पहली ही बैठक में मैंने अपनी एक कहानी पढ़ी। मुझे क्या पता था कि सरस्वती मंदिर में घृणित राजनीति तथा गुटबंदी ही होती है। मेरी कहानी की धज्जियां उड़ाने की भरपूर कोशिशें की गयीं।

अगली बैठक में मैंने फिर एक कहानी पढ़ी। कहानी के समाप्त होते ही मुझ पर व्यंग्यों एवं तीखी आलोचनाओं की बौछार होने लगी।

आलोचकों का स्वर धीमा होने पर मैंने मुसकरा कर पूछा, "कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर के बारे में आप लोगों के क्या विचार हैं ?"

"उन्हें कौन नहीं जानता ! लगता है आप सूर्य को दीपक दिखाने की चेष्टा में हैं।" मुझ पर व्यंग्य-बाण बरसे।

मैंने दृढ़ता से कहा, "जनाब, आज मैंने जो कहानी पढ़ी है, वह मेरी नहीं बल्कि रवींद्रनाथ की ही है।" इसके बाद साहित्य परिषद' से मैंने अपना पल्ला छुड़ा कर लिया।

—प्रकाशचंद्र गुप्त, ज. ला. नेहरू एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग कालेज, [illegible]

पिछले वर्ष मैं बिलासपुर के शासकीय महिला महाविद्यालय में बी. एससी. (प्रथम वर्ष) की छात्रा थी। मेरा जंतु-शास्त्र का प्रैक्टीकल था। हमें मेंढक का तंत्रिका-तंत्र निकालना था। तंत्रिका-तंत्र क्लीअर कर ट्रे सीट पर छोड़कर मैं मैडम को बुलाने गयी, परंतु मेरा ध्यान अपनी सीट की ओर था। मैं मैडम से बात कर रही थी कि मेरी एक सहपाठिनी आयी और चुपचाप ट्रे बदलने लगी। यह देखकर मैं चीख पड़ी, "वह मेरा है, कहां ले जा रही हो ?" मेरे चीखने से सबका ध्यान उस ओर गया तथा वह शर्मिंदा हो ट्रे वहीं छोड़कर अपनी सीट पर आ गयी। सब लड़कियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

—ममता चौबे, होम-साइंस कालेज, जबलपुर

हम बी. ए. (फाइनल) में पहुंचे। बहुत-से नये लड़कों ने प्रि-यूनीवर्सिटी में प्रवेश लिया। चारों ओर नये चेहरे नजर आ रहे थे और रैगिंग का बाजार गर्म था। मेरे कुछ मित्रों ने सुझाव दिया कि हमें भी रैगिंग में भाग लेना चाहिए।

उसके बाद मैं इस रोगग के जुर्म में ऐसा फंसा की आज तक सजा भुगत रहा हूं ।

घटना इस प्रकार घटी––मुझे मेरे दोस्तों ने 'एकाउंट्स' का प्राध्यापक बनाकर एक क्लास में भेज दिया और वे लोग क्लास में पीछे की बेंच पर बैठ गये । मैं जैसे ही क्लास में घुसा मेरे दोस्तों ने खड़े होकर मेरा अभिनंदन किया । नये छात्र प्राध्यापकों को पहचानते नहीं थे, अतः मेरे दोस्तों की देखादेखी वे भी खड़े हो गये । मैंने भी बड़ी

मुझे उसी कक्षा का रजिस्टर थमाते हुए कहा, "लो, जाकर उस कक्षा को संभालो । आज 'एकाउंट्स' के टीचर छुट्टी पर हैं ।" मैं अवाक खड़ा रहा, लेकिन प्रिंसिपल साहब ने मुझे यही आदेश देते हुए कहा कि उस दिन की तुम्हारी हरकत की यही 'सजा' है कि जब-जब ये प्राध्यापक छुट्टी पर हों तुम यह क्लास स्वयं लिया करो । और यह 'सजा' मैं कई बार भुगत चुका हूं ।

**–विश्वनाथ डोकानिया, मारवाड़ी का., रांची**

**बांयें से : ममता चौबे, आर. आर. मोहन, विश्वनाथ डोकानिया, प्रकाशचंद्र, रमाशंकर**

शान से उन्हें बैठ जाने का आदेश दिया, फिर 'एकाउंट्स' की भूमिका तथा उसके उपयोग के विषय में पढ़ाने लगा ।

मुझे अपनी स्थिति का भान तब हुआ जब देखा कि मेरे सभी दोस्त एक-एक कर भाग खड़े हुए । अचानक दरवाजे की तरफ देखते ही मैं सन्न रह गया ! पता नहीं कब से प्रिंसिपल साहब हमारी हरकतों को देख रहे थे । उन्होंने तुरंत मुझे अपनी कक्षा में जाने का आदेश दिया । तीसरे दिन उन्होंने मुझे बुलाया । मैं सहमा हुआ उनके पास पहुंचा । उन्होंने

सी. आई. कालेज, कर्वी (बांदा) में छात्रकवि के नाम से मेरा एक अजीब दोस्त था मोहन । मोहन अंगरेजी में उतना ही भोंदू था जितना मैं गणित में । हाईस्कूल में वह कई वर्ष पिटा था । परीक्षा की छाया अपना खंजर लिये गली-कूचों, सिनेमाघरों महफिलों एवं रंगीन चौराहों पर उसका पीछा करती रहती । परीक्षा खत्म हुई । उसके और पर्चे तो अच्छे हुए, किंतु अंगरेजी में वह निराश था । पता लगा कि अंगरेजी की उत्तर-पुस्तिकाएं इलाहाबाद के एक शिक्षक के पास गयी हैं ।

मोहन के पिताजी ने उन शिक्षक महोदय के बारे में जानकारी प्राप्त की। मालूम हुआ कि वे अविवाहित हैं। एक दिन वे शिक्षक के पास जा धमके और उनसे कहा, "सा'ब, मेरे एक लड़की है, शादी करना है... वह गृहकार्य में प्रवीण, व्यवहारकुशल..."

लालायित कुंवारे शिक्षक महोदय ने व्यग्रता से पूछा, "और कुछ ?"

"जी हां, संगीत में निपुण..."

बीच में ही शिक्षक ने टोका, "नहीं, मेरा मतलब पढ़ाई आदि से है।"

"हां सा'ब, इस वर्ष सी. आई. कालेज, कर्वी से हाईस्कूल की परीक्षा में बैठी है।"

"एं!" वे चौंककर बोले, "मैं वहीं की कापियां तो जांच रहा हूं। रोल-नंबर क्या है ?" पिताजी ने रोल-नंबर बताया।

कापी मिली। शिक्षक ने 'विशेष-योग्यता' के नंबर दे दिये। आज इस घटना को याद कर मुझे दोनों पर ही तरस आता है, क्योंकि दोनों ने ही औचित्य की सीमा लांघी थी।

**—रमाशंकर द्विवेदी मानिकपुरी,**
**टी. आर. एस. कालेज, रीवा**

पिछले सत्र की बात है। हमारे कालेज की बॉटेनी सोसाइटी की ओर से पिकनिक टूर बनवसा ले जाया गया। लगभग १०० छात्र-छात्राएं थीं। स्टेशन पर सोसाइटी के पदाधिकारियों ने टिकट के पैसे इकट्ठा किये, पर रास्ते में चेकिंग होने पर मालूम हुआ कि टिकट कम खरीदे गये थे। टिकटचेकर ने जुरमाना करना चाहा, किंतु लड़के उत्तेजित हो गये और उन्होंने उसे बाथरूम में बंद कर दिया।

शाम को जब उधर से लौटे तब भी वही गाड़ी थी और वही स्टाफ। हम लोग अभी आधे ही बैठ पाये थे और काफी साथी भागते हुए आ रहे थे किंतु गार्ड ने गाड़ी चलवा दी। इस पर कुछ लड़के उत्तेजित होकर डब्बों के ज्वाइंट से किसी प्रकार डब्बों की छत पर चढ़कर इंजन पर पहुंच गये और उन्होंने डरा-धमका कर गाड़ी रुकवा ली।

अब तो सारे लड़के उतर आये और स्टाफ की खूब मरम्मत की। हमारे एक अध्यापक ने तो टी. टी. पर प्रहार कर उसे घायल भी कर दिया।

किसी प्रकार और यात्रियों ने बीच-बचाव कर गाड़ी चलवायी। विचित्र संयोग कि घायल टी. टी. कुछ समय बाद आक्रमणकारी अध्यापक के ससुर बने!

**—आर. मोहन, बरेली कालेज, बरेली**

---

**यह स्तंभ युवा-वर्ग के लिए है। कालेज के छात्र-छात्राएं इसके लिए रोचक एनकडोट्स भेज सकते हैं। रचना के साथ अपना चित्र और कालेज का पता लिखा, टिकट लगा लिफाफा भेजना आवश्यक है, अन्यथा रचना पर विचार नहीं किया जाएगा।**
**—संपादक**

---

• रजनी पनिकर

हिप्पीवाद की सबसे बड़ी देन है—आराम करो। कुछ लोगों ने तो यह मान लिया है कि दम मारो और आराम करो। दम न भी मारो, कम से कम आराम तो करो ही ! इस सभ्यता का प्रभाव सबसे अधिक उन छोटे लड़के-लड़कियों पर पड़ा है जिनके माता-पिता के पास पर्याप्त धन है, जिन्हें यह चिंता नहीं कि लड़की के कालेज की फीस कौन देगा, लड़के के चार पैसे की आमदनी से घर में एक रजाई बन जाएगी या सामान खरीद लिया जाएगा।

इसी आराम की तलाश में नि मध्यवर्गीय लड़के या लड़कियां भी उनकी बहुत-सी इच्छाएं पूरी नहीं हो तो वे चोरी, लूटमार आरंभ कर देते एक छोटी लड़की को एक धर्म-स्थान चोरी के बाद पकड़े जाते मैंने आंखों देखा है। गांव से एक मामूली पढ़ी-लि स्त्री अपने छोटे-से बच्चे की मिन्नत आयी थी। वह उस लड़की को अ बैग और बच्चा पकड़ाकर स्वयं शौचा चली गयी। वापस आयी तो सीढ़ियों रखा बच्चा तो मिल गया, लेकिन ल और बटुआ गायब था। उसने शोर मचा लड़की पकड़ी गयी। बटुए में सौ और एक तोले सोने की अंगूठी थी, जिसे वहां चढ़ाने लायी थी। मुझे कौतूहल हु मैंने उससे पूछा, "तुम बटुआ उठाकर भागीं ?"

"मैं बड़ी गरीब हूं।"

"देखने से तो नहीं लगतीं !"

"यह सब तो पहनना ही पड़ता है"

"इसके दाम कैसे चुकाये थे ?"

वह चुप थी। जाहिर था कि इसी त चुकाये गये थे।

"तुम कितना पढ़ी हो ?"

"ज्यादा नहीं, आठवीं तक।"

"आगे क्यों नहीं पढ़ीं ?"

"मां घर का काम करवाने लगी थी। छोटे बहन-भाइयों को मैं देखने लगी थी।"

"कोई नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं ?"

"नौकरी मुझे कौन देगा ?"

"क्या तुमने कोशिश की ? आजकल तो चपरासी भी लड़कियां रखी जाने लगी हैं। फिर किसी दूकान पर भी मिल सकती है।"

"दूकान की नौकरी कौन करेगा !"

"तो सिलाई करो।"

"सिलाई मुझे आती नहीं।"

"कुछ भी करो, इस तरह रुपये लेकर भागना तो बहुत बुरा है।"

'आप किसी की जरूरतों की बात नहीं समझ सकतीं।"

"क्यों नहीं, परंतु उन जरूरतों को ईमानदारी से पूरा करो।"

"कौन ईमानदार है आजकल ?"

"मेरा मतलब है कि काम करके जरूरतों को पूरा करना चाहिए।"

"मेरी मां सारी उम्र चौका-बरतन करती रही, उसे क्या मिला ? मेरा बाप चौकीदारी करता है। रात भर जागता है, दिन भर सोता है। दिन भर हम भाई-बहन छीना-झपटी करते हैं। मैं यह तीन सौ रुपये ले जाती तो आराम से हमारा दो महीने का गुजारा हो जाता। मैं भी आराम से दो-तीन सिनेमा देख लेती।"

मैंने कहा, "मैं तुम्हें नौकरी दिलवाऊंगी, तुम अपना पता बतलाओ।"

वह बड़ी हिकारत से बोली, "बहनजी, तुम अपना समय नष्ट कर रही हो, मुझे नहीं करनी नौकरी-वौकरी। दिन भर हाथ-पैर तुड़वाओ। दो, नहीं तो तीन रुपये उसमें मिलेंगे। हमारा एक वक्त का भोजन उससे नहीं चलेगा।"

और वह कंधे उचकाकर चल दी। उसे बिलकुल शर्म नहीं थी कि वह इस तरह चोरी करती पकड़ी गयी।

मेरी जान-पहचान की, रिश्ते की बहुत-सी लड़कियां कहती हैं, "मैं नौकरी नहीं करूंगी। नौकरी करके भी क्या होगा ?"

"तुममें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा, आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाओगी, पति के आगे हाथ नहीं फैलाना होगा।"

"दीदी, आजकल का पति हाथ फैलाने पर ही देगा, यह तो मैं मानती नहीं।

क्या उसे पता नहीं कि उसका घर है, बीवी है, खाने-पीने के लिए रसोईघर, फर्नीचर या और भी जो आवश्यकता है उस पर रुपया लगेगा। तो हाथ फैलाने की बात ही कहां उठेगी ? आजकल लड़के तब तक विवाह नहीं करते जब तक उनकी ठीक से नौकरी नहीं लग जाती। पुरुष का कर्म है कि वह नारी की देखभाल करे।"

"सभी पति इतने विचारशील नहीं होते जितने तुम सोचती हो।"

"दीदी, आप तो बहस करने पर ही तुली हैं !"

"नहीं, मैं कारण जानना चाहती हूं। तुम, निशि, रेवा और एक अन्य लड़की को मैं जानती हूं, जो नौकरी करने से इनकार करती हैं। आखिर क्यों ?"

"मैं अपना घर देखूंगी," अन्नो बोली।

"घर तो सभी गृहिणियां देखती हैं। तुम्हारी मां भी देखती थीं। दादी भी देखती थीं।"

"दादी देखती थीं, मां बेचारी कहां देख पाती हैं !"

"तुम लोगों को कैसे बड़ा किया ?"

"हम लोग किसी तरह बड़े हो गये हैं। जंगल के पेड़ भी तो बड़े हो जाते हैं। कभी एक आया, कभी दूसरी आयी। कभी मां का बुड़बुड़ाना, कभी हम पर नाराज हो जाना। कभी यहां तक कहना—'जो शहर की बीमारी है, इन्हीं को लग जाती है, और तो दुनिया वाले ठीक रहते हैं। पड़ोस के बच्चों को देखो न, अभी तक तंदुरुस्त हैं, इन्हें न खांसी होती है, न जुकाम सताता है। एक ये हैं, खोज-खोज कर बीमारियां पकड़ लाते हैं।' उधर पापा सुनते तो कहते, 'क्यों कोसती हो बच्चों को, तुम्हारी कौन-सी बंधी नौकरी है। कल मत जाना।' मां तुनक जातीं, 'बंधी नौकरी से भी बढ़कर जिम्मेदारी है, कैसे न जाऊं ! मैं न गयी तो महिला संघ की बैठक न होगी। इसी बैठक के बाद तो सब कर्मचारियों को वेतन मिलेगा।' या कोई उससे भी ठोस बहाना बतलातीं, तो हम लोगों ने उसी समय तय कर लिया था कि बड़ी होकर नौकरी नहीं करेंगी। मां का जो अभाव घर में हमने देखा है, वह हमारे बच्चे तो नहीं देखेंगे !"

मैं शिक्षित समाज की उच्च मध्यवर्गीय लड़की से बात कर रही थी। मैंने पूछ ही लिया, "तुम्हारा ध्येय क्या है ?"

"वही जो सभी लड़कियों का होता है, चाहे पढ़ी-लिखी हों या कम पढ़ी-लिखी—विवाह।"

"वाह ! तुम किसी कला में भी पारंगत नहीं होना चाहतीं ? थियेटर है, आर्ट है, समाज-सेवा है, कोई काम तो करोगी।"

"नहीं—मैं केवल विवाह करूंगी और गृहिणियों की तरह रहूंगी।"

"क्या तुम्हारा जी ऊब नहीं जाएगा ?"

"नहीं।"

मैंने दूसरी की ओर देखा, शायद वह कुछ बोले, वह भी चुप थी। आखिर मैंने कह ही दिया, "तुम भी बोलो रेवा।"

"मैं क्या बोलूं, हमने केकी मौसी को देखा है, जो भी कुछ कमाकर लाती हैं, घर में लग जाता है। मैं ऐसी नौकरी नहीं करना चाहती जिसमें काम तो मैं करूं और रुपया दूसरे उड़ाकर ले जाएं।"

"किसी तरह का शौक भी तुम नहीं रखतीं। तुम कैसी लड़कियां हो। आजकल तो फैशन है कि अच्छी शिक्षित लड़कियां अपना जीवन संवारने के लिए कुछ-न-कुछ करती रहती हैं, और कुछ नहीं तो थोड़ी बहुत समाज-सेवा ही करती हैं।"

वे दोनों हंसने लगीं, हूं . . हूं . . .

"क्यों, हंसने की क्या बात है ?" तुम लोग कारण बतलाती नहीं, हंसती जा रही हो। आखिर अन्नो, तुमने बतलाया नहीं कि सही कारण क्या है ?"

उसकी बहन निशि बोली, "दीदी, यह कारण क्या बतलाएगी, मैं बतलाती हूं। आपकी या ममी की उम्र की नारियां जितना काम करती थीं या आज भी करती हैं, वह बेवकूफी है। आज मनुष्य आराम चाहता है। देखती नहीं, अपने आराम के लिए लोग क्या नहीं करते ! मैं तो कम-से-कम अपने लिए कह सकती हूं कि मैं बिलकुल कम काम करना चाहती हूं। अधिक काम करने से मैं जल्दी बूढ़ी हो जाऊंगी। मैं संसार को दिखला देना चाहती हूं कि मैं तीस वर्ष की उम्र में भी सौंदर्य-प्रतियोगिता में भाग ले सकूंगी। दिन-भर आफिस में काम करो, घर आकर फिर घरवालों के चाय-नाश्ते का खयाल। बाजार से सब्जी-तरकारी आदि लाने का खयाल। सभी करना पड़ता है। रात्रि के ग्यारह बजे तक कोई आराम नहीं। इस जिंदगी से क्या लाभ ? दोपहर को सोना सौंदर्य के लिए बहुत जरूरी है। नौकर भी आजकल मुश्किल से मिलते हैं और कम हो गये हैं।"

"तुम लोग नौकरी करने का गलत अर्थ लगा रही हो। नौकरी करना कोई दासता थोड़े ही है।" मुझे श्रीमती लक्ष्मी मेनन के वे शब्द याद आ गये थे जो उन्होंने कुछ वर्ष पूर्व कलकत्ता में होम-साइंस के एक कालेज के समारोह में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहे थे—

"हम लोगों ने (उनकी पीढ़ी की नारियों ने) जितना काम किया है, वह बेकार-सा लगता है। वे आदर्श, जिनके लिए हमारा जीवन अर्पित था, अब कहीं भी दिखलायी नहीं देते। आज हमारे संविधान में नारियों को पुरुषों के साथ समानाधिकार दिये गये हैं। इन अधिकारों को दिलवाने में हमें कितनी तपस्या करनी पड़ी थी ! आज हम ऐसे शिक्षा-केंद्र खोल रहे हैं कि लड़कियां वहां भोजन बनाना सीखें, अपने पांव पर खड़ा होना सीखें।"

किसी सीमा तक मुझे श्रीमती मेनन की यह बात बहुत ठीक लगी। होम-साइंस के कालेज केवल भोजन बनाना ही नहीं सिखलाते, और भी बहुत कुछ सिखलाते हैं। जो हो, वे लड़की को सुयोग्य गृहिणी बनने के लिए तैयार करते हैं, राजनीति के लिए नहीं।

# बुद्धि-विलास के उत्तर

१. **नहीं** होगा। बराबर होगा। २. **प रा**। ३. **मोना** को १ × २ × ३ =? का गुणा करने को कहा गया था। उसने तीनों अंक जोड़ डाले और सही हल निकाल लिया। ४. **प्रश्न** करना चाहिए—'यदि मैं दूसरी स्त्री से पूछूं कि असली मां कौन है तो वह क्या जवाब देगी ?' मान लीजिए 'क' (वास्तविक मां) से प्रश्न किया। वह कहेगी कि दूसरी स्त्री। 'ख' से पूछा जाए तो वह कहेगी कि 'मैं', क्योंकि वह झूठ बोलने की आदी है। सिद्धांत यह है कि प्रश्न किसी से भी किया जाए और उसका उत्तर जो भी हो, असली मां वह नहीं होगी जो उत्तर से मालूम होगी। ५. **पांच** सितंबर के दिन। इस दिन भू. पू. राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन का जन्म-दिवस भी है। ६. २६० किलोमीटर चौड़ा। उसके नीचे की धरती पर ठीक दोपहर के बावजूद गहरा अंधकार छा गया था। ७. **खंड** रैक पर थे। प्रथम खंड का अंतिम पृष्ट बायीं ओर तथा तीसरे का प्रथम पृष्ठ दायीं ओर होगा। तीनों खंड पास-पास थे अतः प्रथम के अंतिम पृष्ट एवं तीसरे के प्रथम पृष्ठ के बीच पहले का प्रथम आवरण, दूसरा पूरा खंड तथा तीसरे का अंतिम आवरण होगा। अतः दीमक ने इस प्रकार यात्रा की—१/८ + २ ३/४ + १/८ = ३ इंच।

धीरे-धीरे बड़े शहरों की या शिक्षि- समाज की लड़कियां यदि नौकरी को अन्य कार्यक्षेत्र को बुरा मानकर जल्दी- जल्दी विवाह को ही अपना ध्येय बना- लगें तो नारी प्रगति करने के बजाय पिछ- जाएगी।

हमें इतनी समानता और स्वतंत्र- मिलेगी, इसका तो अनुमान ही न था स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व शाम को अंधे- पड़ा नहीं कि मां कहती—चलो, घर के भीतर चलो। उस समय बड़े-बड़े शहरों में भी नारी-शिक्षा के बावजूद नारी- स्वाधीनता का युग नहीं था। अब लड़कि- स्वतंत्रता से घूम सकती है। तब घर से बाहर भी नहीं निकलने दिया जाता था स्कूल कालेज भी नौकर के साथ जाना पड़ता था। अब इस स्वाधीनता को नारियां स्वयं लौटा देना चाहती हैं।

सामाजिक अधिकारों की प्रतिक्रिया- स्वरूप नारी तरह-तरह की वेश-भूषा में दिखायी देती है। पतलून (बेल-बाटम) तथा अन्य आधुनिकतम डिजाइन के कपड़े भड़कीली या उलटी-सीधी पोशाक पहन लेने से हम इस बात का दावा नहीं कर सकते कि हमारे नारी-समाज के दिल और दिमाग बदल गये हैं, वह प्रगतिशील हो गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र से हटकर घर की चारदीवारी में बंद होने के लिए उत्सुक है। क्या वह आरामतलब हो गयी है या कोई अन्य कारण है ?

—६ ब ; नु । र र.ड, न.य. दिल्ली

**अखिल भारतीय स्तर पर कुछ ऐसे प्रतिष्ठान काम कर रहे हैं जिनके संबंध में आवश्यक जानकारी उपयोगी है। सितम्बर अंक में आपने भारतीय मानक संस्था के बारे में पढ़ा। प्रस्तुत है राष्ट्रीय भवन-निर्माण निगम के बारे में जानकारीपूर्ण लेख।**

# राष्ट्रीय भवन-निर्माण निगम

• बलदेव वंशी

स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में नये-नये वहु-मंजिला भवनों, वांधों, हवाई-पट्टियों, पुलों, कारखानों आदि का निर्माण हुआ है। इनके निर्माण में सरकार को पहले प्राइवेट ठेकेदारों पर ही निर्भर करना पड़तः था। किंतु देखा गया कि ये ठेकेदार न केवल मनमाने पैसे वसूल करते हैं अपितु सामग्री भी घटिया लगाते हैं और कभी-कभी तो देश के दूरस्थ भागों या सीमावर्ती क्षेत्रों में जाने से इनकार भी कर देते हैं या वनवाई अत्यधिक मांगते हैं। इन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने सरकारी क्षेत्र में भवन-निर्माण संबंधी एक संस्थान की आवश्यकता महसूस की। फलस्वरूप १९६० में २ करोड़ रुपये की पूंजी से भारत सरकार ने 'राष्ट्रीय भवन-निर्माण निगम' की स्थापना की और इसे फैक्टरी नियम के अधीन पंजीकृत कराया गया। वाद में यह राशि वढ़ाकर ३ करोड़ कर दी गयी। निगम की स्थापना में मुख्य उद्देश्य ये रहे—

१. निर्माण-कार्य की किस्म (क्वालिटी) में सुधार।
२. निर्माण की लागत कम करना।
३. सीमांत तथा अन्य दुर्गम क्षेत्रों में निर्माण-कार्य करना।
४. निर्माण-कार्यों में असाधारण विलंब दूर करना।
५. विशेष प्रकार के निर्माण-कार्य करना, जिनके लिए प्राइवेट ठेकेदार मनमानी दरें मांगते हैं।

राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम के निदेशक श्री धारवाड़कर

६. निर्माण-कार्यों की देख-रेख का उत्तरदायित्व इस प्रकार लेना कि निर्माण सुव्यवस्थित ढंग से हो।

**निर्माण-कार्य**

निगम ने देश के विभिन्न भागों में महत्त्व के कार्य निबटाये हैं, जिनमें प्रमुख हैं— चबुआ (असम) में ६० लाख रुपये की लागत की हवाई-पट्टी, 'खाद्य निगम' के लिए रामागुंडम में २०६ लाख रुपये लागत की फैक्टरी के निर्माण-कार्य, बंगलौर में १०० लाख रुपये की हेलीकाप्टर की नयी फैक्टरी का निर्माण, कलकत्ता ... २०३ लाख रुपये लागत का ६०८ बि... वाला सैनिक अस्पताल, आदि। हाल... निगम को मिले निर्माण-कार्यों में प्र... हैं—कलकत्ता में भूमिगत रेल—८७ ... रुपये की लागत का कार्य (प्रथम चर...) कालपी पुल (लखनऊ के निकट)—... लाख रुपये की लागत का कार्य, सफदर... हवाईअड्डे के निकट ३५ लाख रुपये ... लागत का सड़क-पुल तथा ३५ लाख ... की लागत से पटपड़गंज (दिल्ली) में ... डेरी का निर्माण।

**मशीनी ईंट-भट्ठा**

इस निगम द्वारा दिल्ली में महरौली ... निकट सुलतानपुर में एक मशीनी ... के भट्ठे की स्थापना १९६६ में की ... थी। इसके लिए मशीनें रूमानिया से मं... गयी थीं। मशीन की एक लाइन पर ...

बायें : ईंटें अब मशीनों ... मशीन से ... वाले भट्ठे में ... जमाते हुए कर्म...

सामने : एशिया में ... ऊंचा — ना... (असम) ... यह टावर ... ईंटों का बना ...

१९६७ में तथा दूसरी पर फरवरी, १९६८ में कार्य आरंभ हो गया था। इस भट्ठे की निर्माण-क्षमता ४० लाख ईंटों की है, जबकि १९७२ के अंत तक औसतन ५-६ लाख ईंटों से अधिक नहीं बन सकीं, मार्च १९७३ में १३.१ लाख ईंटें बन पायीं।

इससे निगम को १९७२ के अंत तक ३९.०५ लाख रुपये की कुल हानि उठानी पड़ी। भारत सरकार द्वारा दिसंबर, १९७१ में नियुक्त विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट में बतायी गयी कमियों को यदि पूर्णतः हटाया जा सका तब कहीं १९७३ के अंत तक ३० लाख ईंटें प्रति-मास बनायी जा सकेंगी, जो कठिन ही लग रहा है।

राष्ट्रीय भवन-निर्माण निगम के प्रबंध-निदेशक श्री पी. पी. धारवाड़कर से, जो इस पद पर दिसंबर, १९७१ में आये हैं, मैंने पूछा —

**"ईंटों के भट्ठे में, जहां अन्य लोग खूब कमाई कर रहे हैं, निगम को इतनी अधिक हानि क्यों हुई ?"**

उन्होंने उत्तर दिया, "विशेषज्ञ समिति ने यह बताया है कि प्लांट में तकनीकी दृष्टि से कुछ खामियां हैं, विशेषकर ईंटों के सुखाने तथा पकाने की प्रक्रिया में। उनको अब दूर कर लिया गया है। भट्ठे पर काम दो पारियों में चल रहा है।"

**वित्तीय स्थिति : घाटा ही घाटा**

निगम को मार्च, १९७२ तक हुई कुल हानि की रकम २०२ लाख रुपये थी, जबकि इसके विपरीत प्रदत्त-पूंजी केवल २०० लाख रुपये ही थी। यानी केंद्रीय सरकार से प्राप्त ऋणों में से भी २.४९ लाख रुपये का घाटा पड़ गया। निगम अपने दिन-प्रतिदिन के कार्य के लिए पूर्णतः सरकारी ऋणों पर तथा बैंकों से ओवर-ड्राफ्ट पर ली गयी राशि पर निर्भर रहने लगा। अतः १९७२-७३ के बजट-अनुमानों में भारत सरकार ने अंश-पूंजी लगाने के लिए ५० लाख रु० की राशि तथा ऋण के रूप में ५० लाख रु. की व्यवस्था की।

**"ईंट-भट्ठे के अतिरिक्त इस व्यापक हानि के और क्या कारण हो सकते हैं ?"** मैंने प्रबंध-निदेशक महोदय से पूछा।
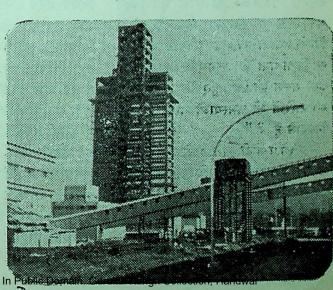
उन्होंने बताया कि मुख्य कारण—योजना की कमी, निर्माण-कार्यों की समाप्ति में विलंब, निर्माण-सामग्री का समय पर न मिलना आदि है। उन्होंने कहा, "जब निगम की स्थापना हुई थी तब केवल भवन-निर्माण कार्य को ही हाथ में लिया गया था, जिसमें प्राइवेट ठेकेदारों से कड़ा मुकाबला करना पड़ता था। २० लाख रु० तक लागत के कार्य में केवल १ या २ लाख रुपये की पूंजी ठेकेदार को लगानी पड़ती है; इसलिए सब तरह के ठेकेदार आ सकते हैं। किंतु धीरे-धीरे हमने विशेष प्रकार के और बड़े कार्य हाथ में लिये, जैसे—अस्पतालों के भवन, हवाई-पट्टियां, समुद्री तटों का कार्य, पुल आदि। इन करोड़ों रुपयों के बड़े कार्यों में लाभ हुआ है और स्थिति कुछ संभली है।"

**कर्मचारी-समस्या : समाधान**

इस निगम के अधीन नियमित-अनिमित लगभग १०,००० कर्मचारी हैं। निगम अब तेजी से विस्तार पा रहा है। पिछले वर्ष ही १०० इंजीनियरों को नियुक्त किया गया है। कर्मचारियों की इतनी बड़ी संख्या को देखते हुए मैंने पूछा, **"आप कर्मचारियों की समस्याओं को किस प्रकार निबटाते हैं ?"**

"छोटी-मोटी समस्याओं को क्षेत्रीय प्रबंधक सुलझाते हैं। यदि बात बड़ी हो, तो हम निबटाते हैं। सहयोगपूर्ण प्रबंध पर हम जोर देते हैं। कर्मचारियों के प्रतिनिधियों के साथ प्रायः मासिक बैठकें की जाती हैं, ताकि कंपनी तथा कर्मचारि[illegible] समस्याओं का समाधान खोजा जा सके।"

**"भवन-निर्माण के क्षेत्र में आप [illegible] विशेषता को लेकर चले थे, क्या वह [illegible] रखी जा सकी है ? क्या वे कमियां [illegible] प्राइवेट ठेकेदारों के कार्यों में प्रायः [illegible] हैं—जैसे घटिया सामग्री लगाना, कम[illegible] निर्माण आदि—आपके कार्यों में नहीं [illegible]**

"पूरी तरह से तो कुछ नहीं कहा [illegible] सकता, फिर भी हमारी ओरसे बड़ी सत[illegible] रहती है। हमारे पास एक 'टेक्नीकल [illegible] होता है, जो कार्य-स्थल पर जाकर सा[illegible] की जांच-पड़ताल करता रहता [illegible] प्रतिदिन का हिसाब रखने का रजि[illegible] अलग होता है, जिससे अनियमितताओं [illegible] काबू पाया जाता है।"

**"निगम के भविष्य के संबंध में आ[illegible] क्या विचार है ?"**

"आदर्श नियोक्ता होने के का[illegible] निगम अपने कर्मचारियों को पर्याप्त सु[illegible] धाएं उपलब्ध कराता है। निगम [illegible] निष्पादित कार्यों की क्वालिटी पर ग्रा[illegible] सदा विश्वास कर सकते हैं, क्योंकि नि[illegible] न तो लाभ की इच्छा द्वारा प्रेरित है [illegible] न ही कार्य के संदेहास्पद तरीकों को अप[illegible] में उसकी रुचि है। अब हमारे पास [illegible] बड़े निर्माण-कार्य हैं जिनसे पर्याप्त [illegible] होने की आशा है। १९७१–७२ में १३ [illegible] रुपये का लाभ हुआ था। १९७२-७३ [illegible] १४–१५ लाख रुपये तक लाभ होगा। [illegible] निगम का भविष्य बड़ा आशामय है।"

# गृहिणी जीवन की समस्याएं

## समाज से टक्कर

एक पत्रकार की पत्नी बनते समय मैंने जीवन को जन-सेवा में ही खपाने का एक दिवा-स्वप्न देखा था। पर जन-सेवा तो दूर रही, गृह-सेवा ही पूरी कर पाऊं तो धन्य हो उठूं, क्योंकि भारतीय पत्रकारों, खासकर श्रमजीवी पत्रकारों, की स्थिति देखकर इस नारेबाजी-भरी व्यवस्था को आग लगा बैठने की इच्छा होती है। समाज को दिशा देने वाला पत्रकार आज किस स्थिति से गुजर रहा है, इस पर यदि गंभीरता से अध्ययन किया जाए तो जो तथ्य पता चलेंगे, कटु और तिक्त ही होंगे।

दिन-रात इन पत्रकार महाशय के साथ खटकर जब परिवार को संतुलित आहार भी नहीं जुटा सकी, तो मैंने पूरा समय एक श्रमिक महिला के रूप में गुजारना स्वीकारा। नये डिजाइनों के कपड़े सीना, कुछ लिखना, जिल्दबंदी आदि शौकों को व्यावसायिक रूप दिया।

चिंता में घुटना छोड़कर अब मैं पूरी तरह से समाज से टक्कर लेने को तत्पर खड़ी हूं! चुनौतियों से सदा नारी ने लोहा लिया है। मैं समय की धार में नहीं बहूंगी, उसे रोकूंगी; अवश्य रोकूंगी।

—गिरिजा सुधा, कोटा

## उनके पत्र की समस्या

मेरे पति पत्रकार हैं। इसमें उनकी अभिरुचि बचपन से ही है। समाचार भेजते समय ये कभी संतुष्ट नहीं होते हैं, लेकिन उनके पास इतना समय नहीं कि मुझे एक पत्र लिख दें—कम-से-कम समाचार ही समझकर! मैं एम. ए. की छात्रा हूं, अतः मुझे उनसे दूर रहना पड़ता है। पत्र लिखने के लिए उनकी मैं बहुत मिन्नतें करती हूं, लेकिन उनके पास समाचारों और पढ़ाई से समय ही नहीं बचता! मिलने पर मैं नाराजगी प्रकट करती हूं, तरह-तरह की समस्याओं का बहाना लगा देते हैं। पर अगर इसी बीच कोई समाचार मिल जाए तो सब कुछ छोड़कर उसे छपने को भेजने में लग जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मेरी अपेक्षा समाचार को

अधिक महत्त्व देते हैं ।

सच, मुझे जीवन नीरस-सा लगने लगता है, क्योंकि उन्हें मेरे इस दुःख की प्रतीति ही नहीं होती । इनके पत्र न मिलने से समस्या पैदा हो गयी है ।

**–नीलम पाण्डेय, मोतीहारी**

## इनसे कैसे कहूं कि...

जब पढ़ती थी तो एक ही धुन थी कि एम. ए. करके नौकरी करूंगी। सौभाग्य से लेक्चररशिप मिल भी गयी। शादी हुई तो सोचा कि नौकरी कतई नहीं करूंगी । पति से कहा कि मुझे अच्छी तरह घर संभालना है। भला उन्हें क्या इनकार था ! वे अच्छे पद पर हैं । नौकरी छोड़ने पर दो-तीन महीने तो ठीक निकले, लेकिन अब वक्त है कि काटे नहीं कटता ! घर के काम के लिए नौकर है, इसलिए कोई लंबा-चौड़ा काम नहीं है । सर्विस पर जाती थी तो हर समय स्मार्ट नजर आती थी । अब इनसे किस मुंह से कहूं कि नौकरी करनी है ।

**––निर्मलकांता, सिवान (बिहार)**

## जाने कहां गये वे दिन!

संगीत की ओर बचपन से ही रुचि, उस अभिरुचि को प्रगति की राह पर बढ़ाने की आकांक्षा, मन में एक और ललक अध्यापिका बनने की । बी. ए. करते ही विवाह हुआ । अत्यधिक व्यस्त पति व्यस्तता उनकी आवश्यकता और विवश थी, अतः उनकी खुशी में ही खुश रह थी । फिर बच्चे और बढ़ते हुए पारिवारि दायित्वों का जमघट । अब जीवन के तीस पायदान पर कदम रख चुकी हूं । भूले विसरे गीत एक आह में बदल जाते हैं मनपसंद गीत बांसुरी पर उतार ले को जी चाहता है, किंतु बांसुरी पर सां थमती नहीं । बाजे पर अंगुलियां भटक जाती हैं । जाने कहां गये वे दिन ! जाने कहां गया वह स्वर ! काश, इन रुचि को विस्तार मिल पाता !

पति व्यस्त पुलिस-अधिकारी हैं अतः कहीं आना-जाना नहीं हो पाता सब सुख होते हुए भी मन की शांति नहीं है ।

एकाकीपन की घुटन से उपजी खी की चरमसीमा में अचानक एक दिन मन में विचार आया कि क्यों न मैं जीवन को कोई अन्य दिशा दूं ! एकाकी क्षणों को सृजनात्मक क्षणों में बदल डालने का प्रयास किया । आज कई वर्ष बीत गये छपते-छपते । तृप्त हूं अपने व्यक्तित्व के इस पहलू से, वे भी तृप्त हैं ।

अब भी वे अधूरे स्वप्न याद आते हैं उन स्वप्नों की आभा अपने बच्चों की आंखों में देखकर खुश हो लेती हूं। पुराने स्वप्नों की न सही, नये स्वप्नों की मंजिल तो कभी मिलेगी ही !

**–उर्मिला मिश्र, सीतापुर**

# यह करो, यह मत करो !

शहर और गांव की जिंदगी का फर्क मुझे अब महसूस हुआ है जब पति के साथ-साथ गृहस्थी का खेमा इस गांव से उस गांव ढोना पड़ रहा है। शहरी सुविधाओं का अभ्यस्त मेरा जीवन यहां के दमघोट वातावरण में कितना परेशान हो उठा है, नहीं कह सकती। गांव न गांव रहा है, न शहर। आधुनिक बनने के प्रयास में लोग किस तरह अपनी स्वाभाविकता को छोड़कर कृत्रिमता की ओर आकर्षित हो रहे हैं, इसे अपनी आंखों से देख रही हूं। झूठी बातों और अफवाहों का बवंडर यहां इतना फैलता है कि मत पूछिए।

ग्रामीण क्षेत्र के अफसर की पत्नी होने के कारण मुझे उचित और अनुचित पर बहुत ध्यान देना पड़ता है। इस पर पति की चेतावनियां रहती हैं—'यह शहर नहीं है, यहां यह पहनना बुरा माना जाता है ... ऐसा करना खराब माना जाता है ... आदि। कभी-कभी दिल बहुत बुझ जाता है। घर है, पति हैं, नौकर है, प्रतिष्टा है, फिर भी सांस नहीं ले पाती। काम और चापलूसों की भीड़ में पति को इतना वक्त नहीं मिलता कि घर की ओर भी ध्यान दे सकें।

लिखने-पढ़ने की रुचि बचपन से ही रही है। रचनाएं प्रकाशित होती रही हैं। फूलों का खिलना, हवाओं का झोंका और छितरायी हुई टहनियों के बीच में झांकती चांदनी कभी मन में न जाने कितने सुंदर भाव जगा देती थी! अब ये सब जैसे मेरी संवेदनाओं से दूर होते जा रहे हैं ...

**—कुसुम वर्मा, मुरलीगंज (बिहार)**

**ऊपर से नीचे : कुसुम वर्मा, उर्मिला मिश्र, गिरिजा सुधा, नीलम पाण्डेय, निर्मलकांता**

# भ्रष्ट समाज का एक साहित्यिक दस्तावेज

भगवती बाबू के सद्य-प्रकाशित उपन्यास **'प्रश्न और मरीचिका'** को आजादी के बाद के भारत का 'साहित्यिक इतिहास' कहा जा सकता है। इसमें उन्होंने सन १९४७ से लेकर सन '६२ तक चीनी आक्रमण के फलस्वरूप देश में उत्पन्न निराशा-हताशा के वातावरण में घटी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का रोचक वर्णन किया है, किंतु एक सजग पाठक के

● डॉ. ऋतुशेखर

लिए इस उपन्यास में कोई नवीनता नहीं मिलेगी। आजादी के बाद इस देश को जो नेतृत्व मिला, वह दुर्बल ही नहीं, अदूरदर्शी भी था। फलतः कमजोर नेतृत्व पर भ्रष्ट नौकरशाही हावी हो गयी। प्रस्तुत उपन्यास इसी दुर्बल, अदूरदर्शी राजनीतिक नेतृत्व, चतुर किंतु भ्रष्ट नौकरशाही और इनके संगम से उत्पन्न परिस्थितियों की धारा में बहते महत्त्वाकांक्षी लोगों के भले-बुरे कामों का दस्तावेज है।

चार भागों में बंटे उपन्यास में तत्कालीन पृष्ठभूमि में कुछ सशक्त चरि[त्रों] की रचना की गयी है। पं. शिवलो[चन] शर्मा, मुहम्मद शफी, जनार्दनसिंह [उन] सच्चे कार्यकर्ताओं में से हैं, जिन्हें दली[य] राजनीति के सामने घुटने टेककर परि[स्]थितियों से समझौता कर लेना पड़ता है। रूपा शर्मा, विद्यानाथ उन अवसरवादि[यों] के प्रतीक हैं, जो व्यक्तिगत तरक्की [के] लिए नैतिक मूल्यों की बलि चढ़ाने [में] लेशमात्र नहीं हिचकिचाते। पात्रों की भा[री] भीड़ में कुछ चेहरे अलग से पहचाने जा[ते] हैं, जो तथाकथित 'पतित' वर्ग के होते हु[ए] भी अभिजात-वर्गीय पात्रों से कहीं अधि[क] श्रेष्ठ हैं —यथा केसर बाई।

नायक उदय एक सुलझी विचार[-]धारा का युवक पत्रकार होकर भी बहु[त] बड़ा आदर्श-चरित्र नहीं बन पाया है। वह मौजूदा व्यवस्था से असंतुष्ट रहक[र] भी विद्रोह नहीं कर पाता, यही नहीं वरन पिता एवं श्वसुर के प्रभावों के फल[ों] का पूरा फायदा भी उठाता है। अने[क] उपकथाएं हैं जो उपन्यास में रूमानिय[त] का रंग भरती हैं। उनके माध्यम से लेखक ने फिल्मी दुनिया एवं राजनीतिक नेताओं के भ्रष्ट रूप को उजागर किया है। कहीं-कहीं, अब अनुभव किये जाने वाले कटु सत्यों को अभिव्यक्ति दी गयी है। चीनी आक्रमण एवं 'कामराज योजना' के बाद की स्थिति को लेखक ने इन पंक्तियों में

स्पष्ट किया है—'अनेक सत्ताधारी दिखने वाले आदमी हटे, लेकिन देश में भ्रष्टाचार वैसा का वैसा बना रहा और जिसके हाथ में देश की सत्ता थी—वह बीमार था—तन से और मन से !' किंतु भाषा एवं शैलीगत रोचकता के बावजूद **'प्रश्न और मरीचिका'** प्रबुद्ध पाठक को नया संदेश नहीं दे पाता।

**प्रश्न और मरीचिका**

**लेखक—भगवतीचरण वर्मा : प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६ : पृष्ठ — ५५४, मूल्य—तीस रुपये**

## दो अनूदित उपन्यास

**'विश्वजित'** और **'प्रथम प्रतिश्रुति'** दोनों अनूदित उपन्यास हैं। पहला उपन्यास गुजराती और दूसरा बंगला का हिंदी अनुवाद है। दोनों ही अपनी-अपनी भाषा के सशक्त लेखकों की कृतियां हैं। पहले उपन्यास में पूर्व-रामायणकाल की कथा है। जिसे दो संस्कृतियों के टकराव के कारण राजनीनीतिक संक्रांतिकाल का कह सकते हैं। महिष्मती नगर का हैहयवंशीय कार्तवीर्य सहस्रार्जुन दक्षिण के लिए एक त्रास बना हुआ था। उधर पुरुवंशीय दुष्यंत का पुत्र भरत भी क्रूर शासक था, जो ब्राह्मणों का शत्रु था। इसके विपरीत परशुराम ब्राह्मणों के प्रबल समर्थक थे। कार्तवीर्य ने परशुराम के पिता जमदग्नि की हत्या की थी। इतने प्राचीनकाल की कथा होते हुए भी कृति में आद्योपांत औपन्यासिक रोचकता बनी रहती है।

**'प्रथम प्रतिश्रुति'** बंगला उपन्यासों की परपंरा में एक वृहद् उपन्यास है। बंगला समाज की कुरीतियों, उनके प्रति लोगों के मोह को लेखिका ने निर्ममता से तोड़ा है। उपन्यास में जीवन के अंधकार मय पक्ष के साथ उज्ज्वल पक्ष भी हैं। समाज की क्रूर विडंबनाओं को कुचलती उपन्यास की नायिका एक स्वच्छ आलोक-पथ का निर्माण करती है।

अन्य बंगला उपन्यासों की भांति यह भी एक आदर्शवादी उपन्यास है। अनुवाद की दृष्टि से दोनों ही उपन्यास सफल हैं।

**विश्वजित**

**लेखक—पिनाकिन दवे : अनु.—प्रो. नवनीत गोस्वामी : प्र.—स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद : पृष्ठ ४५० : मूल्य—पंद्रह रुपये**

**प्रथम प्रतिश्रुति**

**लेखिका—आशापूर्णा देवी : अनुवाद—हंसकुमार तिवारी : प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, दिल्ली-६ : पृष्ठ—५२४ : मूल्य—तीस रुपये**

## एक आत्मकथा

सामान्यतः आत्मकथा तथ्यों पर आधारित होने के कारण रोचक कम ही होती है, किंतु जोश की इस आत्मकथा को पढ़कर लगता है कि उनका 'शायर' हमेशा उनके साथ रहता है। चित्रण की रवानगी, ताजगी और मूर्तता इसी ओर संकेत करती है। घटनाओं के प्रति लेखक

काफी निर्मम रहा है। कुल मिलाकर आत्म-कथा के रूप में यह एक ईमानदार कृति है।

**यादों की बारात**

**लेखक--जोश मलीहाबादी : अनुवाद--हंसराज रहबर : प्रकाशक--राजपाल ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली : पृष्ठ--१३२ : मूल्य--दस रुपये।**

## आधुनिक कहानी- संग्रह

**'अतीत में कुछ'** न गिने जाने वाले क्षणों की आहट है। कहानियों में लेखक ने प्रयोग किये हैं। जहां 'धूप में किस्सा' जैसी कहानियों में कहीं-कहीं एब्सर्डिटी है, वहां 'आदिम खेल' जैसी कहानियां मानस के सूक्ष्म तंतुओं को झंझोड़ती हैं। प्रायः सभी कहानियां छोटी-सी घटना या प्रसंगों पर आधारित हैं, जिन्हें लेखक ने इस खूबी से चित्रित किया है कि कथा के नाम पर कुछ न होते हुए भी वे पाठकों को बांधे रखती हैं।

वस्तुतः इन कहानियों को कटु ओझल सत्य ही कहना चाहिए, जिन्हें लेखक ने भावात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया भी है। बीच-बीच में तीखी चुटकी भी ली गयी है। तकनीक की दृष्टि से इस संग्रह की सभी कहानियां आधुनिक हैं।

**अतीत में कुछ**

**लेखक--गंगाप्रसाद विमल : प्रकाशक--भारतीय ज्ञानपीठ, कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली : पृष्ठ--१५६ : मूल्य--सात रुपये।**

## दो नये गीत-संग्रह

सोहनलाल द्विवेदी राष्ट्रीय कवि के रूप में जाने जाते हैं, किंतु प्रस्तुत संग्रह **'मुक्तगंधा'** में राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त जनमानस के द्वंद्व को भी अभिव्यक्ति मिली है। बीच-बीच में प्रकृति का भी चित्रण है। ये कविताएं अपेक्षाकृत बहिर्मुखी अधिक हैं। कुछ कविताएं शांति के अवतारों के प्रति श्रद्धांजलि हैं। संक्षेप में ये रचनाएं कवि की पूर्व-रचनाओं से कुछ भिन्न हैं।

दूसरा संग्रह **'चाहते तो . . .'** समय के परिवर्तित संदर्भों में जीवन के बदले अर्थों की अभिव्यक्ति है। संसार-सागर में मनुष्य का अस्तित्व अनजान द्वीपों-जैसा है, जिनमें बाह्याभिव्यक्ति के लिए घुटन है। जीवन के संघर्षों से जूझती कवि की दृष्टि काफी गहरी है। 'देह का भूगोल' जैसी कविताएं सामान्य होते हुए भी काफी पैनी हैं। कुल मिलाकर ये कविताएं आधुनिक जीवन के करीब हैं।

**मुक्तगंधा**

**लेखक सोहनलाल द्विवेदी, प्रकाशक--नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, दिल्ली : पृष्ठ--११७ : मूल्य--आठ रुपये**

**चाहते तो . . :**

**लेखक--रमेश कौशिक : प्रकाशक--अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. २।३६ अंसारी रोड दरियागंज, दिल्ली ६ : पृष्ठ--९[illegible] मूल्य--छह रुपये**

**--डॉ. शशि शर्मा**

# आप का भवितव्य

● पंडित गोपेशकुमार ओझा

एक अक्तूबर को आश्विन शुक्ला पंचमी। इसी दिन महाराष्ट्र में प्रसिद्ध उपांग ललिता व्रत। २ को बिल्वाभिमंत्रण। ३ को सरस्वती का आवाहन। ४ को महा-निशा पूजा, बलिदान, महाष्टमी, श्री अन्न-पूर्णा परिक्रमा। ५ को महानवमी। ६ को विजयादशमी, दशहरा, सीमोल्लंघन, शमी-वृक्ष पूजन, अपराह्न में अपराजिता पूजा। ८ को पापांकुशा एकादशीव्रत। ६ को पद्मनाभ द्वादशी, दुग्धदान, द्विदलत्याग व्रतारंभ, सांयकाल प्रदोष। ११ को वाराही चतुर्दशी, शरद पूर्णिमा; इसी को कोजागरी पूर्णिमा कहते हैं। इसी दिन पूर्णिमा का व्रत है। १२ को प्रातः स्नान, दान आदि के लिए पूर्णिमा।

कार्तिक स्नान, दान, यम-नियम आदि का आरंभ। १३ को कार्तिक मास प्रारंभ होता है। इस दिन से कार्तिक स्नान प्रारंभ होगा। १५ को गणेश चतुर्थी व्रत। १७ को सूर्य संक्रांति, सूर्य तुला में प्रवेश करेंगे। १८ को अहोई अष्टमी। १६ को राधा-जयंती। २२ को रंभा एकादशी व्रत। गोवत्स द्वादशी। २३ को प्रदोष, धन त्रयोदशी (धनतेरस) धन्वंतरिजयंती। २४ को हनुमज्ज्यंती, नरक चतुर्दशी। २५ को दीवाली; रात्रि शेष में दरिद्र निस्सा-रण। २६ को प्रातः स्नान, दान के लिए अमावास्या, दोपहर को अन्नकूट, बलिपूजा, गोक्रीड़ा। २७ को यम द्वितीया, भ्रातृ-द्वितीया ( भैया दूज ) लेखनी पूजन ( कलमदान पूजन ) काशी में २७ को गो-वर्धन पूजा। ३० को गणेश चतुर्थी। ३१ को सूर्य षष्ठी व्रतारंभ। १ नवंबर को कार्तिक शुक्ला षष्ठी-सूर्य षष्ठी व्रत। यही छठ का त्योहार कहलाता है।

## इस मास में जन्मे बालक

इस मास में निम्नलिखित तारीखों और समयों में जिन बच्चों का जन्म हो, उनकी नक्षत्र शांति जन्म के सत्ताइसवें दिन कराना उचित है। ता. १ की रात्रि (२ को प्रातः) १–२८ से ता. ४ को प्रातः ७–२६ तक; ता. ११ को सांय काल ५–५४ से ता. १३ को सांय ३–४१ तक; ता. २० को प्रातः ५–२२ से ता. २१ की रात्रि (२२ को प्रातः) ३–४७ तक; ता. २६ को प्रातः ६–३२ से ता. ३१ को अप-राह्न के ३–२० तक।

## २१ मार्च से २० अप्रैल तक

२२ ता. तक प्रगति में जो बाधाएं उप-

स्थित होंगी। चतुर्थ सप्ताह में उनकी निवृत्ति हो जाएगी। इस मास में धनागम के साथ-साथ अधिक व्यय का भी योग है किंतु व्यय का विशेष योग २८ ता. को समाप्त हो जाएगा और आय अच्छी मात्रा में पर्याप्त समय तक होती रहेगी। पदोन्नति या वृत्ति प्राप्ति के लिए जो उद्योग कर रहे हैं, उन्हें १६ ता. तक संपन्न कर लें। किसी वयोवृद्ध की रुग्णता या गार्हस्थ्य उलझनों से चिंता। शुभ ता. ४, ८, १३, १५, १७, २१, २६, ३०।

## २१ अप्रैल से २२ मई तक

आय योग उत्तम है। आप उद्योगशील और स्फूर्तिपूर्वक सक्रिय रहेंगे किंतु स्वास्थ्य और स्वभाव की उग्रता की ओर भी विशेष ध्यान रखें। १७ ता. को यात्रा में सावधानी बरतें और कलह तथा विवाद से बचें। काम निपटाने के लिए २३ ता. तक समय अनुकूल है। व्यापारी वर्ग को साझेदारी के कार्य में लाभ हो। २८ ता. के बाद, कुछ महीनों के लिए व्यय योग विशेष रूप से होगा। शुभ ता. ३, ५, १०, ११, २०, २४, ३०, ३१।

## २३ मई से २१ जून तक

नवीन वृत्ति की अपेक्षा रखने वालों को सफलता का योग है। विदेश यात्रा के लिए मास के पूर्वार्द्ध में कार्य संपन्न कर लेना चाहिए। प्रथम तीन सप्ताह में उदर विकार, संतान या विद्या संबंधी चिंताओं की निवृत्ति चतुर्थ सप्ताह में हो जाएगी। ८ ता. के बाद किसी नवीन समागम से हर्ष। शुभ ता. ३, ६, ९, १८, २०, २३, २७, २८।

## २२ जून से २२ जुलाई तक

इस मास में आय योग उत्तम है। पदोन्नति के लिए किये गये प्रयास अग्रिम मास में सफल होंगे। २२ तक गृह कार्यों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा। नवीन व्यक्तियों से संपर्क स्थापित के लिए प्रारंभिक दस दिन विशेष अनुकूल हैं। नववयस्क व्यक्तियों के लिए यह मास विशेष आह्लादमय है। २२ से २७ जून तक जिनका जन्म है, उन्हें शारीरिक श्रम और मानसिक संघर्ष। शुभ ता. ७, ९, १०, १५, १६, १८, २३, २८।

## २३ जुलाई से २२ अगस्त तक

आपकी जन्मकुंडली में विशेष व्यय का योग प्रारंभ हो गया है। यह काफी समय तक चलता रहेगा। संभवतः आप जमीन-जायदाद या सवारी में विशेष व्यय करें। पदोन्नति के लिए प्रयास सफल होंगे। विदेश जाने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति मासांत या अग्रिम मास में कृतकार्य होंगे। इस मास में सुखद यात्रा या शुभ पत्राचार का योग। १० ता. के बाद नवीन सम्पर्क से हर्ष। शुभ ता. १, ७, १६, २०, २३, २५, २८, ३१।

## २३ अगस्त से २२ सितम्बर तक

इस मास में विशेष धनागम होगा किंतु

२७ ता. के बाद दो मास तक धन-व्यय की प्रवृत्ति अधिक रहेगी। मास के प्रारंभ में शुभ समाचार प्राप्त होंगे या कोई यात्रा करनी पड़े जिसमें कार्य साधन हो। १० ता. के बाद भोगोपकरणों की उपलब्धि हो या किसी मेहमान के आगमन से हर्ष हो। मासांत में गुप्त शत्रुओं की प्रवलता रहेगी। ७-८ ता. को कोई महत्त्वपूर्ण पत्र न लिखें या दस्तावेज पर हस्ताक्षर न करें अन्यथा विवाद की संभावना है। शुभ ता. ३, ६, ६, १८, २०, २३, २७, २८।

## २३ सितंबर से २२ अक्तूबर तक

इस मास में उत्तम धनागम योग के साथ-साथ व्यय योग की भी प्रवलता है। संतान या विद्या संबंधी कार्यों में सफलता हो। शुभ पत्राचार या यात्रा के लिए १० ता. के बाद का समय अनुकूल है। २७ ता. के बाद प्रायः दो मास तक ऐसा समय चलेगा जिसमें आपके प्रतिद्वंद्वी प्रबल होंगे। साझेदारी के कार्य में असौमनस्य तथा दाम्पत्य संबंध में प्रतिकूलता रहेगी। किसी विशेष धनागम की संभावना है। जिनका ११ अक्तूबर का जन्म है, इस वर्ष उनके जीवन में परिवर्तन है। १७ ता. को स्वभाव पर संयम रखें, कलह से बचें। शुभ ता. ३, ५, १०, ११, २०, २४, ३०, ३१।

## २३ अक्तूबर से २१ नवंबर तक

मास के पूर्वार्द्ध में व्यय योग अधिक तत्पश्चात आय योग उत्तम है। आप अपनी

## ज्ञान-गंगा

**नमन्ति सफलाः वृक्षाः नमन्ति सज्जना जनाः**
**शुष्कं काष्ठं च मूर्खश्च न नमन्ति कदाचन ॥**
(नीतिरत्नमाला)

—फलों से लदे पेड़ झुके रहते हैं, इसी प्रकार सज्जन मनुष्य अत्यंत विनम्र होते हैं। पर सूखा काठ और मूर्ख ये दोनों कभी नहीं झुकते, अकड़े ही रहते हैं।

**शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि**
**सर्वथा सर्वयत्नेन शिष्ये पुत्रे हितं वदेत्।**
(महाभारत, विराट पर्व)

—गुण तो शत्रु के भी वर्णन करे और अवगुण गुरु के भी वताने में संकोच न करे। हर प्रकार से और पूरा प्रयत्न कर शिष्य और पुत्र के हित की ही बात करे।

**समुन्नयन्भूति मनार्य संगमाद्**
**वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः ॥**
( भारवि, किरातार्जुनीय )

—ऐश्वर्य को वढ़ाते हुए मनुष्य के लिए नीचों के संग की अपेक्षा महात्माओं के साथ विरोध करना (कहीं) अच्छा है।

**शनैः कन्था शनैः पन्था शनैः पर्वत लंघनम्।**
**शनैर्विद्या शनैर्वित्तं पंचैतानि शनैः शनैः ॥**
(आप्य वाक्य)

—गुदड़ी की सिलाई, रास्ता तय करना, पहाड़ की चढ़ाई, विद्याध्ययन और धनसंचय ये पांचों निश्चय ही धीरे-धीरे होते हैं।

—प्रस्तोता : ब्रह्मदत्त शर्मा

साज-सज्जा की ओर विशेष ध्यान देंगे और आकर्षण के केंद्र बने रहेंगे। जिनके आप संपर्क में आएंगे, उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल होगी। आप में नवीन विचारों का प्रादुर्भाव होगा। विरोधियों की प्रबलता के कारण मानसिक अशांति रहेगी। २४, २५ को कलह से बचें। शुभ ता. ४, ८, १३, १५, १७, २१, २६, ३०।

## २२ नवंबर से २२ दिसंबर तक

प्रथम तीन सप्ताह में आय योग उत्तम है किंतु समस्त मास में व्यय योग की भी प्रबलता है। लेखक वर्ग के लिए ऐसा समय प्रारंभ हो गया है और यह समय प्रायः एक वर्ष रहेगा, जिसमें वे किसी श्लाघ्य कृति का निर्माण कर सकते हैं। १० ता. के बाद अन्य व्यक्तियों से सहयोग प्राप्त होगा। व्यापारी वर्ग को साझेदारी के कार्य में लाभ है। २७ ता. के बाद संतान या विद्या संबंधी कार्यों की ओर विशेष दत्तचित्त होना पड़ेगा। यह समय प्रायः दो मास चलेगा। शुभ ता. ३, ६, १०, ११, १५, १८, २३, ३०।

## २३ दिसंबर से २० जनवरी तक

इस मास में धनागम योग उत्तम है। मास के उत्तरार्द्ध में भोगोपकरणों या शुभ कार्यों में व्यय भी है। संतान या विद्या संबंधी कार्यों की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा। २७ ता. को जमीन जायदाद या गृह कार्यों में व्यस्तता रहेगी। किसी वरिष्ठ अधिकारी से मिलने के लिए तृ[illegible] सप्ताह अनुकूल नहीं है। २२ से २७ दिस[illegible] तक जिनका जन्म है, उन्हें शारीरिक [illegible] मानसिक परिश्रम विशेष है। दाम्पत्य [illegible] साझेदारी संबंधी उद्वेग भी हो सकता है। शुभ ता. ६, ८, १३, १५, १७, २१, २[illegible]

## २१ जनवरी से १९ फरवरी त[क]

यह मास आपके लिए शुभ है। पद-प्रा[प्ति] या उन्नति के लिए उद्योग में कृतका[र्य] होंगे। यदि गार्हस्थ्य, पारिवारिक, जमीन[-] जायदाद संबंधी उलझनों से आप उद्वि[ग्न] हैं तो उसकी निवृत्ति २७ ता. के बाद हो जाएगी। तत्पश्चात यात्रा का योग है। २२ से २५ जनवरी तक जन्मे व्यक्तियों को निश्चय ही विशेष हर्ष। शुभ ता. [६], ८, १३, १५, १७, २१, २६, २८।

## २० फरवरी से २० मार्च तक

आय योग उत्तम है किंतु व्ययाधिक्य भी मासांत में प्रारंभ होगा और दो मास तक चलता रहेगा। यात्रा या पत्राचार में सफलता कम है। संतान या विद्या संबंधी कार्यों में प्रतिबंध उपस्थित होंगे। जीर्ण रोगियों को उदर विकार या वायुजनित रोगों की संभावना है। मास का उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध की अपेक्षा श्रेष्ठ है। मास के प्रथम तीन सप्ताह में गुप्त शत्रु सक्रिय रहेंगे किंतु चतुर्थ सप्ताह में इनका स्वयं ही निराकरण हो जाएगा। शुभ ता. ३, ६, १०, ११, १५, १८, २३, ३०। ●

# मकान नम्बर १७

सॅबर्ट मेरास्को

**रहस्य-रोमांचपूर्ण साहित्य की रचना में सिद्धहस्त राबर्ट मेरास्को अंगरेजी के लोकप्रिय कथाकार हैं। यहां प्रस्तुत है उनके बहुचर्चित नये उपन्यास 'बर्ंट आफरिंग्ज़' का सार-संक्षेप । इस उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है । प्रस्तोता हैं —देवेन्द्र कुमार**

फोन पर रोज एलारडायस ने यही पता बताया था—"लांग आइलैंड एक्स-प्रेस वे पर रिवरहेड तक पहुंचकर, सड़क नं. २५ पर ओरियंट रोड क्रासिंग से शोर रोड पर घूम जाओ—वहीं है १७ नं. का मकान। वहां न दो हैं, न दस, न पंद्रह, १७ के बाद भी कोई नंबर नहीं है। बस है सिर्फ मकान नं. १७ !" यह कहकर फोन पर हंसी थी रोज एलारडायस !

कार में मिरियम, उसका पति बेन और आठ वर्षीय पुत्र डेविड यही मकान देखने जा रहे थे ।

मिरियम ने आंट सारा की भी अनुमति ले ली थी कि अगर उन्हें मकान पसंद आ गया तो वे भी गरमियां उसके साथ बिताएंगी ।

शोर रोड पर पहुंचने पर उन्हें झाड़ियों में ढकी पत्थर की एक पुरानी दीवार दिखायी दी। उसके आगे पत्थर के दो काले खंभे थे ! एक पर पीतल की पुरानी पट्टी लगी थी—जिस पर १७ नंबर अंकित था।

मिरियम को लगा, जैसे वे लोग किसी राजमहल में प्रवेश कर रहे हों। सब-कुछ इतना भव्य, इतना विशाल था कि बस ! एक उच्छ्वास मिरियम के गले को अवरुद्ध करने लगा — कितना कल्पनातीत । यह सब ! उसकी आंखें मकान से चिपक[कर] रह गयी थीं। मन हो रहा था कि [बस] देखती रहे। कंकरीले रास्ते के बायीं ओ[र] मैदान का टुकड़ा उजाड़ था। नंगी झाड़ि[यां] सूखी क्यारियां और सूखकर पीली-मटमै[ली] हुई लताओं का जंगल। लगता था, क[भी] यहां हरा-भरा बगीचा रहा होगा।

वे जैसे-जैसे मकान की ओर ब[ढ़] रहे थे, वह उन पर हावी होता जा र[हा] था—लेकिन साथ-साथ भव्यता के पी[छे] से जर्जरता भी मुखर होती जा रही थी। छत पर लगी टाइलें टूटकर गिर रही थीं। जगह-जगह जंग के पुराने धब्बे लगे थे। यही था वह मकान जिसका विज्ञाप[न] 'न्यूयार्क टाइम्स' में देखा था मिरियम ने।

एक-दो बार खटखटाते ही दरवाज[ा] खुल गया। अंदर एक नाटे कद का बू[ढ़ा] आदमी खड़ा था। "मैं वाकर हूं," अंद[र] आने का संकेत करते हुए उसने कहा, "आप पार्लर में प्रतीक्षा करें, तब तक मैं उन्हें . . ."

ड्योढ़ी में एक विशाल झाड़ टंगा था—कभी बहुत खूबसूरत रहा होगा। पार्लर और भी शानदार तरीके से सजा था।

लेकिन हर चीज पर धूल की परतें थीं। मिरियम की आंखें उदास हो गयीं। जिस किसी ने भी इस बहुमूल्य सामान को जुटाने में इतना पैसा खर्च किया, उसने इस राजमहल के रख-रखाव की परवाह क्यों नहीं की ?

ग्रीनहाउस में सब गमले टूटे-फूटे और खाली पड़े थे। सामने वाली दीवार पर ढेर सारे फोटोग्राफ लगे थे। वह देखने लगी, तब तक बेन भी आ गया।

"विचित्र !"—एकाएक बेन ने कहा। वह झुककर ध्यान से चित्रों को देख रहा था। वे सब चित्र उस मकान के थे। हर चित्र का एंगल एक ही था। देखने से कुछ चित्र एकदम पुराने, पीले-पीले से लगते थे और कुछ नये। कुछ चित्र रंगीन थे, पर दृश्य सबमें एक था—हरेक में मकान एकदम नया, चमचमाता सफेद दिखायी दे रहा था। लगता था, जैसे मकान बनने के तुरंत बाद के चित्र हों। मिरियम इन चित्रों से मकान की आज की स्थिति का मिलान करती खड़ी रही। कितना बड़ा अंतर था पिछले चित्र और आज की यथार्थ स्थिति में !

तभी वाकर की आवाज गूंजी, "वे लोग आ गये !"

दरवाजा खुला। एक छोटे कद की वृद्ध महिला अंदर आ गयी। वह ६० से कुछ ऊपर होगी। मिरियम की ओर हाथ बढ़ाकर बोली, "भाई भी नीचे आते ही होंगे। मैं रोज एलारडायस हूं। जबसे हमने विज्ञापन निकलवाया है, मैं

बता नहीं सकती कि कितने लोगों ने पूछताछ की है!"

"यह अभी खाली है न ?" मिरियम ने उत्कंठित स्वर में पूछा।

"हां, है," एलारडायस ने आश्वासन देने के स्वर में कहा, "क्योंकि बाकी लोग वैसे नहीं हैं, जैसे हम चाहते हैं। हम ऐसे लोग चाहते हैं, जो हमारी ही तरह इस घर से प्यार करें। इसे ठीक ढंग से रखें।"

रोज कहती जा रही थी और मिरियम के अंदर स्वामित्व की भावना उभरती आ रही थी।

"और पूरी गरमियों के लिए इसका किराया होगा कुल ७०० डालर," रोज ने बात आगे बढ़ायी।

"ओह !" मिरियम ने संतुष्टि के भाव से आंखें मूंद लीं। "हमें मंजूर है। क्यों बेन ? हां कह दो न! कह दो न!"

लेकिन बेन ने कुछ नहीं कहा। वह कुछ सोचता हुआ खड़ा था।

तभी नीचे खड़खड़-सी हुई। फिर किसी ने पुकारा, "वाकर !"

"भाई आ गये !" रोज एलारडायस ने कहा।

दरवाजा खुला और ह्वीलचेयर पर रोज का भाई आरनाल्ड अंदर आ गया। उसके पैर कंबल से ढके थे। "तो आप ही इस मकान को ले रहे हैं?" उसने पूछा।

"अभी तो हम लोग मकान का परिचय प्राप्त कर रहे हैं," बेन बोला।

"इन पैसों में आपको इतनी अच्छी जगह नहीं मिल सकेगी। हां, इसके साथ बस एक बात और है—हमारी मां ... वैसे वे ८५ वर्ष की हैं, लेकिन हम सबसे ज्यादा जिएंगी।"

"हमारी मां कभी घर नहीं छोड़तीं, कभी अपने कमरे से भी बाहर नहीं आतीं। आपको उनकी उपस्थिति का कभी पता भी नहीं चलेगा। आपको बस इतना करना होगा कि दिन में तीन बार खाने की ट्रे उनके सिटिंग-रूम में मेज पर रख दें—बस! उनका सोने का कमरा तो हमेशा ही बंद रहता है।"

बेन बोला, "ठीक है, हम आपको बता देंगे।"

अब कार उसी रास्ते से लौट रही थी! "मुझे तो वे लोग कुछ सिरफिरे-से लगते हैं," —बेन कह रहा था, "फिर मुझे मकान भी पसंद नहीं है। सब कुछ अजीब-अजीब-सा लगता है!"

पर मिरियम के हठ के आगे बेन को झुकना ही पड़ा।

एक सुबह आठ बजे बेन, मिरियम, डेविड और आंट सारा उस नये मकान में जा पहुंचे। मकान की सीढ़ियों पर उन्हें एक लिफाफा मिला। मिस रोज एलारडायस ने लिखा था, 'हमें दुख है कि आपसे बिना मिले जाना पड़ रहा है। लेकिन हमें आशा है, आपको कोई परेशानी नहीं होगी।' पत्र के साथ चाबियां और पूरे मकान का नक्शा था। साथ में कुछ नाम-पते और

टेलीफोन-नंबर थे। नक्शे में एक कमरे के आगे लिखा था—"हमारी मां!"

"हूं!" वेन बुदबुदाया। "वे लोग सिर्फ पागल ही नहीं, उससे भी कुछ अधिक हैं!"

"तुम सामान उतारो, तब तक मैं जरा मिसेज एलारडायस को देख आऊं।" और मिरियम अंदर की ओर बढ़ गयी। सीढ़ियां चढ़ने के बाद वह एक अंधेरे हाल में पहुंच गयी। यह मिसेज एलारडायस का सिटिंग-रूम था। वहां की हवा एकदम खामोश और उमस-भरी थी। खिड़कियों पर भारी परदे पड़े थे। कमरे में एक ओर बहुत बड़ी मेज रखी थी। उस पर बहुत सारे फ्रेम किये फोटोग्राफ रखे थे।

तभी मिरियम के कानों में हलकी-सी आवाज आयी। यह मिसेज एलारडायस के शयनकक्ष से आती लग रही थी। शयनकक्ष के बाहर एक मेज-कुरसी रखी थी। मेज पर एक चांदी की ट्रे रखी थी। मिरियम को यही ट्रे सुबह नौ बजे, बारह बजे और शाम को छह बजे मिसेज एलारडायस के लिए लानी थी। और बस, इसके बाद उसे उनकी चिंता करने की जरूरत नहीं थी।

उस आवाज से आकृष्ट होकर मिरियम शयनकक्ष के दरवाजे की ओर बढ़ गयी। सफेद दरवाजे की चिकनी सतह पर कुछ अजीब से डिजाइन बने हुए थे। मिरियम को वे डिजाइन अपनी ओर खींचते हुए लगे। मिरियम ने धीरे से दरवाजे को छुआ तो लगा, जैसे एक कंपन शरीर में भरने लगा हो।

और एकाएक उस पर नींद-सी तारी होने लगी। वहां उस मुद्रा में खड़े-खड़े उसे बहुत आराम मिल रहा था। मिरियम ने हावी होती नींद से लड़ते हुए आंखें खोले रहने की कोशिश की। वह दरवाजे से परे हट गयी तो वह नींद की भावना भी जाती रही। पर उसकी आंखें फिर दरवाजे में खिंचे विचित्र डिजाइनों में उलझ गयीं—वे कुछ बदले हुए लग रहे थे। यह क्या चमत्कार है! दृष्टिभ्रम है या...?

खैर! पहले मिसेज एलारडायस का हाल तो पूछ ले। उसने धीरे से दरवाजा खटखटाया, पर अंदर से कोई उत्तर नहीं मिला। बस, वही हलकी घूं-घूं की आवाज गूंज रही थी।

"श्रीमती एलारडायस! मैं मिरियम रोल्फे हूं। हम लोगों ने मकान लिया है," मिरियम ने कहा, पर उत्तर अब भी नहीं मिला। उसने ट्रे उठायी। उसमें अध-खाया नाश्ता रखा था। वह दरवाजे की ओर बढ़ी तो आंखें मेज पर रखे चित्रों में उलझ गयीं। ग्रीनहाउस के बाहर लगे मकान के चित्रों की तरह ये भी पुराने और नये दोनों तरह के थे। कुछ रंगीन भी थे। हर उम्र के चेहरे थे, एक बात मिरियम ने लक्ष्य की—किसी के होंठों पर, चेहरे की रेखाओं में कहीं भी मुसकान का कोई अंश नहीं था—सबके सब बिना तराशे पत्थर

की तरह निर्विकार, निर्जीव . . . नहीं, नहीं. एक चेहरा था, एक बूढ़े व्यक्ति का, जिसकी आंखों में मिरियम ने आतंक की छाया देखी—और वह आतंक-भरी दृष्टि . . . मिरियम तुरंत बाहर निकल आयी।

"कहां रह गयी थीं तुम?" बेन ने पूछा।

"मिसेज एलारडायस . . ."

"तुमसे मिलीं ?"

"नहीं, वे सो रही थीं। उन लोगों ने ठीक ही कहा था, शायद हम उन्हें कभी न देखें !" मिरियम ने कहा, फिर डेविड की ओर मुड़कर बोली, "और हां, डेविड, तुम उधर कभी नहीं जाओगी ! सिर्फ मैं जाऊंगी, बस !" इसमें बेन के लिए भी निषेध था। वह नहीं चाहती थी कि बेन मेज पर रखे उन चित्रों को देखे और कुछ का कुछ कहने लगे।

उस रात सब आराम से सोये। डेविड, बेन, आंट सारा—आठ बजे के बाद उठे। कहा तो मिरियम ने भी यही था, पर असल में उसकी नींद तीन बजे के करीब टूट गयी थी। वह खिड़की के पास बैठी सोचती-सी रह गयी थी, पर अब दिन निकल आया था। हर आदमी निश्चित था। बेन और डेविड इधर-उधर घूमने लगे। आंट सारा टेरेस पर बैठकर चित्र बनाने लगी और मिरियम—वह गृहस्वामिनी-सी अंदर काम कर रही थी।

मिसेज एलारडायस के कमरे में खाने की ट्रे वैसी ही अनछुई पड़ी थी। आखिर वे जिंदा कैसे हैं? यह सवाल मिरियम को बार-बार परेशान करने लगा। मिस एलारडायस ने उसे तीन बार मां के सिटिंग-रूम में आने को कहा था, लेकिन न जाने क्यों वह बीच-बीच में जब मौका मिलता, ऊपर चली जाती। वह लगभग हर समय मिसेज एलारडायस के बारे में सोचती रहती थी। अब उसे घबराहट नहीं होती थी, बल्कि कमरे में आने पर कुछ आराम ही मिलता था। मन होता था कि वह बार-बार अंदर आये, अपने कुछ क्षण वहां बिताये—न जाने क्यों?

"डेविड और बेन स्विमिंग-पूल में तैर रहे थे। अचानक बेन ने डेविड को कंधों पर उठाया और जोर से पानी में फेंक दिया। पानी उसके मुंह में भरने लगे। वह चिल्लाया, "डैडी, नहीं . . . नहीं डैडी।" और डरकर किनारे की ओर तैरने लगा। लेकिन बेन ने उसे जाने नहीं दिया। दोनों पैर पकड़कर उसे पानी में दबाने लगा।
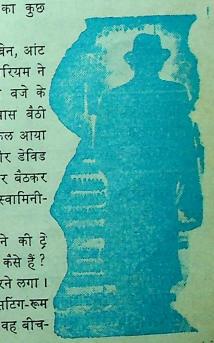
"बेन !" आंट सारा के स्वर में आतंक मालूम पड़ता था।

डेविड की सांस फूल रही थी। बेन ने उसे फिर जा पकड़ा, वह उसे फिर पानी में फेंकने जा रहा था। आंट सारा चिल्लायी लेकिन बेन ने जैसे कुछ नहीं सुना। डेविड ने उसकी आंखों में न जाने क्या देखा, वह चीख पड़ा। उसने हाथों में लटकते फेस-मास्क को जोर से बेन के मुंह पर दे मारा और तेजी से दौड़कर किनारे पर चढ़ गया। बेन के होंठों पर खून ही खून हो गया। उसके सिर में तेज दर्द उठ रहा था। मिरियम ने डरी हुई आंखों से बेन की ओर देखा। उसके होंठ सूज गये थे। मिरियम ने स्नेह से उसके सूजे हुए होंठ को छुआ।

"मिरियम, मैं बता नहीं सकता कि मुझे क्या हो गया था! मैं अपने ही बेटे की जान लेने पर उतारू हो गया था।"

"बेन, यह तुम्हारा वहम है," मिरियम ने सांत्वना के स्वर में कहा।

"नहीं, कुछ देर के लिए मैं बिलकुल पागल हो गया था।"

मिरियम हौले-हौले उसके बाल सहलाती रही। उसकी आंखें बाहर तेजी से गिरती बारिश की बूंदों पर टिकी थीं। इस समय वह मिसेज एलारडायस के बारे में सोच रही थी।

सुबह उठी तो हवा में नमी और ताजगी थी। वह काफी का प्याला लेकर टेरेस पर चली आयी। और तभी उसकी नजर तालाब पर पड़ी। उसे लगा, वहां सब कुछ बदला-बदला-सा है। उसके पैर अपने आप स्विमिंग-पूल की तरफ बढ़ गये।

तालाब का पानी इस समय शीशे सा साफ चमक रहा था। पानी में उतरने की धातु की सीढ़ियों की चमक चौंधियाने वाली थी। तालाब की अंदरूनी दीवारों पर ताजा-ताजा पेंट हुआ लग रहा था। उसके चारों ओर कंक्रीट की पटरी रातों-रात जैसे दोबारा बन गयी थी। वह स्तंभित खड़ी रह गयी। कल शाम तक तालाब का पानी मटमैला गंदा था। तालाब में उतरने वाली सीढ़ियों पर जंग की परतें चढ़ी थीं, चारों ओर कंक्रीट की पटरी बुरी तरह टूटी-फूटी थी... रात भर में यह चमत्कार कैसे हो गया?

मिरयम कुछ देर वहीं खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे लौट चली। दिमाग में एक बात थी—बेन तालाब की तरफ न आये तो अच्छा है। ये परिवर्तन उसे नहीं देखने चाहिए।

बेन को सिर में तेज दर्द महसूस हुआ। उसकी आंखें खुल गयीं। बेडरूम के दरवाजे के नीचे मद्धिम रोशनी की लकीर पसरी दिखायी दे रही थी। और फिर उसके कानों में एक आवाज आयी—जैसे कोई धीमे कदमों से चल रहा हो। फिर उसने एक छाया को दरवाजे के आगे से जाते देखा। कौन—कौन था बाहर?

बेन तुरंत खड़ा हुआ और सावधानी से बाहर निकल आया। बाहर हल्की रोशनी थी। कहीं कोई नहीं था। आंट

सारा का कमरा बंद था। डेविड के दरवाजे भी बंद थे। वे कभी बंद नहीं किये जाते थे। तब वे फिर आज क्यों बंद थे? बेन जल्दी से गलियारे में आगे बढ़ा। उसने एक झटके में डेविड का दरवाजा खोल दिया। तभी उसकी नाक में गैस की बदबू आयी। वह तेजी से अंदर दौड़ा। मन आशंका से तेज धड़क रहा था। डेविड का नाम पुकारते हुए उसने उसे गोदी में उठा लिया। डेविड का बदन चादर से ढका था। अंदर अंधेरा था।

"क्या बात है, डियर?" मिरियम की आवाज सुनायी दी।

"एकदम बाहर निकलो," बेन चीखा और डेविड को लिए हुए बाहर निकल आया। अपने बेडरूम में लाकर उसने रुंधे गले से पुकारा, "जोर से सांस लो डेवी! जोर से।" उसे मिरियम को सौंपकर बेन फिर डेविड के कमरे में आया। बत्ती जलायी तो देखा—कोने में रखा गैस का हीटर चालू था। उसने हीटर बंद किया, फिर कमरे की सब मुंदी खिड़कियां खोल डालीं।

कमरे से बाहर निकला तो देखा, आंट सारा अपने कमरे के बाहर खड़ी थीं। पूछने लगीं, "क्या बात है?"

"कुछ नहीं!" और बेन फिर अपने कमरे में चला आया।

"लेकिन यह सब हुआ कैसे?"—मिरियम पूछ रही थी।

"मुझे सोचने दो मिरियम, अभी मैं कुछ नहीं कह सकता।"

"अगर डेविड को कुछ हो जाता तो..."

मिरियम कुछ पल डेविड की ओर देखती रही, फिर बाहर निकल आयी। उसके कदम मिसेज एलारडायस के सिटिंग-रूम की ओर बढ़ रहे थे।

सुबह मिरियम ग्रीनहाउस की सफाई कर रही थी तो आंट सारा उसके पास आयी। मिरियम को वह बहुत थकी हुई और बूढ़ी लगी। वह कुछ-कुछ कांप भी रही थी। उसने अपनी गीली आंखें पोंछीं और बोली, "मिरियम, मैंने तो हीटर को छुआ भी नहीं था। मैंने तो बस उसे चादर ओढ़ायी थी।"

"तो यानी कल रात आप उसके कमरे में गयी थीं?" —मिरियम ने विस्फारित दृष्टि से उसकी ओर देखा—फिर एकाएक चीखकर बोली, "आंट सारा, मैं यह जानना चाहती हूं कि गैस का हीटर किसने खोला? खिड़कियां किसने बंद कीं? डेविड को चादर किसने ओढ़ायी? उसके कमरे का दरवाजा किसने बंद किया?"

"मुझे कुछ नहीं पता! मैं कुछ नहीं जानती!" कहकर आंट सारा चल दी।

मिरियम उसे जाते हुए देखती रही—आंट सारा तो डेविड से बहुत प्यार करती है, फिर वह क्यों मारना चाहती थी उसे...क्यों...क्यों...?

बेन शहर से लौटा तो मिरियम श्रीमती

एलारडायस की ट्रे सजा रही थी। सारे रास्ते बेन का सिर दर्द से फटता रहा था। एक-दो बार तो दृष्टि भी धुंधली हो गयी, इसलिए उसे कार रोक देनी पड़ी थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा क्यों होता जा रहा है!

वह मिरियम से बोला, "लाओ, आज मिसेज एलारडायस का नाश्ता मैं ले जाता हूं।"

मिरियम ने ट्रे पीछे हटा ली। बोली, "नहीं, डियर! यह मेरा काम है, मुझे ही करने दो।"

"मिरियम डियर, यह जिम्मेदारी कुछ ज्यादा नहीं हो गयी है। और यह मकान भी..." और यह कहते-कहते बेन की आंखें सहसा मुंदने लगीं। उसका सिर घूम रहा था। दर्द की तेज लहर उठ रही थी।

"क्या बात है, डियर? मुझे बताओ न!" मिरियम की आवाज में हलका-सा डर था।

"यह मकान कितना महत्त्वपूर्ण है तुम्हारे लिए? क्या मेरे कहने पर तुम इसे छोड़ दोगे?"

"लेकिन क्यों?"

"अब भी पूछती हो क्यों? अगर मैं ठीक समय पर डेविड के पास न पहुंचता तो...और उस दिन तालाब में मैं ही खुद उसकी जान लेने पर उतारू हो गया था। और फिर तालाब का बदला रूप—हर चीज से आती विचित्रता की गंध, मिसेज एलारडायस का रहस्यमय व्यक्तित्व! मुझे लगता है, इस मकान में ही कुछ गड़बड़ है।"

"लेकिन मुझे तो इसमें ऐसा कुछ नहीं लगता!" —मिरियम ने कहा, "ऐसा सोचना महज बचकानापन है।"

"मिरियम, क्या तुम मेरे लिए इसे नहीं छोड़ सकतीं?"

"मेरा खयाल है, हमें इसी घर की तलाश थी। मुझे इसे छोड़ने को मत कहो।"

बेन आहत आंखों से मिरियम की ओर देखता रहा, फिर धीरे-धीरे बाहर चला आया। एकाएक उसे आंट सारा का खयाल आया। उसने उसे काफी देर से नहीं देखा था। वह उसके कमरे में घुस गया—उसने कई बार पुकारा, पर आंट सारा ने कोई जवाब नहीं दिया—बेन ने देखा, उसकी आंखें स्थिर थीं, होंठ टेढ़ा हो गया था, "आंट सारा!" वह चीख उठा।

वह भागता हुआ नीचे आया, "आंट सारा! उन्हें कुछ हो गया है। जल्दी से डाक्टर को टेलीफोन करो।"

डाक्टर ने कहा, "मैं अभी आ रहा हूं।" लेकिन दो घंटे बीतने पर भी उसका पता नहीं था, और फिर टेलीफोन पर उसकी उत्तेजित आवाज सुनायी दी—"माई गाड यह शोर रोड कहां है? और १७ नम्बर का मकान! मैं एक घंटे सिर मारकर लौट गया! कौन-सी दुनिया में है यह

मकान ! कहां हो तुम लोग ?"

बेन आंट सारा के पास बैठा था। और मिरियम खाने की ट्रे लेकर मिसेज एलारडायस के सिटिंग-रूम में पहुंच गयी। आज उनके शयनकक्ष से उभरने वाली आवाज कुछ अधिक तेज थी। कमरे में रखी हर चीज अनोखी आभा से चमक रही थी। मिरियम ने उनींदी आंखों से एलारडायस के बेडरूम की ओर देखा, फिर न जाने क्या हुआ ! वह उनकी कुरसी पर बैठ गयी। नैपकिन खोलकर घुटनों पर रख लिया। छुरी-कांटा उठाया और प्लेट में रखे मांस के टुकड़े में धंसा दिया।

अगली सुबह मिरियम ने घोषणा कर दी कि आंट सारा के क्रियाकर्म के लिए वह शहर नहीं जाएगी। बेन ने उसे समझाना चाहा, पर जब वह न मानी तो वह डेविड के साथ आंट सारा की मृत देह लेकर शहर चला गया।

रात को ९ बजे के बाद मिरियम ने नीचे की बत्तियां बुझा दीं और एलारडायस के सिटिंग-रूम में चली गयी। बेडरूम के बंद दरवाजे को हौले से खटखटाया—"वे चले गये हैं। अब घर में केवल हम दो ही हैं। मैं और आप—बस ! मिसेज एलारडायस, क्या आप बाहर आकर बता नहीं सकतीं कि मुझे क्या करना चाहिए ?" अंदर से कोई जवाब नहीं आया। वह कुछ देर किवाड़ों से टिकी खड़ी रही, फिर लौट चली। एकाएक उसने देखा—आंट सारा उसकी ओर घूर रही हैं—उसके गले से चीख निकलते-निकलते र गयी। उसकी हथेली होंठों पर टिक गयी—सामने मेज पर चित्रों में आंट सारा का रंगीन चित्र रखा था। इसमें उन्हें वही पोशाक पहन रखी थी जिसे पहनकर वह यहां आयी थी। "आंट सारा !" उसके मुंह से निकला, "हे भगवान ! क्या सच है !" फिर धीरे-धीरे उसकी आंखें मुंद गयीं।

चार दिन बाद बेन और डेविड लौट आये। मिरियम दौड़कर डेविड से लिपट गयी।

"तुम्हारे तो सारे बाल सफेद हो गए, मां !"—डेविड बोला !

"हूं।" बेन भी ध्यान से उसे देख रहा था।

चार दिन बेन यहां से दूर रहा था तो उसकी स्वाभाविकता लौट आयी थी। उसे बुरे सपने नहीं दिखायी देते थे। इससे उसका विश्वास दृढ़ हो गया था कि वह मकान ही सब आफतों की जड़ था।

"वह मुझ पर निर्भर करती है !" मिरियम ने फिर दोहराया, "यहां मेरे अलावा उसकी देखभाल करने वाला और कोई नहीं है। क्या तुम चाहते हो कि मैं अपनी जिम्मेदारी छोड़ दूं ?"

"मिरियम, मैं यहां रुकने के लिए नहीं लौटा हूं। अगर तुम एक मकान के लिए, एक अपरिचित बुढ़िया की खातिर अपने परिवार का बलिदान देना चाहती हो तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना।"
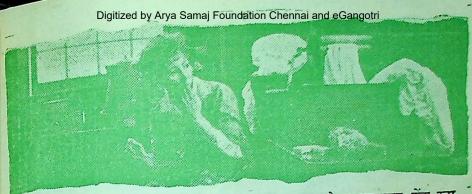
"लेकिन मैं . . ."

एक टाइल फिर नीचे पत्थरों पर गिरकर चूर-चूर हो गया। लेकिन मिरियम की नजर उस पर नहीं थी। वह न जाने कहां देख रही थी!

बेन ने फैसला कर लिया था कि वह सुबह डेविड को लेकर चला जाएगा। यह फैसला अंतिम था। इसमें मिरियम शामिल नहीं थी, क्योंकि उसने पहले ही न जाने का फैसला कर लिया था। रात को वह जागता बैठा रहा। न जाने क्यों उसे लग रहा था कि सोना नहीं चाहिए! मिरियम अभी तक नहीं आयी थी। बेन जानता था कि वह मिसेज एलारडायस के सिटिंग-रूम में बैठी होगी, लेकिन उसने वहां जाने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

और तभी उसने बाहर एक आवाज सुनी जैसे वर्षा हो रही हो। यह पानी नहीं था। कुछ और था—एक फिसलन, एक रगड़ और फिर . . . बेन उठा और दरवाजा खोलकर बाहर आ गया—मकान की छत पर लगी टाइलें एक-एक करके नीचे गिर रही थीं। ऐसा लग रहा था, जैसे मकान अपना पुराना चोला उतारकर फेंक रहा हो। उसे धीरे-धीरे मकान की हर चीज टूटकर बिखरती हुई लग रही थी। अगले ही पल वह दौड़कर अंदर आया और डेविड को गोदी में उठा लिया।

मिरियम ने यह आवाज सुनी तो बाहर आयी। तब तक बेन डेविड को लेकर गैरेज की ओर बढ़ चुका था। मिरियम ने पुकारा, 'बेन! बेन!' लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। एक कार सामने से गुजरकर कुहासे में खो गयी।

जहां तक नजर जाती थी, गहरी हरी, काली उलझी हुई झाड़ियां फैली हुयी थीं। सड़क उनसे बिलकुल बंद हो गयी थी। "हम कहां जा रहे हैं, डैड?" डेविड चिल्लाया।

"घबराओ नहीं, सब ठीक हो जाएगा।"—बेन ने आश्वासन देने के स्वर में कहा, तभी कार टकराते-टकराते बची।

सामने झाड़ियों की दीवार और भी घनी हो गयी थी। मोटर रुक गयी। अब उसके लिए आगे बढ़ना असंभव दिखायी

दे रहा था। बेन ने एक पल उस हरी दीवार को देखा, कार को थोड़ा बैक किया और तेजी से आगे बढ़ा दिया। उसका पैर एक्सीलरेटर पर था। कार की गति बढ़ी तो सब तरफ से झाड़ियां कार से टकराने लगीं। बेन जैसे अंधों की तरह कार को ड्राइव कर रहा था। कार पर झाड़ियों के टकराने की आवाज बहुत तेज हो गयी थी। काश, एक बार वह झाड़ियों की दीवार तोड़कर मकान नं. १७ से बाहर निकल सकता।

डेविड ने जब देखा कि बेन अजीब स्वर में बड़बड़ा रहा है—अजीब लाल-लाल आंखों से सामने घूर रहा है तो वह भी चीख उठा।

आखिर कार एक झटके से रुक गयी। डेविड सीट से गिर पड़ा। बेन का सिर विंडस्क्रीन से जा टकराया। और फिर कुछ ही सेकेंड बाद, मिरियम ने कार का दरवाजा खोला। बेन को स्टियरिंग-ह्वील से परे हटा दिया। वह धीरे-धीरे बुदबुदा रही थी, "अब सब ठीक हो जाएगा। अब बिलकुल मत घबराओ।"

मिरियम स्वयं कार ड्राइव करने लगी। वह कार को आगे ले जा रही थी—मकान से दूर। उसकी आंखों से आशंका उफनी पड़ रही थी। आश्चर्य! सामने रास्ता रोके खड़ी झाड़ियां इधर-उधर हट गयी थीं। अब वे कार का रास्ता रोकने की कोशिश नहीं कर रही थीं।

तभी मिरियम की नजर रियरव्यु-मिरर पर पड़ी—उसमें पीछे छूटता मकान दिखायी दे रहा था और सामने मकान नं. १७ का बाहरी प्रवेशद्वार—काले पत्थर के दो खंभे—दिखायी दे रहा था। उसके बाहर शोर रोड थी, जो ओरियंट रोड से जाकर मिलती थी और...

कार फिर रुक गयी थी—और मिरियम स्टियरिंग-ह्वील पर हाथ टिकाये सोचती बैठी थी—आगे या पीछे? बढ़े या लौट चले? और आगे बढ़ने का विचार तेज हवा में बढ़ते बादल-सा उस पर से गुजर गया—उसने कार स्टार्ट की, लेकिन अब वह आगे नहीं, पीछे लौट रही थी—मकान की तरफ।

बेन के होंठ कांपे। वह धीरे से बोला, "तो तुम उसे स्वीकार कर रही हो? ... अच्छी तरह जानती हो कि आगे जाने के बजाय पीछे लौट रही हो?"

मिरियम का चेहरा भावहीन रहा। अब कार मुड़कर पूरी तेजी से मकान की ओर बढ़ रही थी। वह धीरे-धीरे उभरता जा रहा था—उन पर हावी होता जा रहा था—एक अजीब चौंधियाने वाली चमक से चमकता हुआ।

बेन ने आंखें बंद कर लीं। वह न कुछ देख पा रहा था, न कुछ सुनायी दे रहा था। शरीर की शक्ति एकबारगी निचुड़ चुकी थी।

मिरियम देख रही थी कि पुराने मकान का कायाकल्प अब धीरे-धीरे पूरा होने जा रहा है—हर चीज नया रूप

लेती जा रही थी ——मकान की छत नयी हो गयी थी। दीवारों पर जैसे नया पेंट कर दिया गया हो। सब जगह बैठी धूल की परतें हट गयी थीं। छत में लटके फानूस हीरे की तरह चमक रहे थे। गुलदान सोने-से जगमगा रहे थे, हर जगह हवा की गुलाब की खुशबू से मह-मह कर रही थी। अगर अब कोई मकान की तसवीर लेता तो यह बिलकुल वैसी ही होती जैसी कई नयी-पुरानी तसवीरें ग्रीनहाउस के सामने वाली दीवार पर लगी थीं।

मिरियम बेन को सहारा देकर स्विमिंग-पूल के पास ले आयी थी, क्योंकि डेविड तालाब में तैरने की जिद कर रहा था। बेन की आंखें हमेशा हर चीज के पार देखती लगती थीं। वह किसी आवाज को सुनकर सिर नहीं घुमाता था। सुनता भी नहीं था, देखता भी नहीं था। उसके दिमाग के चारों ओर एक काला परदा तन गया था।

उन्हें वहां छोड़कर मिरियम खाने की ट्रे तैयार करने चल दी। इसके बाद आकर बेन और डेविड को अंदर ले जाएगी और फिर खाने की ट्रे लेकर मिसेज एलार-डायस के कमरे में।

खाने की ट्रे लगाने के बाद मिरियम बाहर आने लगी तो पाया कि रसोई का दरवाजा बंद हो गया है। उसने हरचंद कोशिश की, पर दरवाजा नहीं खुला।

आतंक उसके गले में घुमड़ने लगा। आंखें विस्फारित हो उठीं। वह दूसरे दरवाजे की तरफ भागी। खिड़कियों के रास्ते बाहर निकलने की सोची, लेकिन हर खिड़की-दरवाजा पूरी सख्ती से बंद हो गया था। केवल बंद ही नहीं हुआ था, किसी ने जैसे उनमें ताला भी लगा दिया था।

उसने रसोई की बंद खिड़की से तालाब की ओर देखा और फिर यह सब कुछ एकबारगी उसके सामने स्पष्ट हो उठा। "नहीं... नहीं... कभी नहीं," वह चीख पड़ी।

डेविड तैरता हुआ तालाब के बीच में चला गया था। उसने मुड़कर बेन की ओर देखा। वह मूर्ति की तरह तालाब के किनारे बैठा था। डेविड की ओर देखता हुआ भी नहीं देख रहा था। एकाएक डेविड ने पानी अपनी ठोढ़ी से ऊपर आता महसूस किया। वह घबराकर उछला, लेकिन पानी उससे भी ऊपर आ गया और ऊपर... और ऊपर... डेविड की घुटी-घुटी चीख हवा में उभरी और दब गयी—"डैड..!"

बेन का शरीर कांपने लगा। उसकी आंखें अब तालाब पर टिकी थीं, वहीं जहां से डेविड ने आखिरी बार पुकारा था। उसके दिमाग के चारों ओर तने काले परदे को चीरकर एक बहुत धीमी आवाज अंदर आयी थी। उसके अवश हाथ असहाय अवस्था में ऊपर उठे। होंठ जरा खुले। एक शब्दहीन कराह बाहर आयी और वह तालाब के किनारे लुढ़क गया।

हर दरवाजा बंद था। वह आतंक से अंधी हुई इधर-उधर दौड़ती फिर रही थी—हर चीज को ठोकर मारती, ठुकराती। उसे पता लग गया था कि तालाब के किनारे क्या कुछ घट चुका है!

अब वह सीढ़ियों पर चढ़ रही थी। एक-एक पैर मन-मन भर का हो गया था। बीच में कई बार रुककर अपनी धड़कनों को संभाला। फिर धीरे-धीरे मिसेज एलारडायस के सिटिंग-रूम में पहुंच गयी। वहां तस्वीरों वाली मेज पर दो नयी तसवीरें थीं—आंट सारा की बगल में बेन और डेविड की।

मिरियम बेडरूम के बाहर रखी कुरसी पर बैठ गयी। उसकी मुट्ठियां उत्तेजना से भिची हुई थीं। कमरे से आती घूं-घूं की एकरस आवाज में उसे अपनी आशंका घुलती हुई महसूस हुई। मन की गहराई में कुछ घुमड़ रहा था—वह न डर था, न क्रोध, न आशंका, न भय।

वह उठकर दरवाजा खटखटाने लगी, "मिसेज एलारडायस! अब हम दोनों के बीच यह दरवाजा क्यों है? मैं अपना सब कुछ तो तुम्हें दे चुकी हूं। अब देने के लिए कुछ नहीं है... कुछ नहीं बचा है मेरे पास..."

खट की हलकी आवाज हुई और दरवाजा धीरे-धीरे बाहर की ओर खुलने लगा। कुछ क्षण वह अपलक खड़ी रही। फिर उसके होंठों पर एक विजय-मुसकान उभरने लगी। कमरे से आने वाली आवाज धीरे-धीरे तेज होती जा रही थी। मिरियम ने अपना हाथ दरवाजे से हटा लिया, लेकिन दरवाजा अब भी उसे पीछे धकेले
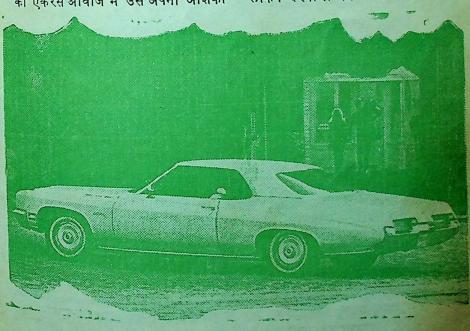
जा रहा था, खुलता जा रहा था।

मिरियम का शरीर कांपने लगा। उसने दरवाजे को रोकने की कोशिश की, दरवाजे को परे धकेलने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी, लेकिन वह अवश थी। दरवाजा खुलता जा रहा था। उसके पीछे से चौंधियाने वाली रोशनी की लकीरें बाहर छिटक रही थीं। मिरियम चीख पड़ी—लेकिन उसके अपने कानों ने कुछ नहीं सुना। और फिर उस रोशनी के गोले में उसने एक छाया को देखा, जो तेजी से उसकी ओर बढ़ रही थी—कुरसी पर बैठा एक वृद्ध शरीर। वीभत्स चेहरा। उसकी आंखें आग के शोलों की तरह दहक रही थीं। मिरियम को अपने अंदर सब कुछ जलता, सुलगता, दहकता लगा। दुःख, प्यार, स्मृति, आशंका—सब कुछ; मिरियम ने हाथ ऊपर उठाये—एक मौन स्वीकृति में। और तभी वे दहकती आंखें न जाने कहां खो गयीं! सामने एक कुरसी खाली पड़ी थी। वह लड़खड़ाती-सी आगे बढ़ने लगी। वह घूमी और कुरसी पर बैठ गयी। हाथ कुरसी के हत्थों पर टिक गये। और अब घूं-घूं की आवाज कमरे के अंदर से नहीं, खुद उसके अंदर उभर रही थी। उसकी आंखें बंद हो गयीं। और फिर कहीं दूर एक दरवाजा बंद हो गया जैसे तहखाने या किसी मकबरे का दरवाजा गूंज के साथ बंद हो जाए।

वे लोग तुरंत प्रकट हो गये—रोज एलारडायस, आर्नल्ड और वाकर! वे तीनों हंसते-मुसकराते हुए अपनी मां के घर में घूम रहे थे—वह घर जो आज अपने पूरे निखार पर था।

"इतना सुंदर! पहले कभी इतना अच्छा नहीं था!" रोज एलारडायस मुसकरायी।

वे तीनों बाहर आ गये। घास गहरे हरे कालीन-सी बिछी थी। धूप में १७ नं. का मकान पूरी भव्यता से सिर उठाये खड़ा था। खिड़कियों के शीशे धूप में चौंधिया रहे थे।

उन्होंने पुराने एंगल से मकान का एक चित्र खींचा और उसे ग्रीनहाउस के सामने दीवार में लटका दिया, वहीं जहां पहले के चित्र लटके थे।

ऊपर मिसेज एलारडायस के सिटिंग-रूम में चित्रों वाली मेज पर एक नया चित्र रखा था—मिरियम का चित्र! वह अपलक दृष्टि से सामने घूर रही थी। ●

**जज ने पूछा, "तुम्हारे कितने भाई हैं ?"**
**"एक," अभियुक्त ने बताया।**
**"गलत बयानी के अपराध में तुम पर बीस रुपये जुरमाना किया जाता है। तुम्हारी बहन ने गवाही में बताया था कि उसके दो भाई हैं," जज ने फैसला सुनाया।**

---

**दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं प्रकाशित**

# महाशयजी

कथा : सरोजनी प्रीतम
चित्रकार : सुकुमार



वाह महाशयजी, आप पहली बार रामलीला में पार्ट कर रहे हैं, हम भला क्यों नहीं आएँगे!

रामलीला मंडली

हनुमान तुम शीघ्र जाकर संजीवनी बूटी ले आओ

संजीवनी बूटी आ सके तो लक्ष्मन स्वस्थ हो सकते हैं

संजीवनी ले आये हनुमान ?

संजीवनी की बात बाद में होगी - पहले बताओ कि रस्सा किसने काटा?

HEROS'-BE-104 HN.
बेहतर
रोशनी के
लिए
बजाज
bajaj
बजाज इलेक्ट्रिकल्स
लिमिटेड
४५-४७ वीर नरिमन रोड, बम्बई-१.
शाखाएं – भारत में सर्वत्र

वर्ष १२ : अं
दिसम्बर, १९

# आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी व

संपादक : रामानन्द 'दो

## निबंध एवं लेख

## कविताएँ



## कथा-साहित्य



## हास्य-व्यंग्य



## विविध



## आफसेट-चित्र

मुखपृष्ठ : छाया——विद्याव्रत

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, नयी दिल्ली—१

# उत्तर रेलवे

## सूचना

उत्तर रेलवे समय सारिणी का १-११-७१ को सामान्य पुनरावलोकन किया गया तथा उसमें अधोलिखित मुख्य परिवर्तन हुए :-

**१. नई गाड़ियां चालू की गईं**

सं. १ बी बी/२ बी बी निम्नांकित समयानुसार बालामऊ एवं बरेली के मध्य :-

| १ बी बी | | २ बी बी |
|---|---|---|
| ८.३० प्रस्थान | बालामऊ | आगमन १७.३० |
| १४.१० आगमन | बरेली | प्रस्थान ११.५५ |

**२. गाड़ियां जो बढ़ायी गईं**

(ए) बक्सर-बरेली के बीच चलने वाली ट्रेन नम्बर १३१ अप/१३२ डाउन को ५५ अप/५६ डाउन मुरादाबाद-दिल्ली एक्सप्रेस के साथ सम्मिलित करके ५५ अप/५६ डाउन बक्सर-दिल्ली एक्सप्रेस के नाम से निम्नांकित तौर पर दिल्ली तक के लिए वाया चन्दौसी बढ़ा दिया गया है।

| ५५ अप | | ५६ डाउन |
|---|---|---|
| १९.०६ आगमन | मुगलसराय | प्रस्थान ७.३० |
| १९.३० प्रस्थान | | आगमन ७.१५ |
| २०.२० आगमन | वाराणसी | प्रस्थान ६.२५ |
| २०.४० प्रस्थान | | आगमन ६.०० |
| ५.३५ आगमन | लखनऊ | प्रस्थान २०.५५ |
| ६.१० प्रस्थान | | आगमन २०.२५ |
| १४.११ आगमन | चन्दौसी | प्रस्थान १२.३२ |
| १४.२१ प्रस्थान | | आगमन १२.१२ |
| २०.२० आगमन | दिल्ली | प्रस्थान ६.५० |

(बी) नं. १ बी एस/१ एस एस और २ एस एस/२ बी एस यात्री गाड़ियां एक साथ मिला दी गई हैं जो सीतापुर कैण्ट होकर बालामऊ और शाहजहांपुर के बीच निम्नांकित कार्यक्रम के अनुसार नं. १ एस एस बी/२ एस एस बी के संशोधित नाम से चल रही हैं :-

| १ एस एस बी | | २ एस एस बी |
|---|---|---|
| ६.२० प्रस्थान | बालामऊ | आगमन १४.१५ |
| ९.०५ आगमन | सीतापुर कैण्ट | प्रस्थान १०.४५ |
| ९.२५ प्रस्थान | ,, ,, | आगमन १०.२५ |
| १४.१० आगमन | शाहजहांपुर | प्रस्थान ५.२० |

(सी) नं. १ सी ए/२ सी ए गाड़ी जो इलाहाबाद व चुनार के बीच चल रही थी मुगलसराय होते हुए ... के लिए बढ़ा दी

गई हैं। इसका नया नाम १ बी एम ए/२ बी एम ए हैं तथा इसकी समय सारणी निम्नांकित हैं।

| १ बी एम ए | | २ बी एम ए |
|---|---|---|
| ९.४५ आगमन | इलाहाबाद | प्रस्थान १८.०० |
| २.१० प्रस्थान | वाराणसी | आगमन २४.०० |

(डी) नं. ३४३ अप/३४४ डाउन गाड़ी जो दिल्ली और अबोहर के बीच चल रही थी अब श्रीगंगानगर तक बढ़ा दी गई हैं तथा अधोलिखित समयानुसार चल रही हैं।

| ३४३ अप | | ३४४ डाउन |
|---|---|---|
| २०.२० आगमन | | प्रस्थान ८.४० |
| २१.१० प्रस्थान | भटिण्डा | आगमन ८.१० |
| २३.२५ आगमन | अबोहर | प्रस्थान ५.४६ |
| २३.३५ प्रस्थान | | आगमन ५.३८ |
| ०.२५ आगमन | हिन्दूमलकोट | प्रस्थान ४.५५ |
| ०.२७ प्रस्थान | | आगमन ४.४५ |
| १.३० आगमन | श्रीगंगानगर | प्रस्थान ३.४५ |

**३- ६५ अप/६६ डाउन जनता एक्सप्रेस के आवर्तन में वृद्धि :-**

नं. ६५ अप/६६ डाउन जनता एक्सप्रेस जो वाराणसी-देहरादून के बीच सप्ताह में एक बार चल रही थी अब सप्ताह में ६ दिन चलती हैं तथा सातवें दिन यह हावड़ा और देहरादून के बीच ६१/६२ के नाम से चल रही हैं।

**४- ट्रेनें जो बन्द कर दी गईं हैं :-**

(१) नं. १ बी क्यू/२ बी क्यू पैसेंजर गाड़ी बटाला-कादियां सेक्शन पर।
(२) नं. १ जे ए जालंधर सिटी-अमृतसर के बीच।
(३) नं. ३३३ अप लुधियाना-जालंधर सिटी के बीच।
(४) नं. ४ जे ए अमृतसर-जालंधर सिटी के बीच।
(५) नं. १ बी बी एल/२ बी बी एल वालामऊ और बोसा के बीच.
(६) नं. १ ए पी/२ ए पी अमृतसर और पट्टी के बीच (सीजनल)
(७) नं. १ जे एन नाकोदर और जालंधर सिटी के बीच (सीजनल)।

**५. जिन नए स्थानों पर ट्रेनें रुकती हैं :-**

१०६ अप झांसी-लखनऊ पैसेंजर अजगेन में ठहरती हैं। ६२/६६ रियासी, रायवाला, कोरहा, अजयगवान, टोडरपुर, बहता गोकुल तथा काहिलिया पर।

१ बी बी जी/२ बी बी जी फतेह सिंह वाला हाल्ट पर। ४ बी एस आर नोसरिया हाल्ट पर। ४ एम डी लोदीपुर विश्नपुर हाल्ट पर। २३२ जनता एक्सप्रेस बिजवासन पर।

**६- ट्रेनों का रुकना जहां समाप्त कर दिया गया।**

३४५ अप कलवां हाल्ट। १ जेएफ खोजेवाला (सीजनल)। १ ए बी पी सोहाल (सीजनल)। ४ एल एक मुलहानी (सीजनल)। २ एल जे

एच जासावाल( सीजनल) । २ एल एल कांधुर्द (सीजनल) । ३३१ बह- मन दीवाना (सीजनल) । १ जे जे अलाचोर (सीजनल) । ४ एस एच बी बहमन दीवाना (सीजनल) । २ जे एल चिहेरू (सीजनल) । १ एल जे गुरने और गोविन्दगढ़ खोखर । ३ जे एन एल/४ जे एन एल गुंताली हाल्ट (सीजनल) ।

**७. गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन**

नं. १ अप दिल्ली में १९.४५ के बदले १९.२५ पर पहुंचती है ।
नं.१० डाउन देहरादून से २०.४५ के बदले २०.२० पर छूटती है ।
नं. २९ अप नई दिल्ली में ७.४० के बदले ७.२० पर पहुंचती है ।
नं. ३० डाउन नई दिल्ली से २१.४० के बदले २२.०० पर चलती है ।
नं. ४२ डाउन देहरादून से १९.५५ के बदले १९.३० पर चलती है ।
नं. ५३ अप नांगल डैम ८.३० के बदले ८.१५ पर पहुंचती है ।
नं. ५४ डाउन नांगल डैम से २१.४० के बदले २१.५५ पर चलती है ।
नं. ६२/६६ देहरादून से १९.१० के बदले १७.५० पर चलती है ।
नं. ६१/६५ देहरादून १२.०० के बदले ११.१५ पर पहुंचती है ।
नं ८५ अप नई दिल्ली १६.५० के बदले १७.४५ पर पहुंचती है ।
नं. २२ अप नई दिल्ली से १९.१५ के बदले १८.१० पर चलती है ।
नं. १०२ डाउन नई दिल्ली से १७.३० के बदले १८.१० पर चलती है ।
नं १०१ अप नई दिल्ली १०.२० के बदले १०.०० पर पहुंचती है ।
नं. १६ अप नई दिल्ली से १७.०० के बदले १९.१० पर चलती है ।
नं. २१ डाउन नई दिल्ली ५.०० के बदले ५.३० पर पहुंचती है ।

**८. दिल्ली और श्रीगंगानगर (एम जी) के बीच पूरे तृतीय श्रेणी के डिब्बे का चलना ।**

९३ अप/२ बी एस एच/१ बी एस एच एल-२ बी एस एच एल/५ बी एस एच/९४ डाउन ट्रेनों में जो दिल्ली और श्रीगंगानगर के बीच चलती हैं चलने वाला मिश्रित तृतीय लगेज तथा ब्रेकवान के बदले एक पूरा तृतीय श्रेणी का डिब्बा चलता है ।

**९- जोधपुर-बीकानेर डिब्बे (एम जी) की समाप्ति**

जोधपुर-बीकानेर के बीच २१० डाउन/२ जे एम बी-१ जे एम बी/२०९ अप ट्रेनों में चलने वाला मिश्रित तृतीय लगेज एवं ब्रेकवान समाप्त कर दिया गया है ।

**१०-द्वितीय श्रेणी की समाप्ति**

१ एस बी/२ एस बी शटल ट्रेन में जो शाहजहांपुर और बरेली के बीच चलती है द्वितीय श्रेणी के यात्री नहीं जा सकेंगे ।

ट्रेनों का समय प्रचलन, थ्रू सेक्शनल कैरेजेज के रद्द करने, गाड़ियों में स्थान के वर्गीकरण में समायोजन इत्यादि के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी हेतु नवम्बर, १९७१ समय सारिणी देखनी चाहिए जो रेलवे बुकिंग/आरक्षण/पूछताछ कार्यालयों एवं प्रमुख स्टेशनों के बुकस्टालों पर बिक्री हेतु उपलब्ध हैं। ... परिचालन अधीक्षक

# प्रकाशन विभाग के मुख्य प्रकाशन

## नवीन प्रकाशन

| | |
|---|---|
| भारत १९७० | रु. ४.०० |
| महकते फूल | रु. ३.२५ |
| आकाशवाणी शब्दकोश (अंग्रेजी-हिन्दी) | रु. १०.५० |
| स्वराज्य के मंत्रदाता तिलक | रु. १.३० |
| भारत की लोक कथाएं | रु. २.०० |

## सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

इस पुस्तकमाला में गांधी जी ने जो कुछ भी कहा या लिखा, उसका संग्रह हैं। अब तक ३८ खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

मूल्य रु. ७.५० प्रत्येक।

| | |
|---|---|
| महात्मा गांधी (चित्रावली) | रु. १२.५० |
| बापू की वाणी | रु. ०.५० |
| सब ईश्वर के प्यारे बेटे | रु. १.३० |
| गांधी शतदल | रु. ५.०० |
| महात्मा गांधी का सन्देश | रु. २.६० |
| मोहन दास करम चन्द गांधी एक जीवनी | रु. ४.२५ |

## साहित्य

| | |
|---|---|
| नामदेव और उनका हिन्दी साहित्य | रु. २.७५ |
| युगप्रवर्तक जयशंकर प्रसाद | रु. १.२० |
| गालिब : कवि और मानव | रु. ३.०० |
| आचार्य रामचन्द्र शुक्ल | रु. १.०० |
| उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द | रु. २.०० |
| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | रु. १.६० |
| देश महान हमारा (कविता संग्रह) | रु. २.०० |
| चतुर्दशी-कहानी संग्रह | रु. २.५० |
| तुलसी के राम | रु. १.०० |
| नई कविता | रु. १.५० |
| सच्ची जासूसी कहानियां | रु. २.२५ |
| श्रेष्ठ हिन्दी कहानियां | रु. ३.०० |
| गुरू नानक | रु. ३.५० |
| रसिकप्रिया | रु. १५.०० |

## आधुनिक भारत के निर्माता

| | |
|---|---|
| मोतीलाल नेहरू | रु. २.०० |
| गोपालकृष्ण गोखले | रु. ३.०० |
| ईश्वरचन्द्र विद्यासागर | रु. २.०० |
| ठक्कर बापा | रु. ३.०० |
| देशप्रिय जे. एम. सेनगुप्त | रु. ३.२५ |
| लोकमान्य | रु. ३.०० |

## इतिहास

| | |
|---|---|
| भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास : | |
| भाग १ (साधारण) | रु. ६.०० |
| (सजिल्द) | रु. ८.०० |
| भाग २ (साधारण) | रु. १०.०० |
| (सजिल्द) | रु. १२.५० |
| भारत में अंग्रेजी राज | |
| भाग १ (साधारण) | रु. ८.०० |
| (सजिल्द) | रु. १२.५० |
| दिल्ली की खोज (ले. बृजकृष्ण चांदीवाला | रु. ५.०० |
| विद्रोह का महावीर-छत्रपति शिवाजी | रु. २.२५ |
| सरल साज-सामान से वैज्ञानिक प्रयोग | रु. ६.०० |
| हमारी मौसम सेवा | रु. २.५० |
| भारत के मन्दिर | रु. ४.०० |

डाक खर्च मुफ्त। तीन रुपए या इससे अधिक मूल्य की पुस्तकें वी. पी. पी. द्वारा भी भेजी जा सकती हैं। पूरे सूचीपत्र के लिए लिखें : **प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली. आकाशवाणी भवन, कलकत्ता. बोटावाला चेम्बर्स, सर फिरोजशाह मेहता रोड, बम्बई. शास्त्री भवन, ३५ हैडोस रोड, मद्रास।** वि. दृ. प्र. नि. ७१।२४९

# वचन-वीथी

● मन ही मनुष्य के बंधन एवं मोक्ष का कारण है।

—योगवासिष्ठ

● सत्य मेरी माता, ज्ञान पिता, धर्म भाई, दया मित्र, शांति पत्नी और क्षमा पुत्र है। यही छह मेरे बांधव हैं।

—चाणक्य

● भय की बहुत-सी आँखें हैं और उसे भूमिगत चीजें भी दिखायी देती हैं।

—सर्वेंटीज

● संसार में सदैव कहीं न कहीं तो सुबह रहती ही है!

—रिचार्ड हेनरी

● जो व्यक्ति यह कहता है कि नयी बातों को सीखने के लिए वह बहुत बूढ़ा हो गया है, शायद वह हमेशा ही ऐसा रहा है।

—ए. मार्शल

● कुछ लोग बदकिस्मती के इतने शौकीन होते हैं कि वे उस से मिलने आधे रास्ते तक दौड़े जाते हैं।

—डगलस जेरोल्ड

● हरेक पालना पूछता है—'कहाँ से?' और हरेक अर्थी पूछती है—'कहाँ को?' इन प्रश्नों का उत्तर निपट गँवार भी उतनी ही अच्छी तरह जानता है जितना कोई धर्मगुरु।

—राबर्ट ग्रीन हंगरसोल

● बच्चों के ओठों पर मानव आत्मा की तुतलाहट ही संसार का सब से पुनीत गीत है।

—विक्टर ह्यूगो

● विशेषज्ञ—जो कम से कम चीजों के बारे में अधिक से अधिक जानता है।

—निकोलस मरे बटलर

● शुरू में जितना दीखता है बाद में उतना अच्छा कुछ भी तो नहीं होता!

—जार्ज इलियट

● शब्द कार्यों के पंख हैं।

—लैवेटर

● मेरा वक्त आया तो मैं भागूंगा नहीं। मैं डटा रहूँगा, गोली से तेज तो मैं भाग नहीं सकता! —जार्डन के शाह हुसेन

# नये महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

## पाकिस्तानी जेलों में तीन वर्ष

सन् '६६ में पाकिस्तानियों ने एक निरपराध युवक श्री त्रिलोक चन्द का ब... अपहरण कर तीन वर्ष तक जेलों में बंद रखा। इन वर्षों में इन पर पाकिस्तानी हु... रानों द्वारा किए गए जोर-जुल्म तथा अत्याचार की मर्मस्पर्शी कहानी स्वयं इन्हीं... जबानी प्रस्तुत पुस्तक में अत्यन्त भावपूर्ण तथा सशक्त भाषा में वर्णित है।

## पन्त के सौ पत्र

कवि पंत के ७१ वें जन्म-दिन पर विशेष रूप से प्रकाशित चुने हुए पत्रों का ... पम संकलन जिनसे दोनों कवियों के अंतरंग पर प्रकाश पड़ता है। निजी, ... सहज, अनलंकृत और इसी नाते मोहक भी।

## वैष्णव भक्ति-आन्दोलन का अध्ययन

वैष्णव भक्ति-भावना के उद्भव और विकास के विभिन्न सोपानों और अवस्था... का परिचय देते हुए मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-आन्दोलन के व्यापक और लोक... रूप का तमिल और हिन्दी के भक्ति-साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन के परि... में विद्वान लेखक डा. मलिक मोहम्मद ने पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है। शोध-... तथा सुधि पाठकों के लिए समानोपयोगी। ३०.

## रायकमल

थोड़े से थोड़े शब्दों और मामूली सी घटनाओं को लेकर प्रेमानुभूतियों का चित्रण गद्य में होते हुए भी काव्य के उच्चतम स्तर को छूता ताराशंकर बन्द्योपाध्याय का महत्व-पूर्ण उपन्यास। ५.००

## सूखा सैलाब

आधुनिक विदेशी सभ्यता की मृगतृष्णा में फंसी एक आदर्श, सुशील भारतीय नारी के अंतर्द्वन्द्व की कहानी-निर्मला वाजपेयी का नवीनतम उपन्यास। २.५०

## भारतपुत्र नौरंगीला...

पाठक-मन को गुदगु... वाली भाषा में समाज... व्याप्त भ्रष्टाचार त... अनीतियों पर व्यंग्य क... अमृतलाल नागर ... हास्य-व्यंग्य से भरपूर ... चर्चित कहानियों ... संकलन। ६.

**राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६**

आदमी हो, संस्था हो, पत्रिका हो— सब के साथ यह परेशानी है कि एक बार थोड़ा जम जायें तो ये लापरवाह हो जाते हैं। कभी कुछ स्तंभ खिलते दीखते हैं, तो उन की जगह दूसरे खड़े कर दिये जाते हैं। यानी यह आम बात हुई; मगर कभी-कभी खास भी तो कुछ देखने में आता है। कई व्यक्ति सहज-सजग, संस्थाएँ गतिशील और पत्रिकाएँ समय के साथ रूढ़ न हो कर नित नयी बनी रहती हैं। 'कादम्बिनी' शायद एक ऐसी ही पत्रिका है जो अपने ढंग में बँधी नहीं। इस ने किसी एक ढंग को अपना नहीं माना, सारे ढंगों को सोच-समझ कर अपनाया है। जहाँ तक मैं जानता हूँ यह हिंदी की आज सब से लोकप्रिय मासिक पत्रिका है। यहाँ तक कि मैं भी, जो पत्रिकाओं में सिर्फ कविताएँ पढ़ता हूँ, 'कादम्बिनी' के और-और स्तंभों को भी देखता हूँ।

यों सब कुछ सदा सुष्ठु ही नहीं मिलता, मिल भी नहीं सकता। इस के दो स्तंभ मैं प्रायः देख लेता हूँ। एक 'शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये' और दूसरा 'गोष्ठी'। पहले के बारे में मुझे एक बात प्रायः यह लगी है कि ज्यादातर शब्द संस्कृत से चुने जाते हैं और कई बार उन के उत्तरों में दिये गये सही अर्थ पूरी तरह सही नहीं होते। नवंबर-अंक में 'अच्छेद्य' का अर्थ 'अखंडित' दिया गया है। उदाहरण में दिये गये वाक्य भी प्राय: सधे-सधाये बोलते हुए वाक्य नहीं होते। इस दिशा में मेरे दो सुझाव हैं— एक यह कि शब्द बोलियों से अधिक लिये जायें और अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रसिद्ध लेखकों, कवियों की कृतियों से वाक्य चुने जायें। संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति तो सदा सूचित की जा सकती है। बोलियों के मूल खोज कर बता देना भी आह्लादकारी हो सकता है।

'गोष्ठी' स्तंभ में उत्तर एकाध बार गलत मिल जाते हैं। जैसे एक बार कभी लिखा था—'सन का पौधा भी भाँग का पौधा है।'

'वचन-वीथी', 'शाश्वत स्वर' और 'फिलर्स' भी मैं पढ़ता रहा हूँ। कह सकता हूँ, इन का चुनाव सदा सुंदर होता है। कोई सलाह लेता है कि हमें कौन-कौन सी पत्रिकाएँ पढ़ लेनी चाहिएँ, तो मैं तीन-चार पत्रिकाओं में 'कादम्बिनी' को गिनाना कभी नहीं भूलता।

यह पत्र मैं ने 'कादम्बिनी' के १२वें वर्ष-प्रवेश पर इसे इस की सर्वांगीण प्रगति के लिए बधाई देने के विचार से लिखा है।

**—भवानीप्रसाद मिश्र,**
**२७९५ नेताजीनगर, नयी दिल्ली—२३**

मति नंदी के उपन्यास 'नायक का प्रवेश और प्रस्थान' के धारावाहिक प्रकाशन के निमित्त कृपया मेरी बधाई स्वीकार करें। ऐसा उपन्यास कम-से-कम हिंदी के लिए तो अभी वर्षों तक चुनौती बना रहेगा। काश, संत्रास के नाम पर मानसिक विकृति उगलने वाले हिंदी के प्रयोगधर्मा 'कृतिकार' इस से प्रेरणा ले सकें।

**—डॉ. कैलाश नारद,**
**हुकुमचंद नारद रोड, जबलपुर, म. प्र.**

अमरीका स्थित पत्र-प्रतिनिधि श्री कृष्ण भाटिया ने अपने लेख 'राष्ट्र-संघ : मुखौटों का जंगल,' में संयुक्तराष्ट्र संघ की कार्यविधि का सही चित्रण उपस्थित किया है। हम भारतवासी शालीनता को बहुत महत्त्व देते हैं और इस गुण से युक्त वक्तव्यों तथा वार्त्ताओं को अपने प्रति सहज ही सहानुभूति का परिचायक मान लेने की भूल कर बैठते हैं।

राष्ट्रसंघ स्थित राजनयिक अपने राष्ट्र के स्वार्थ साधन हेतु सौदेबाजी करते हुए नहीं थकते। इस के साथ ही वे बड़े राष्ट्र समझौतों, संधियों के दबाव में एक सीमित दायरे में ही कार्यवाही कर सकते हैं।

कश्मीर के मामले में हमारा देश यह अनुभव कर चुका है, पर बाँगला-देश का मामला कश्मीर से भी भयानक है। ९० लाख से अधिक शरणार्थी भारत आ चुके हैं। वहाँ जो भी किया गया वह सभ्यता के इस युग में कल्पना से बाहर है। परंतु संयुक्त राष्ट्र का राजनयिक-मंडल यह सब जानते-समझते हुए भी यह कहने को तैयार नहीं कि पाकिस्तान ने निंदनीय कार्य किया है। प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी के विश्व दौरे के बाद भी किसी ने अब तक पाकिस्तान के क्रूर कृत्यों की निंदा तो क्या आलोचना भी नहीं की। संयुक्तराष्ट्र संघ इन्हीं राष्ट्र समूहों का अखाड़ा है, जहाँ न्याय के नाम पर न्याय का ही गला घोंट दिया जाता है।

**—जयदत्त पंत, उप संपादक,**
**नवभारत टाइम्स, नयी दिल्ली**

# शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये

**निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ पर दिये गये उत्तर से मिलाइये**

१. **प्रविधिज्ञ**—क. विशेष अधिकारी, ख. किसी कला, शिल्प आदि का विशेष जानकार, ग. कानून का विशेषज्ञ, घ. अनुभवी।

२. **परिसमापन**—क. अंत, ख. विनाश, ग. किसी व्यापारिक संस्था आदि की विधिवत समाप्ति, घ. सीमा बाँधना।

३. **कदाहार**—क. दुर्व्यवहार, ख. अवमता, ग. कभी-कभी, घ. निकृष्ट भोजन।

४. **परिवर्ती**—क. बाद में आने वाला, ख. जो बदलता रहे, ग. पहले का, घ. बदला हुआ।

५. **अपकर्ष**—क. घृणा, ख. अवनति, ग. खिंचाव, घ. अंतर

६. **परिवेष्टन**—क. घूमना, ख. लपेटना, ग. चारों ओर से घेरना, घ. पीछे देखना।

७. **दैनंदिन**—क. प्रसन्न, ख. दीन, ग. नित्य का, घ. दिन-रात।

८. **कालक्षेप**—क. समय का फेर, ख, समय बिताना, ग. दूसरा समय, घ. किसी घटना का गलत समय पर वर्णन।

९. **दुराराध्य**—क. कठोर, ख. हठी, ग. जिसे कोई जीत न सके, घ. जिसे प्रसन्न करना कठिन हो।

१०. **संसिद्धि**—क. तैयारी, ख. सफलता, ग. समृद्धि, घ. समाप्ति।

११. **वर्ज्य**—क. प्रभाव, ख. मानने योग्य, ग. निंदनीय, घ. निषिद्ध।

१२. **सानुनय**—क. निकट, ख. निर्धन, ग. विनयपूर्वक, घ. आग्रहपूर्वक।

१३. **ज्ञेय**—क. गाने योग्य, ख. विद्वत्तापूर्ण, ग. जानकारी से भरा, घ. जानने योग्य।

१४. **लोकापवाद**—क. किंवदंती, ख. लोकनिंदा, ग. प्रचार, घ. संसार का भय।

# शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. **प्रविधिज्ञ**—ख. किसी कला, शिल्प आदि का विशेष जानकार (टेक्नी-शियन)। आजकल **प्रविधिज्ञों** को भी काम मिलना आसान नहीं।

२. **परिसमापन**—किसी व्यापारिक संस्था आदि की विधिवत समाप्ति (लिक्वीडेशन)। उस संस्थान का **परिसमापन** हो गया।

३. **कदाहार**—घ. निकृष्ट भोजन। **कदाहार** से रोग होते हैं।

४. **परिवर्ती**—ख. जो बदलता रहे। मानव-सभ्यता का बाह्य रूप **परिवर्ती** है।

५. **अपकर्ष**—ख. अवनति। युवावर्ग के आदर्शच्युत होने से समाज का **अपकर्ष** अवश्यंभावी है।

६. **परिवेष्टन**—ग. चारों ओर से घेरना। वनों ने इस क्षेत्र का **परिवेष्टन** किया है।

७. **दैनंदिन**—ग. नित्य का! **दैनंदिन** व्यवहार से मनुष्य के स्वभाव का पता लगता है।

८. **कालक्षेप**—ख. समय बिताना। आजकल बहु निर्धनता में **कालक्षेप** कर रहा है।

९. **दुराराध्य**—घ. जिसे प्रसन्न करना कठिन हो। आलसी के लिए दैव **दुराराध्य** प्रतीत होता है।

१०. **संसिद्धि**—ख. सफलता। **संसिद्धि** श्रम का ही परिणाम है।

११. **वर्ज्य**—घ. निषिद्ध। **वर्ज्य** क्षेत्र में जाने के कारण उसे दंड दिया गया।

१२. **सानुनय**—ग. विनयपूर्वक। उस के **सानुनय** आग्रह को मैं टाल न सका।

१३. **ज्ञेय**—घ. जानने योग्य। **ज्ञेय** बातों की सूची असीमित है।

१४. **लोकापवाद**—ख. लोकनिंदा। बहुत-से लोग **लोकापवाद** के कारण ही कुकृत्य से दूर रहते हैं।

# शाश्वत स्वर

दो मित्र घूमते-घूमते ऐसे स्थान पर आये जहाँ भागवत की कथा हो रही थी। एक ने प्रस्ताव किया, "आओ, कुछ देर कथा सुनें।" दूसरे ने कहा कि इस से क्या लाभ? चलो कहीं आमोद-प्रमोद में समय व्यतीत करें। किंतु पहला मित्र नहीं माना, वह भागवत सुनने बैठ गया। दूसरा मित्र किसी वेश्या के नृत्य-प्रदर्शन में चला गया, लेकिन जिस आनंद की आशा उसे थी वह नहीं मिला। वह सोचने लगा—मैं यहाँ व्यर्थ आया। मेरा मित्र वास्तव में सुखी है जो भगवान कृष्ण के चरित्र को सुन रहा है। इस के विपरीत भागवत सुनने वाला मित्र सोच रहा था—यदि मैं मित्र के साथ चला गया होता तो आनंद कर रहा होता।

वस्तुतः जो भागवत-कथा में गया था, वह आनंद-गृह का चिंतन कर पाप का भागी हो रहा था और जो वेश्या का नृत्य देख रहा था उस का मन भगवान कृष्ण में रमा हुआ था, अतः वह पुण्य का भागी हो रहा था। किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति उस के विचारों पर अवलंबित है, बाह्य कर्मों पर नहीं।

—रामकृष्ण परमहंस
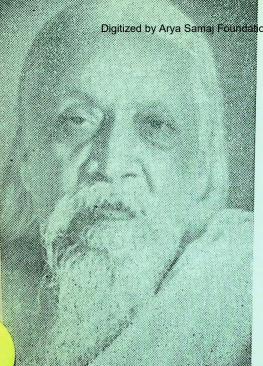
बांगला देश में मिल रहे हैं।

श्री अरविंद ने जिन आशाओं के साथ अपना क्रांतिकारी जीवन आरंभ किया था उन का स्मरण करते हुए उन्होंने संदेश में कहा--"उन स्वप्नों में पहला स्वप्न था आजाद और अखंड भारत के लिए क्रांतिकारी आंदोलन चलाना।" मुझे भी इस स्वप्न ने प्रेरणा दी और उन की ओर आकर्षित किया। उस समय मैं बहुत ही छोटा था। मेरा जन्म १८९३ में हुआ था। संयोग की बात है, यह वही साल था जब श्री अरविंद भारत आये, विवेकानंद भारत से गये और गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका गये।

१९०४ में अकस्मात बंग-भंग हुआ

**श्री अरविंद-पुण्यतिथि (१५ दिसंबर) के अवसर पर**

• **सुरेन्द्रमोहन घोष**

पंद्रह अगस्त, १९४७ को श्री अरविंद का एक संदेश आकाशवाणी से प्रसारित हुआ था। उस में उन्होंने कहा था--"आज भारत आजाद है किंतु उस में एकता नहीं... हिंदू और मुसलमानों का पुराना सांप्रदायिक विभाजन, अब ऐसा लगता है, देश के स्थायी राजनीतिक विभाजन का रूप ले कर और भी दृढ़ हो गया है... किंतु यह विभाजन खत्म होना जरूरी है, किसी-न-किसी तरह एकता जरूर लानी होगी और वह लायी भी जायेगी, क्योंकि भारत की महानता के लिए वह बहुत आवश्यक है।" लगता है कि उन की भविष्यवाणी फलने के प्रारंभिक संकेत

और उस के विरोध में आंदोलन छिड़ा। हम नौजवान थे, आंदोलन ने हमें अपनी ओर खींच लिया। 'समितियाँ' बनीं। हमारी समिति का नाम 'साधना-समाज' था। मेमनसिंह जिले के हेमेंद्र-किशोर आचार्य चौधरी इस के नेता थे। इस का काम खुले रूप से चलता था—कसरत करना, लाठी, तलवार, छुरी का अभ्यास करना आदि। साथ-ही-साथ एक गुप्त क्रांतिकारी दल भी था। इसे स्वयं श्री अरविंद ने स्थापित किया था। उस समय हमें इस के बारे में कुछ पता नहीं था। नेता हेमेंद्रकिशोर इस के सदस्य बन चुके थे।

मैं ने श्री अरविंद को पहली बार मेमनसिंह में देखा था, साल तो याद नहीं, विपिनचंद्र पाल और जहाँ तक याद आता है, सुबोध मल्लिक भी उन के साथ थे। वे कभी आम सभा में भाषण नहीं देते थे, किंतु उन्हें वहाँ ले जा कर बैठा दिया जाता था। उन दिनों आम सभाओं में भाषण देते थे विपिनचंद्र पाल। कभी-कभी लोग शोर मचाते—हम अरविंद को सुनना चाहते हैं। विपिन पाल कह दिया करते—इस समय उन्हें बोलने के लिए मत कहो। जो कुछ मैं तुम्हें बता रहा हूँ उसे समझने की कोशिश करो। वे बोलेंगे तो आग ही आग बरसेगी।

मुझे एक मौका मिला। जब मुझे यह पता चला कि कुछ गुप्त कार्य हो रहा है तो मैं भी उस गुप्त क्रांतिकारी दल में शामिल हो गया। अरविंद भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के प्रवर्तक थे ही। भारतीय नेताओं में वे ही पहले नेता थे जिन्होंने सार्वजनिक रूप से कहा था कि हमारा उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता है। दूसरे नेता और बातें कहा करते थे—बंग-भंग समाप्त हो, स्वराज मिले, आदि ऐसे शब्द प्रयोग करते थे जिन से यह स्पष्ट नहीं होता था कि उन का तात्पर्य क्या है। श्री अरविंद ने खुल कर कहा—पूर्ण स्वतंत्रता से ही हम संतुष्ट होंगे, इस से कम किसी बात से नहीं।

गुप्त दल में शामिल होने पर शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी। एक हाथ में गीता और दूसरे में रिवाल्वर ले कर अपने रक्त से यह प्रतिज्ञा लिखनी होती थी—हमारे नेता की जो भी आज्ञा होगी उस का हम पालन करेंगे। जब मेरी बारी आयी और मैं शपथ ले चुका तो अचानक मुझ से पूछा गया—अब तुम अपना जीवन इस काम के लिए उत्सर्ग कर चुके हो, अतः यह बताओ कि तुम भारत की आजादी क्यों चाहते हो? युवक मन की प्रतिक्रिया यह थी— इतनी दूर से आने वाले विदेशी हम पर क्यों राज्य करें? वे हमारा शोषण कर रहे हैं। मेरी इस भावना में एक नफरत थी, किंतु हमें यह समझाया गया—वह सब ठीक है लेकिन एक बात और याद रखो। आजादी के बाद भारत को सारी दुनिया के लिए, पूर्ण मानवता के लिए काम करना होगा... तुम्हें केवल अपने कष्टों का नहीं, सारी मानवता के कष्टों का

निवारण करना है।

यह था वह महान उद्देश्य जो श्री अरविंद ने हमारे सामने रखा।

उन दिनों 'वंदेमातरम्', 'युगांतर', 'कर्मयोगिन्' और 'धर्म' में श्री अरविंद के लेख छपा करते थे। लेखों के माध्यम से श्री अरविंद स्वतंत्रता, गणतंत्र और समाजवाद के विषय में अपने विचार प्रतिपादित किया करते थे ताकि उन के देशवासी अपने संघर्ष के लक्ष्यों को साफ समझ सकें। 'भवानी मंदिर' नाम का एक गुप्त नीति-घोष भी वितरित किया जाता था। एक बार 'स्टेट्समैन' ने, जो भारत में साम्राज्यवादी शक्ति के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था, आरोप लगाया कि यूरोप के समाजवादी विचारों का आयात करके श्री अरविंद भारतीय जनता की बुद्धि भ्रष्ट कर रहे हैं। यह बात सितंबर, १९०७ की है। श्री अरविंद ने तत्काल मुँहतोड़ जवाब दिया—समाजवाद यूरोप का विचार नहीं, एशिया का है; मूल रूप से बिना समाजवाद के भारत का गणतंत्र निरर्थक है।

दो दशक बीतने पर मैं ने देखा कि भारत के राजनीतिक कार्यकर्ता साम्यवादी बनते चले जा रहे हैं।

मैं ने तब यह लिखा था कि अगर इन्होंने श्री अरविंद का 'आइडियल ऑव ह्यूमन यूनिटी' (मानव एकता का आदर्श) पढ़ा होता तो वे मार्क्स के साम्यवाद को न अपनाते। श्री अरविंद भारतीय जनता के लिए ही क्रांति नहीं चाहते थे, वे तो विश्व-क्रांति के नेता थे।

मैं श्री अरविंद के गुप्त क्रांतिकारी दल में १९०८ में शामिल हुआ था। फिर अलीपुर बम-कांड हो गया। इस कांड के खत्म होने से पहले ही मुझे एक साल के लिए जेल में डाल दिया गया, क्योंकि मेरे पास से बिना लाइसेंस का एक रिवाल्वर पकड़ लिया गया था। जब मैं जेल से छूटा तो पता चला श्री अरविंद पहले ही पाँडिचेरी जा चुके थे। जहाँ तक गुप्त दल का संबंध है, वह इतना गुप्त था कि थोड़े से ही लोग एक-दूसरे को जानते थे और एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा कड़ी की तरह जुड़ा रहता था। मेरे पिता-जी और मैं दोनों ही इस दल के सदस्य थे, फिर भी कुछ समय तक दोनों को एक-दूसरे के बारे में पता नहीं था।

१९१२ में मैं अपनी कड़ियों की खोज में कलकत्ता गया ताकि दल को फिर से संगठित किया जाये। कुछ समय बाद ही पहला विश्व-युद्ध छिड़ गया। हम ने एक आम विद्रोह खड़ा करने की कोशिश की किंतु सफलता नहीं मिली। इस बार हमें युद्ध चलने तक जेल में रहना पड़ा। उन दिनों श्री अरविंद की दो पुस्तकें-'द आइडियल ऑव द कर्मयोगिन' (कर्मयोगी का आदर्श) और 'द इंडियन रेनेसाँ' (भारतीय पुनर्जागरण) पढ़ा करते थे। हर वाक्य से हर शब्द से प्रेरणा मिलती थी। पहली पुस्तक में श्री अरविंद के राष्ट्रवाद की विस्तृत परिभाषा है। यह बात

उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रस के १९२२ के गया अधिवेशन में देशबंधु चित्तरंजन दास ने अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रवाद के विषय में जो चर्चा की वह श्री अरविंद द्वारा 'द आइडियल ऑव द कर्मयोगिन' में दी गयी विस्तृत परिभाषा पर आधारित थी।

मुझे यह असाधारण अधिकार प्राप्त था कि पाँडिचेरी जाने पर मैं श्री अरविंद से साक्षात्कार करके उन के साथ राजनीति की चर्चा कर सकूँ। राजनीति में ही मेरी रुचि थी, इसी के लिए तो मैं ने सब कुछ उत्सर्ग किया था। ऐसा मैं ने उन की आज्ञा पर हीं किया था इसलिए उन की भी मेरे प्रति कुछ जिम्मेदारी थी।

एक बार गाँधीजी ने उन से मिलने की इच्छा व्यक्त की थी किंतु श्री अरविंद ने टाल दिया। पर १९३९ में उन्होंने मुझ से कहा—वे (गाँधीजी) अब आ सकते हैं। जो भी राजनीतिक मतभेद था वह अब नहीं रहा। वे मुझ से मिल सकते हैं। तुम यह संदेश उन्हें पहुँचा दो। मैं सेवाग्राम गया और गाँधीजी तक संदेश पहुँचा दिया। वे इस सुझाव पर उछल पड़े। उन्होंने भी मुझे यकीन दिलाना चाहा कि कोई मतभेद नहीं रहा। वे मुझ से बोले—हाँ, तुम कुछ व्यवस्था करो। मैं ने जवाब दिया कि मेरे लिए तो यह संभव नहीं होगा क्योंकि मैं ने उसी मौके पर एक विशेष तिथि को सत्याग्रह करने की घोषणा कर रखी थी। मैं ने यह वादा जरूर किया कि मैं लिख दूंगा। मैं ने पाँडिचेरी एक संदेश भेज दिया किंतु यह मुलाकात न हो पायी। कारण मुझे पता नहीं क्योंकि तब मैं जेल में था।

विभाजन के फैसले को मेरा मन कबूल नहीं कर रहा था। उस समय मैं बंगाल कांग्रेस का अध्यक्ष था। विभाजन-पंथी और दूसरे मुझे घेर कर पूछते—"अध्यक्ष क्यों चुप हैं? आप विभाजन क्यों नहीं स्वीकार कर लेते?" किंतु मैं किसी निश्चय पर न पहुँच पाया। पाँडिचेरी जा कर मैं ने श्री अरविंद से पूछा—क्या करूँ? उन्होंने कहा—तुम इसे रोक नहीं सकते। विभाजन तो होगा ही, किंतु भारत के इस विभाजन को सांप्रदायिक आधार पर मानते हुए कोई प्रस्ताव पास न करना। अगर भारत का विभाजन होता है तो जो भारत में रहना चाहें उन्हें यहाँ रहने का अधिकार है, इस आधार पर तुम जा कर प्रस्ताव पास कर लो। हम ने इस आधार पर प्रस्ताव पास कर लिया।

उस के बाद मुझे एक तार मिला—फौरन आओ—श्री अरविंद। मुझे पता चला कि इस तरह का यह पहला तार श्री अरविंद ने भेजा था। मैं पाँडिचेरी जा कर उन से मिला। उन्होंने मुझे कुछ संदेश दिया और कहा—जाओ, गाँधी, नेहरू, मौलाना, सरदार और राजेंद्र-प्रसाद सब से यह कहो कि वे इस ढंग पर अमल करें। यह भारत और अंततः विश्व के हित में होगा। मैं ने यह संदेश बाकायदा

पहुँचा दिया । कांग्रेस कार्यकारिणी में हरेक ने इस की सराहना की किंतु अमल नहीं किया गया । हाँ, एक बात का उल्लेख कर दूं । जयपुर में कांग्रेस के खुले अधिवेशन में विदेश-नीति विषयक जो प्रस्ताव पास किया गया था वह श्री अरविंद के परामर्श के अनुरूप था ।

भारत के फ्रांस-अधिकृत इलाकों की वापसी के लिए श्री अरविंद ने जो मसविदा तैयार किया था वह इस आधार पर था कि ये इलाके भारत में फौरन मिला दिये जायें किंतु पाँडिचेरी को फ्रांस के साथ सांस्कृतिक संपर्क बनाये रखने का अधिकार रहे । हम ने श्री अरविंद की सलाह पर अमल नहीं किया, इसलिए बाद में एक गंभीर समस्या खड़ी हो गयी । १९५० के बाद हमारे नेताओं ने मुझे फिर पाँडिचेरी जा कर यह समस्या हल करने के लिए कहा । तब श्री अरविंद शरीर छोड़ चुके थे । मुझे 'श्री माँ' से अनुरोध करना पड़ा कि आप मेरी मदद करें । मैं ने कहा—यह न मेरी राजनीति है और न भारत सरकार की । यह तो श्री अरविंद की राजनीति है । वे मान गयीं । उन की सद्भावना हमें उपलब्ध हुई । फिर फ्रांस-अधिकृत इलाकों को भारत में मिलाने में देर नहीं लगी ।

बहुत से लोग यह बात नहीं जानते कि श्री अरविंद ने जो क्रांतिकारी दल स्थापित किया था उस के लिए 'भवानी मंदिर' (जिस का उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ) नाम का एक गुप्त-नीति-ग्रं तैयार किया था । यद्यपि मूल-रूप से यह भारत की आजादी के लिए तैयार किया गया था, वास्तव में यह एक विश्व-क्रांति का नीति-घोष है । इस में उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारत केवल एक भौतिक इकाई नहीं है बल्कि एक पूर्ण आत्मा है, माँ है । फिर उन्होंने यह समझाया कि ठीक उसी तरह राष्ट्र की एक आत्मा है, और वह है भगवद्-शक्ति या भवानी । उन्होंने कहा कि हम इस शक्ति का केवल आंशिक अनुमान लगा सकते हैं और कुछ भी हमारी इच्छा से नहीं बल्कि इस शक्ति की इच्छा से ही होता है । बंगाल के तत्कालीन गवर्नर लार्ड रोनाल्ड रो ने पहले अपनी पुस्तक 'हार्ट ऑव आर्यावर्त' (आर्यावर्त का हृदय) में 'भवानी मंदिर' की आलोचना करते हुए यह कहा था कि यह अ-भारतीय है । इसी लेखक ने बाद में (जब यह लार्ड जटलैंड कहलाने लगा) प्रोफेसर लैंगली द्वारा लिखित श्री अरविंद की जीवनी के प्राक्कथन में यह स्वीकार किया कि श्री अरविंद ने 'भवानी मंदिर' के विचारों को वास्तव में पाँडिचेरी में अपने बाद के जीवन में विकसित किया ।

श्री अरविंद महान भविष्यद्रष्टा तथा महान ऋषि थे, जो वर्तमान के गर्भ में भविष्य को देखने की क्षमता रखते थे । अक्तूबर, १९५० में एक दिन उन्होंने मुझे यह याद रखने के लिए कहा—द्वितीय विश्व-युद्ध के परिणामस्वरूप

साम्राज्य अपने परिसमापन की प्रक्रिया से गुजर रहा है और तेजी से अपने अंत की ओर बढ़ रहा है। सारा विश्व स्वतंत्र हो जायेगा, अंतरराष्ट्रीय नेतृत्व का स्थान रिक्त हो जायेगा। जिन आस्थाओं का अस्तित्व ही नहीं रहा उन्हीं पुरानी आस्थाओं के संदर्भ में अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन करते रहने से क्या बनेगा ? हमें अभी तक यह भान नहीं हुआ कि साम्राज्य खत्म हो चुका है और उस के रिक्त स्थान की पूर्ति अभी नहीं हुई, हर शख्स आजाद हो गया है।

उन के इस विश्लेषण से मुझे उस समय की परिस्थिति समझने में बड़ी मदद मिली और आज भी मिल रही है। प्रथम विश्व-युद्ध के समय 'आइडियल ऑव ह्यूमन यूनिटी' में उन्होंने यह कहा था— आज राष्ट्रों के पास सिवा इस के कोई और चारा नहीं है कि वे इकट्ठे हो कर स्थायी चीज स्थापित करें, नहीं तो संपूर्ण मानव सभ्यता, यहाँ तक कि इस पृथ्वी के अस्तित्व को भी खतरा आ पहुँचा है।

तब की कही हुई बात आज के संदर्भ में भी कितनी उपयुक्त और सच है !

---

छठे सिख गुरु हरगोविंदजी ने सर्वप्रथम सिखों का शस्त्रीकरण किया। उन्होंने कहा, "बलिष्ठ शरीर में ही सबल आत्मा का वास होता है। जो व्यक्ति बाहरी शत्रु से नहीं लड़ सकता वह मानसिक विकारों का किस प्रकार दमन कर सकता है ?" दीवान चंदूलाल की शिकायत पर सम्राट जहाँगीर ने गुरुजी को ग्वालियर के किले में कैद कर लिया। बाद में लाहौर के फकीर मियाँ मीर ने जहाँगीर को चेतावनी दी कि दुष्ट दीवान के कहने पर एक सच्चे तपस्वी को बंदी करने का परिणाम उसे राज्य-च्युत हो कर भुगतना पड़ेगा। घबराये जहाँगीर ने फौरन गुरुजी को छोड़ देने का हुक्म दिया। शाही हरकारे परवाना ले कर सलीमगढ़-ग्वालियर किले आये। पर गुरुजी ने कैद से छूटने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, "मैं ने उस कैदखाने में तमाम बेगुनाहों को जुल्म सहते देखा है। साधु सदैव मुक्त होता है। जहाँ मुक्ति है वहाँ बंधन रह ही नहीं सकता। या तो सभी बेगुनाह कैदियों को छोड़ दिया जाये या मुझे भी यहीं रखा जाये।" जहाँगीर को ऐसा ही करना पड़ा। सिख-परंपरा में यह पुण्य-गाथा 'बंदी छोर' के नाम से गायी जाती है।

● डॉ. शिवनन्दन कपूर

# कारा में सरस्वती की धारा

ऊँची-ऊँची काल-कोठरियाँ, कलुषता के काले कारनामों वाले अपराधी साथी, न प्रकृति का रम्य रूप, न सत्य की सुंदर अनुभूति का अवकाश ! किंतु उन्हीं काजल-सी काली कोठरियों की दीवारों के पीछे साहित्यकारों ने वाणी की वंदना की है।

१० मई, १९०७ से ११ नवंबर, १९०७ तक लाला लाजपतराय मांडले (बर्मा) की जेल में रहे। वंदीगृह में वे प्रतिदिन आठ-दस घंटे निरंतर पढ़ते-लिखते रहते थे। यहीं उर्दू में उन्होंने 'रोमांचक ब्रह्मा' लिखी। अपने जीवन से संबंधित डढ़ सौ पृष्ठों का एक उपन्यास भी उन्हों वंदीगृह में ही लिपिबद्ध किया था उस की पांडुलिपि बाद में नष्ट कर दी गयी थी। यहीं 'भगवद्गीता का संदेश' भी लिखा गया जो १९०८ में 'मार्डन रिव्यू' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। बाद में उसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था।

लाला लाजपतराय से कुछ वर्ष बाद लोकमान्य तिलक भी मांडले के उसी कारागृह में रखे गये थे—दो नवंबर, १९१० से ३० मार्च, १९११ तक। इन पांच महीनों के अंतःसंघर्षपूर्ण समय में उन्होंने 'गीता-रहस्य' की सर्जना की। मराठी में लिखी गीता की यह टीका सौ-दो सौ पृष्ठों की नहीं, पूरे नौ सौ पृष्ठों की है। बंदीगृह से मुक्त किये जाने पर भी जेल के अधिकारियों ने उन्हें 'गीता-रहस्य' की पांडुलिपि नहीं ले जाने दी। उन का अनुमान था कि इस में निश्चय ही आपत्तिजनक सामग्री होगी। तिलक इस से किंचित भी कुंठित न हुए। बोले कि पांडुलिपि रख लो, इस से मैं हार मानने वाला नहीं हूँ। पूरी पुस्तक मेरे मस्तिष्क में है। मैं उसे फिर लिख डालूँगा। अंगरेज शासकों ने उस ग्रंथ को मराठी के एक विद्वान को दिखाया। उस के आपत्तिरहित घोषित करने पर ही उन्होंने पुस्तक लौटायी। 'गीता-रहस्य' के अनेक भाषाओं में अनेक संस्करण निकले। आज भी वह गीता की अनूठी टीका मानी जाती है।

वीर सावरकर को कालापानी की सजा मिली। असह्य यातना के उन क्षणों में भी वे अपना स्वप्न न भूले। न तो मनो-रंजन के साधन थे, न पढ़ने-लिखने के ही। कारागार की दीवारों पर कोयले की काली लकीरों से वे मन के भावों को मूर्त्त रूप देते रहे। ग्रंथ की कुछ पंक्तियों को साथियों ने स्मृति रूप में धारण किया, कुछ को सावरकरजी ने मुखाग्र किया। कारागार से निकल कर उन्होंने 'हिंदू-पद-पादशाही' को प्रकाशन का रूप दिया।

१९३२ में स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी को भी कृष्ण-मंदिर की यात्रा करनी पड़ी थी। जेल में ही उन्होंने विक्टर ह्यूगो की कृति 'नाइंटी थ्री' का अनुवाद किया था। वहाँ से निकल कर उन्होंने 'जेल जीवन के अनुभव' शीर्षक लेखमाला लिखी थी। गाँधीजी भी यरवदा जेल में लिखते रहे थे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र-प्रसाद ने भी 'खंडित भारत' की रचना बंदीगृह में ही की थी। बिना सहायक ग्रंथों के विभाजन-संबंधी तथ्यों का उल्लेख सरल न था। उन की अद्भुत स्मरण-शक्ति का परिचय देने वाली 'आत्मकथा' की रचना भी वहीं हुई। चालीस वर्षों की घटनाओं का विवरण बिना पत्रों या दैनंदिनी के देना क्या सरल कार्य था? मौलाना आजाद ने भी अपने दोस्त नवाब सदर यार को जो साहित्यिक पत्र लिखे उन की रस-धारा भी कारा में ही प्रवाहित हुई थी। वे पत्र ही 'गुबारे-खातिर' के रूप में प्रकाशित हुए थे।

नेहरूजी भी जेलों में लिखते रहे। 'विश्व इतिहास की झलक', 'आत्मकथा', तथा 'हिंदुस्तान की कहानी' (डिस्कवरी ऑव इंडिया) तीनों की रचना कारागार में ही हुई थी। 'विश्व इतिहास की झलक' में वे पत्र संग्रहीत हैं जो उन्होंने अपनी पुत्री इंदिराजी को लिखे थे। इन की संख्या १९६ है। पहला पत्र २६ अक्तूबर, १९३० को और अंतिम ९ अगस्त, सन '३३ को लिखा था। प्राचीन और आधुनिक सभी संस्कृतियों की झलक इस में प्रस्तुत है।

'आत्मकथा' उन्होंने १४ फरवरी, '३५ को अलमोड़ा जेल में पूरी की थी। इस में केवल घरेलू झलकियाँ नहीं, स्वतंत्रता-संग्राम की गाथा भी है। 'हिन्दु-स्तान की कहानी' आजादी के लिए उन की अंतिम जेल-यात्रा की देन है। इस के प्रारंभ के दो व्यक्तिगत अध्यायों को छोड़ शेष पुस्तक भारतीय संस्कृति, जीवन-दर्शन और इतिहास के पृष्ठों का उद्घाटन करती है। नेहरूजी ने तीनों ग्रंथ अँगरेजी में लिखे थे।

हिंदी साहित्यकारों में 'अज्ञेय' का उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' तथा कहानी-संग्रह 'कोठरी की बात' उन के जेल-जीवन की अनुभूतियों से ओत-प्रोत है। यशपाल की 'पिंजड़े की उड़ान' और 'वो दुनिया' (१९४८ ई.) इन दोनों संग्रहों की अधि-कांश कहानियाँ बंदी-जीवन में ही लिखी गयी हैं। बंदीगृह में ही यशपालजी ने देश-विदेश के अधिकांश लेखकों की रचनाएं

पढ़ कर ज्ञान-वृद्धि की थी।

तुर्गनेव ने अपनी सब से अधिक प्रसिद्ध कहानी 'मूमू' कारागार में लिखी थी। उस में उस ने अपनी माँ के निर्दय चरित्र को आधार बना कर, एक क्रूर पात्र की कल्पना की थी। बंदीगृह के निर्मम वातावरण में उस कहानी के निर्माण में और सहायता मिली होगी। कार्लाइल ने उस कहानी को संसार की सर्वाधिक करुणा-पूर्ण कहानी बताया था। हिटलर ने अपनी आत्मकथा (मीन काम्फ) 'मेरा संघर्ष' भी जेल में ही लिखी थी।

सर्वेंतीज ने अपना अमर उपन्यास 'डॉन क्विकजोट' सीखचों के पीछे ही लिखा था। किसी भी दुष्कृत्य से न हिचकने वाले फ्रांसीसी कवि विलन की आधी जिंदगी जेलों में गुजरी। कैद में ही उस ने सरस्वती के चरणों में ऐसे सुंदर काव्य-सुमन चढ़ाये जिन की सुगंधि युग-युगांतर तक व्याप्त रही। ओ' हेनरी को भी कहानीकार का रूप कारागार ने ही दिया। ओ' हेनरी का असली नाम सिडनी पोर्टर था। जेल के एक अधिकारी ओरन हेनरी के नाम को उस ने अपना लिया था। फिर संक्षिप्तता के लिए उस ने उसे ओ' हेनरी बना लिया था।

वाल्तेयर (१६९४–१७७८) फ्रांस का विख्यात दार्शनिक था। वह महान पत्रकार, आलोचक और बहुमुखी प्रतिभा वाला था। जासूसी कहानियों का श्रीगणेश उसी ने किया था। लुई चौदहवें की मृत्यु के पश्चात लुई पंद्रहवें ने लेखनी से प्रतिबंध हटाया तो लोग मनमाना लिखने लगे। वाल्तेयर की कलम भी कुछ बहक गयी। उसे सबक सिखाने के लिए अठारह मास की अवधि तक, बैस्टील की जेल में भेज दिया गया। वहीं उस ने 'हेनरायड' महाकाव्य की रचना की। यह बड़ी कविता हेनरी चतुर्थ के संबंध में है। प्रोटेस्टेंट मत का समर्थक होने से इस महाकाव्य को प्रकाशित होने की अनुमति भी नहीं मिली। अंत में वाल्तेयर ने १७२३ में इसे रूएन में प्रकाशित कराया था।

अँगरेजी-साहित्य में बाइबिल सब से अधिक बिकने वाली पुस्तकों में से है। इस के पश्चात 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का स्थान है। युवा और वृद्ध पीढ़ी युग-युगांतर तक इस की रसात्मकता और शैली का आस्वाद लेती रहेगी। इस के लेखक की जीवन-गाथा भी एक तीर्थ-यात्री की प्रगति की गाथा है। इस में इस के रचनाकार जॉन बनयन (१६२८–१६८८) के साहस और श्रद्धा की प्रेरणा-पूर्ण कहानी है। जॉन बनयन ने इसे १६७८ में प्रकाशित कराया था। वह एक धर्म-प्रचारक था। उसे बटमार, जादूगर आदि कहा गया। जॉन का उपदेश देना खतरे से खाली न रहा। किंतु उस ने बाधाओं की चिंता न की। अंत में जान को १२ नवंबर, १६६० को बेडफोर्ड के पास एक गाँव में गिरफ्तार कर लिया गया। उसे तीन

मास के कारावास का दंड दिया गया। अनेक प्रलोभन दिये जाते रहे, पर न तो वह झुका, न उस ने क्षमा ही माँगी। बीच के कुछ अवकाश को छोड़ कर उसे लगातार बारह वर्षों तक बंदीगृह की कठोर शारीरिक और मानसिक यातनाएँ सहने के लिए विवश होना पड़ा। इसी बारह वर्ष के लंबे जेल-जीवन में उस ने 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस'–जैसी महान रचना की सृष्टि की। इस रचना ने उसे अमर बना दिया।

सर वाल्टर रैले (१५५२–१६१८) इंगलैंड के 'वीरता के युग' का एक अद्भुत व्यक्तित्व था। नाविक, सभासद, कवि, इतिहासकार, सैनिक, अन्वेषी सभी का समन्वय उस में था। रानी का प्रिय ही नहीं, वह जनता द्वारा भी प्रशंसित था। इस सिंह-हृदय व्यक्ति ने मृत्यु को एक मुसकान के साथ झेला था। वैभव उस के चरणों में लोटा, किंतु १६०३ में उसे राजद्रोह के अपराध में लंदन के टॉवर में बंद कर दिया गया। पूरे चौदह वर्ष कारावास में उसे बिताने पड़े। कारागृह में ही उस ने अनेक रासायनिक प्रयोग किये। युद्ध-नीति तथा इतिहास संबंधी लेख लिखे। यहीं 'विश्व का इतिहास' शीर्षक बृहत्काय ग्रंथ लिखा गया, जिस ने इतिहास-ग्रंथों में अपना स्थान बना लिया। यह ग्रंथ रैले ने अपने प्रशंसक वेल्स के युवराज हेनरी को समर्पित किया था।

बहुत कुछ ऐसा ही रोमांचकारी जीवन मार्कोपोलो (१२५४–१३२४) [...] था। उस ने संपूर्ण एशिया का [...] कर उन देशों का वर्णन किया [...] उस से पूर्व किसी भी श्वेतांग व्यक्ति [...] न देखा था। अपनी यात्राओं से लौट [...] वह चुपचाप बैठा नहीं रहा। उस ने वे[...] और जेनेवा के युद्ध में एक सेनानायक [...] रूप में भाग लिया। करजोला द्वीप [...] निर्णायक युद्ध हुआ। वेनिस वालों [...] पराजय हुई। मार्कोपोलो बंदी बना लि[या] गया। बंदी-जीवन में ही उस की भेंट पी[सा] के रस्टीशियानो नामक साहित्यिक व्यक्ति से हुई। उसे अपनी यात्राओं की गा[था] सुनाते हुए मार्कोपोलो ने अपना का[...]

## मुस्तफ़ा

वास-जीवन सुखद बनाया । इस प्रकार बंदीगृह में ही उस का अद्भुत यात्रा-वृत्तांत लिखा गया।

दाँते (१२६५–१३२१) ने जीवन-भर संघर्ष किया। उसे अपमानित ही नहीं होना पड़ा, देश-निकाले का दंड भी भुगतना पड़ा। उसी दंड की अवधि में उस ने नूतन सौंदर्य वाले महाकाव्य की सर्जना की थी। आस्कर वाइल्ड ने भी जेल में पर्याप्त मात्रा में लिखा था।

१८वीं शती में चीनी कवि ताङ हुई को भी एक बार एक तहखाने में कैद कर दिया गया था। न कोई साथी, न मनोरंजन के साधन। निराश कवि क्या करे? कविताएँ भी लिखे तो किसे सुनाये ? बिना सुनाये कवि को आत्म-तृप्ति जो नहीं होती! सहसा उस की दृष्टि दीवार पर खामोशी से चिपके मकड़े पर पड़ी। उसे लगा जैसे वह मकड़ा उस की ही ओर देख रहा है। 'मेरे प्यारे दोस्त'—उस के मुख से निकला। फिर क्या था, काव्य-धारा बह चली! उसी 'मकड़े दोस्त' को सुनाते-सुनाते ताङ हुई ने चार महाकाव्य लिख डाले।

भावनाओं की उद्दाम धारा शिलाओं को भी शीर्ण कर बहती है, चाहे वे कारा की दीवारें हों या जीवन के शत-शत संघर्ष !

**(३८७ टपाल चाल, खँडवा, म. प्र.)**
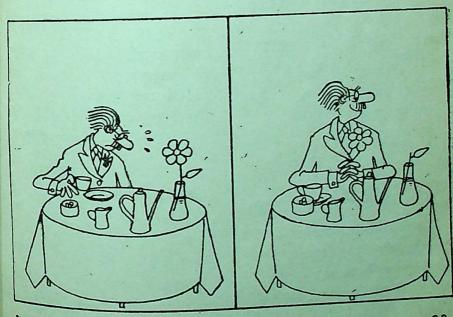
## ज़िंदा मुरदे

अजीब पीढ़ी है
न ईमानदारी से जीती है
न बहादुरी से मरती है
बस
अमरता की फिक्र में
सूख-सूख झरती है

—दिनकर सोनवलकर

## फैशन

यदि अंग-प्रदर्शन ही फैशन है
तो हम बड़े अभागे हैं
जानवर इस दौड़ में
हम से बहुत आगे हैं

—कैलाशचन्द्र केशरे

## ३१ दिसंबर की शाम

न दुआ, न सलाम
खूँटी पर से कलेंडर
उतार कर ले गयी शाम

—उमाचरण

## अस्तित्ववादी

आस्था मूलक परंपराओं को
तोड़ने के प्रयास में
मैं स्वयं ही टूटता रहा
अस्तित्ववाद की खरल में
मैं अपने ही अस्तित्व को
कूटता रहा

—कृष्णेश्वर डींगर

## गांधीवाद

जो चल रहा है
वह गाँधीवाद नहीं है
इसीलिए
गाँधीवाद अभी मरा नहीं है

—डॉ बी. एन. सिंह

## अपनी छाप

अफसर हो गये
एक उपन्यासकार
पृष्ठों में चलने लगा
पंक्तियों का पत्र-व्यवहार

—सत्यस्वरूप दत्त

## पछतावा

हम कभी
कुछ नहीं करते
ताकि
अपने किये पर
पछताना न पड़े

—सुधीर टंडन

दिल्ली के बादशाह गयासुद्दीन को धनुर्विद्या का शौक था। एक बार उस का बाण अकस्मात एक लड़के को लगा। लड़का मर गया। लड़के की माँ ने काजी के सामने न्याय चाहा। काजी ने सामान्य नागरिक की तरह बादशाह को अपराधी के कठघरे में खड़ा होने को कहा। बादशाह ने अपराध स्वीकार किया। लड़के की माता से क्षमायाचना की, उसे काफी रुपये दिये। इस के बाद बादशाह को मुक्त कर दिया गया।

बादशाह ने तलवार निकाल कर काजी से कहा, "तुम ने अपने पद की शान बढ़ायी है और उपयुक्त न्याय किया है। अतः मैं खुश हूँ। यदि तुम न्याय करने में चूक गये होते तो मैं इस तलवार का प्रहार तुम पर करने वाला था।"

काजी ने अपना चाबुक दिखाते हुए कहा, "यदि आप ने अपना अपराध स्वीकार न किया होता तो आप पर इस चाबुक की मार पड़ती। खुदा की दुआ से आज हम दोनों ही अपनी कसौटी पर सच्चे साबित हुए हैं।"

नौजवान विलियम कॉलगेट अपना भाग्य आजमाने के लिए एक पोटली उठाये चला जा रहा है। राही पूछते हैं, "कहाँ जा रहा है?" वह उत्तर देता है, "भगवान जाने, पिताजी ने कहा है, अपनी रोजी अपने आप कमा।"

स्टीमर के एक अधिकारी ने कहा, "नौजवान, पहला कदम सँभाल कर रखना। बस, फिर तेरा बेड़ा पार।"

कॉलगेट अपने घर में साबुन बनाने की विधि सीख चुका था। स्टीमर के अधिकारी ने प्रभु-प्रार्थना के बाद कॉलगेट से कहा, "न्यूयॉर्क में साबुन बनाने वालों में कोई न कोई अग्रणी होने वाला है। शायद तू ही हो जाये। सच्चाई से रहना। एक डॉलर मिलने पर उस का एक हिस्सा भगवान के नाम पर निकालते रहना। शुद्ध साबुन बनाना। माप-तोल में ईमानदारी रखना। तू सुखी और समृद्ध होगा।"

पहला डॉलर कमाते ही उस का दसवाँ हिस्सा कॉलगेट ने भगवान के नाम पर दान कर दिया। ज्यों-ज्यों कमाई बढ़ती
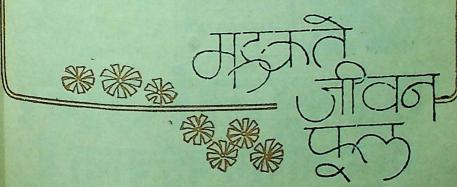
**गयी,** त्यों-त्यों दसवाँ हिस्सा नियमित दान-पुण्य में खर्च करता रहा। बच्चों को भी यही तालीम दी। उस की कमाई लाखों तक बढ़ती गयी और कमाई का दशांश नियमित रूप से दान में जाता रहा।

स्कॉटलैंड का एक ग्वाल बालक सवेरा होते ही अपनी भेड़-बकरियों के साथ निकला। एक टीले पर पहुँच कर उस ने देखा कि एक पुल का बीच का खंभा टूट गया है। रेलगाड़ी आने का समय हो रहा था। यदि समय पर खबर न दी गयी तो गाड़ी नदी में गिर जायेगी! साहस कर ग्वाल बालक रेल की पटरियों पर खड़ा हो गया। सामने से इंजन की आवाज सुनायी दे रही है। बालक गाड़ी को रु-वाने के लिए अनेक इशारे कर रहा है, पर इंजन तेजी से आगे ही बढ़ा चला आ रहा और बालक हाथ फैला कर पटरियों के बीच में खड़ा है। इंजन पास आते ही बालक उस पर कूद पड़ा। ड्राइवर ने तुरंत ही ब्रेक लगाया। ट्रेन खड़ी हो गयी। ट्रेन रुकने पर यात्रीगण उतर कर इंजन के पास जमा होने लगे। ड्राइवर ने कहा, "हम सब मृत्यु के मुख में जाने वाले थे। आओ, तुम्हें बताऊँ किस ने हमें बचा लिया।"

थोड़ी दूर पर ही वीर तरुण का छिन्न-भिन्न शरीर पड़ा हुआ था। सभी ने उस अनजान के प्रति अपना सिर झुकाया।

**—शंकरदेव विद्यालंकार**

---

**स्वामी विवेकानंद** विदेशों में अपनी कीर्तिध्वजा फहरा कर कलकत्ता लौट आये थे और बेलूर में 'श्री रामकृष्ण परमहंस मठ' स्थापित करने के प्रयास में जी-जान से लगे हुए थे। मठ-निर्माण के लिए अर्थसंग्रह किया जा रहा था। भूमि खरीद ली गयी थी। ठीक उसी समय कलकत्ता में प्लेग की महामारी फैल गयी। प्रतिदिन हजारों लोग मृत्यु का ग्रास बनने लगे। स्वामीजी ने तत्काल मठ-निर्माण योजना स्थगित कर दी और सारी पूँजी ले कर रोगियों की सेवा में लग गये।

उन के एक सहयोगी ने पूछा, "रुपये खर्च हो जाने पर मठ-निर्माण कैसे होगा ?"

स्वामीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "मानव-सेवा से बढ़ कर और कुछ भी नहीं। यदि आवश्यकता हुई तो मठ की भूमि भी बेच दूंगा, पर मौत से जूझते रोगियों की सेवा में बाधा न आने दूँगा। मानव-सेवा सब से बड़ा कार्य है।"

**महर्षि कर्वे** का बाल्यकाल अत्यधिक निर्धनता में बीता। ग्राम-पाठशाला से शिक्षा समाप्त कर उन्हें छठवीं कक्षा की परीक्षा देने सतारा जाना था। उन के गाँव से सतारा की दूरी एक सौ दस मील थी। पिता ने बहुत रोका। मार्ग की बीहड़ता का चित्र उपस्थित किया, पर किशोर वय के कर्वे ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "पिता-जी, आप की सारी बातें मान सकता हूँ, पर सतारा जा कर परीक्षा अवश्य दूँगा। मेरा रुकना असंभव है। संकटों को झेल कर भी विद्या प्राप्त कर सकूँ तो अपने को भाग्यशाली समझूँगा।"

और सचमुच कर्वे ने एक सौ दस मील के दुर्गम मार्ग को पैदल ही तय कर लिया। कर्म के प्रति इसी दृढ़ आस्था ने महर्षि को महान समाजसेवी बना दिया।

**स्वामी** दयानंद सरस्वती नागपुर में धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध जोरदार भाषण कर रहे थे। उन के भाषण से क्रुद्ध हो कर कुछ रूढ़िग्रस्त व्यक्तियों ने उन्हें पीटने की योजना बना डाली। एक गुंडे लठैत को स्वामीजी के पास भेजा गया। गुंडे ने कहा, "तुम हमारे धार्मिक विश्वासों का खंडन करके भगवान का अपमान करते हो। बोलो, मैं तुम्हारे किस अंग पर पहले प्रहार करूँ ?"

स्वामीजी ने मुसकरा कर उत्तर दिया, "मेरा मस्तिष्क ही मुझे प्रत्येक कार्य करने की प्रेरणा देता है। अतः आप मेरे सिर पर ही पहले प्रहार करें।" उन की सहनशीलता देख वह गुंडा दंग रह गया। वह तत्क्षण उन के चरणों पर गिर पड़ा। बोला, "मुझे क्षमा कीजिये। मैं ने आप को ठीक से पहचाना नहीं था।" बाद में वह स्वामीजी का भक्त बन गया।

—नरेन्द्र शास्त्री ●

**धरती के वायुमंडल का वजन पाँच अरब टन है।**

(८ दिसंबर को १५७ वीं जयंती पर)

## नाना साहब पेशवा

# अंतिम दिन प्रथम प्रकाश

● कैप्टन शूरवीरसिंह पँवार
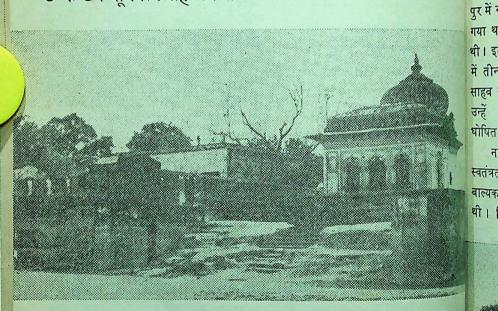
ब्रिटिश सैनिकों द्वारा ध्वस्त बिठूर का घाट

सन १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के महान सेनानी नाना साहब पेशवा के अंतिम दिनों के विषय में इतिहासकारों की अलग-अलग धारणाएँ हैं। अँगरेज इतिहासकारों ने लिखा है कि नाना साहब अँगरेजों द्वारा पकड़े गये थे और उन्हें फाँसी की सजा मिली थी, परन्तु दूसरे इतिहासकार यह नहीं मानते

उन का कहना है कि वे भाग कर नेपाल चले गये थे। इस संबंध में मुझे भी कुछ खोज करने का अवसर मिला है।

पेशवा बाजीराव द्वितीय के एक सगोत्र बंधु माधो-नारायण राव के पुत्र थे नाना साहब धोंदू पंत। सन १८१८ के युद्ध में अँगरेजों से पराजित हो कर बाजीराव को आठ लाख रुपये वार्षिक पेंशन दे कर कान-पुर में रहने के लिए विवश किया गया था। उन की कोई संतान न थी। इसलिए उन्होंने सन १८२७ में तीन वर्ष के बालक नाना साहब को गोद लिया था और उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था।

नाना साहब के हृदय में स्वतंत्रता की पवित्र आकांक्षा बाल्यकाल में ही उत्पन्न हो गयी थी। फिरंगियों ने जिस प्रकार
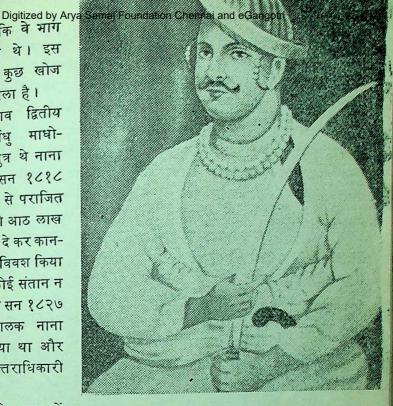
नाना साहब पेशवा

नाना साहब के बिठूर स्थित महल के खँडहर
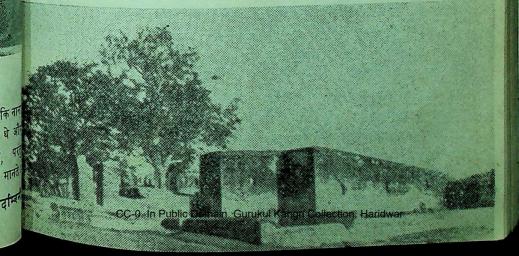
पेशवा के विरुद्ध व्यवहार किया था, उस का बदला लेने की भावना भी जाग्रत हुई। बाजीराव द्वितीय की सन १८५१ में मृत्यु होने पर नाना साहब धोंदू पंत ने अपने को पेशवा घोषित कर दिया परंतु तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने बाजीराव द्वितीय की पेंशन नाना साहब को देनी बंद कर दी।

तब १८५६ के अंतिम महीनों में नाना साहब ने उत्तरी भारत की तीर्थ-यात्रा की, जिस में उन्होंने बहुत से प्रभाव-शाली देशभक्तों से भेंट की। उन के साथ इस यात्रा में उन के भतीजे राव साहब एवं विश्वसनीय साथी तांत्या टोपे भी थे। इसी यात्रा के दौरान स्वतंत्रता-संग्राम की योजना तैयार हुई थी। नाना साहब उस समय चौंतीस वर्ष के थे।

भारत में स्वतंत्रता-संग्राम की चिन-गारी मेरठ में २९ मार्च, १८५७ को प्रज्वलित हुई थी और १० मई को क्रांति का बिगुल बज उठा था। ५ जून, १८५७ को नाना साहब को कानपुर स्थित सेना ने अँगरेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता-संग्राम का नेता घोषित किया था। ६ जून से २६ जून तक नाना साहब ने वहाँ अँग-रेजों पर अपना आक्रमण जारी रखा, जिस के फलस्वरूप २६ जून को जनरल ह्वीलर ने आत्मसमर्पण कर दिया था।

२७ जून को सतीचौरा घाट कांड हुआ और इस के तीन दिन बाद बिठूर में बड़ी धूमधाम के साथ नाना साहब का पेशवा की गद्दी पर राज्याभिषेक किया ग[या]। तभी अँगरेजों की विशाल सेना सेना[पति] हॉवेल के नेतृत्व में कानपुर को परा[जित] करने के लिए बढ़ी। नाना साहब ने का[न]पुर से चार मील आगे बढ़ कर बह[...] नामक स्थान पर उस के विरुद्ध जम [कर] मोर्चा लिया। दुर्भाग्य से इस युद्ध में [उन] की पराजय हुई। नाना साहब रणस्[थल] से अपने कुछ घुड़सवारों के साथ [...] बिठूर गये और शीघ्र ही १९ जुलाई [को] अपने परिवार तथा कुछ विश्वस्त साथि[यों] को ले कर गंगा पार किसी अज्ञात स्[थान] की ओर चल पड़े थे।

अँगरेजों ने उन्हें ढूँढ़ने के अनेक प्र[यत्न] किये परंतु नाना साहब का कहीं पता [न] पा सके। हेनरी स्मिथ विलियम द्वा[रा] संपादित पुस्तक 'हिस्टोरियंस हिस्[ट्री] ऑव द वर्ल्ड' के भाग २२, पृष्ठ १[...] में लिखा है कि बिठूर से १९ जुलाई [को] भागने के पश्चात नाना साहब नेपाल [की] तराई की ओर कहीं चले गये थे और [उन] का फिर कहीं कोई पता न चला। प[रंतु] अन्य ऐतिहासिक सामग्री के अध्ययन [से] विदित होता है कि वे फतेहपुर जिले [में] अपने अनुयायी वीर सेनानी अ[मर] शहीद ठाकुर जोधासिंह के गाँव रसूल[पुर] (तहसील खजुहा) में आ कर रहे [थे]।

१९५४ में जब मैं फतेहपुर जिले [का] जिला नियोजन अधिकारी था, मुझे अ[मर] शहीद जोधासिंह के ग्राम रसूलपुर में [...] विशाल भूधरे (तहखाने) का पता च[ला]

जहाँ अज्ञातवास में नाना साहब तांत्या टोपे से संपर्क कर स्वतंत्रता-संग्राम का संचालन करते थे। यह सुदृढ़ तहखाना स्वर्गीय ठाकुर जोधासिंह के मकान के आँगन के नीचे पुरानी ईंटों का बना है। इस की पक्की मेहराब अब भी अच्छी दशा में मौजूद है। मैं ने इस भूधरे के चित्र ले कर समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराये थे। इस ग्राम में एक पुराना शिव मंदिर भी है जिस में मराठा-शिल्पकला की स्पष्ट झलक है। यह बात सर्वविदित है कि पेशवा शिवभक्त थे।

नाना साहब के अनुयायी जोधासिंह धोखे से गिरफ्तार किये गये थे। बिंदकी नगर जाने वाले मार्ग पर १५ अप्रैल, १८५८ को एक पेड़ पर लटका कर उन्हें फाँसी लगायी गयी थी। अमर शहीद के खून से सींचे हुए इस पवित्र वृक्ष पर अब सन १९५५ में एक चबूतरा बनाया गया है जिस के पास हर वर्ष शहीदमेला लगता है।

इसी प्रकार नाना साहब के एक दूसरे वीर अनुयायी राव रामबख्शसिंह (बैसवाड़ा के प्रसिद्ध जमींदार) को भी धोखे से पकड़ कर अँगरेजों ने २८ दिसंबर, १८५९ को उन्नाव जिले के बक्सर स्थान पर वृक्ष पर लटका कर फाँसी दी थी। इस अमर शहीद के बलिदान की शताब्दी के पुण्य-पर्व पर उस वृक्ष के चबूतरे का निर्माण करा कर श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए विशाल समारोह के आयोजन का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तब मैं उन्नाव जिले में अतिरिक्त जिलाधीश था।

अवध होते हुए २५ मार्च, १८५८ को नाना साहब बरेली पहुँचे थे। बरेली उन दिनों विद्रोही नेताओं का गढ़ था। जब ७ मई, १८५८ को अँगरेजों ने बरेली पर कब्जा किया तो विद्रोही वहाँ से इधर-उधर भागे थे।

परंतु नाना साहब तब भी बड़े उत्साह एवं धैर्य से स्वतंत्रता-संग्राम का संचालन करते रहे। १ सितंबर, १८५८ को उन्होंने दक्षिण भारत के निवासियों के नाम एक फरमान जारी किया था, जिस में अँगरेजों के विरुद्ध हथियार उठाने का आह्वान किया गया था। इस फरमान की प्रतिलिपि आज भी राष्ट्रीय रिकार्डों में सुरक्षित है।

कहा जाता है कि जनवरी, १८५९ में जनरल होप ग्रांट की सेना से नाना साहब ने मोर्चा लिया था, परंतु अँगरेजों का पलड़ा भारी होने से नाना साहब को जनवरी, १८५९ से अक्तूबर, १८५९ तक तराई के घने जंगलों में छिप कर स्वतंत्रता-संग्राम का संचालन करना पड़ा था। २० अप्रैल, १८५९ को महारानी विक्टोरिया के नाम नाना साहब ने इश्तिहार-नामा लिख कर भेजा था जिस का उत्तर उन्हें मेजर रिचर्डसन के द्वारा मिला था। २५ अप्रैल, १८५९ को उन्होंने रिचर्डसन की चिट्ठी का जवाब भेजा था।

इस के बाद सितंबर तथा नवंबर, १८५९ में नाना साहब की मृत्यु की अफवाहें स्वयं नाना साहब की ओर से फैलायी

## साँपों की बस्ती में

ऐसे भी होते हैं लोग
गीत गाते हैं
सापों की बस्ती में

सिरफिरे सपेरे हैं
बीन लिये फिरते हैं
एक-एक बाँबी में
हाथ दिया करते हैं

ऐसे भी होते हैं गाँव
जिया करते हैं
शहरों की मस्ती में

आदत से अक्खड़ हैं
बहुत ही घुमक्कड़ हैं
बातों में मुँहफट हैं
पूरे ही फक्कड़ हैं

ऐसे भी होते मल्लाह
हँसा करते हैं
ज्वार चढ़ी किश्ती में

—विश्वेश्वर शर्मा
(श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चौहट्टा,
उदयपुर)

गयीं। नेपाल राज्य द्वारा भी अँगरेजों [illegible] पास इसी प्रकार से नाना साहब की मृ[illegible] के विषय में दो बार गलत खबरें मनग[illegible] किस्सों के साथ भेजी गयी थीं। अँग[illegible] ने स्वभावत: इन पर विश्वास नहीं कि[illegible] सितंबर, १८६० में नेपाल के रेजि[illegible] कर्नल रैम्वे ने ब्रिटिश सरकार को [illegible] गये पत्र में लिखा था कि नाना सा[illegible] की मृत्यु का समाचार अविश्वसनीय है।

वास्तव में सितंबर से नवंबर, १८[illegible] के मध्य किसी समय नाना साहब अ[illegible] परिवार को नेपाल में छोड़ कर हल्[illegible] के रास्ते तत्कालीन स्वतंत्र राज्य टिह[illegible] गढ़वाल में उत्तरकाशी की ओर चल [illegible] थे। वे धार्मिक थे और परंपरानुसार शि[illegible] भक्त भी। इसलिए उन्होंने सीधे पर्व[illegible] में जा कर भक्तवत्सल विश्वनाथ की नगर[illegible] उत्तरकाशी की राह ली थी। गढ़वाल की [illegible] पहले भी यात्रा कर चुके थे, अत: इस भूभा[illegible] से परिचित थे। सुरक्षा की दृष्टि से भी य[illegible] स्थान उन के लिए उपयुक्त था। यह इति[illegible] हास-प्रसिद्ध है कि मुगल साम्राज्य के यु[illegible] राज शिकोह के पुत्र सुलेमान शिकोह [illegible] भी गढ़वाल राज्य में ही १६५७ में शर[illegible] ली थी।

पता चलता है कि उत्तरकाशी जा[illegible] हुए नाना साहब कुछ समय तक एक गुफ[illegible] में रहे थे। वह स्थान उत्तरकाशी से टिह[illegible] जाने वाले मोटर-मार्ग पर उत्तरकाशी [illegible] ९ मील दूर स्थित है। उस गुफा को आ[illegible] भी 'धोंदू का उढ़ार' नाम से संबोधित कि[illegible]

जाता है। उस जगह को शिव का पुण्य-स्थान भी माना जाता है। गढ़वाल में उस समय प्रथा थी कि शिव मंदिर स्थापित करने वाले व्यक्ति का नाम भी मंदिर के साथ जोड़ा जाता था। इसलिए उस स्थान को धोंदेश्वर भी कहते हैं।

उत्तरकाशी में नाना साहब धोंदू पंत कुछ काल तक अवश्य रहे थे। वहाँ उन्होंने मरहठा-शिल्पकला का एक सुदृढ़ सुंदर भवन भी अपने निवास के लिए केदारघाट के पास बनवाया था। उस भवन की वास्तुकला ठीक उसी प्रकार की है जैसी बिठूर में पेशवा के उस भवन की जिसे बाजीराव द्वितीय ने सूबेदार रामचंद्र राव को बाद में दे दिया था और जो रामचंद्र राव के वंशजों के पास आज भी जर्जर स्थिति में विद्यमान है। उत्तरकाशी का भवन उसी का प्रतिरूप है। उसी भवन की भाँति उत्तरकाशी वाले भवन का मुँह भी उत्तर की ओर है और गंगा उस के पूर्व में बहती है। उत्तरकाशी वाले भवन के भी दो आँगन हैं और वह भी दोमंजिला है। उस के कमरे की दीवारों में भी कई स्थानों पर अंदर से गुप्त कोठरियाँ बनी हैं। नाना साहब के पश्चात उस में राज्य के न्यायाधीश का न्यायालय रहा था। सर-कारी कर्मचारी तहसीलदार, कानूनगो आदि भी उस में रहते थे। उन में से कुछ कर्मचारी, जो अभी तक जीवित हैं, इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उस भवन की दीवारें कई स्थानों पर भीतर से खोखली थीं और रहस्यमय द्वार एवं गुप्त कोठरियाँ, तहखाने आदि उन के अंदर थे, जो बाद में रियासत के कर्मचारियों द्वारा बंद किये गये थे। वह भवन आज भी 'नाना पेशवा का बाड़ा' नाम से ही प्रसिद्ध है।

यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कुछ समय पश्चात नाना साहब धोंदू पंत के उत्तरकाशी निवास की खबर अँगरेजों को लग गयी थी। महाराजा सुदर्शन शाह की मृत्यु के पश्चात १८६० से टिहरी-गढ़वाल राज्य पर अँगरेजों का विशेष प्रभाव हो गया था। अँगरेजों ने नाना साहब को गिरफ्तार करने के लिए सैनिक भेजे, जिस का पता नाना साहब को चल गया था अतः वे उत्तरकाशी छोड़ कर बाहर कहीं जाने के लिए विवश हो गये थे। वहीं धनारी ग्राम के कुछ लोगों ने, जो उन के साथ रहते थे, नाना साहब को रवाई के रास्ते यमुना घाटी की तरफ से बाहर निकल भागने में सहायता की थी। कहा जाता है कि नाना साहब ने एक चिट्ठी धनारी के ठाकुर केशरसिंह रौतेला के नाम लिखी थी कि उत्तरकाशी वाला भवन उन्होंने केशरसिंहजी को बेच दिया है। इतिहास के अन्वेषकों से निवेदन है कि इस ऐति-हासिक घटना की ओर विशेष ध्यान देने की कृपा करें तथा उत्तरकाशी के इस पुनीत भवन को राष्ट्रीय स्मारक बनवाने के लिए आवश्यक कदम उठायें।

# भारत हारा क्यों

यूरोपीय देशों के अथक प्रयासों के बावजूद बारसीलोना विश्व कप हॉकी में भारत-पाकिस्तान का मुकाबला हुआ और अंततः विश्व कप एशिया में ही रहा।

गत दशक में हॉकी खेलने की शैली में बुनियादी परिवर्तन हुए हैं। भारत की, जो १९२८ से १९६० तक ओलंपिक चैंपियन रहा था, हॉकी खेलने की एक विशिष्ट शैली है। विभाजन के बाद पाकिस्तान की टीम ने भी स्वभावतः उसे ही अपनाया। उधर अफ्रीकी चैंपियन केन्या की टीम को भी, जिस में प्रायः नौ-दस सिख खिलाड़ी रहते हैं, भारतीय विशेषज्ञों ने प्रशिक्षित किया है। अतः उन के खेल में भी उसी शैली का पुट है। दूसरी ओर यूरोपीय, आस्ट्रेलियाई तथा दक्षिण अमरीकी टीमें अपनी शक्ति को आधार बना कर, अलग ढंग से व्यूहरचना करके खेलती हैं। पिछले वर्षों में इन राष्ट्रों को कतिपय सफलताएँ भी मिली हैं। इसी कारण कई टीमें विश्व-चैंपियन के सशक्त दावेदार के रूप में बारसीलोना (स्पेन) शहर से कुछ ही किलोमीटर दूर तेरेसा के पोलो मैदान पर पहुँची थीं।

इस पहले विश्व हॉकी मेले में, [illegible] में दुनिया की दस चुनी हुई टीमों ने [illegible] लिया, इन्हीं दो शैलियों का टकराव [illegible] भारतीय शैली की हार का अर्थ [illegible] चालीस वर्षों की परंपरा की समाप्ति [illegible] एशियाई महाद्वीप से हॉकी के गौरव [illegible] अंत। दोनों शैलियों में मौलिक अं[illegible] दृष्टिकोण का है। यूरोपीय राष्ट्र अ[illegible] खेलों की भाँति हॉकी को भी शारी[illegible] शक्ति की चेरी मानते हैं। पूरे ७० मि[illegible] आक्रमण का रुझान रखो। लंबे-लंबे [illegible] दो तथा भाग चलो। इस आक्रामक [illegible] से विपक्षी टीम पर मनोवैज्ञानिक [illegible] छा जाता है। शक्ति का अभाव उन[illegible] डर को और गहरा करता है। निरं[illegible] आक्रमण के कारण विपक्षी प्रायः र[illegible] पर उतर आते हैं। इस से खेल लगा[illegible] उन्हीं के गोल के निकट होता र[illegible] है। हर समय गोल खाने का डर अ[illegible] अच्छे खिलाड़ियों का मनोबल पर[illegible]

# पाकिस्तान जीता क्यों ?

• ओमप्रकाश

कर देता है। गोलची भी हाड़-मांस का ही इनसान होता है। किसी भी क्षण आक्रामक खिलाड़ी से भिड़ंत की आशंका बनी रहती है। भूल होने पर पेनल्टी कार्नर महीनों की तैयारी को क्षणों में मटियामेट कर देता है। उन की अग्रपंक्ति (फारवर्ड) तो ऐसे मौकों की तलाश में रहती ही है। टीम में एकाध अचूक निशानेबाज इसी उद्देश्य के लिए रखे जाते हैं।

इस के विपरीत भारतीय शैली के अंतर्गत छोटे-छोटे पासों, गेंद पर अद्भुत नियंत्रण तथा रक्षण और आक्रमण को संतुलित महत्त्व दिया जाता है। अच्छे खेल के बावजूद उपर्युक्त कारणों से

गद किस की : जीत किस की
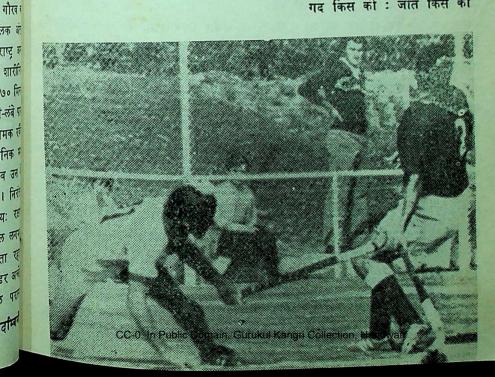
हमें हार का मुँह देखना पड़ा। इधर हमारी आक्रामक पंक्ति में अनुभव के अभाव के कारण दरार पड़ गयी थी। मैदान भर में तो हावी रहते थे. लेकिन गोल के नजदीक पहुँचते ही बौखला जाते थे। नतीजा होता था कि गेंद दायें-बायें निकल जाती थी।

इसी पृष्ठभूमि में दोनों पक्ष १५ अक्तूबर को मैदान में उतरे। दस टीमों को दो वर्गों में बाँटा गया था। पहले वर्गों में ही लीग-आधार पर मैच होने थे। भारत के वर्ग में अर्जेंटाइना, फ्रांस, केन्या तथा पश्चिमी जरमनी थे। भारत ने इन चारों को लगातार हरा कर अपने वर्ग में शीर्ष-स्थान प्राप्त किया। एक नियमित सेंटर-फारवर्ड तथा अनुभव-हीन दायें पक्ष के कारण प्रत्येक टीम के विरुद्ध गोलों की संख्या भले ही एक-दो तक सीमित रही, लेकिन माइकेल किंडु और कृष्णमूर्ति के नायाब रक्षण, अजित पाल के बहुपक्षीय और सही अर्थों में कप्तानी खेल ने यह कमी नहीं खलने दी। इसी संदर्भ में हमारे पहरेदार सैड्रिक परेरा के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता जिस ने एक बार भी मात नहीं खायी।

लेकिन वर्ग 'बी' में पाकिस्तान के साथ बड़ी बुरी गुजरी। शुरू में आस्ट्रेलिया तथा जापान को तो उन्होंने ५–२ तथा १–० से पछाड़ दिया, लेकिन बाद में न केवल हालैंड ने उन्हें ३–३ से बराबरी पर रहने के लिए विवश कर दिया अपितु स्पेन ने तो ओलंपिक तथा एशियाई चैं... यन को ३–२ से हरा कर प्रतियोगिता से उस की वापसी का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस हार का मुख्य कारण उस की 'यूरो... की तेजी' के आगे समर्पण था। जापान जो कि प्रारंभिक दिनों में पिटा-पिटा नजर आ रहा था, अंतिम मैचों में रंग लाया और और हालैंड को, जो सेमीफाइनल में पहुँचने के लिए जी-तोड़ कोशिश कर रहा था, हरा कर पाक तथा स्पेन को वर्ग 'बी' से 'वाकआउट' मुकाबले के लिए सेमीफाइनल में पहुँच गया।

इसी प्रगार वर्ग 'ए' में केन्या ने पश्चिम जरमनी-जैसे प्रत्याशित विजेता को झटका दिया और भारत के अपने वर्ग में दूसरे नंबर पर रहा।

इन परिणामों से स्पष्ट है कि संभावित विजेताओं की इस टूर्नामेंट में बड़ी मिट्टी खराब हुई। ओलंपिक रजत विजेता, हालैंड, पश्चिम जरमनी तथा फ्रांस को जिस आसानी से बाहर कर दिया गया उस से यूरोपीय शैली की हॉकी को बड़ी ठेस पहुँची। अंततः प्रत्याशित विजेता अपने-अपने दावों की समाप्ति पर भारत-पाक सेमीफाइनल मुकाबले के मूक दर्शक तक सीमित रह गये। केवल स्पेन केन्या से दूसरे सेमीफाइनल में भिड़ने का अधिकार प्राप्त कर सका और उस ने केन्या को १–० से हरा भी दिया।

भारत और पाकिस्तान की टक्कर का आरंभ तथा अंत बड़ा ही सनसनीखेज

रहा। वर्गीय सफलताओं में भारत आत्म-विश्वास से लबालब था और पाकिस्तान हीन-भावना से ग्रस्त। पहले ३५ मिनटों में भारत हावी रहा। उस ने हमले भी तगड़े बोले और फल भी प्राप्त किया। १-० की लीड से जब टीम अवकाश के उपरांत खेलने उतरी तो पाकिस्तानी खेमे में खलबली थी। पर भारतीय टीम ने अपना दबाव बिलकुल ढीला कर दिया। भारत को रक्षण पर उतरता देख पाकिस्तान के फारवर्ड चढ़ कर खेले। उन्होंने गोल उतार कर भारत की तरह आरंभ नहीं किया बल्कि बढ़त लेने के बावजूद आक्रमण जारी रखे।

इस के बाद तो खानापूरी ही शेष थी जो पाकिस्तान ने स्पेन को १-० से हरा कर तथा भारत ने केन्या को २-१ से हरा कर पूरी की। स्पेन ने फाइनल में पाक को डट कर टक्कर दी, लेकिन इस का कारण पाक के पेनल्टी कार्नर विशेषज्ञ तनवीर दर की अनुपस्थिति थी। दर ने पूरे टूर्नामेंट में पाक टीम द्वारा किये गये १४ गोलों में से ८ (सभी पेनल्टी शाट) गोल किये।

भारत ने अपेक्षाकृत एक युवा टीम उतारी थी। प्रयोग नितांत असफल नहीं रहा। लेकिन प्रयोगों की सीमा होती है। विश्व कप उस के लिए कतई उपयुक्त नहीं। विशेष रूप से अग्रपंक्ति में नौसिखियों की भरती भारत को महँगी पड़ी। १९५८ के एशियाई खेलों से चली आ रही गिरावट पर अब हमें रोक लगानी ही होगी। यह उपयुक्त समय है कि भारतीय हॉकी के भाग्य-निर्माता आपसी छीना-झपटी से बाज आयें। देश में कुशल खिलाड़ियों की कमी नहीं। मेक्सिको ओलंपिक के लिए चयन की प्रक्रिया अभी शुरू हो जानी चाहिए। टीम की घोषणा दो महीने पूर्व हो जानी चाहिए ताकि सदस्यों में आपसी तालमेल बैठाया जा सके। एक स्थान के लिए या कम-से-कम दो स्थानों के लिए तीन खिलाड़ी तैयार करने होंगे। फारवर्डों को गोलों का भूखा होना चाहिए। गोल किये बिना जीत संभव नहीं। एक गोल की जीत का कोई अर्थ नहीं। पेनल्टी कार्नर तथा पुश तुरप का पत्ता है। अवसर मिलने पर इस का सफल उपयोग अनिवार्य है।

हॉकी टीम-भावना से प्रेरित खेल है।

म्युनिख को जाने वाला मार्ग दुरूह अवश्य है। पर दुःसाध्य नहीं। जरूरत है कड़ी मेहनत और दृढ़ निश्चय की।

**(४९ ए, कमलानगर, दिल्ली-७)**

---

**विवाह से पूर्व वे नास्तिक थे और उन्हें नरक में विश्वास नहीं था, पर विवाह के बाद उन की पत्नी ने यह सिद्ध कर दिया है कि उन की धारणा गलत थी।**

शृंगार एक भित्ति-चित्र (१८५० ई०)

# पहाड़ी चित्रकला
# मंडी क़लम

मुगलिया कला-वैभव का जब अवसान हो रहा था उस समय पहाड़ी लोक-कला एवं संस्कृति विकास की ओर उन्मुख थी। गुलेर-काँगड़ा कलम की महक अन्य पहाड़ी घाटियों में फैली हुई थी। काँगड़ा के चितेरे पहाड़ी **रियासतों की सैर** करते रहे, उन्होंने लोक-**कला के आधार** को पुष्ट किया और इसी **के सहारे प्रत्येक** पहाड़ी गोद इस हरियाली **को पा कर** निहाल हो गयी। धीरे-धीरे **कला-केंद्रों की** विरासत

भी बढ़ने लगी । अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी मंडी पहाड़ी चित्रकला का मुख्य केंद्र बनने का श्रेय प्राप्त कर सकी । उत्तर में कुल्लू, दक्षिण में सुकेत और पश्चिम में काँगड़ा से घिरी यह घाटी कला-रसिकों को बुला कर अपनी कहानी अपनी जुबानी सुना रही है ।

मंडी चित्रकला की कहानी तीन भागों में बँट सकती है । पहले चरण के अंतर्गत लोक-शैली का पक्ष ही अधिक पुष्ट रहा । इस की बानगी राजा केशवसेन (१५९५–१६३७) की मुखाकृति वाले चित्र में देखी जा सकती है । इसी चित्र के योग में राजा सिद्धसेन तथा राजा शमशेरसेन वाले चित्र भी विशेष उल्लेखनीय हैं । सिद्ध-सेन ने अपनी कला रुचि-शुचि का परिचय भद्रा व सिद्धकाली के मंदिरों तथा सिद्ध-गणेश की पाषाणमूर्ति बनवा कर दिया । उस ने कुल चौदह मंदिर बनवाये । सिद्धसेन वाले तीन प्रमुख चित्र हैं—'राजा परि-

## • डॉ. रामावतार अग्रवाल

चारिकाओं के साथ', 'गंगाकूल पर' तथा 'सेवकों और संगीतज्ञों के साथ' । इन सभी चित्रों को देख कर यह स्पष्ट हो जाता है कि भारी रेखाएँ, मोटे अलंकरण, सपाट व सुर्ख रंग के कारण इस कलम में लोक-कला के तत्त्व अधिक प्रबल बने रहे ।

सिखों के गुरु गोविंदसिंह सत्रहवीं शती के अंत में मुगल आक्रांताओं के विरुद्ध राजा से दोस्ती का हाथ मिलाने मंडी आये थे । गोविंदसिंहजी को यहाँ बड़ी आत्मीयता मिली और उन्होंने भी स्नेहवश राजा को वचन दिया—

**मंडी को जो लूटेंगे**
**आसमानी गोले छूटेंगे**

विदेशी यात्री व्हीन ने भी इस बात की पुष्टि अपनी पुस्तक 'ट्रैवल' में की है ।

राजा सिद्धसेन के बाद इन का पौत्र शमशेरसेन ( १७२७–८१ ) पाँच वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा और चंबा-नरेश उग्रसेन की पुत्री से प्रणय-बंधन में बँधा । यह घटना एक चित्र में भी अंकित है । शमशेरसेन के बाद उन का पुत्र सूरमासेन (१७८१–८८) गद्दी पर बैठा । राजा को एक चित्र में हुक्के का कश खींचते हुए चित्रित किया गया है । इस समय के प्रायः सभी चित्रों में स्थानीय वाद्य-यंत्रों तथा वेशभूषा का भी खुलकर प्रयोग हुआ है । कहारों के पैरों में पोलड़ियाँ (पहाड़ी जूतियाँ) दिखायी गयी हैं । रंगों की चमक व चयन के कारण कभी-कभी बसोहली शैली से इन्हें अलग परखने में भ्रांति हो जाती है । इस समय के सभी चित्रों पर लोककला का मुल्लमा मजबूती से चढ़ा रहा ।

उस के पश्चात इस कलम में एक ऐसा दौर आया कि काँगड़ा, कुल्लू, चंबा आदि मुख्य चित्र-शैलियों का प्रभाव इस में छन-छन कर मिलता चला गया ।

अनेक सुंदर चित्रसारियों का निर्माण हुआ। यह दूसरा चरण १८०४–४६ के बीच रहा। इस कला-यौवन के प्रणेता राजा ईश्वरीसेन (१७८८–१८२६) थे। इन का राज्यकाल वास्तव में १८०४ से प्रारंभ होता है। १७८८ से १८०४ तक काँगड़ा पहाड़ के राजा संसारचंद की महत्त्वाकांक्षी एवं अवसरवादी नीतियों के कारण महाराजा ईश्वरीसेन को तीरा-सुजानपुर में कैद रहना पड़ा। वहाँ उन्होंने चित्र-सृजन के पैमाने को समझा होगा। उन के मुक्त होने के कुछ समय बाद काँगड़ा का प्रसिद्ध चित्रकार सजनू कुल्लू से १८०८ में मंडी में आया था। सजनू मंडी के वातावरण में रम गया। उस की तूलिका ने यहाँ की वास्तुकला, वेश-भूषा, आभूषण तथा अन्य सामग्री को चित्रों में खूब उकेरा। इसी चित्रकार ने हिंदी काव्य 'हमीरहठ' पर आधारित २१ चित्रों की एक चित्रावली सजायी। 'हमीरहठ' काव्य में चित्तौड़ के राजा हमीर का अलाउद्दीन खिलजी से लड़ाई का वर्णन है। उस ने दुर्गा के दस रूपों को भी चित्रों में उभारा है। महाराजा से संबंधित अनेक चित्र भी बनवाये गये। इन सभी चित्रों में कलम का सूफियानापन स्पष्ट है।

राजा ईश्वरीसेन के बाद उस का भाई जालिमसेन (१८२६–३९) गद्दी पर बैठा। 'यथा नाम तथा काम' वाली उक्ति उस ने अपने क्रूर कार्यों द्वारा सिद्ध की। उस ने लोमहर्षक नरसंहार कराया। वह काली का उपासक था, अतः जालि[illegible] व टारना वाले काली मंदिरों में उस ने भित्तिचित्र तथा अन्य साज-सज्जा करवायी। स्वर्ण तथा रजत रंगों का प्रयोग खुल कर हुआ। आज इस चित्र कलेवर में मौलिकता के दर्शन नहीं होते, क्योंकि आने वाले समय में कई बार रंगों की तह चढ़ चुकी थी। इन मंदिरों की भित्ति स्थानीय ढंग से चूने, ईंट, उड़द की दाल, शंख-चूर्ण तथा भाँग की छाल के चूर्ण को मिला कर तैयार की जाती थी। १८३९ में ही [illegible] नामक यात्री ने बलवीरसेन (१८३९-५१) के महल के भित्तिचित्रों के विषय में अपनी पुस्तक में लिखा है— "महल के जिस भाग में मैं ने राजा का आतिथ्य ग्रहण किया उस की हिम-धवल दीवार कुछ समय पहले की भारतीय परंपरा में बने भित्तिचित्रों से सुसज्जित थी।" जालिमसेन के ही राजदरबार वाले कई चित्र भी मिलते हैं।

१८३९ से ४१ तक का सारा समय मंडी के सामान्य जीवन तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए अनुकूल नहीं रहा। वैसे उस समय भी शक्ति-विषयक चित्रण चलता रहा। १८४६ तक देवियों के अनेक चित्र बने। गजलक्ष्मी का चित्र विशेष उल्लेखनीय है। पद्मासीन लक्ष्मी को चार हाथियों के साथ चित्रित किया गया है। कमल तथा जल आदि का चित्रण भारतीय शैली में हुआ है। मंडी कलम अपने उस दूसरे चरण में ही लालित्य को प्राप्त कर

सकी थी।

जालिमसेन ने अपने पुत्र मियाँ रघुनाथसिंह को उत्तराधिकार से वंचित रख कर अपने भतीजे बलवीरसेन को उत्तराधिकारी घोषित किया। बलवीरसेन के सत्तारूढ़ होने के कुछ समय बाद से ही मंडी कलम का पतन प्रारंभ हो गया था। यही इस का तीसरा चरण था। सिखों का प्रभाव बढ़ गया था तथा बलवीरसेन का अपमान भी सिखों के हाथ हो चुका था। लेकिन सिख कलम का प्रभाव राज-दरबार तक रहा। कुल्लू की गहरी पहुँची हुई सांस्कृतिक जड़ों को वे उखाड़ न सके। सिख गुरुओं के तीन चित्र मिलते हैं। उन में पहनावे आदि के अतिरिक्त कलम का कोई अंतर नहीं है।

इसी समय मुहम्मदबख्श नामक चित्रकार भी मंडी में चित्र-रचना करता था। उस के चित्रों में रंगों की सुर्खी और सजीवता भी बराबर बनी रही। १८४६ की सिख दरबार तथा ब्रिटिश सरकार संधि के अनुसार सतलुज तथा व्यास नदियों के दोआब पर अँगरेजी आधिपत्य हो गया और चित्रों में धीरे-धीरे अँगरेजी प्रभाव छाने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे मंडी कलम की गुलाबी विदेशी लाली में समा गयी। निजस्व की इस थाती में केवल गहिया नरोत्तम कलाकार ही साँस फूँकता रहा। उस ने अनेक पौराणिक चित्रों का सृजन किया। इस पहाड़ी विरासत को दैविक विपत्ति सटक गयी, १९०५ का भूकंप तथा १९१६ की आग ने सब भस्म कर दिया, जो शेष है वही हमारी अमानत रह गयी है।

इस प्रकार मंडी कलम समय के साथ उठी और गिरी। रंगों की तीव्रता, पौराणिक विषयों की अधिकता स्थानीय वेशभूषा तथा वास्तु का निजस्व मंडी कलम की विशेषताएँ रहीं। काँगड़ा, कुल्लू तथा चंबा के प्रभाव ने इस चित्र-शैली को तरुणाई भी प्रदान की। मुहम्मद-बख्श नामक चितेरे ने तो शिव तथा कृष्ण-लीला संबंधी चित्रों को बना कर मंडी की धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर सहयोग की भावना को अप्रतिम बल प्रदान किया।

(२३०, जत्तीवाड़ा स्ट्रीट, मेरठ)

---

**पुलिस इंसपेक्टर ने अभियुक्त के विरुद्ध गवाही देते हुए कहा, "मैं ने इसे एक केले बेचने वाले की डलिया में से केले निकालते देखा..."**

**"ओह, लोगों के सामने पुलिस अफसर बना हुआ था! धोखा-धड़ी के जुर्म में इसे दो साल की सख्त कैद की सजा दी जाती है," बीच में ही बात काट कर मजिस्ट्रेट ने निर्णय सुनाया।**

• शशिकांत

# बड़े मुंशीजी

अक्षर और मुंशी माताप्रसाद, दोनों में से मेरा परिचय पहले किस से हुआ या किस के द्वारा मैं ने किस को जाना आज इतनी पुरानी बात हो गयी है कि स्मृति को लाख टटोलने पर भी याद नहीं आती ! दोनों की रेखाएँ ऐसी घुली-मिली हैं कि एक को दृष्टि की परिधि में लाने की चेष्टा करते ही दूसरी उस से बाहर हो जाती है।

हाथ में कालिख-पुती तख्ती और झोले में फटे-पुराने कागज-जैसे उपकरण सँभाले, अक्षर-ज्ञान के लिए वृद्ध की तरह किसी की अँगुली के सहारे चलता हुआ जब मैं प्राथमिक विद्यालय-रूपी कर्मशाला में प्रविष्ट हुआ तो मेरे-जैसे ही अनेक अनगढ़ मिट्टी के लोंदों के बीच वे सजग कर्मकार-से बैठे थे ! दूर से ही 'बड़े मुंशी-जी' कहकर उन का जो बड़प्पन मेरे ऊपर लाद दिया गया था वह मुझे अपने ज्ञान और सामर्थ्य की सीमा से कहीं परे और अक्षरों की भाँति ही दुर्वह लगा था !

सड़क से अपेक्षित, रेलवे-लाइन त्यक्त गाँव में यांत्रिक वाहनों के नाम जिस की संपन्नता चार-छह बैलगाड़ि और ऐश्वर्य एक दो साइकिलों में ही नि था, प्राथमिक पाठशाला अपने आप एक जादूनगरी-सी थी। इस जादूनगरी नियामक 'बड़े मुंशीजी' अपने 'अलौकि ज्ञान के कारण किसी समर्थ जादूगर कम नहीं थे, जो 'अकबार' सरीखे 'का बाँच लेते थे, डाकखाने के कायदे-क़ा जानते थे, चिट्ठी लिख-पढ़ लेते थे 'बिलाइत' की लड़ाई की खबरें सं जैसी दृष्टि के साथ गाँववालों को ब करते थे। 'बड़े मुंशीजी' होने के नाते दर्जा तीन और चार-जैसी ऊँची कक्षा को ही पढ़ाते थे।

नाटा शरीर, ताँबे–जैसा रंग, घु तक धोती, तेल के ऊपर धूल का अंग सजाये, पुर के बने हुए चमरौधे जूते हाथ में छड़ी तथा लाठी के बीच में अ स्थान ढूँढ़ता हुआ डंडा उन का ब

आकार स्पष्ट करते थे। सिर पर सुगंधित तेल में डूबते-उतराते अस्तव्यस्त केश रहते, जिन्हें स्नान, भोजन के बाद प्रायः चीकट टोपी में कैद कर दिया जाता था। क्रम की उपेक्षा करती हुई जन्मी और बढ़ी मूँछें उन के स्वभाव के अनुसार ही 'वीर-वेश' में ऊर्ध्वगामी और 'शांतवेश' में अधोगामी रहा करतीं। अंदर को धँसी छोटी-छोटी गोल आँखें गहरे कुएँ के तल से झाँकते पानी-जैसी चमका करतीं। मुँह को ढके रहने के असफल प्रयत्नों में लगे हुए किंचित फैले होंठ और परिवार की शालीनता की सीमा-का यदा-कदा अतिक्रमण करते रहने वाले सपूत-जैसे आगे के दाँत उन की अपनी विशेषताएँ थीं।

ढीला-ढाला कुरता, उस के ऊपर प्रायः सदरी तथा जाड़ों में बंद गले वाला सूती कोट मौसम के अनुसार उन की पोशाक थी ! मौसम की उपेक्षा करते हुए उन के साथ रहने वाली गिनी-चुनी ही चीजें थीं। और वे थीं-- खैनी की थैली, चूने की डबिया, गाँजे की चिलम और पुड़िया, बीड़ी, माचिस और चश्मा। मोटा जनेऊ और उस में बंधी स्कूल के खास बक्से की ताली भी अवश्य रहती। टेंट में पैसे और मुर्री में तैयार सुरती बँधी होती जिस से तात्कालिक आवश्यकता पड़ने पर उस के बनाने में समय न नष्ट हो !

स्कूल का समय चाहे जो हो, उन के आने का समय निश्चित था। साढ़े दस, ग्यारह बजे के लगभग वे पधारते। अगर स्कूल सुबह का होता तो बच्चों के चले जाने के बाद भी वे वहाँ बैठे रहते और अगर स्कूल दिन का होता तो बच्चों के वहाँ बैठे होते हुए भी वे इच्छानुसार स्कूल से चले जाने में संकोच नहीं बरतते थे।

गणित और उर्दू के अलावा उन्हें कभी कुछ पढ़ाते देखा नहीं, पर स्कूल में

डाक से आने वाला अखबार पढ़े बिना वे कभी बैठे हों, यह भी स्मरण नहीं आता। गणित उन का लाड़ला विषय था। कठिन-से-कठिन प्रश्न भी न कभी उन्हें दोहरा कर लगाना पड़ता, न उस की गति में कमी आती। उर्दू भी ऐसी ही थी। वे खुद कभी किताब नहीं खोलते थे। लड़के पढ़ते और वे अर्थ और अंतर्कथाएँ बताते चलते। उर्दू शायरी पढ़ना और सुनना उन के साहित्य-प्रेम की सीमा थी। इस के बाद उन का शौक था बागबानी! सब्जी और फुलवारी के प्रयोग स्कूल में चलते ही रहते थे।

मुंशीजी को संतुष्टि तब तक नहीं होती थी जब तक छात्र उन के पढ़ाये सिद्धांत और बताये व्यवहार को अपने में 'पचा' न लेते। कोई भी विषय हो, पढ़ाने के बाद वे एक लंबा 'स-म-झे ऽऽऽ' का घोष करते और फिर हर छात्र को बारी-बारी से टटोलते।

पर निजी जीवन में वे सदैव उत्तर-दायित्व के दूसरे छोर पर ही रहे। नशे की बात चलने पर छात्रों को उस के दुर्गुण बताते न थकने वाले वे स्वयं इस मामले में आवारगी की सीमा तक उदार थे। खैनी जहाँ उन की हवा और पानी के बाद सब से बड़ी आवश्यकता थी, वहाँ गाँजा-चरस के नियमित सेवन में भी उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं बरती। खैनी, बीड़ी और गाँजा जहाँ उन की 'नेसेसिटीज' थीं वहाँ भाँग 'कम्फर्ट्स' में और शराब 'लक्सरीज' में आती थी। किसी समय जब ये वस्तुएँ इकट्ठी मिल जाती थीं तो की समझ में और अधिक जीवित न कोई महत्त्व था और न कोई श्यकता। नशे के मामले में जल्दबाजी उलटा-सीधा क्रम उन्हें असह्य था। समय उन की तन्मयता सच्चे भक्त पूजा के समय की तन्मयता-जैसी थी।

उन के गाँजा पीने से कहीं आकर्षक उन का गाँजा बनाना होता सदरी की एक जेब से वे गाँजे की और चिलम निकालते और दूसरी चंदन की लकड़ी का टुकड़ा तथा सी 'फरशी'-जैसी वस्तु, जिसे वे कटारी' कहते थे! फिर बीड़ी का और किशमिश की डबिया निकाल गाँजे की पुड़िया से उस की एक-एक दुलराते हुए निकाल कर चंदन की पर रखी जाती, फिर एक हाथ से पत्तियाँ दबा कर, दूसरे हाथ से प्रेम-से उन्हें धीरे-धीरे काटा जाता। उन किशमिश और बीड़ी का माल-मसा मिलाया जाता। फिर हथेली पर कर, चिलम में गिट्टी रख कर, उसे वहाँ रखा जाता कि कोई अंश बाहर गिरने पाये और तब चिलम में उसे दबा कर एकसार किया जाता।

इस के बाद बान का टुकड़ा जाता। उसे गोलाकार ऐंठते हुए जैसा बना कर जलाया जाता। जब

निर्धूम और अंगारे-जैसा हो जाता तो सफाई से उसे हाथ से उठा कर चिलम पर रखा जाता। अब मुंशीजी जेब से 'साफी' निकाल कर, चिलम के मुँह पर लगा, दोनों हाथों से उसे ऊपर उठाते—आँखें बंद करके जोर से 'बम-बम भोले शंभू, गिरा दे मकान लगा दे तंबू' का नारा बोलते और चिलम मुँह से लगा कर जो कस कर खींचते तो चिलम के ऊपर 'भक' से लपट उठ जाती।

पैसा आते ही जुआ खेले बिना उन से रहा नहीं जाता था। तनख्वाह मिलती तो स्कूल से सीधे जा कर कहीं फड़ जमाते और घर तभी लौटते जब जेब में पैसों के स्थान पर सिर पर कर्ज की गठरी चढ़ जाती। घर पर खेती थी। पत्नी सजग और सुशीला थी इसलिए अगर भूखे रहने का अवसर नहीं आया तो इस के लिए दोषी मुंशीजी नहीं ठहराये जा सकते थे। उन्होंने तो अपनी ओर से कोई कसर उठा नहीं रखी थी।

यह एक विचित्र संयोग और नियति का एक क्रूर व्यंग्य-सा लगता है कि छात्रों के मामले में घर से बाहर तक अनुशासन की सीमाएँ मानने वाला व्यक्ति स्वयं जीवन में कितना अनुशासनहीन था! नशा, जुआ और गैर-जिम्मेदारी, जो स्वयं उन के दोष थे, उन की दृष्टि में छात्रों के गुरुतम अपराध थे। अपनी सीखों की उपेक्षा की बात सुन कर या यह जान कर कि किसी छात्र ने कोई अनुचित काम किया है उस छात्र को पशुवत ताड़ना देने में उन की कठोरता सीमाओं को हमेशा तोड़ देती थी। बालक की उम्र और सामर्थ्य क्या है और उसे दंड क्या मिल रहा है—इस का उन्हें कभी ध्यान नहीं रहता था। पर घंटे भर बाद ही, भरे गले से और आँसू पोंछते हुए वे उस बालक को बुलाते, पुचकारते, उस का उपचार करते और समझाते जाते।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात उन के ऊपर बिलकुल लागू नहीं होती थी। वे अपने दोषों का परिणाम जानते थे। कभी उन का औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा उन्होंने नहीं की।

दुर्भाग्य ने भी उन के साथ कम साजिशें नहीं कीं। शायद इसीलिए पिता के रूप में मुंशीजी का इतिवृत्त दुःख का ही इतिवृत्त है। अपने छोटे-से जीवन में जाने कितने 'जन्मोत्सवों' का आयोजन उन्होंने किया, पर 'मुंडन' की सीमा तक एक आध ही पहुँच पाया। बाकी 'आगत' जहाँ इस के पहले ही अपनी भूल जान गये वहाँ 'मुंडन-उत्सव' करवाने वालों को भी उस के बाद अपनी भूल याद आ गयी। उन्होंने भी अग्रजों की राह पकड़ी और अनुजों के लिए ही वही संदेश छोड़ गये। ले-दे कर एक कन्या बची थी—वह भी शायद इसलिए कि वह सारे उत्सवों के संपन्न हो जाने तथा कुछ अप्रत्याशित अनुभूतियों के बाद ही लौटने का निश्चय करके आयी थी। गोरा-चिट्टा रंग, भरा-पूरा शरीर,

साँचे में ढले अंग, हिरन-जैसी आँखें और बाँसुरी-जैसा कंठ ! पढ़ी भी--लिखी भी, घर का काम-काज भी सीखी और महल्ले तथा गाँव की आँखों की पुतली हो कर रह गयी। प्राणों की तरह, बड़े यत्न से पाली गयी कन्या का विवाह अपनी ओर से सुपात्र देख कर मुंशीजी ने किया, पर जिसे मोती समझा था वह निरा काँच निकला ! जिसे जामाता बनाया था वह 'जम' साबित हुआ !

अपमान और कटूक्तियों की तो बात ही क्या, उस ने जाने कितनी बार उस साधों पाली गयी बेटी के फूल-से शरीर को कमचियों से पीट-पीट कर नीला और मन को विक्षिप्त कर डाला। फिर उसे जंजीरों से बाँध कर रखा और मुंशीजी को पत्र लिखा कि 'उन की लड़की' पागल हो गयी है, उसे ले जायें। मुंशीजी पिता थे। जी-जान एक करके उस की दवा की, सेवा-सुश्रूषा की और जब वह स्वस्थ हुई तो जामाता उसे ले जाने को फिर आ बैठे। इस क्रूर अध्याय की जाने कितनी आवृत्तियाँ हुईं ! और अंत में एक बार वह अपनी एक कन्या और एक पुत्र को ना[illegible] नानी के हाथों सौंप अग्रजों और अनुजों [illegible] राह चल दी।

धेवती को पाल-पोस कर मुंशीजी [illegible] बड़ा किया और उस का विवाह कर दि[illegible] धेवते को पढ़ा-लिखा कर अपने साथ [illegible] लिया। उन्हीं के चेहरों में वे अपने [illegible] बेटों की आकृतियाँ देखते और उन [illegible] वाणी में उन का स्वर सुनते रहे।

और अब तो इस दुःखांत नाटक [illegible] अपना पार्ट निभा कर 'मुंशाइन चा[illegible]' नेपथ्य की ओर लौट चुकी हैं। मुंशी[illegible] रिटायर हो गये हैं। शराब और जुए-[illegible] विलासिता लगभग बंद-जैसी है। श[illegible] शिथिल हो चुका है। बाहर आना-जा[illegible] नहीं हो पाता। प्रायः घर के बाहरी ब[illegible] में बैठे-बैठे या पड़े हुए वे रीती आंखों [illegible] अतीत को घूरते रहते हैं। स्मृतियों [illegible] बीहड़ वन में भटकते हुए--जिंदगी [illegible] बिसात पर आखिरी बाजी लगाने को [illegible] तैयार बैठे हैं।

(बी-१/८७ एफ, गोयनका लेन, अस्[illegible] वाराणसी)

---

अब्राहम लिंकन की टाँगें बहुत लंबी थीं। एक बार कांग्रेस का एक सदस्य उन से मिलने गया तो वे सर्दी-जुकाम से पीड़ित थे। सदस्य ने सहानुभूति प्रदर्शित की तो लिंकन ने अपनी टाँगों को देखते हुए कहा, "भाई, मुझे तो इस मर्ज की आशंका बनी रहती है। तुम तो जानते ही हो कि मेरे शरीर का अधिकांश भाग जमीन पर ही रहता है।"

# आधुनिक जीवन में कुंठा और संत्रास

• डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र

आज के मनुष्य का दैनंदिन जीवन कुंठा और संत्रास से आक्रांत है। आप चाहे शहर में हों या गाँव में, नाना प्रकार के असंतोष से खीझते लोगों को आप देखेंगे—नयी पीढ़ी को भला-बुरा कहते बूढ़े को, पुरानी पीढ़ी की मान्यताओं को चुनौती देने वाले आक्रोशी युवक को, गृहस्थी की जटिलता और दुनियावी झंझटों की मार से टूटी उदास गृहिणी को, साधना-च्युत और सम्मान-तृषा से पीड़ित अध्यापक को, उद्दंड छात्र को, अपने अधिकारी के हर आदेश-निर्देश को अनुचित समझने वाले अधीनस्थ कर्मचारी को, भौतिक चाकचिक्य के अभाव-बोध से अपने को दीन समझने वाले निष्क्रिय किसान को।

राजनीति का प्रवेश जीवन में इस हद तक हो गया है कि दो आत्मीयों के बीच भी अविश्वास की प्रेत-छाया खड़ी रहती है। संत्रास की लहरें पहले भी उठती थीं, किंतु मनुष्य की आस्था थी, जिस के कारण वह कभी हारता नहीं था। आज वही आस्था टूट गयी है, इसलिए संत्रास मनुष्य को दबाता जा रहा है।

आज हम विज्ञान के युग में जी रहे हैं। विज्ञान ने हमें नयी रोशनी दी है, किंतु यह रोशनी हमें भावलोक से वितृष्ण और वस्तुलोक के प्रति सतृष्ण बना रही है। यह कल्पना के सौंदर्य को उजाड़ने वाली और रस की दुनिया को स्वार्थ की नीरस बातों से अनाकर्षक बनाने वाली रोशनी है। हमारा गुमान है कि इस रोशनी

के बल पर हम ने बहुत-सी अज्ञात बातों को समझ लिया है, इसलिए ज्ञान की दृष्टि से काफी समृद्ध हो गये हैं; किंतु अपनी विपन्नता पर हमारी दृष्टि नहीं जा रही है कि संवेदना गँवा कर हम कितने निर्धन हो गये हैं! विज्ञान का सब से बड़ा अभिशाप है भय। वस्तुतः विज्ञान की बढ़ती हुई शक्ति ने ही मनुष्य को संत्रास के बीच में झोंक दिया है। विज्ञान ने मनुष्य को अपने में डूबने-सिमटने का संस्कार दिया है और वह एकांत दिया है जिस के बारे में 'कामायनी' के लेखक ने लिखा है--

**अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा**
**यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा**

मनुष्य के विकुंठ मन ने वैकुंठ की कल्पना की थी। उसी मनुष्य की मेधा ने विद्या की परिभाषा दी थी कि विद्या वह है जो मुक्त करे--कुंठा से, दुनियावी बंधनों से। संपूर्ण वांङ्मय का उद्देश्य है मनुष्य की चित्त-विश्रांति और आनंद की सृष्टि। उस रस पर विज्ञान ने प्रश्न-चिह्न लगाया है। अपनी लोक-यात्रा में असंभावित रूप से आने वाली बड़ी-बड़ी विपत्तियों को हम भगवान भरोसे सह लेते थे और हमारे मार्ग के अवरोध धीरे-धीरे टूट जाते थे। विज्ञान ने अपनी तमाम उपलब्धियों के बावजूद हमारे इस भरोसे पर ही प्रहार किया है। परिणामतः हम बराबर उस संत्रास में डूबे रहते हैं जिसे उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप में विवेकानंद ने देखा था। विवेकानंद ने यूरोपवासियों से कहा था कि भौतिक वैभव गँवा कर भी भारत ने अपना आत्म-विश्वास नहीं खोया है। विवेकानंद के भारत में आज अजनबीपन की विषैली हवा बहने लगी है। यह हवा संत्रास की बीमारी को बढ़ाने वाली और नाना प्रकार की कुंठाओं को जन्म देने वाली है। इतना कुंठाग्रस्त है कि दूसरे की कुरूपता हमें करुणार्द्र नहीं बनाती और न दूसरे की शोभा-संपन्नता से ही हम प्रसन्न होते हैं। हर बात में असंतोष, आक्रोश और खीझ। हर कदम पर हताशा, निराशा और छिद्रान्वेषण।

आज के दैनंदिन जीवन में जो संत्रास और कुंठा दिखायी पड़ रही है उस के मूल में अभाव नहीं अभाव-बोध है। आज भौतिक चाकचिक्य की स्पर्द्धा तेज होती जा रही है। सभ्यता ने गलत रास्ता पकड़ लिया है, इसलिए अभाव का बोध तीव्र होता जा रहा है। नयी-नयी कुंठाएँ मन में उग रही हैं, आस्था टूट रही है, संत्रास की भयंकर मार से वह निरंतर कमजोर होता जा रहा है।

जो कहते हैं कि भौतिक विपन्नता ने नाना प्रकार की कुंठाओं को जन्म दिया है उन का निदान पूरा सही नहीं है, क्योंकि जहाँ विपुल भौतिक संपदा है, वहाँ भी संत्रास कम नहीं है। जो समृद्धि में कुबेर के समकक्ष हैं वे मानसिक उच्चाटन से अधिक आक्रांत हैं। वहाँ रोंगटे खड़ा कर देने वाला संत्रास दिखायी पड़ता, जहाँ न तो भोग की भूख बुझती है और न भोग-सामग्री

चुकती है। सचमुच वहाँ संत्रास की परा-काष्ठा है। वहाँ सहज नींद सोना भी एक विशेष बात मानी जाती है।

सभ्यता-शराफत की डींग हाँकने वाले के व्यवहार में कुंठा बोलती है। शराफत की कुंठा से वे वैसे ही आक्रांत होते हैं जैसे कुछ लोग शुचिता की कुंठा से आक्रांत होते हैं। शुचिता की यह कुंठा पुराने धार्मिक किस्म के लोगों में अधिक दिखायी पड़ती थी, जिन का आग्रह चित्त-शुद्धि के प्रति कम, आचार-पद्धति के प्रति अधिक था। ये हाथ धोने वाली मिट्टी को अनेक बार धोते थे और यदि कोई अस्पृश्य उन्हें स्पर्श कर देता था तो उतने मात्र से वे इतना अशांत-उद्विग्न हो उठते थे जैसे उन के सारे संचित पुण्य का क्षय हो गया हो। शराफत का आग्रह जिन में अधिक है वे भी अपनी अगल-बगल की सारी दुनिया को अपने से नीच समझते हैं। इस तरह के लोग आप को अपने पास-पड़ोस में, कार्यालय में, बसों-ट्रामों में—हर कहीं प्रायः रोज ही मिलते हैं जो आप को अन्यथा दृष्टि से निहारते हैं। आप का पहनावा, आप की बातचीत, आप का चलने का ढंग—सब कुछ उन्हें नागवार लगता है। ऐसी प्रकृति के लोग अपने को ही सुरुचि का सम्राट समझते हैं और अपने बाहर की दुनिया को अपने से बहुत नीचा समझ कर निरंतर खीझते रहते हैं।

कुंठा व्यक्तित्व को विरूप बना देती है। वह मनुष्य को भीतर से अनुदार बनाती

**"क्या बेकार फिल्म बनायी है! इस म ऐसा कुछ भी तो नहीं जिसे काटा जा सके!"**

है। अनुदारता संत्रास उत्पन्न करती है। पारिवारिक कलह से ले कर सामाजिक अशांति तक के मूल में यही अनुदारता है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। पति-पत्नी के बीच दरारें पड़ रही हैं, अंतर्वैयक्तिक संबंधों में बिखराव-सा हो रहा है। इस विघटन के मूल में मनुष्य की वे कुंठाएं हैं जिन्होंने उसे अनुदार और असहिष्णु बनाया है।

पुरानी पीढ़ी का संस्कार अभी जीवित है। नयी पीढ़ी नयी संचेतना की पीढ़ी है जो नयी महत्वाकांक्षा के साथ नयी औपचारिकता में जीना चाहती है। नाना प्रकार की कुंठाओं के कारण मनुष्य की सहजता विलीन होती जा रही है। बात की बात में पिता-पुत्र, पति-पत्नी के संबंध टूट जाते हैं।

एक पुराने गीत का भाव याद आ रहा है। माँ तुलसी का पौधा रोपती है, पिता छतनारा बरगद की पौध रोपता है और पुत्र गुलाब का पौधा रोपने के लिए आकुल है। माँ का प्रिय तुलसी पौधा कल्याण-कामना का प्रतीक है। बरगद के छतनार वृक्ष को चुनने वाला पिता पारिवारिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है, और गुलाब को पसंद करने वाला पुत्र महत्वाकांक्षा और सौंदर्य का आग्रही। एक को दूसरे का सहयोग मिलता है, परिवार की इकाई पूर्ण होती है—सहअस्तित्व की भावना से। यह भावना आज संदिग्ध हो गयी है। नितांत आत्मीय जन के बात-व्यवहार को भी हम सहानुभूति नहीं दे पाते। विभिन्न पीढ़ियों में रुचि-भेद होना स्वाभाविक है किंतु दाल-सब्जी में रुचि का न मिलना या किसी छोटी-सी बात को ले कर आपस में मनमुटाव पैदा करना और परिणामतः पारिवारिक इकाई का टूट जाना स्वाभाविक परिणति है। दरअसल मनुष्य के मन में इतनी गाँठें पड़ गयी हैं कि संत्रास ही उस की नियति बन गयी है।

हम दूसरे की सुनना नहीं चाहते, केवल अपनी कहना चाहते हैं। हम यह आग्रह करते हैं कि हमारी ही सब लोग सुनें और स्वीकारें।

एक ऐसा हताश वर्ग भी इधर दिख पड़ा है जो संत्रास से त्राण पाने के लि श्मशान की ओर भाग रहा है। प पश्चिमी जगत उच्चाटन और संत्रास उबरने के लिए अध्यात्म के दरवाजे दस्तक दे रहा है। राम और कृष्ण का ना स्मरण कोरा फैशन नहीं है। भोग-उ करणों से जूझते जिन का मन उदास अशांत हो गया है उन्हें राम और कृष्ण कीर्तन से शांति मिल रही है। संत्रास कुंठा के पाटों में पिसता मनुष्य मुक्ति रास्ता खोज रहा है। प्रसाद ने 'कामाय में उस रास्ते का संकेत दिया है—

**औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सु**
**पाओ**

**अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को**
**सुखी बनाओ**

हमें अपने संवेग को संयत और नि तर सुसंस्कृत करते रहना है ताकि आ का संत्रास उसे विकृत न कर दे और कुंठाओं के भार से हमारा व्यक्तित्व न जाये। कार्पण्य असंस्कृत मन का संके है। अपनी उदारता द्वारा हमें अ संस्कृत और विकुंठ मन का सबूत देना है।

(७-बी, हरिमोहनराय लेन, कलकत्ता-१५

---

**एक महिला अदालत में गवाही देने के लिए जब कठघरे में खड़ी हुई तो जज ने कहा, "पहले आप अपनी उम्र बताइये —फिर हलफ उठाइये कि अदालत में जो कहेंगी सच कहेंगी और सच के अलावा कुछ नहीं कहेंगी।"**

'आज वह जीवन उस पुष्प के समान है जिस की पंखुड़ियां शीर्ण-विशीर्ण हो कर धरती पर गिर रही हैं'—ये रोचक और हृदय-स्पर्शी संस्मरण हैं वृंदावन-वासिनी एक साधिका के

एक पत्र में दिनांक... मार्च, १९७१ लिखते ही सहसा दिनांक... मार्च, १९२५ की याद हो आयी। स्मृति के एक प्रचंड झोंके ने इस जीवन-नाटक पर ४६ वर्षों से पड़ी यवनिका उड़ा कर हटा दी। और यह वृद्धा—प्रायः दो दर्जन बच्चों की नानी, दादी—अपने शैशव एवं कैशोर के विभिन्न दृश्यों को काल के रजतपट पर चलचित्रों की भाँति देखती रही।

आज वह रात्रि मेरे मनः-चक्षुओं के सम्मुख साकार हो उठी है जब इस द्रुत-गामिनी जीवनधारा ने एक नवीन मोड़ लिया था। उस रात्रि में सप्त-पदी, पाणिग्रहण आदि अनुष्ठानों की याद धुँधली-सी है। अस्पष्ट मंत्रों की ध्वनि कानों में आ तो रही थी, पर घुटनों पर सिर रखे मैं अधसोयी-सी बैठी थी। यदि साथ में बैठी नाइन मुझे सँभाले न होती तो शायद वहीं मंडप में ही भूमि पर लुढ़क गयी होती। विवाह हो जाने के दूसरे दिन सुना था कि पतिदेवता को अर्धरात्रि में जब मंडप में लाने के लिए जगाया गया तो अधूरी नींद टूटने से झुंझलाये हुए वे जगाने वालों को झिड़क कर फिर सोने का उपक्रम करने लगे। 'मुहूर्त बीता जा रहा है', यह अनुरोध किये जाने पर उन्होंने साफ जवाब दे दिया कि किसी और को भेजा जाये, ऐसे विवाह

संस्मरण

# टूटी पंखुड़ियाँ

• विदेहानंद सरस्वती

से वे बाज आये कि सोने को भी न मिले! इस बात को ले कर दूसरे दिन महिला-समाज में खूब विनोद हुआ था और मैं ने भी मन-ही-मन हँसते हुए सोचा था कि तब तो मैं उस रात्रि को विवाह-मंडप से क्वारी ही लौट आयी होती! उषा के अस्पष्ट आलोक में जब हमें विवाह-मंडप से कौतुकागार (कोहबर) में लाया गया तब तक हम दोनों की नींद की खुमारी गायब हो चुकी थी। उसी समय ससुराल से आये हुए नौकर ने हमारे ऊपर चाँदी-सोने के जूही-फूलों की वर्षा की। तब कितनी तत्परता से हम दोनों ने वे फूल चुन कर नाइन को दिये थे, जो मुझे सँभालना छोड़ कर फूलों को अपने आँचल में सँभालने में व्यस्त हो उठी थी। अधूरी नींद से जगे मेरे खिन्न-चित्त स्वामी अब सचेत हो चुके थे। गौरी-पूजन से ले कर चाँदी के दीपक जलती दो दीप-शिखाओं को स्वर्णशलाका से एक में मिलाने तथा अन्य रस्मों तक बड़ी-बूढ़ियों के आदेशानसार विधिवत संपन्न करने में उन्होंने कोई त्रुटि नहीं की थी। उस समय महिला-मंडल में उस प्रियदर्शन किशोर वर की जो प्रशंसा हुई थी वह अच्छी तरह याद है। सोचती हूँ क्या ये सफेद बालों, और झुर्री पड़े चेहरों वाले दंपती वही किशोर वर और बालिका वधू हैं! आह, इस निर्दय काल के प्रचंड प्रवाह में सौंदर्य, सुकुमार अस्तित्व भला कितने क्षणों के लिए है!

पिता के घर बीते हुए उन दिनों की स्मृति से आज हृदय भरा आता है। … यह ज्वार मुझे तीव्र आकर्षण से जीवन … अतीत में ही बहाये लिये जा रहा है। … के बाद एक चित्तपट पर घूमते जा रहे … सिविल लाइंस के जिस बँगले में हम र… थे वह शहर से काफी दूर था। आस-पा… सरकारी अफसरों के छिटपुट बँगलों … सामने घास का विस्तृत मैदान और … खेत, बाग आदि ही नजर आते थे। … ओहदे की नौकरियाँ तो सिर्फ अँगरे… को ही मिलती थीं।

चाचाजी पर अँगरेज सिटी मजिस्ट्रे… की विशेष कृपा थी। उन की पत्नी हमा… घर अकसर आती थीं। माँ और चाची … अपनी टूटी-फूटी हिंदी में बातें करतीं और … पूरी, कचौड़ी आदि अनेक स्वादिष्ट व्यंज… हाथ से ही सकौतुक खाने का प्रयत्न करतीं … हम लोगों को अपने बँगले पर बुला क… विदेशी मिठाइयाँ खिलातीं। यह स… तो मुझे बहुत पसंद आता, पर एक साधा-रण घटना से मेरे बाल-हृदय को जो ठे… पहुँची उस की याद अब भी है। संध्या सम… हम सब भाई-बहिन लॉन पर खेल रहे थे। सहसा देखा कि चाचाजी, जो अप… मुसाहबों के साथ टहलने जा रहे थे, सड़क पर ठहर और झुक कर किसी को सलाम कर रहे हैं। बड़े भाई ने अपनी नवो-पार्जित अँगरेजी का रोब मुझ पर डालते हुए कहा, "कलेक्टर साहब 'ईवनिंग वाक' के लिए जा रहे हैं।" उन्हीं का चाचाजी ने ऐसी विनम्रता से अभिवादन किया था।

मुझे यह अत्यंत अपमानजनक और आश्चर्य-प्रद भी लगा; क्योंकि समस्त परिवार और संबंधी भी—नौकरों-चाकरों का तो प्रश्न ही नहीं—उन के रोब से सदैव आतंकित रहते। यहाँ तक कि अपने मुवक्किलों से भी, जो अभिजात्य वर्ग के थे, जैसे राजा या ताल्लुकेदार, वे रोबदाब से ही बात करते थे। किसी के सामने झुक सकते हैं, इस की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उस समय सत्याग्रह-आंदोलन से सारे देश में जागृति की लहर दौड़ गयी थी। हमारे कच्चे हृदय भी उस के स्पर्श से नहीं बचे थे। अतः एक अँगरेज के प्रति चाचाजी-जैसे व्यक्ति का यह आदर-प्रदर्शन मुझे बिलकुल पसंद नहीं आया।

उस बंगले के प्रशस्त कमरे, लंबे-चौड़े बरामदे, तीन तरफ फैले हुए धान या गेहूँ, चने आदि के खेत, सामने का विस्तृत हरा मैदान, घर के भीतरी प्रांगण में मेरी गुड़ियों का घरौंदा, आम्रवृक्ष-तल में बनी मेरी पालतू मैना की समाधि—इन सब में मुझे एक सजीव वातावरण प्रतीत होता था। प्रातः की तंद्रिल आँखें चाचाजी के गंभीर पुरुषोचित मृदुकंठ से निकले शिवस्तोत्र से ही खुलती थीं—'ब्रह्म मुरारी सुरार्चित लिंगम, निर्मल-भासित शोभितलिंगम।' लगता है जैसे उस स्वर का गुंजन मैं आज भी अपने अंतराल में सुन रही हूँ। वे तो अपनी संध्योपासना समाप्त कर पिताजी के साथ प्रातः भ्रमण के लिए चले जाते और हम सब भाई-बहिन सिरहाने रखी लालटेन की बत्ती बढ़ा कर अपनी-अपनी रजाइयों में घुसे पाठ याद करना शुरू कर देते। कभी-कभी पढ़ने में मन न लगने पर मैं बाग में हरसिंगार के फूल चुनने चली जाती। बँगले के सामने की सड़क के उस पार परेड के विस्तृत मैदान के दूसरे छोर पर बहती नदी की क्षीण जल-रेखा वृक्षावलियों के बीच से झिलमिलाती दिखायी देती।

काल के तिमिरांचल में विलीन हुए वे शिशिरस्नात अनेक प्रभात मेरे मानस-पट पर आज फिर से उदय हो रहे हैं। कभी देखती कि अस्तोन्मुख चाँद की पीत श्रांत ज्योत्स्ना वृक्ष-लताओं की धूमिल छाया से गले मिल कर विदा हो रही है और कभी रवि ठाकुर के शब्दों में उर्वशी-सी उषा अपने गुलाबी दुपट्टे की सुनहरी कोर सँभालती प्राची का द्वार धीरे-धीरे खोल रही है। किंतु यह शब्दालंकार तो मुझे आज सूझ रहा है। उस समय तो हरसिंगार और चमेली की मिश्रित गंध से परिपूर्ण वायुमंडल, नीरव एकात, वह प्रत्यूष अपनी संपूर्ण शोभा से मेरे बाल-हृदय को मुग्ध कर एक सहज आनंदरस से भर देता था, मानो प्रकृति देवी मेरी सहचरी ही हो।

एक और व्यक्ति जिस की इस समय याद आ रही है, वह था मेरा बालसखा, एक ब्राह्मण बालक। जब मैं आँचल में फूल भरे हुए लौटती तो प्रायः देखती कि वह 'आउटहाउसेज' के सामने टहलता

हुआ 'लघुसिद्धांत कौमुदी' अथवा किसी अन्य संस्कृत पुस्तक का कोई पाठ याद कर रहा होता। उस की घुटी चाँद पर गाँठ बँधी मोटी चुटिया लटकती रहती। यह मेरे चाचाजी के दरबारी पंडितों में से एक का शिष्य था।

समवयस्क होने तथा रुचि की समानता के कारण मेरी उस की जो मित्रता थी उस की स्मृति एक सुखद अनुभूति दे जाती है। कभी-कभी हम दोनों कविता रचने का प्रयास करते, कभी वह मुझे भी 'लघु-सिद्धांत कौमुदी' पढ़ने के लिए प्रोत्साहन देता, कभी कोई संस्कृत का श्लोक अथवा सूत्र याद कराता।

इन्हीं दिनों चाचाजी ने मेरा स्कूल जाना बंद करा दिया था क्योंकि ग्यारह वर्ष की लड़की परदे से बाहर निकले यह उचित नहीं था। फिर मुझे अधिक पढ़ कर क्या वकालत या डॉक्टरी पेशे में जाना था! उस समय स्कूल से छुटकारा पा कर मैं तो चाचाजी के प्रति अनुग्रहीत ही हुई थी, पर माँ ने इतना दुःख मनाया कि चाचाजी से अनुमति ले कर मेरे लिए प्राइवेट ट्यूटर रखा गया। ये एक ब्राह्मण पंडित थे जो मुझे रामायण तथा उर्दू पढ़ाते थे। अपने अँगरेजी विद्याभ्यास की याद करती हूँ तो आज भी हँसी आ जाती है। मेरे दूर के रिश्ते के एक चाचा, जो मेरे पिताजी के मुहर्रिर थे, मुझे और मेरे एक छोटे भाई को अँगरेजी पढ़ाने के लिए नियुक्त किये गये थे।

लालटेन जल रही है, चटाई पर तीनों बैठे हैं। इस कठिन विद्याभ्यास थक कर बीच-बीच हम 'चाचा' की बचा कर एक-दूसरे को चुटकी काट अथवा मुँह चिढ़ा कर अपना दिलबह कर लेते हैं और बेचारे 'चाचा', जो भर मुवक्किलों के साथ सिर खपा चुके अपने दोनों छात्रों के इस कर्णकटु पाठ अपने को पूर्णतः तटस्थ रख कर, पा मारे, दाहिने पैर को बायें पर चढ़ाये मंदगति से हिलते, अपनी विरल मूंछों ताव देते तथा निस्पृह दृष्टि से न देखते हुए दबे स्वर में कोई उर्दू गुनगुना रहे हैं, जिस का केवल एक मि याद आता है—लुत्फ के बागे जहां मिस्ल शबनम हम रहे। खैर, मां वी पाणि मुझ पर किस हद तक प्रसन्न यह तो मैं नहीं जानती, पर उन की उपासना से भी मुझे शीघ्र ही छुटका मिल गया था, क्योंकि तेरह वर्ष की लड़ कुमारी रखना भी तो समीचीन नहीं

अनेक असंबद्ध दृश्य अंतःपट उभरते हैं और विलीन हो जाते हैं अकसर तीसरे पहर स्कूल से लौट देखती कि हमारी जमींदारी से अ से भरी बैलगाड़ियाँ आयी हैं। माँ चाची प्यादों से अन्न तौलवा रही हैं काठ के बने एक गोलाकार पात्र से 'रामै हैं राम, दुइए हैं दुइ, तीनै हैं ती कहता हुआ प्यादा एक स्तूपाकार बनाता जा रहा है। उस अन्नराशि

खेलने के लिए माँ की गोद में छोटा भाई मचल रहा है। उधर भंडारघर के बरामदे में बैठी बुआ की सौत से ग्वाला गायों की खली-चोकर आदि की तथा साईस घोड़ों के चने की माँग कर रहा है। एक कहार, जो पंडितों की सेवा के लिए नियुक्त था, वह भी एक लंबी फेहरिस्त दे रहा है कि अमुक पंडित को फलाहार, अमुक को 'सीधा' चाहिए। बुआ की युवा विधवा पुत्र-वधू हमारे जलपान की व्यवस्था कर रही हैं। ये हमारी अभिभाविका तथा मित्र भी थीं। बुआ के एकमात्र तरुण पुत्र के देहांत के बाद फूफाजी ने अपनी विशाल संपत्ति के उत्तराधिकारी की पुनः प्राप्ति के लिए जब पचास वर्ष की अवस्था में दूसरा विवाह किया तभी से बुआ पति का घर छोड़ कर भाइयों के साथ ही रहने लगी थीं। उन की सपत्नी ने एक मृत उत्तराधिकारी तो शीघ्र ही प्रस्तुत किया किंतु इस के कुछ ही समय बाद फूफाजी को अपनी संपत्ति का प्रबंध किये बिना ही जब परलोक चले जाना पड़ा तब चाचाजी ने बुआ की सपत्नी और उन की शिशु कन्या को भी हमारे ही घर बुला लिया था। यह बालिका मेरी छोटी बहिन की समवयस्क थी। जब हम अकसर उस से झगड़ते तो चाची हमें समझातीं कि तुम लोग अगर इस पितृहीना को रुलाओगी तो भगवान का सिंहासन डोल उठेगा!

मेरे चाचाजी को साधु-संन्यासियों एवं तथाकथित पंडितों को पालने का बहुत शौक था। इस दल में संस्कृत के एक प्रकांड विद्वान प्रज्ञाचक्षुजी का तथा चरक-सुश्रुत के ज्ञाता एवं आयुर्वेदाचार्य का विशेष महत्त्व था। प्रज्ञाचक्षुजी जन्मांध थे।

आयुर्वेदाचार्य की कृपा से हमारे घर च्यवनप्राश, वसंतमालती आदि अनेक औषधों का कड़ाह नित्य ही चढ़ा रहता। जरा-सी खाँसी या जुकाम होते ही हम पीपल का मधुमिश्रित चूर्ण खाने इन के पास पहुँच जाते थे। इन दो के अतिरिक्त अपने कुलपुरोहित को भी मैं बहुत पसंद करती थी। ये नित्य 'पार्थिव' (मिट्टी के शिवलिंग की) पूजा करते। इस पूजा की सामग्री इकट्ठा करना, मिट्टी सान कर शिवलिंग गढ़ने में इन की मदद करना, फिर लड्डू, पेड़े का प्रसाद लेना, यह मेरा परम मनोरंजक कार्यक्रम था।

उस समय तक सिनेमा-थियेटर आदि केवल बड़े शहरों में प्रचलित थे। अपने उस शहर नामधारी कस्बे में तो हम ने इस का नाम भी नहीं सुना था। चाचाजी के कुछ अभिजात्यवर्गीय मुवक्किलों के यहाँ किसी विशेष पर्व पर जब नाटक होते तो वे हमें अवश्य निमंत्रण देते, अपनी मोटरें भेज कर बुलाते (उस समय अँगरेजों और रजवाड़ों के पास ही मोटरें रहती थीं)। इन्हीं के यहाँ 'बिल्वमंगल', 'सतीदाह' आदि नाटक देखे थे।

हमारे नित्य के कार्यक्रम में जो मनोरंजन हमें मिलता था वह या तो चाचाजी के पास कहानी सुनने या प्रज्ञा-

चक्षुजी के पास रामायण, गीता आदि की व्याख्या अथवा उन की स्वरचित कविता का सस्वर पाठ सुनने में मिलता था।

हमारा सांध्य-भोजन बहुत जल्दी समाप्त होता था। गरमियों में चाचाजी तो बँगले के सामने वाले लॉन पर, पान के आकार के सफेद चबूतरे पर अपनी झकाझक सफेद जालीदार मसहरी में लेटते और जब तक इच्छा होती मुसाहबों से बातें करते रहते। एक नौकर पैर दबाता। कभी पंडितों में से कोई एक पौराणिक कथा कहता, विद्यार्थियों में से कोई हुंकारी भरता। वे सुनते-सुनते कब सो जाते, यह तो पता नहीं चलता था, पर हम दो-एक भाई-बहिन पूरी कथा सुन कर ही उठते थे। बँगले के दक्षिणी बरामदे के सामने की जमीन का कुछ भाग मेहँदी की टट्टियों से घिरा था, यहीं हम सब, माँ और पिताजी के साथ सोते थे। माँ, चाची, बुआ आदि बरामदे में और पिताजी, प्रज्ञाचक्षुजी तथा पिताजी के मित्रगण, लॉन पर चौकी-कुरसी आदि पर बैठते थे। दीदी गीता या रामायण पढ़तीं, और प्रज्ञाचक्षुजी किसी भी श्लोक अथवा चौपाई की व्याख्या इस मनोहर ढंग से करते जैसे शास्त्रीय संगीतज्ञ एक ही पद विभिन्न स्वरों में प्रस्तुत करता है।

आह, वे दिन सदा के लिए समाप्त हो गये! वह कोमल कड़ी इस जीवन-शृंखला से अनजाने ही टूट कर न जाने कब गिर गयी! जिस रत्नाभरण-भूषिता, वधवेश-सज्जिता, म्लान... बालिका ने शहनाई की करुण ... और परिजनों, प्रियजनों के अश्रु... परिवेश से अलग हो कर श्वसुर-गृ... लिए प्रस्थान किया था, जहाँ एक ... कीय समारोह के बीच उस का ... किया गया था, वह सब अब कहाँ! 'अच्छे दुलहे पर मोती मैं वारि ...' गाती हुई गौनेहारिनों के दल के ... विभिन्न वाद्ययंत्रों के तुमुलरव के ... जिस पर सास-ननद ने नन्हे-नन्हे ... मोतियों की लड़ियाँ निछावर ... जनसमूह में फेंक दी थीं—आज वह ... उस पुष्प के समान है जिस की पंखुड़ि... शीर्ण-विशीर्ण हो कर धरती पर ... रही हैं। केवल इतना शेष रह गया ... कि भूमि पर पड़े-पड़े वे धूलि-कणों में ... वर्तित हो जायें। पुष्प के जो वृंत ... हरित संपुट में नवकलिका की को... पंखुड़ियों को सँजोये रहते हैं वे ही काला... में उसे त्याग देते हैं। जो प्रभातकाल... वायु उसे झूला झुलाता है, जो सूर्य-रश्मि... उस में रंगीन आभा भर कर उसे ... धीरे विकसित करती हैं, वे ही एक ... उस का रंग-रूप हर कर, उसे वृंत... कर उसे धूल में मिला देती हैं। किस उद्दे... से यह अनाद्यंत सृष्टि-चक्र चल रहा है, यह कौन जानता है! कौन वह कलाका... है जो इस कलाकृति को निरंतर ... रहा है, मिटा रहा है? अंतहीन, उद्देश्यही...

**(मानव सेवा संघ, वृंदाव...**

---
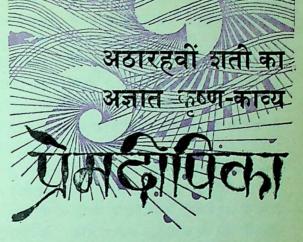
• सुरेश मिश्र

गढ़ा-मंडला के राजा निजामसाहि रानी दुर्गावती के वंशज थे। ये विद्वानों के आश्रयदाता थे। इन का शासन-काल १७४९ से १७७६ ई. तक रहा। इन्हीं के दरबार में बीर वाजपेयी नामक कवि थे, जिन्होंने 'प्रेमदीपिका' काव्य की रचना की थी। तब गढ़ा-मंडला राज्य की राजधानी मंडला थी, जो नर्मदा-तट पर स्थित है। स्थानीय लोकोक्ति के अनुसार मंडला ही प्राचीन माहिष्मती था। बीर कवि मंडला के ही निवासी थे। वे कहते हैं—

**गढ़ा देस माहिष्मती नगरी रेवा तीर**
**व्यास आसरम सुखद अति बसत तहाँ है बीर**
**पुरी रम्य माहिष्मती रेवा तट अभिराम**
**करत गढ़ा की राज तहँ राजा साह निजाम**

'प्रेमदीपिका' में ही लिखा है कि इस के रचयिता बीर वाजपेयी थे—

**श्री हरि कथा परम हितकारी**
**सुजन हिये यह गुनियो**
**बीर बनाई प्रेमदीपिका**
**चित आवै तो सुनियो**

ग्रंथ के अंत में भी लिखा है—**इति श्री बीर बिरचिता प्रेमदीपिका समाप्ता शुभमस्तु।**

बीर वाजपेयी गढ़ा-मंडला राज्य की राजनीति में प्रमुख भाग लेने वाले वाज-पेयी वंश के थे। इन के पिता का नाम कृष्णाकर था—**बाजपेयि बर कुल कलस कृष्णाकर सुत बीर।** बीर वाजपेयी के पितामह रामकृष्ण वाजपेयी नरेंद्र-साहि के समय महत्त्वपूर्ण पद पर थे एवं प्रपितामह कामदेव वाजपेयी प्रेमसाहि तथा उस के पुत्र हृदयसाहि के समय उच्चाधिकारी थे। बीर वाजपेयी के भाई

रघुवंश वाजपेयी निजामसाहि के समय उच्चाधिकारी थे और अनेक बार राजनयिक चर्चा के लिए पेशवा से मिलने पूना गये थे।

'प्रेमदीपिका' की रचना १७६१ ई. (१८१८ संवत) में हुई थी। इस संबंध में 'प्रेमदीपिका' में लिखा है—

**सिंधि ससि बसु बसुमति गनित संबतसर अति चारु**
**शुक्ल पक्ष की अष्टमी सुंदर महिना क्वारु**

'प्रेमदीपिका' एक प्रबंध-काव्य है, जिस में उद्धव-गोपी संवाद और कृष्ण-रुक्मिणी परिचय की कथा लगभग पौने तीन हजार छंदों में वर्णित है। एक प्राचीन पांडुलिपि के आधार पर महाराजपुर, मंडला के एक उदारमना रईस रायबहादुर चौधरी जगन्नाथप्रसाद ने १८९७ ई. में इसे छपाया था। मेरे पास इस की एक छपी प्रति है। 'प्रेमदीपिका' की दो पांडुलिपियों का उल्लेख श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' (भाग १, पृ. ९३) में तथा १९१२ ई. में प्रकाशित 'द फर्स्ट टेरेनियल रिपोर्ट आन द सर्च फार हिंदी मैन्युस्क्रिप्ट' (पृ. ६४, क्र. १४०) में भी है। इन में से पहली पांडुलिपि का लिपिकाल संवत १८३९ (१७८२ ई.) तथा दूसरी का लिपिकाल संवत १८४० (१७८३ ई.) दिया गया है।

ध्यानपूर्वक देखने पर प्रतीत होता है कि छपी प्रति दो पुस्तकों का ... है। कदाचित बीर कवि ने उद्धव... संवाद और कृष्ण-रुक्मिणी परि... पौराणिक प्रसंगों पर दो स्वतंत्र ... रचना की होगी, जिन्हें आगे ... एक ही ग्रंथ में समाहित किया गया ...

'प्रेमदीपिका' की भाषा-शैली, ... व्यंजना और कथा-प्रसंगों की यो... ध्यान से देखने पर इस कथन की ... होती है। उद्धव-गोपी प्रसंग में ... विस्तार का अभाव है और वह ... गीतिका, कवित्त आदि मध्ययुगीन ... के सुपरिचित छंदों में लिखा गया ... इस के विपरीत कृष्ण-रुक्मिणी ... की कथा में अनेक पौराणिक प्रसं... दोहा, चौपाई, पाकरि, कुकुमा, ... स्रवनानंद, बेंड़ी, चंचला, घनाक्षरी ... विविध छंदों में अंकित किया गया ... इस कथा में युद्ध और प्रेम के प्रसंग ... शैली में निबद्ध हैं। अतः प्रतीत है ... कि बीर कवि ने एकाधिक रचनाओं ... निर्माण किया था, जिन्हें लिपि... 'प्रेमदीपिका' में संकलित किया ... इस में संदेह नहीं कि 'प्रेमदीपिका' ... काव्य-परंपरा की अनुपम कृति है।

'प्रेमदीपिका' के प्रणयन के ... बाद बीर वाजपेयी का अंत हो ... बीर वाजपेयी, रघुवंश वाजपेयी ... उन के परिवार का अंत १८वीं ... गढ़ा-मंडला की एक दुःखद कथा ... हुआ यह कि निजामसाहि की मृत्यु ...

सिंहासन पर उन्हीं का एक अल्पायु दासीपुत्र महीपालसिंह जब सत्तारूढ़ हुआ तो निजामसाहि की भावज अर्थात शिवराजसाहि की विधवा रानी विलासकुँवरि को यह रुचा नहीं, क्योंकि वह निजामसाहि के भतीजे नरहरिसाहि को गद्दी पर बिठाना चाहती थी। महीपालसिंह के समर्थक थे—रघुवंश वाजपेयी, वीर वाजपेयी, गणेश पासवान और इन के परिवार के अन्य सदस्य।

महीपालसिंह को सत्ताच्युत करने के उद्देश्य से रानी विलासकुँवरि ने उस के समर्थकों का विनाश करने की योजना बनायी। गणेश पासवान को सपरिवार समाप्त कराने के उपरांत रघुवंश तथा वीर के निवासस्थान को घेर कर जब रानी ने गोली बरसाने का आदेश दिया तो तेजस्वी ब्राह्मणों ने स्वयं अपने परिवार की स्त्रियों की हत्या करके बाहर आ कर युद्ध करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी। रघुवंश तथा वीर के परिवार के १२२ सदस्य इस कांड में मारे गये। बाद में ज्ञात हुआ कि रघुवंश का पौत्र पुरुषोत्तम एवं वीर का पुत्र गंगाप्रसाद जीवित बच गये थे। पुरुषोत्तम को तो परिवार की एक दासी बचा कर ले गयी थी और गंगाप्रसाद घायलों में से जीवित बचा था।

कुछ समय बाद रानी विलासकुँवरि को अपने किये पर पश्चाताप हुआ, तब उस ने पुरुषोत्तम और गंगाप्रसाद को बुलवाया। पुरुषोत्तम को सरौली का परगना जागीर में दिया, जिस से वह जीवनयापन कर सके। गंगाप्रसाद का क्या हुआ ज्ञात नहीं।

मंडला के निकट केहरपुर एवं भंवर्दा ग्राम के बहुसंख्यक वाजपेयी रघुवंश वाजपेयी तथा वीर वाजपेयी के वंश से संबद्ध हैं।

**(स्टेशन रोड, महाराजपुर मंडला, म. प्र.)**

---

**बेचारे भजंता! गाँव में रह कर जब उन के फाके करने की नौबत आ गयी तो उन्होंने दिल्ली में कुछ सीधे-सादे लोगों को मूर्ख बना कर काम निकालने की सोची। पर दिल्ली में जिस पहले व्यक्ति को उन्होंने पुराना किला बेचने की कोशिश की वही उस का 'मालिक' निकला! बड़ी मुश्किल से अपनी जमा पूँजी उसे सौंप कर भजंता बच पाये।**

★

**सागर के तल में दुनिया की सब से लंबी सुरंग १९५८ में जापान में यातायात के लिए खोली गयी थी। साढ़े नौ किलोमीटर लंबी यह सुरंग होंशू और क्यूशू द्वीपों को जोड़ती है।**

(३)

# मछली और मछली

जितनी छोटी, उतनी खोटी! ... दुस्साहसी है यह रिमोरा मछ... अपने माथे पर लगी गद्दी से समु... विशालकाय प्राणियों पर आक्रमण क... से नहीं चूकती । शॉर्क और ह्वेल... दानवाकार मछलियाँ भी इस से आ... रहती हैं।

इस का आक्रमण करने का त... बड़ा निराला है । विद्युत-वेग से आ... कर इतना भयंकर प्रहार करती है... बड़ी-बड़ी मछलियाँ दुम दबा कर भा... नजर आती हैं । यह उन्हें भगा कर... चैन नहीं लेती बल्कि उन का भोजन... स्वयं चट कर जाती है ।
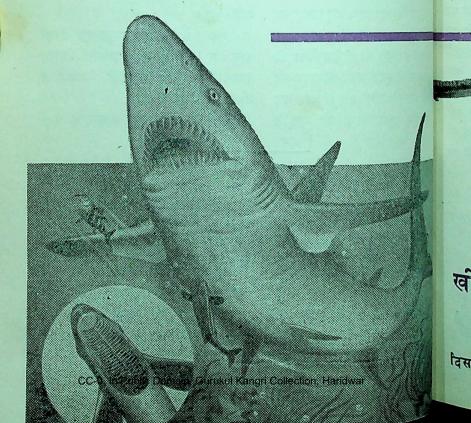
इसी की तरह एक और बौनी मछली है—पायलेट-फिश ! बिना आक्रमण किये ही भोजन प्राप्त करने की कला में यह प्रवीण है। भोजन की तलाश में यह शॉर्क के चारों ओर मँडरा कर उसे परेशान कर देती है। आकार में यह इतनी छोटी होती है कि शॉर्क इस पर आक्रमण करने का विचार ही मन में नहीं लाती। हाँ, इन से घिर जाने पर कभी क्रुद्ध अवश्य हो जाती है।

बड़ी मछली के धोखे में कभी-कभी यह नन्ही-सी, नीली, मखमली मछली समुद्री जहाजों की परिक्रमा करने लगती है तो वह दृश्य देखने लायक होता है।

सचमुच यह खीरा है, खेतों पर उगने-वाला नहीं, समुद्र-तट पर पाया जाने वाला--विचित्र प्राणी ! इस का शरीर भीतर से खोखला होता है, जिस के भीतर मुक्ता-मछली घर बना कर रहती है और भूख लगने पर इस का मांस कुतर-कुतर कर अपना पेट भर लेती है; लेकिन एक बार में उतना ही कुतरती है कि इस के प्राणों को आघात न पहुँचे।

बड़ा स्वादिष्ट होता है--यह खीरा ! जापान के निकटवर्ती सागर-तटों पर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। जापान के निवासी स्वयं ही इसे चाव से नहीं खाते बल्कि चीन को भी निर्यात करते हैं। इस तरह विदेशी मुद्रा अर्जित करने
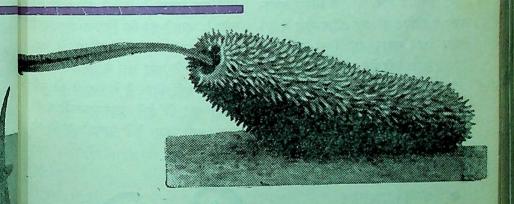
# खीरा सागर का

का यह भी एक साधन है।

यह निरीह प्राणी जीवन भर दूसरों की उदरपूर्ति का माध्यम बनता है, बाजारों में बिकता है, लेकिन बदले में इसे कुछ नहीं मिलता। ●

उन के नाम हैं—सिन्हा और सिम्मी। कुछ और भी हो सकते हैं। कोई गूढ़ अर्थ नहीं है उन का। मात्र व्यक्ति की पहचान का है। लेकिन यही पहचान है जो समस्या पैदा करती है। जैसे कि उस दिन उन के जीवन में कुछ ऐसा घट गया जिसे साधारणतया अघटित की संज्ञा दी जा सकती है। लगा कि उन दोनों ने उस अघटित को सहज भाव से लिया है। पर मैं भी तो उन को पहचानता हूँ। एक पूरा अतीत मैं ने उन का समकालीन रह कर झेला है। इसलिए मैं उस अघटित को उतने सहज भाव से कैसे ले सकता हूँ !

कितना कुछ याद है मुझे ! जैसे उस दिन अचानक सुना था कि सिन्हा हृदय-रोग से पीड़ित हो कर नर्सिंग-होम में है। तुरंत देखने गया। वहाँ जिस व्यक्ति से सब से पहले मेरी भेंट हुई, वह थी सिम्मी। सदा की तरह सादी-सी साड़ी में लिपटी, बिखरे हुए बालों को समेटती हुई, चिंता की कोई रेखा प्रयत्न करने पर भी उस के मुख पर नहीं देख सका था। पूछा था, "क्यों? क्या हाल है सिन्हा का?"

सहज भाव से उत्तर दिया था ने, "पहले से बेहतर है। संकट शायद गया है।"

मैं ने कहा था, "आश्चर्य है कि सिन्हा जैसे व्यक्ति को यह रोग कैसे हुआ!"

सिम्मी ने एक क्षण मेरी ओर था। फिर हठात उस के चेहरे पर उभर आया था। किंचित तीखे स्वर वह बोली, "क्या सिन्हा मनुष्य नहीं है? क्या उसे हर्ष और विषाद नहीं हो सकता? जानबूझ कर आज जो उस की उपेक्षा की जा रही है, जो उसे अपमानित किया जा रहा है, क्या उस का प्रभाव उस पर नहीं पड़ सकता? कितने कृतघ्न हो लोग! जानते हो कि कितना योगदान है सिन्हा का आधुनिक साहित्य के निर्माण में? क्या उस ने भाषा को संस्कार नहीं दिया है? कहानी को दिशा नहीं दी है? उपन्यास-साहित्य को समृद्ध नहीं किया है? समालोचना के

कहानी

• विष्णु प्रभाकर

मानदंड स्थापित नहीं किये हैं ? नयी कविता का जन्म-दाता नहीं है क्या ? वह साहित्य की कौन-सी विधा है जो उस का स्पर्श पा कर नये आलोक में जी उठी है ? और आज क्या लोग उसी के दिखाये हुए मार्ग पर नहीं चल रहे हैं ? लेकिन उस सब का क्या परिणाम हुआ ? यह हृदय-रोग !"

मैं नहीं जानता था कि सिम्मी भी इतना असंयत, उत्तेजित हो सकती है। उस का चेहरा तमतमा आया था और मैं अवाक उसे देखता खड़ा रहा था। दो क्षण बाद साहस बटोर कर इतना ही कह पाया था, "जिस धरती पर हम खड़े हैं उस के अस्तित्व से इनकार कर देने से क्या उस का अस्तित्व मिट जायेगा ?"

सिम्मी बोली थी, "तो सारा जोर लगा कर क्यों उस सब को अस्वीकृत किया जा रहा है जो सिन्हा ने किया ? कितनी साधना, कितनी तपस्या की है उस व्यक्ति ने ! कितना मारा है अपने को और अब आप लोग हैं कि..."

कंठावरोध हो आया सिम्मी का। सिन्हा के प्रति उस की इतनी निकटता से मुझे खुशी हुई थी। भावुकता के क्षणों में उस के चरणों में बैठा उसे देखा भी था। 'महान कलाकार के प्रति उस ने अपने को सर्मपित कर दिया है'—एक दिन आवेश में आ कर उस ने यह कहा भी था। लेकिन आज का यह भावुक आक्रोश, असंयत शिकायत का यह स्वर, क्या यह सब सही था ? सिन्हा ने साधना की थी क्या केवल साहित्य के लिए ? क्या उस साधना के द्वारा उस ने अपनी महत्त्वा-कांक्षा को सिद्ध नहीं करना चाहा था ? क्या उस ने स्वयं को साहित्य पर आरो-पित नहीं कहा था ? भय और विस्मय से उस की ओर देखने वाले व्यक्तियों की संख्या कम कभी नहीं रही, लेकिन यह भी सच है कि उन दिनों उस की उपेक्षा
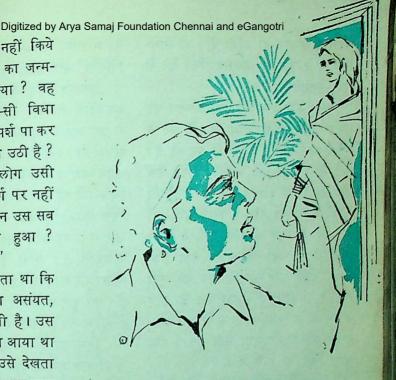
चरम सीमा तक जा पहुँची थी। जो आधुनिक थे वे उस का अस्तित्व मिटा देने के लिए कृतसंकल्प थे...

एक और दृश्य मेरे मानस-पटल पर उभर आता है। वह दृश्य नगर के सब से अधिक धनी-मानी व्यक्ति के घर का है। वहाँ मैं ने वर्षों बाद नमकीन पिश्ते देखे और खाये थे। वह व्यक्ति राजनीति में भी गहरा था और ये पिश्ते बड़ों-बड़ों को उस चक्रव्यूह में फाँस लाते थे। उस दिन सिन्हा उन्हीं को अपना नया खंड-काव्य 'कृषि और संस्कृति' पढ़ कर सुना रहा था। बीच में सहसा उन के छोटे लड़के ने आ कर कहा, 'मैं ने इस खंड-काव्य का पहला भाग नहीं सुना। क्या आप फिर से नहीं पढ़ेंगे?"

सिन्हा झिझका, "फिर से..."

लेकिन वह शब्द उस धनी-मानी के कर्ण-कुहर तक पहुँच पाता, उस से पूर्व ही सिम्मी ने कहा था, "क्यों नहीं पढ़ेंगे, अवश्य पढ़ेंगे।"

और सिन्हा ने पूरे खंड-काव्य का फिर से पाठ किया था और भोजन के उपरांत सिम्मी ने कहा था, "आजकल लोग पुस्तकें खरीदना पाप समझते हैं। हम प्रकाशन आरंभ करके फँस गये हैं। हाथ में पैसा नहीं है और इन्हें रोगों ने घेर रखा है। आप का तो अधिकारियों पर अच्छा प्रभाव है। कहिये न कि इस खंड-काव्य की कम-से-कम तीन हजार प्रतियाँ खरीद लें और यह तो विदेशों में भी जा सकता है। भारतीय प्रतिभा का इस से सुंदर प्र निधित्व और कौन-सा ग्रंथ करेगा..."

प्रस्ताव जिन से किया गया था, मुसकराये थे और इसीलिए कृषि-विभ ने उस खंड-काव्य की तीन हजार प्रति खरीद लीं। इस के अतिरिक्त उन व्य अपने व्यय से पाँच हजार प्रतियाँ विदेशों भिजवायी थीं, तब सिन्हा ने मुझ से कहा था "इस सिम्मी को क्या कहूँ? कैसा जीवट उस में? पर भाई मुझे तो इन सब का से अरुचि है। मैं तो किसी निर्जन स्था में जा कर साधना करने की कामना कर हूँ। सब कुछ छोड़ कर भाग जाना चाह हूँ—हिमालय के किसी शांत वन-प्रांतर में।

हिमालय के वन-प्रांतर में सिन्हा व में दो बार अवश्य जाते हैं, हाँ इस के लि उन्हें किसी धनी-मानी को अपनी न कृति अवश्य सुनानी पड़ती है। इसी मा से हो कर वे सरकारी खर्चे पर विदेशों भी हो आये हैं। सांस्कृतिक संस्थान मंत्री के यहाँ भोज पर मैं ने सिम्मी को कहते सुना था, "आप-जैसे पारखि के रहते हुए कैसे-कैसे मूर्ख विदेश च जाते हैं। विदेशों में वे ही व्यक्ति जा चाहिए जो देश की संस्कृति के सच्चे प्रति निधि हों, जो देश की आत्मा को कलंकि न करें। क्षमा करें, मैं स्पष्ट वक्ता हूँ कहूँगी, राजनीति तोड़ती है, जोड़ते साहित्य और संस्कृति। आप की कूटनी चलती रहे, लेकिन वहाँ के बुद्धिजीवि को इस देश के प्रति आकर्षित करने

लिए बुद्धिजीवी ही जाने चाहिए और उन में से भी वे जो सचमुच साधक हों।"

मंत्री महोदय मुसकराये थे, बोले थे, "मैं जानता हूँ सिन्हा ने कम साधना नहीं की।"

सिम्मी अंदर से गद्‌गदा आयी थी, लेकिन ऊपर से अभिनय के स्वर में उस ने दीर्घ निःश्वास के साथ कहा था, "कौन पूछता है जी इस साधना को आज के युग में ?"

और उस बार जो प्रतिनिधिमंडल विदेशों में गया था उस के नेता थे डॉ. शिवेन्द्रकुमार सिन्हा। तब उस ने एक वक्तव्य दिया था, "इस प्रकार के प्रदर्शनों में मेरी रुचि नहीं हो सकती। मैं तो मौन साधक हूँ, लेकिन संस्थान के मंत्री हैं कि उन्होंने मुझे निरुत्तर कर दिया। कहा कि तुम्हारे-जैसे साधक ही देश के सच्चे राजदूत हैं। तुम ही लोग निर्माण करते हो देश की संस्कृति का। भविष्य को रूप देने वाले तुम्ही लोग विदेशों में नहीं जाओगे तो और कौन जायेगा ? ऐसी स्थिति में जाने की स्वीकृति देने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता था ?"

वे गये और न जाने किस मार्ग से हो कर सिम्मी भी उन के साथ गयी। जब सम्मान और सामान के बोझ से दबे-दबे वे लौटे तो विभिन्न देशों में उन की कई पुस्तकों के अनुवाद का प्रबंध हो चुका था। मुझे वह दृश्य याद है जब सिम्मी ने 'राजनयिक पुरस्कार-समिति' पर तीव्र आक्रमण करते हुए उस के एक सदस्य को चुनौती दी थी। कहा था, "तुम्हारी पुरस्कार देने की पद्धति धोखा-धड़ी है। तुम्हारी सूची में जितने नाम हैं वे सब फॉसिल हैं—चुके हुए, छूछे लोग! क्या इस बार तुम ने सिन्हा की पुस्तक को जान-बूझ कर अस्वीकृत नहीं कर दिया है ? डॉ. वाजपेयी खुले आम कहते हैं कि जब तक मैं इस समिति में हूँ तब तक सिन्हा को पुरस्कार नहीं मिल सकता। आप यह सब सुन लेते हैं। साहित्य में ही हिटलर-वाद चलता है और आप उस के विरुद्ध मोर्चा नहीं लेते। यह अन्याय कब तक होता रहेगा ?"

अगर यह सचमुच अन्याय था तो तीन साल तक बराबर होता रहा। सिन्हा की पुस्तक बराबर अस्वीकृत होती रही, लेकिन सिम्मी थी कि हार नहीं मान सकती थी। चौथे साल जब डॉ. वाजपेयी का कार्यकाल समाप्त हो गया तो वह सदस्यों को प्रभावित करने में सफल हो गयी। उस वर्ष का साहित्य-पुरस्कार मिला सिन्हा को।

सिन्हा ने सदा की तरह उस दिन भी एक वक्तव्य प्रसारित करते हुए कहा था, "ओह, यह पुरस्कार! क्या मूल्य है इन का साधक के लिए ? क्या ये सचमुच कोई अर्थ रखते हैं उस के लिए ? क्या यथार्थ में सम्मानित करते हैं उसे ? मैं ने इसे अस्वीकृत करना चाहा था, लेकिन वह भी तो निरा दंभ ही होता! पुरस्कार

मेरे पास चल कर आया है, वह रहे। मैं उसे लेने के लिए तो नहीं गया था..."

किसी साहसी ने उस वक्तव्य को लेकर सिन्हा पर तीव्र आक्रमण भी किया था। लेकिन समुद्र में जैसे किसी ने ढेला फेंका हो। उस की उत्ताल तरंगों में उस ढेले से उठी लहर का आभास तक नहीं मिला और सिन्हा तथा सिम्मी सहज-सजग अपने मार्ग पर बढ़ते रहे। मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ जब मैं ने अपने केरल-प्रवास में एक दिन आकाशवाणी से सुना कि हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. शिवेन्द्रकुमार सिन्हा को महामहिम राष्ट्रपति ने पद्मभूषण से अलंकृत किया है। लौट कर जब उन्हें बधाई देने गया तो चटाक से सिम्मी ने कहा था, "तुम ने हमें इस काबिल भी नहीं समझा कि एक तार ही भेज देते!"

मैं हतप्रभ होऊँ इस से पहले ही सिन्हा ने उपेक्षा के स्वर में कहा, "छोड़ो-छोड़ो, क्या यह अलंकरण इस योग्य था कि मुझे बधाई का तार दिया जाता? मैं तो स्वयं लज्जित हूँ अपने पर। मैं ने उसी दिन मना क्यों नहीं कर दिया! लेकिन क्या यह सब पाखंड नहीं होता? जो चल कर आता है उसे स्वीकार कर लेने में ही शोभा होती है। फिर यह अलंकरण मेरी शोभा है या मैं इस अलंकरण की शोभा हूँ, इस का निर्णय तो काल के हाथ में है। हम क्यों चिंतित हों?"

मैं सुनता रहा और मुसकराता रहा और इस सब को सहता रहा। मैं ही क्यों, समूचा युग इस सब को सहता रहा और वह सहज भाव से वह सब स्वीकार करता रहा जिस से वह घृणा करने का दावा करता था। तभी एक दिन अचानक मैं ने पढ़ा था कि सिन्हा को भाषण देने के लिए समुद्र पार के अनेक देशों के विश्वविद्यालयों के निमंत्रण आये हैं और वह तीन वर्ष के लिए चला गया है। उस समय सिम्मी ने कहा था, "पहली बार एक सही व्यक्ति विदेशों के विश्वविद्यालयों में गया है।"

तीन वर्ष लंबे होते हैं, लेकिन उन का संबंध अपने से इतर व्यक्ति के साथ हो तो वे ही बहुत छोटे हो जाते हैं। सचमुच जब कल मैं ने एक सभा में सिन्हा को एक अत्यंत आधुनिका के साथ देखा तो अवाक हो कर पूछा, "कब लौटे आप?"

सिन्हा ने उत्तर दिया, "दो हफ्ते पहले ही तो आया हूँ।"

और फिर उस आधुनिका की ओर मुड़ कर कहा, "अरे इन से मिलो! यह हैं हर्षवर्द्धन! नाम सुना है?"

आधुनिका व्यंग्य से मुसकरायी। बोली, "क्यों, मुझे क्या ऐसा मूर्ख समझते हैं? इन की गाँधीवादी कहानियाँ मैं ने बहुत पहले पढ़ी थीं। उन्हीं के माध्यम से मेरा साहित्य से प्रथम परिचय हुआ था।"

और यह कहती हुई वह सिन्हा को घसीटती हुई वहाँ से ले गयी। मैं उस ठंडी उष्मा को अवाक देखता रह गया। एक

मित्र जो उस दृश्य के साक्षी थे, बोले, "यह सिन्हा की नयी प्रेमिका है। इसी के साथ वह अब फिर 'स्टेट्स' वापिस जा रहा है।"

मैं सहसा समझ नहीं पाया। मित्र ने फिर कहा था, "आप शायद सिम्मी की बात सोच रहे हैं। सिन्हा अब उस के साथ नहीं रहता।"

उसी संध्या को मैं सिम्मी से मिलने गया। उस के मकान की दीवारें, जो सिन्हा ने उस के लिए बनवायी थी, बिलकुल भी सर्द नहीं थीं। सदा की तरह एक सादी-सी साड़ी में बिखरे हुए बालों की लटों को सजहेते हुए उस ने मेरा स्वागत किया। उस समय वह कहीं जाने ही वाली थी। मैं ने पूछा, "कहीं जा रही हैं?"

"जी हाँ, फिल्म फाइनेंस कॉर्पोरेशन की आज एक विशेष बैठक है।"

चकित हो कर मैं ने उस की ओर देखा। वह उसी सहज भाव से बोली, "मंत्रालय का आदेश तो पालना ही था हर्ष भाई, सो यह दायित्व ओढ़ लिया है।"

मैं मुसकरा उठा। बोला, "कड़वा दायित्व स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।"

सुन कर वह बड़े जोर से हँसी। लेकिन मैं उस में योग नहीं दे सका। क्योंकि मैं किसी और ही काम से आया था। अनजान बनने में मुझे थोड़ी-सी कठि[नाई] हुई, लेकिन मैं ने पूछा, "सिन्हा कहाँ है?"

सिम्मी सहज भाव से बोली, "[वे] अब यहाँ नहीं रहते।"

मैं ने कहा, "यहाँ नहीं रहते! क्या मतलब?"

सिम्मी बोली, "मतलब यही कि अब वे यहाँ नहीं रहते। रहेंगे भी नहीं। हम लोगों के मार्ग अब अलग-अलग दिशाओं से हो कर जाते हैं।"

मैं ने कहा, "लेकिन..."

सिम्मी सहसा बोली, "बहुत कुछ कहा-सुना जा सकता है, लेकिन आप के लिए सब बेमानी है। महत्वाकांक्षा असीम होती है और व्यक्ति की शक्ति है सीमित। इसलिए वह नये-नये शक्ति-स्रोतों की खोज में रहता है। सो दो महत्वाकांक्षि[यों] में से एक-न-एक को तो पहल करनी ही थी। मुझे दु:ख नहीं हुआ है, यह मैं नहीं कहूँगी; लेकिन इतनी शक्ति मुझ में अब है कि मैं किसी की सहायता और सहा[]नुभूति के बिना जी सकूँ।"

जाते समय वह मुसकरायी थी और मुझे लगा था कि पीड़ित और सर्द मैं स्वयं हूँ और इसलिए हतप्रभ और अवाक हूँ।

**(८१८ कुंडेवालान, अजमेरीगेट, दिल्ली-६)**

---

**भिखारी : आप की पड़ोसिन ने मुझे अभी दो रोटियाँ दी हैं। आप मुझे कुछ नहीं देंगी ?**

**महिला : हाँ जरूर, मैं तुम्हें हाजमे की गोली दूँगी।**

• डब्ल्यू. गैर

तीन सौ वर्ष पूर्व !

भूकंप का एक भयंकर विस्फोट हुआ और पूरा-का-पूरा शहर सागर-तल में समा गया !

यह जमैका का पोर्ट-रायल बंदरगाह था, जिस का उपयोग विशेष रूप से स्पेन के समुद्री डाकू किया करते थे। भूकंप के समय डाकुओं के कई जहाज यहाँ खजानों से लदे खड़े थे । भूकंप के बाद वे भी समुद्र में डूब गये ।

और अब तीन सौ वर्ष पश्चात मैं ने यह प्रतिज्ञा की कि डूबे हुए जहाजों को मैं समुद्र के तल से निकाल लूँगा । जहाज ही नहीं, पूरा बंदरगाह भी बाहर निकालने में सफल होऊँगा । लोगों को इस पर आश्चर्य हुआ !

१६९२ में पोर्ट-रायल संभवतः संसार का सब से बड़ा बंदरगाह था । १६५५ में उसे अँगरेजों ने स्पेन से एक छोटी-सी लड़ाई के बाद छीना था, किंतु अँगरेजों ने स्पेन को बंदरगाह का उपयोग करने की अनुमति दे दी थी । समुद्री डाकुओं के कारण वहाँ अथाह धन-संपत्ति थी। कहते हैं वहाँ का हर पाँचवाँ मकान जुआघर था और हर दसवाँ घर मदिरालय ।

पोर्ट-रायल का बंदरगाह आज से तीन सौ वर्ष पूर्व इतना बड़ा था कि वहाँ पाँच सौ जहाज एकसाथ खड़े हो सकते थे । सामान्यतः ये जहाज समुद्री डाकुओं के होते थे और मजे की बात तो यह है कि ब्रिटिश सरकार इन लुटेरों की रक्षा ही नहीं करती थी बल्कि बाहरी आक्रमण के समय लुटेरों की ओर से लड़ती भी थी ।
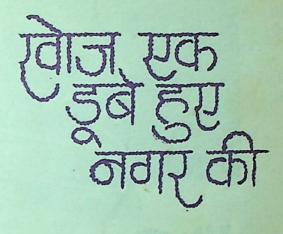
भूकंप आने से पूर्व बंदरगाह की स्थायी जनसंख्या आठ हजार थी और दो हजार से अधिक वहाँ मकान थे । उन में कई तिमंजले-चौमंजले थे । कुछ मकान तो लंदन के धनिकों के महलों से भी अधिक सुंदर थे । उन में सोने-चाँदी और रत्नों से भरे संदूक रखे रहते थे । वह सारा धन समुद्री व्यापारी जहाजों को लूट कर प्राप्त किया जाता था ।

पोर्ट-रायल, वैभव का केंद्र बना हुआ था । रंगरेलियों के लिए वह दुनिया में प्रसिद्ध था । किसी ने सपने में भी न सोचा
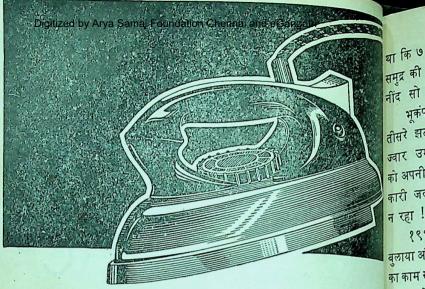
# क्लियरटोन स्वचालित इस्त्री बिजली बचाती है

इम्पीरियल स्वचालित इस्त्री

- २३०/२५० वोल्ट्स एसी या एसी।डीसी पर कार्य करती है।
- ८०० वाट्स की है।
- वजन २.७ किलो है।
- समान रूप से गरम होती है।

क्लियरटोन–गृहलक्ष्मी के
सहायक घरेलू उपकरण

**नेशनल रेडियो एण्ड इलेक्ट्रॉनिक्स कम्पनी लिमिटेड**

जनरल रेडियो एण्ड एप्लाइंसेस डिवीजन

बम्बई • कलकत्ता • दिल्ली • मद्रास

था कि ७ जून, १६९२ को वह पूरा नगर समुद्र की गोद में सदा के लिए मौत की नींद सो जायेगा ।

भूकंप के केवल तीन झटके आये और तीसरे झटके के बाद समुद्र से प्रलय का ज्वार उमड़ा और उस ने समूचे शहर को अपनी बाँहों में समेट लिया । विनाश-कारी जल के अलावा वहाँ कुछ भी शेष न रहा !

१९६६ में मुझे जमैका सरकार ने बुलाया और उस नगर को बाहर निकालने का काम सौंपा । काम असंभव-सा लगता था, लेकिन मैं ने उसे स्वीकार कर लिया । आरंभ में मैं ने कल्पना भी न की थी कि जब मैं समुद्र-तल से डूबे हुए नगर का मलबा निकालूंगा तो मुझे अरबों डालर की संपत्ति भी प्राप्त होगी ।

सब से पहले मैं ने समुद्र के किनारे ठीक उस स्थान पर दो सौ फुट लंबा, तीन सौ फुट चौड़ा समुद्री टुकड़ा अपने काम के लिए चुना जहाँ कभी पोर्ट-रायल बसा था । मुझे सरकार की ओर से नगर का प्राचीन मानचित्र भी उपलब्ध कर दिया गया था । मानचित्र की सहायता से मुझे पता चला कि उस स्थान पर कभी समुद्री डाकुओं के मकान थे ।

पहली मई, १९६६ को हमारे गोता-खोर समुद्र में उतरे । प्रातः से दोपहर तक काम होता रहा । दोपहर को जब मैं ने समुद्र की तह से निकली हुई चीजों का निरीक्षण किया तो उस में चाँदी-सोने के अनगिनत बरतन, टूटी हुई तलवारें, संदूक तथा मकानों की मजबूत खिड़कियाँ थीं । मैं ने संदूक खोले तो कुछ में सड़े-गले कपड़े, शीशे के टूटे हुए बरतन और स्त्रियों के सिंगार के प्रसाधन थे । एक संदूक से तो पुर्तगाली मदिरा से भरी हुई बाईस बोतलें भी निकलीं, जो बिलकुल असली हालत में थीं । तीन सौ वर्ष पुरानी मदिरा की ये बोतलें अवश्य ही सोने की सलाखों से अधिक मूल्य-वान थीं ।

शाम तक हमें कुछ अन्य वस्तुएँ मिलीं, पर ये अधिक मूल्यवान न थीं । सरकार का प्रतिनिधि मेरी टीम के साथ मौजूद था, इसलिए मैं ने सामान की सूची बनवा कर सभी वस्तुएँ उस के हवाले कर दीं । मैं ने केवल अपने लिए मदिरा की एक बोतल रोक ली थी ।

दूसरे दिन मुझे समुद्र में लकड़ी और लोहे से बना हुआ एक पूरा मकान मिल गया । भूकंप के तीव्र झटके ने उस पूरे मकान को जड़ से उखाड़ कर समुद्र में डुबो दिया था । उस मकान का फर्श भी लकड़ी का था, इसलिए मुझे उस मकान में रखा सारा सामान भी मिल गया । हाँ, यह सारा सामान सड़ कर बिलकुल खराब हो चुका था ।

मकान को पा कर मेरी खुशी की सीमा न रही । अवश्य ही यह मकान जमैका संग्रहालय की एक बहुत बड़ी पूंजी बनने जा रहा था ।

पंद्रह दिन तक मेरे गोताखोर निरंतर काम करते रहे। उस समय हमें हजारों चीजें मिलीं। ये सारी चीजें पोर्ट-रायल की खोयी हुई प्रतिष्ठा की पुकार-पुकार कर घोषणा कर रही थीं। मैं उस सामान के अतिरिक्त अब तक करोड़ों रुपये के हीरे-जवाहरात और सुनहरी मुहरें निकाल चुका था।

उन पंद्रह दिनों में मैं स्वयं लखपति बन चुका था, क्यों कि जिस अनुबंध के अंतर्गत मैं समुद्र की गहराइयों से डूबा हुआ नगर निकाल रहा था, उस में यह भी लिखा था कि मैं समुद्र से जितना भी धन निकालूंगा उस का आठवाँ भाग मुझे मिलेगा।

पंद्रह दिन के बाद मैं ने अपने कर्मचारियों को दो सप्ताह की छुट्टी दे दी। मैं चाहता था कि वे आराम कर लें... आगे अधिक मुस्तैदी से काम कर...

पंद्रह दिन बाद गोताखोर पुनः... पर लग गये और फिर डूबे हुए नग... निकालने का काम अगले दो वर्ष तक... रहा, यहाँ तक कि समुद्र को वि... खँगाल डाला। मैं ने समुद्र की तह में... हुई प्रत्येक वस्तु बाहर निकाल ली।... अत्यधिक धन मिला। अतीत की... वस्तुएँ भी प्राप्त हुईं, साथ ही मनुष्य... बहुत-से पिंजर भी।

महीनों तक जमैका में उस डूबे... नगर की प्रदर्शनी होती रही और... अनथक संघर्ष की सराहना भी क... हुई। जब मैं जमैका से वापस आया... मैं विशेष चर्चा का विषय बन चुका... आज मेरी गणना अरबपतियों में होती...

---

उस दिन इस्लामाबाद में 'ब्लैकआउट' का अभ्यास होने वाला था। एक विदेशी पर्यटक ने एक दुकानदार से पूछा, "आज तो 'ब्लैकआउट' होने वाला है। सायरन कितने बजे बजेगा?"

"सायरन नहीं बजेगा साहब?"

"क्यों? लोगों को पता कैसे चलेगा कि 'ब्लैकआउट' हो गया?" विदेशी ने आश्चर्य में पूछा।

"पिछले दिनों भी 'ब्लैकआउट' हुआ था साहब! जब साढ़े आठ बजे सायरन बजा तो लोग-बाग बत्तियाँ जला-जला कर घर से निकल आये। दूसरे दिन नागरिकों का एक शिष्ट-मंडल सदर यह्या खाँ से मिला और शिकायत की कि सायरन की आवाज से लोगों की नींद में खलल पड़ता है... बस, तभी से हुक्म हो गया है कि 'ब्लैक-आउट' वाले दिन भी सायरन न बजाया जाये," दुकानदार ने बताया।

# प्रवेश

"जन्म ११ मई, '५३। जानकी देवी कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी ऑनर्स (बी. ए. फाइनल) की छात्रा हूँ। कोर्स की पुस्तकें पढ़ने के अतिरिक्त संसार के अनेक नीरस कार्य करने की क्षमता है। अभाव नहीं देखे, परंतु अभावों में जीवन घसीटते करोड़ों लोगों के बारे में महसूस किया है, इसीलिए कविता लिखती हूँ। भविष्य में विश्वास नहीं, अतः लाखों युवाओं की भाँति 'कुछ बन जाने' के दिवास्वप्न कभी नहीं देखे। घूमने का शौक है। विचार है—आगामी वर्ष विदेश जाने का।"

## मेरी प्रवृत्ति

पुराने पथ से ऊब कर मैं
नयी राह का निर्माण करूँगा—और
उस पर चलने लगूँगा
पक्की सड़क बनवाऊँगा
छायादार वृक्ष लगवाऊँगा
राह में बिछे पत्थरों को रँग डालूँगा
पत्तों पर पड़ती सूरज की सुनहरी धूप को
एक नवीन व्यक्तित्व दे दूँगा
सब कुछ नया होगा
सब कुछ ताजा होगा
थोड़ी देर के लिए उन में खो जाऊँगा
पर फिर
उसी राह पर चलता हुआ
उन्हीं पत्थरों को रँगता हुआ
उसी धूप का नवीनीकरण करता हुआ
वही छायादार वृक्ष लगवाता हुआ
वही—मैं
ऊब जाऊँगा
निराश हो जाऊँगा—और
भ्रमित-सा
अपनी जंग-लगी आँखों से
एक और नयी राह टटोलने का
भरपूर यत्न करने लगूँगा

—इन्द्रजीत सैम्बी—
(२/२६२७ शादीपुर, पश्चिमी पटेलनगर,
नयी दिल्ली—८)

कार-चालक बड़े सधे हाथों से कार चला रहा था कि एकाएक स्कूटर-सवार गलत दिशा से आ कर कार से भिड़ गया। सेकंडों में ट्रैफिक पुलिस का इंस्पेक्टर वहाँ पहुंच गया और कार-चालक का नाम-पता नोट करने लगा। इस पर कार-चालक ने कहा, "आप ने तो देखा होगा कि मैं बिलकुल सही दिशा में जा रहा था...गलती मेरी नहीं थी, तब भी आप कहते हैं कि मेरी गलती थी !"

"बिलकुल !"

"लेकिन क्यों ?"

"क्यों ? क्योंकि इस स्कूटर-ड्राइवर के पिता नगर-निगम में सभासद हैं, क्योंकि इस का भाई डी. एस. पी. है और क्योंकि मैं इस का बहनोई हूँ," इंसपेक्टर ने बताया।

★

रंगरूट ने कहा , "मुझे नये जूते दिलवा दीजिये, इन जूतों को पहने कई महीने हो गये हैं।"

"नहीं, अभी ये जूते घिसे नहीं हैं।"

"घिसे नहीं हैं ! साहब, अगर इन जूतों को पहने हुए मेरा पाँव दस के सिक्के पर पड़ जाये तो मुझे यह तक मालूम हो जाता है कि ऊपर सन है या सिक्का !"

★

महाशयजी रोज ट्रेन से दफ्तर जाते थे। एक बार वे ट्रेन छूटने से एक घंटा पूर्व स्टेशन पर पहुँच गये। जिस दुकान से वे सिगरेट खरीदते थे उस के मालिक ने पूछा, "आज इतनी जल्दी कैसे आ गये महाशयजी ?"

"भाई, मेरी याददाश्त कमजोर हो चली है। स्टेशन पर आ कर ही मुझे याद आता है कि 'यह चीज घर छूट गयी ... फलाँ चीज दफ्तर ले जानी थी' वगैरा, वगैरा। आज दफ्तर में मुआयना होने वाला है, सो एक घंटा पहले मैं आज इसलिए आ गया हूँ ताकि दफ्तर की कोई चीज अगर घर भूल आया होऊँ तो दौड़ कर ले आऊँ।"

एक महिला बस में चढ़ी और महिलाओं की सीट से एक पुरुष को उठा कर वहाँ बैठ गयीं। कंडक्टर ने टिकट के लिए पूछा। महिला ने बैग खोला, पर्स निकाला, बैग बंद किया, पर्स खोला, अठन्नी निकाली, पर्स बंद किया, बैग खोला, पर्स अंदर रखा, बैग बंद कर दिया।

कंडक्टर को अठन्नी दी और कंडक्टर ने टिकट के साथ दस पैसे का सिक्का वापस किया।

महिला ने बैग खोला, पर्स निकाला, बैग बंद किया, पर्स खोला, पर्स में दस का सिक्का रखा, पर्स बंद किया, बैग खोला, उस में पर्स रखा, फिर बैग बंद किया और कंडक्टर से बोलीं, "रोको... यहीं उतरना है।"

★

एक महिला अपने सात वर्षीय बेटे के साथ स्टेशन आयीं, और पूछताछ के दफ्तर में बैठे क्लर्क से पूछा, "दिन में आगरा के लिए अंतिम ट्रेन कितने बजे जाती है?"

"दत बत ते बावन मिनत पर, दनता एतप्रेत," बाबू ने जवाब दिया। महिला ने कुछ ही देर में लौट आयीं और फिर यही प्रश्न किया।

"दत बत ते बावन मिनत पर दाने वाली दनता एतप्रेत तो थूत दयी बैनदी! अब थाम तो पाँत बत ते थत्रा मिनत पर दी. ती. एतप्रेत ते पैंले तोई त्रेन नईं दायेदी..."

"मुझे ट्रेन की कोई चिंता नहीं है भाईसाहब। बात तो यह है कि मेरे मुन्ने को आप का 'दत बत ते बावन मिनत पर' कहना बहुत अच्छा लगता है।" महिला ने अपने बार-बार आने का कारण बताया।

★

महिला बड़ी तेजी से कार चला रही थीं। रास्ते में बिजलीघर के कर्मचारी एक खंभे पर चढ़े हुए कुछ मरम्मत कर रहे थे। उन्हें देख कर महिला बुदबुदायीं, "बेवकूफ लोग! समझते हैं कि मैं ने पहले कभी कार नहीं चलायी!"

विश्व में सब से महँगी और शानदार कार कौन-सी है, इस बारे में अनेक बार बहसें हुआ करती हैं। विशेषज्ञों की राय में रॉल्स रॉयल फैंटम—६ विश्व की सर्वाधिक महँगी कार है। लंदन में इस कार की कीमत २,३६,२१७ रुपये के बराबर है। इस के बाद नंबर आता है रॉल्स रॉयस—५ का, जिस की कीमत २,००,१६० रुपये है। रॉल्स रॉयस—५ के बाद मोंतेवर्दी—३७ एस. एल. का नंबर है, जिस की कीमत १,८८,१०० रुपये है। विश्व में प्रति वर्ष केवल १२ मोंतेवर्दी गाड़ियाँ बनायी जाती हैं। इस गाड़ी का वजन दो टन से भी अधिक है और
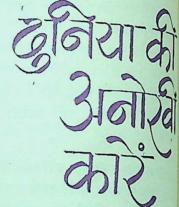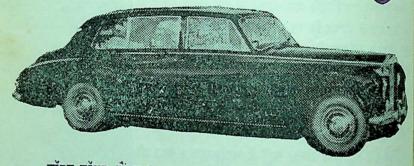
रॉल्स रॉयस फैंटम-६

यह चालू होने के १६ सेकंडों के भीतर १०० मील प्रतिघंटा की रफ्तार पकड़ लेती है। इस कार की अधिकतम रफ्तार १५० मील प्रतिघंटा है। १२० मील प्रतिघंटा की चाल से भी यह उतनी ही आरामदेह है जितनी कि ६० मील प्रतिघंटा की रफ्तार से। दो अन्य कारें है— टाइप-टी जिस की कीमत १,८६,००० रुपये है तथा मसेराती गूबर जिस का मूल्य १,८३,००० रुपये है।

लेकिन यदि यह निश्चय करना हो कि विश्व की सब से विशिष्ट प्रकार की कार कौन-सी है तो लागोंडा का नाम ही लेना पड़ेगा। अब तक विश्व में केवल

एक लागोंडा कार बनायी गयी है और यह आस्टिन मार्टिन लागोंडा लिमिटेड के करोड़पति अध्यक्ष सर डेविड ब्राउन की निजी कार है। कंपनी के अनुसार कार की कीमत का सही अंदाजा कठिन है।

प्रथम विश्वयुद्ध के तुरंत बाद कार-निर्माताओं ने नये ढंग की शानदार कारें बनाना शुरू कर दिया था। इन में सब से प्रसिद्ध 'गोल्डेन बग' कार थी जिस का संक्षिप्त नाम 'लरोयेल' पड़ गया था। इस के निर्माता इटली के श्री एटोरी बुगाती थे। उन्होंने इस कार का निर्माण जान-बूझ कर बहुत सीमित संख्या में कराया। छह साल में ऐसी केवल आठ कारें बनायी गयीं, जो स्पेन , बेल्जियम और रूमानिया के शाहों को वेची गयी थीं। सवा दो फुट लंबी इस कार में ७७ हार्सपावर का इंजन लगा है और यह गाड़ी एक गैलन पेट्रोल में छह मील का ही सफर तय करती है। इस कार की खिड़कियों पर गोली-अवरोधक शीशे लगे हुए थे और इस के पीछे मशीन गन फिट की जा सकती थी।

१९६१ के वर्ष तक विश्व की सब से महँगी कार रॉल्स रॉयस का फैंटम-५ माडल था जिस पर लागत आयी थी १,८०,००० रुपये। इसे बनाने में एक वर्ष लगा और इस का करोड़पति मालिक इस पर लगी धूल झाड़ने के लिए भी मूल्यवान मिंक फर के बने झाड़नों का प्रयोग करता था। आरामदेह कारों के मामले में लेंचेस्टर कार का जवाब नहीं और बेंटले कारें सर्वाधिक तेज कारें मानी जाती हैं।

दूसरे विश्व युद्ध के पूर्व यूरोप के देशों में बढ़िया-से-बढ़िया कार बनाने की होड़ लगी रही। उस जमाने में ब्रिटेन की रॉल्स रॉयस विश्व की सब से बेहतरीन कार समझी जाती थी। ब्रिटेन के साथ हर बात में होड़ करने वाले जरमनी ने मर्सीडीज कार का निर्माण किया जो उन दिनों संपन्नता का प्रतीक बन गयी। अमरीका में भी ड्यूसेनबर्ग कार का निर्माण किया गया।

**राष्ट्रपति की नयी मर्सीडीज बेंज कार जो काफी चर्चा का विषय रही**

अमरीका में, जो विश्व की कार-राजधानी कहा जाता है, अनेक भव्य कारों का निर्माण हुआ है।

राष्ट्रपति केनेडी की हत्या के कारण जरूरी हो गया था कि राष्ट्रपति की निजी कार गोली-अवरोधक भी हो। इसलिए राष्ट्रपति की कार पर १५ लाख रुपया खर्च कर उसे पूरी तरह गोली-अवरोधक बना दिया गया।

उस के पाँच साल बाद फोर्ड कंपनी ने १२ लाख रुपये की लागत से अमरीकी राष्ट्रपति के लिए एक और कार बनायी। इस पर न केवल गोली-अवरोधक शीशे लगे हुए थे बल्कि सारी कार ही एक प्रकार से कवचयुक्त थी। एक विशेषज्ञ की राय में चार टन भारी और सवा दो फुट लंबी यह लिंकन कार न केवल पूरी तरह बम-अवरोधक तथा गोली-अवरोधक है बल्कि इस में सभी सुरक्षात्मक उपाय किये गये हैं। इस कार की खूबियाँ हैं—३४० हार्स-पावर का शक्तिशाली इंजन, गोली लगने पर भी न बैठने वाले टायर, बाहर खड़ी जनता को संबोधित करने के लिए एक माइक्रोफोन तथा खिड़कियों पर नये प्रकार का शीशा जो ४० मिली मीटर के बम को भी नाकाम कर देता है। इन सब सुविधाओं से युक्त कार के लिए राष्ट्रपति को केवल ७५० रुपये मासिक देना पड़ता है।

भविष्य में कारें कैसी होंगीं इस का अनुमान 'गोल्डन सहारा' से लगाया जा सकता है जो 'कल की अमरीकी कारें' प्रदर्शनी में रखी गयी थी। पाँच ... रुपये की कीमत की यह कार दूरस्थ नि... त्रण-केंद्र से संचालित होती है और ... मौखिक आदेश का पालन करती ... इस के बारे में लिखा गया है—क... कीजिये, यह कार आप के घर के ... खड़ी है। आप इस का प्रयोग करना चा... हैं। अतः घर से बाहर निकलते हुए ... कहेंगे—दरवाजे खोलो। कार के दर... स्वतः खुल जायेंगे और आप प्रवेश करें... इसी प्रकार 'दरवाजे बंद करो', '... स्टार्ट करो' आदि सभी आदेशों का ... पालन होता जायेगा। अपनी मंजिल ... पहुँच कर आप को केवल इतना क... होगा 'रुको'।

इस कार की खूबियाँ इतनी ही न... हैं। इस की बनावट पर नजर डा... आप का दिल खुश हो जायेगा। इस ... ऊपरी ढाँचा मोती की तरह चमकता है... अंदर २४ कैरट सोने का काम किया ग... है। फर्श पर सफेद मिंक बिछा हुआ है... टायर सुनहरे रंग के ग्लास-फाइबर (का... के तंतुओं) के बने हैं। इतना ही नहीं, ... के अंदर एक राडार-यंत्र भी लगा है, ... सड़क की सारी बाधाएँ एक छोटे से प... पर दिखा देता है। प्रत्येक सीट में श... को आराम देने के लिए विशेष यंत्र ल... हुआ है। आप या आप के मेहमान मु... फिर यदि चाहें तो टेलीविजन देख स... हैं अथवा मनचाही शराब का जाय... ले सकते हैं।
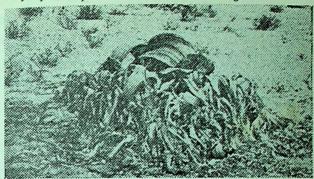
# एक पौधा : वर्णभेद का शिकार

• पंकज प्रसून

दूर ...बहुत दूर, दृष्टि की पहुँच तक फैली नमीबिया की उत्तप्त मरुभूमि ! यहीं स्थित है दक्षिण अफ्रीका में वर्णभेद का एक और शिकार—वेल्विशिआ, तनहाइयों में डूबता, उतराता, चुपचाप ! वेल्विशिआ एक ऐसा पौधा है जो सब को समान रूप से प्यार करने वाली प्रकृति की भेदभाव की नीति का साक्षात प्रमाण है। दक्षिण अफ्रीका में मानव-जातियों पर तो वर्ण-प्रतिबंध लगाया ही जाता है, पौधे भी अछूते नहीं रहे।

सन १८६० में कुछ कर सकने का उत्साह लिये पुर्तगाली पर्यटक डॉ. फ्रेडरिक वेल्विश की नजर पड़ ही तो गयी उस अजीब-सी झाड़ी पर जिस के विशालकाय काष्ठवत पत्ते आसमान की ओर ताक रहे थे। डॉ. वेल्विश ने उस के कुछ नमूने सुखाये और डॉ. जोसेफ डॉल्टन हूकर के पास भेजे जो उस समय के महान ब्रिटिश वनस्पति-शास्त्री थे। डॉ. वेल्विश ने केप निग्रो के पास रहने वाली आदिम जातियों से उस झाड़ी का नाम पूछा तो उन लोगों ने अपनी भाषा में कहा– टुंबो। अतः डॉ. वेल्विश ने डॉ. हूकर को लिखा—"इस पौधे का नाम 'टुंबोआ' रखा जाये। पर हूकर को यह नाम पसंद नहीं आया, इसलिए डॉ. वेल्विश के नाम पर नामकरण किया गया—वेल्विशिआ। यह सन १८६३

की बात है।

वेल्विशिआ बेचारा तो पूर्ववत अपने पूर्वजों की परंपरा में ही हमेशा बीस वर्षों के बाद युवा होता रहा। उस के उभय-लिंगी नर-पुष्पों को मदन-बाण से घायल मादा निषेचित करती रही। पराग-नलिकाओं में भ्रूण बनते रहे, पलते रहे, बीज होते रहे। ये बीज अंकुरण के बाद लंबी जड़, और यहाँ तक कि स्तंभ को भी मरु-भूमि के अंदर छिपाते रहे ताकि कहीं नजर न लग जाये!

स्तभ आलू की आकृतियों के, बडौल, बदसूरत--और स्तंभ से निकलते दो सदाबहार पत्ते, मोटे चमड़े के समान, हमेशा लगे रहने वाले, सुख-दुःख के साथी, औरों की तरह पतझड़ में झड़ने वाले नहीं।

पहली बार वेल्विशिआ के बीजों को स्टेलेनबौस्ख विश्वविद्यालय के श्री एच. हैर ने वानस्पतिक उद्यान-रूपी 'सभ्यता-पूर्ण' पौधों की कलोनी में बोया। बीस साल इंतजार में बीते...और फूल खिले। तहलका-सा मच गया। लेकिन एक लड़के ने भाव-विभोर हो कर जब फूल को डंठल समेत तोड़ लिया तो उपस्थित जनसमुदाय के चेहरे उदासी से लटक गये। वह तो खैर कहिये कि अभी तक उस में फूल हो रहे हैं। उस वानस्पतिक उद्यान के वर्तमान क्यूरेटर श्री विम जे. टिज्मेंस ने उस के कुछ बीज मेरे पास भी भेजे, पर अफ[illegible] भारतभूमि उन्हें रास नहीं आयी!

शायद यह बात भी हो कि बार[illegible] निराश होने के कारण वेल्विशिआ [illegible] जिजीविषा लुप्तप्राय हो गयी है। उपे[illegible] होते-होते उस का संस्कार भी वैसा [illegible] हो गया है। वेल्विशिआ ने जब [illegible] में प्रथम बार आँखें खोली थीं [illegible] अजीब-सा वातावरण था। जिन पौ[illegible] का यह संबंधी था उन के पूरे वर्ग का ना[illegible] था अनावृतबीजी (देखिये 'कादम्बिनी' जुलाई, १९७१) और इस पूरे वर्ग [illegible] संकट आया हुआ था। उद्भव हो रहा [illegible] आवृतबीजियों (जिन्हें हम बोलचाल [illegible] भाषा में फूलदार पौधे कहते हैं) [illegible] पृथ्वी के मौसम, जमीन की संरचना और यहाँ तक कि आकार में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहे थे। बेचारा वेल्विशि[illegible] था इन सब से अनजान, बेखबर! [illegible] समय के दौर में वह पिछड़ गया। एक [illegible] जाति और प्रजाति 'वेल्विशिआ बेएनेसा[illegible]' में सिमट कर रह गया। संपूर्ण पृथ्वी पर फैल जाने की क्या इस की कामना नहीं रही होगी? पर.....रहना पड़ र[illegible] है कहाँ? नमीबिया, अंगोला, काओको वेल्ड की बंजर, उजाड़ मरुभूमि में।

**(द्वारा श्री राधाकृष्ण, कार्यपालक पदाधिकारी, धनबाद नगरपालिका, बिहार)**

---

**काला सूट पहन कर वे ऐसे लगते हैं जैसे बंद छतरी।**
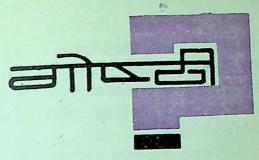
**माया 'अनुराग', पटना : न्यूयार्क के 'मेट्रोपोलिटन म्यूजियम ऑव आर्ट' में कितने पेंटिंग हैं ?**

पेंटिंगों का यह संग्रहालय पश्चिमी दुनिया में अपनी तरह का सब से बड़ा संग्रहालय माना जाता है । यहाँ तीन लाख पैंसठ हजार से भी ज्यादा पेंटिंग हैं ।

●

**राजन कपूर, बंबई : युद्ध-पोतों के रूप में बैलूनों का इस्तेमाल अब नहीं होता, लेकिन क्या यह सच है कि द्वितीय महायुद्ध में जापान ने इतने सक्षम युद्ध-बैलून बनाये थे जो जापान से उड़ कर अमरीकी तटों पर भी बम गिरा सकते थे ?**

१९४४ के नवंबर मास में जापान ने ऐसा एक प्रयोग किया अवश्य था, किंतु उसे आगे नहीं चलाया गया। उन बैलूनों द्वारा गिराये गये बम सही निशाने साधने में असमर्थ रहे । अमरीकी देहातों, शहरों और खेतों पर बम गिराने के लिए जापान ने कम नहीं, पूरे नौ हजार बैलून रवाना किये थे। ३३ फुट व्यास के वे बलून प्रशांत महासागर को ३०–३५ हजार फुट की ऊँचाई से पार कर गये । उन की गति २०० मील प्रतिघंटा से कम नहीं थी, जब कि वे केवल वायु-धाराओं पर सवार हो कर उड़े थे। उड़ान में गति पाने के लिए उन में अलग से कोई यंत्र लगे हुए नहीं थे। प्रत्येक बैलून में छह-छह पौंड के रेत-थैले होते थे जो उस वक्त एक विशेष व्यवस्था के अनुसार अपने-आप गिर जाते जब बैलून तीस हजार फुट से ज्यादा नीचे उतरने लगते । उन्हें उड़ाया ही इस हिसाब से गया था कि वे तीस हजार फुट से नीचे तभी उतरें जब अमरीकी क्षेत्रों पर पहुँच चुके हों। रेत का अंतिम थैला जब गिर जाता तो बम भी अपने-आप गिरते। प्रत्येक बैलून में केवल तीन-चार बम रखे गये थे। वे बम निशाने चूक कर अधिकांशतः जंगलों पर ही गिरे। अनेक जंगलों में जबर्दस्त अग्नि-कांड हुए लेकिन अमरीकी जान-माल की उतनी हानि न हो सकी जितनी आशा जापानियों ने की थी। बैलून मानव-रहित थे।

यह प्रयोग दोहराया भी न गया।

●

**आनन्द अग्रवाल, धामपुर-बिजनौर : होमियोपैथी शब्द का मूल क्या है? ऐलोपैथिक डॉक्टर होमियोपैथी का इतना मजाक क्यों उड़ाते हैं? ऐलोपैथी और होमियोपैथी में भेद क्या है?**

होमियोपैथी शब्द का मूल दो ग्रीक शब्दों में है—'होमोइयोज' और 'पैथोस', जिन के अर्थ हैं 'समानता' और 'कष्ट'। स्वस्थ मनुष्य द्वारा ली जाने पर कोई दवा उस में जो रोग-लक्षण पैदा करती है उन्हीं के समान-धर्मा रोग-लक्षणों वाले मनुष्य द्वारा वही दवा ली जाने पर उसे उस रोग से मुक्ति मिल जाती है—यही है होमियोपैथी का सिद्धांत। अन्य शब्दों में, 'जहर से जहर कटता है' पर जितना विश्वास ऐलोपैथी को है, उतना ही होमियोपैथी को भी है। 'समानता और कष्ट' के इस रोग-मुक्ति-सिद्धांत का प्रथम उल्लेख हिप्पोक्रेटीज के आलेखों में मिलता है। फिलिप्पस औरियोलस पारासेल्स ने भी इस सिद्धांत की विशद व्याख्या की है। चेचक या पागल कुत्ते के काटे के जो टीके क्रमशः एडवर्ड जेनर और लुई पास्चुर द्वारा आविष्कृत हुए वे इसी सिद्धांत के आधार पर। यों, होमियोपैथी और ऐलोपैथी में मूल भेद कुछ नहीं है। विटामिनों या खनिजों की मात्राएँ देने, यहाँ तक कि आपरेशन करने का भी विधान होमियोपैथिक नुस्खों में होता है। इस सब के बावजूद ऐलोपैथ डॉक्टर होमियोपैथी को मान्यता नहीं दे चाहते जिस का कारण केवल व्यावसा होड़ नहीं है। सब से बड़ा कारण यह है ऐलोपैथी के डॉक्टरों को होमियोपैथी प्राथमिक ज्ञान भी प्रायः नहीं होता।

होनियोपैथी का आविष्कारक क्रिश्चियन फ्रेडरिक सैम्युएल हैनिमन नाम एक जरमन डॉक्टर (१७५५-१८४ उस ने सिन्कोना की छाल पर (जिस कुनैन बनती है) कई प्रयोग करके 'समान और कष्ट' सिद्धांत का आधुनिकीक किया। रोगोपचार की तत्कालीन प्रच विधियों का गहरा विरोध भी उस ने कि जिस से स्वयं उसी के विरोधियों की सं बहुत बढ़ गयी। मुख्यतः दो आधारों प हैनिमन का मजाक उड़ाया गया—

१—तत्कालीन ऐलोपैथी में तीन चार ही प्रमुख दवाएँ थीं। रोगी को दवाएँ काफी बड़ी-बड़ी मात्राओं में जातीं। ठीक विपरीत, हैनिमन देता नन्ही-नन्ही गोलियाँ जो बड़ी आसानी अविश्वसनीय घोषित कर दी गयीं।

२—सभी पुरानी बीमारियों हैनिमन ने केवल तीन श्रेणियों में बाँटा— 'सोरा' (खुजली), 'सिफलिस' (गरमी) और 'साइकोसिस' (सुजाक का माद्दा) यहाँ हैनिमन गलती पर था। विरोधि ने उस की इस गलती का खूब प्रचार कर उस के सिद्धांत को ही झूठा करार दे दिया। विरोधी भूल गये (आज तक भूले

हुए हैं) कि होमियोपैथी और ऐलोपैथी के मूल सिद्धांत एक ही हैं ।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धति में रोग का पूरा इतिहास चिकित्सक के सामने विस्तार के साथ प्रस्तुत होना चाहिए, तभी वह कारगर नुस्खा दे सकता है । पूरा इतिहास या तो स्वयं रोगियों को ही मालूम नहीं होता, या उसे वे ठीक से बयान नहीं कर पाते। इसीलिए होमियोपैथी के नुस्खे कई बार कारगर नहीं भी होते, लेकिन कारगर जब होते हैं तब चमत्कार ही कर दिखाते हैं । यही होमियोपैथी की खूबी है और कमजोरी भी ।

●

**मनोजकुमार श्रीवास्तव, फर्रुखाबाद : मोनो रेल का इतिहास बतायें ।**

साधारण रेलगाड़ी दो पटरियों पर चलती है, जब कि मोनो रेल सिर्फ एक पटरी पर । इस से मोनो रेल का घर्षण और शोर आधा रह जाता है; कम ईंधन से ज्यादा शक्ति मिलती है। जापान तथा अधिकांश पश्चिमी देशों में मोनो रेल का प्रचलन दिनोंदिन बढ़ रहा है।

मोनो रेल का आविष्कार किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया। अनेक आविष्कारकों के अथक प्रयोगों का मिलाजुला परिणाम आज की मोनो रेल है । केवल एक पटरी पर चलने वाला डब्बा पहली बार प्रयोग में लाया गया फ्रेंच सोमालीलैंड (पूर्वी अफ्रीका) के जिबूती नामक स्थान में, चार्ल्स लार्टिग्यू (१८३४–१९०७) द्वारा। एकल पटरी हवा में उठी रहती, डब्बा उस के नीचे झूलता रहता ।

१८७२ में एकल पटरी वाली रेल का विकास करने के लिए न्यूयार्क में सरकारी प्रोत्साहन से कई प्रयोग हुए । रूस, जरमनी और फ्रांस ने उन प्रयोगों को आगे बढ़ाया । विलियम बी. मैक ने एक ऐसा माडल तैयार किया जिस में डब्बा एकल पटरी के नीचे न लटक कर बगल में लटकता था । आधुनिक मोनो रेल भी अपनी पटरी के ऐन नीचे नहीं, बल्कि बगल से लटकती हुई गुजरती है । मैक के माडल ने आधुनिक मोनो रेल को जन्म दिया, ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी।

एवन मूडी वाएनटन (१८४०–१९२७) ने मोनो रेल के माडलों में अनेक सुधार कर उन के पेटेंट भी लिये । मूडी के एक माडल के अनुसार मोनो रेल की एकल पटरी हवा में उठी नहीं, बल्कि जमीन पर उसी तरह बिछी रहती थी जिस तरह आम रेलों की पटरियाँ । उस एकल पटरी के ऊपर थोड़े-थोड़े अंतर से 'खाँचे' फिट किये गये थे । एकल पटरी पर चलता डब्बा 'खाँचों' के नीचे से गुजरता । डब्बे की छत पर लगे हुक एक 'खाँचे' से दूसरे 'खाँचे' के नीचे से इस प्रकार आधार लेते जाते कि डब्बा एकल पटरी पर चलने के बावजूद न दायें लुढ़कता, न बायें।

१९०७ में लुई ब्रेनान ने ब्रिटिश

सरकार के समक्ष नये ढंग की मोनो रेल का प्रदर्शन किया। डब्बों की शृंखला के बीच वजन के असमान वितरण के कारण तब तक की मोनो रेलों में जो गड़बड़ी आ जाती थी उसे ब्रेनान ने दूर कर दिया। इस के लिए उस ने बड़ी तेजी से घूमते दो फ्लाई-व्हीलों का प्रयोग किया।

१९३० में जार्ज बेनी ने जो मोनो रेल बनायी, उसे 'रेल हवाईजहाज' के नाम से जाना गया। उस में हवाईजहाज-जैसे ही दो पंखे थे जो तेजी से घूम कर हवा को काटते और एकल पटरी से लटकती मोनो रेल आगे बढ़ती।

१९५७ में कोलोन (जरमनी) में जिस इलेक्ट्रिक मोनो रेल का प्रदर्शन हुआ उस का निर्माता था एक्सेल वेनर-ग्रेन। उस नमने के बाद से मोनो रेल का विकास आश्चर्यजनक गति से हुआ और होता जा रहा है।

●

**विनोदकुमार वाजपेयी, लखीमपुर खीरी : ताश के खेलों की संख्या कुल कितनी है ? अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक नियमबद्ध ताश का खेल कौन-सा है ? ताश का आविष्कार कब, कहाँ हुआ ?**

ताश के खेल हर देश में इतनी विविधता के साथ खेले जाते हैं कि उन की ठीक-ठीक संख्या बताना असंभव है। 'कांट्रेक्ट ब्रिज' ताश का वह खेल है जिस की अधिकतम प्रतियोगिताएँ आयोजित हुई हैं। फलस्वरूप, उस के नियम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुनिश्चित एवं परिष्कृत हो चुके हैं। ताश का आविष्कार ११२० में चीन में हुआ था—बादशाह की रखैलों के मनोरंजन के लिए। —भगीरथ

---

किसान किसी काम से बैलगाड़ी से शहर जा रहा था। रास्ते में उसे एक मरियल-सा व्यक्ति कंधे पर एक बोरा लादे जाता मिला। किसान को उस पर तरस आ गया। उस ने कहा, "अगर तुम शहर की तरफ जा रहे हो तो मेरी बैलगाड़ी में बैठ सकते हो।"

उस व्यक्ति ने धन्यवाद दिया और गाड़ी में बैठ गया। लेकिन गाड़ी में बैठने के बावजूद उस व्यक्ति ने कंधे पर से बोरा नहीं उतारा। इस पर किसान ने आश्चर्य से कहा, "बोरा उतार कर तुम गाड़ी में क्यों नहीं रख देते ?"

"बात यह है कि आप ने मेहरबानी करके मुझे गाड़ी में बिठाया, पर मेरा भी तो कोई फर्ज है ! आप का बैल इतना कमजोर है कि मैं ने सोचा कि कुछ बोझ खुद ही उठाये रखूँ तो अच्छा है," उस ने जवाब दिया।

विश्वविख्यात साहित्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शा हर बात बड़े चुटीले ढंग से कहते थे। यहाँ शिक्षा के बारे में उन के बहुमूल्य विचारों का संकलन है। प्रस्तोता हैं सुखबीर

• जॉर्ज बर्नार्ड शा

# काश, शिक्षकों ने मुझे आज़ादी दी होती!

बच्चे को सिर्फ ऐसा स्कूल और घर ही नहीं चाहिए जहाँ बड़ी उम्र के लोगों का बोलबाला हो बल्कि एक ऐसी दुनिया चाहिए जिस का वह एक छोटा-सा नागरिक हो, और उस दुनिया को कानून, अधिकार, कर्तव्य और मनोरंजन की सारी चीजें उस की योग्यताओं और अयोग्यताओं के अनुसार हों।

हम एक-दूसरे को सिखाते हैं, लेकिन हम में से आधे लोग बाकी आधे लोगों को इतना बुरा समझते हैं कि उन से बात तक करना नहीं चाहते।

हजारों मंदबुद्धि, ईमानदार लोग अपने बच्चों को मारते-पीटते हैं, क्योंकि वे खुद अपने बचपन में मार-पीट का शिकार बने थे।

अगर आप अपने बच्चों को सबक देने के लिए खुद को किसी रूप में उन के सामने पेश करना चाहते हैं (जो कि बिलकुल जरूरी नहीं है), तो उदाहरण के बजाय चेतावनी के रूप में पेश कीजिये।

कहा जाता है कि अगर आप बिल्ली को एक बार नहला दें, तो वह फिर कभी नहीं नहायेगी। पता नहीं, यह बात कहाँ तक सही है, लेकिन इस से एक बात निश्चित है कि अगर आप किसी को कुछ सिखाते हैं तो वह कभी नहीं सीखेगा। और अगर आप किसी बीमारी का इलाज

NEW! SUPER
Surf
सुपर सर्फ़ से
एक बार धुल कर
कपड़े जितने सफ़ेद होते हैं
अन्य पाउडरों से नहीं हो पाते !
सुपर सर्फ़
से कपड़े सब से सफ़ेद धुलते हैं
(नील, पाउडर आदि की ज़रूरत नहीं)
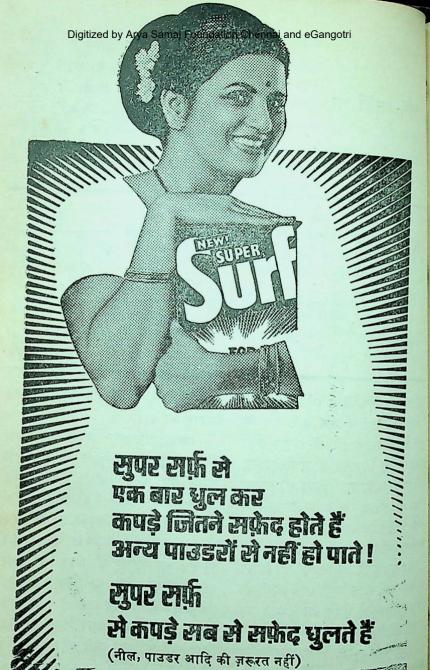
करते हैं तो वह दूसरी बार उसी बीमारी का शिकार होने पर, खुद अपना इलाज नहीं कर सकेगा ।

याद नहीं आता कि मुझे कभी पढ़ना या लिखना सिखाया गया हो; अतः मैं समझता हूँ कि ये दोनों गुण मुझ में जन्म से ही थे । इस के विपरीत बहुत से ऐसे लोग हैं जिन के अंदर यह सोच कर तलखी भर जाती है कि उन्हें किस प्रकार मजबूर हो कर पढ़ना-लिखना सीखना पड़ा था । यद्यपि मेरे दिल में ऐसे शिक्षक के लिए घृणा है जो इतना असभ्य और अयोग्य हो कि बच्चे को, रुलाये बिना पढ़ना-लिखना सिखा ही न सके, तथापि पढ़ने-लिखने से अनजान रहने के बजाय मैं इस बात को कहीं अच्छा समझता अगर मुझे किसी अयोग्य और असभ्य व्यक्ति के पास मजबूर हो कर और आँसू बहा कर भी पढ़ना-लिखना सीखना पड़ता ।

मुझे विश्वास है कि अगर लोगों को इस बात का चुनाव करना हो कि वे ऐसे स्थान पर रहना चाहते हैं जहाँ बच्चों का शोर-गुल हो, या ऐसे स्थान पर जहाँ बच्चों की आवाज तक सुनायी न देती हो, तो अच्छे स्वभाव और अच्छी समझ-बूझ वाले सभी व्यक्ति लगातार खामोशी की अपेक्षा लगातार शोर सुनना पसंद करेंगे ।

खेल-कूद करने वाला बच्चा शोर मचायेगा और उसे शोर मचाना ही चाहिए । बच्चे को अपना अधिकांश समय खेल-कूद में ही बिताना चाहिए जब कि बड़ी उम्र के व्यक्ति को अपना अधिकांश समय काम में बिताना चाहिए ।

मुझे स्कूल में पढ़ते हुए बहुत ज्यादा नुकसान हुआ और फायदा बिलकुल नहीं। वहाँ बच्चे की आत्मा को जैसे गंदगी में घसीटा जाता था ।

गुलाम व्यक्ति और विद्यार्थी हमेशा अपने मालिकों और अध्यापकों को प्यार करते हैं ।

कुछ वर्ष पहले मैं शिक्षा संबंधी भाषण देने के लिए ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में गया । वहाँ मैं ने अपने एक मित्र को बताया कि मैं अपने भाषण में क्या कहने वाला हूँ तो उस ने कहा कि वर्तमान शिक्षा के बारे में आप बिलकुल अनजान हैं । आजकल के स्कूल वैसे नहीं हैं जैसे आप के बचपन में थे । मैं ने उसी समय उसे आधुनिक कहे जाने वाले कुछ स्कूलों के टाइम-टेबल दिखाये जो मेरे पुराने स्कूल के टाइम-टेबल से कोई खास भिन्न नहीं थे ।

हमारे स्कूलों में सामंतवादी नैतिकता सिखायी जाती है, जो व्यापार द्वारा दूषित हो चुकी होती है । हमारे स्कूल महान और सफल व्यक्तियों के रूप में सैनिक विजेताओं, लूटखोर राजाओं और मुनाफाखोर व्यापारियों के जीवन के उदाहरण देते हैं । हमारे स्कूलों में आज भी नयी पीढ़ी के बच्चों को पंद्रहवीं शताब्दी की नैतिकता सिखायी जाती है ।

कौन नहीं जानता कि बच्चे को कौन-सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए। जिन मार्गों का अब तक पता लगाया गया है वे सब हमारी वर्तमान सभ्यताओं की भयानकता की ओर ले जाने वाले हैं, जिन्हें रस्किन ने बहुत सही तौर पर दुःख-दर्द भरे मनुष्य-रूपी कीड़ों के ढेर कहा है, जो पेट भरने की खातिर आपस में संघर्षरत हैं।

शिक्षा सिर्फ बच्चों तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। वास्तव में, शिक्षा की आवश्यकता बड़ी उम्र के लोगों के लिए अधिक है और यह उन्हें जीवन भर मिलनी चाहिए।

मजदूर लोग, जो क्लर्की के पेशे को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, अपनी बेटियों को ईसाई स्कूलों में भेजते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें सुचारु रूप से बातचीत करने और शिष्टाचार बरतने का रंग-ढंग सिखाया जाता है। समाज के ठेकेदार, जो कहते हैं कि हमारे स्कूल बिलकुल बेहूदा किस्म के हैं और हमारे विश्वविद्यालयों का नाम-निशान तक मिटा देना चाहिए, अपने बेटों को उच्च शिक्षा के लिए ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, हैरो आदि विश्वविद्यालयों में भेजते हैं--इसलिए नहीं कि इस के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है, बल्कि इसलिए कि वे वहाँ से ऐसी आदतें और चाल-चलन सीख कर आयें जिन्हें कि उन के समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

बच्चे को रोजाना, चाहे आधे घंटे के ही लिए हो, कोई न कोई ऐसा काम करना चाहिए, जो उस के समाज के लिए हितकर हो।

घूमने-फिरने वाला व्यक्ति कहीं भी घर का-सा अहसास नहीं पाता, क्योंकि वह घूमता-फिरता रहता है। बच्चे को घूमना-फिरना चाहिए ताकि उसे हर जगह घर का-सा अहसास हो।

अगर शिक्षकों ने मुझे आजादी दी होती तो वे देखते कि मैं ज्यादा देर तक कक्षा में न रहता, और जल्द से जल्द दरवाजे की ओर बढ़ता और बाहर निकल कर गायब हो जाता। यह पूछा जा सकता है कि वहाँ से मैं कहाँ जाता। मैं गाँवों में जाता, या समुद्र पर जाता या राष्ट्रीय गैलरी में जाता, या फिर ऐसे पुस्तकालय में जाता जहाँ स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकें न होतीं और मैं बहुत रूखी और कठिन समझी जाने वाली पुस्तकें पढ़ता।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिन्हें सब से कम शिक्षा मिली होती है, उन्हें सब से ज्यादा जानकारी होती है। •

**९९–१०२ पृष्ठों पर प्रकाशित चित्रों के चित्रकार हैं देविकारानी के पति स्वेतोस्लाव रोरिक**

# कर्मठता के लिए समर्पित

● जगदीशचंद्र माथुर

ज़माने से भारतवर्ष में सुंदरियों को वर्गीकृत करने की परंपरा रही है, लेकिन मुझ से पूछिये तो सुंदरियों के दो ही वर्ग हैं। एक तो वे जिन्हें देख कर प्रधानतया सौंदर्य का आभास होता है, और दूसरी वे जिन में दैहिक सौंदर्य की पारदर्शक जलराशि के नीचे एक तलहटी-सी झलक पड़ती है जिस का नाम है कर्मठता।

यह नहीं कि कर्मठता की तलहटी बराबर झलके। यह भी नहीं कि हर पुरुष को उस का अहसास हो सके। लेकिन अकसर इतिहास के मंसूबे बनते-बिगड़ते रहे हैं ऐसी ही सुंदरियों के हाथों। कुछ ऐसी भी हैं जिन्होंने इतिहास तो नहीं बनाया लेकिन रास्ते खोजे और बनाये। देविकारानी ऐसी ही सुंदरी हैं।

क्या इसलिए कि हर फिल्म-ऐक्ट्रेस सुंदरी का व्यवसाय ही कर्मठता की कसौटी है? ऐसा नहीं है। साधारणतः ऐक्ट्रेस सुंदरी का फिल्मी काम एक तरह से उस के सौंदर्य का विस्तार—एक्स्टेंशन— है। पर देविकारानी में कुछ असाधारणता रही है।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है। नयी दिल्ली के विज्ञान-भवन में फिल्म-कला संबंधी श्रेष्ठताओं पर दिये गये पुरस्कारों का वितरण हो रहा था। दर्शकों के बीच आगेवाली पंक्ति में देविकारानी बैठी थीं। इत्तफाक से मैं उन के बराबर ही सीट पर था। जान-पहचान पहले से इसलिए थी कि सन १९५३-५४ में जब 'संगीत-नाटक अकादेमी' की स्थापना हुई तो

प्रथम स्थापक-समिति के सदस्यों में देविका-रानी भी थीं और मैं भी।

पुरस्कार लेने के लिए जब अशोक कुमार आगे बढ़े तो तालियों की गड़गड़ाहट के बीच स्टेज पर पहुँचने के बाद अशोक कुमार एक लमहे के लिए रुके। देविकारानी की ओर देखा, और मानो मुसकान का बढ़ावा पा कर ही राष्ट्रपति के हाथों से पुरस्कार लेने आगे बढ़े।

उस क्षण देविकारानी की दृष्टि में मुझे वही असाधारण अभिव्यक्ति झलकी। देविकारानी ने हलके स्वर में मुझ से कहा, 'ही इज वन ऑव माइ ब्वॉयज!' इन शब्दों में उतना मातृत्व का गौरव नहीं था जितनी उसी कर्मठता की प्रतिध्वनि, जिस का ऊपर मैं ने जिक्र किया है।

अशोक कुमार को देविकारानी ने एक तरह से बनाया ही तो था। आयु में अशोक कुमार उन से उस समय काफी कम रहे होंगे जब 'अछूत कन्या' में देविकारानी नायिका बनीं और अशोक कुमार नायक। लेकिन उस के बाद बांबे टाकीज की फिल्मों का जो ताँता लगा उन में प्रायः अशोक कुमार हीरो रहे। देविकारानी क्रमशः हीरोइन के पद से हट कर अपने पति हिमांशु राय की मृत्यु के बाद १९४० में बांबे टाकीज की अधिष्ठात्री बनीं। उन दिनों जिस अनुशासन की परिधि में अशोक कुमार की प्रतिभा ने गहराई पायी, उसी की स्मृति का गौरव पुरस्कार
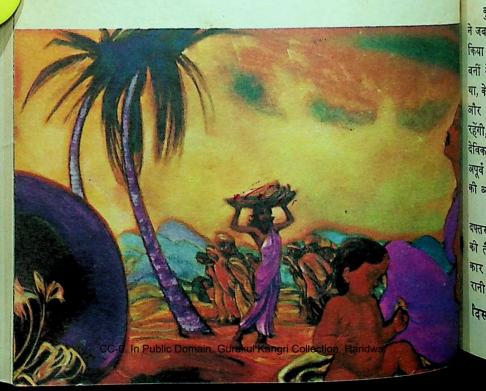
ग्रहण करते अशोक कुमार को देखते समय उन की दृष्टि में झलका था।

शायद एक वर्ष बाद छात्रावस्था के मेरे बंधु श्री रामचंद्र द्विवेदी 'प्रदीप' को गीतकार का पुरस्कार मिला। देविकारानी मौजूद थीं। मैं ने दोनों को अपने यहाँ भोजन पर बुलाया। 'प्रदीप' ने 'चल-चल रे नौजवान', 'हवा तुम धीरे बहो', आदि अनेक वे गीत सुनाये जिन्होंने बांबे टाकीज की फिल्मों को चार चाँद लगा दिये थे। मैं ने देखा कि अपने क्षेत्र में ख्याति और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद 'प्रदीप' देविकारानी के प्रति अब भी उतने ही श्रद्धावान थे जितने तब रहे होंगे जब वे फिल्म-क्षेत्र की साम्राज्ञी थीं और तारिकाओं में अतुल जाज्वल्यमान !

कुछ वर्ष हुए 'संगीत नाटक अकादमी' ने जब प्रथम फिल्म-सेमिनार का आयोजन किया तो अकादमी की ओर से संचालिका बनीं देविकारानी। कुछ लोगों ने सोचा था, केवल आयोजकों की ओर से वे शोभा और समादर की खातिर संचालिका रहेंगी, और संचालन तो और लोग करेंगे। देविकारानी ने शोभा और दक्षता का अपूर्व सामंजस्य दिखाया। हर व्यवस्था की ब्योरेवार खबरदारी की।

१९६१ की बात है। एक दिन मुझे दफ्तर जाने में देरी हुई। बरामदे में जाने की तैयारी किये खड़ा हुआ था कि एक कार आयी और उस में से उतरीं देविकारानी! "अरे, आप!" मेरे शब्दों और मुखमुद्रा की सकपकाहट को अपनी भीनी मुसकान की बयार से दूर करते हुए बोलीं, "मैं तो इसी अंदाज से आयी थी कि आप घर पर नहीं होंगे... आप की पत्नी हैं?" इस से पहले कि मैं अंदर जा कर अपनी पत्नी को बुला लाऊँ, देविकारानी स्वयं ही अंदर गयीं और मेरी पत्नी के हाथों में एक साड़ी रख दी। "यह क्यों?" मेरी पत्नी ने पूछा। "मिसेज माथुर, उस दिन मेरे पति की कलाकृतियों की प्रदर्शनी के इंतजाम में आप ने इतनी लगन से काम किया था, उस की कोई सौगात भी तो होनी चाहिए न?" मेरी पत्नी भावाविष्ट हो गयी, क्योंकि देविकारानी के समक्ष वह एक उच्च सरकारी कर्मचारी की पत्नी के रूप में नहीं थी, बल्कि १९३५-४० की उन असंख्य किशोर-किशोरियों में एक थी जिन्होंने 'अछूत कन्या', 'जवानी की हवा', 'जीवन-नैया', 'वचन' की नायिका के साक्षात्कार और स्पर्श की कामना की होगी! उन्हीं के हाथों साड़ी की सौगात! मुझे लगा कि उस छोटे से संकेत ने देविकारानी के शील और दक्षता, दोनों ही को अभिव्यक्त किया।

देविकारानी के पति स्वेतोस्लाव रोरिक पेंटर हैं—सौम्य, दार्शनिक, रोचक व्यक्तित्व। उन के पिता काउंट रोरिक रूसी क्रांति के बाद भारत चले आये और कुलू घाटी में 'नगर' नामक स्थान में बस गये। उन की तूलिका ने हिमालय की सम्मोहक और विराट छवि को चमत्कार-

पूर्ण रूप में कैन्वस पर उतारा है। स्वेतोस्लाव ने अपने पिता की तूलिका का करिश्मा थोड़ा-बहुत विरासत में पाया है और कुछ अपनी शैली भी ढाली है।

नयी दिल्ली की 'आल इंडिया फाइन आर्ट्स ऐंड क्राफ्ट सोसायटी' में उन के चित्रों का प्रदर्शन देविकारानी ने बड़ी तैयारी के साथ आयोजित किया। चित्रों को टाँगने से ले कर आमंत्रितों की सूची और कैटलॉग छपवाने, उद्घाटन-समारोह की व्यवस्था और समाचारपत्रों में कला-संबंधी कॉलम लिखने वालों की अनुकूल प्रतिक्रियाओं के लिए वातावरण प्रस्तुत करने तक––प्रत्येक तफसील पर उन की निगाह गयी। और उसी सिलसिले में एक छोटी-सी बात, कि जिन लोगों ने उन के साथ उस प्रदर्शनी के लिए काम किया उन्हें भूला न जाये।

सुना, हाल ही में देविकारानी ने टाइपराइटिंग भी सीखी ताकि कुछ निजी पत्र-व्यवहार को स्वयं ही निपटा सकें। कौन यकीन करेगा कि देविकारानी जो २८ बरस से ऐक्टिंग से संन्यास ले लेने पर अब भी हीरोइन दीख पड़ती हैं, बंगलौर में दो आफिस रखे हुए हैं और सप्ताह में छह दिन वहाँ बैठ कर बिला नागा काम करती हैं? एक आफिस तो शहर में है और दूसरा उन की उस एस्टेट पर जिस की जमीन में विविध प्रकार के तेल पैदा करने वाले वृक्षों की खेती डॉ. रोरिक करते हैं। लेकिन उस एस्टेट की समूची व्यवस्था देविकारानी के हाथ में है।

देविकारानी के आफिस से सटा हु[आ] उन के पति का स्टूडियो है। [स्टू]डियो और आफिस! कला और व्या[व]हारिकता! सौंदर्य और कर्मठता! [यह] अद्भुत समन्वय मुझे सन १९६८ [में] हिमालय की गोद में उन के निवास[स्थान] कुलू के निकट कसबे 'नगर' के पुराने मह[ल] से कुछ दूर स्थित काउंट रोरिक द्वा[रा] लिये गये बंगले में दीख पड़ा। का[फी] मुश्किल चढ़ाई के बाद मैं अपने परि[वार] के साथ 'नगर' पहुँचा। वहाँ से देवि[का]रानी के बंगले पर जाने के लिए रा[स्ता] इतना तंग था कि हम लोग कुछ दूर [पर] जीप से उतर पड़े।

पहुँचने पर हमें तीर्थयात्रा पूरी हो[ने] का आभास हुआ। देविकारानी की [वही] 'छपी-सी पी-सी' मुसकान, स्वेतोस्ला[व] की श्वेत दाढ़ी, विचारशील चेहरा, [और] चंचल-सी टोह लेती-सी आँखें! देवि[का]रानी ने एक-एक कमरा दिखाया [और] काउंट रोरिक के चित्रों का वह अभूत[पूर्व] संग्रह! सोफे पर बैठा तो बोलीं, "जान[ते] हैं माथुर साहब, इस सोफे पर जिस स्था[न] पर आप बैठे हैं, ठीक वहीं जवाहरला[ल] बैठे थे!" मैं कुछ लिहाज से उठने लगा।

"नहीं, नहीं आप को उठने की जरूर[त] नहीं है।" उन्होंने कहा।

"यह तो सिंहासन है देविकारानीजी।"

उन्होंने स्पष्ट किया, "जब जवाहर[लाल] लाल यहाँ आये थे तब वे प्रधान मं[त्री]

नहीं बने थे। जेल से छूटने के बाद दौरे की थकान मिटाने यहाँ आये थे। सन १९४५-४६ की बात है।

उस के बाद अनेक चर्चाएँ हुईं रोरिक दंपति के साथ, कैसे काउंट रोरिक ने वहाँ की पहाड़ी बूटियों आदि का संग्रह शुरू किया था, कैसे अनुसंधान की परिषद और प्रकाशनों की योजना शुरू की गयी, शुरू में देविकारानी को वहाँ आने पर कैसा लगा। बाद में हम लोगों को वे बगीचा दिखाने ले गयीं। मेरे साथ कृषि-विभाग के एक वैज्ञानिक भी थे— कुलू के पास कटराइन में स्थित अनुसंधान केंद्र के प्रमुख। मालूम हुआ कि देविकारानी बराबर उन से परामर्श लेती रहती हैं और वृक्षों और पौधों के विषय में उन की खासी जानकारी है।

चलने से पूर्व हमें वे काउंट रोरिक की समाधि पर ले गयीं। एक पाषाण खंड जिसे तराशा नहीं गया था, बिलकुल नैसर्गिक अवस्था में प्रतिष्ठित किया गया था। उस के एक तरफ हिंदी में कुछ शब्दों में उस संत कलाकार के प्रति स्थानीय जनता के श्रद्धा-सुमन अंकित थे।

दो घंटे के उस प्रवास में देविकारानी से अनेक बातें हुईं। मन पर कई प्रभाव पड़े— यह कि बातचीत में ऐक्टिंग नहीं करतीं, कि उन के स्वर में तेजी कभी नहीं आती, कि सत्कार और मेहमानदारी में बच्चों-बड़ों सभी का ध्यान रखती हैं, कि आसपास के गाँववालों के सुख-दुःख में हाथ बँटाने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता, कि फिलमी जीवन से अवकाश लेने के बाद जीवन में तिक्तता नहीं आयी क्योंकि उन्होंने अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य को शालीनता और जिजीविषा के प्रवाह में एकाकार कर रखा है।

शायद यह तसवीर मनभावन हो गयी। क्या सौंदर्य, कर्मशीलता, संयम और शालीनता के इस समन्वयात्मक प्रवाह में कभी भँवरें नहीं पड़तीं? यह बात नहीं! जहाँ गहराई है वहाँ भँवरें तो चक्कर लेती ही हैं। मैं ने देविकारानी से पूछा नहीं इन भँवरों के बारे में, पर सन १९४० में लोकप्रियता के परम शिखर पर जब उन के पहले पति हिमांशु राय का देहांत हुआ तब से आज तक न जाने कितनी चक्करदार भँवरों में पड़ी होंगी? असल सवाल यह है कि इस समन्वय, सौंदर्य और संयम, लालित्य और कर्मठता के इस सामंजस्य की बुनियाद कब और कैसे पड़ी?

प्रथम भारतीय सर्जन जनरल कर्नल एम. एन. चौधुरी की इकलौती बेटी थीं देविकारानी! जन्म वालतेयर में हुआ और स्कूली शिक्षा इंगलैंड में। स्कूल ही में पढ़ रही थीं कि 'रायल एकेडमी ऑव ड्रामेटिक आर्ट' से स्कालरशिप भी मिला। मैट्रिक पास करने के बाद लंदन में टेक्सटाइल डिजाइनिंग, स्थापत्य और सजावट के विषयों पर एक कोर्स लिया। घर लौटीं। पिता से चर्चा हुई कि आगे क्या किया जाये! पिता ने उत्तर दिया, "तुम

बच्ची नहीं, एक स्त्री हो; और स्त्री को अपनी देखभाल करना सीख लेना चाहिए !"

अठारह वर्षीया देविकारानी फिर लंदन लौटीं और वहाँ के एक बड़े मशहूर आर्ट स्टूडियो में वस्त्रों के लिए डिजाइन तैयार करने की नौकरी कर ली।

यहीं पर हिमांशु राय से मुलाकात हुई। हिमांशु राय 'लाइट ऑव एशिया' तथा 'शीराज' फिल्मों के प्रोड्यूसर के रूप में ख्याति पा चुके थे। देविकारानी उन के प्रोडक्शन यूनिट में शामिल हो गयीं। १९२९ में दोनों का विवाह हुआ और उस के बाद दोनों जरमनी गये जहाँ के सुप्रसिद्ध यू. एफ. ए. स्टूडियो में हिमांशु राय प्रोड्यूसर थे। बरलिन के उस स्टूडियो में उन दिनों विशेष प्रगति का वातावरण था। मूक चलचित्र का युग बीतने लगा था, बोलचित्रपट का धूमधाम से स्वागत हो रहा था। वहीं मार्लिन ड्रे
से देविकारानी की मुलाकात हुई। मै
रेनहार्ट से उन्होंने ऐक्टिंग सीखी।

बड़े-बड़े अभिनेताओं के मेकअप
लिए ब्रश इत्यादि तैयार रखने पड़ते
विग और हेयर ड्रेसिंग का इंतजाम क
होता, रंगों के टेस्टिंग के लिए लेबोरे
जाना पड़ता। जिस बात ने उन्हें सुनि
जित तैयारी करना सिखाया, वह थी
तीन दिन बाद जो मेकअप उस दौ
किया था, उस पर टिप्पणी तैयार कर
वे बताती हैं, "जिस किसी विभाग में
काम करना होता उस के काम की पृ
भूमि भी मुझे जाननी होती। मैं वि
विद्यालय के पुस्तकालय में जा कर
युग के स्थापत्य और वेशभूषा आदि
टिप्पणी तैयार करती जिस का फि
विशेष से संबंध था। और तमाशा यह
दो बरस की इस घिसाई के बाद

जाता कि जो कुछ सीखा है उसे भूल जाने की कोशिश करो ताकि कहीं मौलिकता से नाता न टूट जाये।"

इस ट्रेनिंग के बाद एक जरमन फिल्म में काम करने के लिए देविकारानी को निमंत्रण मिला। पर उन्होंने तय किया कि जो कुछ उन्होंने सीखा है उस का उपयोग अपने ही देश के सांस्कृतिक विभाग में करेंगी। लेकिन भारत लौटने से पहले पति-पत्नी दोनों ने यू. एफ. ए. द्वारा प्रस्तुत एक रंगमंचीय नाटक में भाग लिया। यह नाट्यदल स्विटजरलैंड, स्वीडन और नार्वे भी गया और इन पति-पत्नी का अभिनय बहुत पसंद किया गया।

भारत लौटने पर उन्होंने अँगरेजी और हिंदी में 'कर्म' नामक फिल्म तैयार करना शुरू किया और लंदन के स्टौल स्टूडियो में जा कर उसे पूरा किया। पहले इस फिल्म को विदेश में ही रिलीज किया गया और जो प्रशंसा उस फिल्म को मिली वैसी बरसों बाद विदेश में केवल सत्यजित राय की फिल्मों को मिल पायी है। इंगलैंड के 'मार्निंग पोस्ट' ने लिखा कि देविकारानी टॉकी फिल्म की सर्वोत्कृष्ट अभिनेत्रियों में हैं।

यद्यपि भारत में 'कर्म' का स्वागत इतने उल्लासपूर्ण शब्दों में नहीं हुआ फिर भी यह उल्लेखनीय है कि इस फिल्म को देखने के बाद सरोजिनी नायडू ने देविकारानी के बारे में लिखा था—"यह प्रतिभावान नन्ही-सी नायिका देविकारानी एक जादू की कली की भाँति नाटक के हृदय में से कुसम बन कर प्रस्फुटित होती है!"

देविकारानी और हिमांशु राय एक आदर्शवादी युग की उपज थे। केवल दो काम उन्होंने लंदन में और किये। एक तो बी. बी. सी. के सर्वप्रथम टेलिविजन प्रोग्राम में हिस्सा लिया, दूसरे जब बी. बी. सी.
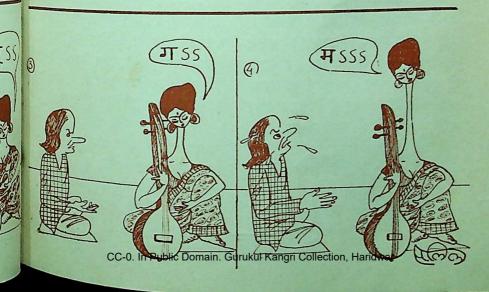
ने भारत के लिए सब से पहले प्रसारण शुरू किया तो उस प्रोग्राम के लिए रवींद्रनाथ की 'ग्रामछाड़ा' रचना चुनी।

दोनों भारत लौटे और १९३४ में इंडो-इंटरनेशनल टॉकीज लिमिटेड नाम से अपना एक स्टूडियो स्थापित किया और एक साल बाद 'बांबे टॉकीज' नामक कंपनी का उदय हुआ। पहले दो वर्ष तो कम-से- कम समय में हिंदी फिल्म के क्षेत्र में तत्कालीन रुचि को ध्यान में रखते हुए मनोरंजन अथवा भावुकतापूर्ण फिल्मों द्वारा अपने को परिचित कराने में लगाये। 'जवानी की हवा' बांबे टॉकीज की प्रथम फिल्म थी।

और उस के बाद 'अछूत कन्या'—एक साहसपूर्ण प्रयोग जो हिंदी फिल्मों के इतिहास में एक मोड़ बन गया। कितने लोग जानते हैं कि महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में एक ही हिंदी फिल्म देखी और वह थी 'अछूत कन्या' !

बांबे टाकीज से अनेक फिल्में सामने आयीं—नायाब, लोकप्रिय, आदर्शवादी ! 'नारायणी' नामक फिल्म को बनाते समय १९४० में हिमांशु राय का देहांत हो गया। उस चोट की गहराई का अंदाज भला किसे हो सकता है? हृदय कड़ा करके देविकारानी ने काम सँभाला।

क्या बांबे टाकीज की महत्ता फिल्मों की संख्या में है ? बांबे टाकीज हिंदी फिल्म के इतिहास में वस्तुतः दीपस्तंभ इसलिए माना जायेगा कि वह भारत में प्रथम फिलमकला-प्रशिक्षण केंद्र था; साधारण अध्ययनमूलक विद्यालय बल्कि कर्म-केंद्रित प्रशिक्षण-केंद्र, जिसे रेजी में 'वर्क-सेंटर्ड ट्रेनिंग सेंटर' कहा सकता है। देविकारानी ने यू. एफ. स्टूडियो में जिस तरह की सर्वांगीण व्यावहारिक शिक्षा पायी थी उसी उन्होंने बांबे टाकीज में नवीन प्रतिभा को परिचित कराया।

हर साल लगभग ३०० उच्च शि प्राप्त (प्रायः स्नातक) युवक-युवती के इंटरव्यू होते। सारे भारत से चुने ये व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार वि कामों में लगा दिये जाते। अमिय चक्र एस. मुखर्जी, अशोक कुमार, दीवान श किशोर साहू, लीला चिटनिस, मधुब डेविड, ख्वाजा अहमद अब्बास, दि कुमार, कवि-प्रदीप—ये सभी बांबे टा के इस प्रशिक्षण-केंद्र की ही देन हैं। १९ में उन्होंने उस से नाता तोड़ लिया।

हाल ही में जब प्रथम फालके पुरस्का कर भारत सरकार ने देविकारानी को भा तीय फिल्म क्षेत्र की प्रथम दिशा-निर्दे के रूप में सम्मानित किया तो विवाद ल लेकिन देविकारानी विवाद से दूर र

वस्तुतः उन में किसी तरह तुच्छता नहीं है, और न अभिजात, कु और दिशासंकेतक होने का अभिम उन के व्यक्तित्व की बुनियाद कर्म है।

(४ लिटन लेन, नयी दिल्ली)

● हसन जमाल छीपा

# छोटे देश की लंबी दास्तान

एक ऐसा अनोखा देश है जहाँ रुपये का मूल्य रद्दी के टुकड़े से अधिक कुछ नहीं! इस द्वीप का कोई भी निवासी रोजी कमाने के लिए काम नहीं करता। सब चौबीसों घंटे सैर-सपाटे और ऐशो-आराम में मग्न रहते हैं। यह देश है आस्ट्रेलिया के समीप और फिजी के उत्तर-पश्चिम में स्थित, सुई की नोक के समान 'नौरू'। कुल आबादी केवल ३,३५० है। यह दुनिया का सब से धनी देश है। क्षेत्रफल बाईस वर्ग किलोमीटर होने के बावजूद यह संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य है।

मकानों पर टीन की छतें होती हैं और उन पर नारियल के पेड़ों की छाया रहती है। उन पर नारियल गिरने की आवाज से अगर एक प्राकृतिक लय पैदा हो जाये तो हो जाये, लेकिन घर में रखा बेशकीमती पियानो बजाने की किसी को भी फुरसत नहीं मिलती। नौरू के सारे घरों में आप को फ्रिज, पियानो, रेडियो, टेलीविजन, कैमरे, टेलीफोन, टेपरिकार्डर, कपड़े धोने की मशीन, फ्रांसीसी इत्र या सेंट, उच्च कोटि के डिनर-सेट, बढ़िया फरनीचर, रेशमी कालीन और इसी प्रकार की आधुनिकतम आवश्यकताओं की चीजें मिलेंगी। लेकिन इन चीजों के मालिक घर से बाहर घूमते हुए मिलेंगे।

इस द्वीप में ले-दे कर एक ही सड़क है जो करीब १९ किलोमीटर लंबी होगी। सड़क जहाँ से शुरू होती है, वहीं खत्म
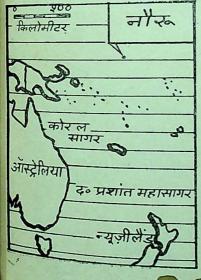
भी हो जाती है। इतनी छोटी-सी सड़क पर नये माडल की २,००० कारें, मोटर-साइकिलें घूमती नजर आती हैं। 'कारों की मरम्मत कैसे हो' इस से यहाँ कोई परिचित नहीं। न किसी को इतनी फुरसत है कि कार खराब हो जाने पर उस की मरम्मत करायी जाये। ज्यों ही कार में खराबी हुई, मालिक ने उसे त्यागा और दूसरी कार खरीद ली!

नौरू का धरातल केवल ५,२६३ एकड़ है, अर्थात न्यूयार्क के केनेडी एयरपोर्ट से भी छोटा पर यह संसार का सब से धनी देश है। इस की औसत आय कुवैत और अमरीका से दोगुनी है। यहाँ का कोई भी नागरिक आर्थिक या सामाजिक कष्टों से पीड़ित नहीं है। वास्तव में इस का कारण फास्फेट का वह भंडार है जिस का संसार भर में कोई जवाब नहीं। फास्फेट की खाद ने आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड के बंजर इलाकों को हरे-भरे खेतों में बदल डाला है। पूरे द्वीप का ४/५ भाग संसार की अति उत्तम फास्फेट का उत्पादक है, शेष में आबादी है।

धन की इतनी रेलपेल के बावजूद यहाँ कोई रेल नहीं। हवाईजहाज भी सप्ताह में एक बार आता है। न यहाँ के लोग बाहर जाते हैं और न बाहर के लोगों को आने की इजाजत देते हैं। नौरू में कोई ऐसा विदेशी प्रविष्ट नहीं हो सकता जिसे वहाँ के किसी निवासी ने निमंत्रित न किया हो। द्वीप में केवल एक समाचार-पत्र प्रकाशित होता है और वह भी पाक्षिक है। द्वीप के आसपास समुद्र भी इतना गहरा नहीं कि बड़े-बड़े जहाज तटवर्ती इलाकों पर लंगर डाल सकें। अतएव विशाल क्रेनों की सहायता से दूर खड़े जहाजों पर फास्फेट के बोरे लाद दिये जाते हैं।

कुल ७५० मीटर की दूरी तय करते समय आप को आसपास निर्जन भूमि मिलेगी। नौरू में वर्षा का औसत १९३ सेंटीमीटर वार्षिक है, लेकिन गरमी भी इतनी पड़ती है कि इस औसत से अधिक पानी भाप बन जाता है। इसी कारण यहाँ पानी की कमी है। सारे निवासियों के लिए लाखों लिटर पानी आस्ट्रेलिया से आयात किया जाता है और सरकार की ओर से निःशुल्क उपलब्ध किया जाता है।

अच्छे-से-अच्छे मकान का किराया ३६ रुपये से अधिक नहीं है। मकानों की मरम्मत भी मुफ्त की जाती है। इस के अतिरिक्त टेलीफोन, निःशुल्क उपचार, छह से सत्रह साल के बीच के लड़कों की शिक्षा, पाक्षिक समाचारपत्र, टोपियाँ, ऐनकें, परिवार-नियोजन की गोलियाँ, और ऐसी ही बहुत-सी चीजें नागरिकों को निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। १३ यूरोपीय इंजीनियर हांगकांग के ९६४ दस्तकार और गिलबर्ट एवं एलिस के ७१५ मजदूर वे सारे काम करते हैं जो नौरू के नागरिकों को करना चाहिएँ। उन लोगों की कम-से-कम मजदूरी लगभग

८,७३० रुपये मासिक है। लेकिन नौरू के राष्ट्रपति हैमर द रॉबर्ट नव्बे हजार रुपये वार्षिक से अधिक वेतन नहीं लेते ! अलबत्ता उन्हें राजकीय खर्चों की मद में २२,५०० रुपये और दिये जाते हैं।

नौरू में प्रतिवर्ष बीस लाख टन फास्फेट निकाल कर लगभग सौ रुपये टन के हिसाब से बेच दिया जाता है। अभी तक साढ़े चार करोड़ टन फास्फेट निकाला जा चुका है। एक अनुमान के अनुसार १९९५ तक द्वीप से फास्फेट का भंडार खत्म हो जायेगा, अतएव राष्ट्रपति ने प्रत्येक नागरिक की आय में से इतना रुपया काट कर बैंक में जमा कराना शुरू कर दिया है कि १९९५ में यहाँ के नागरिकों के लिए आय का कोई साधन न रहे तो वे इस पूँजी के व्याज से प्रतिवर्ष ५४,००० रुपये प्राप्त करते रहेंगे।

मंत्रिमंडल में कुल पाँच मंत्री हैं जिन की सहायता के लिए एक जापानी कंप्यूटर तथा छह आस्ट्रेलियाई और ब्रिटिश परामर्शदाता हर समय मौजूद रहते हैं।

इन मंत्रियों और सलाहकारों के अधीन ५४७ अफसर हैं। मंत्रिमंडल के कार्यालय के पास पासपोर्ट का कार्यालय है जिस में एक टेलीप्रिंटर है। इसी कार्यालय के पास एक बँगलानुमा इमारत में संसद-भवन है। संसद के १८ सदस्य वर्ष में चालीस सत्रों में शामिल होते हैं।

नौरू की अपनी कोई करेंसी सिक्का नहीं है। यहाँ आस्ट्रेलिया करेंसी ही काम में आती है। नौरू भाषा की कोई लिपि नहीं है। बातचीत के लिए नौरू की भाषा और लिखने के लिए अँगरेजी का प्रयोग किया जाता है। यहाँ कोई बंदरगाह भी नहीं है।

ब्रिटेन के समुद्री बेड़े के कप्तान जॉन फर्न ने इस द्वीप का सब से पहले पता लगाया था। तब यहाँ पोलीनेशियन कबीले आबाद थे। धीरे-धीरे यूरोपीय जातियों को जब नौरू के बारे में पता चला तब उन्होंने पूरी आबादी में युद्ध की विभीषिका और तरह-तरह की बीमारियाँ फैला दीं। १८७८ तक ये कबीले आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहे। अंततः जरमनी ने १८८८ में इस द्वीप पर कब्जा करके उसे अस्सी साल तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखा। प्रथम विश्व युद्ध में लीग ऑव नेशंस ने नौरू को ब्रिटेन, न्यूजीलैंड और आस्ट्रेलिया के नियंत्रण में दे दिया। १९४७ में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इसे एक न्यस्त क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया। ३१ जनवरी, १९६८ को यह नन्हा-सा द्वीप अहिंसात्मक संग्राम के बाद गणतंत्र घोषित कर दिया गया। आज आबादी के हिसाब से सब से ज्यादा बैंक-बैलेंस इसी देश के नागरिकों का है।

(पन्नानिवास, लोहारपुरा, जोधपुर)

---

**फारस की खाड़ी में ओर्मुज द्वीप नमक का बना है। यह सागरतल से ९० मीटर ऊपर तथा ३० किलोमीटर के घेरे में है। यहाँ कोई वनस्पति नहीं है।**

● ओमप्रकाश गाबा
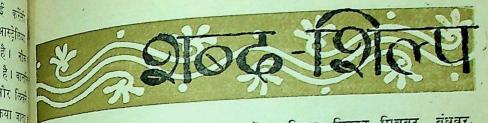
किसी व्यक्ति या वस्तु को अपने वर्ग के व्यक्तियों या वस्तुओं से बढ़-चढ़ कर दर्शाने के लिए अनेक शब्दों और शब्दांशों का प्रयोग होता है। कवियों और साहित्यकारों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रखर कल्पना-शक्ति का परिचय दिया है। ऐसे उदाहरणों का अध्ययन न केवल रोचक है बल्कि उस से हमें उन अवसरों पर, जब किसी व्यक्ति या वस्तु की श्रेष्ठता स्थापित करनी हो, उपयुक्त अभिव्यक्ति जुटाने में सहायता भी मिलती है।

किसी शब्द से पहले **'सु'** उपसर्ग लगा कर उस शब्द से सूचित होने वाली वस्तु के अच्छा होने का संकेत दे सकते हैं। **सुकवि**—अच्छा कवि; यह आवश्यक नहीं कि वह अन्य कवियों से बहुत बढ़-चढ़ कर हो, पर वह साधारण कवियों की तुलना में श्रेष्ठ होगा ही। वैसे 'सु' उपसर्ग का प्रयोग व्यापक स्तर पर होता है और संदर्भ के अनुसार उस से सुंदर, शुभ, उत्कृष्ट, सरल आदि अनेक ध्वनियाँ निकलती हैं।

वर्गसूचक शब्द के बाद **'वर'** और 'प्रवर' लगा कर भी श्रेष्ठ का संकेत देते हैं। **कविवर, विद्वद्वर, मित्रवर, बंधुवर, प्रियवर** से क्रमशः कवियों में श्रेष्ठ, विद्वानों में श्रेष्ठ आदि का बोध होता है। **भक्त-प्रवर, आचार्यप्रवर** में प्रवर आया है। 'प्रवर' में वर से पूर्व 'प्र' उपसर्ग है जो उत्कर्ष का द्योतक है। वर और प्रवर से युक्त शब्द अधिकांशतः संबोधन के लिए प्रयुक्त होते हैं। 'वर' में श्रेष्ठता के साथ-साथ कुछ आत्मीयता भी व्यक्त होती है और कभी-कभी यह प्रयोग मात्र औप-चारिकता की वस्तु रह जाता है। 'प्रवर' भी प्रायः संबोधन के संदर्भ में आता है और उस में श्रेष्ठता के साथ-साथ सम्मान-प्रदर्शन लक्षित होता है।

किसी शब्द के बाद **'उत्तम'** जोड़ कर श्रेष्ठता का संकेत देने के उदाहरण भी मिलते हैं। **नरोत्तम**—नरों अथवा मनुष्यों में उत्तम। **पुरुषोत्तम**—पुरुषों में उत्तम। अतः राम को मर्यादा-पुरुषोत्तम और कृष्ण को लीला-पुरुषोत्तम कहा गया है।

**राजा, रानी** अपने वर्ग के व्यक्तियों में श्रेष्ठ के प्रतीक रहे हैं। अतः श्रेष्ठ का बोध कराने के लिए इस प्रतीक के प्रयोग
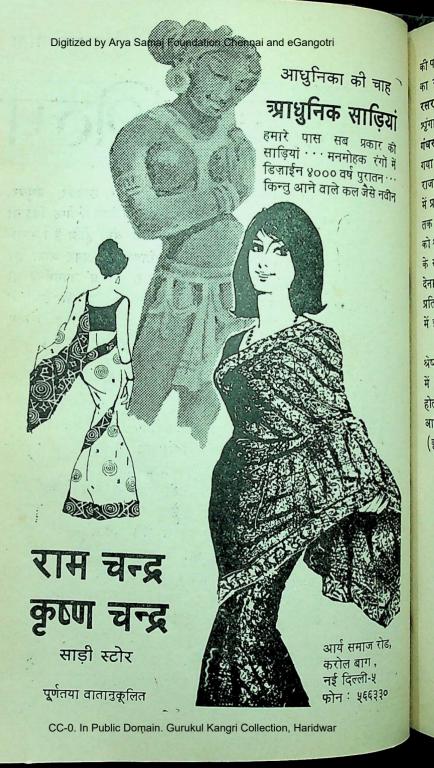
की परंपरा भी रही है। **ऋतुराज**—ऋतुओं का राजा अथवा ऋतुओं में श्रेष्ठ, वसंत। **रसराज**—(काव्य के) रसों का राजा, शृंगाररस। **कविराज, गिरिराज, गजराज, गंधराज** (चंदन) में यही प्रतीक अपनाया गया है। **गजेंद्र** (गज+इंद्र) में इंद्र भी राजा का ही पर्याय है। **'कवि-सम्राट्'** में प्रतीक राजा से बढ़ कर सम्राट के स्तर तक पहुँच गया है। **कविकुल-मुकुट** में मुकुट को श्रेष्ठ का प्रतीक बनाया गया है। श्रेष्ठता के साथ-साथ जहाँ सौंदर्य का भी संकेत देना हो वहाँ राजा की जगह रानी की प्रतिष्ठा कर सकते हैं। 'पर्वतों की रानी' में इसी प्रतीक का सहारा लिया गया है।

**'शिरोमणि'** और **'शिखामणि'** में श्रेष्ठता के साथ-साथ अपने वर्ग के लोगों में ऊँचा स्थान प्राप्त होने का भी बोध होता है। **रसिक-शिरोमणि, दूतशिरोमणि** आदि में यही भाव हैं। गीतगोविंद के नायक (कृष्ण) को 'चोरजार' शिखामणि' की उपाधि से अलंकृत किया गया है।

श्रेष्ठ और अमूल्य का प्रतीक **'रत्न'** से बढ़ कर क्या होगा ? जो व्यक्ति या वस्तु अपने वर्ग के व्यक्तियों और वस्तुओं से इतनी श्रेष्ठ हो कि उस ने उन में अपना विशेष स्थान बना लिया हो, उसे रत्न की कोटि में रखा जा सकता है। **पुरुषरत्न, मानवरत्न, नररत्न, नारीरत्न, कविरत्न, ग्रंथरत्न** में रत्न अपने वर्ग के व्यक्तियों और वस्तुओं में श्रेष्ठ का द्योतक है। **भारतरत्न, देशरत्न, राष्ट्ररत्न** में रत्न एक बड़ी इकाई के अंतर्गत विशेष यश प्राप्त करने का संकेत देता है। इतिहास में हमें विक्रमादित्य की सभा तथा अकबर के दरबार के नवरत्नों का उल्लेख मिलता है। ये लोग अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय थे। **पुत्ररत्न** और **कन्यारत्न** में रत्न का प्रयोग दूसरी तरह से होता है—पुत्र और कन्या को ईश्वर का वरदान सूचित करने के लिए।

**(एफ– ३/१०, मॉडल टाउन, दिल्ली–९)**

---

**सप्तम सिख गुरु हररायजी के दर्शनों के लिए एक बार तुर्की का बादशाह आया। उस ने गुरुजी से पूछा, "मोअज्जिज ! मुहम्मद साहब, हजरत ईसा और हजरत मूसा-जैसे कई पैगंबर हुए हैं। इन में से किस पैगंबर का हुक्म मानने से खुदा मिल सकता है ?"**

**गुरुजी ने उत्तर दिया, "शहंशाह, ईश्वर तो सर्वव्यापी है, निराकार, निरंजन है। उस के पास पहुँचने के लिए किसी की मदद की दरकार नहीं। ईश्वर कोई दुनियावी हुक्मराँ नहीं जो किसी की सिफारिश सुन कर किसी की तरफदारी करे। वह दूर-से-दूर और पास-से-पास है। इनसान उसे अपने ही कर्मों से पा सकता है।"**

● श्यामजी पंडित

आजकल समाजवाद की धूम है। जो स्थान सब्जी में नमक का है, वही स्थान नेताओं के भाषणों और राजनीतिक कर्त्ताओं में समाजवाद का। समाजवाद का जन्म कब हुआ, इस प्रश्न पर इतिहास मौन है। हुआ भी या नहीं, कौन कहे? जहाँ तक आकार-प्रकार या रूप-रंग का प्रश्न है, समाजवाद बिलकुल निर्गुण ब्रह्म की तरह है, जो कहीं दिखायी तो नहीं देता, पर चारों ओर फैला है। समाजवाद का अर्थ बड़ा टेढ़ा है। मेरी समझ में तो अभी तक इस का अर्थ आया नहीं है। समाजवाद के भक्तों को समाजवादी कहते हैं। चूँकि राजनीति देवी ने अभी परिवार-नियोजन नहीं अपनाया है, अतः इन के दल-रूपी बेटों की संख्या या पार्टी-रूपी बेटियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। दल, वे चाहे जो भी हों, पहले समाजवाद लाना चाहते हैं पीछे और कुछ। अलग-अलग दलों के समाजवाद का अलग-अलग अर्थ भी किया है। कहावत है कि कवि, व्यभिचारी और चोर तीनों स्वर्ण खोजते फिरते हैं, पर इन में प्रत्येक का स्वर्ण अलग-अलग है। इसी तरह भिन्न-भिन्न दल समाजवाद का भिन्न-भिन्न अर्थ करते हैं। बहुत छानबीन करने के बाद इतना समझ में आया है कि समाजवादी चाहते हैं कि संपत्ति का समान बँटवारा हो--किसी को कम और किसी को अधिक न मिले। कहना न होगा कि समाजवाद लाने के लिए ही भूदान आंदोलन से ले कर नक्सलवादी आंदोलन, जमीन हथियाओ आंदोलन, मकान छीनो आंदोलन, कुरसी छीनो आंदोलन और पत्नी छीनो आंदोलन तक चल रहे हैं। घिराव, धरना, अनशन सब इसीलिए तो हो रहे हैं!

इस समय दर्जनों किस्म के समाजवादी राजनीतिक बाजार में पाये जा रहे हैं जिन में बमवादी समाजवादी, लट्ठवादी समाजवादी, रूपवादी समाजवादी, विगत-वादी समाजवादी, यथार्थवादी समाजवादी, आदर्शवादी समाजवादी, समझौतावादी समाजवादी, वादी समाजवादी और बक-वादी समाजवादी विशेष लोकप्रिय हुए हैं।

समाजवाद लाने की कोशिश सब से

पहले कब शुरू हुई इस का तो ठीक पता नहीं, पंद्रह वर्ष से अधिक तो अवश्य हो चुके हैं। पिछले दस वर्ष में मनुष्य ने चंद्रमा पर पहुँचने का अभियान प्रारंभ किया और वहाँ तक पहुँच भी गये। पहुँचे ही नहीं, दो-चार कंकड़, पत्थर भी उठा लाये और ऐसी बातें भी जान लीं जिन्हें सुन कर चंद्रमुखियों के दिल शीशे की तरह चूर-चूर हो गये। लेकिन, हम अब तक समाजवाद नहीं ला सके ! इस से लगता है कि समाजवाद हम से अवश्य ही पाँच लाख किलोमीटर से अधिक दूर है।

हालाँकि समाजवादियों की सैकड़ों जमातें रात-दिन समाजवाद ही लाने का काम करने पर जुटी हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं। समाजवादी दलों के पास अपने-अपने कार्यक्रमों की सूची है, जैसे तेरह-सूत्री कार्यक्रम, सत्रह-सूत्री कार्यक्रम और उन्नीस-सूत्री कार्यक्रम आदि। कुल मिला कर यह दीर्घसूत्री कार्यक्रम--फिर 'दीर्घसूत्री विनश्यति' कार्यक्रम--हो जाता है।

इस अदल-बदल के जमाने में समाजवाद का अर्थ भी बदलता रहा है। दस साल पहले अँगरेजी शब्द 'फेमिली' का जो अर्थ था, वह अब नहीं है। उस समय 'फेमिली' का तात्पर्य बाल, वृद्ध सहित पूरे परिवार
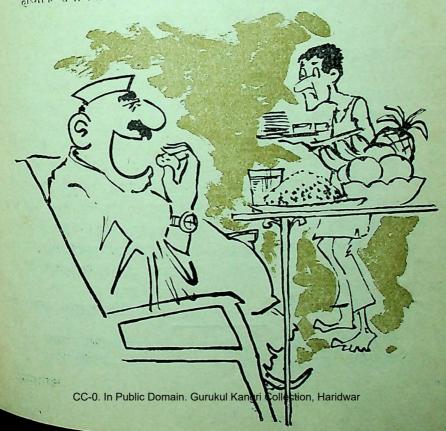
से था मिश्रु आज कीमती वास्तव में पप्पू की मम्मी का साहित्यिक नाम है। समाजवाद का अर्थ पहले कुछ भी रहा हो लेकिन वर्तमान काल में तो वह आजवाद (अवसरवाद), मौजवाद, साजवाद, विवाद और बकवाद आदि पंचतत्त्वों से बना हुआ प्रतीत होता है।

जिस तरह प्रत्येक असफल प्रेमी या तो कवि बन जाता है या दार्शनिक, उसी प्रकार प्रत्येक असफल तानाशाही नेता समाजवादी बन जाता है। कोई भी नेता भूत और भविष्य के जीवन में समाजवादी होने का दावा कर सकता है, सिर्फ वर्तमान में यह कुछ मुश्किल है। जिस तरह तीर्थस्थानों में पहुँचने पर दर्जनों पंडे अपनी-अपनी वंशावली और गौरव-गाथा कह कर 'इधर आइये', 'इधर आइये बाबूजी' कह कर आगंतुकों को बुलाते हैं और आगंतुक बेचारा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाता है कि किधर जायें, किधर न जायें। उसी तरह समाजवाद की गली में मुड़ने वाले मुसाफिर की गति होती है। बाजार में शुद्ध वनस्पति घी की सैकड़ों दुकानें हैं, पर सब पर लिखा है—'शुद्ध वनस्पति घी की एकमात्र दुकान'। अब खरीदने वाला सोचता है कि इन में बिलकुल असली कौन है। इसी प्रकार सभी दल अपने को एकमात्र समाजवादी दल कहते हैं।

कुछ दिन पूर्व मैं एक धुरंधर समाजवादी नेता से मिला। पहले वे मंत्री थे, [illegible] राजनीति से संन्यास ले चुके हैं और [illegible] फार्म पर खेती करा रहे हैं। मैंने बातचीत के दौरान उन से कहा, "आप तो समाजवादी हैं, कुछ जमीन भूमिहीनों को [illegible] दीजिये। आप के पास तो बहुत है।"

वे बोले, "भई, तुम तो पढ़े-लिखे हो, फिर ऐसी बे-सिर-पैर की बात [illegible] करते हो? यदि कोई सब को एक आँख [illegible] देखता है तो क्या इस का यह मतलब हुआ कि वह अपनी एक आँख फोड़ [illegible] है? समाजवाद तो एक ठोस कार्यक्रम [illegible] आयेगा। यह सरकार समाजवाद नहीं ला सकती। हमारा दल सत्तारूढ़ हो जा[illegible] तो समाजवाद आया ही समझो। लेकिन इस के लिए जरूरी है कि मौजूदा [illegible] समाजवादी सरकार हटायी जाये। [illegible] काम आंदोलन, बंद, हड़ताल, घेराव और अविश्वास-प्रस्ताव से होगा, जो ह[illegible] कर ही रहे हैं।"

समाजवाद आये न आये, लेकिन समाजवादियों की जमातें तो रहेंगी ही। वस्तुतः समाजवाद एक गूढ़ प्रश्न है जि[illegible] पर तत्काल शोध-कार्य शुरू कर दि[illegible] जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि कोई संन्यास ले चुका समाजवादी नेता (जो कुछ पढ़ा-लिखा भी हो) यह काम अच्छी तरह कर सकता है।

(४४ मोरी, दारागंज, इलाहाबाद)

---

**जीवन तो अब अपना वजन नीचे रखने और मनोबल ऊपर रखने का संघर्ष मात्र हो गया है।** **—मिकी पोर्टर**

• हि. भी. उनड़कर

# दुकानदारी के दो गुर

दुकानदारी एक कला है। इसे सीखना पड़ता है। साधनों की बहुलता अच्छी दुकानदारी की गारंटी नहीं है। दुकानदारी की सफलता इसी बात से आँकी जा सकती है कि खरीदार दुकान से संतुष्ट हो कर जाये और अपनी संतुष्टि का अन्य लोगों में भी प्रचार करे। यदि दुकानदार मुख्यतया ये दो गुर अपना लें तो कोई कारण नहीं कि उन्हें सफलता न मिले।

पहला गुर—ग्राहकों को माल की गारंटी दीजिये। उन से कहिये कि चीज पसंद न आने पर वे उसे लौटा सकते हैं। बिक्री बढ़ाने का यह अत्यंत प्रभावकारी उपाय है। दुकानदार का ऐसा कहना ग्राहकों का संदेह दूर कर उन्हें विश्वास दिला देता है कि चीज वास्तव में अच्छी है। इस आश्वासन से उन्हें खरीदने का निश्चय करने में बहुत सोच-विचार नहीं करना पड़ता, दुकान छोड़ कर और कहीं देखने नहीं जाना पड़ता और गलत निर्णय का भी डर नहीं रहता। वे संतोष के साथ सामान खरीद लेते हैं।

तजरबा यह है कि लगभग ९५ प्रतिशत चीजें वापस नहीं आतीं। प्रायः यही होता है कि लौटा लिये जाने की सुविधा से संतुष्ट हुए ग्राहक माल को पसंद करने लगते हैं। यदि कभी कुछ नापसंद भी हो तब भी वे लौटाने का झंझट मोल नहीं लेते। अधिक असंतोष की स्थिति में ही ग्राहक खरीदी हुई चीजें वापस करने आते हैं, किंतु प्रायः वहीं से कोई और काम की चीज ले जाते हैं। यदि ग्राहक असंतुष्ट हो सामान लौटाने आये तो दाम सहर्ष वापस कर देना चाहिए।

दुकानदार को यह समझना चाहिए कि चीजें लौटाने के लिए आने में ग्राहकों को भी कष्ट होता है। दुकानदार को तो बैठे-बैठे ही चीजें देनी-लेनी होती हैं।

इस उपाय से कुछ हलकी चीजें भी बिक जाती हैं, किंतु उचित यही है कि चीजें अच्छी किस्म की रखी जायें। यदि कोई हलकी चीज आ गयी हो तो उस के

दाम में रियायत कर दें और ग्राहक को उस के हलकेपन से अवगत करा दें। आप की ईमानदारी और साफगोई से ग्राहक प्रभावित हुए बिना न रहेगा।

दुकान में अच्छी चीजें ही रखिये और एक बोर्ड पर ये पंक्तियाँ सुंदर अक्षरों में लिखवा कर टाँग दीजिये—**माल खराब होने पर या पसंद न आने पर, तौल या नाप में फर्क होने पर या कीमत के बारे में असंतोष होने पर उसे सहर्ष लौटा सकते हैं।**

ग्राहक उस दुकान से बेझिझक सामान ले आता है जहाँ उसे लौटाने की सुविधा दी जाती है। फिर क्यों न आप ग्राहकों को निश्चिंत हो कर चीजें खरीदने दें।

दूसरा गुर—नापने-तौलने में ईमानदारी बरतिये। इस से ग्राहकों को, विशेषकर छोटे और निर्धन ग्राहकों को संतुष्ट किया जा सकता है। इस से दुकान की साख जमती है।

नाप-तौल ठीक न करने से ग्राहकों पर बुरा मनोवैज्ञानिक असर पड़ता है और वे असंतुष्ट हो जाते हैं। नापने-तौलने में एक सरल और प्रभावकारी उपाय अपनाया जा सकता है।

सामान्यतः दुकानदार को जब कोई वस्तु किसी परिमाण में ग्राहक को देनी होती है तो वह बिना अंदाज के ही अनावश्यक रूप से कुछ अधिक वस्तु तराजू के पलड़े पर चढ़ा देता है, फिर उस में से क्रमशः थोड़ी-सी निकालते हुए उसे निश्चित वजन तक ले आता है और तब ग्राहक को देता है। ग्राहक पहले अधिक चीज पलड़े में देख लेता है। ज्यों-ज्यों वह कम होती जाती है त्यों-त्यों उसे निराशा होने लगती है और उसे ऐसा महसूस होता है मानो उस के हाथ में आयी हुई चीज को कम किया जा रहा हो। इस से ग्राहक मन ही मन खिन्न हो उठता है, चाहे जाहिरा तौर पर वह उसे प्रकट न करे।

इस भूल को दुकानदार सुधार सकते हैं। यदि वे तौलने की प्रक्रिया को इस तरह करें कि पहले कम चीज पलड़े पर रख कर क्रमशः उसे बढ़ाते चलें।

जैसे-जैसे दुकानदार थोड़ी-थोड़ी करके चीज की अधिक मात्रा डालता जाता है, वैसे-वैसे ग्राहक प्रसन्न होता जाता है। इस प्रकार के सूक्ष्म कौशल से बिक्री पर बहुत अच्छा असर पड़ता है।

**(द्वारा ब्रजलाल धरमशी, बीड़ी लीव्ज मर्चेंट, नटवर हाईस्कूल के पास, रायगढ़, म. प्र.)**

---

**लकड़ी की सब से बड़ी सीढ़ी १९५५ में पश्चिम नारवे में एक बिजली-घर में बनायी गयी थी। यह एक किलोमीटर से अधिक लंबी है। इस में ३,७१५ डंडे हैं और ४५ अंश का कोण बनाती हुई ७४० मीटर की ऊँचाई तक जाती है।**

# उत्थान-पतन के झूले में एक रँगीला व्यक्तित्व

● अशोक परमार

**सुकर्ण का सारा जीवन संघर्षमय रहा ! इंडोनेशिया की जिस जनता ने उन्हें अपना राष्ट्रपति चुना, उसी ने बाद में उन्हें पदच्युत भी कर दिया था। उत्थान-पतन के इन दौरों में उन्होंने यश ही नहीं, अपयश भी कम अर्जित नहीं किया। प्रस्तुत है उन के पारिवारिक जीवन की अंतरंग झाँकी**

अपने समय के रहस्यमय राजनीतिज्ञों में से थे डॉ. सुकर्ण। इंडोनेशिया की ही नहीं, सारी एशिया की राजनीति को उन्होंने अपने ढंग से प्रभावित किया था। उन के विषय में कोई भी राय निर्धारित करना आसान न था।

लोगों का अनुमान है कि जितने रहस्यमय वे राजनीति में थे, उस से भी अधिक रहे, अपने व्यक्तिगत जीवन में। उन का पारिवारिक जीवन अनोखा रहा। उन के चार विवाहों के विषय में तो सब जानते थे, लेकिन पाँचवें, छठे और सातवें के बारे में स्वयं उन की पहली पत्नियों को भी कोई जानकारी न थी। इस रहस्य का उद्घाटन हुआ सन १९६६ में, जब उन्हें 'विद्यार्थी आंदोलन' के परिणाम-स्वरूप राष्ट्रपति पद से हटाया गया था।

कहते हैं—उन का व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि महिलाएँ स्वतः उन की ओर आकृष्ट होती थीं। बढ़ती हुई अवस्था में भी उन के आकर्षण में कोई कमी न आ पायी थी। पचास साल की उम्र के पश्चात उन्होंने एक के बाद एक चार विवाह और किये थे। अंतिम दो विवाह तो सत्तर वर्ष के बाद हुए थे।

रत्ना सारी देवी

जहाँ एक ओर महिलाएँ उन के प्रति आकृष्ट होती थीं, वहाँ उन का भी झुकाव महिलाओं की ओर कुछ कम न था। बचपन से ही सुकर्ण को लड़कियों के प्रति आकर्षण रहा, जब वे राष्ट्रपति की हैसियत से स्वदेश में ही नहीं, विदेशों में भी जाते थे तो महिलाओं के प्रति अपने आकर्षण को नहीं छिपा पाते थे। एक बार सुकर्ण के सम्मान में यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में स्वागत-समारोह का आयोजन किया गया था। समारोह में राष्ट्रपति मार्शल टीटो ने दो अत्यंत सुंदर गायिकाएँ बुलायी थीं। गायन समाप्त होने के बाद वे दोनों अपने ड्रेसिंग-रूम में चली गयीं। तभी लोगों ने देखा कि सुकर्ण भी उठ कर कहीं चले गये हैं। थोड़ी देर बाद लौटने पर टीटो ने पूछा, "आप कहाँ चले गये थे?" सुकर्ण ने उत्तर दिया कि वे उन गायिकाओं से मिलने गये थे।

"अच्छा मैं भी देख आऊँ उन्हें!" कह कर टीटो भी उसी तरफ चल दिये।

एक और दिलचस्प घटना सुकर्ण के साथ काहिरा में घटी थी। अरब रीति-रिवाजों के अनुसार सार्वजनिक समारोहों में महिलाओं का आना-जाना नहीं के बराबर होता है। सुकर्ण को काहिरा में ठहरे दो दिन बीत चुके थे और इन दो दिनों में एक भी सुंदर चेहरा उन्हें नहीं दिखायी दिया था। बेचैन होकर उन्होंने नासिर से कहा, "क्या अरब गणराज्य में कोई लड़की नहीं है?" नासिर मुसकराये, "अच्छा, आज रात मैं आप को कुछ दिखाऊँगा! प्रतीक्षा कीजिए।" रात को लगभग ग्यारह बजे नासिर सुकर्ण के निवास-स्थान पर पहुँचे और उन्हें अपनी कार में बिठा कर पचास किलोमीटर दूर अपने गन्तव्य की ओर चल दिये। कुछ देर के बाद कार एक आलीशान इमारत के अहाते में घुसी। अब तक सुकर्ण किसी अद्वितीय सुंदरी के अरबी-नृत्य की कल्पना में खोये हुए थे। नासिर ने सुकर्ण को एक सुंदर कमरे में बिठाया और स्वयं भीतर चले गये। कुछ ही क्षणों में वे पचास-पचपन साल की एक महिला को लेकर कमरे में दाखिल हुए। स्तब्ध सुकर्ण कुछ कह पायें इस से पहले ही नासिर बोल उठे, "डॉ. इन से मिलो, ये हैं मेरी बड़ी बहिन!

अब तो आप नहीं कह पायेंगे कि अरब गणराज्य में महिलाएँ नहीं हैं।"

कहा जाता है कि सुकर्ण की इसी कमजोरी का लाभ उठाने के लिए रूस सरकार ने मास्को-यात्रा में सुकर्ण के लिए रूपवती कन्या को सचिव के तौर पर रखा था। उन दोनों के गुप्त-संबंधों के छिपे तौर पर कुछ फोटो भी खींचे गये थे ताकि सुकर्ण को बदनामी का भय दिखाकर जरूरत पड़ने पर उन पर राजनीतिक दबाव भी डाला जा सके। बाद में पूछे जाने पर सुकर्ण ने इस समाचार को मनगढ़ंत बताया था, पर आज भी इसे सच मानने वाले लोग काफी हैं।

सुकर्ण और चाहे जो भी हों एक अत्यंत कुशल अभिनेता अवश्य थे। अपने अंतिम तीन विवाहों का उन्होंने विश्व की जनता को पता ही नहीं चलने दिया। आश्चर्य है कि इन विवाहों का पता उन की पत्नियों तक को नहीं चल पाया। इस का कारण शायद यह था कि उन की पत्नियों को सुकर्ण के व्यवहार में कभी कोई परिवर्तन नहीं दिखायी दिया था।

अपनी चौथी पत्नी हारतीनी से उन्हें विशेष स्नेह था। हारतीनी जकार्ता से नब्बे किलोमीटर दूर बोगोर में रहती थी। सुकर्ण १९५३ से १९६६ तक हर शुक्रवार को शाम चार बजे हैलिकोप्टर से बोगोर पहुँच जाते थे और सोमवार दस बजे वापस आते थे। सुकर्ण के १९६३, ६४, और ६५ में हुए तीनों विवाहों का सप्ताहांत की बोगोर की यात्राओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। हारतीनी के लिए वे वही पहले वाले पति थे जो पत्नी के पास आ कर दुनिया की हर चिंता को भुला देते थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन की किसी पत्नी या बच्चे ने कोई उपहार मँगाया हो और सुकर्ण उसे लाना भूल गये हों। हाँ यदि कभी उन की कोई पत्नी उन से किसी नयी लड़की के बारे में चल रहे रोमांस के बारे में पूछती तो सुकर्ण उसे झूठ बोल कर साफ नकार जाते थे और दुबारा पूछे जाने पर उत्तेजित हो उठते थे।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में सुकर्ण का पहला विवाह सोलह वर्षीया उतारी से हुआ था। उतारी क्रांतिकारी नेता जोकोआमिनोतो की बेटी थी और उस की प्रार्थना पर सुकर्ण ने उस की बेटी के साथ विवाह किया था। सुकर्ण की दूसरी पत्नी का नाम था—इंगित। सुकर्ण से पंद्रह साल बड़ी इंगित हादजि सनसी नामक एक क्रांतिकारी की पत्नी थी और उस ने अपने पति की अनुमति से ही सुकर्ण से विवाह किया था।

बाद में सुकर्ण ने सूडानी पत्नी इंगित से भी तलाक ले लिया और १९४३ में फातमावती से शादी कर ली। फातमावती उस समय अपनी किशोरावस्था में ही थी। हारतीनी सुकर्ण की चौथी पत्नी बनी। पूर्व पति से हारतीनी के पाँच बच्चे थे। हारतीनी तलाक ले कर अपने बच्चों के

साथ अकेली रहती थी। सुकर्ण से उस का मिलन १९५२ में एक पार्टी में हुआ था। सिर्फ हारतीनी का पता मालूम करने के लिए सुकर्ण को पार्टी में उपस्थित सब महिलाओं के नाम और पते पूछने पड़े थे। लेकिन उन्होंने याद रखा सिर्फ हारतीनी को ही।

जून '५९ में सुकर्ण जापान गये। वहाँ उन की मुलाकात रत्ना सारी देवी से हुई। यह सुंदर महिला सुकर्ण की पाँचवीं पत्नी बनी। सितंबर, १९५९ में रत्ना देवी जकार्ता आ गयी लेकिन सुकर्ण की इस पाँचवीं शादी का किसी को पता नहीं चला। कुछ अखबारों में सुकर्ण का इस जापानी लड़की के साथ रोमांस का समाचार तो छपा लेकिन शादी का शायद ही किसी को संदेह हुआ हो। सुकर्ण का छठा विवाह हार्याती से सन १९६४ में हुआ और सातवाँ विवाह १९६५ में यूरीक सेंगर से। सुकर्ण के सातवें विवाह के बारे में लोगों को संदेह है लेकिन यूरिक के अनुसार उस का सुकर्ण से विवाह हुआ था।

राष्ट्रपति के पद पर काम करते हुए दिन भर में उन्हें जो भी मानसिक तनाव हो जाता था उस से वे घर आ कर पूर्णतया मुक्त हो जाना चाहते थे। और शायद कोई भी एक पत्नी उस तनाव को हर रोज पूरी तरह खत्म करने में सफल नहीं रही थी इसीलिए वे एक के बाद एक विवाह करते रहे।

सुकर्ण की इतने विवाह करने से बहुत से लोगों ने यह अनुमान लगाया कि सुकर्ण को अपनी काम-इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं था। यदि ऐसा होता तो उन्हें अपनी हर नयी पत्नी से पहले वाली की अपेक्षा ज्यादा लगाव हुआ होता पर ऐसा नहीं हुआ। सुकर्ण का स्नेह अपनी सब पत्नियों के प्रति लगभग बराबर ही रहा। कारण था कि सुकर्ण का सौंदर्य के लिए विशेष आकर्षण रहा। महिलाएँ ही नहीं, सुंदर चित्र, कला की सुंदर वस्तुएँ, सुंदर नृत्य, सुंदर फूल इन सब से उन्हें अत्यधिक स्नेह था। विश्व की जनता ने उन्हें तरह-तरह के नामों से संबोधित किया और बदनाम करने की भी कम कोशिशें न कीं, लेकिन सुकर्ण के अंतरंग साथियों की धारणाएँ कुछ और ही थीं।

सिर्फ सुंदरता के ही नहीं, सुकर्ण मानवता के, संस्कृति के और कला के भी महान प्रेमी थे। उन्हें इंडोनेशिया में आज तक भी 'बंगकर्णो' (बड़ा भाई) कह कर याद किया जाता है। केवल अपने नहीं, किसी भी देश के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में वे बड़े उत्साह से भाग लेते थे और कला के प्रति एक विशेष रुचि रखते थे। सुकर्ण के व्यक्तिगत संग्रह में रखी देश-विदेशों की कलात्मक वस्तुएँ उन के अद्वितीय सौंदर्य-बोध की आज भी याद दिलाती हैं।

(५२ ए, कमलानगर, दिल्ली-७)

---

**दुनिया की डाक से एक मिनट में औसतन पचास लाख पत्र गुजरते हैं।**

● के. पी. सक्सेना

# संगमरमर में धँसी कीलें

बंद गले की ढीली कासनी स्कर्ट पर झूलता हुआ नन्हा-सा क्रॉस, आँखों पर सुनहरे फ्रेम की ऐनक, चेहरे की एक-एक झुर्री जैसे रह-रह कर लौ दे उठती थी। श्रीमती ज्यूनोड की याद का एक रिश्ता-सा जुड़ गया है आगरा से—ताज से कहना ज्यादा ठीक होगा। कभी उन की याद ताजा हो उठती है तो लगता है जैसे दूध में भीगे होंठों से हँसती कितनी ही प्यारी लाशें उन की आँखों के आगे से गुजर चुकी हों और उन की यादों की दहलीज पर हर वीते कदम के निशान ज्यों-के-त्यों मौजूद हों। सच है कि इनसान कितना भी सिर पटके, मगर खून से ज्यादा सुर्ख रंग नहीं पैदा कर सकता। श्रीमती ज्यूनोड और ताज की भी एक कहानी है !

मैं, पत्नी और गोद में थी डेढ़ साल की हमारी बच्ची मधु। १९५८ में शुरू अक्तूवर के दिन थे। इस बार मैं ताज देखने का पत्नी का पुराना तकाजा पूरा कर रहा था। इन्हीं दिनों दिल्ली में अंतरराष्ट्रीय रेडक्रॉस सम्मेलन चल रहा था। सुबह-शाम विज्ञान-भवन में बैठक चलती थी और दिन भर विदेशी डॉक्टरों का हुजूम ताज के लान में उमड़ पड़ता था। तरह-तरह की वोलियाँ...उलझे घुँघरुओं-जैसी हँसी...कैमरे की क्लिक !

ताज का हर कोना आँखों में समा जाने के वाद बच्ची को हम ने घास पर रेंगने के लिए छोड़ दिया और स्वयं सुस्ताने के लिए मोती मस्जिद के वरामदे में जा वैठे। कुछ दूर हट कर तीन लोगों की एक टोली कुछ नोट्स लिखने में मगन थी। दो पुरुष, अधेड़-से, और एक स्त्री। स्त्री यानी श्रीमती ज्यूनोड ! बच्ची खिसकते-खिसकते उन तक जा पहुँची और उन के थर्मस से खेलने लगी। श्रीमती ज्यूनोड ने उसे गोद में उठा लिया। बच्ची के माध्यम से हमारा परिचय हुआ। बूढ़े डाक्टर मार्सेल ज्यूनोड अंतरराष्ट्रीय रेड-क्रास, जिनेवा के अध्यक्ष थे। श्रीमती ज्यूनोड भी डॉक्टर थीं। साथ में थे डॉक्टर महोदय के छोटे भाई डॉ. लारी ज्यूनोड। हम लोगों में काफी देर बातचीत चलती रही। डॉ. लारी ने अपने रंगीन कैमरे से वच्ची के कई चित्र उतारे।

अचानक ताज के संबंध में बातचीत करते हुए डॉक्टर मार्सेल ने मुख्य गुंबद

ताज

पर जड़ी कीलों की ओर इशारा किया और उन के वहाँ जड़े जाने का कारण पूछा। यहाँ ही किसे मालूम था ! पहले तो कुछ सकपकाये, फिर बाद में यह कह कर अँधेरे में तीर चला दिया कि इन बड़ी-बड़ी कीलों में रस्सियाँ बाँध कर मजदूर लोग बरसात बाद गुंबद की सफाई करते हैं। तीर निशाने पर बैठा और डा. मार्सेल संतुष्ट हो गये। सिगार सुलगाते समय भी उन की आँखें ताज पर टिकी थीं। अचानक एक सवाल उन के होंठों से फिसला—

"अणुबम की शक्ति का अंदाजा है तुम्हें ? कहाँ टिकेगा तुम्हारा ताज अगर एक विस्फोट हो जाये ?"

अभी हम सवाल पूरी तरह समझ भी न पाये थे कि श्रीमती ज्यूनोड की धीमी-सी सिसकी ने हमें चौंका दिया—

"मार्सी !...यह तो सोचो ओल्डमैन कि तुम कहाँ खड़े हो ? बड़ा वह है जिसे बना कर मिटा दिया जाये तो दोबारा न बन सके ! अणुबम बनते-फूटते रहेंगे ! ताज मिट गया तो तुम्हारा विज्ञान उस की भोंडी नकल भी न उतार सकेगा ! इस विस्फोट ने मुझ से मेरा सब कुछ छीन लिया है...सब कुछ..." वे सिसकने लगीं। "आई एम सो सारी !...टेक इट ईजी डार्लिंग...ईजी !..." बूढ़े डाक्टर ज्यूनोड उन की पीठ पर हाथ फेर रहे थे।

डॉक्टर लारी ने हमें आहिस्ता से बताया कि श्रीमती ज्यूनोड का इकलौता नौजवान लड़का कई वर्ष पहले लड़ाई में काम आ गया था। हमारी भी आँखें छलछला उठीं। वातावरण का भारीपन हटाने के लिए डाक्टर बच्ची के साथ खेलने लगे और अपने किटबैग से निकाल कर सेब बाँटे। कोई पाँच घंटे हमारा साथ रहा।

विदा होते समय उन से हाथ मिलाया तो आँखें श्रीमती ज्यूनोड के चेहरे पर टिक गयीं। लगा जैसे वह बूढ़ी डॉक्टरनी जिंदगी के तकाजे पर उम्र का बहुत बड़ा जख्म चाट कर जी रही हों और उस के पत्थर हो गये दिल के गुंबद पर भी कील ठोंक दी गयी हो !

(११ वजीरगंज, लखनऊ-१) •

• सुरेन्द्र सामवेदी

'मात्राशी स्यात्'—दो शब्दों से बना यह वाक्य आयुर्वेद का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। इस का अर्थ है—भोजन मात्रा में ही खाना चाहिए। मात्रा में खाया हुआ भोजन कफ, पित्त, वातादि दोषों को प्रकुपित नहीं करता तथा आयुष्कर होता है।

प्रस्तुत सिद्धांत को अपना कर जहाँ व्यक्ति स्वस्थावस्था में खाद्य पदार्थों का सही लाभ प्राप्त कर सकता है वहाँ अनेक भ्रमों से मुक्ति भी पा सकता है। पुराने समय से ही एक वर्ग ऐसा रहा है जो भोज्य पदार्थों के संबंध में अपना मत थोपता आया है—अमुक पदार्थ खाना चाहिए, अमुक नहीं। यह प्रवाद यहाँ तक बढ़ा कि निरामिष पदार्थों का भी कुछ व्यक्तियों ने धर्म या संप्रदायों में वर्गीकरण कर दिया, जैसे—प्याज, लहसुन, मिर्च आदि पदार्थ यवनों के भक्ष्य हैं, हिंदुओं के नहीं। इस मतवाद के चक्कर में आ कर अनेक भक्ष्य पदार्थ भोजन की परिधि से निकल गये अथवा उन पर आशंकाओं की परतें जम गयीं। ऐसे मंतव्यों को एकत्रित किया जाये तो अन्न के अतिरिक्त कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिसे भक्ष्य ठहराया गया हो। यद्यपि इस वर्ग में अनेक वैद्य एवं डॉक्टर भी हैं, तथापि भक्ष्याभक्ष्य के निर्णायक ग्रंथों में पदार्थों के न खाने का अंकुश नहीं है। अंकुश है तो केवल 'मात्राशी स्यात्' (चरक) का।

रुग्णावस्था में पथ्यापथ्य की शर्त अनिवार्य है, किंतु स्वस्थावस्था में किसी पदार्थ को नितांत नकार देना आयुर्वेदीय सिद्धांत के प्रतिकूल है। यदि किसी पदार्थ के खाने से हानि होती भी है तो वह उस के मात्राधिक्य से होती है। यद्यपि चिकित्सकों ने प्रकृति, अवस्था, भार, आदि की दृष्टि से मात्रा का निश्चित विभाजन किया है तथापि वह निश्चित मात्रा सभी पर एक-सी लागू नहीं होती। वह मोटा वर्गीकरण है जो औसत व्यक्तियों पर लागू होता है।

वस्तुतः सर्वग्राह्य मात्रा का 'एक ही' अनुपात निश्चित नहीं किया जा सकता। शरीर-विविधता के कारण उस में भी विविधता होगी चाहे वह प्रकृति-भिन्नता से हो अथवा रोगाणुसंक्रमित शरीर की

भिन्नता से । चिकित्साशास्त्रों में सामान्य आहार का ज्ञान इसीलिए अनिवार्य बतलाया है कि विविध परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति अपने मत को स्वयं स्थिरता प्रदान कर सके। ऐसी स्थिति में मात्रा का ज्ञान कैसे हो ? इस का समाधान हम इस प्रकार कर सकते हैं—यदि किसी मात्रा में लिया हुआ कोई पदार्थ हानि पहुँचाता है तो वह उस का 'मात्राधिक्य' है। उस शरीर के लिए उतनी ही मात्रा ठीक होगी जो शरीर को हानि न पहुँचाये। अनेक व्यक्तियों के शरीर में रोगाणुओं के संक्रमण से अथवा प्रकृति की प्रधानता से उस रोग को बढ़ाने वाले पदार्थों के ग्रहण कर लेने से रोगाणुओं का विस्तार हो कर शरीर रुग्ण हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिए उन पदार्थों की मात्रा या तो अल्प होनी चाहिए या उन का सेवन तब तक नहीं करना चाहिए जब तक शरीर से उन रोगाणुओं का निष्क्रमण न हो जाये। शरीर के रुग्ण होने पर, पथ्यापथ्य की दृष्टि से, स्वस्थता-प्राप्ति तक ही उन पदार्थों का वर्जन कर सकते हैं, नितांत नहीं।

इस प्रकार पदार्थों को खाद्य-वर्ग से निकाल फेंकने वाली मान्यता में इतना संशोधन हो सकता है कि कोई भी पदार्थ शरीर के धर्मानुसार मात्राधिक्य में नहीं खाना चाहिए।

निषेधमूलक मान्यता की उद्भावना के पीछे एक महत्त्वपूर्ण कारण है। प्रायः पदार्थों की मात्रा पर अधिकांश व्यक्ति नियंत्रण नहीं कर पाते, अतः उन से हानि उठाते हैं। ऐसी स्थिति में किसी पदार्थ के बिलकुल ही न खाने वाली मान्यता का प्रचलन हुआ। कुछ व्यक्तियों की मान्यताओं में रूढ़ियाँ भी निहित हैं। किंतु इस स्थिति में भी उपर्युक्त मत का समर्थन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह मत सभी पदार्थों के साथ लागू है। नमक, मिर्च, प्याज, लहसुन आदि पदार्थों पर यदि व्यक्ति नियंत्रण नहीं कर पाता है तो अन्न, दूध, घी आदि पर भी नियंत्रण नहीं कर सकता और उन से भी हानि उठा सकता है। तब क्या ये पदार्थ भी त्याज्य माने जायेंगे ?

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि दूध, घी आदि पदार्थों की अपेक्षा मिर्च, लहसुन, प्याज आदि पदार्थों से होने वाली हानि शीघ्र अनुभव होती है। मिर्च, लहसुन, प्याज आदि पदार्थ 'तीव्रधर्म' वाले हैं जब कि दूध, घी आदि पदार्थ 'मंदधर्म' वाले। तीव्रधर्म वाले पदार्थों का जरा-सा अंश भी अधिक होने पर उसी तीव्र अनुपात में दोष पैदा करेगा और 'मंदधर्म' वाले पदार्थों की अधिक मात्रा धीरे-धीरे। पदार्थ चाहे तीव्रधर्म वाले हों अथवा मंदधर्म वाले, सभी के बारे में शरीर-सापेक्षता अनिवार्य है। मात्राधिक्य होने पर सभी पदार्थ हानि कर सकते हैं।

अवगुण सभी पदार्थों में हैं, फिर भी उन्हें दैनिक आहार में ग्रहण किया जाता

है। इन के दोषज परिणामों से बचने के लिए मात्रा के साथ 'षट्रस सेवन' का सिद्धांत उपयुक्त ठहरता है। भोजन में ग्रहण किये जाने वाले भिन्न रसीय विविध पदार्थ परस्पर एक-दूसरे पदार्थ के दोष-शामक होते हैं। इसी कारण उन दोषों को उभरने का अवसर नहीं मिल पाता। भोजन में परिवर्तन करते रहने तथा षट्रस-सेवन का यही महत्त्व है। बहुधा यह देखने में आया है कि एक रससेवी या एक रस का अधिक सेवन करने वाले व्यक्तियों को परिणामभूत रोगों का शिकार होना पड़ता है, जैसे--मीठा अधिक खाने वाले व्यक्तियों को कफज रोग, मधुमेह आदि; तिक्त, कटु, अधिक सेवन करने वालों को पैत्तिक रोग आदि।

कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं जिन में एक ही अवगुण तीव्ररूप में अथवा अनेक अवगुण होते हैं और गुण कम होते हैं। आयुर्वेद में ऐसे पदार्थों का खाना भी वर्जित नहीं माना जाता है। किंतु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'स्वभावसाम्य' वाले पदार्थों के साथ ही और 'वैषम्यस्वभाव' वाले पदार्थों के कुछ आगे-पीछे उन का दोषशमन करने वाले पदार्थों का अवश्य सेवन किया जाये।

औषधों के 'योग-निश्चय' में यही प्रक्रिया मात्रापेक्षा से अपनायी जाती है। उस की जानकारी भी विवेच्य विषय के स्पष्टीकरण में सहायक तथा पथ-प्रदर्शक सिद्ध होगी। औषधों में सभी प्रकार के पदार्थ होते हैं और वे उचित मात्रा में ही लाभकारी सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिए--संखिया एक मारक विष है, परंतु शुद्धीकरण द्वारा औषधों में प्रयुक्त हो कर अनेक असाध्य रोगों को दूर करता है। आयुर्वेदिक तथा होमियोपैथिक अनेक योग इसी पर आश्रित हैं। यहाँ उस की अल्पमात्रा के साथ अन्य पदार्थों की मात्रा अधिक होती है, वे पदार्थ संखिया के विषैले प्रभाव को नष्ट करने वाले होते हैं। इसी प्रकार सर्प-विष है। आज तक यही माना जाता रहा है कि यह केवल मारक है। दंशित व्यक्तियों की प्रायः मृत्यु हो जाती है, किंतु कुछ रूसी और अमरीकी उद्योग इस विष का उपयोग जीवरासायनिक तथा औषधीय पदार्थ बनाने में कर रहे हैं। अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि यह अनेक असाध्य रोगों में लाभ करता है। कोबरा सर्प के विष को कैंसर-जैसी खतरनाक बीमारी के इलाज में इस्तेमाल करके आशातीत लाभ पाया गया है। यह सब शुद्धीकरण के साथ 'मात्रा-संयम' का प्रभाव है।

आहार द्वारा लाभ-प्राप्ति का आधार है -- मात्रा-संयम, और मात्रा-संयम का आधार है--स्वाद-प्रवृत्ति पर अंकुश। इस विधि के सम्यक ज्ञान और आचरण द्वारा सभी पदार्थ सेवनीय बने रह कर आयुष्कर हो सकेंगे।

(श्रद्धा निकुंज, गुरुकुल काँगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार) ●

## रेतीले अंचल की सांस्कृतिक धरोहर

# शेखावाटी

● रतनलाल मिश्र

शेखावाटी का प्रदेश मरुधरा का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है तथा अपने रेतीले अंचल में एक संपन्न संस्कृति की धरोहर सँभाले हुए है। यहाँ राजस्थान की प्राचीनतम सभ्यता, संस्कृति, जनजीवन, सामाजिक परंपरा के दर्शन वास्तविक रूप में होते हैं। इस प्रदेश के बालुकामय परिवेश में रमणीय प्राकृतिक सुषमा से मंडित अनेक स्थल भी हैं। ऐसे स्थलों में लोहर्गिल का गिरि-प्रदेश, शाकंभरी का गिरि मंदिर और हर्ष गिरि पर स्थित शिव मंदिर प्रमुख हैं।

इस भूभाग के उत्तर में पहाड़ी प्रदेश है, जिस की शाखाएँ रेतीले मैदानी भाग को चीर कर कहीं-कहीं अंतप्रर्देश में प्रविष्ट हो गयी हैं। इस प्रकार एक ओर विस्तृत बालुकामय प्रदेश है तो दूसरी ओर गिरि प्रदेश अपनी बीहड़ता लिये हुए है। छोटे-से स्थान में प्रकृति के इस द्वैध स्वरूप के दर्शन अन्यत्र नहीं मिलते।

सीकर नगर से लगभग सात मील दक्षिण में हर्ष नामक छोटा-सा ग्राम है। इस के पार्श्व में ३,००० फुट ऊँचा हर्ष गिरि है। यह अरावली पहाड़ का ही एक भाग है। १९३५-३६ में इस के पास की गयी खुदाई में ऐसे भग्नावशेष मिले जिन से सिद्ध होता था कि प्राचीन काल में यह एक समृद्ध नगरी थी। हर्ष मंदिर में प्राप्त शिलालेख में कहा गया है कि यहाँ ८४ मंदिर, ९०० कुएँ तथा बावड़ियाँ थीं और यह नगरी ३६ मील के घेरे में थी. यहाँ बड़े-बड़े कलाकार, नृत्य-विशारद एवं विद्वान राज्याश्रय पा कर रहते थे। हर्ष गिरि के ऊपरी समतल प्रदेश में एक विशाल मंदिर है, जिसे लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व सीकर-नरेश ने बनवाया था। गिरि-शिखर पर एक कलात्मक प्राचीन मंदिर के भग्नावशेष हैं। यह शिव-महादेव का मंदिर है,
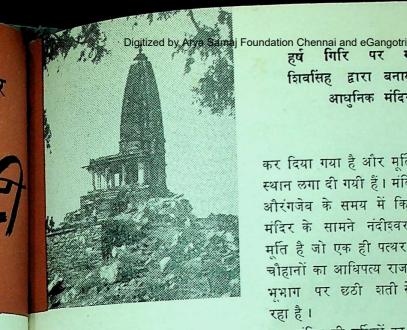
हर्ष गिरि पर महाराजा शिवसिंह द्वारा बनाया गया आधुनिक मंदिर

जिस का निर्माण चौहानराज ने लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व करवाया था। शिलालेख के अनुसार जब शिव ने त्रिपुर राक्षस का विनाश कर दिया तब प्रसन्न हो इंद्रादि देवताओं ने यहाँ शिव-पूजन किया। हर्षातिरेक में उन्होंने शिव की वंदना की। इसलिए इस स्थान का नाम हर्ष, पहाड़ का नाम हर्ष गिरि और शिव का नाम हर्ष पड़ा। पहाड़ पर चढ़ने के लिए प्राचीन काल से पत्थरों की पगडंडी बनी है, जिस पर चल कर डेढ़ घंटे में ऊपर पहुँचा जाता है। अब एक नयी सड़क बना दी गयी है जो गिरि के पार्श्व भाग से घूमती हुई ऊपर जाती है। ऊपर का प्रदेश समतल है। यहाँ से आसपास का दृश्य बड़ा ही मनोहारी है।

मंदिर भग्नावस्था में है। मंदिर के बिखरे भागों को पुनः चुन कर एक जगह कर दिया गया है और मूर्तियाँ भी यथास्थान लगा दी गयी हैं। मंदिर का विनाश औरंगजेब के समय में किया गया था। मंदिर के सामने नंदीश्वर की विशाल मूर्ति है जो एक ही पत्थर की बनी है। चौहानों का आधिपत्य राजस्थान के इस भूभाग पर छठी शती से ही निरंतर रहा है।

मंदिर की मूर्तियों का टंकण उत्कृष्ट है। उन की मूर्तियों की कला 'सास-बहू के मंदिर' की कला से टक्कर लेती है। मूर्तियाँ लाल पत्थर की हैं। मंदिर में केवल १७ मूर्तियाँ बची हैं, शेष नष्ट हो गयी हैं। गौरी और गणपति की मूर्तियाँ बड़ी सुंदर हैं। मंदिर की अधिकांश मूर्तियाँ सीकर-संग्रहालय में सुरक्षित हैं। मूर्तियाँ वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार निर्मित हैं। रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य-योजना और सादृश्य सभी उत्कृष्ट हैं।

गिरि पर स्थित खंडित मंदिर स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है। इस के शिखर के भाग सुरक्षित हैं, जिन पर कलापूर्ण खुदाई है। मंदिर-निर्माण की शैली १०वीं शती की है। स्तंभों की मनोहारी खुदाई भी दर्शनीय है। बहुत-सी मूर्तियाँ पूर्णतः खंडित हो गयीं, अनेक मूर्तियाँ
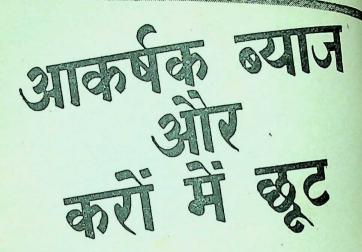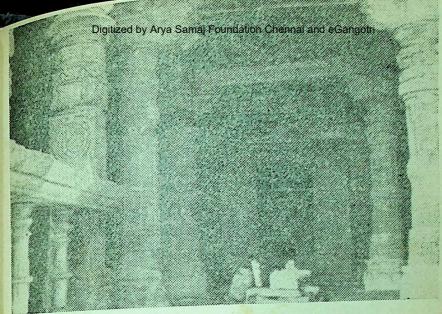
प्राचीन कलात्मक शिव-मंदिर का भीतरी भाग

चोरी चली गयीं। जो बची हैं वे अपनी उत्कृष्टता सिद्ध करने को यथेष्ट हैं। यह मंदिर उन्नत चबूतरे पर स्थित है। मंदिर से कुछ दूर दक्षिण में भैरव का मंदिर निम्नप्रदेश में है। यहाँ भी कई अच्छी किंतु खंडित मूर्तियाँ हैं। वराह अवतार का दृश्य मूर्तियों में अंकित है। इस पर्वत-प्रदेश पर और भी कई मंदिर थे जो या तो विधर्मियों द्वारा नष्ट कर दिये गये या भूमितल में समा गये।

अकेले हर्ष पहाड़ पर प्राप्त मूर्तियों से एक पूरा अजायबघर भरा हुआ है। कुछ वर्ष पूर्व भारी वर्षा के कारण कई कलात्मक प्रस्तर खंड मिले थे जो किसी मंदिर या यज्ञ-भवन के भाग ज्ञात होते थे।

हर्ष का शिलालेख प्रामाणिक माना जाता है। इस से चौहानों के वंश, उन की राज्य-परंपरा एवं राज्य-विस्तार आदि पर प्रकाश पड़ता है। यह शिलालेख काले पत्थर का, तीन फुट लंबा और इतना ही चौड़ा है। इस में ४९ श्लोक हैं और यह देवनागरी लिपि में हैं। इस में काव्यात्मक ढंग से गिरि, नगरी और मंदिर का वर्णन है।

इस भूभाग में जीण माता के मंदिर में भी कई शिलालेख हैं जो चौहान राजाओं से संबंधित हैं। हर्ष के शिलालेख से ज्ञात होता है कि बाद में होने वाले राजा-रानियों ने मंदिर के निर्माण में वृद्धि की तथा कई गाँव मंदिर हेतु दान में दिये। इन गाँवों के नाम संस्कृत में हैं। शिलालेख से ज्ञात होता है कि सिंहराज ने शिवजी

के मंदिर के ऊपर चंद्राकृति [illegible] मूर्तियाँ बनवायी थीं। हर्ष नगरी बड़ी समृद्ध थी। इस के बीच में बड़ा जलाशय और छतरियाँ थीं। निश्चय ही यह नगरी चौहानों की क्षेत्रीय राजधानी रही होगी। चौहान राजाओं ने महल, मंदिर, किले आदि बना कर अपने कला-प्रेम का परिचय दिया था। हाथियों को बाँधने के ढाण जगह-जगह आज भी मिलते हैं, महलों की नींव, मंदिरों, जलाशय, किले के अवशेष सभी एक भग्न समृद्धि की कथा कह रहे हैं।

हर्ष पहाड़ के दिन अब फिर फिरे हैं। एक सड़क का निर्माण हो चुका है तथा कुछ विश्रामघर बन चुके हैं। पानी के कुंड, तालाब आदि बनाये गये हैं, जिस से [illegible] कष्ट नहीं रहा है। सुनते हैं कि मेडिकल कालिज बनाने की योजना है। सड़क बनने से गाड़ियाँ ठीक ऊपर तक चली जाती हैं। इस से पर्यटकों को सुवि[illegible] हो गयी है। हर्ष और निकटस्थ [illegible] माता के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियों को बड़ा लाभ पहुँचा है। हर्ष का नीलगि[illegible] कई मीलों से दिखायी पड़ता है। पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई इस की गिरि-पंक्तियाँ, प्राचीन काल में सुरक्षा की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण रही हैं। नव-निर्माण के युग में हर्ष का यह सुरम्य स्थल फिर महत्त्वपूर्ण बनेगा।

(शोध-संदर्भ अधिकारी, जनसंपर्क निदेशालय, जयपुर)

---

बचपन में गुरु नानक प्रभु-स्मरण में इस प्रकार डूबने लगे कि उन्हें खान-पान तक की सुधि नहीं रहती थी। उन के पिता बोले, "बेटा, इस तरह सुस्त क्यों पड़े रहते हो? उठो, खाओ-पिओ और खुश रहा करो। घर में जी न लगे तो खेत की देखभाल ही कर आया करो।"

नानक ने नम्रता से कहा, "पिताजी, आप की खेती से आप का ही गुजारा हो सकता है। मैं ने तो अपने लिए अलग ही खेती कर ली है।"

पिता अचकचाये, "कहाँ हैं तेरे खेत?"

नानक गंभीर स्वर में बोले, "पिताजी, मैं ने शरीर-रूपी खेत में सत्कर्मों का हल चला कर प्रभु-भजन के बीज बोये हैं। मैं इस में साधु-संगति का जल और संतोष की खाद दे रहा हूँ। मुझे विश्वास है, इस खेत की फसल पा कर मैं धन्य हो जाऊँगा।"

नारद ने अभ्यास, वैराग्य आदि की साधना करते हुए काम पर विजय प्राप्त की, पर उन की यह स्थिति अधिक देर तक नहीं टिकी क्योंकि उन के मन में अहंभाव बना ही था—

**जिता काम अहमिति मन माही**

अहं-तत्त्व में बीज-रूप से काम-क्रोधादि घुसे हैं, जैसे नन्हे-से-बीज में बरगद का पेड़। अहंकार वह निरंकुश नृप है जो देश में विद्रोह होने पर जान बचा कर भाग निकलता है और इस टोह में रहता है कि अवसर मिलते ही अपनी सेना को फिर से जमा कर धावा बोल दे। जब तक अहं बना है तब तक षट्विकारों के बार-बार उभरने की आशंका बनी रहेगी।

नारद तो भगवान के भक्त थे, इसलिए उन के विकास का भार अपने ऊपर जान कर—

**करुनानिधि मन दीख बिचारी**

# षट्विकारों का उपचार
## नारद-मोह उपाख्यान तथा अन्य प्रसंग

• मदनमोहन सहाय

**उर अंकुरेउ गरब तरु भारी**
**वेगि सो मैं डारिहउँ उखारी**
**पन हमार सेवक हितकारी**

सुंदर राजकन्या को देख कर नारद अपना विवेक खो बैठते हैं और उसे न पाने पर क्रोध के वशीभूत होते हैं। माया नारद को परास्त कर साधारण जीव-सा विकल बना देती है—

**मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी**
**मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी**

नारद की तपस्या निष्फल हुई, इसलिए मानसकार ने अब इस दशा का निवारण उग्र तप के द्वारा नहीं कराया। माया का निवारण मायापति भगवान से ही कराया है—

**जब हरि माया दूरि निवारी**

इसी प्रकार जब शंकर भगवान को मोहित करने के लिए कामदेव ने अपने सारे अस्त्रों का प्रयोग किया और समस्त चराचर सृष्टि काम-विह्वल हो गयी तब भी तुलसीदास ने इस माया से रक्षित जीवों के विषय में कहा—

**जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ**

आगे अरण्यकांड में भगवान ने स्पष्ट कर दिया कि मेरे ही आश्रित रहने वाले अपने भक्तों की षट्रिपुओं से मैं उसी प्रकार रक्षा करता हूँ जैसे माँ प्रतिक्षण बालक की रक्षा करती है।

षट्विकारों के संबंध में ऐसी ही अनुभूति महामुनि विश्वामित्र की थी और इसलिए उन्होंने महाराजा दशरथ से चतुरंगिणी सेना न माँग कर किशोर राम को माँगा था। अ... प्रस्थान से पहले मुनि ने संकल्प किया...

**हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी**

भगवद्कृपा से दोषों के समूल ... होने की बात और सुग्रीव तथा विभी... के आध्यात्मिक जीवन के विकास में ... विरोधाभास दीखता है।

सुग्रीव और विभीषण तो राम... भक्त थे, फिर क्यों सुग्रीव ने तारा... और विभीषण ने मंदोदरी को रख लि... भगवान ने ऐसा क्यों होने दिया? ना... मोह के संदर्भ में भगवान की ... प्रतिक्रिया इस से बिलकुल मेल नहीं खा... इस में क्या रहस्य है?

सुग्रीव ने भगवान को पा कर वैरा... संयुत वाणी में कहा था—

**अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती**
**सब तजि भजनु करौं दिन राती**

फिर क्यों भगवान ने सुग्रीव ... प्रार्थना जैसे अस्वीकार कर दी?

इस में रहस्य यह है कि तुलसी... अपने पात्रों का विकास कुशल मनोवै... निक ढंग से कराया है। राम जानते... कि सुग्रीव का वैराग्य क्षणिक है और ... उस की बात सुन कर हँसी आ जाती है—

**सुनि बिराग संजुत कपि बानी**
**बोले बिहँसि रामु धनु पानी**

पर भक्त का मान रखने वाले ... ने ऊपर से इतना ही कहा कि मैं तो ... को मारने का संकल्प कर चुका हूँ। ...

रहे कि सुग्रीव ने राम से वाली की निंदा करते हुए अपने मन की भावना इन शब्दों में व्यक्त की थी—

**हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी**

सुग्रीव के जीवन में आगे क्या आने वाला है, इस का संकेत इसी जगह तुलसी ने दे दिया है—

**नट मरकट इव सबहि नचावत**

सुग्रीव को तो अभी माया का नाच नाचना ही है। सुग्रीव वानर है और उस के भीतर इतनी प्रबल वासनाएँ दबी थीं कि उस का नग्न रूप शीघ्र ही सामने आया—

**सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी**
**पावा राज कोस पुर नारी**

अंतर्यामी भगवान सुग्रीव के मन की जानते हैं और उस के भीतर दबी वासनाओं को निकालना ही उन का उद्देश्य है।

पर वानर या राक्षस प्रवृत्ति के जो व्यक्ति इस क्रिया में वर्षों लगे रहने पर भी सफल न हो सके, वे क्या करें? यदि हमारे भीतर ऐसी वासनाएँ दबी पड़ी हैं जिन्हें हम विचार द्वारा दबाने में असमर्थ हैं तो उसे भोग द्वारा पूरा करना ही हमारे हित में होगा, अन्यथा हमारी गति उन वैरागियों-जैसी हो सकती है जो जीवन भर विरक्त रह कर अधिक उम्र में पतित हो जाते हैं। ऐसी घटनाएँ समाज में होती रहती हैं।

मछली पकड़ने का एक उपाय यह है कि एक बड़ी लंबी डोर के कोने पर चारा और छोटा-सा लकड़ी का टुकड़ा बाँध कर फेंक देते हैं। अगर इतनी बड़ी मछली फँस गयी कि डोर टूटने या मछली के मुँह का भाग फट कर कटिया निकलने का भय हुआ तो मछुआ डोर को एकदम खींच नहीं लेता। वह जरा खींचता और जरा ढील देता रहता है। खींचने और ढील देने का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक मछली थक नहीं जाती।

इसी प्रकार यदि किसी को मिठाई खाने की आदत है तो मिठाई खाना एकदम बंद करने से, न खाने में सफलता नहीं मिलेगी। बीच-बीच में मिठाई खाते हुए न खाने की अवधि बढ़ाते जाना है। प्रगति की कसौटी है मन की शांति। यदि मन शांति की ओर बढ़ता है तो साधक को पूर्ण निश्चिंत रहना चाहिए कि उस का मार्ग ठीक है, भले ही दुनिया उसे गलत समझे। सुग्रीव को भोग की इसी प्रकार आवश्यकता थी जैसे उस भक्त को जिसे भजन करते समय भूख लगे और वह रोटी का टुकड़ा मुँह में डाल कर फिर भजन में लग जाये।

सुग्रीव को ज्ञान और वैराग्य की झलक मिल चुकी है। उस का यह भ्रम दूर हो चुका है कि विषय में सुख है। इसी प्रकार अंगद के भीतर अपने पिता के राज्य की लालसा थी, इसलिए उस के लाख गिड़गिड़ाने पर भी भगवान ने उसे अपने पास नहीं रखा। कबीरदास ने इस सिद्धांत को इस रूप में कहा—

**कबिरा क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग**
**ताको टुकड़ा देइ कर भजन करो निःसंग**

गलत धारणा के आधार पर किया गया भोग पाप है और उस का परिणाम है दुःख। पर सुग्रीव और विभीषण का भोग से पतन नहीं हुआ क्योंकि भोग के विषय में उन की धारणा बदल चुकी थी।

प्रभु के सम्मुख अपने पापों को रख कर संत हृदय का करुणा-निवेदन साधारण जीवों को आश्चर्य में डाल देता है। साधक के हृदय का संघर्ष दूसरा क्या जाने ? जिस ने घर साफ करने की कोशिश नहीं की उसे क्या पता कितनी धूल जमा है ! दीपावली के पहले जब हम घर की सफाई करते हैं तो ऊपर से साफ-सुथरा दीखने पर भी घर से कितना कूड़ा निकलता है ! साधक को अनुभव होता है कि उस की वासनाएँ रक्तबीज-सी बढ़ती जाती हैं।

दमन से रिपुओं का बल बढ़ता ही मालूम होता है और उस के जीवन का एक भाग निराशा में ही बीत जाता है। आग पर चढ़ी पतीली में से भाप निकलती ही रहती है। भाप को पतीली में रोकने का प्रयास करने वाला ही उस के बल को जान सकता है, दूसरा नहीं। इसी भाप के बल को जानने से रेल के इंजन का आविष्कार हुआ। इंद्रियाँ भी भाप की तरह ही बलवान सिद्ध होती हैं। कभी साधक अपने को निर्मल अनुभव करता है, पर वह सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इस स्थिति को प्राप्त साधक को अनुभव होता है कि उस ने भोगों को नहीं, उलटे [illegible] ने ही उसे भोग कर क्षीण बना दिया [illegible]

ययाति की कथा से हमें [illegible] है कि जैसे अग्नि में घी डालने से [illegible] बढ़ती है वैसे ही भोगों के भोगने [illegible] कभी तृप्त नहीं होता। ययाति ने [illegible] जवानी का दान पा कर सैकड़ों वर्ष [illegible] कर इस सत्य को जाना। साधक की [illegible] वंचना से लोगों को भ्रम होता है। [illegible] पूछते हैं कि अपने में इस प्रकार की [illegible] लाना कहाँ तक उचित है ?

प्रभु के पतितपावन रूप का [illegible] होने से ऐसा भ्रम होता है। लेकिन [illegible] से तुरंत यह प्रश्न उठता है कि यदि [illegible] पतितपावन है तो क्या हम सभी [illegible] हैं ? साधन-पथ में अग्रसर होने वाले [illegible] को ही 'मैं पतित हूँ' ऐसा अनुभव [illegible] है। इस का अर्थ यह नहीं कि [illegible] वह दुष्कर्म भी करता है जिसे [illegible] घृणित समझती है, लेकिन उसे यह [illegible] भव अवश्य होता है कि मानव [illegible] ग्रहण करने के नाते उस में यह [illegible] नहीं कि माया के थपेड़ों से अपने को [illegible] सके। बाह्य जीवन में पतन का कोई [illegible] न होने पर भी उच्च कोटि का [illegible] अपने को भगवान के सम्मुख पतित [illegible] भव कर सकता है। राम के अयोध्या [illegible] से पूर्व ऐसी ही भावना भरतजी [illegible] गयी थी—

**जौं करनी समुझै प्रभु मोरी**
**नहिं निस्तार कलप सत कोरी**

साधारण साधक वर्षों तक संयम, नियम व्रत उपवासादि से अपने शरीर को कसता है। फिर भी वह अपने को कमज़ोर पाता है और समझता है कि अवश्य ही उस में निश्चय की कमी है और दृढ़ संकल्प होते ही उसे अपनी कुप्रवृत्तियों पर विजय मिलेगी। साथ ही वह प्रभु से नित्य ही शक्ति की प्रार्थना करता है। अनेक वर्ष या कई जन्मों के प्रयत्नों के बाद प्रभु-कृपा से साधक में अहं-प्रेरित प्रयत्नों की अवश्यंभावी निष्फलता का ज्ञान उदय होता है।

साधक पहले भी प्रभु से नित्य प्रार्थना करता था पर तब की और इस दशा में अगाध अंतर है। अब वह शक्ति की याचना नहीं करता। अब उसे निर्बल बने रहने में ही संतोष है और वह केवल कृपा की याचना करता है। अहं-संचालित निज प्रयत्नों को वह उसी तरह निष्फल समझने लगा है जैसे—

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ

अब वह थक कर राम नाम की पुकार लगाता है। गाँधीजी ने कहा था, "राम नाम थके की पुकार है।"

जिस ने अपने को पतित और प्रभु को पतितपावन नहीं जाना, वह अनेक प्रकार की साधना करता हुआ भी भक्ति-पथ से भटका हुआ है।

(८/१० डब्ल्यू. ई. ए.
करोलबाग, नयी दिल्ली)

# विधाता की देन

मुझे दिये दाता ने
सृष्टि के विधाता ने
प्यास-भरी दोपहरी, भूख-भरी शाम
ऐसे ही बीतेगी जिंदगी तमाम

अनजाने नगरों में अनचान्हे चेहरों के
भाव-भरे अभिवादन
सतरंगी मेलों में रूप-गर्विताओं के
भाव-भरे आकर्षण

हर सभा सजाता हूँ
बेमन भी गाता हूँ
नींद-भरी रातों में आँसू के जाम
ऐसे ही बीतेगी जिंदगी तमाम

धुँधले इतिहासों की पर्तों में दबा हुआ
वर्तमान भूला हूँ
अपने विश्वासों की सीमा के बाहर का
गंध-ज्ञान भूला हूँ

छंद क्यों बनाता हूँ
जान भी न पाता हूँ
जब मुझ को रहना है यों ही गुमनाम
ऐसे ही बीतेगी जिंदगी तमाम

कंचन के महल तले कुटिया का वासी है
संन्यासी मन मेरा
पथ-भूले पथिकों को दीपक की बाती है
माटी का तन मेरा

स्नेह बिना जलता हूँ
ज्योति को मचलता हूँ
ओस-बिंदु पी-पी कर जीता निष्काम
ऐसे ही बीतेगी जिंदगी तमाम

—सुरेन्द्रमोहन मिश्र—
(काव्य कुटीर, चंदौसी, उ. प्र.)

बँगला कहानी

• नारायण गंगोपाध्याय

उस वक्त मेरी उम्र सात साल थी, तुम्हारी ग्यारह। उस समय मैं जोरों से गा कर पढ़ती थी––'तीन अदद गलार झगड़ती हैं, चौके की चाल पर' और तुम पढ़ते थे––'पंचनदी के किनारे सिर पर वेणी लपेटे।' मैं जाती थी, स्कूल की गाड़ी में चढ़ कर चोटियाँ लटकाये, तुम छकड़े के पीछे चढ़ कर जाते थे। स्कूल के रास्ते पर गाड़ीवान के खदेड़ने पर तुम चुपचाप उतर पड़ते थे।

हमारे बगल के घर में तुम रहते थे। प्रायः मेरे साथ खेलने आते थे।

खेल भी क्या, गुड़ियों का खेल ! मेरी सहेलियाँ कहतीं थीं—लड़का हो कर लड़कियों के साथ खेलने आता है, शर्म नहीं आती ! अपमान से छलछला आती थीं तुम्हारी आँखें। सुंदर खिलता चेहरा लाल हो जाता।

तुम्हारी तरफदारी में मैं सब से झगड़ती थी। कहती थी—खेलेगा, हजार बार खेलेगा; तुम लोगों का क्या जाता है ! तुम सब उसे क्यों कहती हो ? अंत में सहेलियाँ नाराज हो कर चली जातीं–– कुट्टी, कुट्टी, कुट्टी ! मैं भी हथेली उलटी कर बोल उठती––यही अच्छा है, मैं ने भी कुट्टी कर ली। और अब आने की जरूरत नहीं।

और वे फिर नहीं आयीं।

न आने पर भी कुछ नहीं बिग[ड़ा] था। मेरे तो तुम थे ! कितना अच्[छा] लगता था तुम्हारे साथ खेलने में! तु[म] मुझ से कितने बड़े थे, कितना अधिक प[ढ़ते] थे, कितनी अँगरेजी, कितने सवाल तुम[्हें] आते थे ! फिर भी तुम मोती की माल[ा] गूँथ नहीं पाते थे, गुड़ियों को कपड़े नहीं पहना सकते थे ! तुम्हारी अज्ञानता देख कर मुझे कितनी हँसी आती थी ! एक दिन अनाड़ीपन के कारण तुम ने एक बहुत बड़ी दुलहिन को तोड़ डाला था। और कोई यह काम करता तो मैं रो-रो कर पूरी बस्ती को सिर पर उठा लेती, दुःख से जमीन पर लोट-पोट होती, जो तोड़ता उसे पटक कर दाँतों से काट-कूट कर बरा-बर कर देती। फिर भी फ्राक के छोर से

आँखें पोंछ कर जोर से हँस कर बोली थी—टूट गया है तो क्या हुआ, बप्पा और एक खरीद देंगे मुझे !

तुम्हारी बात और है। तुम से किसी भी तरह मैं नाराज नहीं हो सकती थी।

उस दिन मैं ने कहा था—गुड़िया की शादी करूँगी।

सुन कर तुम बहुत खुश हो कर बोले—हाँ, बड़ा मजा आयेगा।

उस के बाद सारी दोपहर हम दोनों ने कितनी तैयारियाँ कीं, कितनी व्यस्तता थी; बिलकुल शादी के असली मालिक-मालकिन जैसी ! बड़ी दीदी आ कर हँसती हुई बोली—खुकु, तुझे खेल का साथी बहुत अच्छा मिला है ! उस ने तुम्हारा मजाक उड़ाया था। तुम्हारे गोरे गाल सुर्ख़ हो उठे थे। साथ ही साथ मैं बिगड़ कर बोली थी—तू हमारे खेल में गड़बड़ मत कर बड़ी दीदी, नहीं तो मैं माँ को बोल दूँगी !

गुड़िया की शादी का सब इंतजाम तो हुआ, पर फूल कहाँ ?

—अरे हाँ ! फूल कहाँ ?

उस के बाद मैं ने बड़े दुःसाहस का काम किया। पास ही बप्पा के गमले में बड़े जतन से बचाये हुए गुलाब के पौध में दो फूल खिले थे पहली बार ! कंजूस के धन की तरह बप्पा उन की रखवाली किया करते थे।

वही फूल ला कर पंखुड़ियाँ तोड़-तोड़ कर हम दोनों ने वर-वधू की सुहाग-शैया को सजाया था। चौधरी के घर मैं ने जिस तरह की सुहाग-शैया सजते हुए देखा था, ठीक उसी तरह !

शादी अच्छे ढंग से हुई, पर असली घटना घटी कुछ देर बाद।

दफ्तर से लौट कर बप्पा ने देखा, गमले में फूल नहीं हैं। चीख-चीख कर उन्होंने घर को सिर पर उठा लिया। झूठ बोलना सीखा नहीं, अतः अपराध को स्वीकार कर लिया। चट्ट-चट्ट करके थप्पड़ पड़ने लगे मेरे गाल पर। अपनी इस सात
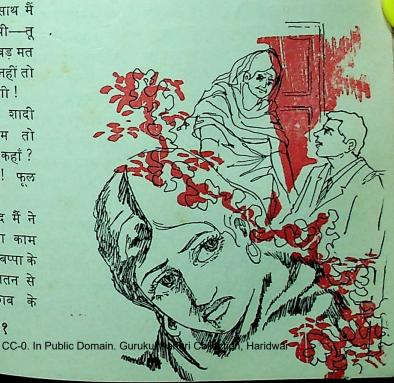
बरस की उम्र में मैं ने कभी इस ढंग से मार नहीं खायी थी ! दुःख, अभिमान से रोना तक नहीं आया था।

दूसरे दिन दोपहर को तुम आये। मुझे अच्छी तरह याद है--उस दिन इतवार था।

--बहुत मार पड़ी थी न !

बप्पा से मार खा कर नहीं रोयी, पर तुम्हारा स्नेह न सह सकी। दोनों आँखों से झर-झर आँसू बह चले।

तुम ने मेरी आँखें पोंछीं, मेरी साड़ी के छोटे-से आँचल से। वहीं मेरी पहली साड़ी थी, बसंती रंग की छोटी-सी साड़ी, मेरे जन्म-दिन पर नानी ने दी थी !

तुम ने कहा था—चल खुकु, हम फूल का पौधा लगायें ! उस में फूल खिलेंगे। गुड़िया की शादी में फिर किसी का फूल हमें नहीं तोड़ना पड़ेगा।

न जाने कहाँ से तुम टगर के फूल का एक छोटा-सा पौधा ले आये थे ! हमारे रसोईघर के पास, घूरे के ढेर की बगल में दो हाथ के लगभग जो जगह है, वहीं हम ने पौधा लगाया था।

उस के बाद कितना जतन, कितनी सेवा, कितना पानी उड़ेलते थे हम !

सब हँसते थे। कहते थे--जरूरत से ज्यादा जतन से ही यह पौधा मर जायेगा !

पर मरा नहीं वह। कुछ दिनों के भीतर ही मिट्टी में जड़ पकड़ गया था। पौधा धीरे-धीरे बढ़ने लगा और फिर नये कोमल पत्तों से ढँक गया था।

हम दोनों रोज आ कर देखते कब इस में फूल खिलेंगे, और कि समय है फूल खिलने में !

फूल हमारे खिल ही कहाँ पाये ! से पहले ही तुम्हारे पापा की बदली गयी थी। तब तक टगर का पौधा से एक हाथ ऊँचा हो गया था।

तुम्हारी गाड़ी स्टेशन की ओर चली। दूर से तुम ने मुझे आवाज दे कहा था—फूल के पौधे का खयाल र खुकु--खिलते ही मुझे खबर देना।

तुम्हें याद है. फूल के खिलने की मैं ने दी थी ! तुम्हारा भी जवाब था। आऊँगा, मौका मिलते ही आऊँगा

पर मौका और मिलता भी तुम बड़े शहर में जा कर बड़े हुए। धीरे--स्कूल पार करके कालिज में दा हुए। तुम्हारे पत्र आने बंद हो गये। छोटे मुफस्सिल शहर की, छोटी-सी को कौन याद रखता है !

पर मैं ने याद रखा था। वर्ष पर बीतते गये। बार-बार मेरा टगर का फूलों से ढँकता गया। मैं ने फिर गु का व्याह नहीं रचाया, पौधे का ए फूल नहीं तोड़ा, किसी को एक भी तोड़ने नहीं दिया।

साल-पर-साल बीतते गये ! मैं समय इंटरमीडिएट में पढ़ रही थी, गुजर गये थे। भइया अपनी पत्नी के अमृतसर में थे। हम लोगों की खोज नहीं ले पाते थे। रुपया-पैसा भी नहीं

सकते थे। मेरा और माँ का गुजारा भी नहीं चल पाता था। ऐसी हालत थी हम लोगों की। मैं ने मजबूर हो कर पढ़ाई छोड़ दी और यहाँ के गर्ल्स स्कूल में चालीस रुपये की नौकरी कर ली।

जानते हो, इतने दुःख में भी मैं टगर के पौधे को नहीं भूली थी! कितना बड़ा हुआ था! ओह, कितने फूल खिलते थे! पर एक भी फूल मैं किसी को लेने नहीं देती थी। कितनी ही भोर की धुँधली रोशनी में, कितनी ही अलस दुपहरिया में टगर के फूल की महक चारों ओर भर जाती थी! मैं चुपचाप बैठी रहती थी, देखती थी गुड़िया के व्याह का सपना! और सोचती थी—तुम आओगे, जरूर आओगे एक दिन!

अब मैं बीस की हूँ, तुम चौबीस के। कैसा बचपना है अब भी! देखो, सात साल की उम्र का सपना अभी भी हृदय में सँजोये बैठी हूँ।

उस के बाद परसों वह कांड घटित हो गया था।

इतवार की दोपहर को परीक्षा की कापी जाँच रही थी कि सहसा देखा—दो छोटी-छोटी लड़कियाँ मेरे टगर के पौधे से फूल तोड़ रही हैं! सामने के घर के किरायेदार की लड़कियाँ—नयी-नयी आयी हैं बस्ती में।

गुस्से से अँधी हो कर दौड़ पड़ी।

मैं ने कड़क कर पूछा—क्यों फूल तोड़ रही हो? किस के हुक्म से?

वे रोने लगीं।

जवाब मिला—गुड़िया का खेल खेलने के लिए!

मैं ने हाथ उठाया, पर सहसा स्वयं वह नीचे आ गया था। मैं सिर्फ इतना बोल पायी—जाओ, बाहर निकलो यहाँ से!

वही पुराना इतिहास! फिर से तुम्हारी याद आयी। पौधे की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी रही। तभी बाहर जीप की आवाज सुनायी पड़ी। दरवाजे का कुंडा खटका।

दरवाजा खोल कर चौंक गयी। सिर से टोप उतार कर तुम ने कहा था—पहचान सकती हो?

क्यों नहीं पहचानती! जन्म-जन्म के बाद भी पहचान सकती थी। चेहरा कितना सुंदर हो गया है तुम्हारा! कितना अच्छा स्वास्थ्य था—रूप जैसे फट पड़ा हो, अवाक मैं देखती रही थी।

माँ दौड़ कर आयीं।

तुम ने कहा था—मैं यहाँ सर्किल-ऑफिसर हो कर आया हूँ। कल ज्वॉयन किया है। सोचा, आप लोगों से मिल आऊँ।

माँ हँस भी रही थीं, रो भी रही थीं। परेशान थीं कि कहाँ बैठायेंगी, क्या खाने को देंगी, कैसे खातिरदारी करेंगी! उस के बाद उन्होंने शुरू की दुःख की कहानी। तुम गंभीर हुए, सिर हिलाते रहे। जो कुछ कहना उचित था, वह सब कुछ तुम ने कहा। तभी माँ ने फूल की

याद दिलायी...

तुम हँस दिये—वह भी क्या बचपना था! वह पौधा अभी भी जिंदा है? हाऊ फनी!

'फनी!' शब्द मेरी छाती में बिंध गया। और अधिक बिंधा, जब तुम ने एक बार भी पौधा देखने की इच्छा व्यक्त नहीं की।

माँ बोलीं—चाय लाती हूँ।

तुम झुंझला कर उठ खड़े हुए। बोले—नहीं-नहीं, आज रहने दो। तनिक व्यस्त हूँ। एक बार डी. सी. के यहाँ जाना होगा। मैं अभी तो यहीं हूँ। और किसी दिन आ कर चाय पीऊँगा।

माँ ने पूछा था—शादी नहीं की बेटा?

तुम्हारे दोनों गाल बचपन की तरह लाल हो उठे थे। नहीं, तुम इतने दिनों बाद भी नहीं बदले थे। बोले—नहीं।

माँ का स्वर था—तो अब कर डालो!

तुम उसी सुर्ख चेहरे में बोले—हाँ, न करने का अब कोई रास्ता नहीं। माँ भी बहुत तंग करती हैं।

लड़की तय हुई है?—माँ के गले से न जाने कैसे आशा की एक लय बज उठी, मैं ठीक समझ न सकी। तुम ने सिर झुका लिया! बोले—एक तरह से तय ही है। मतलब, कालिज में मेरी क्लास-मेट थीं... मेरे डी. सी. की भानजी है...

सहसा माँ जैसे बुझ-सी गयीं। सिर्फ बोलीं—अच्छा है, बहुत अच्छा....

मैं हँस कर बोली—हमें भी आप निमंत्रण दीजियेगा न!

तुम्हें मैं ने 'आप' कहा, पर तुम ने कुछ नहीं कहा। हँस कर बोले—जरूर-जरूर, तुम लोगों को तो आना ही होगा। अच्छा चाची, तो आज चलता हूँ।

हमारे वीरान शहर के रास्ते पर धूल का गुबार उठा कर तुम्हारी जीप चली गयी। माँ उस ओर देखती रहीं...

आज जब तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ, तभी उन्हीं दोनों छोटी लड़कियों को खुद ही बुला लायी हूँ। उन से कहा है कि वे फूल ले जायें, अपनी गुड़िया की शादी के लिए पौधे को नोच कर ले जायें!

तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ सिर्फ एक बात कहने के लिए—

गुड़ियों का खेल खेलने के लिए जिस फूल के पौधे को लगाया था, गुड़िया का खेल खेलने के अलावा उस का फूल और किसी भी काम में नहीं आता। जीवन का नियम ही शायद यही है न!

—अनु. रमेश दुबे

---

**एक रसोईघर में यह लिखा टँगा है—**
**"अपनी पत्नी के कामों में कभी मीन-मेख मत निकालो—याद रखो, हो सकता है कि ऐसी छोटी-छोटी कमियों की वजह से ही उसे अपेक्षाकृत अच्छा पति न मिल सका हो!"**

● मुनिश्री महेन्द्रकुमार प्रथम

# अवधान साधना के विकास की प्रक्रिया

यंत्रों के माध्यम से मानव ने इस ... में अनेक आश्चर्य देखे हैं और ... भविष्य में और भी देखेगा, इस की ... आज का विज्ञान कर रहा है। प्रश्न ... है, क्या इन सब को बिना किसी ... साधन के भी जाना जा सकता है? ... इस बारे में मौन है और वह इसे ...

साधना के प्रति जिज्ञासु भारत ... कनाडा के उच्चायुक्त श्री जेम्स ...

मानव ... है। ... निर ... समग्र ... एक ... जिन्ह ... उन्हें ... जित ... दिख ... मनु ... यह ... कत ...

से ... है– ... बा ... कत ... को ... जा ... बा ... बा ... खु ... प्र ... प ... उ ... अ ... स ... त ...
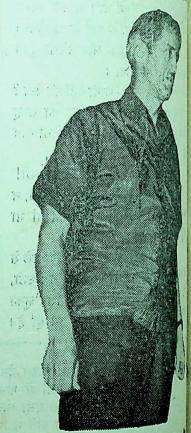
मानता है। अध्यात्म इस का उत्तर देता है। उस का दावा है, बाह्य साधनों से निरपेक्ष रह कर व्यक्ति अणु एवं ब्रह्मांड के समग्र रहस्यों को जान सकता है। यह सब एक कल्पित कहानी-जैसा लगता है, किंतु जिन्होंने इस दिशा में प्रयत्न किया है, उन्हें इस का प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ है। जितना बड़ा संसार इन चर्म चक्षुओं से दिखायी दे रहा है, उस से भी बड़ा संसार मनुष्य के अंदर है, बहुत सारे व्यक्ति न यह जानते हैं और न जानने की कोई उत्सुकता ही उन में होती है।

इस रहस्य को कोई साधक सुगमता से जान सकता है। इस की प्रक्रिया होती है—बाहर से अंदर की ओर प्रवेश करना। बाह्य विविधताओं को जानने की उत्सुकताओं को समेट कर केवल एक अंतर को जानना जिसे 'आत्मा' के नाम से पुकारा जाता है। इस साधना में तत्पर होने के बाद आँखें खुली होने के बावजूद वह बाह्य दृश्यों को ग्रहण नहीं करेगा, कान खुले होने पर भी वह शब्दों की ध्वनि से प्रभावित नहीं होगा, शरीर से संबद्ध होने पर भी वह सुख-दुःख की अनुभूतियों से उपरत रहेगा। इसी प्रकार मानस का अस्तित्व होने पर भी उस का व्यापार सर्वथा गौण हो जायेगा।

विचारों का प्रेषण, प्रभाव डालना तथा प्रतिकूल को भी हजारों मील दूर बैठे अनुकूल बना लेना अध्यात्म-साधना के द्वारा संभव है। भारत में इस प्रकार की साधना से संपन्न श्रमण भी थे जिन के शरीर से स्पर्शित वायु से दूर-दूर तक के हजारों व्यक्ति रोगमुक्त हो जाते थे। वे किसी भी व्यक्ति को अलौकिक कांति प्रदान कर सकते थे। उन के हाथों में ऐसी दिव्य लब्धि (शक्ति) भी होती थी, जिन के छू जाने पर भोज्य पदार्थ कभी बासी नहीं होते थे। वे अपने में इतने समर्थ होते थे कि एक ही प्रक्रिया से सैकड़ों मील दूर के भू-भाग में अवस्थित मनुष्यों, पशुओं तथा मकानों को जला सकते थे और जलते हुओं को क्षण मात्र में बुझा भी सकते थे। वे अपने मानसिक चिंतन मात्र से किसी

मुनिश्री
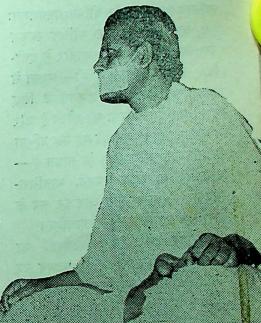
पर आग्रह भी कर सकते थे और कोप भी।

यह संभव है। इस के लिए निर्विकल्प समाधि, निर्बीज समाधि, निरुद्ध अवस्था तथा शैलेशीकरण की ओर प्रयत्नशील होना होता है। जब तक मस्तिष्क विचारों से भरा रहता है, वह भौतिक रहता है और बहिर्मुखता में ही लीन रहता है। वहाँ आत्म-भाव की स्थिति नहीं होती।

धीरे-धीरे बुद्धि द्वारा गृहीत मन को वहाँ से निवृत्त करें और आत्मस्थ हो कर कुछ भी सोचने की क्रिया को छोड़ दें। यहाँ केवल जागरूकता रहेगी, किंतु सक्रियता तथा निष्क्रियता; दोनों से दूर। इस स्थिति तक पहुँचने पर आत्मा का चित्त के साथ संबंध टूट जाता है और वह अपनी शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती है। इस का ही स्पष्ट रूप होता है —

**स्वस्मिन् स्वरूपं पश्यन्ति योगिनः परमात्मनः**

अपने में ही अपना मौलिक स्वरूप देखा जाता है। भगवान महावीर ने इसीलिए साधक को प्रेरणा दी थी—**आत्मा से आत्मा को देखो।** इस अभ्यास के लिए न तो बाह्य उपकरणों की अपेक्षा है और न यंत्रों की ही। ध्यान की यह एक प्रक्रिया है और इस ओर बढ़ने के साधन हैं—कषाय-विजय, इंद्रिय-नियमन, मानसिक-नियमन, समत्व की वृद्धि और इन सब के द्वारा एकाग्रता की सहज उपलब्धि।

मानव प्रायः महत्वाकांक्षाओं का पिंड होता है। वह दूसरे के पराभव पर अपनी प्रगति को खड़ा करना चाहता है। [illegible] सभी की वांछनीय है, प[illegible] प्रगति सब के लिए ही घातक हो[illegible] जो दूसरों की अवनति पर खड़ी हो[illegible] यहीं से कषाओं की उद्दीप्ति, इंद्रि[illegible] स्वेच्छाचारिता, मन की उच्छृंखलता [illegible] विषमता की विष-बेल बढ़ने लगती [illegible] जो एकाग्रता को केवल खंडित [illegible] करती, अपितु समाप्त ही कर देती [illegible] आत्म-भाव दूर होता चला जाता है [illegible] बहिर्मुखता बढ़ने लगती है। दूसरे [illegible] में कहना चाहिए, व्यक्ति प्रकृति के [illegible] में उलझ कर अल्पकालिक वर्तमान [illegible] सीमित हो जाता है और आत्म-स्व[illegible] जिस में कि गत, अनागत तथा वर्त[illegible] तीनों ही सुरक्षित होते हैं, भूल जाता [illegible]

अतः अपेक्षा है, व्यक्ति सब से [illegible] अपने विचारों के आरोह तथा अवरोह [illegible] सम करे। तब उस का पहला चरण [illegible] नाओं की विरक्ति की ओर बढ़ेगा [illegible] कषायाग्नि को शांत कर साम्य-भावना [illegible] विकास करेगा। साम्य-भावना एका[illegible] (ध्यान) की उपादान बनती है [illegible] एकाग्रता साम्य-भावना की। दोनों अन्यो[illegible] संबद्ध होकर आत्मा की निष्प्रकंप अव[illegible] को उत्पन्न करेंगी और यही वह अव[illegible] होगी, जो शैलेशीकरण या निर्बीज स[illegible] की भूमिका होगी।

विचार-रहित होने के लिए वै[illegible] तथा अभ्यास की अपेक्षा होती है। [illegible] देखा जाता है, व्यक्ति पूरे दिन सां[illegible] रिक कार्यों में उलझा रहता है और के[illegible]

दस-पाँच मिनट ध्यान लगा कर आध्यात्मिक बनना चाहता है। क्या यह संभव है कि दस-पाँच मिनट में वह वेग आ जायेगा जिस से वह तेईस घंटे, पचास मिनट तक होने वाली क्रियाओं की प्रतिक्रिया से अप्रभावित रह सकेगा? दोनों ओर समय का संतुलन आवश्यक होगा, अर्थात प्रतिदिन कम से कम डेढ़-दो घंटे अनवरत समय लगाना होगा तथा अपनी वृत्तियों की वासनाओं को क्षीण करना होगा। यह क्रम ज्यों ही शुरू होगा, मन की स्थिरता, एकाग्रता के बढ़ने का प्रसंग स्वतः बनता चला जायेगा।

व्यग्रता, असहिष्णुता आदि भी एकाग्रता में बाधक बनते हैं। इन को मिटाने के लिए तपस्या का अभ्यास किया जाता है, शास्त्रों का पारायण किया जाता है। नाना जप, स्वाध्याय आदि का भी अनुष्ठान किया जाता है, किंतु इन सब का जो मूल आधार है, उस की ओर सजगता नहीं बरती जाती है—वह है, मन की शांतिवृत्ति। उभरने वाले विकार-प्रधान विचारों का तटस्थ-भावना के सहज अवलंबन से उपशमन किया जाये। विकार और संस्कार, दोनों ही उभरते रहते हैं, किंतु संस्कार स्वाभाविक रहें तथा विकारों का अस्तित्व क्षीण होता चला जाये, मन को शांत करने का यह उत्तम तरीका है।

सात्विक आहार, नियमित आसन और प्राणायाम भी मन की शांति के लिए अनिवार्य हैं। जब तक चेतन (आत्मा) का संबंध जड़ (शरीर) के साथ है, तब तक बाह्य साधन-सामग्री का उपयोग भी किया जायेगा, किंतु उस के प्रवाह में अस्तित्व की समाप्ति या विलीनीकरण नहीं किया जायेगा। तात्पर्य है, शरीर को खुराक दी जायेगी, पर इतनी नहीं कि वह उच्छृंखल हो कर मन तथा इंद्रियों को भी अनियंत्रित कर दे। आहार की परिणति को संयमित गति प्रदान करने के लिए आसन की आवश्यकता होती है और उस से भी विशिष्ट उपलब्धि प्राणायाम द्वारा होती है। इसलिए आहार, आसन एवं प्राणायाम के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए। तात्पर्य है, 'विचार रहित' होने के लिए वैराग्य का विकास तथा सतत अभ्यास अपेक्षित होता है।

आत्मा में अनंत शक्तियाँ विद्यमान हैं, किंतु गहरे आवरण के कारण उन का आभास स्वयं को नहीं होता। जो गुप्त हैं, उन्हें पाने के लिए वह इधर-उधर चक्कर लगाता है। फलस्वरूप वह असफल रहता है। अपेक्षा यह है कि शांत मन हो कर अंतर की परतों को भेदने का प्रयत्न करें। इस के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं। उसे अपने ही में स्थित होना है। साधना का केंद्र बाहर नहीं आत्मा में है, पर वह बहुधा इस रहस्य को भूल जाता है और छोटी-छोटी इकाइयों में सिमट कर संसार को उतने तक ही मान लेता है। साधना में यही वृत्ति अवरोध उत्पन्न करती है।

कुछ व्यक्ति सिद्धियों की प्राप्ति की कामना ले कर साधना में प्रवृत्त होते हैं। वे यह लेखा-जोखा लेते हैं कि अब अवशिष्ट कितना रहा है? यह वृत्ति भी सिद्धियों को दूर धकेल देती है। जो व्यक्ति सिद्धि को पाना चाहता है, सिद्धि उस से दूर भागती है और जो व्यक्ति उस से मुँह मोड़ता है, उस के वह पीछे-पीछे दौड़ती है। अपनी ही छाया को आगे कर जो व्यक्ति उसे पकड़ने के लिए उतावला होता है, छाया उस की पकड़ में नहीं आती किंतु उसी छाया को यदि पीछे कर दिया जाता है तो वह पीछे लगी रहेगी और एक क्षण भी साथ नहीं छोड़ेगी। सफलता का लेखा-जोखा ही है कि व्यक्ति मन की शांत अवस्[था] अपने द्वारा ही मापता रहे।

अस्वास्थ्य भी मन की शांत[ि] में रुकावट उत्पन्न करता है, किंतु होता क्यों है? शुद्ध आत्मा में अस्व[ास्थ्य] नहीं होता तथा शरीर भी अस्वस्थता ले कर ही निर्मित नहीं होता। पर, दोनों का एक-दूसरे के साथ अवांछ[ित] संयोग होता है, तब दोनों विकृत हो जा[ते] हैं और अस्वास्थ्य को उत्पन्न कर देते हैं। विचारों में उद्वेग का भरना शारीरि[क] क्रियाओं को अस्त-व्यस्त करता है और वहीं से रोग की उत्पत्ति हो जाती है।
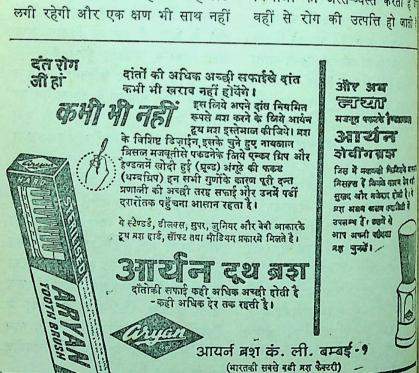
फिर रुग्ण शरीर मन को दुखित करता है और साधना में विघ्न उपस्थित होता चला जाता है। यह परंपरा अविच्छिन्न क्रम से चलती हुई एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती है। इस परंपरा की समाप्ति तब होती है, जब सब से पहले मानसिक उद्वेगों को शांत किया जाता है।

चेतन एक इकाई है, किंतु यह इकाई इतनी विचित्र है कि 'स्व' के अतिरिक्त अन्य किसी का अनुभव नहीं करती। पर, इस 'स्व' की इयत्ता भी नहीं है। वह अपने में समस्त प्राणि-समुदाय को अटा लेती है। यहाँ तक कि यह जड़-जगत के प्रति भी अपनी समता को खंडित नहीं होने देती। आश्चर्य इस बात का है कि चेतन ने जब अपने 'स्व' का विस्तार आरंभ किया तो वह परिवार, समाज या राष्ट्र तक आ कर सीमित हो गया। कहना चाहिए, इस युग में तो उस की सीमा और भी संकुचित हो गयी। अपने और अपने घर के आगे उसे कोई संसार दिखायी ही नहीं देता। जो भी सचेतन प्राणी दिखायी देते हैं, उन का वह एक जड़ से अधिक मूल्य मानने को भी तैयार नहीं है। जिस तरह से मूल्य दे कर वस्तु को खरीदा जाता है तथा उस का उपभोग किया जाता है, उसी तरह वह मनुष्य का भी अपने लिए उपभोग चाहने लगा है। यह मानव का जड़ीकरण है और 'स्व' की विस्तृति का अनुचित उपयोग। वस्तुतः तेरे और मेरे का प्रश्न ही नहीं है। जो कुछ है, वह सब का है। 'स्व' भी सब का है—यह समर्पण भावना है। यह अपने इष्ट के प्रति भी होती है, मानव के प्रति भी। इष्ट के प्रति समर्पित होने वाली भावना श्रद्धा बन जाती है और मानव के प्रति व्यक्त होनेवाली मैत्री। साधना के विकास और मन की शांत वृत्ति के लिए आवश्यक है कि मैत्री भावना का विकास हो और मानव तथा मानव के बीच क्षेत्रीय सीमा, रंग-भेद, जाति-भेद, भाषा-भेद आदि के जो द्वैध हैं, उन्हें समाप्त किया जाये। फिर विश्व एक परिवार है, यह कल्पना साकार होगी। ऐसा होने पर व्यक्ति को 'स्व' के अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखायी नहीं देगा। बस, समस्त प्राणियों की एक दृष्टि, एक चिंतन तथा एक प्रवृत्ति बने और उस की आधार-भित्ति मैत्री पर खड़ी हो।

---

**अम्ब्रोज बीअर्स (अमरीकी) उग्र स्वभाव के लेखक हैं। एक बार उन्होंने कविवर जेम्स व्हाइटकांब राइले की बहुत कटु आलोचना की। किसी ने राइले से पूछा कि बीअर्स की आलोचना पर आप की क्या प्रतिक्रिया हुई? राइले ने जवाब दिया, "मैं ने खामोशी का एक ढेर उन पर दे मारा।"**
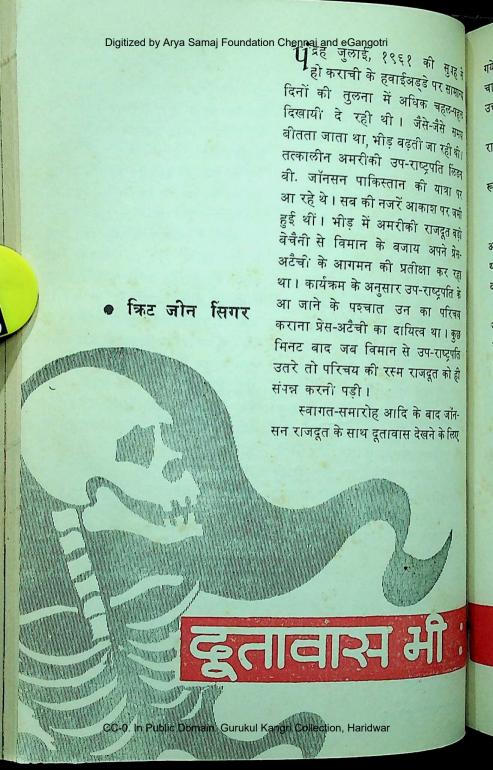
• क्रिट जीन सिंगर

पंद्रह जुलाई, १९६१ की सुबह से ही कराची के हवाईअड्डे पर सामान्य दिनों की तुलना में अधिक चहल-पहल दिखायी दे रही थी। जैसे-जैसे समय बीतता जाता था, भीड़ बढ़ती जा रही थी। तत्कालीन अमरीकी उप-राष्ट्रपति लिंडन बी. जॉनसन पाकिस्तान की यात्रा पर आ रहे थे। सब की नजरें आकाश पर जमी हुई थीं। भीड़ में अमरीकी राजदूत बड़ी बेचैनी से विमान के बजाय अपने प्रेस-अटैची के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। कार्यक्रम के अनुसार उप-राष्ट्रपति के आ जाने के पश्चात उन का परिचय कराना प्रेस-अटैची का दायित्व था। कुछ मिनट बाद जब विमान से उप-राष्ट्रपति उतरे तो परिचय की रस्म राजदूत को ही संपन्न करनी पड़ी।

स्वागत-समारोह आदि के बाद जॉन-सन राजदूत के साथ दूतावास देखने के लिए

गये। तभी राजदूत का एक विशेष कर्मचारी राजदूत के कान में कुछ कह कर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

"कोई विशेष बात?" जॉनसन ने राजदूत के चौंकने पर विस्मय से पूछा।

"जी हाँ। ... प्रेस-अटैची कांफ्रेंस-रूम में है, जिस का ताला बंद है!"

"चाबी कहाँ है?" जॉनसन ने पूछा।

"जी, हवाईअड्डे जाने से पूर्व मैं एक आवश्यक काम से कांफ्रेंस-रूम में गया था। वापस आते हुए संभवतः मैं ने उस के दरवाजे का ताला बंद कर दिया था।"

"अब तो दरवाजा खुलवाओ!" जॉनसन ने कहा। राजदूत ने कर्मचारी को चाबी दे दी। कुछ ही देर में वह कर्मचारी बौखलाया हुआ अंदर आया।

"क्या हुआ?" राजदूत ने पूछा।

"जी, दरवाजा नहीं खुल रहा है।"

"किंतु चाबी तो यहीं है?"

"अवश्य है श्रीमान," कर्मचारी ने जल्दी से उत्तर दिया, "चाबी घूमती तो है, पर ताला नहीं खुलता।"

राजदूत जॉनसन से क्षमायाचना करता हुआ उठ कर कर्मचारी के साथ बाहर निकल गया।

राजदूत की वापसी में देर लगी तो जॉनसन ने एक नौकर से कारण पूछा।

"कांफ्रेंस-रूम का दरवाजा तोड़ा जा रहा है श्रीमानजी!"

थोड़ी देर बाद दरवाजा टूटा तो अंदर से प्रेस-अटैची घबराया हुआ बाहर निकला। जॉनसन ने जब उस से इस सारी घटना का कारण पूछा तो उस ने कहा, "मान्यवर, जब मैं कांफ्रेंस-रूम में प्रबंध देखने आया तो दरवाजा खुला हुआ था, पर जब मैं ने बाहर निकलना चाहा तो दरवाजा बंद मिला।"

"पर ताला क्यों नहीं खुला?"

"इस भवन का विचित्र इतिहास है।"

"ओह!" जॉनसन ने कुछ सोचते हुए कहा, "मैं पत्रकारों से निपट लूँ तो फिर इस बारे में मुझे बताइयेगा।"

दूसरे दिन पूछा तो राजदूत ने एक फाइल निकाली और जॉनसन को भवन का इतिहास बताने लगा।

अमरीकी सरकार को जब पाकिस्तान में अपना दूतावास निर्माण कराने का विचार किया तो अधिकारियों ने उस स्थान को चुना, जहाँ विक्टोरिया रोड पर फेरियर हॉल गार्डन के ठीक सामने इस समय दूतावास की इमारत है।

जब इस संबंध में जाँच की गयी तो

# प्रेतावास भी

पता चला कि भवन लगभग १९२१ से खाली पड़ा है और कोई उसे लेने को तैयार नहीं। उस का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह बताया गया कि इस स्थान पर १९०० के लगभग एक बुजुर्ग का मजार था जिन की आध्यात्मिक-शक्ति ने उन लोगों पर प्रकोप किया जिन्होंने मजार ढाने की कोशिश की।

कहते हैं कि वह स्थान एक पारसी व्यापारी रुस्तमजी सोहराबजी ने खरीद लिया था। पारसी व्यापारी का विचार वहाँ एक आवास-गृह बनाने का था। जब इस की सूचना मजार के बूढ़े मजावर को मिली तो वह सीधा रुस्तमजी के पास पहुँचा और बोला, "इस स्थान पर एक पीर बुजुर्ग मुद्दतों से अमन की नींद में सो रहे हैं। अगर तुम ने उन के मजार को बरबाद किया तो अच्छा न होगा।"

रुस्तमजी ने मजावर की बात पर कोई ध्यान न दिया और कहा कि वह हर कीमत पर अपनी योजना को पूरी करेंगे। इस पर मजावर ने एक अंतिम प्रयत्न और किया ताकि किसी प्रकार रुस्तमजी अपना इरादा बदल दें। परंतु फिर भी कोई असर न हुआ तो उस ने दुःखित स्वर में कहा, "मैं अपना फर्ज पूरा कर चुका हूँ। तुम अपने इरादे पर कायम हो तो यह तुम्हारी गलती है। अब मैं तुम्हें यह भी बता दूँ कि मालिकों को यह मकान रास नहीं आयेगा।"

मजावर के मुख से जैसे ही ये आखिरी शब्द निकले कि वह फर्श पर गिरा और उस की रूह शरीर के पिंजरे से उड़ गयी!

लेकिन रुस्तमजी ने मजावर की मौत महज एक संयोग की बात समझी।

पहले ही दिन जब नींव खुद रही थी तो एक विषैला साँप निकला और उस ने एक मजदूर को डस लिया।

इमारत बनने के बाद रुस्तमजी का परिवार उस में रहने लगा किंतु रहस्यपूर्ण घटनाओं का सिलसिला निरंतर चलता रहा। पहले ही सप्ताह में रुस्तमजी के लड़के दहराबजी ने एक कमरे में तसवीर टाँगने के लिए कील गाड़नी चाही तो हथौड़ी की चोट कील पर पड़ने के बजाय उस के अँगूठे पर पड़ी और नाखून पिचक गया, जिस से उँगली में जहर फैल गया और वह कुछ दिनों बाद ही जिंदगी से हाथ धो बैठा।

दहराबजी के मरने के कुछ सप्ताहों बाद रुस्तमजी ऊपरी मंजिल के जीने पर खड़े अपने पोते हरमजजी को समझा रहे थे कि उसे जीने के साथ बनी रेलिंग पर नहीं फिसलना चाहिए क्योंकि गिरने से चोट लगने की आशंका हो सकती है। हरमजजी ने दादा को उद्विग्न होते देखा तो अपना संतुलन स्थिर न रख सका और नीचे जा गिरा। रुस्तमजी ने पोते को गिरते हुए देखा तो लपक कर रेलिंग के करीब गये और झुक कर नीचे देखना चाहा, पर अधिक झुक जाने के कारण वे भी नीचे छिटक पड़े और ठीक हरमजजी के ऊपर गिरे और अपने पोते के साथ ही इस संसार से विदा हो गये।

रुस्तमजी के बाद वह भवन उन के भतीजे को उत्तराधिकार में मिला, पर वह इन सभी रहस्यपूर्ण बातों को जानता था, इसलिए उस ने उसे किराये पर उठा दिया। सब से पहले उस बड़े भवन को एक अँगरेज दंपती ने किराये पर लिया। पर मजावर की भविष्यवाणी के अनुसार यह भवन उन्हें भी रास न आ सका। दाढ़ी बनाते समय पत्नी से तकरार होने के कारण पति ने पत्नी की हत्या कर दी और फिर स्वयं को भी समाप्त कर डाला।

कुछ दिनों तक वह भवन बिलकुल वीरान रहा। फिर चार अविवाहित सैनिकों ने उसे किराये पर लिया।

उस मकान में उन का पहला दिन तो ज्यों-त्यों कर के बीत गया, पर दूसरे दिन एक ने अपने साथियों से बड़ी गंभीरता से कहा कि उस ने गत रात्रि एक अनोखा सपना देखा है। सपने का विवरण बताते हुए उस ने कहा, "मैं ने एक नूरानी चेहरे वाले बुजुर्ग व्यक्ति को अपने पास खड़े देखा था। उन के बराबर जमीन पर मुझे चार गढ़े भी खुदे नजर आ रहे थे। कुछ क्षणों तक बुजुर्ग मुझे घूरते रहे। फिर मुझ से बोले, "मिट्टी, हवा, आग, पानी और बस !"

दूसरे ही सप्ताह उन चारों सैनिकों में से एक गायब हो गया ! उस रात शेष तीनों सैनिकों ने पुनः उन नूरानी चेहरे वाले बुजुर्ग को सपने में देखा, पर इस बार उन्हें चार के बजाय तीन ही गढ़े नजर आये और बुजुर्ग ने जो शब्द कहे, वे भी

**"हद हो गयी, आप की सिलाई मशीन लाये एक ही सप्ताह तो हुआ है और आप वापस लेने भी आ गयीं !"**

तीन ही थे—हवा, आग, पानी ! 'मिट्टी' शब्द का उपयोग नहीं किया गया था।

सुबह हुई तो तीनों सैनिकों ने अपने चौथे साथी की खोज शुरू कर दी। पर उन का प्रयत्न विफल रहा। कुछ दिन बाद जब कुछ सैनिक चाँदमारी के लिए मैदान में गये तो वहाँ उन्हें खोये हुए सैनिक की अकड़ी हुई लाश एक गढ़े में मिल गयी। उस की सूचना जब भवन में ठहरे हुए तीनों सैनिकों को मिली तो वे बेहद भयभीत हुए। उन में से एक तो इतना आतंकित हुआ कि उसी दिन इंगलैंड के लिए विमान द्वारा रवाना हो गया, पर रास्ते में विमान-दुर्घटना में मर गया !

दूसरे सैनिक की मृत्यु के कुछ ही

दिन बाद तीसरा सैनिक उस भवन में सो रहा था कि हीटर की आग से जल कर राख हो गया। कुछ दिनों बाद चौथा सैनिक भी संसार से कूच कर गया।

इन दुर्घटनाओं के बाद फिर कोई उस भवन को लेने पर तैयार न हुआ।

१९२१ से १९५५ तक वीरान रहने वाले उस भवन को १९५५ में अमरीकी सरकार ने खरीद लिया और किसी विख्यात योरोपीय वास्तुकार को दूतावास का डिजाइन बनाने का काम सौंपा। उसे जब उस भवन से संबंधित रहस्यों का पता चला तो उस ने कहा, "यद्यपि मैं इन बातों पर विश्वास नहीं रखता, तथापि साव-धानी कर लेना अच्छा है!" अतः उस ने नगर के कुछ वयोवृद्ध सम्मानित लोगों को बुलाया और उन से उस विशिष्ट स्थान की तसदीक चाही, जहाँ बुजुर्ग के मजार होने की संभावना हो सकती थी; पर कोई भी सही स्थान का पता न लगा सका। फिर भी वास्तुकार ने जो जानकारी प्राप्त की, उस के अनुसार एक विशिष्ट स्थान को बचा कर दूतावास का नक्शा तैयार किया और पुराना भवन गिरा दिया।

९ सितम्बर, १९५७ को नींव-पत्थर रखा गया जिस के विशिष्ट अतिथि पाकि-स्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति मेजर जनरल इस्कंदर मिर्जा थे। यह पहला अवसर था जब संसार में पहली बार अमरीकी सरकार के किसी समारोह में कुरान पाक और बाइबिल का पाठ किया।

जिस जगह मजार होने की संभावना थी, भवन-निर्माता ने वहाँ कृत्रिम झील बना दी जो आज भी विद्यमान है। निर्माण के दौरान भी असंख्य जानें गयीं। सब से महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अभी निर्माण का कार्य ही पूरा न हुआ था कि पाकि-स्तान की राजधानी कराची से इस्लामाबाद बदल दी गयी और इस्कंदर मिर्जा का पतन शुरू हो गया। सारांश यह कि मजार वाले बुजुर्ग का प्रकोप निरंतर जारी रहा। मिर्जा साहब को पाकिस्तान से लंदन जाना पड़ा और वहीं उन की मौत हो गयी।

उस भवन का निर्माता वास्तुकार अब स्वयं इस संसार में नहीं रहा। भवन के निर्माण के बाद वह पाकिस्तान से इटली पहुँचा और नगर जाते हुए कार दुर्घटना में उस की भी मृत्यु हो गयी!

---

**सुप्रसिद्ध ब्रिटिश आर्केस्ट्रा-निदेशक मॉल्कम सार्जेंट के हर काम में अदा और जीवंतता होती थी। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान उत्तरी इंगलैंड के एक नगर में एक संगीत-आयोजन आरंभ होने से पूर्व एकाएक हवाई हमले से सचेत करने वाले सायरन चीख उठे। तुरंत ही सार्जेंट ने कहा, "जो यहाँ से जाना चाहें अभी चले जायें, आर्केस्ट्रा नहीं रोका जायेगा। शायद हमारी कब्रें यहीं खुद जायें, पर आज हम एक ऐसा सुर छेड़ेंगे जिसे हिटलर कभी नहीं मार सकेगा।"**

● जगपति चतुर्वेदी

# मैं वैज्ञानिक न बन सका!

इस विषय पर कितने ही दिनों से लिखने की सोचता आया हूँ, किंतु तर्क-कुतर्क से बहुत संकोच होता था। छोटे मुँह बड़ी बात की तरह वैज्ञानिक होने की कल्पना भी मैं क्यों करता? पर मुझे तो दूसरी बात ही कहनी है।

विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकों का संग्रह बहुत दिनों से करता रहा हूँ, बड़ा संग्रह हो गया है। कुछ विषयों पर लिखा और-बहुत-से विषय पड़े ही हैं। प्रकाशन की व्यवस्था होती, निर्वाह का कुछ ठिकाना होता तो और भी आगे बढ़ता। पुस्तकें भी बहुत हो गयी हैं। सोचा था कि कहीं ठिकाने से पुस्तकों को रखूँ। उन्हें आवश्यकता पड़ने पर निकाल लेने, ढूँढ़ लेने का सुभीता रखूँ तो कुछ काम बढ़े। इसलिए कई बार, कई जगह अलग कहीं कोई कमरा किराये पर ले कर निजी पुस्तकालय और लिखने का स्थान बनाना चाहा, किंतु बाधाएँ आतीं और क्रम टूट जाता।

एक बार एक स्थान लिया। कोठे पर कच्चा कमरा था। खपरैल थी, आगे कुछ छत भी थी। दीवारों में बहुत-सी अलमारियाँ भी थीं। बड़ा सुभीता जान पड़ा। अलमारियों में पुस्तकें सजा दीं। दूसरे दिन ही देखा कि किताबों में दीमक लग रही है। अब क्या करता! सब पुस्तकों को उठा कर कमरे के पक्के फर्श पर दीवारों से हटा कर रखा। अलमारियों में गैमेक्सिन ला कर छिड़का। पर वहाँ तो लकड़ी के टूटे-फूटे पटरों पर मिट्टी का लेप कर अलमारियों के चालू खाने बना दिये गये थे।

फिर बरसात आयी, किताबों के बंडलों को बीच में जुटा कर ऊपर से पुराने बरसाती कागज, टाट, गद्दा और गरम पुराना कोट डाल कर उन्हें बचाता। फर्श पर भी पानी आता तो बची हुई जगह में किताबें हटा लेता। कुछ समय बाद सूखा मौसम होने पर कोई किताब ढूँढ़ने के लिए बंडल इधर-उधर करता तो झींगुर पट पड़े मिलते। अब क्या करूँ, कुछ सोच न सका।

एक दिन छत पर बैठा था। मुंडेर पर कोई बड़ा मोटा कीड़ा दीख पड़ा।

पंखदार कीड़ा था। इतना मोटा कौन-सा कीड़ा है, समझ में नहीं आया। कुछ खिसकने पर देखा कि कोई काली-नीली ततैया अपने नीचे एक झींगुर दबाये है और झींगुर को बार-बार डंक मार रही है। अजीब बात थी! कई लेख ततैया पर पढ़े और लिखे थे। उन लेखों में वह ततैया थी जो मकड़ी या इल्लियाँ पकड़ लाती, अपने बिल में डंक मार कर अर्धमृत बना कर छोड़ देतीं। वहीं अपने अंडे दे कर बिल का मुंह बंद कर देती। अंडे से पैदा हुआ बच्चा जिंदा मांस अपने पास तैयार खाने को पाता और उसी से पुष्ट होता पर यह ततैया झींगुर पकड़ रही थी! काम वही होगा, यह देशी ततैया का ढंग होगा। इस का वर्णन कहीं पढ़ने को नहीं मिला था।

मैं उसे देखने के लिए नजदीक बढ़ा। वह सहम कर उड़ गयी। झींगुर उस की पकड़ से सीढ़ी पर गिर गया। मैं ने सीढ़ी पर जा कर देखा कि झींगुर बिलकुल अचेत पड़ा है। वह दिन भर वैसे ही पड़ा रहा। दूसरे दिन भी वह वैसे ही बेहोश पड़ा था। शाम को मैं ने उसे थोड़ा हटा कर देखा। तीसरे दिन सीढ़ी पर वह झींगुर नहीं दिखायी पड़ा। शायद कोई चिड़िया उसे उठा ले गयी हो या फिर ततैया ने अपने डंक से बेहोश करने का जितना विष उस के बदन में प्रविष्ट किया उस का प्रभाव कुछ कम हो चला हो और झींगुर खिसक सकने की अवस्था में कहीं जा छिपा हो, या ऐसा भी हो सकता है कि ततैया अभी यथेष्ट विष उस के बदन में प्रवेश न करा सकी हो।

दस-पाँच दिन बाद मैं ने फिर एक ततैया देखी, जो शायद वही हो या उसी तरह की दूसरी ततैया हो। वह एक झींगुर अपने नीचे दबोचे थी और बार-बार उसे डंक मारती और उसे लिये इधर-उधर उचकती। फिर उड़ कर नीचे आती और दोबारा-तिबारा मुँडेर पर चढ़ती दिखायी पड़ती। वह बराबर डंक मारती रहती। मैं अब की बार सावधान था, दूर ही रहा। ततैया झींगुर को दबोचे, ऐसा खेल करते अंत में मुँडेर पर चढ़ गयी और वहाँ से उड़ कर दूसरी ऊँची दीवार पर गयी। फिर वहाँ से दूर उड़ गयी। मैं फिर न देख सका। देर तक उसे डंक मारते रहने और इधर-उधर लिये चलते फिरने और मुँडेर पर चढ़ने से मैं यह समझता हूँ कि ततैया यह देखने का प्रयास करती हो, कि वह उस के वजन को ढो सकने योग्य है या नहीं, या यह निश्चय कर लेना चाहती हो कि झींगुर उस के डंकों से मूर्च्छित हो गया। या नहीं।

बाद में भी जब-तब वैसी ततैया वहाँ आती दीख पड़ी। दरवाजे की दराज में, छेदों में इधर-उधर भटकती झींगुर की टोह में घूमती रहती। मैं ने देखना चाहा कि उस ततैया का वास्तविक रंग क्या है। वह निरंतर अपने 'ऐंटेना' को त्वरित गति से कंपित करती रहती। खिसकती रहती। उस में इतनी अधिक चपलता थी कि उस

के बदन पर आँख नहीं ठहरती थी। दुबले-पतले बदन की होने पर भी अपने से ड्योढ़े वजन के झींगुर को दबोच कर उड़ जाती। अपने घर के पास भी इधर कोई साल भर बाद मैं ने दीवार और चबूतरे की दरारों में उसे झींगुरों की खोज में नाचते-कूदते देखा।

मैं सोचता हूँ कि घूम-फिर कर इस ततैया की सारी गतिविधियाँ महीनों देखता रहता तो उस के जीवन-क्रम और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करता। लोगों ने ऐसा बहुत किया है, नाना प्रकार के कीटों और जंतुओं का जीवन-क्रम और स्वभाव जाना है। क्या मैं भी कुछ कर सकता था? 'फेबर' का नाम मेरे ध्यान में आया। वह गरीब परिवार का था, एक छोटे विद्यालय में अध्यापक था। स्वाध्याय से ही उस ने अधिकांश ज्ञान प्राप्त किया। उस में विज्ञान, विशेष कर कीटविज्ञान के प्रति रुचि थी। वह बाद में विज्ञान के डॉक्टर की उपाधि पा सका। प्रकृति की प्रयोगशाला में उस ने अथक निरीक्षण-कार्य किया। कीटों के जीवन-क्रम और स्वभाव पर अपने पर्यवेक्षणों का लोकप्रिय वर्णन उस की दर्जनों पुस्तकों में है। संसार की अनेक भाषाओं में उन के अनुवाद हो चुके हैं किंतु दुःख है कि उस की एक भी पुस्तक अभी तक हिंदी में अनूदित नहीं हुई।

फेबर ही क्या, अनेक विद्वान ऐसे हैं जिन्होंने अपने पर्यवेक्षणों से ऐसे अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। उन में बड़ी उपाधि वाले भी होंगे और कुछ अनाम, उपाधिहीन भी होंगे। वे संसार में अपने वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों का वर्णन छोड़ गये हैं, यश प्राप्त कर गये हैं। ज्ञान-विज्ञान का वृत्त विस्तीर्ण कर गये हैं।

विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है। जो लोग इस के विभिन्न अंगों पर साहित्य तैयार कर सके हैं, और जो लोकप्रिय भी हैं क्या उन के साहित्य को हिंदी पाठकों के सम्मुख रखना कोई महत्त्व नहीं रखता? ऐसे ही विचार मेरे मन में आते रहते और मुझे अपने लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य-प्रचार कार्य में प्रेरित करते रहते हैं।

सच बात तो यह है कि मैं ने वैज्ञानिक बनने की बात कभी सोची भी नहीं। शायद अपनी सीमाओं में वैसे मार्ग पर बढ़ भी नहीं सकता था। कुछ भी हो, इतना तो है ही कि मैं वैज्ञानिक न बन सका। जो कुछ बना हूँ, वह भी ठीक ही है। मुझे अपने कार्यकलापों से स्वयं कोई शिकायत नहीं। किसी और को हो तो हो!

(७६, कूचा राय गंगाप्रसाद, इलाहाबाद)

---

**इजरायली प्रधानमंत्री श्रीमती गोल्डा मायर को कुछ पत्रकारों ने घेर लिया तो एक कर्मचारी ने उन से प्रार्थना की कि आप पत्रकारों से बात कर लें। श्रीमती मायर ने यह कह कर प्रार्थना अस्वीकार कर दी, "कुछ न कहने से कुछ और अच्छा तुम कर ही नहीं सकते।"**
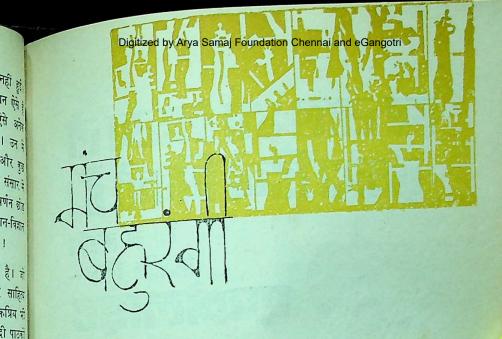
पाँच साल पहले हम लखनऊ में रहते थे। हमारा मकान पुराने किले में था। बच्चे हमेशा सड़क पर खेलते रहते और इलाहाबाद-लखनऊ आने-जाने वाली गाड़ियाँ देखा करते थे।

एक दिन जब मेरी छोटी लड़की नीलम और पड़ोस का बंटू खेल रहे थे तब एक आदमी उन्हें अपने साथ ले गया। दूसरी गली में एक दोमंजिला मकान खाली पड़ा था। वहाँ दो सीढ़ियों के बीच में जो चौड़ी जगह थी वहाँ बच्चों को खड़ा करके उस ने उन्हें छुरा दिखाया और कहा कि यदि यहाँ से निकलोगे तो मार डालूँगा। बाद में वह व्यक्ति कहीं चला गया।

नीलम पाँच साल की और बंटू साढ़े तीन साल का था। नीलम डर के मारे काँप रही थी, पर बंटू साहसी था।

जब दोनों बच्चे देर तक हमें दिखायी नहीं दिये तब बंटू की माँ और मेरी बड़ी लड़की उन्हें खोजने निकलीं। बंटू रास्ते में ही मिल गया। उस से जब नीलम के बारे में पूछा तो वह उन्हें वहाँ ले गया जहाँ नीलम खड़ी थी। बहिन को देख कर भी नीलम का डर कम नहीं हुआ।

सरकार हर वर्ष वीर बालकों को जो पुरस्कार देती है वह बंटू को भी दिया जाना चाहिए था।

**—आशा लोकरे, जबलपुर**

कवि श्री 'लहरी' जयपुर आये हुए थे। उन्हें कलकत्ता तक जाने के लिए आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़ गयी। वे एक उच्च अधिकारी के पास, जो स्वयं को राजस्थान का ख्यातिलब्ध

कवि मानते हैं, पहुँचे और भोजन तथा टिकट-व्यवस्था के लिए सहायता माँगी, मगर उच्चाधिकारी ने सब के सामने कवि 'लहरी' को फटकार कर दफ्तर से बाहर कर दिया। 'लहरी' जी अत्यंत दुःखी हुए। एक व्यक्ति ने उन से 'जयपुर साहित्य संस्थान' को भी आजमाने को कहा।

'लहरी' जी संस्थान के मुख्य सचिव श्री नरेश कमठान के पास पहुँचे और आर्थिक सहायता के एवज अपनी कविता सुनाने का प्रस्ताव रखने लगे। श्री कमठान ने श्रद्धेय कवि का सामर्थ्यानुसार सम्मान किया और संस्थान की अध्यक्षा श्रीमती सुमित्रासिंह, परिवार-नियोजन राज्य-मंत्री तथा उपाध्यक्ष श्री मुकुट सक्सेना से तुरंत फोन पर संपर्क कर 'लहरी' जी की भोजन-व्यवस्था तथा उन के टिकट की व्यवस्था की। अब 'लहरी' जी से न रहा गया। कहने लगे, "आज की घटना सदैव प्रेरणास्पद रहेगी। आप सच ही कवि हैं। आप की संस्था वास्तव में एक साहित्यिक संस्था है। मगर जिन अधिकारी ने मेरे साथ 'अविस्मरणीय' व्यवहार किया है वे यह नहीं सोचते कि कवि बनने के लिए पहले इनसान बनना पड़ता है, अधिकारी बाद में। जो कवि हैं वे अधिकारी नहीं रह पाते और जो अधिकारी हैं वे कवि नहीं रह पाते।"

—सुभाषचन्द्र 'राही' जयपुर

यह घटना इस वर्ष (६ अगस्त) रक्षाबंधन-पर्व की है। गंगा में इतनी तेजी से पानी बढ़ रहा था कि लगता था जल आकाश को छू लेगा। चारों तरफ पानी-ही-पानी था।

फरक्का थाने के नीमशहर गाँव में मेरे बच्चे—पाँच वर्षीय लड़का पप्पू, आठ वर्षीय लड़का खोखन तथा छह वर्षीया लड़की सुषमा—घर में उछल-कूद मचा

सुषमा
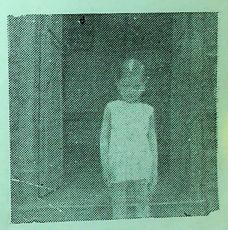
रहे थे। आठ बजे के लगभग सुषमा ने दोनों भाइयों को राखी बाँधी।

शाम तक गंगा का बढ़ाव स्थिर था। रात में दस बजे गंगा का पानी बढ़ने लगा। मैं भयभीत हो उठा। तभी घर का गिरना आरंभ हो गया। तीनों बच्चे एक चौकी पर सो रहे थे। अचानक गंगा की लहरों ने हम सबों को एक-दूसरे से अलग कर दिया। मेरे आगे तीनों बच्चे बह रहे थे।

उन्हें बचाने का कोई उपाय नहीं था। बच्चे जोर-जोर से चिल्ला कर मुझे बुला रहे थे।

मगर मैं उन्हें नहीं बचा सका। किसी तरह मैं पानी से निकला और उन्हें खोजना आरंभ किया। दो दिन बाद देखा कि तीनों बच्चे एक-दूसरे का हाथ पकड़े गंगा-तट पर मृत पड़े हैं। दोनों भाइयों के हाथ में राखी के धागे बँधे थे और उन की बहिन सुषमा उन के बीच थी।

—अरविन्दकुमार, फरक्का (प. बंगाल)

मेरे चाचाजी, श्री मन्नूलाल चतुर्वेदी, बाँदा जिले में विकास-अधिकारी हैं। वे नौकरों से बहुत कम काम कराते हैं। मैं ने उन से इस का कारण पूछा तो उन्होंने यह प्रसंग सुनाया—मेरे परिचित एक थानेदार अपनी सर्विस के जमाने में किसी राजा-महाराजा से कम ठाठ से नहीं रहते थे। हर समय एक नौकर उन के सामने सिर झुकाये खड़ा रहता। स्थिति यह थी कि हर काम के लिए उन्हें नौकर की आवश्यकता रहती थी।

थानेदार साहब रिटायर हो चुके हैं। अब भी वे अपने ग्राम में रहते हैं, पर नौकरों के अभाव ने उन्हें अर्द्ध-विक्षिप्त बना दिया। अब स्थिति यह है कि वे किसी कल्पित नौकर को भद्दी गाली से संबोधित करके कहेंगे—" 'अबे रहीम...चाय का पानी चढ़ा,' फिर स्वयं चाय बना लेंगे। चाय पीते समय एकांत में गालियाँ भी देते जाते हैं—"… रद्दी चाय बना कर रख दी...तुम्हारे … ने भी कभी चाय बनायी थी ?"

भला कौन समझदार नौकरों से काम कराने की प्रवृत्ति का दास होना चाहेगा!

—ज्ञानप्रकाश चतुर्वेदी, छतरपुर (म.प्र.)

हायर सेकंडरी पास करने के बाद मैं ने पॉलीटेकनीक में प्रवेश लिया। घर से दूर हॉस्टल के उन्मुक्त वातावरण में शीघ्र ही मेरा मन रम गया। अन्य साथियों की भाँति मैं भी घर से आये पैसों का दुरुपयोग होटल, सिनेमा में करने लगा।

और परिणामस्वरूप हाजिरी कम होने के कारण मुझे परीक्षा में सम्मिलित नहीं होने दिया गया।

उदास मन से घर पहुँचा तो ज्ञात हुआ कि मोटर साइकिल से ऐक्सीडेंट हो जाने से पिताजी के शरीर में कई हड्डियाँ टूट गयी हैं। पिताजी ने मुझे उदास देखा तो बोले, "बेटा! हड्डियाँ टूटने का मुझे कोई दुःख नहीं है क्योंकि वे कुछ समय बाद जुड़ जायेंगी लेकिन मैं ने तुम्हारे भविष्य के प्रति जो सपने सँजोये थे वे तुम्हारी असफलता के कारण टूट गये और अब उन का जुड़ना मुश्किल ही है।"

जब कभी किसी छात्र को अभिभावक द्वारा भेजे गये पैसों का दुरुपयोग करते देखता हूँ तो मुझे अपने पिताजी का कथन स्मरण हो आता है!

—राजेन्द्रसिंह गहलौत, शहडोल (म.प्र.)
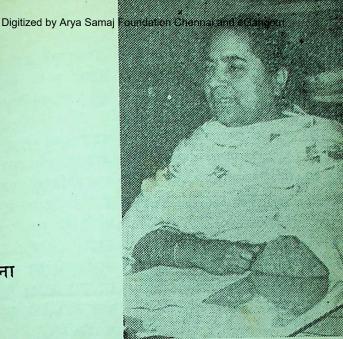
सतनाम कौर

• सुदर्शन खन्ना

सतनाम कौर—यह नाम मैं वर्षों से सुनती आ रही थी। जहाँ कहीं मैं ने यह नाम सुना, बड़े आदर के साथ। बड़ी इच्छा थी उन के दर्शन की।

आजकल श्रीमती सतनाम कौर बालिका गृह, जेल रोड की अधीक्षिका हैं। मैं ने उन से पहला प्रश्न किया—"आप इस क्षेत्र की ओर कैसे प्रवृत्त हुईं?" उत्तर में उन्होंने कहा, "यह लंबी कहानी है, मेरा जीवन संघर्षों से जूझता हुआ अब टिक गया है। मैं यह नहीं कहूँगी कि मेरा जीवन दुःखों से भरा हुआ था। मेरी कहानी सुन कर आप स्वयं इसे भाषा का रूप दे दें।"

और वे बताने लगीं—"मैं तेरह वर्ष की ही थी तो मेरा विवाह हो गया। अठारह वर्ष की उम्र में मैं विधवा हो गयी। उस समय मेरी एक लड़की तीन साल की थी, दूसरी डेढ़ साल की। लड़का पति की मृत्यु के दो महीने बाद हुआ। लोगों को

मुझ पर तरस आता। सभी 'बेचारी-बेचारी' कहते पर मैं केवल दया की पात्र नहीं बनना चाहती थी। मैं मन में सोचती—बच्चों के लालन-पालन के लिए मुझे कदम-कदम पर दूसरों की सहायता लेनी पड़ेगी। विवाह से पहले मैं केवल पाँचवीं कक्षा पास थी। मेरा बेटा अभी चालीस दिन का ही था कि मैं ने आठवीं कक्षा की पुस्तकें मँगवा लीं। यह खबर मेरी ससुराल पहुँची। मेरे जेठ पिताजी से लड़ने आ गये—क्या करेगी यह पढ़ कर? इतने बड़े घर की बहू नौकरी करेगी! लाखों की यह जायदाद किस के लिए है?

"पिताजी ने समझाने की कोशिश की—जरूरी नहीं कि नौकरी ही करे। आगे बच्चों को भी तो पढ़ाना है। खुद समझदार हो जायेगी तो बच्चों की अच्छी तरह देखभाल कर सकेगी।

"मेरे जेठ ने कहा—हम क्या मर गये हैं? हमारे भाई के बच्चे हैं, यह हमारा कर्तव्य है।

"पिताजी ने हाथ जोड़ दिये—आप की बहू है, जैसा कहेंगे वैसा ही होगा। और उन्होंने मुझे पढ़ने के लिए मना कर दिया। पर मैं पढ़ती रही। पिताजी ने समझा कि अब वे लोग बात भूल गये होंगे पर किसी-न-किसी तरह ससुरालवालों को समाचार मिल गया। फिर वे लोग आ गये। उन्होंने पिताजी को धमकाया—यदि तुम ने हमारे खानदान को नीचा दिखाने की कोशिश की तो हम तुम्हारी और तुम्हारे बेटों की हत्या कर दे… पिताजी ने मेरे आगे हाथ जोड़े। … उन्हें आश्वासन दिया कि अब नहीं पढ़ूँ…

"किताबें तो मेरे पास थी हीं। अब रात को ग्यारह बजे के बाद, सब … जाते तो, पढ़ना शुरू करती। पहले … कमरे की बिजली बंद कर देती। जब आश्व… हो जाती कि सब सो गये हैं तो उठ … पढ़ती और रात के चार बजे तक प… रहती। जब और लोग उठने वाले … तो बिजली बंद कर देती। परीक्षा … का वक्त आया। मैं ने वह तरकीब … सोच ली। मेरी एक सहेली सुबह … घर आती और मेरी माँ से कहती—… माँ यहाँ नहीं हैं, इसलिए इसे मेरे घर … दीजिये। वह मेरे बेटे को भी साथ ले ले… दिन में दो पेपर होते थे। एक पेपर … बाद मेरी सहेली बेटे को लाती और … उसे दूध पिलाती। इस प्रकार मैं ने पर… दी और फर्स्ट डिवीजन पास हुई। पर … घर में किसी को नहीं पता था। अब द… कक्षा की तैयारी शुरू की। एक भाई … साथ मिलाया। मैं बच्चों के साथ … चली गयी और वहाँ पढ़ती रही। … प्रकार मैं ने दसवीं की परीक्षा पास … भाई बेचारा आता-जाता रहता … इस बार फिर फर्स्ट डिवीजन आ… अब मुझे कालिज में जाना था। गाँव … तो कालिज था नहीं, लाहौर (अब पा… स्तान में) जाना था। माता-पिता … आज्ञा लेनी थी। वे तो मन से चाहते …

मेरी लग्न देख कर पिताजी ने कहा—अब चाहे तुम्हारे ससुरालवाले मुझे कत्ल कर दें तो भी तुम्हें पढ़ने से नहीं रोकूँगा।

"मैं ने लाहौर के 'फतहचंद कालिज फार वीमेन' में प्रवेश लिया। कह-सुन कर मुझे बच्चों को साथ रखने की आज्ञा मिल गयी। जिन दिनों मेरी इंटरमीडिएट की परीक्षा थी, लड़के को निमोनिया हो गया। मुझे बड़ी चिंता हुई। वार्डन ने कहा—घबराओ नहीं, मैं तुम्हारी माँ हूँ, तुम निश्चित हो कर परीक्षा दो। मैं लड़के को सँभालती हूँ। कई रातें वे लड़के को गोद में ले कर बैठी रहीं और मैं परीक्षा देती रही। आप अंदाज लगा सकती हैं, बच्चे के प्रति स्नेह, घरवालों का डर और परीक्षा के दिन! किस तनाव में रही होऊँगी मैं। खैर, लड़का भी ठीक हो गया और मैं भी पास हो गयी। बी. ए. पास करके मैं बच्चों को माता-पिता के पास छोड़ कर मद्रास बी. टी. करने गयी। जब मैं लाहौर-होस्टल में थी तब भी मेरे जेठ झगड़ने आये। प्रिंसिपल को धमकाने लगे—हमारे बच्चे यहाँ यतीमों की तरह नहीं रहेंगे।

"प्रिंसिपल ने मुहतोड़ उत्तर दिया—बच्चे यहाँ अनाथ नहीं, उन की माँ उन का भी खर्च दे रही है। इसलिए आप किसी भी तरह अपनी बहू की पढ़ाई में बाधा डालेंगे तो हम आप लोगों पर मुकदमा कर देंगे। अब तो मेरे ससुरालवाले हार गये।

"मद्रास में मैं ने अपनी प्रिंसिपल को अपनी हार्दिक इच्छा बतायी। वस्तुतः मैं चाहती थी कि पढ़-लिख कर अपने कारखानों में स्वयं काम करूँ, इसलिए अधिकारियों की आज्ञा ले कर मैं हर शनिवार और इतवार को कारखानों का काम देखने जाती। पर यह स्वप्न पूरा न हो सका। जब मैं काम सीख कर लौटी तो पाकिस्तान बन गया। हमें भारत आना पड़ा। कारखाने, बाग-बगीचे सब वहीं रह गये। पर बीस लाख की जायदाद के बदले मुझे फरीदाबाद में काफी कुछ मिल गया। पर कई विधवाएँ ऐसी भी थीं जिन्हें कुछ नहीं मिला था और जिन्हें यह भी पता न लग रहा था कि क्या करें और क्या खायें। पढ़ाने की बजाय मैं ने ऐसी ही महिलाओं के बीच काम करना स्वीकार किया। पहले जालंधर में शरणार्थी महिलाओं के बीच काम किया। ६,००० महिलाओं के सुख-दुःख सुनना और उन की रोटी-रोजी की व्यवस्था करना आसान काम नहीं था।

"कुछ मास काम करने के बाद मैं दिल्ली आयी। यहाँ कुछ वर्ष काम किया। फिर मुझे पेप्सू में बुलाया गया। वहाँ परित्यक्त महिलाओं के बीच पाँच साल काम किया। १,२००–१,३०० महिलाओं की व्यवस्था करना—जब कि अधिकांश रोती ही रहें—बड़ा मुश्किल था। वहाँ जब काफी कुछ व्यवस्थित हो गया तो श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने मुझे फरीदाबाद में शरणार्थी महिलाओं के बीच

काम करने को बुलाया। इन महिलाओं में अधिकांश विधवा थीं। सीमाप्रांत की ३,५०० औरतें बात-बात पर झगड़े पर उतर आतीं। साढ़े पाँच साल वहाँ काम किया। इस अवधि में प्रायः सभी महिलाएँ अपने पैरों पर खड़ी होने के योग्य हो चुकी थीं। फिर १९६० में मुझे दिल्ली में समाज कल्याण-विभाग की ओर से दिल्ली बुलाया गया। यहाँ सब से पहले 'रिमांड होम फार गर्ल्स' (बालिका सुधार गृह) का काम मैं ने शुरू किया। नारी निकेतन से सात बच्चियाँ ले कर मैं ने यह संस्था चलायी। इस के बाद 'फास्टर केअर होम स्कीम' को कार्यान्वित करने के लिए मुझे बुलाया गया। इस योजना को व्यापक रूप मिलने के बाद 'आफ्टर केअर होम फॉर वीमेन' (अभय महिला आश्रम) में मैं ने दो साल काम किया। इस बालिका गृह में मैं पाँच साल से हूँ। जब यहाँ आयी थी तो केवल तीस लड़कियाँ थीं। इस समय यहाँ १०७ लड़कि[याँ] मौजूद हैं।"

मैं ने उन के बच्चों के बारे में [पूछा] तो बड़े गर्व के साथ उन्होंने बताया, "[दोनों] लड़कियाँ डॉक्टर हैं। दोनों दामाद [भी] डॉक्टर हैं। बेटा फरीदाबाद में [अपना] कारखाना चला रहा है। उस ने इलेक्ट्रि[क]ल, मेकेनिकल और सिविल इंजिनियरि[ंग] की डिग्रियाँ ली हैं। मैं ने भी नौकरी [के] दौरान एम. ए. पास किया।"

"अब आप के जेठ एवं अन्य ससुरा[ल] वाले आप की हिम्मत की दाद देते [हैं] और आप ने भी उन को क्षमा कर दि[या] होगा?"

"कहीं खून के रिश्ते भी छूटते हैं! जब मैं परायों में काम करते हुए अपने [दुःख] को भूल जाती हूँ तो वे तो मेरे सगे-संबं[धी] ही हुए," उन्होंने मुसकरा कर कहा।

**(वाई. डब्ल्यू. सी. ए., कमरा नं. [...] अशोक मार्ग, नयी दिल्ली)**

---

**सहेली ने शीला को विवाह की पचीसवीं वर्षगाँठ पर बधाई दी और कहा, "यूरोप में तो इतने साल तक कोई स्त्री एक ही आदमी के साथ मुश्किल से रहती है।"**

**"पर ये वैसे नहीं रहे जैसे पचीस साल पहले थे—अब तो ये बिलकुल दूसरे आदमी हो गये हैं," शीला ने कहा।**

●'सरन'

# कृतज्ञता का पाठ बचपन से

'नेकी कर कुएँ में डाल' वाली कहावत अच्छी तरह समझते हुए भी कभी-कभी लगता है कि आखिर यह एकतरफा बहाव कब तक ! यह जरूरी है कि हर व्यक्ति इस का ध्यान रखे कि किसी का उपकार भूला न जाये। यही नहीं, बल्कि एक उपकार के बदले में दो करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना होगा। उस उपकार के लिए आभार-प्रदर्शन तो तत्काल ही करना चाहिए। कृतज्ञता, एक ऐसा गुण है जिसे मनुष्य प्रयत्न तथा अभ्यास के द्वारा अपने में पैदा कर सकता है। और जो बात बचपन में आसानी से सीखी जा सकती है उसे आगे चल कर सीखने में अधिक कठिनाई होती है।

एक जमाने से माता-पिता अपने पुत्रों की अकृतज्ञता का रोना रोते आये हैं। शेक्सपियर ने 'किंग लीयर' में कहलाया है—अकृतज्ञ पुत्र भयानक साँप के विष से भी अधिक सांघातिक है।

किंतु यदि बच्चों को बचपन से ही कृतज्ञता सिखायी जाये तो वे उसे नहीं भूलेंगे। डेल कार्नेगी ने कहा है—"कृतज्ञता गुलाब के फूल के समान है। उसे पालना, पोसना, खाद-पानी देना तथा दुष्प्रभावों से उस की रक्षा करना जरूरी है।" यदि हमारे बच्चे अकृतज्ञ हैं तो दोष निश्चय ही हमारा है। बच्चों में कृतज्ञता का भाव जगाने का सब से सरल उपाय यह है कि हम स्वयं उन के सामने उदाहरण प्रस्तुत करें। हमें देख कर उन में अनायास यह गुण पैदा हो जायेगा। बच्चे वही करेंगे जो वे देखेंगे। दैनिक जीवन में अनेक छोटे-मोटे अवसर आते हैं जब हमें आभार-प्रदर्शन करने की आवश्यकता होती है। शादी-विवाह में अनेक उपहार तथा शुभ कामनाओं के पत्र एवं तार आते हैं। जन्मदिवस के उत्सव में भी उपहार तथा शुभकामनाएँ प्राप्त होती हैं। परीक्षा पास होने पर बधाइयाँ मिलती हैं। चुनाव जीतने पर समर्थक लोग हर्ष प्रकट करते तथा बधाइयाँ देते हैं। किसी मरीज के

लिए अस्पताल में बेड लेने के लिए किसी की सहायता लेनी पड़ती है। नौकरी के लिए मित्रों तथा परिचितों से सहायता मिलती है। सड़क पर किसी से 'लिफ्ट' मिल जाती है। दशहरा-दीवाली आदि पर शुभकामनाओं के कार्ड आते हैं।

ऐसे अनेक अवसर गिनाये जा सकते हैं, पर हम में से कितने हैं जो इन सब के बदले आभार-प्रदर्शन करते हैं। कार्ड पड़े रहते हैं, उन की प्राप्ति की सूचना नहीं भेजी जाती। ये बातें घरों में बच्चों पर बुरा असर डालती हैं। आगे चल कर यही भावना उन में अकृतज्ञता में परिणत हो जाती है, जिस के लिए हम रोते हैं। हमें शुरू से ही बच्चों को सिखाना होगा कि किसी काम में दूसरे व्यक्ति द्वारा सहायता किये जाने पर उन के प्रति आभार-प्रदर्शन करना नहीं भूलना चाहिए।

आप के लड़के या लड़की की शादी हो गयी है। अनेक उपहार तथा बधाई के संदेश आये हैं। आप बच्चों को अपने पास बैठा लीजिये। जो बच्चे लिख सकते हैं उन से आभार-प्रदर्शन का मजमून लिखायें। जो कम पढ़े हैं वे पता लिख सकते हैं और छोटे उन्हें चिपका सकते हैं। देखिये, काम भी जल्दी हो गया और साथ ही बच्चों को सीख भी मिली कि इस तरह के अवसर पर ऐसा करना चाहिए। बच्चों के जन्म-दिन पर उपहार तथा बधाई के संदेश आने पर भी आप को या आप की पत्नी को यह देखना चाहिए कि उन सब का आभार किया गया है या नहीं? उपहार से अधिक महत्त्व उस के भेजने वाले की भावना को देना चाहिए। किसी भी उपहार को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, किंतु इस तरह की बातों का बच्चों के मन पर बुरा असर पड़ता है।

कुछ लोग इस तरह के आभार-प्रदर्शन को दिखावा कह कर टालने की कोशिश करते हैं। यही भावना बच्चों में भी घर कर जाती है। यह एक खतरनाक स्थिति है। यदि बच्चों के भविष्य की नींव का पत्थर गलत रखा जायेगा तो उस का परिणाम बुरा होगा। आगे चल कर वे आप से भी अकृतज्ञता का बर्ताव करेंगे। कहेंगे, आप का कर्तव्य था उन्हें पालना-पोसना, आप ने किया तो क्या अहसान किया। एक तरह से यह हमारा अपना स्वार्थ है कि बच्चों में इस भावना को जगायें ताकि आगे चल कर हमें उन से शिकायत न हो कि वे अकृतज्ञ हैं। इस स्वार्थ से हम अनायास ही राष्ट्र को भी एक सुसंस्कृत नागरिक दे सकेंगे।

**(डी.जी.पी.टी. कार्यालय, नयी दिल्ली-१)**

---

**"क्या तुम्हारे पति को विवाह की वर्षगाँठ याद रहती है ?"**

**"बिलकुल नहीं, और यह अच्छा ही है। इस बहाने साल में दो बार उन से उपहार ले लेती हूँ।"**

# इतिहास जो देर से

सन १८६० की पंद्रह मार्च की नीम-स्याह भोर में मर्सी के बंदरगाह में एक जहाज ने लंगर डाला। यह जहाज 'तस्मानिया' था, जो सन १८५९ की मध्य नवंबर में कलकत्ता के मुफस्सिल इलाके चिंसुरा से इंगलैंड के लिए रवाना हुआ था। कमांडर गार्जियन इस जहाज का कप्तान था और उस में सवार थे फौज से मुअत्तल किये गये वे जांबाज लड़ाके जिन्होंने हिंदुस्तान में अपना खून बहा कर ब्रितानी सल्तनत की जड़ें पुख्ता की थीं। लेकिन अब उन्हें ही खतरनाक बागी सिद्ध कर दिया गया था और दंड-स्वरूप निर्वासन की सजा दी गयी थी। साहबों की सरकार ने उन के प्राण न
लिये थे, यह बड़ी मेहरबानी थी। उ
मुअत्तल सिपाहियों को तीसरी बंगा
यूरोपीय रेजीमेंट के कप्तान एलेक्जेंड
पांड के संरक्षण में वापस उन के व
भेजा जा रहा था।

लिवरपूल स्थित कौंसिल ऑव इंडि
के एजेंट विलियम रथबोन को 'तस्मानि
के बारे में तकरीबन दस बजे खबर मिली
वह तुरंत एक नाव द्वारा जहाज प
पहुँचा जहाँ उसे पता लगा कि कलक
से जहाज रवाना होते वक्त उस प
१,०५० मुसाफिर थे। उन में १८
मुअत्तल सिपाही थे और साथ में थे पची

१८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम के तुरंत बाद भारत से ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और मलिका विक्टोरिया का स्वामित्व हो गया। ऐसी स्थिति में कंपनी के कर्मचारियों की क्या स्थिति थी ? अधिकारियों का तर्क था, कंपनी ब्रिटिश राज की प्रजा थी अतः समस्त कर्मचारी भी मलिका की प्रजा हुए। पर कंपनी के सिपाही इस स्थिति के विरुद्ध थे। इस असंतोष की परिणति हुई भारत में ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति गोरे सिपाहियों के विद्रोह के रूप में। इस बार 'सार-संक्षेप' के अंतर्गत एक शताब्दी से अधिक पूर्व के उस विद्रोह का रहस्योद्‌घाटन किया जा रहा है। प्रस्तोता : कैलाश नारद

# बेनक़ाब हुआ

अफसर, इक्कीस बच्चे और सत्रह औरतें। लेकिन मर्सी आते-आते उन में से १५० मुसाफिरों ने भूख से दम तोड़ दिया था और जो बाकी बचे थे, उन में से अधिकांश बुरी तरह बीमार थे। वे इस स्थिति में भी नहीं थे कि अपने केबिनों से बाहर आ सकें। जहाज का अन्न भंडार खाली था और मरीजों के पास कंबल नहीं थे ! उन की वर्दियाँ तार-तार हो गयी थीं और अधनंगी औरतों को—जो सिर्फ सात रह गयी थीं—अपना जिस्म ढाँकना मुश्किल पड़ रहा था।

कौन-से अँधेरे और प्राणांतक रास्तों को पार करते हुए वे मर्सी तक आ पहुँचे थे, याद करना सर्वथा असंभव था। बीते हुए सफर की याद उस तसवीर की तरह धुँधली पड़ गयी थी जिस के रंग पानी से धुल गये हों। स्मृतियाँ अब भी बनी थीं, मगर भयावह और दुःस्वप्न की भाँति रोमांचक, जो अब उजागर नहीं होती थीं बल्कि मन की वीथियों में अनर्गल, छिटपुट प्रतिक्रियाओं के रूप में घूम जाता थीं। नीली धुंध की तरलता में डूबे हुए उन अभागे यात्रियों ने समुद्र के रूप में केवल मृत्यु का निशा-संगीत ही जाना था और मंजिल पर पहुँज जाने का अजनबी क्षण जब मर्सी पहुँच जाने पर एकाएक आ गया तो वे स्तब्ध-से अतीत और वर्तमान

मलिका विक्टोरिया

की सीमारेखा पर ठिठके रह गये थे।

मुद्दतों बाद अपने देश से हजारों मील दूर बीच सागर में अपनी नियति के बारे में सोचते हुए उन आयरिश सैनिकों ने अपनी उन लालसाओं के बारे में ही सोचा था जिन्होंने उन्हें अकाल मौत का शिकार होने के लिए विवश किया था। समुद्र की अबाध, असीम गहनता की तरह कुछ वांछाएँ 'तस्मानिया' पर भूली-भटकी स्मृतियों-जैसी उन के पास चली आयी थीं। तमाम विडंबनाओं की शुरूआत तब सत्ता के हस्तांतरण से ही हुई थी, उन्हें भली-भाँति याद था। विद्रोह के तत्काल बाद सन १८५७ में कंपनी का राज्य मलिका को सौंप दिया गया था। वे जो कंपनी के मुलाजिम थे, उन से कहा गया था कि वे अपनी सेवाएँ अब महारानी विक्टोरिया को अर्पित कर दें। उन सैनिकों को विकल्प चुनने का भी अवसर ... दिया गया था। उन से कहा गया था ... चूँकि ईस्ट इंडिया कंपनी का अ... ताज में समाहित हो गया है, अतः अब ... बजाय कंपनी के ब्रितानी सत्ता के सै... हैं और उसी के प्रति अपनी भक्ति ... प्रदर्शन करें।

कंपनी के सिपाहियों के लिए यह ... जबर्दस्त आघात था। ईस्ट इंडिया कं... का प्रभुत्व जब उन्होंने स्वीकार कि... था, तो उन के सम्मुख स्वप्न था कि ... भारत विजय करेंगे और तदनंतर नवा... जैसी जिंदगी गुजारेंगे। लेकिन मलि... की खिदमत करने का यह हुक्म म... उन के अपने निजत्व पर कुठाराघा... था। उस आदेश के पहले वे देश के ... थे। रजवाड़ों की आजादी उन्होंने छीन... शुरू कर दी थी और नायक-शून्य देश ... स्वेच्छाचारी अधिपति बनने का उन... स्वप्न काफी विस्तृत हो चला था।

शुरू-शुरू में जब उन सैनिकों ... इस नये आदेश की खबर मिली थी ... वे हँस पड़े थे, लेकिन वह भी चंद रो... के लिए ही। और जब आदेश की तामी... न होने की दशा में इन सैनिकों को दं... किये जाने के प्रस्ताव आये थे तो एका... आक्रोश भड़क उठा था। १८५९ के ... तक ब्रितानी शासकों को भीतर सुल... इस बेचैनी की टोह लग गयी थी। देश ... राजनीतिक क्षितिज पर एक नयी अशां... के बादल घुमड़ते जो उन्होंने देखे ...

तो उन्हें लगा था कि भले ही १८५७ के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम को बड़ी निरंकुशता और बेरहमी से ब्रितानियों ने कुचल दिया हो लेकिन जो आयरिश उस दमन में सहायक बने थे, यदि उन को नहीं दबाया गया तो जो नया विद्रोह--ब्रितानियों का ब्रितानियों के खिलाफ--भड़केगा, उस में गौरांग महाप्रभुओं की नयी-नयी सल्तनत का नामोनिशान मिट जायेगा। ये आयरिश सैनिक बड़े ही दुस्साहस के साथ नयी संप्रभुता का विरोध कर रहे थे। तत्कालीन अधिकारियों और लंदन स्थित ब्रितानी शासकों का ध्यान देशी साहब-नवाबों ने इस उभरते आक्रोश के विरुद्ध आकर्षित किया था लेकिन विद्रोह के दमन के पश्चात आत्मप्रत्यय में वे जैसे सब-कुछ भूल चुके थे। उन्हें रंचमात्र भी आशा नहीं थी कि भारत में किसी भी प्रकार का सैनिक-विद्रोह हो सकता है।

लेकिन आत्मोल्लास में डूबे सत्ताधीशों की आशाओं के बावजूद भारत में सैनिक विद्रोह हुआ। जिन अनुशासनप्रिय ब्रितानी सैनिकों की गरिमा और चरित्र की वंदना यूरोपीय अधिकारियों ने सहस्र कंठों से की है, उन्हीं मनीषियों ने इन फिरंगी सैनिकों की मलिका के खिलाफ बगावत की दास्तान बड़ी बेशर्मी से छिपायी है। उन कलंककथाओं का साक्षी इतिहास भले ही न हो लेकिन ब्रितानी संसद की कार्यवाहियों, संसदीय दस्तावेजों, विक्टोरियाई-युग की जीवनियों, संस्मरणों और शंडवेल रचित लॉर्ड क्लाइड के जीवनचरित से उस युग की इस कहानी पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

ईस्ट इंडिया कंपनी की सैन्य-रचना देशी सैनिकों से की जाती थी, लेकिन चूंकि वे भारतीय थे इसलिए उन पर ब्रितानियों द्वारा कभी भरोसा नहीं किया गया। उन फौजों के लिए यूरोपीय सिपाहियों की माँग हमेशा बनी रही। उस माँग की पूर्ति दो स्रोतों से की जाती थी--एक तो नियमित सेना के शाही दस्तों से, जो भारत में तैनात थे किंतु जिन का व्यय ईस्ट इंडिया कंपनी वहन करती थी और जिन की सेवाएँ इच्छानुसार कहीं पर भी अर्जित की जा सकती थीं और दूसरे कंपनी की स्वयं की यूरोपीय रेजीमेंट से इन गोरे सिपाहियों की पूर्ति की जाती थी जिस में पैदल और घुड़सवार सेना के दस्ते थे। ये सैनिक वे थे जिन्हें वेल्स और आयरलैंड से हिंदुस्तान बुलाया गया था। कंपनी के अलावा इन सैनिकों की वफादारी किसी अन्य सत्ता के प्रति नहीं थी। तत्कालीन ब्रितानी सांसदिक नियमों के अनुसार इन सैनिकों की नियुक्ति भरती-अधिकारियों द्वारा ली गयी परीक्षाओं के आधार पर लंदन, डबलिन, यॉर्कशायर, एडिनबरा, कार्क, ब्रिस्टल, न्यूरी और लिवरपूल के दफ्तरों में की जाती थी। हिंदुस्तान में जब गदर भड़का तो ये सैनिक दस्ते वारले में थे। उन्हें हिंदुस्तान बुलाया गया था और

कहा गया था कि विद्रोह के दमन का समस्त श्रेय उन्हें मिलेगा। उन्हें यह भी आश्वासन दिया गया था कि यदि बगावत बड़ी मुस्तैदी से कुचल दी जायेगी तो भारत-सत्ता का हिस्सा उन्हें भी मिलेगा। जब ये आयरिश दस्ते भारत में आये तब ब्रितानी फौजें हिंदुस्तानी सैनिकों के मुकाबले हार रही थीं।

लेकिन विद्रोह के दमन के तत्काल बाद ब्रितानी सत्ता अपने वायदे से मुकर गयी। इन आयरिश सैनिकों से कहा गया कि अब ईस्ट इंडिया कंपनी का विलीनीकरण मलिका विक्टोरिया की हुकूमत में कर दिया गया है।

सैनिकों पर सत्ता-हस्तांतरण के फैसले की विपरीत प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपने अधिकारियों के पास जा कर नयी सेवा-शर्तों का विरोध किया और कहा कि वे अँगरेजों की खिदमत नहीं करना चाहते क्योंकि वे उन आयरिशों के मुकाबले बेईमान और मक्कार होते हैं। शाही सेना के अधिकारियों ने उन के असंतोष को दबाने के चेष्टा की और उन्हें आश्वासन दिया कि उन्हें और अधिक सुविधाएँ मिलेंगी। सैनिकों को दी जानेवाली सुविधाओं की दिशाओं में तेजी से प्रयास किये गये। उन के काम के घंटों को तेजी से कम तो किया ही गया, उन को आकर्षक जीवन यापन का मौका भी दिया गया। शाही सेना के सैनिकों की भाँति उन्हें मछली मारने, छुट्टियों, बागवानी और शिकार की सुविधाएँ प्रदान की गयीं। वे अपने अवकाश की घड़ियों में ब्रितानी सैनिकों के लिए खोले गये दस्तकारी के स्कूल में विभिन्न शिल्पों की शिक्षा भी ग्रहण कर सकते थे और अपनी बनायी वस्तुओं को बेच कर मुनाफा कमा सकते थे। उन की चाकरी के लिए अब नौकर भी मुहैया किये गये। (**ए हिस्ट्री ऑव फर्स्ट मद्रास यूरोपियन रेजीमेंट १८५९**)

जिस रूप में इन आयरिश सैनिकों ने अपने अधिकारों का प्रतिदान माँगा था वह नाजायज नहीं था। भारत में कंपनी की स्थापना और उस के लिए हुए युद्धों संघर्षों में इन सैनिकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। विद्रोह भड़कने के पूर्व उन्हें अनेक युद्धों में भाग लेने का मौका उन्हें मिला था और विजय का श्रेय भी उन्हीं का ही था। १८५७ से बीस वर्ष पूर्व, १८३९-१८४२ के अफगान-युद्ध में, १८४३ की ग्वालियर तथा सिंध की लड़ाइयों में तथा १८४५ और १८४९ के दो-दो सिख युद्धों में उन्होंने शौर्य का प्रदर्शन किया था। यद्यपि ब्रितानी सेना को भी वीर कहा जाता था, तथापि वाटरलू और क्रीमिया के युद्धों को हुए अर्सा गुजर गया था।

मर्सी—बंदरगाह में लंगर डाले 'तस्मानिया'

जब विद्रोह भड़का, कलकत्ता, मद्रास और बंबई के प्रेसीडेंसी-क्षेत्रों में ब्रितानियों के पास न तो कोई पैदल सेना थी और न अश्वारोही दस्ते। सिर्फ बंगाल की रेजीमेंट में घुड़सवार और पैदल सेना के नौ यूरोपीय दस्ते थे जिन की मदद के लिए नियमित देशी सेना के तीन पैदल दस्ते और चार अश्वारोही दस्ते थे। ये सैनिक भी ब्रितानियों को सिंधिया और निजाम ने दिये थे ताकि विद्रोह कुचला जा सके। लेकिन ब्रितानियों और देशी रियासतों द्वारा उन की मदद को दिये गये घुड़सवार और पैदल सैनिकों को दाँतों पसीना आ गया। क्रांति की आग ने सब से पहले इन्हीं सैनिकों को खाया और लगा कि ब्रितानियों को पराजय से कोई भी नहीं बचा सकता। उन की फौज बड़ी तेजी से मैदान छोड़ कर भाग रही थीं। देशी सैनिक और उन के गोरे अफसर चींटियों की मौत मर रहे थे। पराजित होती सेना का मनोबल बनाये रखने के लिए ब्रितानी उच्चाधिकारियों को दस्तों के साथ मौजूद रहना पड़ता था लेकिन उन में से भी कुछ बड़ी दयनीय मौत मारे गये थे और अब उन का भी साहस जवाब दे रहा था।

१८५८ तक इंगलैंड से आ-आकर आयरिश हिंदुस्तान में एकत्र होने लगे और कंपनी की फौज में भरती होते रहे। इन टुकड़ियों का नेतृत्व अँगरेज अधिकारी कर रहे थे। इन सिपाहियों में घुड़सवार और पैदल दोनों थे और खुद कंपनी के
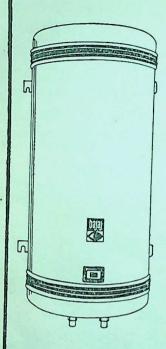
अधिकारियों को पता नहीं था कि नये भरती होनेवाले सैनिकों की कुल तादाद कितनी थी। वैसे, औपचारिक रूप से १८५८ के अंत में गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग को सूचित किया गया था कि उन की संख्या पंद्रह हजार तक पहुँच चुकी है। इन में से अधिकांश सैनिक बंगाल आर्मी में थे। इन्हीं सैनिकों ने जब विद्रोह समाप्त हो जाने के बाद सत्ता का हक माँगा तो ब्रितानी अपनी घृणा दबा नहीं सके। १८६१ में इन सैनिकों के बारे में किये गये एक सर्वेक्षण के आधार पर लिखते हुए कहा गया था—"उन सब फौजियों का आचरण अत्यंत हीन था। यद्यपि वे वयस्क तो थे तथापि उन का मानसिक गठन किशोरों के स्तर से ऊँचा नहीं उठ पाया। न तो उन्हें उचित ढंग से वर्दी पहनने का सलीका आया और न ही वे अंत तक यह जान पाये कि घोड़ों पर ठीक तरह से कैसे बैठा जाता है। उस समय तो अत्यंत हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न होती थी जब हिंदुस्तान-जैसे गरम मुल्क में घोड़े दौड़ाते समय वे फौजी पसीने से लथपथ हो जाते थे और बड़ी बेचैनी से पहलू बदलते थे..." आयरिश द्वेष से ग्रस्त पूर्वाग्रही सर्वेक्षक की यह टिप्पणी उस बहादुर आयरिश कौम को निकम्मा करार देने की वह साजिश थी जिस में ब्रितानियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वे गैरब्रितानी सैनिक नितांत निकृष्ट सिपाही थे और विद्रोह के दमन के बाद उन्होंने मलिका के खिलाफ विद्रोह करने की जो कोशिश की उस की पृष्ठभूमि में उन के अंतर में पल रही हीनता की ग्रंथि दोषी थी।

सैनिकों की इन नवीन टुकड़ियों का निर्माण हो ही पाया था कि १८५८ की गरमियों में नवीन भारत-अधिनियम पारित हो गया और उस ने देश में कंपनी का शासन खत्म कर दिया। जहाँ तक यूरोपीयों का प्रश्न था, उन में जो सैनिक थे उन से कहा गया कि उन की सेवाएँ मलिका को सौंप दी गयी हैं। यह अधिनियम नवंबर आते-आते लागू भी कर दिया गया।

लखनऊ में सब से पहले इस अवज्ञा का स्वरूप स्पष्ट हुआ जहाँ आयरिश सैनिकों ने साफ-साफ कहा कि वे मलिका की सेवाओं के लिए प्रतिबद्ध नहीं हैं। वे जब सेना में भरती हुए थे तो प्रतिज्ञा-पत्र भरवाते समय उन से कहा गया था कि उन से कंपनी-शासन की सेवा ली जायेगी। यदि मलिका की सल्तनत चाहती है कि हम उस की सेवा करें तो पुराना प्रतिज्ञा-पत्र नये सिरे से तैयार किया जाये जिस में स्पष्ट रूप से उन्हें ब्रितानी सैनिकों से वरिष्ठ सिद्ध किया जाये। भारत स्थित ब्रितानी सेनाओं के प्रधान सेनापति लार्ड क्लाइड की पूरी सहानुभूति इन सैनिकों के प्रति थी। उस ने ४ नवंबर, १८५७ को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग को एक पत्र लिखा और उस में कहा, "यह एक विडंबना ही है कि सर्वोच्च सत्ता

द्वारा वीर सैनिकों के अहंकार और गरिमा

को खंडित करने का प्रयास किया गया है। यदि उन का आक्रोश भड़का, जो निश्चय ही दुर्भाग्यजनक होगा, तो पूरी यूरोपीय रेजीमेंट में बगावत हो जायेगी। वे ब्रितानी सैनिकों के मुकाबले वरीयता का दर्जा चाहते हैं और उन की यह माँग न्यायोचित है। उन के अधिकारों की इस माँग से भारत में ब्रितानी सत्ता के नष्ट हो जाने का खतरा पैदा हो सकता है, जो अकल्पनीय है। मुझे लगता है कि यह मामला इसी तरह टाला जा सकता है कि गवर्नर-जनरल तुरंत ही इंगलैंड की सरकार के वैधानिक सलाहकारों से विचार-विमर्श कर कोई निश्चित राय कायम करें।"

लार्ड केनिंग और वैधानिक सलाहकारों के मशविरे आने में विलंब हुआ। केनिंग की सहानुभूति किसी भी रूप में आयरिश सैनिकों के प्रति नहीं थी। वह उन्हें अनुशासनहीन मानता था। उस का व्यक्तिगत मत था कि फौजियों को मलिका की इस तरह अवमानना नहीं करनी चाहिए। क्लाइड गवर्नर-जनरल के रुख से वाकिफ था। राजपरिवार के एक प्रभावशाली सदस्य ड्यूक ऑव कैंब्रिज को उस ने एक पत्र लिखा जिस में समस्त घटनाक्रम पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालते हुए अंत में लिखा, "महामान्य, आप आयरिश सैनिकों को भली-भाँति जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि वे कितना दुराग्रही और अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हैं। वे अपनी पद-प्रतिष्ठा, गरिमा ... मर्यादा पर किसी भी मूल्य पर आ... स्वीकार नहीं कर सकते।"

लंदन स्थित ब्रितानी शासन ने ... हियों के विरुद्ध निर्णय लिया और सै... से कहा गया कि उन्हें मलिका की ... करनी ही होगी, अन्यथा उन्हें निहत्था ... दिया जायेगा। यह निर्णय ८ अप्रैल, १... को घोषित किया गया। शासन ... सैनिकों से हथियार छीन लिये जाने ... निर्णय बड़ा दुर्भाग्यजनक था और इस ... प्रतिक्रिया भी तत्काल हुई। जिस मेरठ ... दो वर्ष पूर्व १८५७ के विद्रोह की चिन... भड़की थी, उसी मेरठ में फिर से वि... भड़क उठा। यह ३ मई, १८५९ की घ... है। लेकिन इस बार की बगावत हिंदु... नियों ने नहीं की थी। यह विद्रोह ... फिरंगियों ने फिरंगियों के खिलाफ कि... था और इस में पूरी रेजीमेंट के सिपा... और तोपची शामिल थे। विद्रोह दबाने के लिए तत्काल दो दस्तों को मथुरा से मेर... भेजे जाने का आदेश दिया गया। सरका... को विश्वस्त सूत्रों से पता लगा कि वा... सल्तनत को नष्ट कर देने का षड्यं... कर रहे हैं और उन का इरादा है कि कोई भी अँगरेज जीवित नहीं बचने पाये। मेरठ के विद्रोही सैनिकों ने इस बीच अपनी योजना की सूचना पंजाब स्थित यूरोपीय रेजीमेंट के सैनिकों को भेजी थी, लेकिन वे पत्र पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के हाथ लग गये। इन सैनिक-अभियानों का ल...

लार्ड केनिंग

दिल्ली फतह करना था और उन में आयरिश फौजियों से कहा गया था कि वे दिल्ली के लालकिले से यूनियन जैक उतार कर आयरलैंड का राष्ट्रीय झंडा फहरा दें। जो भी अँगरेज प्रतिरोध करने की चेष्टा करे, उस की हत्या कर लाश को चाँदनी चौक में टाँग दिया जाये। "सिपाहियों की पीड़ा का मूलभूत कारण यह था कि यद्यपि वे ब्रिटिश प्रजा थे तथापि उन की सेवाएँ मलिका को कंपनी शासन द्वारा वैसे ही सौंप दी गयी थीं जिस तरह युद्ध में संधि होने पर सेनाओं के हथियार परस्पर बदल लिये जाते हैं--कारतूस और बंदूकें — क्योंकि उन का आदान-प्रदान संधियों का नियम होता है। पुरानी सत्ता के नये शासन में तब्दील किये जाने पर यही हुआ और सैनिकों का आदान-प्रदान करते समय इस तथ्य को बिलकुल भुला दिया गया कि वे चेतनशील प्राणी हैं और उन में आत्मा नाम की वस्तु है जो दुःख और अपमान अनुभव कर सकती है। लेकिन उन्हें सिपाही तो दूर, इनसान भी नहीं समझा गया था और पशुओं से भी बुरी स्थिति में, हजारों की तादाद में, दूसरे पक्ष को हस्तांतरित कर दिया गया था।"

**(एम. ई. आर्चडाल, एम. पी. द्वारा हाउस ऑव कामंस में दिये गये भाषण का कुछ अंश : २३ मार्च, १८६१)**

एक दुर्घटना में आहत क्लाइड बदहवास-सा कसौली से शिमला भागा, जहाँ वह बागी-सिपाहियों की टोह लेना चाहता था, लार्ड केनिंग से उस ने अनुरोध किया कि मैं देश की समस्त सेनाओं की कमान अपने हाथ में लेना चाहता हूँ, किंतु उस का अनुरोध ठुकरा दिया गया। इसी बीच लाहौर में बागियों और पश्चिम क्षेत्र के सेनापति लार्ड विंडहैम के बीच खूनी मुठभेड़ें आरंभ हो गयीं, एक सिपाही की गोलियों से विंडहैम की बाँह बुरी तरह आहत हुई लेकिन वह मैदान से भाग खड़ा हुआ। इलाहाबाद में भी अँगरेजों और आयरिश फौजों के बीच मुकाबला हुआ जिस में तीन अँगरेज मारे गये। जनरल सर जॉन इंगलिस, जो कि इस असाधारण स्थिति की खबर पा कर कानपुर से इलाहाबाद भागता चला आया था, इस हमले में मरते-मरते बचा, ग्वालियर में अश्वा-

MAFATLAL GROUP

रोही सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और वे शस्त्रागार में घुस गयीं। उन्होंने ब्रितानी सैनिकों के हथियार लूट लिये और शास-कीय कारावास के दरवाजे खोल कर नौ कैदियों को रिहा कर दिया। मेरठ का रंग सब से अलग था। बैरकों की दीवारें नारों से भर गयी थीं, जिन में लिखा था--'जान कंपनी मर गयी, मलिका विक्टोरिया मुर्दाबाद!'

विद्रोही विजय प्राप्त करने की स्थिति में आ गये थे। वे चुन-चुन कर अँगरेजों को मार रहे थे और शस्त्रागार लूट रहे थे। प्रधान सेनापति का रुख उन के अनु-कूल है, यह उड़ती-उड़ती खबर उन्हें भी मिली थी और इस से उन का मनोबल बढ़ा था। वे यह भी जानते थे कि उन के इस विद्रोह की खौफनाक स्थितियों को देखते हुए ब्रितानी शासन मूक दर्शक नहीं बना रहेगा। वह प्रतिरोध करेगा, यह उन्हें पूरा विश्वास था लेकिन वे उस के पहले ही देश से अँगरेजों का सफाया कर देना चाहते थे। आयरिश सेनाओं का प्रति-रोध करने के लिए ब्रितानी सेनाओं का भारतीय समुद्रतट पर उतरना भी शुरू हो गया था। इतिहास के सर्वाधिक प्रचंड द्वंद्व की आशंका जोर पकड़ रही थी, फिर भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता था कि जिस विद्रोह को सफलतापूर्वक कुच-लने का श्रेय आयरिश सैनिकों को मिला था, उन आयरिश सैनिकों को हिंदुस्तान की धरती पर ब्रितानी फौजें नेस्तनाबूद कर पायेंगी। यह भी आशंका थी कि कहीं ब्रिटेन-स्थित आयरिश फौजें ही बगावत न कर दें।

लॉर्ड केनिंग के लिए वे निर्णय के कठिनतम क्षण थे। अंततः उस ने लॉर्ड क्लाइड के सम्मुख घुटने टेक दिये और सेनाओं की सर्वोच्च कमान उसे सौंप दी। गवर्नर-जनरल ने क्लाइड से यह भी अनुरोध किया कि वह साम्राज्य को विघ-टन से बचाये, क्लाइड ने अनुरोध स्वीकार कर लिया और आयरिश सैनिकों की शिकायतों की जाँच के लिए एक आयोग का गठन किया गया। आयोग का अध्यक्ष क्लाइड ही था और उस की सहायता के लिए अन्य उच्च पदाधिकारियों की एक समिति गठित की गयी थी। पहली बैठक मेरठ में हुई और बागियों को आश्वासन दिया गया कि उन की प्रत्येक शिकायत को सुना जायेगा। स्थिति को काबू में आते देख कर क्लाइड वापस शिमला आ गया। दुर्घटना में जख्मी उस का पैर अभी ठीक नहीं हुआ था। वह मानसिक रूप से भी बुरी तरह से टूट चुका था और उस ने फैसला कर लिया था कि वह त्यागपत्र दे कर स्वदेश लौट जायेगा। विद्रोह के बाद उस ने ब्रितानियों का जो कलुषित और बीभत्स रूप देखा था, वह उस के लिए अप्रत्याशित था। आयोग की बैठकें अन-वरत रूप से सत्ताईस दिनों तक होती रहीं। मेरठ, कानपुर, इलाहाबाद, ग्वालि-यर, लाहौर और दिल्ली में हुई इन बैठकों

में सैनिकों ने एक स्वर से कहा कि वे किसी भी रूप में मलिका के लिए प्रतिबद्ध नहीं हैं। उसी आशय के प्रतिज्ञा-पत्र में उन्होंने हस्ताक्षर किये थे और जब उपर्युक्त प्रतिज्ञा-पत्र कंपनी खत्म हो जाने के बाद स्वभावतः रद्द हो गया है, तब उन से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे ब्रितानी साम्राज्य की भी सेवा करेंगे, वे स्वतंत्र हैं और उन्हें बाध्य नहीं किया जा सकता।

आयोग ने प्रत्येक सैनिक को समझाने की कोशिश की, उस ने कहा कि प्रतिज्ञा के दो अर्थ निकलते थे– एक तो यह कि वे कंपनी के खिदमतगार थे और दूसरे जिस साम्राज्य की प्रजा ईस्ट इंडिया कंपनी थी उस मलिका के प्रति भी उन की वफा-दारी उस प्रतिज्ञा के माध्यम से स्वयं-सिद्ध होती थी। लेकिन सैनिकों ने यह तर्क मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि उन को गुमराह नहीं किया जा सकता।

६ मई, १८५९ को केनिंग ने फैसला कर लिया था कि सैनिकों को वापस स्वदेश भेज दिया जाये, लेकिन वह जाँच-आयोग के निष्कर्ष देखना चाहता था। आयोग ने भी अंततः वही प्रतिवेदन दिया। केनिंग ने कहा कि सैनिकों को सेवामुक्त किया जाता है और उन्हें इंगलैंड वापस भेजने की निःशुल्क सुविधा भी प्रदान की जाती है। गवर्नर-जनरल के इस निर्णय का बागी सिपाहियों ने हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने इंगलैंड लौटने की तैयारियाँ भी तेजी से आरंभ कर दीं। बंगाल [illegible] सैनिक टुकड़ी के ६,२०७ सैनिकों ने [illegible] सेनापति से कहा कि वे सब से पहले [illegible] जाना चाहते हैं। प्रेसीडेंटी क्षेत्रों (मद्रास, कलकत्ता और बंबई) के दस हजार सैनिकों को आदेश दिया गया कि वे तैयार रहें।

वापसी का उत्साह जिस रूप में [illegible] उठा था उस ने अधिकारियों के लिए [illegible] बड़ी समस्या उत्पन्न कर दी थी कि इन सैनिकों की यात्रा-व्यवस्था किस तरह की जाये। अंततः फैसला किया गया कि छावनी के निकटतम बंदरगाह में जहाज लगाये जायेंगे और वहीं से उन की यात्रा शुरू होगी। सैनिकों की देखभाल के लिए हर सौ सैनिकों पर दो अधिकारी तैनात किये गये जिन को भारत-वापसी के लिए टिकट दिया गया था और यह भी कहा गया था कि वे चाहें तो कुछ दिन इंगलैंड में भी रह सकते हैं।

और फिर ग्वालियर से एक मरणांतक यात्रा की शुरुआत हुई। १८५९ की बरसात में वे अगस्त के श्यामल-काले दिन थे! पाँच सौ से अधिक सैनिकों से कहा गया कि वे कलकत्ता के लिए कूच करें, यह तमाम सफर पैदल ही तय किया गया। मंजिल लगभग एक हजार मील दूर थी और पैदल मार्च करते हुए अधिकांश सैनिकों के पाँव छालों से भर गये। यह रास्ता २१ अगस्त से २२ अक्तूबर तक तय किया गया। पांड ने अपने यात्रा-वर्णन में लिखा है कि भरी बरसात में सैनिकों ने ग्वालियर

छोड़ा था और आगरा आते-आते उन में से सत्ताईस सैनिकों की मृत्यु हो गयी। उन्हें हैजा हो गया था। इन सैनिकों को अधिकांश रास्ते घुटनों-घुटनों तक कीचड़ में चलना पड़ा और कभी-कभी ऐसे भी दिन आये कि गले तक पानी में डूब कर उन्हें तीन-तीन नाले पार करने पड़े। इसी बीच सैनिकों को पेचिश हो गयी और चिंसुरा आते-आते उन में से दस और सैनिकों की मृत्यु हो गयी।

लेकिन चिंसुरा में तो जैसे तमाम फौजी छावनियों की भीड़ फट पड़ी थी, उस छोटे से और निर्जन बंदरगाह में लगभग दस हजार सैनिकों का मेला लगा हुआ था और प्रत्येक वापसी के लिए आतुर था। महासागर सामने लहरा रहा था मगर उन जहाजों का कोई पता नहीं था जिन के ऊपर इस यात्रा की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। सैनिकों को जहाज का इंतजार करना था और इस प्रतीक्षा की कोई मुद्दत नहीं बतलायी गयी थी। फिर चिंसुरा में अकाल पड़ना शुरू हो गया। मिलिटरी को भोजन प्रदान करनेवाली कैंटीन का ठेकेदार भीड़ से घबरा कर भाग गया था और भूखे सैनिकों ने दो दिन तक कैंटीन और गोदाम की जी भर कर लूटमार की थी। चिंसुरा के मुफस्सिल इलाकों में वे अपनी वर्दियाँ और कंबल बेच रहे थे। देहातों में और जंगल से लगी हुई रिहायशी बस्तियों में उन्हें जो कुछ भी खाद्य-अखाद्य मिल रहा था, उसे खा-खा कर वे अपने पेट की आग बुझा रहे थे।

धीरे-धीरे इन सैनिकों की शिकायतें उच्चाधिकारियों तक पहुँचनी आरंभ हुईं। कलकत्ता के परेशान नागरिकों ने जब यह देखा कि उन के हमले शहर की संभ्रांत बस्तियों, घरों और औरतों पर हो रहे हैं तो उन्होंने गवर्नर-जनरल के सामने तमाम हालत बयान किये। केनिंग ने अधिकारियों को आदेश दिया कि फौजियों को अनुशासन में रखा जाये लेकिन केनिंग के हुक्म को मानने की चिंता किसे थी! अनुशासनहीन फौजियों को चूँकि निर्वासित किया ही जा रहा था, अधिकारीगण उस दिशा में अधिक मुस्तैद नहीं थे। सोलहवें रोज चिंसुरा के तट पर तीन जहाज लगे। वे थे 'क्वीन ऑव द सीज', 'द मैगीमिलर' और 'तस्मानिया'। 'तस्मानिया' रंगून से आया था और उस के बारे में कहा गया था कि एक हजार मुसाफिरों को ढोने की क्षमता रखता है। वैसे, आम तौर पर जो जहाज रक्षा-साधनों के रूप में प्रयोग होते थे, उन की सामर्थ्य चार सौ से अधिक सैनिक ले जाने की नहीं होती थी; फिर भी चूँकि जहाज के कप्तान ने अधिकारियों को आश्वासन दे रखा था अतः उस के कथन पर अविश्वास नहीं किया गया। वैसे भी, 'तस्मानिया' को भाड़े पर ले कर सरकार का फायदा ही था। आम तौर पर चिंसुरा से लिवरपूल तक जाने के लिए अन्य जहाजी कंपनियाँ २१० रुपये प्रति मुसाफिर किराया वसूल करती थीं जब

कि 'तस्मानिया' केवल १६४ रुपये ८ आना प्रति यात्री ले रहा था।

मुख्य समस्या जहाज के अन्नागार की थी। कलकत्ता में, जहाँ प्रत्येक वस्तु सुलभ थी, किसी भी जहाज को मुसाफिरों के भोजन के संबंध में परेशान नहीं होना पड़ता था लेकिन सवाल यह था कि लगातार चार महीनों के लिए १,००० मनुष्यों के निमित्त खाद्य कहाँ से जुटाया जाये। तभी परेशान कप्तान को फोर्ट विलियम्स के अधिकारियों ने सूचना दी कि वे उस समस्या को हल कर सकते हैं यदि किले में सुरक्षित पड़ी खाद्य-सामग्री को कप्तान अपने अधिकार में ले ले। वस्तुस्थिति यह थी कि फोर्ट विलियम्स के गोदामों में रखा अनाज सड़ गया था और उस में कीड़े नजर आने लगे थे। लापरवाही के अभियोग से मुक्त होने के लिए वे अधिकारी वह निकृष्ट अन्न 'तस्मानिया' को प्रदान कर सामयिक सहायता और परोपकार का श्रेय लेना चाहते थे। फौजी अधिकारियों की मुस्तैदी से तत्काल एक समिति गठित की गयी। जिस ने रिपोर्ट दी कि उस अनाज का उपयोग खाने के लिए
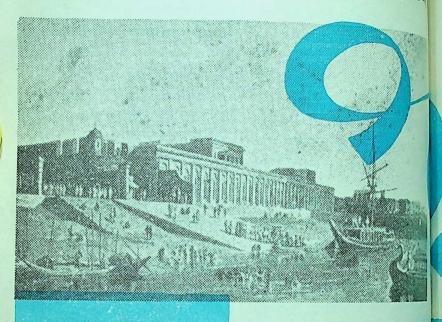
कलकत्ता का पुराना किला
(उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में)

किया जा सकता है। अनाज के बोरे तत्काल जहाज पर लाद दिये गये किंतु जब पांड ने देखा कि वह अनाज बुरी तरह से सड़ गया है, उस ने तत्काल पाँच सौ बोरे गेहूँ और चावल समुद्र में फिंकवा दिया।

१० नवंबर, १८५९ को 'तस्मानिया' चिंसुरा से लिवरपूल के लिए रवाना हुआ। इतने मुसाफिरों की देखरेख के लिए एक ही डॉक्टर की व्यवस्था की गयी थी। भारतीय अधिकारियों को विश्वास था कि समुद्री जलवायु से यात्री स्वस्थ रहेंगे इसलिए पर्याप्त औषधियों और चिकित्सकों की व्यवस्था नहीं की गयी थी। 'तस्मानिया' में न तो कोई अस्पताल था और न ही दवाओं का भंडार। आपात स्थिति में सैनिकों को शीत से बचाने के लिए कंबलों का भी इंतजाम नहीं किया गया था। सफर के चौथे दिन ही फोर्ट विलियम्स के अधिकारियों द्वारा उदारतापूर्वक प्रदान किये गये मुरब्बों, बिसकुटों और डबलरोटियों में से निकल-निकल कर सफेद रंग के कीटाणु अन्नागार में भर गये। पांड ने दस हजार पौंड बिसकुट और डबलरोटियाँ तथा उतना ही मुरब्बा पानी में फिंकवा दिया। इसी बीच सैनिकों ने बतलाया कि पीने के लिए जो बीयर उन्हें दी गयी है, उस में भी सिर्फ पानी है—

'फोर्ट विलियम्स' का विहंगम दृश्य
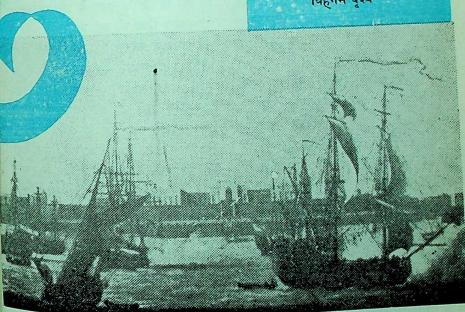
खारा और बासी।



२२ जनवरी, १८६० को 'तस्मानिया' जब सेंट हेलेना में रुका, पांड ने अन्नागार भरने का विचार किया। लेकिन तब तक हालत काबू से बाहर जा चुकी थी। इतने लंबे सफर में जिंदा रहने के लिए भूखे सैनिकों ने खलासियों की निगाह बचा कर सड़ी हुई डबलरोटियाँ अपने पास छिपा ली थीं। उन के सेवन का दुष्परिणाम भी उन्हें बुरी तरह से भोगना पड़ा। उन्हें भयंकर पेचिश हो गयी और जो इस से बच गये उन्होंने शिकायत की कि उन का शरीर फुंसियों, चकत्तों और खुजली से भर गया है। तभी जहाज में हैजा भी फैलना शुरू हो गया। सेंट हेलेना के अधिकारियों की तत्परता और कुशलता से यद्यपि हैजे पर काबू तो पा लिया गया तथापि सैनिक बुरी तरह कमजोर हो गये। पांड विचलित हो उठा था। उस ने सेंट हेलेना के अनुविभागीय सुरक्षा अधिकारी लेफ्टिनेंट बीटि से आग्रह किया कि वह अधिक नहीं तो कम-से-कम एक रोज के लिए बीमार मुसाफिरों के लिए ताजे गोश्त का इंतजाम कर दे, पर बीटि ने जवाब दिया कि यह नामुमकिन है क्योंकि इस के बदले द्वीप के सब सैनिक भूखे रह जायेंगे। वे आयरिशों की कोई मदद नहीं करना चाहते हैं और उन की हार्दिक आकांक्षा यह है कि साम्राज्यद्वेषी आयरलैंडवासियों की जहाज में ही मौत हो।

मानवीयता से प्रेरित हो पांड ने तट पर कुछ ताजी सब्जियाँ और खरीदने चाहे ताकि गंभीर रूप से मरीजों को ताजा भोजन दिया जा सके। उसे कुछ गोभियाँ ही मिल पायीं। एक-एक गोभी के लिए उस से चार-चार रुपये वसूल किये गये। आम दिनों चार रुपयों में २०० गोभियाँ खरीदी जा सकती थीं। २६ जनवरी को 'तस्मानिया' सेंट हेलेना से रवाना हुआ। और कप्तान ने महसूस किया कि उस ने अन्नागार न भर कर कितनी गलती की है। अन्न दिन-ब-दिन कम होता जा रहा था। जो अपेक्षाकृत स्वस्थ और सबल थे उन को दिन में एक बार भोजन दिया जा रहा था। मुसाफिरों में ५०० से अधिक सैनिक पेचिश से ग्रस्त थे और अशक्तता के कारण हिल भी नहीं सकते थे। कंबलों की कमी के कारण एक बिस्तर पर दो-दो रोगियों को सुलाने की व्यवस्था की गयी। यूरोप की सर्दी तब अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी और समुद्र में बर्फीले तूफान आने भी शुरू हो गये थे। इस विभीषिका ने 'तस्मानिया' के मुसाफिरों की भरपूर बलि ली। तीन दिन में पचास मौतें हुईं, इन में से अधिकांश शीत के शिकार हुए थे।

१५ मार्च, १८६० को दम तोड़ते और मौत से जूझते यात्रियों को ले कर जब 'तस्मानिया' लिवरपूल पहुँचा तो वहाँ के अधिकारी चौकन्ने हो गये। संक्रामक रोगों की आशंका से त्रस्त बंदरगाह के

विलियम रथवोन

अधिकारियों ने जहाज को तट पर रुकने की अनुमति प्रदान करने से इनकार कर दिया। उन्होंने लिवरपूल स्थित कौंसिल ऑव इंडिया के एजेंट विलियम रथवोन को समस्त स्थिति से अवगत कराया। रथवोन ने अधिकारियों से अनुरोध किया कि मैं समस्त यात्रियों का उत्तरदायित्व लेता हूँ क्योंकि वे भारत से आये हैं, फिर भी आप उदारतापूर्वक उन का इलाज होने दें और इस संबंध में होने वाले व्यय की चिंता न करें। बंदरगाह के अधिकारियों ने रथवोन का निवेदन स्वीकार कर लिया। आपात्कालीन एक अस्पताल तैयार किया गया। यह जहाजियों का प्रशिक्षण विद्यालय था जहाँ बड़ी तत्परता के साथ रोगियों के लिए पलंगों का प्रबंध किया गया। रथवोन ने यात्रियों के लिए दवाओं और भोजन की व्यवस्था की और फिर चार महीने बाद, पहली बार मुसाफिरों को स्वादिष्ट भोजन मिल सका। जो यात्री जहाज से उतरने लायक थे, उन्हें तत्काल नीचे लाया गया लेकिन बड़ी संख्या उन मुसाफिरों की थी जो बुरी तरह से लाचार थे। उन के लिए डोलियाँ लायी गयीं। १०९ बीमार यात्रियों के लिए केवल साठ कंबलों का इंतजाम हो पाया। सुरक्षा की दृष्टि से यद्यपि 'तस्मानिया' के लिवरपूल आने के समाचार को गुप्त रखा गया था फिर भी बड़ी संख्या में जनता तट पर एकत्र हो गयी जिस ने तेरह डोलियों में ले जाये जा रहे अभागे यात्रियों के जुलूस को चार घंटे तक देखा। रथवोन की तत्परता और लिवरपूल के गवर्नर कार की सदाशयता से यद्यपि मरीजों के इलाज और तीमारदारी में डॉक्टरों ने कोई उपाय उठा नहीं रखे, तथापि दो सैनिकों ने जिन के कपड़े तार-तार हो चुके थे, डोली में बैठते ही दम तोड़ दिया। एक सैनिक ने अस्पताल को जाते वक्त अंतिम साँसें लीं। पाँच सैनिक उसी रात मरे तथा दूसरे दिन तीन मौतें और हुईं। कार ने इस संबंध में अपनी डायरी में लिखा, "मौतें बड़ी बीभत्स थीं...जहाँ तक अनुमान है, हर तेरह सैनिकों में से एक मृत्यु की भेंट चढ़ा।"

'तस्मानिया कांड' की गूँज संसद में भी

शक्ति-सम्पन्न बनाइ

**इन फ़ायदों की तुलना किसी भी दुसरी व्यायामपद्धति से कर देखिए!**

पुरुष की ईर्ष्या और नारी का प्यार पानवाले शरीर का संवर्धन करने की वेगवान पद्धति—दिन भर में सिर्फ ५ मिनट दीजिए! न 'वेट' न बारबेल, न लम्बी उबानेवाली गणना। एकदम आसान; तुरन्त! कूपन भरकर भेजते ही सचित्र मुफ़्त पुस्तिका हासिल कीजिए जिसमें इस पद्धति की हर खूबी चित्रों में दिखाई गई है

**विज्ञान-सिद्ध समानुपाती बलवर्द्धन सिद्धान्त की देन—**

इसका रहस्य! बुलवर्कर २ नामक एक मौलिक नवीनतम आविष्कार जो ओलिम्पिक खिलाड़ियों की तालीम के लिए काम में लाया जा चुका है। आपकी देखी हर व्यायाम-पद्धति से भिन्न। समान अनुपात में सर्वत्र समान बलवर्धन के सिद्धान्तानुसार बनाया गया व्यायाम-साधन, वज़न में हल्का, कहीं भी ले जाने योग्य और एकदम सस्ता! व्यायामशाला के बराबर ईजाद किए गए तरीके से क़दम-दर-क़दम चलिए और आसानी से अपने शरीर को शक्तिसम्पन्न बनाइए। जितना समय दाढ़ी बनाने के लिए लगता है, उससे भी कम समय में!

**कैसे? हमारी मुफ़्त पुस्तिका में देखिए-बगैर किसी बन्धन या देयता के—**

क्या आप अपने शरीर के किसी अंग की मांसपेशियों को चुनकर उन्हें तत्काल ज़बरदस्त ताकत और छलकती स्फूर्ति देना नहीं चाहते?—वह चीज़ जिसका आप सपना देखा किए? देर मत कीजिए: फौरन तफ़सील और तसवीरवाली मुफ़्त पुस्तिका मँगवाइए।

**संसार भर में प्रशंसित**

बुलवर्कर का तरीका विश्वविख्यात क्रान्तिकारी समानु… समबली सिद्धान्त की देन है जिसकी तारीफ की है ओलि… सर्वजेताओं ने, विश्व के व्यावसायिक खिलाड़ियों, प्रशि… और खेलकूद के डॉक्टरों ने। 'रीडर्स डाइजेस्ट', 'डेर… और 'लुक' और असंख्य वैज्ञानिक तथा शरीर-विज्ञान स… पत्रिकाओं में बहुचर्चित बुलवर्कर मांसपेशियों को नया… देनेवाला सबसे नवीनतम आविष्कार है… **से चौगुना तेजी से काम करता है।**

©Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Near Opera House, Bombay 4.

**मुफ़्त**

कृपया मुझे बुलवर्कर-२ के विषय में पूरी तफसीलें देनेवाली मुफ़्त सचित्र पुस्तिका भेजिए। मुझपर कोई बन्धन और देयता न होगी।

08H-R KD-5

नाम ........................................

पता ........................................ उम्र

**बुलवर्कर सर्विस, १५ मैथ्यू रोड, ऑपेरा हाउस के पास, बम्बई-४**

ईस्ट इंडिया कंपनी का पहला गवर्नर सर टॉमस स्मिथ

हुई जहाँ शासन को आयरिश सैनिकों के प्रति उस के अमानवीय व्यवहार के लिए आड़े हाथों लिया गया। संबंधित मंत्रियों ने विस्तार में तो कुछ भी नहीं बताया किंतु यह अवश्य स्वीकार किया कि चिंसुरा से लिवरपूल आते समय कुछ सैनिकों की मृत्यु अवश्य हो गयी। मृतक पहले से बीमार थे। खाद्यान्न सड़ा हुआ नहीं था जैसा कि विरोधियों ने आरोप लगाया है। सरकार ने अप्रत्यक्ष रूप से सारी जिम्मेदारी कलकत्ता स्थित उन अधिकारियों पर मढ़ दी, जो फोर्ट विलियम्स के अन्नागार के प्रभारी थे।

एक जाँच समिति का निर्माण भी संसद में किया गया जिस ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, "यद्यपि संभव तो नहीं है, तथापि प्रशासन को सैनिकों और उन के लिए होने वाले इंतजाम की निरीक्षण-पद्धति में सुधार करना चाहिए। भविष्य में यदि सैनिकों को उत्तम खाद्य और मजबूत वर्दियाँ दी जायें तो वे साम्राज्य की सेवा और अधिक भक्ति तथा निष्ठा के साथ कर सकेंगे। जब कभी भी, भारत-जैसे उष्ण जलवायु वाले देश से सुदूर यात्रा की व्यवस्था की जाये, यह देख लिया जाना चाहिए कि सैनिकों की देखभाल उचित तरीके से हो रही है ताकि 'तस्मानिया कांड' की पुनरावृत्ति न हो।"

जाँच कमेटी के निष्कर्षों के उपरांत भी 'तस्मानिया' की स्मृतियाँ धूमिल नहीं हो पायीं। संबंधित राजनयिकों और मंत्रियों से उस संबंध में संसद-सदस्यों का पत्राचार चलता रहा। २३ जुलाई, १८६१ को यह मामला फिर से ब्रितानी संसद में उठा और प्रतिरक्षा सचिव सर चार्ल्सवुड से कामंस सभा के सदस्य एम. ई. आर्चडाल ने पत्र लिख कर पूछा कि 'तस्मानिया कांड' पर जिस जाँच का आश्वासन ब्रितानी संसद को दिया गया था, उस संबंध में आगे क्या कार्यवाही की गयी। इस संबंध में सर चार्ल्सवुड ने उत्तर दिया कि जाँच की कार्यवाही आरंभ हो कर समाप्त भी हो गयी है। कलकत्ता के

जिन कुछ भारतीय अधिकारियों को दोषी माना गया था, उन के विरुद्ध आरोप-पत्र तैयार कर लिये गये हैं, लेकिन इस मामले में शासन की विवशता को भी समझा जाये। जाँच-आयोग ने दोषी अधिकारियों को दंड देने की सिफारिश की है तथा उस दिशा में क्या निश्चित कदम उठाया गया, इस की जानकारी देशहित में नहीं दी जा सकती।

इस के बाद फिर कभी 'तस्मानिया' की चर्चा नहीं उठी। उस का नाम भी अखबारों में नहीं छपा। जिस खामोशी के साथ पूरे कांड पर परदा डाल दिया गया था, उस से ब्रितानी शासन की कुटिल मनोवृत्ति साफ झलकती थी। चार्ल्सवुड की टिप्पणियों से स्पष्ट जाहिर था कि शासन आयरिश और ब्रितानियों के मध्य उभरे द्वेष के लिए अँगरेजों को कदापि दोषी नहीं मानती थी। संसद और जनता को यद्यपि दोषी अधिकारियों को दंडित किये जाने की खबर तो दी गयी लेकिन यह पता नहीं चल सका कि दंड का स्वरूप क्या था। ब्रितानी इतिहास के इस अनाम और अनजान कांड का विवरण विस्तृत रूप से न तो कोई जान पाया और न उस अभागी क्रांति का उल्लेख ही इति[illegible] में हो पाया जिस ने ब्रितानी सत्ता को भा[illegible] में समूल नष्ट करने का प्रयास किया [illegible]

कोई नहीं जानता कि वे कौन सिपा[illegible] थे जो भारत में अँगरेजी राज्य की स्था[illegible] के लिए भारतीयों से संघर्ष करते हु[illegible] परायी धरती पर खत्म हो गये। [illegible] वे अँगरेज होते तो संभवतया उन की [illegible] पर कोई आँसू भी बहता। वे ब्रितानी [illegible] के बीजारोपण के लिए इस उपमहाद्वी[illegible] में लड़े थे, फिर भी यद्यपि उन से कहा ग[illegible] था कि वे ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए भार[illegible] में युद्ध कर रहे हैं। ब्रितानी सत्ता ने उ[illegible] की इस अभूतपूर्व सेवा के लिए उन्हें पुरस्का[illegible] भी 'अविस्मरणीय' दिया—चार माह [illegible] मरणांतक, पीड़ादायक और दुरूह जहाजी सफर, जिस में वे एक-एक टुकड़े के लि[illegible] तरसते हुए मर गये। वे बहादुर सिपाही पशुवत जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे—स्वदेश से दूर भारत में उन्होंने अपने पशुओं-जैसे हस्तांतरण का प्रतिरोध किया था।

(हुकुमचन्द नारद रोड, जबलपुर)

---

**एक बार शास्त्रीजी लंदन से भारत लौटते समय कराची के हवाईअड्डे पर रुके। तत्कालीन पाकिस्तानी राष्ट्रपति अयूब खाँ उन से मिलने गये। बातचीत में अयूब खाँ ने कहा, "शास्त्रीजी, आप से बातें करने के लिए मुझे झुकना पड़ता है।"**

**"बात यह है अयूब साहब कि मैं सिर ऊँचा करके बात करता हूँ और आप को सिर झुका कर बात करने की आदत है," शास्त्रीजी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।**

# पुस्तक वीथी

## कालजयी

कवि—मुनिश्री विनयकुमार 'आलोक';
प्रकाशक—आत्माराम एंड संस, दिल्ली-६;
पृष्ठ—१०५; मूल्य—४.००

प्रस्तुत कृति में नयी कविता की शैली में लिखी १०५ लघु कविताएँ संकलित हैं। इन कविताओं को दिनकरजी ने भाव और विचार से परिपूर्ण गद्य कहा है। जहाँ भाव प्रधान है वहाँ कविता में लालित्य की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक है और जहाँ विचार प्रधान है, वहाँ गद्य का प्रभाव माना जायेगा। कविताओं के शीर्षक कहीं भाव या विचार के सूचक हैं और कहीं कवि के अंतर्मन में व्याप्त किसी ध्येय का संकेत देते हैं।

मैं कुछ कविताओं के उदाहरण दे कर यह बताना चाहता हूँ कि मुनिश्री के मन में एक विचार उभरा और वह लिपिबद्ध किया गया; कविता बनी या नहीं—मैं नहीं कह सकता, किंतु चिंतन की सामग्री उस में है, यह निर्विवाद है। जैसे—

**अहंकार का दर्पण ही ऐसा है**
**जिस में प्रतिबिंब**
**दीर्घाकार होता है**
**लघुतर नहीं**

इस सूत्रात्मक विचार को जिस तरह रखा गया है वह अपनी अभिव्यक्ति में पूर्णतया सक्षम है। कविता का सौंदर्य उस में कितना है, यह पृथक बात है।

'बंध-कपाट' शीर्षक लघु कविता में भाग्यवादी, आशावादी और निराशावादी—कर्म की जिस रूप में प्रेरणा दी गयी है, वह विचार को उत्तेजित किये बिना नहीं रहती। इसी प्रकार 'क्या ?' शीर्षक कविता में जीवन, यौवन और मृत्यु की परिभाषा करते समय मुनिश्री ने सूत्रात्मक शैली को स्वीकार किया है।

'विद्रोह' कविता भी सशक्त है। लगता है जीवन-विद्रोह का स्वरूप निरूपण करते

हुए आज के युग-धर्म को कवि ने ज्यों का त्यों रख दिया है। कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति है 'अपर्याप्त' में--

**अतृप्ति की आग**
**हर कहीं लगी है**
**संतोष की दमकलें**
**पर्याप्त नहीं**
**आग बेकाबू हो चली है**

यह मनुष्य की वर्तमान स्थिति का सजीव चित्रण है, और ऐसा ही स्वरूप देखने को मिलता है 'कागज की नावें' में। देश के नव-निर्माण की योजनाओं की विफलता का यह यथार्थवादी लेखा-जोखा है। आज के युग में मिथ्या प्रदर्शन की बढ़ती हुई भावना को 'हर कहीं' शीर्षक कविता में बड़े सहज शब्दों में व्यक्त किया है।

आज नैराश्य, कुंठा, पीड़ा, अनास्था का स्वर मुखर होता जा रहा है। उस पर कवि की निगाह गयी है और उस का समाधान खोजने की दृष्टि इन कविताओं में है। सच्चे जनमत की चर्चा भी आज के संघर्ष के बीच फूटी है और उस का स्वरूप निर्धारित किया गया है।

संक्षेप में, 'कालजयी' की लघु गद्य-पद्य रचनाएँ कविता की कसौटी पर कितनी खरी उतरती हैं यह मैं पाठक की संवेदना और कलात्मक अनुभूति पर छोड़ता हूँ। लेकिन विचार और भाव की झाँकी और झलक इन में आद्यांत हैं और कहीं-कहीं तो बड़ी प्रखरता के साथ सोचने पर विवश करती है। यही इन रचनाओं की सफलता है। आज की नयी कवि[illegible] जो स्वरूप धारण किया है वह इन में [illegible] है और कवि के रूप में मुनिश्री आधु[illegible] बोध से परिचित हैं, किंतु शाश्वत सत्य [illegible] अन्वेषण उन को अभिप्रेत है।

--डॉ. विजयेन्द्र स्ना[illegible]
५/३ राणाप्रताप बाग, दिल्ली[illegible]

## आकृतियाँ और दाय[illegible]

कहानीकार--ब्रह्मदेव; प्रकाशक--सामयिक प्रकाशन, ३५४३ जटवा[illegible] दरियागंज, दिल्ली-६; पृष्ठ--१६[illegible] मूल्य--५.५०

इस संग्रह की कहानियाँ आज [illegible] कहानियों की भीड़ से भिन्न लग[illegible] हैं। भयावह क्रूरता, लिप्साजन्य असंत[illegible] के बीच लेखक को ऐसे लोग भी दिखा[illegible] पड़े हैं, जो दूसरों के प्रति सदय और संवेदन-शील हैं। जिन में आज की दुनिया की ए[illegible] हलकी-सी बेचैनी, संदेह और निर्मम[illegible] उभरती तो है लेकिन वे इन से पराभू[illegible] नहीं होते। वे या तो अपनी कमजोरियों को जीत लेते हैं या उन कमजोरियों में स्वयं को बिता चुकने के बाद पश्चाताप की आग से तपते हैं। जैसे 'स्मृति से जुड़ी:' मन से बँधी', 'नई माँ' तथा 'पति का ब्याह'।

'नयी माँ' में एक वेश्या को संभ्रांत परिवार का युवक अपनी पत्नी बनाता है। 'पति का ब्याह' में निःसंतान पति लोगों के उकसाने पर भी दूसरी शादी नहीं

करता और बड़ी नाटकीयता से नयी पत्नी के स्थान पर एक अनाथ बालिका को अपनी पुत्री बना कर ले आता है। मानवीय संवेदना का यही स्वर इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में है। यहाँ तक कि 'अतृप्त आदम' (जो अपेक्षाकृत अधिक सघन प्रभाव की कहानी है) में भी पश्चाताप का स्वर बन कर यही सद्भावना विधमान हो उठती है। मानवीय संवेदना आज की कहानियों में लुप्त होती जा रही है, अतः प्रस्तुत संग्रह की कहानियाँ एक स्तर पर सुखद प्रतीत होती हैं।

इन सब विशेषताओं के बावजूद लगभग ये सभी कहानियाँ, कहानी-कला की दृष्टि से अपना स्थान बना पाने में असमर्थ हैं। क्योंकि मानवीय संवेदना का स्वर यथार्थ की सघनता एवं संश्लिष्टता में से नहीं उपजा है।

इन कहानियों में मुख्य स्वर नर-नारी संबंधों का है, लेकिन नर-नारी के संबंधों में उभरी अनेक ग्रंथियों, सूक्ष्म जटिलताओं और समस्याओं का अहसास ये नहीं करा पातीं। वेश्याजीवन से संबंधित कहानी 'नयी माँ' की आदर्शमूलकता प्रेमचंद के युग की याद दिलाती है। यही याद इन संग्रह की अन्य कहानियों को पढ़ने वक्त भी ताजा हो उठती है।

'गुलाबी लिफाफों की महक' निहायत बचकानी रचना है। 'तलाक की रेखा', 'पुरानी नुस्खा' आदि कहानियाँ आधुनिक जीवन के किसी प्रश्न को छूती हुई भी ऊपर से गुजर जाती हैं। वे यथार्थ की गहनता का अहसास कराने के बदले भावुकता के स्तर पर मानवीय-सद्भावना का आभास देती हैं। यह भावुकता कहानी कहने के ढंग को भी प्रभावित करती रहती है।

इस संग्रह में 'अतृप्त आदम' और 'टूटा मन : जोड़ते क्षण' ही दो कहानियाँ ऐसी हैं, जो अपनी प्रक्रिया और प्रभाव में कुछ सघन एवं संश्लिष्ट हैं।

**—डॉ. रामदरश मिश्र,**
**ई ४/११ मॉडल टाउन, दिल्ली—९**

## लँगड़ी किरन

**कवि—डॉ. पार्थसारथि डबराल; प्रकाशक—प्रतिभा प्रकाशन, देहरादून; पृष्ठ—१००, मूल्य—४.००**

आस्थाओं और विश्वासों के कवि हैं डॉ. डबराल। स्वाभिमान की गरिमा को प्रतिष्ठित करने वाले गीतों की रचना उन्होंने की है। इस प्रकार के कई गीत इस संकलन में मौजूद हैं जो उन की प्रीतपगी आस्था की घोषणा सहज ही कर लेते हैं, जैसे, 'दुःख', 'फूलों का स्वागत ठुकराया', 'संचय करने से', 'इतना सह लेने पर भी', 'बैठे-बैठे बात आ गई', 'भादों बहुत बुरा मानेगा' आदि। प्रेम की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ इस संकलन में कुछ राष्ट्रीय रचनाएँ भी हैं— 'युद्ध निमंत्रण'

एवं 'भारत माता' । 'युद्ध निमंत्रण' तो सन १९६२ के चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट में उद्बोधन की कविता है, मगर 'भारतमाता' अपनी व्यंग्यात्मकता के कारण उल्लेखनीय हो गयी है ।

उपर्युक्त व्यंग्य के साथ-साथ कुछ और कविताएँ व्यंग्यात्मक हैं, जैसे—'चाँद का अवमूल्यन', 'दो बैल : एक ट्रैक्टर' । 'चाँद का अवमूल्यन' का व्यंग्य मानव की अनंत संभावनाओं का उपहास करता हुआ-सा लगता है । मनुष्य के चाँद पर पहुँच जाने पर जब कवि कहता है—**'कल्पना के अनशन का आज ही है पहला दिन'** तो ऐसा लगता है कि कवि की कल्पना की सीमा मात्र चाँद तक परिसीमित थी । समूची मानवीय उपलब्धियों और वैज्ञानिक सफलताओं को नजरअंदाज करके मात्र चाँद और चाँदनी के मोह-भंग को उजागर करने की कोशिश और फिर उसे इतनी गंभीरता से लेना निश्चय ही आज की कविता का लक्षण नहीं है ।

इसी प्रकार 'दो बैल : एक ट्रैक्टर' कविता में भी कवि ने एक कथा गढ़ कर किसान के बी.एस-सी. (एग्रीकल्चर) पास पुत्र से यह कहलाया कि इस युग में ट्रैक्टर ही सर्वेसर्वा है, बैलों का महत्त्व नगण्य है जो पिता को बहुत खलता है और पिता कह देता है कि मैं इन बैलों का अपमान सहन नहीं कर सकता । इस घटना को कवि ने युग सत्य के रूप में प्रस्तुत किया है जब कि यह युग सत्य नहीं है। वास्तव में इस कविता में कवि कुछ अधिक दार्शनिक हो गया है, मगर यह दर्शन कहीं भी तो नहीं ले जाता । कवि की ये दोनों कविताएँ मुझे व्यंग्य का गलत प्रयोग प्रतीत हुईं । इन के मुकाबले 'नरभक्षी प्रश्नचिह्न' कविता विडंबना को उभारने वाली अच्छी कविता है—

**जब कभी मैं स्वतंत्रता की घोषणा करता हूँ**
**तो संसार हँसे न हँसे**
**मेरी परछाई मुझ पर**
**खिलखिला कर हँस पड़ती है**
**तो क्या मुझे स्वतंत्र होने के लिए**
**अपनी परछाई को भी छोड़ना पड़ेगा**
**जो मेरे अंगों की सानुवाद व्याख्या करती है**
**और मेरी नित्य सहधर्मिणी है**

अपनी उपर्युक्त खामियों और खूबियों के बावजूद संकलन में और भी कई कविताएँ हैं जो अच्छी हैं और जो लोकप्रिय भी होंगी । पर यह सही है कि डॉ. डबराल की संभावनाएँ इस संकलन में पूर्णतः सामने नहीं आयी हैं और इसी कारण यह आशा भी बँधती है कि उन का अगला संकलन अपेक्षाकृत अधिक जीवंत होगा ।

—शेरजंग गर्ग,
एच ६/९ मालवीय नगर, नयी दिल्ली-१७

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

# श्रीमानजी

# अगला बच्चा होने से पहले...ज़रा सोचिये

क्या आप
पहले इस बच्चे
की सही देखभाल
करना नहीं चाहेंगे ?

इसकी अच्छी पढ़ाई-लिखाई का इन्तजाम इसके जीवन को सफल बनाना...आप उसे पूरा लाड़-प्यार देना चाहें लेकिन अगला बच्चा जल्दी हो गया तो यह सब करना मुश्किल होगा। आप ऐसी स्थिति से जरूर बचना चाहें। निरोध की सहायता से अब आप अगले बच्चे के जन्म को तब तक टाल सकते हैं जब तक उसकी पूरी देखभाल करने लायक नहीं हो जाते। निरोध पुरुषों के लिये है। यह परिवार को छोटा रखने का अच्छा और आसान उपाय है। इसे दुनिया भर में लाखों लोग वर्षों से इस्तेमाल कर रहे हैं। आप भी निरोध इस्तेमाल कीजिये

निरोध हर जगह मिलता है। सरकारी रियायती मूल्य : केवल 15 पैसे में 3

## जब तक न चाहें, बच्चा न पायें

# निरोध

लाखों की पसन्द - बढ़िया और आसान

davp 71/119 जनरल मर्चेन्ट, दवा, परचून और पान आदि की दुकानों में बिकता है।

कादम्बिनी
भारतीय भाषाओं की विशिष्ट पत्रिका
मई

टेलिविस्टा
आपके रुपये की सबसे अच्छी कीमत

लोकप्रियता की सीढ़ियों पर तेज़ी से
चढ़ते हुए उपन्यासकार

# अमिताभ

का नवीनतम रोमांटिक उपन्यास

अमिताभ
प्यास
रूमानी संसार की मनोरम झांकियां
प्रस्तुत करने वाली अत्यंत रोचक कहानी

मूल्य: 3·00

## प्यास

एक अद्भुत
नारी की
अनोखी
प्रेम-कथा

सुंदर
नटखट
चितचोर
यानी माधुरी जिसने सबका
मन मोह लिया है
यानी टाइम्स आफ इंडिया की
पाक्षिक फिल्म पत्रिका माधुरी
माधुरी
रसभीनी मधुर पत्रिका

# शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइए

● शांडिल्यायन

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों, उन पर चिह्न लगाइए और पृष्ठ ९ पर दिये उत्तरों से मिलाइए।

१. **अभिजन**—क. नौकर, ख. परिवार के लोग, ग. उच्च और धनाढ्य कुल में उत्पन्न व्यक्ति, घ. निम्न कुल में उत्पन्न व्यक्ति।

२. **नीयतटूट**—क. जिसका टूटना निश्चित या नियत हो, ख. जिसकी नीयत बहुत जल्दी डोल जाए, ग. हतोत्साह, घ. बेईमान।

३. **प्राश्निक**—क. खाद्य-विषयक, ख. घोड़े का डॉक्टर, ग. परीक्षक, घ. प्रश्न-पत्र बनानेवाला।

४. **अवमानना**—क. बुरा मानना, ख. अपमान, ग. अपने से निम्न स्तर का मानना, घ. स्वीकार कर लेना।

५. **मसिमुख**—क. मनहूस, ख. दवात, ग. बदनाम, घ. कलम, जिसके मुख में स्याही हो।

६. **शिद्दत**—क. परिश्रमी, ख. घबराहट, ग. तीव्रता, घ. तेज या सख्त न होना।

७. **चैती**—क. चुस्त, ख. होश में, ग. ऐसा-वैसा, घ. चैत के महीने में तैयार होनेवाली फसल।

८. **तेलहन**—क. एक फसल, ख. तेल निकालने की मशीन, ग. तिल, घ. वे सभी बीज जिनसे तेल निकलता है।

९. **खललअंदाज**—क. जिसका अंदाज बिलकुल ठीक हो, ख. जिसका अंदाज बिलकुल गलत हो, ग. बाधा डालनेवाला, घ. एक तरह का पागलपन।

१०. **कठबैद**—क. पेड़-पौधों के रोगों की दवा करनेवाला, ख. एक तरह का बेंत, ग. अनाड़ी वैद्य, घ. निर्दय।

११. **ध्यातव्य**—क. पढ़ने लायक, ख. जो ध्यान दे, ग. जानने योग्य, घ. ध्यान देने योग्य।

१२. **रबी**—क. रवि, ख. 'रब' अर्थात ईश्वर का (ईश्वरीय), ग. वह फसल जो चैत के महीने में काटी जाती है, घ. वह फसल जो असाढ़ से अगहन के बीच काटी जाती है।

१३. **जंत्री**—क जंतर-मंतर का जानकार, ख. वह किताब जिसमें तिथियां, मुहूर्त, वर्षफल आदि दिये होते हैं, ग. छोटा यंत्र, घ. जंतर बनानेवाला।

१४. **परिजन**—क. सामान्य जन, ख. नौकर-चाकर, ग. समग्र जनता, घ. किसी व्यक्ति या विचार-धारा का अनुसरण करने वाले।

## उत्तर

१. ग. उच्च और धनाढ्य कुल में उत्पन्न व्यक्ति। **अभिजनों** को निम्न वर्ग की समस्याओं को वास्तविक रूप में समझना चाहिए। तत्., सं., पुं.।

२. ख. जिसकी नीयत बहुत जल्दी डोल जाए, जो बहुत जल्दी ललचा जाए। वह बड़ा **नीयतटूट** है, मिठाई देखते ही उस पर टूट पड़ा।

३. घ. प्रश्नपत्र बनानेवाला। अंगरेजी 'पेपर-सेटर' के लिए प्रयुक्त। पिछले वर्ष तुम उस प्रश्नपत्र के **प्राश्निक** और परीक्षक दोनों ही थे। तत्., सं., पुं.।

४. ख. अपमान, बेइज्जती। उसने मेरी **अवमानना** की, मैं तो अब भूलकर भी उसके यहां नहीं जा सकता। तत्., सं., स्त्री.।

५. ग. बदनाम, काले मुंहवाला। उस **मसिमुख** का साथ भला कौन करेगा! तत्., वि.।

६. ग. तीव्रता, कठोरता। कितनी शिद्दत की गरमी है। अरबी., सं., स्त्री.।

७. घ. चैत के महीने में तैयार होने वाली फसल। पिछली **चैंती** अच्छी हुई। तद्., सं., स्त्री.।

८. घ. वे सभी बीज जिनसे तेल निकलता है, जैसे सरसों, तीसी, तिल, वगैरह आदि। यह शब्द संस्कृत 'तैलधान्य' का तद्भव रूप है। सं., पुं.।

९. ग. बाधा या खलल डालनेवाला, दालभात में मूसरचंद। यह शब्द अरबी 'खलल' (बाधा) तथा फारसी 'अंदाज' (फेंकने या डालनेवाला) के योग से बना है। वह बड़ा **खललअंदाज** है, उसे इसकी कानोकान खबर नहीं होनी चाहिए। वि.।

१०. ग. अनाड़ी वैद्य, नीम हकीम। अरे, तुम्हें क्या हो गया है जो इतनी गंभीर बीमारी में उस **कठबैद** की दवा ले रहे हो? तद्. (संस्कृत—काष्ठ+वैद्य), सं., पुं.।

११. घ. ध्यान देने योग्य। आपने इस आसन की पद्धति तो सुन लीं; किंतु **ध्यातव्य** है कि बिना प्रत्यक्ष देखे इसे करने का यत्न न करें, नहीं तो लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। तत्. वि.।

१२. ग. वह फसल जो चैत के महीने में काटी जाती है, चैती। इस वर्ष **रबी** की फसल बहुत अच्छी हुई है। अरबी 'रबीअ' का तद्भव, सं., स्त्री.।

१३. ख. वह किताब जिसमें तिथियां, मुहूर्त, वर्षफल आदि दिये होते हैं। कोई पंडित नहीं है तो क्या हुआ, **जंत्री** लाओ, मैं गृहप्रवेश का मुहूर्त बताता हूं। तद., सं., पुं.।

१४. नौकर - चाकर, अनुचरगण, आश्रित लोग। प्राचीन काल में राजा लोग जब कहीं जाते थे तो उनके साथ **परिजन** का पूरा काफिला ही चलता था। तत्., सं., पुं.।

'कादम्बिनी' में 'काल-चिंतन'
'समय के हस्ताक्षर' विशेष रूप से प
होते हैं। यह पत्रिका अपने आप में बेजो

—रतनसिंह राठौर, 

कादम्बिनी का 'अप्रैल' अंक
नवीनता व रोचकता के लिए धन्यवा
'नशीले द्रव्यों में भटकता युवा 
( शीला झुनझुनवाला ) एवं 'यात्रा
रचनाकारों की' (आयोजक—सुशीलकु
'शरद' ) लेख बेहद पसंद आये। 'कादम्बि
के इस रोचक, आकर्षक व ज्ञानप्रद 
के लिए पुनः बधाई!

—कुमारी मंजूषा पाठक, होशंगा

'कादम्बिनी' का युवा अंक 
हुआ। 'काल-चिंतन' के दर्शन ने प्रभा
किया और 'समय के हस्ताक्षर' के 
ने सोचने को मजबूर किया। इसमें 
मत नहीं कि साहित्य में भी राज
ने घुसपैठ शुरू कर दी है। संपादक 
दय को इस बात की बधाई कि उन्हों
नये लेखकों को आत्म-निरीक्षण करने 
संदेश देते हुए सबको खुश रखने 
सफल प्रयास किया है।

निर्मल गुप्त ने अपनी कहा
'दिशा-परिवर्तन' में एक लेखक का 
व सत्य चित्र खींचा है। अन्य लेख
परिचर्चाएं भी श्रेष्ठ थीं। कविताओं 
भी प्रभावित किया।

—सुशीलकुमार 'अकेला', 

अप्रैल '७७ का 'युवा अंक' मि
'समय के हस्ताक्षर', 'काल-चिंतन',

काएं' एवं 'गोष्ठी'—जैसे स्तंभों से आपने जो गागर में सागर भरने का प्रयास किया है वह सराहनीय है और आपका 'कादम्बिनी' परिवार बधाई का पात्र है। कौशल सिखौला की कथा 'सोमलाचर' और कुंकुम चतुर्वेदी की 'स्वीकार्य' कहानी काफी अच्छी लगीं। 'शहतूत की शाख पे बैठी मीना' डॉ. साधना कांतिकुमार के सुंदर शब्दों में पाठकों के मन पर अमिट छाप छोड़ गयी हैं।

**—रामगोपाल शर्मा, गया**

'कादम्बिनी' का अप्रैल '७७ अंक पढ़ा। 'काल-चिंतन' सदैव की भांति एक नया दृष्टिबोध प्रदान करने में सक्षम है। कहानियों में 'अमीबा' और 'सोमलाचर' विशेष रूप से पसंद आयीं। समाज के एक चिर-उपेक्षित अंग का यथातथ्य मूल्यांकन किया गया है।

**—शिवपूजन 'अटल', उन्नाव**

प्रातःकाल जब हॉकर ने 'कादम्बिनी' की नयी (अप्रैल की) प्रति दी, तब मेरी खुशी द्विगुणित हो गयी; क्योंकि यहां हरिद्वार में आपकी पत्रिका २५ अथवा २६ तक अवश्य उपलब्ध हो जाती थी, परंतु इस बार बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी।

**—गोपाल कश्यप, हरिद्वार**

अप्रैल अंक में 'नशीले द्रव्यों में भटकता युवा आक्रोश' बेहद पसंद आया। लेखिका ने एक अहम सवाल उठाया है कि
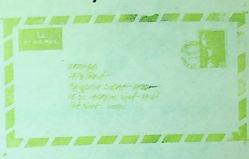
इन मादक द्रव्यों के पीछे आज का युवा वर्ग क्यों पागल है? और स्वयं जवाब दिया है कि अकेलेपन की मनःस्थिति इसका मुख्य कारण है।

मेरे खयाल में जिंदगी की कड़वाहट अपने आपमें इतनी तीखी हुआ करती है कि चंद घंटों के लिए ही सही, मुक्त होने का आश्वासन—जो किसी हद तक झूठा आश्वासन है—एक रास्ता जरूर है। समस्या का सही-सही विश्लेषण करनेवाले सशक्त लेख के लिए लेखिका को बधाई।

**—डॉ. विजय बापट, ग्वालियर**

'यात्रा नये रचनाकारों की' शीर्षक परिचर्चा में जिन युवा लेखकों के विचार लिये गये हैं, उनके विचार ऊपरी और सतही-से प्रतीत होते हैं। ऐसे युवा रचनाकारों की कमी नहीं है, जो पूर्णरूप से समर्पित होकर साधनारत हैं, पर वे छप नहीं पाते या छपते हैं तो बहुत कम।

'समय के हस्ताक्षर' के अंतर्गत कही गयी यह बात बहुत हद तक सही है कि आज के युवा लेखकों में धैर्य की कमी है।

**—सुभाष 'नीरव', मुरादाबाद**

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

## निबंध एवं लेख

संपादक

# राजेन्द्र अवस्थी

## कथा-साहित्य



## कविताएं



## सार-संक्षेप



## स्थायी स्तंभ



मुखपृष्ठ: कांतिचन्द्र सोनरेक्सा (पृष्ठभूमि), लड़की: त्यागराजन

## संयुक्त संपादक : शीला झुनझुनवाला

सह-संपादक: दुर्गाप्रसाद शुक्ल, उप-संपादक: कृष्णचन्द्र शर्मा, प्रभा भारद्वाज, बिमलचन्द्र (प्र.), चित्रकार: सुकुमार चटर्जी

— इतिहास की समूची काल-सूची मंडित कुरसियों की लोलुप आकांक्षाओं से भरी पड़ी है।
— अपने भाई कौरवों की लाशों पर पांडवों ने विजय-पर्व मनाया था!
— इतिहास के स्वर्ण-युग के निर्माता सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने अग्रज रामगुप्त के प्राण लेकर उसकी नववधू ध्रुवदेवी का अपहरण किया था।

# काल चिंतन

— अकसर देखा गया है, कुरसी जाते ही आदमी दया का पात्र बन जाता है और (रिटायर) अवकाश प्राप्त करते ही वह टूट जाता है, बहुत चिंतन के बाद इसका सूत्र नहीं मिल रहा!

●●

— चूंकि स्थिति सामान्य नहीं है, इसलिए सूत्र आसानी से नहीं मिल सकता।
— कुरसी का अर्थ सत्ता है।
— सत्ता क्रूर और निर्मम होती है। वह अपने आस-पास के घेरों को काटती चलती है। यदि वह उन्हें न काटे तो वे सत्ता को काट देंगे।
— चाणक्य ने नंदवंश का विनाश सहज ही नहीं कर दिया था। वह भय से आक्रांत था।
— सम्राट अशोक ने अपने भाइयों को मौत के घाट उतारा था।
— शिशुनाग ने उज्जैन के प्रद्योत को

'कुरसी'—काल-चिंतन का यह अंश 'कादम्बिनी' के मई १९७६ अंक में प्रकाशित हुआ था। हमारे सैकड़ों पाठकों ने पत्र लिखकर इसके लिए बधाई देते हुए हमसे आग्रह किया है कि हम इसे फिर प्रकाशित करें, ताकि जिन्होंने नहीं पढ़ा, वे इसे पढ़ सकें। इसे एक विचित्र संयोग ही कहेंगे कि मई १९७६ में प्रकाशित इस 'काल-चिंतन' को हम १९७७ के मई अंक में ही, पाठकों का अनुरोध स्वीकारते हुए पुनः प्रकाशित कर रहे हैं।

—संपादक

को धराशायी किया ।

— बुद्ध और महावीर के युग में अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबसार को बंदी बनाकर स्वयं अपना राजतिलक किया था ।

— अनिरुद्ध, मुंड, नागदासक पितृहंता थे ।

— मुगलवंश की संपूर्ण इतिहास-यात्रा कुरसियों को खाली करने और खाली कुरसियों पर नयी सल्तनत के झंडे गाड़ने का क्रम रही है—शाहजहां और औरंगजेब ने अपने भाइयों को एक-एक कर मौत के घाट उतारा है और क्रूर औरंगजेब ने अपने कलाप्रेमी पिता शाहजहां को बंदी बनाकर एक-एक बूंद पानी के लिए तरसाया है ।

— मर्यादा - पुरुषोत्तम और भारतीय सामाजिक चेतना के प्रतीक राम के समय भी संभवतः यह परंपरा अज्ञात नहीं थी । विवश और भस्मासुर की तरह अरक्षित समझनेवाले सम्राट दशरथ ने स्वयं राम को सलाह दी थी कि वन जाने की अपेक्षा वे उनसे सत्ता छीनकर दशरथ को कैद कर लें ।

— वाल्मीकि इसके प्रमाण हैं :

उवाच राजा सम्प्रेक्ष्य वनवासाय राघवम
अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य मामृ ।

(वा. रामायण—२।३४।२५–२६)

— यह दूसरी बात है कि राम ने यह घृणित कार्य नहीं स्वीकारा और उन्होंने वन जाकर जीवन की करुणा को भाग्य की स्वर-लहरियों में ढालकर संगीत का सुख लिया और वे विश्व-जन-चेतना के प्रतीक बने !

— लेकिन राम बनने की सामर्थ्य कितनों में है ?

●●

— कुरसी की आत्मा भय से आक्रांत है ।

— इसीलिए सेवक स्वामी बन जाते हैं और द्वार-रक्षक प्रतिहार-शासक बनते हैं ।

— कुरसी का जादू स्वर्ण-प्रासादों के खंडहरों में भूतों के नर्तन का इतिहास रहा है ।

— ऐसे विक्रमादित्य कभी, किसी युग में पैदा होते हैं जो इतिहास को अपनी मुट्ठी में पकड़कर बंद कर लेते हैं, जो अपने आसपास के वैतालों को वश में कर रुद्र के समान उन्हें अपने सहायक और अनुशासित गण बनाकर अंगुलियों पर नचाते हैं ।

— लेकिन कब तक ?—यह भी तो एक प्रश्न है । आखिर काल के हाथों वह मुट्ठी भी स्थिर नहीं रही और इतिहास को फिर एहसास करने का अवसर उसने दिया ।

— आज के संदर्भ में भी कुरसी राजसत्ता का प्रतीक है : वह कुरसी चाहे शासकीय कार्यालय की हो अथवा मजदूरों का नेतृत्व करनेवाले 'बड़े मजदूर' की हो ।

— कुरसी के साथ भय छिपा है, उसके भीतर स्प्रिंग के तार नहीं, भय की ऊर्जा भरी होती है।
— एक-दूसरे से बदला लेने और प्रति-हिंसा तथा प्रतिरोध की भावना इतिहास से विरासत में मिली है।
— राज-प्रासादों और राज-सत्ता के अंत के बावजूद भटकती हुई वे सारी आत्माएं निरंतर क्रियाशील हैं।

●●

— आज का आदमी एक कुरसी पर बैठते ही अपने को सबसे काट लेता है।
— इसलिए उसके छूटते ही वह टूटा और बेजान हो जाता है।
— जिंदगी भर वह एक सूत्र में जिया है : अपना झंडा उठाइए और दूसरों का काटिए।
— दूसरों को काटने में अपने को भी तो चोट पहुंचती है।
— सामर्थ्यवान व्यक्ति वह है जो बड़ी कुरसी पर बैठकर भी अपने सहकर्मियों को बड़ा कहता है।
—वह हीनभावना से ग्रसित नहीं होता। धूप से चमकती लहरों की तरह उसका मन प्रकाशवान होता है।
—वह जीवन की सार्थकता को स्वीकारता हुआ मृत्यु के द्वार का अभिनंदन करने के लिए प्रतिक्षण प्रतीक्षारत है।
—उस वर्तमान को वह अंतरंग रूप से पहचानता है जो हर पल भूत बनता जाता है।

... है। बगदाद के एक ... ने बगावत कर दी और सल्तनत के खिलाफ में झंडा उठा लिया। उसने महसूस किया कि कुरसी में बैठा बादशाह अंधा हो गया है। चक्र इस तरह बदला कि अचानक एक मंत्री ने बादशाह की हत्या कर ... कुरसी हथिया ली। वह कुरसी में बैठ गया लेकिन उसके बैठते ही दूसरे उमराव ने विद्रोह कर दिया। अब उनके विद्रोह को वह दबाने लगा। ज्यादा दिन नहीं गुजरे कि एक रात वह पागल हो उठा, कुरसी का भूत उसका पीछा कर रहा था। जिन उमरावों के लिए वह लड़ रहा था, अब उन्हीं को दबाना पड़ रहा है। दूसरे दिन ही उसने बादशाहत छोड़ दी।

—उसके मन में न भय है और न हीन-भावना! ऐसा व्यक्ति अवकाश के क्षणों को दोनों हाथों में समेटकर गंगाजल की तरह पीता है।
—वह न कभी दया का पात्र बनता और न ही टूटता!

●●

—निष्कर्ष : जो व्यक्ति अपनी कुरसी को राज-सत्ता की तरह स्वीकार कर अन्य कुरसियों के प्रति हीनता की दृष्टि रखता है, वह अपने हाथों टूटन, घुटन और दर्द का इतिहास लिख रहा है।
—अपने लिखे को मेटने की सामर्थ्य आप पैदा भी कर लें तो आपसे अधिक सामर्थ्यवान वह अधिकार आपसे छीन लेगा।

राजेन्द्र अवस्थी

# कादम्बिनी

## निरन्तर लोकप्रियता की ओर

## आपातकाल : यातना भरी कहानियां

**'कादम्बिनी' के जून अंक में सनसनीखेज और रोमांचक दास्तान : भारतीय भाषाओं में कहीं पढ़ने को नहीं मिलेगी।**

## कुछ नये परिवर्तन : कुछ साहसिक प्रयोग

**आपातस्थिति के २० महीनों में इस देश में ऐसा बहुत-सा साहित्य लिखा गया है जो सरकार की सख्त सेंसर-नीति के कारण प्रकाशित नहीं हो सका। ऐसे साहित्य में कविताओं का विशेष स्थान है। कवियों से निवेदन है कि वे ऐसी कविताएं प्रकाशनार्थ तुरंत हमें भेज दें। केवल साहित्यिक स्तर की रचनाएं ही प्रकाशित की जाएंगी।**

## अगले अंकों की विशिष्ट सामग्री

- 'कादम्बिनी' कहानी-प्रतियोगिता में पुरस्कृत रचनाओं का एकसाथ प्रकाशन
- **आपात-स्थिति के दौरान दक्षिण भारत की प्रसिद्ध अभिनेत्री स्नेहलता की हत्या अथवा 'आत्महत्या' के रोमांचक प्रसंग**
- सत्ता का विरोध करनेवाले लोगों को कारागारों में दी गयी यंत्रणाओं की कहानी
- **हमारी आवाज बंद थी—सर्वश्री जार्ज फर्नांडीज, राजनारायण, अटलबिहारी वाजपेयी, विजयकुमार मल्होत्रा तथा अन्य राजनीतिक नेताओं के, जो अब कुरसी-आसीन हैं, कारागार के अनुभव**
- जीवन अनंत है। आदमी मरता नहीं। उसकी आंखें वह सब कुछ देखती रहती हैं जो उसके आसपास गुजर रहा है। अमरीका में प्रकाशित बहुचर्चित पुस्तक 'आफ्टर लाइफ' के अंश
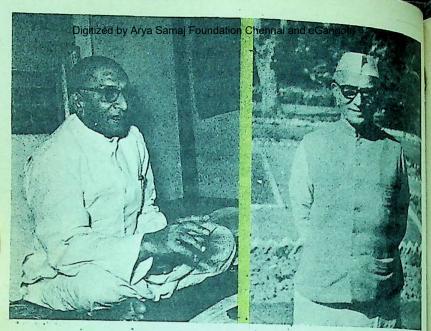
मोरारजी देसाई : दो मनःस्थितियां
राजघाट पर शपथ ग्रहण करते समय का रंगीन चित्र : पृष्ठ १३३ पर देखिए

कीचड़ में पत्थर डालने से डालने वाले पर कीचड़ उड़ता है। कीचड़ का कुछ नहीं होता। झूठ बातें ज्यादा चलती नहीं और जनता उसकी सही परीक्षा कर लेती है।

# स्वागत मोरारजी भाई : कुछ अंतरंग प्रसंग
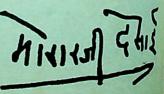
दिनकर की प्रसिद्ध कविता है—'रेशमी नगर यह दिल्ली है !' दिल्ली ने जितने गिरते-उठते दिन देखे हैं, शायद ही दुनिया की किसी और राजधानी ने देखे हों ! यहां के मकबरे, खंडहर, मीनारें, मसजिदें, मंदिर और गिरजाघर इसके प्रमाण हैं—हजारों तृप्त-अतृप्त आत्माओं का यह नगर बनने-बिगड़ने, टूटने और जुड़ने के बावजूद आज फिर रंग-बिरंगे रेशमी दुपट्टों में घोषणा कर रहा है, 'भारत की आत्मा नहीं मरी। भारत तानाशाहों का देश नहीं बन सकता। भारत का भाग्य यहां की गरीब जनता के हाथ है।'

अचानक ऐसा पटाक्षेप हुआ है, जिसकी कल्पना नहीं थी। इससे और कुछ हुआ हो या नहीं, विदेशों में भारत की जनता को प्रतिष्ठा मिली है। यहां की जाग्रत, प्राणवान जनता ऐसा कोई नेतृत्व स्वीकार नहीं करेगी जो उसके नागरिक अधिकारों को छीने।

समय के हाथों पवन-वेग से पराजित १, सफदरजंग रोड की सारी गतिविधियां कभी निहायत उपेक्षित, वीरान और नीरव पड़े हुए ५, डुप्ले रोड पर केंद्रित हो गयी हैं। ५, डुप्ले रोड—यानी मोरारजी देसाई का छोटा-सा मकान। मकान के बाहर सफेद तख्ती पर मोरारजी देसाई का नाम लिखा है, और यही पहचान के लिए काफी है। भीतर रंग-बिरंगे गुलाब के फूल हैं और फिर पांच-छह कमरों का छोटा-सा मकान। मोरारजी भाई का अपना निजी कमरा एक कोरिडोर से अधिक नहीं है।

तख्त का एक साधारण-सा 'तख्ते-ताऊस', जिसके ऊपर हरे रंग का चमड़ा बिछा है और चारों तरफ किताबें बिखरी पड़ी हैं। नीचे फर्श पर शेर का चमड़ा है। आधुनिकता के नाम इस कोरिडोरनुमा कमरे में केवल एक एयरकंडीशनर लगा हुआ है। कमरे से लगा हुआ दूसरा एक और कमरा है, जिसमें एक साधारण-सा सोफासेट रखा हुआ है। कमरे में रामकृष्ण परमहंस की मूर्ति है। कमरे में दो टेलीफोन हैं—एक लाल और दूसरा हरा। इन दो कमरों को पिछले कई सालों से मैं बराबर देखता रहा हूं। वैसे मोरारजी भाई की दिल्ली-

यात्रा जब ७, त्यागराज मार्ग से शुरू हुई थी, तभी से मेरा उनसे परिचय है। उन दिनों, मुझे याद है, मोरारजी भाई का आपरेशन हुआ था––पथरी का आपरेशन। उसके बाद ही उन्होंने वजन उठा लिया और तब फिर उन्हें हार्निया का आपरेशन कराना पड़ा था। आपरेशन के दौरान जो घटना हुई, वह मोरारजी भाई के दृढ़-संकल्पी व्यक्तित्व को उजागर करती है। आपरेशन बंबई में हुआ था और करनेवाले थे––डॉ. शांतिलाल मेहता। मोरारजी भाई ने बताया था कि आपरेशन के पहले दिया जानेवाला इंजेक्शन उन्होंने लेने से इनकार कर दिया था। उन्होंने डॉक्टर से पूछा था कि यह इंजेक्शन किसलिए! डॉक्टर ने बताया था, स्थानीय क्षेत्र को शून्य कर देने से काटे जाने पर दर्द नहीं होता है। मोरारजी भाई ने कहा था, 'यदि आपरेशन करते वक्त होनेवाले दर्द को सहने की ताकत नहीं है तो आपरेशन कराना बेकार है।' मोरारजी देसाई ने बिना इंजेक्शन लिये आपरेशन कराया था।

आपरेशन होने के बाद दर्द कम करने की गोलियां भी नहीं खायीं। उन्होंने फिर यही कहा था, 'मुझमें दर्द सहने की ताकत है।' यह घटना मोरारजी भाई के व्यक्तित्व को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह उनके दृढ़-संकल्प और उनकी घनघोर निष्ठा की परिचायक है। ७, त्यागराज मार्ग से लेकर ५, राजेन्द्र प्रसाद रोड तक और फिर ५, डुप्ले रोड तक मैं उनसे बराबर मिलता रहा हूं। कुछ नहीं से बहुत कुछ और फिर सब कुछ होने तक की अंतर्यात्रा में उनके साथ यदि कोई रहा है तो वह है उनकी अपनी आस्था और ईश्वर पर अडिग विश्वास। अपनी गिरफ्तारी के कुछ समय पहले तक मोरारजी भाई ने कहा था, "यह सब नहीं चलेगा! इंदिरा को एक दिन जाना पड़ेगा। मुझे ईश्वर पर विश्वास है और मैं जानता हूं कि वह सब देख रहा है।" चर्खे पर सूत कातते हुए उस कमरे में अकेले बैठे मोरारजी ने यह विश्वास प्रकट किया था, जब यह कल्पना भी नहीं थी कि कोई भी आदमी इंदिराजी के खिलाफ कुछ कह भी सकता है। ठीक इसी के बाद आपातस्थिति लागू होने पर मुझे यह लगा था कि मोरारजी भाई की तरह कोरे भ्रम में पड़े विश्वासों के साथ जीना भी कितना दुःखदायी है! लेकिन मेरी बात गलत सिद्ध हुई और मोरारजी भाई का विश्वास जमीन से उस सूखे हुए बीज की तरह अंकुर बनकर अचानक फूट पड़ा, जो वर्षों नीचे पड़े रहने के बाद भी पानी पड़ते ही धरती से फूट पड़ता है।

अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट का एक संस्मरण मुझे याद आता है। अमरीकी सेनाएं निरंतर लड़ रही थीं और जब मुख्य सेनापति ने राष्ट्रपति रूजवेल्ट को

आकर यह खबर दी कि सब कुछ फतह हो गया है तब मुसकराते हुए अमरीकी राष्ट्रपति ने कहा था—How anxiously I was waiting for this moment, but how easily it has come! मोरारजी देसाई के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि गिरफ्तारी से लेकर चुनावों तक वे निरंतर जनता के न्यायालय में खड़े रहे और फैसले की प्रतीक्षा करते रहे, परंतु जब ५, डुप्ले रोड 'मोरारजी भाई जिंदाबाद' के नारों से गूंज उठा तब मोरारजी भाई ने शांत, शिष्ट और संयत मुद्रा में मुसकराते हुए कहा, 'यह तो होना ही था !'

मुझे याद हैं, जब वर्षों पहले लगभग ११ बजे रात को श्रीमती गांधी ने उप-प्रधान मंत्री बनने के लिए मोरारजी भाई के नाम की घोषणा की थी, और हम उन्हें बधाई देने उनके घर गये थे। आराम से बैठे हुए उन्होंने कहा था, 'इसमें क्या रखा है ! यह कौन-सी बड़ी बात है !' बाहर तब भी जनता का हुजूम खड़ा था और मिठाइयां बांटी जा रही थीं। जब उप-प्रधानमंत्री बनते ही वे ५, राजेन्द्रप्रसाद रोड में चले गये और बड़ी लगन और प्यार से उन्होंने और उनके साथ उनके लड़के कान्तिभाई ने तरह-तरह के गुलाब लगायें थे। दो-तीन बार यहीं हिंदी के साहित्य-कारों से उन्होंने भेंट की थी।

वह चर्चा की एक शाम थी और फिर निर्धारित समय पर मोरारजी भाई बाहर लान में पहुंच गये थे, जहां कुरसियां बिछी थीं। आदत के अनुसार लेट-लतीफ लेखक आ रहे थे। जहां तक मुझे याद है, उनमें मोहन राकेश, भीष्म साहनी, रघुवीर सहाय, राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीनारायण लाल, कैलाश बाजपेयी इत्यादि अनेक व्यक्ति थे। मोरारजी भाई ने आते ही महात्मा गांधी के साथ अपने संस्मरण अनौपचारिक रूप से सुनाने शुरू कर दिये थे। लेखक धीरे-धीरे आ रहे थे और जब सब लेखक आ गये तब मैं इस प्रतीक्षा में था कि मोरारजी देसाई अपनी बात खत्म करें और मैं चर्चा का विषय शुरू करूं। यह चर्चा शायद कापीराइट और लेखकों के अधिकार को लेकर होनेवाली थी। अचानक इनमें से एक लेखक रोष में खड़े हो गये और कहने लगे, 'मोरारजी भाई, हम गांधीजी का घोंटा पीने नहीं आये।'

मोरारजी भाई भी अपने को रोक नहीं पाये थे। उन्होंने उत्तर दिया, 'यदि आप महात्मा गांधी के विरोध में बात कहते हैं तो उनके समर्थन में मुझे अपना दृष्टिकोण रखने का अधिकार है।' यह बात शायद दक्षिण और वाम-पंथी में बदल जाती। किसी तरह मैंने उसे रोककर आगे की कार्यवाही शुरू की थी। उसी दिन मुझे लगा था कि मोरारजी भाई एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके साथ 'डायलाग'

हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति अपने सिद्धांत रखता है तो दूसरे को भी अपना दृष्टिकोण रखने का अधिकार है। जिसके सिद्धांत नहीं होंगे या जो अपने सिद्धांतों के साथ समझौता करता रहेगा, उसके साथ किसी तरह का 'डायलाग' संभव ही नहीं है। अपने सिद्धांतों व आदर्शों के प्रति इतनी बड़ी प्रतिबद्धता मैंने राजनेताओं में मोरारजी भाई के सिवा और किसी में नहीं देखी। मोरारजी भाई ने उप-प्रधानमंत्री बनने के बाद जो साहित्यकारों से मिलने का सिलसिला शुरू किया, उसी की नकल प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने की थी और बाद में एक दूसरा सिलसिला शुरू हुआ था।

राजनीति के रंग गिरगिट की तरह बदलते रहते हैं। स्थिर और स्थायी तत्त्व यदि कोई हैं तो वे हैं—साहित्य व संस्कृति। जब तक इस देश में साहित्यकार को सम्मान नहीं मिलेगा और उसे पूरे अधिकार नहीं मिलेंगे तब तक इस देश का गौरव बढ़ नहीं सकता। मोरारजी भाई साहित्यकारों का सम्मान करना जानते हैं और उनके प्रति उनमें निष्ठा भी है। हिंदी और दूसरी भाषाओं के बहुत से प्रतिष्ठित साहित्यकार मोरारजी भाई के मित्र बन गये। मोरारजी भाई जो कहते हैं, वह करते भी हैं। उन्होंने एक दिन अचानक मेरे आग्रह करने पर, मैं जिस पत्र का संपादन कर रहा था, उसके लिए एक कॉलम लिखने की बात स्वीकार कर ली थी।

जब उन्होंने यह स्वीकार किया था, तब वे 'बेकार' थे। जब उनके पास उप-प्रधानमंत्री का बोझ आया तब भी वे उसे लिखते रहे। यहां तक कि मैं दूसरे पत्र में चला गया, लेकिन मोरारजी भाई ने लिखना बंद नहीं किया। मजबूरन उन्हें तब बंद करना पड़ा जब उन्हें हमारी ही सरकार ने कैदी करार कर सोहना भेज दिया।

आश्चर्य की बात यह है कि कहीं कोई गलती न हो जाए, इसीलिए उस पूरे कॉलम को मोरारजी भाई स्वयं अपने हाथ से ही लिखते रहे।

मोरारजी भाई का जीवन बहुत सीधा-सादा और सहज है। साढ़े तीन बजे सुबह रोज उठ जाते हैं और सात बजे से अपना काम शुरू कर देते हैं। इस बीच प्रार्थना, व्यायाम, योग, चिंतन और हरी घास पर घूमना—ये उनके काम हैं। उसके बाद उनके खाने का समय निश्चित है—दिन में एक बार का भोजन। अपने घर में रखी हुई गाय का ताजा दूध, फलों के रस और ताजा तथा सूखे फल। चाय और काफी मोरारजी भाई ने अपने जीवन में कभी नहीं पी। खाना शुद्ध निरामिष और हरी सब्जियों से भरा और शुद्ध घी से बना हुआ। जब मोरारजी

मोरारजी भाई के साथ 'कादम्बिनी'-संपादक

भाई विदेशों में गये हैं तब भी उनका भोजन नहीं बदला। उनके घर में उनकी देखरेख करते हैं उनकी पत्नी गजरा बेन, उनके पुत्र कान्तिभाई, सरदार पटेल की पुत्री मणिबेन पटेल और उनके निजी सहायक ईश्वरलाल पटेल। मोरारजी भाई को उनकी पत्नी गजरा बेन के साथ मैंने उन्हें मुश्किल से एक-दो बार ही देखा है और वह भी जबरन फोटो खिचाने के लिए। उनके अब शेष केवल एक पुत्री और एक ही पुत्र हैं। उनकी एक बेटी थी—इन्दु। उसने सन १९५३ में जब आत्महत्या कर ली थी, तब मोरारजी भाई को सबसे बड़ा आघात पहुंचा था, क्योंकि इन्दु से उन्हें बहुत प्रेम था। लेकिन इतनी बड़ी घटना के बाद भी मोरारजी भाई विचलित नहीं हुए थे। उन्होंने कहा था, 'ईश्वर की यही मर्जी थी।'

अब सुबह से शाम तक छाया की तरह उनकी देखरेख और सुख-सुविधाओं का ध्यान कान्ति भाई रखते हैं। कान्ति भाई वैसे ही सीधे और सहज व्यक्ति हैं।

समय कितना बदलता है--अब ५, डुप्ले रोड कारों और सैकड़ों-हजारों आदमियों के कोलाहल से दिन-रात भरा रहता है। सारे देश की दृष्टि १, सफदर-जंग मार्ग से उठकर ५, डुप्ले रोड पर आ गयी है। इस भीड़-भाड़ और राजनीतिक उठापटक के बीच में अधिकांश व्यक्ति मोरारजी भाई को ही व्यस्त देखते हैं। लेकिन

उन्हें देखते ही मेरी दृष्टि उस शांत, एकांत कमरे में चली जाती है, जहां तख्त पर बैठे हुए मोरारजी भाई नितांत अकेले चर्खा कातते और शायद बहुत कुछ सोचते रहे हैं।

कमरे में नीरवता और शांति है, कभी कोई मिलने आ जाता है। कई बार ऐसा भी हुआ कि मिलने आनेवालों की कारों के नंबर सरकार नोट करती रही है। इस कोलाहल और उस शांत वातावरण के बीच मोरारजी भाई को टूटते, हताश होते, उदास होते नहीं देखा। बार-बार उनके मुंह से मैंने यही सुना है— 'ईश्वर पर विश्वास कीजिए।' ईश्वर है या नहीं, यह मैं नहीं जानता, लेकिन विश्वास नाम की चीज कोई जरूर होती है, क्योंकि उसी के सहारे मोरारजी भाई ने सारे लांछन, दुःख, घुटन और दर्द सहे हैं। मैं नहीं जानता कि अठारह महीने जेल में वे कैसे रहे, क्योंकि यह पूछने का मौका ही नहीं मिला, लेकिन मुझे यह विश्वास है कि जब वे सब घटनाएं मुझे पता लगेंगी तब उनके बीच भी मुझे मोरारजी भाई की अटूट आस्था और श्रद्धा कहीं टूटती हुई नहीं लगेगी। उनको यह व्यक्तित्व संभवतया सरदार पटेल से मिला है और जनता के प्रति विश्वास गांधीजी की विरासत है। सफेद चूड़ीदार पायजामा, कुरता और सफेद जैकेट पहने दूर से यदि भीड़ में मोरारजी भाई को देखा जाए तो वे जवाहरलाल नेहरू से मिलते-जुलते हैं। ८१ वर्ष की आयु में मोरारजी भाई अब भी बहुत स्वस्थ हैं, और सीधे तन कर चलते हैं। दिन-रात काम करने पर भी थकते नहीं हैं। जिंदगी में न कभी दवा ली और न इंजेक्शन ही लगवाया। विदेश जाते वक्त जब हैजा, कालरा और चेचक के टीके लेने की सरकारी बाध्यता सामनें आयी तब भी वे झुके नहीं, और किसी तरह का समझौता उन्होंने नहीं किया। उनके लिए वहां की सरकारों को यह नियम शिथिल करने पड़े हैं!

अपने १३-१४ वर्षों के संपर्कों के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि मोरारजी भाई को निश्चित रूप से यह अटूट विश्वास रहा है कि वे एक दिन इस महान देश के प्रधानमंत्री अवश्य बनेंगे। ८१ वर्षों की उनकी यह यात्रा उसी चरम-बिंदु के लिए रही हैं। मोरारजी भाई को वर्षों पहले जो मिल जाना चाहिए था, वह अब मिला है। लेकिन देर आये, दुरुस्त आये। मुझे विश्वास है, जो वायदे मोरारजी भाई ने और उनकी जनता पार्टी ने जनता को दिये हैं, वे महज नारे बनकर नहीं रहेंगे बल्कि इसके आगे उठकर जनता को वह मिलेगा, जो वह चाहती है। वर्षों बाद इस देश की जनता को जनता का एक सामान्य व्यक्ति मिला है— देखें दोनों एक-दूसरे का कितना साथ देते हैं! ●

# श्रद्धांजलि

जन्म : १९२१ मृत्यु : ११ अप्रैल '७७

महान कथाकार एवं श्रेष्ठ शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु के आकस्मिक देहावसान की अकल्पनीय खबर हमें वज्रपात-जैसी महसूस हुई। हमारा जी नहीं कर रहा है कि इस दुर्घटना को हम सच मान लें।

अपनी पारदर्शी अन्तर्दृष्टि और अनूठी प्रतिभा के बल पर ही, कथाशिल्प के पारखियों द्वारा सम्पूर्ण संसार में सम्मानित श्री फणीश्वरनाथ रेणु को खोकर हमारे शोकोच्छ्वास घुटकर रह गये हैं... अपने प्यारे रेणु की स्मृति में 'कादम्बिनी' परिवार के सदस्य और पाठक अपना-अपना मस्तक झुकाते हैं...!

मैं आपातकाल के पूर्व से ही जयप्रकाशजी के आंदोलन से संबंधित रहा, इसलिए आपातकाल लागू होते ही मेरे नाम वारंट निकल गया। मैं जल्दी गिरफ्तारी से बचना चाहता था, इसलिए फरार होने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था।

यह नहीं कि मैं जेल से डरता था, फरार होने का एक अन्य कारण था। आपातकाल ने शहर और देहात—दोनों को खामोश कर दिया था। डर का साम्राज्य पूरे देश में व्याप्त था। हम गांव-गांव जाकर आपातकाल का विरोध करना चाहते थे। इसके लिए हम कुँछ छिटपुट कार्यक्रम करते ही रहते थे। गत [illegible] गांधी जयंती पर हमारी योजना [illegible] के शांति-स्तूप पर आपात-स्थिति का [illegible] प्रतिकार करने की थी, लेकिन यह [illegible] हो सका। मैं उसी दिन गिरफ्तार कर [illegible] गया।

गिरफ्तारी के समय मैं रक्सौल [illegible] कालेज के हार्टीकल्चर डिपार्टमेंट के [illegible] एक छोटे-से घर में छिपा हुआ था। [illegible] रामचरितमानस के लंका-कांड का [illegible] कर रहा था। तभी पुलिस-इंस्पेक्टर खिड़की से आया। आते ही उसने [illegible] पहले मुझे प्रणाम किया। फिर मुझे भागलपुर जेल ले जाया गया।

**आपात-स्थिति के दौरान देश के जिन बुद्धिजीवियों को अपने स्वतंत्र विचारों के कारण कारागार की यातनाएं सहनी पड़ीं, उनमें भागलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक एवं हाल ही में लोकसभा के लिए निर्वाचित संसदसदस्य डॉ. रामजी सिंह भी एक हैं। डॉ. रामजी सिंह गत वर्ष गांधी-जयंती पर गिरफ्तार किये गये थे। प्रस्तुत हैं उनके जेल-जीवन के रोमांचक अनुभव।**

# आपातकाल ने शहर और देहात दोनों को खामोश कर दिया था

मेरे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया गया, लेकिन मेरे दूसरे साथी इतने भाग्यवान नहीं थे। उन्हें बुरी तरह पीटा गया। पर यह कोई पहली बार नहीं हुआ था। १९७४ से ही, जब से बिहार-आंदोलन शुरू हुआ था, पुलिस सत्याग्रहियों से बुरी तरह पेश आ रही थी, खास तौर से छात्रों के प्रति, जो आंदोलन की रीढ़ थे। जब उप-कुलपति देवेन्द्र बाबू उन्हें देखने गये थे तब उनकी आंखों में आंसू छलक आये थे। इस घटना का विरोध करने के लिए मैंने एक सभा बुलायी थी। सभा में कुछ गलत आदमी घुस आये थे और शरारती तत्वों द्वारा बिजली गुल करते ही उन्होंने छुरे चलाये। मैं तो बच गया, किंतु एक छात्र को छुरा लग गया। अस्पताल में जब मैं उसे देखने गया तब वह बोला, "सर, हमें तो यही संतोष है कि वह छुरा आपको नहीं लगा।"

इस सबका उद्देश्य आंदोलनकारियों को भयभीत करना था।

आपात-स्थिति के बाद तो ब्रिटिश-

## • डॉ. रामजी सिंह

काल से भी अधिक अत्याचार किये गये।

**जेल: यातना-गृह नहीं, साधना-गृह**

मैं पिछले २३ वर्षों से दर्शनशास्त्र पढ़ा रहा हूं। जेल में मुझे पढ़ने-लिखने का अच्छा अवसर मिला। लोग कहते हैं कि जेल यातना-गृह है, लेकिन मेरे लिए तो साधना-गृह रहा है। अपने अनुभव से मैं कह सकता हूं कि स्वाध्याय व साधना के लिए जेल से बढ़कर और कोई जगह नहीं हो सकती।

जेल में मैंने मार्क्स के 'दास कैपीटल' के दो भाग पढ़े। इसके अलावा लोहिया, दीनदयाल उपाध्याय को भी अच्छी तरह पढ़ा। समाज-दर्शन पर एक हजार पृष्ठ की पुस्तक भी लिख डाली, जो कि राजस्थान ग्रंथ-अकादमी से छप रही है।

जेल आत्म-निरीक्षण के लिए भी अच्छी जगह है। सेल में 'दीवार-मनो-

विज्ञान' (वॉल-साइकालोजी) काम करता है। दीवारों से घिरा व्यक्ति अपने बारे में अच्छी तरह से सोच सकता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को समझना हो तो उसकी जेल-डायरी देखिए !

मेरी दैनिक क्रिया कुछ इस प्रकार थी—सुबह उठकर व्यायाम व योग करना, ११ से १२ बजे और शाम को ७ से ८ बजे तक छात्रों के क्लास लेना। जेल में मीसा व डी. आई. आर. के अंतर्गत बहुत-से छात्र भी बंद थे। मैं उनको 'संपूर्ण क्रांति' के बारे में बताता था। इसके अलावा मार्क्सवाद, साम्यवाद और गांधीवाद पर भी विचार रखता था। शाम को ८ बजे हम बी.बी.सी. सुनते थे !

राजनीतिक बंदियों के साथ तो जेल में कुछ गनीमत है, लेकिन सामान्य बंदियों को सरकार की तरफ से जो खाना मिलता है, उसका आधा भी बंदियों के पास नहीं पहुंचता। बीमारी में उनकी चिकित्सा के लिए पानी से ज्यादा कुछ नहीं मिलता। उनके वस्त्र भी ठीक नहीं होते। स्त्रियां कमर में एक छोटा-सा गमछा और ब्लाउज के नाम पर एक छोटा-सा कपड़ा पहनती हैं। जब कोई विशेष अधिकारी आता है तब उन्हें साड़ियां दी जाती हैं। अधिकारी के जाने के बाद वे फिर से उसी स्थिति में आ जाती हैं। स्त्रियों से अनैतिक कार्य करवाया जाता है। किशोर बंदी भी बड़े बंदियों की वासना के शिकार होते हैं। जेल के वार्डन बीच में दलाली कमाते हैं।

जेलों में रहने की जगह भी ठीक नहीं होती। पाखाने मध्ययुग के हैं। खटमल बहुत हैं। प्रायः कैदी जरूरत से ज्यादा भी रहते हैं। जिसमें ३०० बंदी समा सकते हैं, वहां १३०० बंदी रहते हैं। वे बारी-बारी से थोड़े समय के लिए

रात में सोते हैं। जेल में प्रतिरोध करना पाप है। छोटी-सी गलती के लिए भी बेरहमी से मारा जाता है।

नक्सलवादियों को वार्ड में नहीं रखा जाता, शुरू से ही सेल में रखा जाता है। इनमें ज्यादातर ऐसे हैं जो पांच-पांच साल से सेल में बंद हैं। उनके पांवों की बेड़ियां कभी उतारी नहीं जातीं। कुछ नक्सलवादियों को इस कारण लकवा हो गया। जेल-विधान में २४ घंटे सेल में रखने का नियम नहीं हैं। १५ दिन से ज्यादा जेल में बेड़ियों से बांधे रखा नहीं जा सकता; लेकिन नक्सलवादियों के लिए कोई नियम लागू नहीं होता।

छोटी-छोटी गलती पर नक्सलियों से बड़ा बुरा सुलूक होता था। हजारीबाग जेल में बबलू नाम के नक्सलवादी के सीने पर पुलिसवाले बूट रखकर घूमते थे। उसके सीने से निकलता खून उन इनसानों (?) के चेहरे पर शिकन भी नहीं लाता था।

नक्सलवादी एक-दूसरे से मिल नहीं सकते थे, लेकिन रात की नीरवता में वे क्लास लिया करते थे। चीनी क्रांति और वियतनामी क्रांति-जैसे विषयों पर उनके भाषण होते थे।

भोजन के बाद वे खूब उत्साह से नारे लगाते थे। उनके नारे थे—चेयरमैन माओ जिंदाबाद, नक्सलवाद जिंदाबाद, खून का बदला खून, आदि।

हमारे नारे नक्सलवादियों से अलग होते थे। हम गीत भी गाते थे। एक गीत था—

**संपूर्ण क्रांति होगी**
**संपूर्ण क्रांति होगी**
**यह घनघटा घिरी है**
**हरगिज न व्यर्थ होगी**

अंतिम पंक्ति थी—

**तम पर प्रकाश की जय होगी**

हम नारे लगाते थे—लोकनायक जयप्रकाश जिंदाबाद, संपूर्ण क्रांति जिंदाबाद !

जेल में हमें पता चला था कि फरवरी १९७६ में जब श्रीमती इन्दिरा गांधी कलकत्ता प्रेसीडेंसी जेल देखने गयीं, तब उसी दिन कुछ नक्सलपंथी जेल तोड़कर भागे थे।

भागलपुर जेल में नक्सलपंथियों के लिए एक विशेष वार्ड है। एक दिन रात को गोलियों की आवाज से मैं चौंक पड़ा। लगभग ४० राउंड फायर हुए। पता चला कि नक्सलपंथियों ने हथकड़ियां काटने का प्रयास किया था। हथकड़ियां काटकर वे जेल की दीवार पर एक सीढ़ी लगाकर बाहर कूद गये।

इसी समय पगली-घंटी बज गयी, जो आपात के समय बजायी जाती है। पुलिस के सिपाही दौड़े। जेल की दीवार के बाहर नक्सलपंथियों को ईंट और लाठियों से बुरी तरह पीटा गया। फिर गोली चला दी गयी, जिससे १७-१८ नक्सलपंथी मारे गये।

१५ अगस्त, १९७६ का दिन। हमने स्वतंत्रता-दिवस मनाने का निश्चय किया, लेकिन तभी ऐसी घटना हुई जिसने कि झंडा फहराने का सारा उत्साह ही ठंडा कर दिया। जेल में तीन मरीजों को बुरी तरह पीटा गया। इन तीन मरीजों में से एक थे—प्रसिद्ध कवि बैकुंठ-नारायण सिंह। इनकी गलती यह थी कि इन्होंने अस्पताल में भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठायी थी। मुख्य वार्डन ने कवि के केश पकड़े और जमीन पर घसीटते हुए ले गया। मुख्य वार्डन ने कवि से कहा—"बोलो, इन्दिरा गांधी जिंदाबाद।" लेकिन बैकुंठ बार-बार 'जयप्रकाश जिंदाबाद' कहते रहे। इस पर तीनों को अमानवीय ढंग से पीटा गया। हम लोगों ने इस अन्याय के विरुद्ध सामूहिक अनशन ३ दिन तक किया। इस संदर्भ में अनेक लोगों ने पत्र भी लिखे, लेकिन कुछ नहीं हुआ। डिप्टी-कमिश्नर, जिसे एक महीने में एक बार जेल का निरीक्षण करने जरूर आना चाहिए, एक वर्ष से जेल नहीं आया।

यह कहना गलत होगा कि नक्सलपंथी जयप्रकाश नारायण पर विश्वास नहीं करते। उन्होंने नक्सलपंथियों को बचाने के लिए काफी कुछ किया। कुछ नक्सलपंथियों को उन्होंने राष्ट्रपति से अपील करके फांसी के फंदे से बचाया है।

नक्सलवाद का कारण देश में बेकारी व भुखमरी है। मेरा विश्वास है कि जयप्रकाश नारायण की आखिरी धरोहर, जो कि वे देश को देंगे, यही होगी कि वे जनता को देश के लिए उपयोगी बना देंगे। जनजागरण ही स्वतंत्रता का मूल्य है। इस ऐतिहासिक विजय को देशवासियों को इतिहास की यात्रा का प्रथम चरण मानना चाहिए, पूर्ण विराम नहीं! हमें 'संपूर्ण क्रांति' की ओर बढ़ना है।

सेंसरशिप अपने आप में हठीली, कुंद-दिमाग और अड़ियल टट्टू—जैसी होती है। होशियार संवाददाता उसे चाहे जब चकमा दे सकता है। हां, लड़ाई के वक्त सेंसर का अर्थ कुछ और होता है, क्योंकि उस समय देश की सुरक्षा की बात प्रमुख होती है।

राजनीतिक सेंसरशिप को तो समूची दुनिया के पत्रकारों ने तोड़ने लायक चीज माना है। मार्च १९४४ में जापान ने भारत पर हमला किया। इस बारे में खबरों के प्रकाशन पर भारत सरकार ने पाबंदी लगा दी।

# सेंसर के अंधेरे में...

• डी. आर. मानकेकर

दूसरे महायुद्ध के अंत में मित्र-सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति जनरल आइजनहावर ने एक पत्रकार-वार्त्ता आयोजित कर खबर दी कि जरमनी ने आत्मसमर्पण कर दिया है। साथ ही खबर ४८ घंटे तक न छपने की रोक लगा दी, लेकिन एसोसिएटेड प्रेस के एडवर्ड केनेडी ने खबर तुरंत ही अपने लंदन-कार्यालय भेज दी और वहां से दुनिया भर में फैल गयी। आइजनहावर के मुख्यालय ने केनेडी की मान्यता रद्द कर दी, जबकि केनेडी का कहना था कि समूची दुनिया लंबे समय से शांति की राह देख रही थी और यह खबर तुरंत पाने की हकदार थी।

**संवाददाता की खुराफात !**

पहले महायुद्ध के शुरू के दिनों में मित्र-राष्ट्रों की हालत नाजुक थी। अनुमानों का बाजार गरम था कि पेरिस मुख्यालय की सर्वोच्च कमान में फेरबदल हो रहा है। इस बारे में खबरों पर कड़ी पाबंदी थी। फिर भी 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' के पेरिस-संवाददाता ने एक दिन अपने समाचार-संपादक के घर के पते पर तार भेज दिया : **प्रबंधक हटा दिये गये। उनका काम स्थानीय सहायक संभाल रहे हैं।**

अगली सुबह न्यूयार्क में पूरी पृष्ठ-भूमि के साथ विस्तार से खबर छप गयी कि मित्र-सेनाओं के प्रमुख सेनापति मार्शल हेग को हटाकर उनकी जगह उनके फ्रांसीसी सहायक मार्शल फूश को नियुक्त किया गया है। पूरा समाचार अमरीकी पत्रिका 'हारपर' के ताजे अंक में प्रकाशित एक लेख से तैयार कर लिया गया था, जिसमें काफी विश्लेषण के बाद हेग की जगह फूश के आने का अनुमान लगाया गया

था। 'हेराल्ड ट्रिब्यून' ने 'स्कूप' देने के मामले में बहुत बड़ा हाथ मारा था।

असम पर जापानी हमले के बारे में मेरा अपना 'स्कूप' सेंसर के आगे धीरज से काम लेने, नपे-तुले शब्दों के इस्तेमाल और एक हद तक भाग्य के साथ दे जाने का नतीजा था। लेकिन कोहिमा-इंफाल मार्ग पर ३३ वीं और चौथी कोर के मिलने तथा इंफाल का घेरा उठने की महत्त्वपूर्ण खबर पर मेरा 'स्कूप' किस्मत के बजाय मेहनत का फल था। लोगों को उम्मीद थी कि असम की पहाड़ियों में बारिश खत्म होने तक जापानी डटे रहेंगे। इंफाल लंबे समय तक घेरे में दिन काटने के लिए तैयार हो रहा था। दूसरे संवाददाताओं के साथ मैं भी मानसून बिताने के खयाल से आबादी की ओर लौट रहा था। अचानक लगा कि ३३ वीं और चौथी कोर पखवारे भर में मिल जाएंगी। मैं लौटकर मोरचे पर पहुंच गया। सूचना-अधिकारी से बात की तो उसने मुझे जरूरत से ज्यादा आशावादी बताया। जुलाई की भारी बारिश से जलमग्न हो रही पहाड़ियों में मैं दिन गिन-गिनकर पखवारे भर मेहनत से जुटा रहा। इलाके में मीलों दूर तक मैं अकेला संवाददाता था और अंत में मेरा सोचना सही उतरा।

भारत में लड़ाई के शुरू के दिनों में मेरा सामना ऐसी सेंसरशिप से हुआ जो सरकारी काम में भी अपने निजी रागद्वेष से काम ले रही थी। मैं तार से एक संवाद लंदन भेज रहा था, जि[समें] स्पेनी गृहयुद्ध में भेजी गयी अंतर्राष्ट्री[य] सेना के प्रमुख और ब्रिटिश कॉम[…] पार्टी के सदस्य टॉम विंट्रिंघम का ना[म] था। बंबई के प्रतिक्रियावादी सेंसर [ने] इस नाम पर आपत्ति करते हुए कहा [कि] यह तो कुख्यात आदमी है। मुझे कह[ना] पड़ा कि ऐसे ही कुख्यात तो सर स्टै[फर्ड] क्रिप्स और हमारे दोस्त स्टालिन भी हैं। बाद में वह समाचार मैंने नयी दिल्ली [के] प्रमुख सेंसर से मंजूर करा लिया।

एक समाचार में मैंने नागाओं [के] भोलेपन की शाब्दिक तसवीर खींच[ते] हुए नागा-लड़ाकों के जहर-बुझे बा[णों] का जिक्र किया। सेंसर ने जहर-बुझे शब्द काट दिया, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय कानू[न] के अनुसार लड़ाई में जहर के इस्तेमा[ल] पर पाबंदी है। मैंने समझाया कि मे[रे] ब्योरे का मौजूदा लड़ाई से ताल्लुक नहीं है और नागा लोग तो लड़ाई में शामि[ल] ही नहीं हैं। आखिर सेंसर मान गया।

**तू डार-डार, मैं पात-पात**

इंफाल पर जापान का घेरा शुरू होने [के] वक्त रोक लगायी गयी कि 'घेराबंदी' शब्द इस्तेमाल न किया जाए। मैंने तर[की]ब से काम लिया। इंफाल घाटी की भूरचनों का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया कि जमीन के रास्ते इंफाल में घुसने के केवल तीन दरवाजे हैं और इन तीनों से जापानी सेना की दूरी लगातार कम होती जा रही है। घेराबंदी शब्द की

तुलना में कहीं ज्यादा जोर से कान खड़े करनेवाली इस कहानी को सेंसर ने मंजूरी दे दी और वह छपी तो उसी रात कलकत्ता के स्टाक-मारकेट में धमाका हो गया।

कोहिमा की लड़ाई के मामले में तो सेंसर ने खासी मुश्किल खड़ी कर दी थी। पूरे कोहिमा पर जापानी कब्जा हो चुका था और सड़क किनारे एक छोटी-सी पहाड़ी पर मौजूद ब्रिटिश टुकड़ी हफ्तों घिरी रही। भारत सरकार ऐसे प्रवक्ता लगातार खबरें निकालता रहा कि तादाद में थोड़ी होने पर भी ब्रिटिश-भारतीय टुकड़ी ने बहादुरी से सफल मुकाबला किया है।

बाद में और ब्रिटिश दस्ते पहुंचे तो लड़ाई के बाद कोहिमा पर ब्रिटेन का फिर कब्जा हो गया। संवाददाता परेशानी में पड़ गये। अभी तक लिख रहे थे कि ब्रिटिश सेनाएं बहादुरी से कोहिमा की रक्षा कर रही हैं और अब उसी कोहिमा

गरज तसव्वुरे-शामां-सहर में जीते हैं,
गरिफ्ते साया-ए-दीवारां-दर में जीते हैं।
यों ही हमेशा उलझती रही है जुल्म से खल्क,
न उनकी रस्म नयी है न अपनी रीत नयी।
यों ही हमेशा खिलाये हैं हमने आग में फूल,
न उनकी हार नयी है न अपनी जीत नयी।

**--फैज अहमद फैज**

**आपात-स्थिति में ऐसी रचनाओं का पुनर्प्रकाशन भी संभव नहीं था**

राजनीतिक कारणों से, जिनका सैनिक सुरक्षा से रत्ती भर भी संबंध नहीं था, जनता को यह पता नहीं लगने देना चाहती थी कि भारत का एक हिस्सा जापानियों के हाथ चला गया है।

मणिपुर में जापान के बढ़ने की खबर तो किसी तरह भारत के अखबारों में छप भी गयी, पर कोहिमा के पतन की खबर सेंसर दबाकर बैठ गया। संवाददाताओं से बड़ी-बड़ी बातें करके अधिकृत पर ब्रिटिश सेनाओं का कब्जा हो जाने की बात पाठकों के गले कैसे उतारें।

इसी दौर में एक बार जापानी रेडियो ने खबर दी कि सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज कोहिमा पहुंच गयी है, उसने भारत की धरती पर राष्ट्रीय झंडा गाड़ दिया है और इलाके में आजाद हिंद सरकार कायम हो गयी है। उसी दरम्यान ब्रिटिश सेना के जासूसों ने बताया कि आजाद हिंद फौज की महिला पलटन

रानी झांसी रेजीमेंट काहिरा आ पहुंची है। मैंने यह समाचार सेंसर में पेश किया और सेंसर ने उसे कूड़ेदान के हवाले कर दिया। बाद में मालूम पड़ा कि आजाद हिंद फौज के सिख जवान सवेरे नहाने के बाद अपने लंबे बाल धूप में सुखा रहे थे

**शब्दों का हेरफेर**

अमरीकी रेडियो-संवाददाता सेसिल ब्राउन की पुस्तक 'स्वेज टु सिंगापुर' में इस तरह के कितने ही दिलचस्प किस्से हैं। 'क्रिश्चियन साइंस मानीटर' के काहिरा-संवाददाता ने एक संवाद में लिखा कि "जनरल बरगन जोली ने बेनगाजी में शरण ली है।" शरण के लिए अंगरेजी शब्द 'असायलम' का एक अर्थ पागलखाना भी होता है। सेंसर ने समूचा वाक्य काटते हुए संवाददाता को झिड़क दिया, "तुम अच्छी तरह जानते हो कि बेनगाजी में कोई पागलखाना नहीं है।"

मैं अकसर सोचता हूं कि 'सैनिक-सेंसर' कहे जानेवाले इन मसखरों से मनो-रंजन न हो तो युद्ध-संवाददाताओं का मन और कैसे बहल सकेगा !

**आजादी के बाद**

आजादी के बाद भारत में सेंसर का और भी कठमुल्ला रूप देखने को मिला। १९६५ में पाकिस्तान से हुई लड़ाई पर मैंने एक पुस्तक लिखी, जिसमें डिवीजनों और उनके सेनापतियों के नाम भी दे दिये। सैनिक जासूसी के प्रमुख मेजर-जनरल बत्रा ने ये नाम इस आधार पर काट दिये कि दुश्मन को पता चल जाएगा। मजा ... बत्रा साहब अच्छी तरह जानते थे ... इन सबका पूरा ब्योरा पाकिस्तानी ... पास पहले से मौजूद था। न भी होता ... लड़ाई में पकड़े गये सैकड़ों युद्धबंदियों से वे लोग जानकारी ले ही सकते थे। ... के दिमागी दिवालियापन की वजह से ... कारी दुश्मन के बजाय अपने ही लोगों ... बची रह गयी।

इसी लड़ाई के वक्त एक ब्रिटिश टे... विजन कैमरामेन संयोग और उससे ज्यादा भारत के भाग्य से, एक ऐसी फि... उतारने में सफल हो गया, जिसमें यु... विराम की घोषणा के बाद भी भारत ... एक नागरिक ठिकाने पर पाकिस्तानी हवाई हमले की तसवीर थी। मौके का तकाजा था कि भारत के पत्र में प्रचार के इस ... दार काम के लिए उसका शुक्रिया अदा कर तत्काल उसके उड़ जाने का प्रबंध कर दि... जाता, जिससे वह फिल्म बिना देर किये दुनिया को दिखायी जा सके, पर ... दिल्ली के नौकरशाह खानापूरी की बात पर अड़ गये। फिल्म धुलने और समुचित ... तीय अधिकारी द्वारा जांच के लिए ... भेजा जाना जरूरी माना गया। इस... मतलब था दो बेशकीमती दिन ... जाना। कैमरामेन की दिलचस्पी वहीं ... हो गयी और वह हाथ झाड़कर अलग ... हो गया। लकीर का फकीर सेंसर ... तरह अनजाने ही दुश्मन का मददगार ... जाता है।

# उसका शौक हत्यारों का शिकार

• तिशा ब्राउनी

उसका शौक अजीब है। लोग हत्यारों से बचने की कोशिश करते हैं, वह उनकी टोह में रहती है—बिलकुल एक अनुभवी और कुशल शिकारी की तरह।

उसका नाम है—गुयाह सखादियो। हरे कंचे-जैसी आंखोंवाली ३७ वर्षीया गुयाह अवैध मादक द्रव्यों का व्यापार करनेवाले तथा पेशेवर हत्यारों का 'शिकार' करने में कुशल है, पर यह 'शिकार' उन्हें न्यायोचित दंड दिलाने के लिए नहीं, वरन उनसे 'दोस्ती' करने के लिए होता है।

गुयाह के इस शौक ने उसे लगभग चार सौ माफिया-गिरोहों के संपर्क में ला दिया है। इन संपर्कों की वजह से उसकी सिसिली के अपराध-जगत में गहरी पहुंच है।

गुयाह के बाबा सिसिली निवासी थे। आम तौर पर यह माना जाता है कि अमरीका के माफिया-गिरोहों के सर्वेसर्वा सिसलीनिवासी ही होते हैं।

गुयाह १७ वर्ष की अवस्था में रोम से लंदन आयी थी। पंद्रह साल पहले उसे बी. बी. सी. की एक डॉक्यूमेंट्री टीम के साथ दुभाषिये के रूप में सिसिली जाने का अवसर मिला था। यह उसकी पहली सिसिली यात्रा थी।

जब गुयाह से पूछा गया कि वह माफिया-गिरोह के सदस्यों से संपर्क करने में किस तरह सफल होती है तब उसने आगे बताया कि मैं प्रायः उन लोगों से मिलने से पहले न तो उन्हें पत्र लिखती हूं और न टेली-फोन पर ही संपर्क करती हूं बल्कि सीधे उनके दरवाजे पर जा धमकती हूं। इससे उन्हें न चाहते हुए भी मिलना पड़ता है।

शुरू-शुरू में तो वे मौसम की बात करते हैं, फिर वे अपने आप को, जैसा कि सारी दुनिया के अपराधी करते हैं, निर्दोष सिद्ध करने पर बल देते हैं या फिर स्वयं को मौजूदा व्यवस्था का शिकार बतलाते हैं। माफिया-गिरोह के सदस्य मितभाषी होते हैं। वे आंखों के इशारों से इस प्रकार के संदेश जैसे, 'बाहर जाओ', 'बोलो मत', 'पांच मिनट रुको, 'फिर आना' आदि आसानी से प्रेषित कर सकते हैं।

गुयाह का कहना है कि माफिया-गिरोह के मुखिया को पहचानना बहुत ही आसान है, क्योंकि गिरोह के सदस्य अपने मुखिया के प्रति हमेशा सम्मान प्रदर्शित करते हैं। सिसिली में 'सम्मान-

माफिया का एक शिकार

नीय व्यक्ति' का मतलब किसी ऐसे व्यक्ति से होता है जिसने आतंक और हिंसा द्वारा अपने लिए शक्तिशाली स्थिति बना ली हो।

माफिया गिरोह के सदस्य अपने मुखिया के साथ परंपरागत व्यवहार को पूरी तरह निभाते हैं। मसलन, मुखिया हमेशा मेज के मध्यवाली प्रमुख कुर्सी पर आकर बैठता है और खाने-पीने के लिए जो भी कुछ परोसा जाता है सबसे पहले उसके सामने ही रखा जाता है। हरेक व्यक्ति उसे औपचारिक सम्मान-सूचक शब्द से संबोधित करता है, जबकि वह उन्हें अनौपचारिक शब्दों के साथ संबोधित करता है। शक्ति और संपत्ति का प्रदर्शन उसकी विशेष अदा होती है।

गुयाह का कहना है कि अनेक माफिया-सरदारों से उसके अच्छे संपर्क रहे हैं। इनमें एंजलो ला बारबेरा नामक प्रसिद्ध माफिया सरदार उल्लेखनीय है।

ला बारबेरा को हत्या करने और मादक द्रव्यों की तस्करी के जुर्म में ... साल की सजा हुई थी। लेकिन एक दिन जेल में ही उसकी हत्या कर दी गयी। हालांकि, यह माना जाता है कि दो पुलिस-वाले हर समय उसकी निगरानी पर रहते थे, फिर भी उसके लिए जेल में खाना हमेशा होटल से भेजा जाता था और उसके मित्र उससे बराबर मिलते-जुलते रहते थे। अंत में माफिया-गिरोह के तीन आद-मियों ने उसके पास प्रहुंचने का इंतजाम
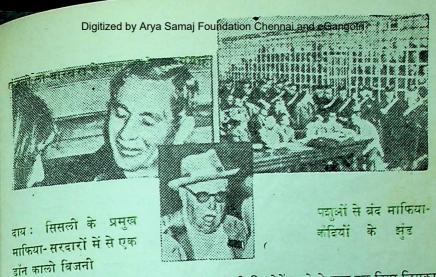
दाय : सिसली के प्रमुख माफिया- सरदारों में से एक डॉन कालो विजनी

पशुओं से बंद माफिया-कोठियों के झुंड

कर ही लिया और उस पर चाकुओं से इतने वार किये गये कि वह मर गया।

गुयाह सिसिली में अनेक कुख्यात माफिया गिरोहों से भी मिली। ऐसी मुलाकातों के समय वह अपने बचाव के लिए कभी भी अपने पर्स में चाकू या पिस्तौल ले कर नहीं गयी। उसे पुलिस ने समय-समय पर यह चेतावनी भी दी कि उसका अमुक-अमुक से मिलना खतरे से खाली नहीं है, लेकिन उसने इन चेतावनियों पर कभी ध्यान नहीं दिया।

गुयाह का कहना है कि हमें ऐसे लोगों से भेंट-मुलाकात करते समय उनके किसी कारोबारी रहस्य को जानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। ऐसी कोशिश को वे अपना अपमान समझते हैं और इसका परिणाम हत्या भी हो सकता है।

सन १९७४ में सिसिली के एक किसान ने अपने फार्म-स्थित घर में तस्करी की सिगरेटें रखने से मना कर दिया जिसका नतीजा यह निकला कि उस किसान को जिंदा ही जला दिया गया। ऐसे ही एक अन्य आदमी को जब कि वह सरे बाजार अपने बच्चे को साथ लिये जा रहा था, गोली से उड़ा दिया गया।

कॅंडिडो चुडनी नामक एक माफिया-सदस्य ने एक बार किसी हत्या का सख्त विरोध किया तो तीन महीने बाद उसे स्वयं ही हत्या का शिकार होना पड़ा। हुआ यह कि एक दिन उसके घर में बिजली फेल हो गयी। अंधेरे का लाभ उठा उस पर गिरोह के लोगों ने चाकुओं से दर्जनों वार किये। उसे अस्पताल भेजा गया जहां वह ठीक हो गया, लेकिन हत्यारों ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा। वे सर्जन के वेश में उसके बिस्तर के पास पहुंचे और उसे उसकी पत्नी के सामने ही गोलियों से भून दिया गया। ●

फिलिप नाइट्ले पश्चिमी जगत के जाने-माने लेखक हैं। अपनी पुस्तक 'द फर्स्ट केजुअल्टी' में उन्होंने पत्रकारिता के पेशे में मानवीय नैतिकता से संबद्ध एक मूलभूत प्रश्न उठाया है—'जब दुनिया में कहीं भी युद्ध छिड़ता है तब पहला शिकार कौन होता है ?' और फिर खुद ही इस प्रश्न का उत्तर भी दे दिया है—'पहला शिकार बनता है—सत्य !'

विश्व को, विशेषकर यूरोप को, दूसरे तथा चौथे-पांचवें दशक में छिड़े विश्व युद्धों के दौरान हुए भयानक विनाश की

# अखबारी खबरों पर विश्वास मत कीजिए

याद आज भी ताजा है। सबसे ताजा उदाहरण वियतनाम या फिर अरब-इस्रायली युद्ध और अब तक सुलग रहे लेबनानी गृहयुद्ध का है। ये सभी लड़ाइयां दोनों ही पक्षों की ओर से उन्हीं उच्च आदर्शों के रक्षार्थ लड़ी गयी थीं। लेकिन १९३६ से १९३९ के दौरान हुए स्पेनी गृहयुद्ध ने विश्व जन-मानस को जिस तीव्रता से उद्वेलित किया था, उस तरह कोई भी युद्ध नहीं कर पाया। संभवतः इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि उस गृहयुद्ध में दोनों ही पक्षों के मन में यह बात मौजूद थी कि वे क्यों और किसलिए लड़ रहे हैं।

स्पेनी युद्ध में एक ओर थे पु... स्पेन के प्रतिनिधि—धनी, ... पादरी और शाही सेना के ... तत्त्व, जो पुरानी परंपरा-व्यवस्था के ...र्थक थे और स्पेन से साम्यवादियों ... सफाया करने को कटिबद्ध थे। उनका ... था एक पवित्र ईसाई स्पेन की पुनर्... दूसरी ओर थे किसान, मजदूर, ... स्पेन के लेखक-पत्रकार एवं जन... पद्धति से चुनी गयी सरकार के प्रति... रिपब्लिकन तत्त्व। वे सभी नये यु... सपना आंखों में लेकर युद्ध में उतरे ...

• सुशीला गु...

**पत्रकारों की प्रतिब...**

हिटलर और मुसोलिनी नेशनलिस्टों ... पक्षधर बनकर गृहयुद्ध में कूदे थे और ... यत संघ रिपब्लिकनों का समर्थन कर ... था। इसी बात ने इस गृहयुद्ध को ... सिद्धांत-संघर्ष का रूप दे दिया था—... वाद एवं मानवीय स्वाधीनता के ... संघर्ष। यूरोप, अमरीका एवं विश्व के अ... भागों से हजारों स्वयंसेवक स्पेन पहुंच... युद्ध में शामिल हुए। उन्हें किसी ने ... जाकर लड़ने के लिए नहीं कहा था। ...

स्वेच... के ... दात... स्थ... वैध... अस...

था, ... पर ...

आ... प... जि... मू... सै... द्व... स... पू... ऐ... व... र...

स्वेच्छा से गये थे। उनकी ही तरह विश्व के बड़े-बड़े समाचार-पत्रों के युद्ध-संवाददाता, लेखक-पत्रकार वहां गये थे। शीर्षस्थ बुद्धिजीवियों ने इसे सत्य, नैतिक वैधता बनाम तानाशाही तथा अराजकता, असत्य-अत्याचार का युद्ध कहा था।

उस युद्ध में जिन लोगों ने भाग लिया था, वे आज भी अपनी उसी प्रतिबद्धता पर अटल हैं। उनके लिए रिपब्लिकनों की

हो गये थे? और यहीं एक दूसरा प्रश्न उभरता है—एक युद्ध-संवाददाता का कर्तव्य होता क्या है?

क्या 'न्यूयार्क टाइम्स' के मिडिलटन का यह कहना सही है कि 'उसे (संवाददाता को) सत्य को देखकर, अपनी व्याख्या के अनुसार प्रस्तुत करना चाहिए, लेकिन उसकी व्यक्तिगत भावनाओं का प्रवेश नहीं होना चाहिए, या फिर मैथ्यू का यह

आर्थर कोस्लर  आंद्रे मारलो  अर्नेस्ट हेमिंग्वे  स्टिफन स्पेंडर

पक्षधरता आज भी उतनी ही सार्थक है जितनी वह ४० वर्ष पूर्व थी।

इस संदर्भ में फिलिप नाइट्ले ने एक मूलभूत प्रश्न उठाया है—क्या इस तरह सैद्धांतिक रूप से प्रतिबद्ध होने के बाद उनके द्वारा भेजे गये युद्ध-संवाद निष्पक्ष रह सके थे? क्या उन्हें एकदम तथ्यपरक एवं पूर्वाग्रहरहित कहा जा सकता था? कहीं ऐसा तो नहीं कि उनके माध्यम से दुनिया को जो खबरें पढ़ने को मिलीं उन पर संवाददाता के व्यक्तिगत विचार, सिद्धांत हावी

कथन—"मैं सदा मानता हूं कि ईमानदारी और खुलेपन के साथ अपना पक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। एक संवाददाता को अपने मस्तिष्क के साथ-साथ मन से भी परिचित होना चाहिए।"

विश्व के अनेक भागों से हजारों स्वयंसेवक इंटरनेशनल ब्रिगेड में सम्मिलित होकर लड़ने गये थे। उसके पीछे फासीवाद से संघर्ष करने की उनकी व्यक्तिगत प्रतिबद्धता ही सक्रिय थी। और इसी भावना से प्रेरित होकर मालरो, औरवेल, दास

पापोस, स्पेंडर, अर्नेस्ट हेमिंग्वे, वेस्ली और कोस्लर-जैसे अपने युग के शीर्षस्थ लेखक भी वहां गये थे। उन्होंने स्पेनी गृहयुद्ध की जो रिपोर्टें भेजी थीं उनसे अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन एवं अन्य बहुत से देशों में जनमत पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा था।

अर्नेस्ट हेमिंग्वे 'नार्थ अमेरिकन न्यूज-पेपर एलायंस' (नाना) की ओर से युद्ध संवाददाता बनकर गया था। जब युद्ध छिड़ा, तब 'द वीक' का संपादक क्लाड काकबर्न स्पेन में छुट्टियां मना रहा था। वह तुरंत रिपब्लिकन मिलिशिया में शामिल हो गया। साथ ही अपनी पत्रिका तथा साम्यवादी पत्र 'डेली वर्कर' को युद्ध समाचार भेजता रहा। जार्ज औरवैल 'न्यू स्टेट्समैन' की ओर से स्पेन पहुंचा था। किम किल्बी लंदन के 'द टाइम्स' की ओर से नेशनलिस्टों का पक्षधर बनकर गया था। हालांकि अंदर ही अंदर वह सोवियत जासूस की भूमिका निभा रहा था।

**व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव**

मैथ्यू अकसर युद्ध संवाददाताओं के कर्तव्यों और उनसे संबद्ध नैतिक पक्षधरता की बात करता था। उसने कहा है—"स्पेनी गृह-युद्ध में शामिल हम सभी भावनात्मक दृष्टि से उससे जुड़े थे। मेरे मन में हमेशा अपने को पक्षपात रहित कहनेवाले लोगों की बात उभरती है। और उन संवादकों और पाठकों को क्या कहा जाए जो पूर्वाग्रह रहित, तथ्यपरक सच्चे संवादों की मांग करते हैं। क्योंकि कहने को कुछ भी क्यों न कहा जाए, लिखनेवाला मनुष्य ही होता है और उसमें भी भावनाएं एवं कुछ निश्चित मान्यताएं होती हैं। चाहे-अनचाहे उनका प्रभाव पड़ता ही है। जब इस स्थिति में हम पक्षधरता की आलोचना करते हैं तब ईमानदारी, समझ एवं न्याय-वादिता-जैसे तत्त्वों की उपेक्षा कर देते हैं, जबकि महत्त्व इन्हीं बातों का होता है। एक पाठक को पूरे तथ्य जानने का अधिकार तो है, पर उसे यह मांग करने का अधिकार नहीं कि एक पत्रकार तथा इतिहास लेखक उसके मत से भी सहमति दिखाये।

लेकिन यह बात तभी ठीक मानी जा सकती है, जबकि संवाददाता अपना पक्ष स्पष्ट कर दे और फिर सारे तथ्य पाठकों के सामने रखे। पर उन संवाददाताओं का क्या कहा जाए, जिन्होंने जानबूझकर प्रचारात्मक संवाद भेजे। इस संदर्भ में आर्थर कोस्लर और क्लाड काकबर्न के नाम लिये जा सकते हैं। कोस्लर को मलागा के पतन के बाद बंदी बनाया गया था। नेशलिस्ट प्रेस अधिकारी लुई बोलिन ने उसे प्राणदंड दिलवाया। वह मृत्युदंड पाकर तीन महीने जेल में रहा। बाद में एक नेश-नलिस्ट युद्ध बंदी के बदले में छूटा था।

इसके बाद कोस्लर ने 'न्यूज क्रानिकल' में कुछ लेख लिखे, जिनमें बताया कि नेश-नलिस्टों ने बंदियों पर कैसे-कैसे जुल्म ढाये। उनकी पुस्तक 'स्पेनिश टेस्टामेंट' प्रकाशित होने पर सारे विश्व में फ्रांको के विरुद्ध प्रबल जन-आक्रोश उठ खड़ा हुआ।

था। लोग कोस्लर को एक ईमानदार पत्रकार मानते थे, इसीलिए उनके विवरणों को एकदम सही माना गया था।

असली बात १९५४ में पता चली। कोस्लर ने स्वीकार किया कि 'स्पेनिश टेस्टामेंट' का पूर्वार्द्ध उसने राष्ट्रवादी जेल में नहीं, पेरिस में लिखा था। एगिट प्राय (पेरिस में कामिंटर्न के आंदोलन तथा प्रचार विभाग) के अध्यक्ष विली मुंजेन बर्ग ने बीच में अनेक बार उसे बताया था कि पुस्तक को किस तरह लिखा जाना चाहिए।

मुंजेन वर्ग अकसर कोस्लर के फ्लैट में धड़धड़ाता हुआ आता और पुस्तक की पांडुलिपि के पृष्ठ उठाकर पढ़ता। फिर उन्हें फेंककर चिल्लाता--"कुछ नहीं, एकदम बेजान! अरे, उन पर पूरी ताकत से वार करो। सारी दुनिया को बताओ कि वे बंदियों पर कैसे टैंक दौड़ाते हैं। कैसे उन पर पैट्रोल छिड़ककर उन्हें जीवित जला देते हैं। दुनिया नेशनलिस्टों की क्रूरता के किस्से सुनकर कांप उठे, ऐसा लिखो।"

उसी दौरान मुंजेन वर्ग ने कोस्लर को बर्लिन के एक नामी अखबार का समाचार दिखाया, उसमें लिखा था--'रेड मिलीशिया के अधिकारी अपने सैनिकों को एक पीस्ता के मूल्य के वाउचर देते हैं। हर वाउचर का अर्थ है एक बलात्कार करने का अधिकार। एक सैनिक उच्चाधिकारी की पत्नी अपने फ्लैट में मरी पायी गयी। उसके पास ६४ वाउचर मिले।' और मुंजेन वर्ग ने कहा था, "कोस्लर, प्रचार ऐसे किया जाता है।"

काकवर्न का मामला तो और भी विचित्र था। आटो काट्ज नामक चेक मुंजेन वर्ग का प्रमुख सहयोगी था। रिपब्लिकन पक्ष इस बात पर क्षुब्ध था कि फ्रांस सरकार ने उन्हें भेजे जानेवाले अस्त्र-शस्त्र रोक लिये थे। अब उन्हें कैसे राजी किया जाए? इसके लिए काकवर्न और काट्ज ने मिलकर एक नकली लड़ाई का विवरण तैयार किया। दिखाया गया कि रिपब्लिकनों के पास हथियारों की बहुत कमी है, पर उनका मनोबल ऊंचा है।

काट्ज लिखता है—'हमारे पास उस जगह की केवल एक साधारण गाइड

## और इंतजार हो चुका!

**अखबारी खबरों पर विश्वास न करने का एक नमूना पेश है। समाचार उद्धृत है कोरबा (मध्यप्रदेश) से प्रकाशित एक साप्ताहिक से--"... कांग्रेस अपनी पूर्व परंपरा के अनुसार इस क्षेत्र से जीत के लिए आश्वस्त है। ... कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की सफल चुनावी व्यूहरचना के फलस्वरूप श्री तिवारीजी की जीत की स्थिति पूर्वानुमान से अधिक सशक्त हो गयी है। फिर भी मतगणना का इंतजार करना ही होगा।" (और मतगणना में कांग्रेस उम्मीदवार की पराजय हुई।)**

बुक थी। उसकी मदद से तकनीकी सैनिक जानकारियां नहीं दी जा सकती थीं। तरीका यही था कि हम ऐसा युद्ध दिखाएं, जो एक शहर की तंग गलियों के दो छोरों से लड़ा गया हो। तभी एक पत्रकार भटकता हुआ वहां जा पहुंचे और उस लड़ाई के बीच रहकर उस घटना का विवरण भेजे।

बस, योजनानुसार वह लड़ाई स्पेन के एक छोटे शहर की गलियों में लड़ी गयी। उसमें सड़कों के नामों एवं वीरता दिखानेवाले सैनिकों का जिक्र भी हुआ।

अल्काजार की घेराबंदी के समय काकबर्न और प्रावदा तथा इजवेस्तिया का संवाददाता मिखाइल कोल्टजोव दुर्ग प्राचीर पर खड़े थे। तभी लुई फिशर वहां पहुंचा। बस, कोल्टजोव ने तुरंत फिशर को आड़े हाथों लेना शुरू कर दिया। उसने फिशर से कहा—'तुमने यह समाचार क्यों भेजा कि रेड मिलीशिया का मनोबल गिरा हुआ है? यह बात सही है, पर इससे विश्व-जनमत पर दुष्प्रभाव पड़ा है।' फिशर ने कहना चाहा कि सत्य, सत्य है और पाठकों को सत्य जानने का पूरा अधिकार है। कोल्टजोव का कहना था—'उन्हें यह अधिकार किसने दिया है?'

पर अगर पाठक को सत्य जानने का कोई अधिकार नहीं है और युद्ध-संवाददाता को अपने पक्ष के हित-साधन की बात ही कहनी चाहिए, तो फिर वहां उनकी आवश्यकता क्या है? तब तो इसे दोनों पक्षों के प्रचार-तंत्र अच्छी तरह कर सकते हैं।

इसी का दूसरा उदाहरण अर्ने... हेमिंग्वे का है। वे उस युद्ध में शामि... अंगरेजी साहित्य के लेखक-पत्रकार थे। हेमिंग्वे ने स्पेन की चार यात्राएं कीं और जमकर संवाद भेजे। लेकिन उन संवादों में भी तकनीकी दृष्टि से वही खामी थी।

हर युद्ध का वर्णन करते समय हेमिंग्वे खुद को जिस तरह एकदम बीच में दिखाते थे वह बात अविश्वसनीय लगती है। रक्तपात, क्षत-विक्षत अंगों तथा गोलाबारी के बारे में उनके वर्णनों का एक ही उद्देश्य था—पढ़नेवालों को आघात पहुंचाना। सैनिकों की बातचीत पर हेमिंग्वे-स्टाइल की इतनी स्पष्ट छाप है कि उसे सच माना नहीं जा सकता।

अक्तूबर १९३८ में अपनी अंतिम स्पेन-यात्रा के समय 'स्क्रिबनर' के संपादक मेक्सवेल पार्किंस के सामने हेमिंग्वे ने माना था कि दोनों ही पक्षों ने क्रूर कर्म किये थे।

बाद में हेमिंग्वे ने अपने चर्चित उपन्यास 'फार हूम द बेल्स टोल' में वह सब कुछ लिखा था, जिसे वह एक युद्ध-संवाददाता के रूप में नहीं कह पाया था। पर पाठक एक युद्ध-संवाददाता की कलम से लिखा गया सच पढ़ना चाहते हैं। उनकी रुचि युद्ध के बाद लिखे गये रोमांटिक उपन्यास के काल्पनिक वर्णनों में नहीं होती।

यह सत्य के साथ और सत्य जानने के इच्छुक लोगों के साथ एक बड़ा मजाक था और वह भी सच के नाम पर। ●

# मौत के तीन हजार वर्ष बाद

• डॉ. कुसुम भार्गव

सन १९७६ के अंत में पेरिस के ला बोर्ने हवाईअड्डे पर मिस्र का एक विमान उतरा। फ्रांसीसी स्थल और वायुसेना की टुकड़ियों ने विमान में आये शाही अतिथि के सम्मान में सैनिक सलामी दी तथा फ्रांसीसी मंत्रिपरिषद के एक सदस्य और अन्य प्रमुख सरकारी अधिकारियों ने उसका अभिवादन किया। किंतु शाही अतिथि ऐसी स्थिति में नहीं था कि इस सम्मान को बाहर आकर स्वीकार कर सकता।

यह शाही अतिथि और कोई नहीं मिस्र का प्रसिद्ध सम्राट स्व. रैमसेस द्वितीय था, जिसके रथारूढ़ सैनिकों ने तीन हजार वर्ष पूर्व हजरत मूसा और उनके अनुयायियों को लाल सागर की ओर खदेड़ा था। रैमसेस द्वितीय अपने तीन हजार वर्ष पुराने ममीकृत अवशेषों (लेप द्वारा सुरक्षित शव) की चिकित्सा के लिए पेरिस आया था। उसकी ममी में काफी दिनों से खराबी आनी शुरू हो गयी थी, जिसे सर्वप्रथम पहचाना फ्रांस के बाइबिलविद प्रो. मारिस बुसेल ने। वे १९७४ में अपने शोध के सिलसिले में रैमसेस द्वितीय की ममी की जांच कर रहे थे। खराबी का पता चलने पर शव की अनेक एक्स-रे तसवीरें उतारी गयीं और विविध प्रकार की जांच की गयी, जिससे ज्ञात हुआ कि सम्राट की ममी में कीटाणु उत्पन्न हो गये हैं, फफूंद लग गयी है तथा उसमें विकार आना शुरू हो गया है।

बुसेल ने जब ममी की अस्वस्थता की सूचना काहिरा संग्रहालय के अधिकारियों को दी तब वे महज़ चकित ही नहीं हुए, उन्हें उससे आघात भी पहुंचा।

अगले वर्ष फ्रांस के राष्ट्रपति वेलरी गिस्कार्ड द' ऐस्तेंग ने मिस्र के अधिकारियों के पास सुझाव भेजा कि सम्राट रैमसेस द्वितीय की चिकित्सा का कार्य पेरिस के 'म्यूजी द ल होम' संग्रहालय के विशेषज्ञों को सौंपा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने अन्य अनेक ममियों की चिकित्सा सफलतापूर्वक की है।

**प्राचीन लेप का रासायनिक विघटन**

शाही अतिथि के औपचारिक राजकीय सम्मान के बाद बीस वैज्ञानिक उनके

रोग के निदान और उनकी चिकित्सा के कार्य में जुट गये। पहले तो उन्होंने रैमसेस द्वितीय की काठ से बनी शव-मंजूषा को एक जीवाणुरहित कक्ष में रखा तथा उस कक्ष का तापमान धीरे-धीरे
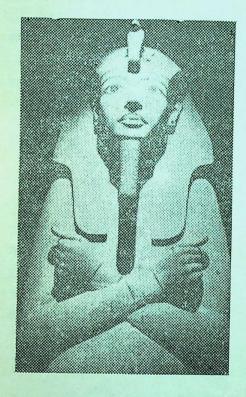
रैमसेस द्वितीय की पाषाण-प्रतिमा

घटाना शुरू किया। तापमान काफी कम हो जाने पर उन्होंने ममी (शव) को मंजूषा में से निकाला, जो पोलीस्टायरीन में लिपटी हुई थी। चिकित्सक-दल के नेता लायोनेल बेलोत ने ममी की परीक्षा करते हुए कहा कि "हम रैमसेस को कम से कम छूना चाहते हैं।" उनका विचार है कि हाल के ही वर्षों में शव को सुर[illegible] रखने के लिए इस्तेमाल किये गये [illegible] लेप का रासायनिक विघटन हो गया है। इसका कारण यह है कि रैमसेस द्वि[illegible] की ममी ३,१३६ वर्षों तक आबू सि[illegible] के खुश्क जलवायु में सुरक्षित रही, लेकि[illegible] १९१२ में उसे काहिरा ले जाया ग[illegible] जहां का नम और उमस-भरा जल[illegible] सम्राट को माफिक नहीं आया। चिकि[illegible]त्सकों का विचार है कि सम्राट की म[illegible] को कीटाणुओं से मुक्त करने के बाद [illegible] एक वातानुकूलित मुहरबंद प्रयोगशा[illegible] में सदा के लिए रख दिया जाएगा। [illegible] प्रयोगशाला उन अंतरिक्ष-यानों के कक्षों [illegible] तरह होगी, जिनमें अंतरिक्ष-यात्री पृ[illegible] की कक्षा से बाहर भेजे जाते हैं।

**शक्ति का अपह[illegible]**

प्राचीन मिस्री साम्राज्य के निर्माता हु[illegible]हाब के बाद ईसा से १३१५ वर्ष पू[illegible] बूढ़ा रैमसेस प्रथम मिस्र की राजगद्दी प[illegible] बैठा। दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो ग[illegible] और उसका बेटा सेती प्रथम मिस्र [illegible] सम्राट बना। सेती प्रथम ने मिस्री साम्रा[illegible] का विस्तार फिलस्तीन की उत्तरी सी[illegible] तक किया तथा सीरिया के तत्काली[illegible] सम्राट के साथ शांति-संधि कर ली। उ[illegible] ही नूबिया में पहाड़ी की चोटी पर [illegible] सिंबल के मंदिर का निर्माण शुरू करा[illegible] था, किंतु वह उसे पूरा नहीं करवा पाया। १२९२ ई. पू. के लगभग उसका देह[illegible] हो गया।

सेती प्रथम ने अपने बड़े बेटे को अपने राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, लेकिन सेती की मृत्यु के बाद उसके छोटे बेटे रैमसेस द्वितीय ने भाई से राजगद्दी छीन ली और स्वयं मिस्र का सम्राट बन बैठा। राजधानी थेबेस में अपनी शक्ति को सुदृढ़ बनाकर वह अपने पिता की स्मृति में बने मंदिर और उसकी कब्र का निरीक्षण करने गया तथा उसकी अधूरी इमारत को पूरा कराया। उसने अपने पिता के पूर्ववर्ती राजाओं के स्मारकों की भी मरम्मत करायी तथा आबू सिंबल के मंदिर का निर्माण संपन्न कराया।

रैमसेस द्वितीय ने अपने पिता के समाधिमंदिर में एक शिलालेख खुदवाया, जिसमें उल्लेख है कि उसके मृत पिता (सेती प्रथम) ने उसके स्वास्थ्य और दीर्घ शासन के लिए देवताओं से प्रार्थना की तथा दोनों वरदान प्राप्त किये। मेंफिस के मंदिर के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि नूबिया में अनेक सोने की खानें थीं और कुश के राज्यपाल ने यह आग्रह किया कि खानों की खुदाई तब तक नहीं हो सकती जब तक कि वहां तक जानेवाले मार्ग पर पीने के पानी की व्यवस्था नहीं हो जाती। शीघ्र ही नील नदी की घाटी के अंत में नूबिया जानेवाली सड़क के किनारे कुब्बान में बीस फुट की गहराई पर मीठा पानी खोद निकाला गया, जिसके कारण रैमसेस द्वितीय का खजाना नूबिया के सोने से भर गया।
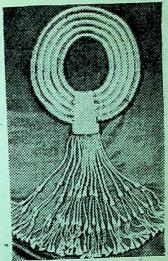
मिस्री रानियों का स्वर्णहार

रैमसेस द्वितीय : तीन हजार वर्ष बाद
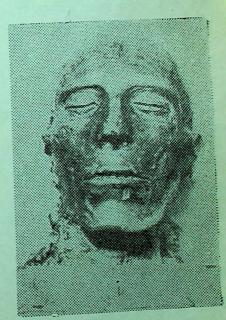
उसने अधिकांश संपत्ति का उपयोग थेबेस में अपने पिता की समाधि तथा अपनी समाधि और कर्णक मंदिर के निर्माण में किया, जिसकी नींव रैमसेस प्रथम के जमाने में रखी गयी थी। उन सब के भग्नावेश से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक उससे बड़ी इमारत नहीं बन पायी।

इन स्मारकों में उसने अपनी विशाल प्रतिमाएं बनवायीं। संसार में इतनी बड़ी प्रतिमाएं दूसरी नहीं हैं। थेबेस में लगी उसकी प्रतिमा का भार लगभग एक हजार टन था।

**डेढ़ सौ बेटे-बेटियों का बाप**

रैमसेस द्वितीय एक महान विलासी सम्राट था। उसके भोजन के लिए साइप्रस और बेबीलोन तक से सामग्री मंगायी जाती थी। उसके हरम में असंख्य सुंदरियां थीं। वह लगभग सौ बेटों और पचास बेटियों का पिता बना। बेटियों को उसने अपनी पत्नी भी बनाया।

अपने शासनकाल के तीसवें वर्ष में रैमसेस द्वितीय ने एक विशेष समारोह का आयोजन किया। उसके बाद वह प्रत्येक दूसरे अथवा तीसरे वर्ष समारोह का आयोजन करता था। वह अपने प्रिय बेटे खामवेस को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, लेकिन अकेला खामवेस ही नहीं, उसके बारह बड़े बेटे उसके जीवनकाल में ही मर गये। रैमसेस ने ६७ वर्ष तक मिस्र पर शासन किया और ९० वर्ष से अधिक आयु प्राप्त की। ईसा पूर्व १२२५ में उसकी मृत्यु के बाद उसका तेरहवां बेटा गद्दी पर बैठा। अगले डेढ़ सौ वर्षों तक उसके वंशजों का शासन रहा, प्रत्येक स्वयं को रैमसेस कहता था।

**आबू सिंबल के मंदिर**

रैमसेस द्वितीय का सबसे बड़ा स्मारक आबू सिंबल के प्रख्यात मंदिर हैं। नूबिया के इन मंदिरों में अमन, रे (सूर्य) और पितामहों के साथ ही रैमसेस स्वयं प्रमुख देवता बन गया। वहां के एक मंदिर की अधिष्ठात्री देवी उसकी प्रसिद्ध सम्राज्ञी नेफ्रेतिरी है, जो अपने सौंदर्य के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध थी।

तूरिन संग्रहालय में सुरक्षित रैमसेस द्वितीय की प्रतिमा उसकी ममी से हूबहू मिलती है।

सीरिया-सम्राट खेतासर ने उसे अपनी बड़ी बेटी भेंट में दी थी, लेकिन जब उसकी छोटी बेटी ने रैमसेस के सौंदर्य के बारे में सुना तब वह भी उस पर मोहित हो गयी और उसने भी उससे विवाह किया।

स्वप्निल सौंदर्य के स्वामी का रूप और यौवन तो चिकित्सक नहीं लौटा पायेंगे, फिर भी वे उसके संरक्षित शव को भावी पीढ़ियों के लिए स्वस्थ कर सकते हैं, जिससे कि वे पीढ़ियां एक महान सभ्यता के उस प्रतीक के पार्थिव अवशेष का दर्शन कर सकें।

—प्रवक्ता, हिंदी विभाग,
जे. जे. कालेज, तराना (म. प्र.)

पाकिस्तानी कहानी

• खदीजा मस्तूर

कल साजिद मियां का निकाह था, मगर खुशी के बजाय उनके चेहरे पर वहशत बरस रही थी। वे अपनी दोनों बहनों से बार-बार कह रहे थे—"ए बड़ी बजिया ! आप अच्छी तरह सुन लें। मेरा बिस्तर हमेशा की तरह अम्मां बी के कमरे में बिछा रहेगा। उसे कोई नहीं हटायेगा।"

"तो क्या तुम अब भी दूध की बोतल नहीं भूले ?" छोटी बजिया की कतरनी-जैसी जबान चलती। वे जोर-जोर से कहकहे लगाने लगतीं और साजिद मियां दांत पीसकर रह जाते। अपना सेहरा सुन-सुनकर भी साजिद मियां की आंखों की वहशत कम न हुई। ऐसा लगता कि सेहरा गुलाब के फूलों के बजाय कांटों से गूंथा गया है और वे कांटे उनकी आंखों में चुभ रहे हैं। मोटी-मोटी बादामी पुतलियोंवाली बेचैन आंखें घूम-फिरकर अपनी अम्मां बी को देखे जा रही थीं। वे थकी हुई, निढाल, लुटा-लुटा-सा चेहरा लिये पैरों

पर लिहाफ डाले अपने बिस्तर पर बैठी थीं, मगर जब लड़कियां लहककर गातीं—**"दौड़कर सेहरे को, अम्मां ने बलाएं ले लीं"** तब उनके बचे-खुचे हिलते हुए दांत सेहरे की लड़ी की तरह होंठों पर बिखर जाते।

"मैं कितनी बार कहूं कि अब आप थक गयी हैं। थोड़ी देर के लिए सो जाइए। मैं भी लेट लेता हूं।" साजिद मियां बिस्तर पर बैठकर जूतों के फीते खोलने लगे।

"लो भला, मैं कैसे सो जाऊं? अभी तो बहुत-से काम पड़े हैं।"

"सब काम हो जाएंगे, अम्मां बी! आप पहले ही हुक्म दे चुकी हैं। दिन के दो बज रहे हैं। अब आप जरा देर आराम कर लीजिए। ए बड़ी बजिया!" उन्होंने जोर से आवाज दी—"कोई नहीं सुनता! ए छोटी बजिया . . . खुदा के वास्ते थोड़ी देर के लिए ढोल उठा दीजिए। अम्मां बी को सो जाने दीजिए।"

"कोई नहीं सोयेगा। ढोल नहीं उठेगा," छोटी बजिया ने चीखकर जवाब दिया।

"मत रोको बेटे . . . गाने दो . . . यह मेरी आखिरी खुशी है। नींद का क्या है, जब फुरसत मिलेगी सो जाऊंगी।" अम्मां-जी ने बड़ी मुहब्बत से साजिद को देखा और फिर बिस्तर पर लेटकर पांव फैला दिये। साजिद मियां झपटकर उठे और कमरे के सब दरवाजे बंद कर दिये। अब आवाजें जैसे कहीं दूर से आ रही थीं।

"बस, अब आप सो जाएं।" साजिद ने अम्मां बी की ओर से करवट ले ली।

उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि अम्मा बी अगर दोपहर को न सोयें तो उनकी तबीयत खराब हो जाती है। यही कारण था कि वे डिस्पेंसरी से एक-डेढ़ बजे जरूर आ जाते। उन्हें यह भी पता था कि जब तक वे स्वयं भी अपने बिस्तर पर नहीं लेटेंगे, अम्मां बी को नींद नहीं आयेगी।

जनरेशन-गैप के इस शिद्दतपसंद जमाने में बहुत-से लोग साजिद मियां को विस्मय से देखते।

"साजिद . . ." अम्मा ने हौले से पुकारा।

"जी, अम्मां बी . . ." साजिद मियां ने अम्मा बी की ओर करवट बदल ली।

"मैं सोच रही हूं कि अब तुम्हारा पलंग यहां से उठवाकर स्टोर में रखवा दूं। अब इसकी यहां क्या जरूरत रह गयी है?"

अम्मां बी अपनी भर्राई हुई आवाज पर काबू पाने का प्रयत्न कर रही थीं।

"यह बिस्तर इसी तरह सजा रहेगा अम्मां। मैं कहां जा रहा हूं भला! आप ऐसी बातें मत सोचिए।"

साजिद मियां ने अम्मां बी की तरफ करवट बदल ली और मुंह पर लिहाफ ओढ़ लिया।

मुंह छिपाकर साजिद तो अपनी ओर से सोने का बहाना करने लगे, पर उन्हें क्या पता कि अम्मां बी विस्मय के मारे आंखें फाड़े उन्हें किस तरह देख रही हैं!

उन्होंने भी साजिद को दिखाने के

लिए झूठ-मूठ आंख बंद कर लीं, मगर नींद खाक आती। वे निरंतर सोचे जा रही थीं। चार छोटे-छोटे बच्चों को छोड़कर अम्मां बी के पति ऐन जवानी में अल्लाह को प्यारे हो गये थे। अम्मां बी ने महल्ले की लड़कियों को कुरान पढ़ा-पढ़ाकर बच्चों को पाला। दोनों लड़कों को पढ़ाया। दोनों लड़कियों का दहेज जोड़ा। जैसे-

जैसे लड़कियों को शरीफ घरानों में शादियां कीं। अम्मां बी-जैसी नेक और समझदार बीबी की सारे खानदान में धूम मची थी। मां अगर मुसीबतों से जरा भी घबरा जाए तो यतीम बच्चे बहक जाते हैं, मगर अम्मां बी ने तो बच्चों को कभी यतीमी का एहसास होने ही न दिया।

माजिद, जो बड़े लड़के थे, इंजीनियरिंग कालेज में तीसरे वर्ष की परीक्षा दे रहे थे और छोटे साजिद ने एफ. एस-सी. मेडिकल में टाप किया और आराम से मेडिकल कालेज में दाखिल हो गये। उस दिन अम्मां बी ने खुदा के हुजूर में सारा दिन इबादत में बिताया।

वक्त जब आशाओं और आकांक्षाओं से भरपूर हो तब बीतते देर नहीं लगती। माजिद ने इंजीनियरिंग कालेज में आखिरी वर्ष की परीक्षा दी और प्रथम आकर सब को विस्मित कर दिया। उन्हें इंगलैंड जाने के लिए सरकारी वजीफा भी मिल गया। सारा खानदान अम्मां बी के इस सौभाग्य पर टूट पड़ा, पर अम्मां बी बिलख-बिलखकर रो रही थीं—"मैं नहीं जाने दूंगी। बेटियां परायी हो गयीं। यही दोनों लड़के मेरी जिंदगी का सहारा हैं, मेरे बुढ़ापे की लकड़ी हैं।"

तभी अम्मां बी ने रोते-रोते एक बार गौर से माजिद की आंखों में झांका और

आंसू पोंछ लिये—"जाएगा, मेरा बेटा जरूर जाएगा।" उन्होंने सबके सामने भर्रायी हुई आवाज में एलान किया, "मैं तो यों ही रो रही थी—बस यों ही . . ."

माजिद मियां जब जाने लगे तब सबने महसूस किया कि साजिद अपने भाई को विदा करने हवाईअड्डे पर भी नहीं गये। वे घर में बैठे अम्मां बी को लिपटाये उनके आंसू पोंछते रहे। उसके बाद तो वे जैसे अम्मां बी का साया बन गये।

कभी-कभी अम्मां बी पूछतीं—"जब तुम यहां की पढ़ाई खत्म कर लोगे, तब क्या पता तुमको भी सरकार वजीफा दे दे। तुम पढ़ाई में हमेशा अच्छे रहे हो। तुमने हमेशा वजीफा लिया है।"

साजिद मियां हंस पड़ते—"अम्मां बी, मैं आपको छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। मैं ऐसे वजीफों पर थूकता भी नहीं।"

फिर भी संदेह की सिल अम्मां बी के सीने को कुचलती रहती। दो साल बाद माजिद स्वदेश वापस आये तो तोहफों से लदे-फदे थे। दोनों बहनें भाई के प्रेम में अभिभूत हो-होकर जैसे बिछी जा रही थीं। इतरा-इतराकर खानदानवालों को तोहफे दिखा रहीं थीं और अम्मां बी को माजिद इतना प्यारा लग रहा था कि जी चाहता था उठाकर पलकों पर बिठा लें।

एक साल नौकरी करने के बाद माजिद ने बड़े आराम से अम्मां को बताया कि वे वापस इंगलैंड जा रहे हैं। यहां उनकी शिक्षा का जो पारिश्रमिक मिलता है, वे उससे किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं सकते। अम्मां बी पर जड़ता छा . . . पर जब माजिद ने उनकी गोद में . . . रखकर इजाजत चाही तब वे बड़ी मु . . . से हाथ उठाकर उनके सिर पर रख . . . उन्हें ऐसा महसूस हो रहा था कि . . . शरीर और प्राणों का एक-एक चप्पा . . . टूटकर बिखर गया है।

माजिद ने बड़े लाड़ से अम्मां के गले में झूल-झूलकर उन्हें समझाया, "अ . . . बी, सिर्फ कुछ बरसों की बात है। वहां . . . मैं आपको इतना कुछ कमाकर भेजूंगा . . . आप अतीत के सारे दुख भूल जाएंगी . . . यह तीनों कमरों का पुराना मकान को . . . में बदल जाएगा। बस, आप एक अच्छी-सी बहू ढूंढ़ रखिएगा और . . ." वे और . . . जाने क्या कुछ कहते रहे, पर अम्मां बी ने कुछ भी न सुना। उनके कानों में जैसे क . . . बहुत दूर से सांय-सांय की आवाजें आ रही थीं।

फिर कुछ दिन बाद माजिद चले गये . . . एक साल तक माजिद का कोई खत न . . . आया। अम्मां बी की आंखों में इंतजार की आंधियां आतीं, मगर कोई खत उड़कर न आता। वे साजिद से कुछ न कहतीं। उन्हें परेशान नहीं करना चाहती थीं। आखिर . . . परीक्षा में एक-दो माह रह गये थे।

आखिर आंधी थमी। माजिद का खत आ गया। लिखा था कि उसने शादी कर ली है। वहां की नागरिकता अपना ली है। शादी के समय अम्मां बी की बहुत . . .
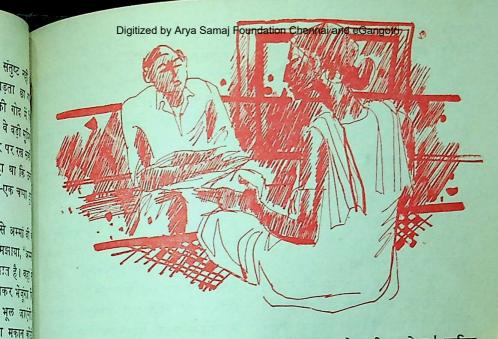
याद आयी । बहुत देर तक रोता रहा । फिर एलिस ने उसका सिर अपने सीने से लगाकर तसल्ली दी तो करार आ गया । आखिर में लिखा था कि आपकी बहू आप-से मिलने को बेचैन है ।

अम्मां बी खत पढ़ने के बाद देर तक अकेली बैठी कांप-कांपकर रोती रहीं । उन्हें एलिस की जात से नफरत हो गयी ।

शाम को दोनों बेटियां अम्मां बी के पास आयीं । दोनों उदास थीं । दोनों एलिस को बुरा-भला कह रही थीं । अम्मां ने पहली बार बेटियों पर व्यंग्य किया, "उस का भविष्य बन गया । अब तुम लोग खुश हो । तुम्हारी इच्छाएं पूरी हो गयीं ।"

बड़ी बेटी तो उस समय चुप हो गयी, पर छोटी बेटी किस तरह चुप रहती, "कोई हमने सिखाकर भेजा था कि वहीं फीके शलजम से शादी कर लेना ! माजिद यहां होते तो क्या शादी न करते ? कौन-सा अम्मां के पहलू से लगे बैठे रहते । अब तुम न करना शादी ही . . ."

बात कहां से कहां पहुंच गयी । अम्मां बी के दिल पर चोट लगी—"जब साजिद शादी करेगा तब . . .?"

रात को जब अम्मां बी की बेटियां अपने-अपने घरों को चली गयीं तब अम्मां बी चुपके से बाक्स-रूम में गयीं । कांपते हुए हाथों से ताला खोला और माजिद की दुलहन के लिए जो बरी बनायी हुई थी उसे खोयी-खोयी नजरों से देखती रहीं, फिर बक्स को बंद करके जब वे ताला लगाने लगीं तब जैसे सारे शरीर की ताकत उनके हाथों में आ गयी । "अब यह ताला कभी नहीं खुलेगा," वे होंठों में बड़-

चढ़ायीं और फिर खांति से आकर अपने बिस्तर पर बैठ गयीं।

जिस दिन साजिद ने एम. बी. बी-एस. के आखिरी वर्ष की परीक्षा दी उस दिन अम्मां बी सारा दिन खुदा से गिड़गिड़ाकर दुआएं करती रहीं कि उनका बेटा अच्छे नंबरों से पास न हो। उसे अब कोई वजीफा न मिले।

पर कुछ महीने बाद नतीजा निकला तो दुआओं के प्रतिकूल था। सारा खानदान मुबारकबादों से झोलियां भरे सारे घर में दनदनाता फिर रहा था।

"मैं तो कहती हूं अम्मां बी साजिद को सर्जरी की ऊंची शिक्षा के लिए माजिद के पास भेज दीजिए। अब तो वहां अपना घर भी है। एलिस ऐसी बुरी भी नहीं। अगर बुरी होती तो माजिद बहनों को किस तरह पूछ सकता था? अभी उसने बच्चों को रुपये और कपड़े भिजवाये थे।"

"छोटी बजिया, मैं कहीं नहीं जाऊंगा। मैं यहीं किसी गली में डिस्पेंसरी खोलूंगा। मैं यहां रहकर आप बहनों की अधिक सेवा करूंगा।" साजिद ने इस तरह कहा कि उसके स्वर में व्यंग्य स्पष्ट झलक रहा था।

साजिद मियां की डिस्पेंसरी और उनके हाथ की शफा ऐसी मशहूर हुई कि जो रिश्तेदार छोटे डाक्टरों के पास भी न जाते थे, वे भी मुफ्त इलाज कराने दौड़ पड़े और अम्मां बी के सीने पर धरी हुई संदेह की सिल भी आखिर को सरक गयी।

फिर भी रात सोते-सोते एक बार हाथ बढ़ाकर साजिद के सिर को छूतीं और फिर एहसास के साथ सो जातीं कि वह उनके पास है।

सोने की दवाइयां खाने के बावजूद कभी-कभी उन्हें रात देर से नींद आती। वे सोचतीं कि अब साजिद की शादी कर दें पर इस खयाल से ही वे उलझकर रह जातीं कि तनहाई और बुढ़ापा उनसे क्या सलूक करेगा! साजिद भी माजिद की तरह बदल नहीं जाएगा? खानदान वाले तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कोई उनके मुंह पर कह गयी थीं कि अम्मां बी साजिद की शादी नहीं करेंगी। उसे कलेजे से लगा-लगाकर बूढ़ा कर देंगी। उन्होंने बड़ी सफाई से कहा था कि जब साजिद अपने हमउमरों को चार-चार बच्चों का बाप देखता होगा, तब क्या सोचता होगा? यह सब कुछ सुनने के बाद भी वे अनजान बन जातीं।

रात जब साजिद यहां अम्मां बी के मलमल के सफेद झाग-जैसे दुपट्टे को आंखों पर लपेटे सोने की कोशिश कर रहे थे तब अम्मां बी ने उन्हें धीरे से पुकारा, "साजिद बेटे ऽ ऽ"

"अरे! आप अभी तक सोयीं नहीं अम्मां बी?"

"बेटे, मैं सोच रही थी कि अब तुम्हारी शादी कर दूं।"

"शादी!" साजिद मियां विस्मित रह गये। वे बैठकर अम्मां बी का मुंह

ताकने लगे। वह तो शादी का खयाल ही दिल से निकाल चुके थे।

"तुम हैरान क्यों हो रहे हो बेटे ?" अम्मां बी ने पूछा।

"अम्मां। मैं शादी नहीं करूंगा। मैं नहीं चाहता कि आपकी मुहब्बत में कोई और हिस्सेदार बने।" उन्होंने साफ आवाज में जवाब दिया।

"सो जा पगले। मुझे अब नींद आ रही है।" लेटकर अम्मां बी ने लिहाफ सिर तक खींच लिया और पलटकर यह भी न देखा कि स्विच ऑफ करने के बाद साजिद कब तक एक तरह से बैठे रहे।

★

जब अम्मां बी दुलहन को विदा कराके लायीं तब वे खुशी से फूली न समा रही थीं, पर रस्म के बाद जब दुलहन को उसके कमरे में ले गये तब उनके दिल पर एकदम सन्नाटे ने जैसे हमला कर दिया, "अब साजिद भी चला जाएगा !"

साजिद की नजरें निरंतर अम्मां बी का पीछा कर रही थीं। वे अपने बिस्तर पर पांव लटकाये बैठे थे। जब रिश्ते की भावजें उन्हें लेने आयीं तब वे बेहद परेशान हो गये, "मैं अभी नहीं जाऊंगा। अम्मां बी, बहुत थक गयी हैं।" उन्होंने अम्मां बी को सहारा देकर आराम से लिटा दिया। फिर उनके पांयते बैठकर सूजे हुए पैरों को आहिस्ता-आहिस्ता मलने लगे।

रात को लगभग दो-ढाई बजे वे कुछ सोती, कुछ जागती-सी थीं कि उन्होंने आदत के अनुसार हाथ बढ़ाकर साजिद के ऊपर रख दिया। फिर एकदम हड़बड़ा कर उठ गयीं। पांव दबाते-दबाते यह पगला यहीं सो गया। उन्होंने जल्दी से टटोलकर लैंप का स्विच आन किया। "क्या करें यह यहां सो गया।" उन्होंने सारे का सारा लिहाफ खींच लिया। गावतकिये पर उसी प्रकार लिहाफ पड़ा था कि अम्मां बी को एकदम हंसी आ गयी— उसने सोचा होगा कि अम्मां बी रात को एक बार उस पर हाथ रखती हैं। वे हाथ रखेंगी और फिर सो जाएंगी।

सोचते-सोचते वे बराबर मुसकरा रही थीं। उनकी आंखों में आंसू आ गये, जिन्हें जल्दी से दुपट्टे के आंचल से पोंछ लिया और करवट लेकर बड़े प्यार से गावतकिये पर हाथ रखकर कुछ मिनट उसे टटोलती रहीं और फिर आराम से सो गयीं। **—अनुवादक : सुरजीत**
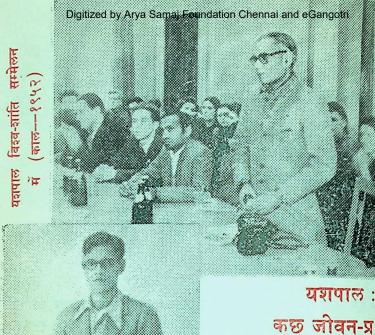
यशपाल विश्व-शांति सम्मेलन में (काल--१९५२)

# यशपाल :
## कुछ जीवन-प्रसंग

बायें--यशपाल लार्ड इरविन की स्पेशल ट्रेन के नीचे बम-विस्फोट का काम सौंपे जाने के समय (काल--१९२९)

नीचे--पं. कमलापति त्रिपाठी से मंगला प्रसाद पारितोषिक ग्रहण करते हुए (काल--१९७१)

ऊपर—१९६३ में प्रयाग में आयोजित षष्ठिपूर्ति-समारोह के अवसर पर कविवर सुमित्रानंदन पंत से मान-पत्र ग्रहण करते हुए यशपाल

ऊपर— यशपाल और प्रकाशवती। जेल में विवाह के बाद पहला चित्र (काल—१९३६)

बायें—यशपाल और प्रकाशवती अपनी पुत्री किरण के साथ (काल—१९४३-४४)

# यशपाल
## एक टूटती हुई साहित्यिक कड़ी

● मन्मथनाथ गुप्त

यदि यशपाल एक भी कहानी या उपन्यास न लिख जाते, केवल 'सिंहावलोकन' (तीन भाग) और 'गांधीवाद की शवपरीक्षा' लिख जाते यानी यदि उनका जीवन क्रांतिकारी आंदोलन में उनके भाग और उस संबंध में लेखन तक ही सीमित होता, तब भी वे जगत-विख्यात नहीं तो विख्यात अवश्य होते, क्योंकि वे जिन क्रांतिकारियों के साथ संबद्ध थे, उनमें सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, भगवतीचरण–जैसे लोग थे। सच कहा जाए तो जैसे डॉ. जानसन के लिए बॉसवेल (उनके जीवनी-लेखक) थे, उसी प्रकार उक्त क्रांतिकारियों के लिए यशपाल थे।

### क्रांति के प्रति बौद्धिक समर्पण

दूसरे शब्दों में, यदि यशपाल और उनसे कहीं नीचे उतरकर (साहित्यिक दृष्टि से) शिव वर्मा, विजयकुमार सिंह, डॉ. भगवानदास माहौर न लिखते, तो उस अग्नियुग का इतिहास केवल दैनिक पत्रों में प्रकाशित मुकदमे की रिपोर्टों, जज के फैसलों आदि दूसरे दर्जे की सामग्री पर ही निर्भर रहता। यशपाल ने भगतसिंह आदि का जो मानवीय रूप प्रस्तुत किया, वह स्वाभाविक रूप से कुछ पक्षपातपूर्ण होने पर भी मार्मिक, सजीव और उच्च कोटि के उपन्यास का आनंद देने वाला है। पक्षपात इस कारण आ गया कि वे इन लोगों के साथी होते हुए भी एक बात में इनसे कमजोर पड़ते थे। वे क्रांति के प्रति बौद्धिक रूप से समर्पित होते हुए भी, उसके प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा उस प्रकार समर्पित न हो सके जैसे आजाद, भगतसिंह और उनके दूसरे पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती क्रांतिकारी। क्रांतिकारिता बौद्धिक विलास मात्र नहीं है, बल्कि यह मांग करती है कि व्यक्ति अपने विचारों के लिए एकाग्र और कार्यशील हो और यदि आवश्यकता पड़े तो फांसी पर भी चढ़े या गोलियों का जवाब गोलियों से देता हुआ महानिद्रा में सो जाए।

यहां यह बताना भी अनुचित नहीं होगा कि क्रांतिकारी दल में तरुणियां भी ली जाती थीं, पर यह नियम था कि कोई भी क्रांतिकारी किसी क्रांतिकारिणी से अंतरंगता न करे। किंतु कमजोरी कहिए या औद्धत्य, यशपाल इस नियम को लांघ गये। फलस्वरूप चंद्रशेखर आजाद ने वीरभद्र नामक एक सदस्य को आदेश दिया कि यशपाल को गोली मार दो। साहित्य का यह सौभाग्य है कि वीरभद्र

मित्रों के बीच : यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार (बायें) एवं मन्मथनाथ गुप्त (दायें) के साथ

ने हुक्मउदूली कर यशपाल को खबर दे दी और यशपाल उड़नछू हो गये। बाद को यशपाल ने उस क्रांतिकारिणी को अपनी जीवनसंगिनी बनाया। इससे यह तथ्य बदल नहीं जाता, बल्कि कुछ जटिल हो जाता है जब यशपाल लगभग चालीस साल बाद वीरभद्र के उस एहसान से मुक्त होने के लिए एक प्रसिद्ध साप्ताहिक में एक लेखमाला लिखते हैं कि वीरभद्र ने विश्वासघात करके चंद्रशेखर आजाद को १९३१ की २७ फरवरी को इलाहाबाद के अलफ्रेड (अब आजाद) पार्क में नहीं मरवाया। इस लेखमाला में उन्होंने इस अकाट्य तथ्य का कोई उत्तर नहीं दिया कि दल ने उसी जमाने में आजाद की शहादत के ऐन बाद कानपुर के नवयुवक क्रांतिकारी रमेशचंद्र गुप्त को दो बार वीरभद्र को मरवा देने के लिए भेजा और उस युवक को दोनों बार असफलता के बावजूद दस साल की सजा मिली।

यशपाल ने वीरभद्र की सूचना प्राप्त होते ही भागकर चंद्रशेखर आजाद के दल 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक दल' से अलग एक उपदल बनाकर अपने को उसका कमांडर-इन-चीफ घोषित किया, पर यह भी सत्य है कि वह दल कोई

कार्य नहीं कर सका। इन सारी बातों का प्रभाव यह पड़ा कि जब यशपाल वर्षों जेल काटकर विचारों से प्रौढ़ होकर जेल से निकले, तब भगतसिंह पर काफी तथ्य-परक ढंग से लिख पाने पर भी चंद्रशेखर आजाद पर उनकी लेखनी की स्याही में कुछ कमी रह गयी। फिर भी 'सिंहाव-लोकन' क्रांतिकारी साहित्य की एक अमूल्य कृति है। उसका मूल्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा, क्योंकि ज्यों-ज्यों समय का प्रवाह बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों यशपाल-साहित्य के छिपे हुए गुणों का हरा-भरा संसार अधिकाधिक उद्घाटित होता जाएगा।

**नैनी जेल की सजा और अनशन**

तृतीय दशक के प्रारंभ में यशपाल नैनी जेल से सजा पाकर फतेहगढ़ सेंट्रल जेल में हमारी बैरक में आये। उस समय वहां मेरे साथ थे मणींद्रनाथ बनर्जी, जिन्होंने काकोरी-षड्यंत्र की चार फांसियों (रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला, रोशनसिंह, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी) के लिए जिम्मेदार जितेन बनर्जी नामक एक पुलिस-अफसर पर पिस्तौल से हमला किया था। गोली पेड़ में लगी थी और वह बच गया था। दूसरी बात यह हुई कि पिस्तौल पकड़ी नहीं जा सकी, इसलिए उन्हें दस साल की सजा हुई थी। उस समय फतेहगढ़ जेल में रमेशचंद्र गुप्त आदि कई अन्य क्रांतिकारी कैदी 'सी' श्रेणी में थे। उनको मारापीटा गया, जिसके कारण यशपाल, मणींद्र और मैंने अनशन कर दिया। फौरन जेल अधिकारियों ने मुझे और यशपाल को उस बैरक से हटा दिया। हम दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया गया, पर हमारी पुस्तकें और अन्य 'रियायतें' छीन ली गयीं। ऐसा मनोबल तोड़ने के लिए किया जाता था। ऐंग्लोइंडियन जेलर लेडली एक ही जालिम था। उसने सोचा 'सी' श्रेणी के नवयुवकों से ही यह बवाल शुरू हुआ है, इसलिए उन्हें तोड़ना चाहिए। तदनुसार उसने उन पर साधारण बद-माश कैदियों के द्वारा अप्राकृतिक व्यभि-चार करवाना चाहा, पर कैसे दूसरा जेलर जोजफ यह जोखिम उठाने के विरोध में अड़ गया, इस पर कैसे लेडली ने कैदियों को बेंत लगाने चाहे, जो कानूनी सजा थी, कैसे डॉक्टरों ने कई दिन से भूखे नव-युवकों को बेंत की मार सहने में समर्थ घोषित किया, कैसे बेंत लगाने की टिकटी भी लगा दी गयी, पर जब क्रांतिकारी नवयुवकों ने फिर भी अनशन तोड़ने से इनकार किया, तब कैसे लेडली को छोटा-सा मुंह लेकर लौटना पड़ा, इसकी पूरी कहानी मैंने अन्यत्र लिखी है।

यशपाल और मैं अनशन के दौरान एकसाथ थे। अनशन के दौरान हम दोनों को सबसे बड़ी फिक्र यह थी कि हमने अपनी बैरक के चारों ओर जो बाग लगाया था, कहीं वह इस बीच पानी के बिना मुरझा तो नहीं जाएगा। यशपाल और मणींद्र दोनों बागवानी में काफी समय देते थे, पर
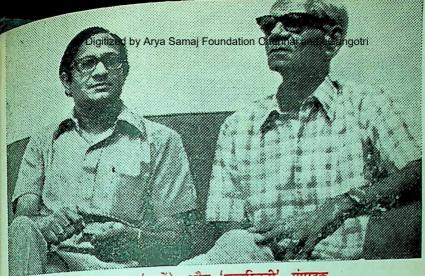
यशपाल (दायें) और 'कादम्बिनी' संपादक

यशपाल हम सबमें श्रेष्ठ बागवान थे।

मणींद्र की हालत अनशन टूटने पर भी नहीं सुधरी। २० जून, १९३४ को शाम के समय जेल-अस्पताल में हमारे सामने उनका देहांत हुआ। ६ साल जेल काटने के बाद अत्यंत करुण परिस्थिति में उनका देहांत हुआ। यशपाल और मैं जब उनकी लाश अस्पताल में छोड़कर पैदल बैरक में लौटे तब घंटों हम दोनों ने बातचीत नहीं की। इस मृत्यु ने हमें मूक बना दिया था। हम दोनों नास्तिक थे, क्योंकि हमने मार्क्सवाद को गंभीरता के साथ लिया था। अतएव मृत्यु का सामना करने के लिए हमारे पास कोई बना-बनाया काल्पनिक समाधान नहीं था, जैसा कि हरेक धर्म अपने अनुयायियों को खुले हाथों बांटता है। इसके अलावा हमारे सामने वह दृश्य मौजूद था जब मरनेवाले शहीद ने मेरी तसल्ली का प्रतिवाद करते हुए कहा था, "नहीं, नहीं, यह बिलकुल गलत है। इस समाज में दुष्ट लोग मौज उड़ाते हैं और अच्छे लोग कष्ट भोगते हैं।"

यशपाल ने 'सिंहावलोकन' के तृतीय भाग में फतेहगढ़ जेल का जो ब्योरा लिखा है, उसमें बताया गया है कि मणींद्र ने मृत्यु के पहले सांत्वना देने के लिए साम-यिक रूप से ओढ़ी हुई मेरी आस्तिकता के जवाब में कहा था, "डैम योर गॉड ऐंड डैम हिज मर्सी। लोग कहते हैं कि अंतिम समय भगवान दिखायी देता है। मुझे तो कुछ नहीं दिखायी दे रहा है। मेरी अंतिम सांसों के समय मेरा मस्तिष्क धुंधला न करो। मुझे कायर और कातर बनाने की चेष्टा न करो।"

इस मृत्यु के बाद फिर हम धीरे-धीरे पढ़ने-लिखने में डूब गये। मैं उसी समय समझ गया था कि यशपाल बहुत बड़े साहि-त्यकार होंगे। नैनी की गोरा बैरक में गोरे

और अर्द्धगोरे कैदियों के बीच रहते समय उनमें अंगरेजी में लिखने की आकांक्षा जगी थी। 'पिंजरे की उड़ान' की कुछ कहानियां पहले अंगरेजी में लिखी गयी थीं। कालांतर में जब मुख्यतः योगेश चटर्जी (जो बाद में १० वर्ष तक संसद में रहे) के लंबे अनशनों के फलस्वरूप हम सारे उच्च श्रेणी में रखे हुए क्रांतिकारी कैदी नैनी जेल में एकत्र हुए तब वहां भी यशपाल मिले। कुल मिलाकर हम चार साल जेल में इट्ठे रहे, पर नैनी जेल की भीड़ में हम उतने निकट नहीं हुए, यद्यपि दूर से हम उन पर दोस्ताना निगरानी रखते रहे।

**घटनाबहुल जीवन**

इस प्रकार यशपाल का व्यक्तित्व एक घटनाबहुल उपन्यास से कम नहीं। उपन्यासकार-कहानीकार के रूप में उनका स्थान नोबेल पुरस्कार योग्य मूर्धन्य लोगों में है। गुटबंदी से आक्रांत हिंदी आलोचना उनकी ऊंचाई की थाह नहीं पा सकी, पर पाठक उनकी महानता की थाह पा चुके थे। नेहरू की आलोचना के बहाने उनको एक दशक पहले 'अकादमी' का पुरस्कार नहीं मिला था। अंत में उन्हें वह पुरस्कार एक दूसरी कृति पर मिला, पर मजे की बात यह है कि 'झूठा सच' के मुकाबले में 'मेरी तेरी उसकी बात' में राजनीति में लगे हुए लोगों की अधिक गहरी और कटुतर आलोचना है। यशपाल जीवन में भले ही कई बार चूके हों, उनकी लेखनी किसी अवसर पर भी ज्वालामुखी बनने से नहीं चूकी, न उनका मन कभी थका, हमेशा पेंग भरकर ऊपर ही ऊपर जाता रहा।

उन्होंने अपने प्रारंभिक रचनाओं में ही एक पुस्तक लिखी थी 'गांधीवाद की शवपरीक्षा'। यह एक आधारभूत पुस्तक है, जिसमें क्रांतिवाद और गांधीवाद का तुलनात्मक विवेचन है।

यशपाल के देहांत के बाद हिंदी के परंपरावादी आलोचकों को धक्का लगा होगा कि किसी गुटबंदी में न होने पर भी और कोई शिष्यमंडली न बनाने पर भी वे बेहद जनप्रिय थे। वस्तुतः साहित्यकार की मृत्यु नश्वर शरीर की मृत्यु से नहीं हो जाती। उनके यशःकाय को जरा-मरणज भय नहीं। एक तरफ उनका क्षितिज भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, मणींद्र आदि को छूता है, तो दूसरी तरफ 'कलोसस' का पैर जाकर अमर विश्व-कथाकारों और चिंतकों में पहुंचता है। धर्मेंद्र गौड़ और बच्चन ने उनकी ख्याति को प्रतिहत करने के बजाय उसे मसालेदार बनाया है, क्योंकि एक ऊंचाई पर पहुंचने के बाद ख्याति के कुंड में जो कुछ भी डाला जाए, वह उस ख्याति में ज्योति पैदा कर उसमें चार चांद लगा देता है और चांद में कलंक वर्जित नहीं। यशपाल का जीवन एक सार्थक (कलंकों के बावजूद) जीवन था। 'दर्द' की भाषा में—

**तुहमतें चंद अपने जिम्मे धर चले**
**जिस लिए आये थे हम सो कर चले**

**—१४-डी, निजामुद्दीन ईस्ट, नयी दिल्ली-१३**

## • राजेन्द्र अवस्थी

वर्षों पहले की कहानी याद आती है, देवगांव में एक बूढ़े से सुनी थी—नदी के कछार-सा झुर्रियों-भरा चेहरा और चिलम की हर कश के साथ उसका खांसना। खांसी इतने जोर की कि कलेजे की पसलियां तक सूखे पत्ते की तरह कांप उठती हों। उसने पूछा था, 'साहब, आजकल यहां गोरे दिखायी नहीं देते, क्या सबके सब छुट्टी में चले गये हैं ?'

मैंने गौर से उस बूढ़े को देखा था। उसके पूछने का अर्थ स्वयं समझना चाहता था—सन १९५५ के आसपास की बात है और यह प्रश्न ? उसकी बंधी हुई आंखें

ऐसा सहज जीवन अन्यत्र दुर्लभ है

आज भी मेरे सामने तैर जाती हैं . . . नहीं वह चालाक नहीं है, उसकी सहजता को चुनौती नहीं दी जा सकती !

मैंने कहा था, 'हवका, (हां, मुझे

बाजार से लौटते हुए सुल्फी पीने का अपना मजा है

याद आ रहा है, उसका नाम था—हबका मासा ) अब गोरे यहां कभी नहीं आएंगे, हमने उन्हें इस देश से भगा दिया। अब तुम इस देश के राजा हो।'

बूढ़े ने पोपली हंसी हंसते हुए कहा था, 'हुजूर, आप तो मेरे बेटे की तरह मजाक करते हैं!'

बहुत समझाना चाहा था उसे कि भारत आजाद हो गया है, इस देश में हमारा राज्य है, हमारी सरकार है, परंतु हबका मासा अंत तक इसे खासा मजाक ही समझता रहा।

**हमने दिल्ली देख ली**

समय की परतें पानी की लहरों की तरह बदल गयीं और कुछ समय पहले जब मैं फिर देवगांव पहुंचा तब कितना कुछ बदल गया था। हबका अब इस दुनिया में नहीं था, कब, कहां चला गया इसकी जानकारी भी नहीं मिल सकी। गांव के बाहर के घोटुल का ले-आउट बदल गया था। घोटुल के बीच के खुले आंगन में खपरैल का घेरा बन गया था, उसी में आग जलाकर घोटुल के सदस्य—चेलिक मोटियारी—बैठते थे। कई नये तरह के वाद्य वहां पहुंच गये थे। कौड़ियों का पूरा श्रृंगार, रंग-बिरंगे लहंगे, ब्लाउज और साड़ियां! पता चला, पिछले वर्ष गणतंत्र दिवस-समारोह में भाग लेने देवगांव का यह झुंड दिल्ली गया था और तभी उसका यह संस्कार हो गया। रामू देवगांव का सरदार था, चुस्त और फुर्तीला लड़का। उस रात नृत्य का आयो[illegible] चुटकी बजाते उसने कर दिया—[illegible] रेला और करमा। इन नृत्यों के [illegible] लकड़ी की गेंड़ियां भी निकल आयीं [illegible] अत्यधिक आधुनिक नृत्य गेंड़ी-नृत्य [illegible] हो गया। दो गैस जला दिये गये और [illegible] बिना बिजली का छोटा-सा गांव, [illegible] गांव रोशनी में बदल गया। देवगांव ज[illegible]दलपुर (बस्तर) की तहसील नारायणपु[illegible] से केवल तीन किलोमीटर है।

**हमारा मूड नहीं है**

नारायनपुर में बिजली है, तारकोल की सड़क है, पक्की इमारतें हैं, परंतु देवगांव में अब भी झोपड़ियां हैं, धूल भरे [illegible] हैं, वही रहन-सहन, गरीबी, सब कुछ वही। यदि कुछ बदला है तो घोटुल के नये लड़के-लड़कियों की नजरें। उस रात एक-एक लड़की को नाच के लि[illegible] हम उठाते रहे, परंतु वह उठ-उठकर फि[illegible] सो जाती थी। बहुत देर बाद जब वे उ[illegible] तब फिर बात और थी, शायद उन्हें उठ[illegible] पड़ा था।

जगदलपुर इस बीच बहुत बद[illegible] गया है। जब मैं सन ५५ में अंतिम बार गया था, रायपुर से जगदलपुर तक का रास्ता लाल धूल और मिट्टी से भरा था। रास्ते में दो बार वनराज शेर के दर्शन हुए थे। अब पूरा रास्ता तार[illegible]कोल का बन गया है और यह सड़क सीधे विजगापट्टम तक चली गयी है। रास्ते में सुंदर और आरामदेह रेस्टहाउस

हैं। लिपे-पुते गांव हैं और समूचे बस्तर को घूमते हुए भी कहीं वनराज से भेंट नहीं हुई।

**शराब हमारी साथी**

जगदलपुर के कई गांवों में बिजली पहुंच गयी है। इसके बावजूद उनके घोटुल अब भी सुरक्षित हैं और बिना घोटुल के गांवों में भी आसानी से नृत्य का आयोजन कराया जा सकता है। उन्हें पीने के

सीधे संपर्क का रास्ता बन गया है। आप लड़के-लड़कियों से स्वयं बात कर उनकी समस्याओं को जान सकते हैं।

समस्याएं ! लेकिन उनकी समस्याएं क्या हैं ? रोशनी के नीचे अब भी अधिकांश स्त्रियां खुले स्तन रहती हैं । वही छोटी-सी साड़ी है और खाने को जंगली पैदावारें। बच्चे से लेकर बूढ़े तक दिन-रात शराब पीते हैं। शराब सुल्फा की भी

जंगल में मंगल--बस्तर के वनों में, पीछे खड़े हैं लेखक

लिए सुल्फी ( एक तरह की शराब ) दे दीजिए, बस ! एक बड़ा परिवर्तन और आया है, पिछले बार मेरे सामने बोली की कठिनाई थी—हल्बी बोली कई बार समझना कठिन होता है। अब सब धड़ल्ले से हिंदी समझते हैं और बोलते हैं। इसलिए

हो सकती है और महुआ की भी। सुल्फा ताड़ की जाति का एक वृक्ष है। उसमें घड़ा बांधकर शराब निकाल ली जाती है।

**नमक का दर्द मिटा नहीं**

नमक का दर्द अब भी जगदलपुर में है और क्यों है, समझ में नहीं आता।

मातत्व भरा जीवन
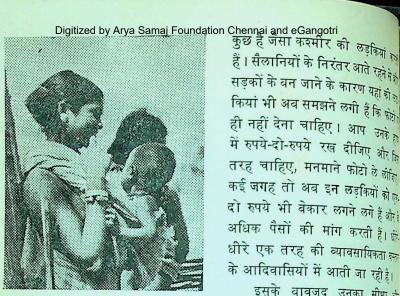
वाजार, मेले और मड़ई में धड़ल्ले से नमक विकता है, परंतु कई जगह अव भी नमक के वदले में उन्हें धान, चावल या मक्का देनी पड़ती है। नमक का मूल्य इन अनाजों के वरावर है, ताज्जुव है! कुल मिलाकर एक ही वात मेरी समझ में आयी कि छोटे व्यापारियों का शोषण अव भी जारी है। पहले नमक अमूल्य था, शायद हो सकता था, अव . . . !

नमक के मूल्य के साथ यहां के जीवन के नैतिक मूल्य भी जुड़े हुए हैं। मनमौजी घूमनेवाले और शोध का वहाना लेकर आंखों को सेकनेवालों की भीड़ शायद ज्यादा हो गयी है। इसलिए अव कैमरा खोलते ही वहां की लड़कियां आंचल सम्हालने लगती हैं और मुंह के सामने अपनी हथेलियां रख लेती हैं। यह लगभग ऐसा ही कुछ है जैसा कश्मीर की लड़कियां करती हैं। सैलानियों के निरंतर आते रहने से और सड़कों के वन जाने के कारण यहां की लड़कियां भी अव समझने लगी हैं कि फोटो ही नहीं देना चाहिए। आप उनके हाथ में रुपये-दो-रुपये रख दीजिए और जिस तरह चाहिए, मनमाने फोटो ले लीजिए। कई जगह तो अव इन लड़कियों को एक-दो रुपये भी वेकार लगने लगे हैं और अधिक पैसों की मांग करती हैं। धीरे-धीरे एक तरह की व्यावसायिकता वस्तर के आदिवासियों में आती जा रही है।

इसके वावजूद उनका सीधा और सरल रूप अभी भी नहीं विगड़ा है। मुझे याद है, उस रात नयानार में नाच हो रहा था। इस नृत्य का आयोजन हमारे लिए विशेष रूप से किया गया था। एक ओर हम नृत्य देखने और इनके गीत टेपरिकार्डर में भरने में लगे थे तो दूसरी ओर हमारे एक साथी चुपचाप अंधेरे में फोटो लेने के वहाने एक आदिवासी कन्या के साथ सारा गांव घूम रहे थे। वहां और कोई आदिवासी होता तो कोई न कोई वड़ी घटना अवश्य हो जाती। जव वे लौटकर आये तव मैंने मजाक में उस लड़की से पूछा था, "तुम्हारा नाम क्या है?" उसने तपाक से उत्तर दिया था, "मेरा नाम है चार शब्द।" "वे कौन-से हैं?" मैंने पूछा था। विना हिचक वह वोली थी, "रजस्वला।" आज से पंद्रह-बीस वर्ष पहले मैं कल्पना भी नहीं कर

सकता था कि वस्तर की एक आदिवासी लड़की इस तरह जवाब दे सकती है।

नारायनपुर के आस-पास जहां इतना अधिक परिवर्तन हुआ है, वहां अबूजमाड़ का इलाका अब भी बहुत पिछड़ा हुआ है। नारायनपुर से पचीस किलोमीटर दूर ओरछा है, अबूजमाड़ का प्रवेश-द्वार। उसके आगे सड़क टूटी हुई है और जब हम गये थे तब पहाड़ काटा जा रहा था। थोड़े दिनों में वहां सड़क बन जाएगी और आगे तक का रास्ता खुल जाएगा।

हम अबूजमाड़ की ओर जा रहे थे। एक नदी के किनारे एक छोटे-से मंदिर के पास हम ठहर गये। ऊंचे पहाड़ों के बीच से जाता हुआ सीधा और संकरा रास्ता था। कार्बन-पेपर की तरह ठेठ काला और तेल पिये डंडे की तरह लहराती मांसपेशियों को लिये चट्टानों की तरह मजबूत एक आदमी सुबह-सुबह हमें मिला था। उसे रोककर मैंने पूछा था, 'कहां जा रहे हो, दोस्त ?' बिना झिझके उसने उत्तर दिया था, 'शिकार !' —'कब लौटोगे ?'

उसने सामने क्षितिज की ओर देखा था, और हाथ से नीचे उतरने का इशारा उसने किया था। उसने यह अनजाने ही किया था, लेकिन मैं हतप्रभ था—उसका उत्तर स्पष्ट था, 'जब सूरज नीचे उतर जाएगा,' यानी शाम हो जाएगी। वह शाम होने पर लौटेगा। उसके कंधे पर सूखी लौकी का तूंबा था और उससे सफेद फेन बाहर निकल रहा था। यह सुल्फी थी। यानी वह शिकारी दिनभर केवल सुल्फी पीकर यहां-वहां जंगलों में भटकेगा और सूरज ढलने के बाद शाम को वापस लौटेगा। यही उसके जीवन का क्रम है। यह कब तक चलेगा ? मैं आज भी सोचता हूं, कितनी बड़ी मानव-शक्ति मात्र भट-कन और तलाश में व्यर्थ जा रही है। उस आदमी के सामने कोई प्रश्न नहीं है और जब प्रश्न नहीं है तब उत्तर की भी खोज नहीं है। यही उसका रोज का क्रम है। मैंने उसे तीन रुपये देते हुए कहा था, 'आज तू घर लौट जा और कुछ और काम कर। खाने के लिए तुझे पैसे तो मिल ही गये।'

रुपये पाकर वह खुश था, लेकिन ये रुपये उसके जीवन-क्रम को बदलने में

एक मुरिया परिवार : आने वाले कल की प्रतीक्षा

समर्थ नहीं हो सकते । वह मेरी आंखों के सामने से चीते की तरह दृढ़ कदमों से आगे निकल गया था और मैं निरंतर उसे देख रहा था। मुझे लगता था, वह अपने हर पग के साथ जिंदगी की मंजिलें नाप रहा है।

जब वह दृष्टि से ओझल हो गया तब मेरे सामने निर्मल जल से भरा हुआ नाला रह गया। यह पहाड़ी नाला हलके नीले पानी और पत्थरों से बनती दूध-जैसी धारों को अपने में समेट वन-कन्याओं के सौंदर्य का साक्षी था! शर्म और लज्जा उन्हें हो, जिनके मन में खोट हो। अकसर दोपहर को सारे कपड़े उतारकर निर्वसन वन-कन्याओं को ऐसे नालों में नहाते हुए देखा जा सकता है। मजे में वे नहाती हैं और बाद में वही एकमात्र साड़ी फिर पहनकर अपने काम में लग जाती हैं। गरीबी उन्हें दूसरी साड़ी भी नहीं खरीदने देती। लेकिन कुछ 'भाग्यशाली' कन्याएं हैं, जिनके पास रंग-बिरंगी साड़ियां हैं। वे अब बालों में कंघियां ही नहीं, फूल भी खोंसना सीख गयी हैं।

**साड़ी दीजिए, हमें चाहिए !**

तारागांव में एक लड़की का चित्र जब हम लेने लगे तब उसे हमने ऐसी ही आकर्षक साड़ी में देखा था। हमारे कैमरा खोलते ही उसने अपना आंचल स्तन पर डाल दिया था और हंसते हुए उसने कहा था, 'हमारे फोटो बहुत-से लोगों ने लिये हैं।' अब फोटो खींचना उसके लिए नया नहीं था। नयी बात थी, कीमत! फोटो की कीमत! जी नहीं, मैं कहूंगा, मात्र कीमत! बिजली की रोशनी में वह भी देखा जा सकता है, जो अब तक ढंका हुआ और अन-देखा था (बिजली की रोशनी में फूस की झोपड़ियों के आग की लपटों में घिरे माहौल का फिल्मी दृश्य आसानी से अंकित किया जा सकता है। बिजली की रोशनी में बालों में गुमे हुए पिन खोजे जा सकते हैं; सभ्यता और समझ के बीज नहीं बोये जा सकते। जब तक खाना-कपड़ा नहीं मिलेगा, काम नहीं होगा, रोशनी में चमकदार साड़ियां ही बदली जाएंगी और रुपये के व्यापार को बढ़ावा ही मिलेगा।

**बिक रहे हैं हम**

जगदलपुर का विकास हो रहा है— सरकारी फाइलों में मत जाइए—यह सही है, लेकिन समय का सही उपयोग करना यदि नहीं सिखाया जाएगा, तो यह सौंदर्य और वनश्री के अद्भुत कौतुक से संपन्न विस्तृत भू-भाग शहरी पर्यटकों की बिलास-भूमि बने बिना नहीं रहेगा! इतने वर्षों बाद जहां और परिवर्तन देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है, वहीं यह भय भी मेरे मन में उभरा है—इसका इलाज किसके पास है, कौन कर सकता है, बताने की जरूरत नहीं है!

मेरे स्वप्नों का बस्तर नयी करवट ले और आगे बढ़े, लेकिन उन्हें भी अपने साथ लेता हुआ चले जो इसकी आत्मा हैं। ●

# बस्तर
# राग-रंग की एक दुनिया

● राजेन्द्रप्रसाद तिवारी

घने जंगल, उफनती नदी-नाले, मूसलाधार वर्षा, कड़कड़ाती ठंड, जंगली जानवर, इन सबसे जूझते हुए आदिवासी समुदाय सुरक्षित होकर अपनी जिंदगी में एक वर्ष जब और जोड़ लेता है तब वह अपने उल्लास को प्रकट करने के लिए शृंखलाबद्ध रूप से, दैवी शक्ति की आराधना-पूजा के साथ, मेले और त्योहारों में मस्ती से झूम उठता है। प्रकृति का प्रकोप और उदारता—दोनों को वह एक स्थितप्रज्ञ के समान एक दार्शनिक की दृष्टि से सहेज लेता है। वह अपना सुख और दुःख दोनों को देवी के चरणों में अर्पित कर, वर्तमान को नये जीवन के उल्लास में जी लेता है। उसे न तो अतीत की स्मृतियां कुरेदती हैं और न भविष्य की चिंता सताती है। यही है आदिवासियों के उल्लासमय, सादगीपूर्ण, नृत्य-संगीत से पूर्ण जीवन का रहस्य। प्राकृतिक और पारिवारिक विपदाओं को वह दैवी प्रकोप मानकर, अपनी गलतियों के लिए देवी से क्षमायाचना करता है और अच्छी फसल तथा पारिवारिक सुख को देवी की कृपा मान, पूरी भक्ति और श्रद्धा के साथ, अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए आराधना के स्वर में झूम उठता है। यहीं से प्रारंभ होती है आदिवासियों के त्योहारों और मेलों (मड़ाई) की शृंखला, जो उनके

नारायनपुर मड़ई में प्रेमियों का जोड़ा

संघर्षशील, श्रमसाध्य जीवन में वर्ष भर उल्लास और मधुरता घोल देती है।

### आराधना के गीत

अप्रैल, मई के महीनों में जब हलकी वर्षा की पहली फुहार उनके खेतों को रस-विभोर करती है और सारा गांव माटी की सोंधी महक से सुवासित हो उठता है, तब ये अपने पुरखों के 'भूम' देवता को प्रसन्न करने के लिए विधिपूर्वक पूजाकर अच्छी फसल की आशा में नाच उठते हैं। फरवरी के महीने में दुर्गम जंगल, ऊंची घास और कंटीली झाड़ियों से जब रास्ता कुछ सुगम हो जाता है तब ये वृक्ष काटने का कार्य प्रारंभ करने की खुशी में कोरे पंडुम का त्योहार मनाते हैं।

फरवरी के अंत और मार्च के महीनों में वन-समूह महुआ की मादक सुगंध से महक उठता है। ये महुआ के फूल एकत्रित करने जंगलों में चले जाते हैं और ईराउ पंडुम का त्योहार मनाते हैं। इनके जीवन में महुआ और इसकी शराब का वही स्थान है जो कि सवर्णों के जीवन में गंगाजल और पीले चावल या अक्षत-चंदन का।

नये आम की फसल के लिए ये रामनवमी का इंतजार नहीं करते। जैसे ही खाने लायक आम गदराते हैं वैसे ही ये मार्च-अप्रैल के महीने में मर्का पंडुम का त्योहार मनाते हैं। फिर इसके बाद अप्रैल-मई में विज्जा और वेता पंडुम त्योहारों के बाद आगामी फ़सल के लिए खेतों को तैयार करने में जुट जाते हैं। संतोषप्रद वर्षा होने पर बीज बोकर ये कुछ समय के लिए निश्चित हो जाते हैं। इसके पश्चात ये मनाते हैं—पारद पंडुम। सारा गांव समूहों में जंगल की ओर तीर-धनुष लेकर निकल पड़ता है और जंगली जानवरों का ये शिकार करते हैं।

### हरियाली का त्योहार

फसल जब खेतों में लहलहा उठती है, नदी-नाले बरसात के बाद कुछ थम जाते

देवगांव की एक आदिवासी युवती
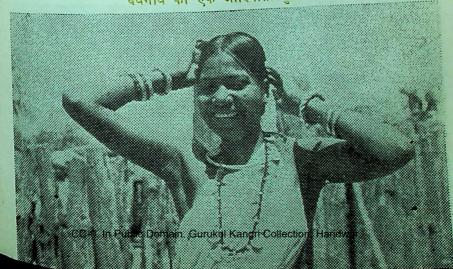
हैं, तब ये जुलाई-अगस्त में हरेली या हरियाली का त्योहार मनाते हैं। सितंबर-अक्तूबर में धान और मड़िया-कोसरा की फसलें तैयार हो जाती हैं और नये खाद्यान्न को देवी को अर्पित कर ये 'नया खानी' कुरूम पंडुम और कोरता पंडुम का त्योहार मनाते हैं, जिसे ये दीयारी त्योहार भी कहते हैं। जनवरी-फरवरी में युवकों का त्योहार चैत्र-पूनो मनाते हैं, जबकि सारा गांव युवकों के गीतों और मांदर (पखावज, ढोलक) की थाप से गूंज उठता है। प्रकृति से संघर्ष करते हुए वैसे तो साल भर ये आदिवासी कठिन परिश्रम करते हैं और अवकाश के क्षणों में देवी-देवताओं की पूजा कर नाचते-गाते रहते हैं, लेकिन फरवरी से अप्रैल के महीनों में वस्तर जिले में विभिन्न स्थानों पर मेले और मड़ई का आयोजन किया जाता है। मड़ई की परंपरा भी देवी-देवताओं की पूजा से जुड़ी हुई होती है। ये मड़ई उन्हीं स्थानों में आयोजित किये जाते हैं जहां देवी की विशेष प्रसिद्धि और उनके कुल के ऐतिहासिक महत्त्व से वह स्थान संबंधित होता है। इन मेलों में दूर-दूर से आदिवासी अपनी खाद्यान्न और वनोपज बेचने आते हैं और बदले में आवश्यकताओं की वस्तुएं खरीद ले जाते हैं। इन मेलों की आर्थिक और व्यावसायिक उपयोगिता है। किंतु, इनका सामाजिक और सांस्कृतिक पहलू सैलानियों के लिए लुभावना और मनोरंजन प्रदान करने वाला होता है। रामाराम (कौंटा) मड़ई, बारसुर (दंतेवाड़ा), चित्रकूट (जगदलपुर), घोटिया (वस्तर), चपका, नारायणपुर और ओरछा की मड़ई विशेष प्रसिद्ध है, जहां विभिन्न आदिम प्रजातियों की सांस्कृतिक गतिविधियों में अंतर्हित सौंदर्य-बोध स्पष्ट रूप से दिखायी देता है।

आदिवासी लोक नृत्य दल : नारायणपुर मड़ई

**मेलों में जीवन-साथी की तलाश**

विभिन्न गांवों के मेले में खरीद-फरोख्त के अतिरिक्त युवक-युवतियों को आपस में मिलने-जुलने का सुखद मौका मिल जाता है। आदिवासियों के प्रेम अभिव्यक्त करने के तौर-तरीके अनोखे हैं। लड़के, लड़कियों को उपहारस्वरूप कंघी भेंट करते, उन्हें पान खिलाते हैं, अंगूठी और घुंघरू देते हैं। लेकिन सबसे सुंदर तरीका फूल भेंट करने का है।

नारायनपुर के इलाके के मुड़िया-माड़िया देवी की वंदना में गोलाकार रूप में एंदालतोर नृत्य रात भर करते हैं। धीरे-धीरे युवक-युवतियों की वृहत टोलियां वृहत घेरे के अंदर घुसकर, शृंखलाबद्ध हो नृत्य करती हैं। युवतियां अपने परंपरागत सारे साज-शृंगार में सिर से पैर तक सजी रहती हैं। मोर-पंख, भृंगराज, रंगीन कांच के मोतियों की माला, घुंघरू, घंटियां, आईना से आवेष्ठित आदिवासी युवक का सौंदर्य इनमें निखर उठता है। लांदा और महुआ की शराब के दौर चलते रहते हैं और बीच-बीच में बीड़ी-तंबाकू भी। इन्हीं आराम के कुछ क्षणों में दिल की बातें आंखों में उतर आती हैं। थके-मांदे सब वहीं लुढ़क जाते हैं या अपने डेरों में वापस चले जाते हैं, तब युवक-युवतियों के जोड़े अनजान राहों में घने जंगल की ओर अलमस्ती से झूमते चले जाते हैं। किसी पहाड़ी की तलहटी में या छायादार वृक्ष के तले प्रेमालाप करते हुए इस तरह अपने आप में खो जाते हैं कि प्रातः वन-पक्षी का कलरव और सूरज की पहली किरणों के सुखद स्पर्श से उनकी मोह-निद्रा भंग होती है। दिन चढ़ने पर वे फिर सज-धजकर अपने हमजोलियों के साथ बाजार घूमने निकल जाते हैं।
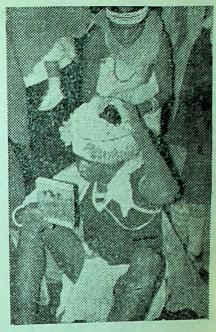
नृत्य की तैयारी

सदियों से परंपरागत रूप से वर्ष भर चलनेवाले यही सब उत्सव, त्योहार, मेले-तमाशे, नृत्य-संगीत आदिवासियों की खुशहाली का राज है, जो उनमें जीवन के प्रति अदम्य उत्साह और प्रेरणा प्रदान करते हैं।

—जनसंपर्क अधिकारी,
बस्तर जिला, जगदलपुर

• क्रांतिकारी की अंतिम इच्छा • अल्लाह के घर में • आध्यात्मिकता को बल • सहनशीलता की परीक्षा

## क्रांतिकारी की अंतिम इच्छा

महान क्रांतिकारी नलिनी बाग्ची १९१८ में ढाका के एक मकान में अपने साथी तारिणी मजूमदार के साथ घिर गये थे। निकल जाने की कोई संभावना न देख उन्होंने तारिणी से कहा, "घर के दरवाजे खोल दो। गोली चलाते हुए लड़कर मरेंगे।"

दरवाजा खुलते ही सामने से पुलिस की गोलियों की बौछार शुरू हो गयी। तारिणी शहीद हो गये। नलिनी को भी गोलियां लगीं और वे बेहोश हो गिर पड़े।

होश आता है ढाका के अस्पताल में। आंखें धीरे-धीरे खुलती हैं—सामने है अंगरेज पुलिस-अफसर। बहुत देर नहीं है जीवन निःशेष होने में। अफसर कहता है—"कुछ बयान देंगे?" कोई उत्तर नहीं। अंत में वह फिर पूछता है, "अपना नाम ही बता दो। तुम्हारे पीछे तुम्हारे देश का कोई आदमी यह भी न जानेगा कि कौन मर गया!"

अब उनका मुंह खुलता है। धीमे, परंतु दृढ़ स्वर में शब्द निकलते हैं—"चुप रहो। मुझे शांति से मरने दो।" और फिर कभी वे होंठ नहीं खुले।

—वीरसेन त्रिपाठी

## अल्लाह के घर में

सईद बिन मुसीब एक महापुरुष हुए हैं। उनके समय में एक बार खलीफा वलीद हज के लिए मक्का गये। हज के बाद खलीफा मदीना-मुनव्वरा गये और मसजिद नववी में जाने का इरादा किया। मसजिद में जाने से पहले खलीफा ने आज्ञा दी कि मसजिद में जितने लोग हैं उन्हें बाहर निकाल दिया जाए। खलीफा की आज्ञा से सभी लोग मसजिद से बाहर चले गये, किंतु सईद बिन मुसीब अपनी जगह से नहीं हिले और वहीं बैठे रहे। खलीफा के एक सिपाही ने आकर कहा, "खलीफा आ रहे हैं मसजिद से बाहर चले जाओ।"

इतने में खलीफा वलीद मसजिद के दरवाजे तक आ गये। खलीफा के नौकरों ने सईद बिन मुसीब से कहा, "उठकर खलीफा को सलाम करो।" सईद बिन मुसीब बैठे ही रहे और जोर से कहने लगे, "सुन लो, अल्लाह के घर में दो का सलाम नहीं हो सकता है! खलीफा को यहां आम मुसलमानों की तरह आना चाहिए। अल्लाह के नजदीक कोई छोटा-बड़ा नहीं है, सभी इनसान बराबर हैं।"

## आध्यात्मिकता को बल

किसी जमाने में एक दरवेश था, जो अपनी आध्यात्मिक शक्ति और पवित्रता के कारण दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। उसके भक्तों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। इसी बीच दरवेश ने गृहस्थी बसाने का निश्चय किया और अपने कस्बे की एक अत्यधिक जाहिल, फूहड़ और क्रूर स्वभाववाली स्त्री से विवाह कर लिया। कुछ समय बाद एक अन्य महापुरुष उस दरवेश के घर आये और दरवेश का आतिथ्य स्वीकार किया। महापुरुष जब तक दरवेश के घर रहे उन्होंने देखा कि दरवेश की पत्नी बात-बेबात दरवेश को डांटती-फटकारती रहती है और वे चुपचाप उसकी डांट सह लेते हैं। महापुरुष से रहा नहीं गया और एक दिन वे दरवेश से पूछ बैठे, "आपने ऐसी स्त्री से क्यों विवाह कर लिया?" दरवेश ने उत्तर दिया, "भाई, मैंने इतनी तपस्या, इतना चिंतन-मनन करने के बाद संसार की वास्तविकता को पहचान लिया है। मैंने इस स्त्री से इसलिए विवाह किया है कि जब तक यह मुझे झिड़कती रहती है, मैं अहंकार से बचा रहता हूं और मेरी आध्यात्मिकता को बल मिलता है। दूसरे, इसलिए कि मेरे चरित्र से प्रभावित होकर यह स्त्री अपना आचरण बदल दे।"

—फरीदा नसरीन

## सहनशीलता की परीक्षा

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय एक बार बंबई गये तो वहां सैंडहर्स्ट रोड पर स्थित श्री रामेश्वरदास बिरला के भवन में ठहरे। रात के समय पंडित रमापति मिश्र उनसे मिलने पहुंचे। काफी देर बातचीत के दौरान 'क्रोध' पर चर्चा चलती रही। इसी विषय के किसी प्रसंग को लेकर मिश्रजी ने महामना से कहा, "मालवीयजी, आप मुझे सौ गालियां देकर देखिए, मुझे फिर भी तनिक क्रोध नहीं आएगा।"

यह सुनकर महामना मुसकरा दिये। बोले, "पंडितजी, यह मुझसे संभव नहीं हो सकेगा, क्योंकि आपकी सहनशीलता की परीक्षा तो सौ गालियां देने के पश्चात होगी, पर मेरा मुंह तो एक ही गाली देने पर गंदा हो जाएगा!"

—अचितमोहन शर्मा

कहानी

# नामुराद

● कर्त्तार सिंह दुग्गल

जानक ने एक और मुसीबत पाल ली थी। बेकार औरत। फिर हिंदू। फिर पढ़ी-लिखी। फिर कलाकार।

एक शाम अपने कुत्ते को वह सैर कराने के लिए निकली और उसने देखा कि उनकी कोठी के बाहर एक कुतिया बैठी हुई थी। दूध-सी सफेद, पतली-लंबी; उन्हें देखकर पूंछ हिलाने लगी।

शम्मी दौड़कर आगे बढ़ा और उससे दोस्ती करने लगा। इतने में वे आगे बढ़ गये थे। कुछ देर के बाद दौड़ता हुआ शम्मी उनके साथ मिल गया।

"हमारी शाली की शक्ल है", जनक ने अपने घरवाले से कहा। उसकी आवाज भर्रायी हुई थी। इतनी देर खामोश रही थी। कुछ दिन हुए जाड़े में शाली मर गयी थी।

"हां-हां, उस-जैसी गोरी-चिट्टी, पतली-लंबी," उसके पति को शाली बहुत प्यारी थी।

और फिर पति-पत्नी खामोश हो गये। शाली को बचाने के लिए उन्होंने

इतनी कोशिश की थी, लेकिन उनकी एक नहीं चली। डॉक्टर कहते थे, उसे निमोनिया हो गया था। जिस दिन वह मरी, वे लोग कितना रोये थे। उनकी जिंदगी में यह पहली मौत थी उस घर में। और फिर कितने दिन शाली की कहानियां होती रहीं। हर बात में से उसकी बात निकल आती।

और अब यह परायी कुतिया शाली के रूप में जैसे उनकी जिंदगी में घुस आयी हो। हर शाम जब वे सैर के लिए निकलते, कोठी के बाहर गेट के पास वह प्रतीक्षा कर रही होती। उन्हें देखकर पंखे की तरह पूंछ हिलाने लगती। फिर शम्मी के साथ खेलती, उनके पीछे-पीछे सैर के लिए चल देती। अजीब बात थी। पता नहीं, किसकी कुतिया थी! पता नहीं, कहां से आती थी? ऐसे उनकी प्रतीक्षा करती, ऐसे उनकी ओर प्यार-भरी नजरों से देखती कि दूसरा उसे लाड़ करने के लिए मजबूर हो जाता। फिर उन्होंने उसे 'शाली' कहकर पुकारना शुरू किया। सुनकर वह भी इस तरह कान खड़े कर लेती, जैसे सचमुच उसका नाम शाली हो।

बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि एक शाम जब वे सैर के बाद लौटे तब शम्मी उनके साथ कोठी में नहीं आया। जनक ने एक-दो बार शम्मी को बुलाया, वह सुनी-अनसुनी कर गया। प्रायः हर शाम यूं होता कि सैर के बाद शाली ठीक गेट

तक उनको पहुंचाकर कहीं खिसक जाती। फिर सारा दिन नजर नहीं आती। शाम को सैर के बाद फिर बाहर बैठी प्रतीक्षा कर रही होती।

खाने का समय हो गया था, किंतु शम्मी कहीं नजर नहीं आ रहा था। जनक ने बाहर बरामदे में जाकर उसे आवाज दी। कुछ देर के बाद शाली और शम्मी दोनों पूंछ हिलाते अंदर आ गये। जनक ने दोनों को रातब दिया। शाली ने पेट भरकर खाया और फिर कृतज्ञता में पूंछ हिलाती हुई चली गयी।

"पता नहीं, किनकी कुतिया है? उन्हें बता नहीं देना चाहिए न?" रात को सोते समय जनक ने अपने घरवाले को राय दी।

"चार दिन के बाद उनको खुद ही पता लग जाएगा। 'चांद चढ़े और बेटे जन्मे' कभी छिपे हैं?" उसके घरवाले ने बेपरवाही से कहा और करवट लेकर सो गया।

जनक को कितनी देर नींद नहीं आयी। 'मेरा पीहर छूटो जाए' बेगम अख्तर के गाये एक दादरे के बोल उसके कानों में गूंज रहे थे। आंसुओं से भीगी आवाज, शहद-जैसा मीठा दर्द।

अगले सारे दिन शाली कहीं नजर नहीं आयी। शाम को फिर वैसी की वैसी, अपने नियम के अनुसार गेट के बाहर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह पूंछ हिलाती उनके साथ सैर को चल दी।

सैर से लौटे तो इससे पहले कि शाली हर रोज की तरह गायब हो जाती, जनक ने शम्मी के साथ उसे भी रातब खिलाया, दूध और डबलरोटी। जितना हिस्सा शम्मी को उतना हिस्सा शाली को, बल्कि उससे ज्यादा।

और फिर जनक ने यह नियम बना लिया। हर शाम सैर के बाद शाली को खिला-पिलाकर भेज देती। वह भी जैसे अपना हक मान बैठी हो। रातब खाती, खातिर कराती और कहीं गायब हो जाती। किसी को नहीं पता था, कहां से आती थी, किधर जाती थी।

क्योंकि शाली को हर शाम खिलाना होता था, दूध की एक बोतल अधिक मंगवानी पड़ती। नौकर को रोटियां भी अधिक पकानी होतीं। एक दिन इस फालतू काम के लिए नौकर को खीजते हुए देखकर जनक उसे समझाने लगी, "यह बेचारी मां बननेवाली है।" तभी उसके घरवाले ने बीच में टोककर कहा, "ना भई, शाली तो बीवी की बहू है, इसकी खातिर तो जरूरी है!"

नौकर हंसने लगा। इसमें हंसीवाली कोई बात नहीं थी, लेकिन हंसनेवाली बात तो थी। शाली की जनक वैसी ही खातिर करती, जैसे उसके साथ कोई रिश्ता जुड़ गया हो। जाड़े आये और जनक को यह चिंता खाने लगी, पता नहीं शाली कहां सोती है? पता नहीं, वह जगह ढकी हुई भी है कि नहीं? उसके

सोने के लिए नरम जगह होनी चाहिए। शाम को उसे इतना खिला देती कि सारा दिन चाहे उसे कुछ भी न मिले तो भी उसका गुजारा चल जाता। जब ठंड और बढ़ी तब एक शाम सैर से लौटने पर जनक ने एक कोटी अंदर से निकालकर शाली को पहना दी। शम्मी की और बात थी। उसके बाल चप्पा-चप्पा लंबे थे। शाली के बाल पोर-पोर थे। उसे ठंड लगती होगी। सारे दिन जनक बैठी कोटी बनाती रही थी। अगले दिन जब शाली आयी तब उसकी कोटी गायब थी।

"किसी ने उतार ली होगी।" जनक कहती।

"नहीं, इसने खुद ही नोचकर फेंक दी होगी," उसके घरवाले ने अंदाजा लगाया।

"हां, शायद इसको आदत नहीं होगी", जनक ने सोचा। जब फिर फुरसत मिली तब उसने एक और कोटी बनायी। इस बार अधिक बटन लगाये ताकि शाली के लिए कोटी को उतारना मुमकिन न हो।

बरामदे में धूप में बैठी जनक कोटी बना रही थी कि उसकी नजर साथ की कोठी की ओर जा पड़ी। शम्मी पड़ोसियों की कुतिया के साथ खेल रहा था। गर्दन में गर्दन, थूथनी के साथ थूथनी, एक-दूसरे को धकेलते-लताड़ते, प्यार कर रहे थे। शीबा कद में शम्मी से ड्योढ़ी थी। उमर में भी बड़ी। जनक के पसीने छूटने लगे।

शाम को उसका घरवाला काम से लौटा तो पहली बार जनक ने शम्मी के इस नये कारनामे को बताया। वह हंस दिया, "अब तुम्हें एक और कोटी बनानी होगी।"

जब ठंड और बढ़ी तब जनक ने अपने पड़ोसियों को इशारे से कई बार बताया कि वे शीबा के लिए कोटी बनायें। वह मां बननेवाली है, पर वे सुनी-अनसुनी कर देते।

फिर एक दिन जब बारिश के बाद ठंड ज्यादा हो गयी तब जनक ने एक पुरानी लोई को काटकर शीबा के लिए भी कोटी बना दी। उसका पति घर में नहीं था। जनक पड़ोसियों के जाकर चुपके से शीबा को कोटी पहना आयी। शीबा भी यूं जनक के सामने खड़ी होकर कोटी पहनने लगी जैसे किसी ने नाप देकर बनवायी हो।

कोटी पहनाकर जनक कितनी देर शीबा की पीठ पर हाथ फेरती रही, उसकी थूथनी को सहलाती रही। अजीब रिश्ता था। पहले तो कभी वह आंख उठाकर भी इस कुतिया की ओर नहीं देखती थी।

आजकल शाली शाम को उनके साथ सैर के लिए नहीं जाया करती थी। शायद सर्दी ज्यादा हो गयी थी या फिर उसका पेट अधिक बढ़ गया था। उनकी सैर लंबी होती थी। उस दिन सैर करके जब वे लौटे तब सड़क पार करने के लिए रुक गये। वे रास्ता साफ होने का इंतजार करने लगे। अचानक पति-पत्नी ने पीछे मुड़कर देखा कि शम्मी एक गोली की तरह दौड़कर किसी आवारा कुतिया की ओर दौड़ा। कुतिया हड्डियों का ढांचा थी। लहू-लुहान।

जनक को बेहद गुस्सा आया। बिना उसका इंतजार किये वह अपने पति के साथ घर लौट आयी। यूं हर रोज वह अपने साथ शम्मी को सड़क पार करवाया करती थी। उस सड़क पर इतनी गाड़ियां चलती थीं कि उसे हमेशा डर लगा रहता था। जनक के मुंह का स्वाद अजीब-अजीब-सा हो रहा था।

अंधेरा हो रहा था और शम्मी अभी तक नहीं लौटा था।

गोल कमरे में बैठे अखबार पढ़ते उसके पति ने चिंता में डूबी हुई जनक से कहा, "मेरा खयाल है अब तुम्हें एक और कोटी बनानी होगी।"

जनक खामोश थी।

"एक लोई और तुम्हें काटनी होगी," कुछ देर बाद फिर उसने आहिस्ते से कहा।

जनक वैसी की वैसी खामोश थी।

"और अगले साल सर्दियों में कम-से-कम बारह कोटियां और तुम्हें बनानी होंगी। आखिर शाली, शीबा और इस आवारा प्रेयसी के चार-चार बच्चे तो होंगे। फिर बच्चों के बच्चे, उनके बच्चे..."

"जाएं जहन्नम में नामुराद," जनक ने कहा और अपने मुंह का कड़वा स्वाद थूकने के लिए बाहर चली गयी।

**पी. ७, हौजखास**
**नयी दिल्ली-११००१६**

---

**ऑफिस में चोरी हो गयी थी। पुलिस-इंस्पेक्टर ने पूछताछ करते हुए एलान किया, "चोरी किसने की? जो भी इस बारे में बतायेगा, उसे उचित पुरस्कार दिया जाएगा।"**

**एक युवक ने सामने आकर कहा, "हुजूर, मैं बता सकता हूं, यह चोरी किसने की होगी। लेकिन मैं आपके कान में बताऊंगा।"**

**इंस्पेक्टर उत्सुकता से उस युवक को लेकर एक ओर चला गया। युवक ने इंस्पेक्टर के कान में कहा, "हुजूर, यह काम तो किसी चोर का ही लगता है।"**

---

# शादी तौबा-तौबा

● शायान अहमद मदनी

इधर कुछ समय से रिश्तेदारों और दोस्तों का आग्रह था कि अब हमें शादी कर डालना चाहिए। उनके कथनानुसार यह वह उमर है जब कटे-कटे फिरना कुछ भला नहीं लगता। हमने लाख समझाया कि भाई, शादी हमें करनी है, यह सोचना हमारा काम है। आप क्यों ख्वाहमख्वाह हमारे गम में घुले जा रहे हैं ? मगर साहब, हमारे निवेदनों का उन पर कोई असर न होता। सबका एक ही खयाल था, "शादी की बात करो तो ये नौजवान यूं ही लापरवाही प्रकट करते हैं, हालांकि दिल ही दिल में शादी के बारे में न जाने क्या-क्या मनसूबे बनाते हैं ! अजीबो-गरीब सपने देखा करते हैं . . ."

यह अजीब बात है कि शादी का आग्रह करनेवाले स्त्री-पुरुष सामान्यतया स्वयं भी शादीशुदा होते हैं। उनके इस आग्रह का गौर से निरीक्षण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये लोग उस वर्ग से संबंध रखते हैं जिसका उसूल होता है कि स्वयं पिटो तो दूसरे को भी पिटवाये बिना न छोड़ो, यानी चूंकि हम शादी करके भुगत रहे हैं, इसलिए दूसरे क्यों आजादी से दनदनाते फिरें ?

जब हर ओर से आग्रह बढ़ने लगा और हम लोगों को समझाते-समझाते नीम-पागल हो गये तब अंत में हमने पूरी तरह पागल हो जाने के खतरे को देखते हुए रजामंदी प्रकट करने में ही कुशलता समझी। मगर साथ ही शर्त लगा दी कि

कोई फैसला करने से पहले हम नये शादी-शुदा जोड़ों की घरेलू जिंदगी का करीब से अध्ययन करेंगे और उनसे शादी-जैसे नाजुक मसले पर विचार-विनिमय करेंगे ताकि उनके अनुभवों के प्रकाश में सही फैसला ले सकें।

खुदा का शुक्र है कि हमारी इस शर्त को स्वीकार कर लिया गया, मगर हमें आखिरी फैसला करने के लिए एक सप्ताह से अधिक समय देने से साफ इनकार कर दिया गया। हमने इसी को गनीमत समझा और अगले ही दिन अपने अभियान का श्रीगणेश कर दिया।

हमारे दोस्त राशिद साहब एक प्रसिद्ध साहित्यिक विभूति हैं। उन्होंने हाल ही में शादी की थी। पहले उनसे सप्ताह में एक-दो वार मुलाकात हो जाया करती थी, मगर शादी के बाद केवल एक या दो वार ही सरसरी तौर पर मिले थे। हमने अपने अभियान का आरंभ उन्हीं से किया।

रविवार का दिन था। वे ड्राइंगरूम में बैठे अखबार देख रहे थे। हमें देखकर उन्होंने काफी गर्मजोशी प्रकट की, पर न जाने क्यों उनकी गर्मजोशी भी कुछ बुझी-बुझी-सी महसूस हुई। इधर-उधर की बातों के बाद हम असल विषय पर आये। काफी देर तक वे फर्श पर नजरें गाड़े सोचते रहे। फिर उठे। ड्राइंगरूम का दरवाजा बंद किया और पुनः अपनी जगह आकर बैठ गये।

"भई, अब मेरी क्या पूछते हो! बस ज्यों-त्यों गुजर रही है। वैसे मैं तुमसे कुछ छिपाऊंगा नहीं। सच तो यह है कि मेरी जिंदगी कुछ खुशगवार नहीं है . . . अभी देख लो . . . इस समय नौ बज रहे हैं, मगर बेगम साहिबा अब तक स्वप्न-

मग्न हैं। रात को मुशायरे से तीन बजे वापस आयी थीं। आज सुबह ग्यारह बजे एक साहित्यिक बैठक में विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित हैं। रात को उन्होंने मेरे ड्रेसिंग-गाउन पर एक हिदायत लिखकर पिन कर दी थी कि उन्हें ठीक दस बजे जगा दिया जाए। अब मैं दस बजने का इंतजार कर रहा हूं . . ." उन्होंने एक ठंडी सांस लेकर बात अधूरी छोड़ दी।

"आपने शादी से पहले इनके बारे में छानबीन क्यों नहीं की?"

"हिमाकत मेरी ही थी . . . तुम्हें शायद याद नहीं रहा। मेरी शादी में मेरी

पसंद ही सबसे बड़ी बाधा बनी हुई थी और इसी कारण देर भी हुई। मेरी शर्त थी कि मेरी जीवन-साथिन मेरी तरह साहित्यप्रेमी हो। कहानी-लेखन और शायरी की कद्र करती हो, बल्कि स्वयं कहानीकार या शायरा हो तो बेहतर है। मुझे क्या मालूम था कि मेरी पसंद स्वयं मेरे लिए मुसीबत बन जाएगी! अब स्थिति यह है कि बेगम साहिबा को अपनी शायरी के सिवा कुछ सूझता ही नहीं। न घर का होश है, न बाहर का। जब तक घर में रहती हैं, अपनी गजलों और नज्मों के पुलंदे उलटती-पुलटती रहती हैं। एकाध बार उनकी शायरी पर आलोचना क्या कर दी, मोहतरिमा का कई दिन मुंह फूला रहा। शायद इसीलिए अब मुझसे रहा-सहा साहित्यिक संबंध भी खत्म कर लिया है। अब बताओ, जिससे आलोचना बर्दाश्त न होती हो, वह कैसे अपनी कला में कमाल हासिल कर सकती है? मगर यह औरत... बहरहाल ... जब भी मुझे संबोधित करती है, तब या तो किसी लंबी रकम के चैक की फरमाइश करती है या गाड़ी की चाबी की। शहर में होने वाली साहित्यिक सभाओं और मुशायरों का भार मेरी जेब पर पड़ने लगा है। अपनी गाड़ी में मैं कम बैठता हूं, शहर के शायर अधिक घूमते हैं। ड्राइवर का खयाल है कि वह मेरा नहीं, बल्कि शहर भर के शायरों का नौकर है। भई, सच्ची बात तो यह है कि मैं ऐसे साहित्य-प्रेम से भर पाया!" वे सांस लेने के लिए रुके ही थे कि घड़ी ने दस बजाया और वे सोफे से यों उठकर बिना कुछ कहे-सुने अंदर की ओर लपके कि हम हैरान रह गये। हमने और छानबीन की जरूरत महसूस नहीं की और उनकी हालत पर खेद प्रकट करते हुए बाहर की राह ली।

बाहर आकर सोचने लगे कि राशिद साहब तो अपनी पसंद के कारण बेमौत मारे गये, इसलिए अब किसी ऐसे व्यक्ति

से संपर्क करना चाहिए जिसकी शादी मां-बाप की पसंद से खालिस पूर्वी अंदाज में हुई हो। काफी दिमाग लड़ाने के बाद तफज्जुल साहब का खयाल आया, जिनकी शादी पिछले महीने हुई थी। वे स्वयं तो मध्य वर्ग से संबधं रखते थे, मगर सुना था कि उनकी शादी किसी ऊंचे घराने में हुई है। अतः उनकी ओर जा निकले। बाहर ही मिल गये। एक पुरानी-सी कार का बोनट उठाये इंजन से जूझ रहे थे।

कपड़ों पर जगह-जगह तेल के स्याह धब्बे नजर आ रहे थे। इतनी शानदार कोठी के आगे ऐसी छकड़ा-सी कार देखकर कुछ विस्मय-सा हुआ। हमें देखकर किसी खास गर्मजोशी को अभिव्यक्त नहीं किया। वैसे होंठ मुसकराहट के अंदाज में फैले हुए थे।

"अरे तफज्जुल साहब, यह आप क्या कर रहे हैं. . . वह आपकी नयी फिएट कार कहां गयी ?"

"मेरी या मेरी बीवी की..." वे होंठ सिकोड़कर बोले।

"एक ही बात है, आपकी या भाभी की . . ." हम हंस पड़े।

"होती होगी . . . मगर यहां नहीं है..." उन्होंने कहा और कारबोरेटर का स्प्रिंग खींचने लगे।

"कोई खास वजह है क्या ?" हमने टटोला।

"मुझे क्या मालूम . . . मेरे मां-बाप से पूछो . . . जिन्होंने मुझे इस नरक में झोंका है . . . बड़े घर में शादी करना चाहते थे, ताकि सोसाइटी में गरदन तानकर चल सकें। . . . मैं कुछ कहता तो मुझे मुंहफट और गुस्ताख-जैसी उपाधियों से सम्मानित किया जाता। अब उनसे जाकर पूछो कि मेरी तो जिंदगी को तबाह कर दी, मगर उन्हें क्या फायदा हुआ ! मेरे सास-ससुर उनके महल्ले से गुजरना भी अपना अपमान समझते हैं। वे कभी आते हैं, तो उन्हें बाहर ही खड़े-खड़े टाल दिया जाता है, इन्हें तो घर-दामाद की जरूरत थी, सो वह मिल गया। मेरे मां-बाप से इन्हें क्या मतलब ! आर्थिक लाभ की सारी आशाओं पर ओस पड़ गयी। ससुर साहब एक नंबर बिजनेस-मैन हैं। उनको तो क्या देते . . . मुझे बड़ी मिन्नतों और खुशामदों के बाद यह छकड़ा खरीद कर दिया है। वह भी इस-लिए कि मैं समय-कुसमय गाड़ी मांगकर इनकी लाड़ली का मूड आफ न करूं . . . हुंह ! लानत है ऐसी जिंदगी पर . ." वे झुंझलाकर इंजन के तारों को नोचने लगे।

"बेगम साहिबा क्या बाहर गयी हुई हैं ?"

"भई, मुझे क्या मालूम ! मैं तो दिन में एकाध बार ही उनकी शक्ल देखता हूं। उन्हें क्लबों, पार्टियों और ब्यूटी-क्लीनिकों से फुरसत मिले, तब वे नजर भी आयें . . . ग्यारह बजने को आये हैं . . . और यह मनहूस ! यार

## वचन-वीथी

राजनीति घुड़दौड़ का घोड़ा है। पेशेवर घुड़सवार को जानना चाहिए कि यदि गिरे तो इस तरह कि चोट कम से कम लगे। —इडौर्ड हेरीऑट

जब व्यक्ति का अहंकार समाप्त हो जाता है तभी उसकी गरिमा का प्रारंभ होता है। —युंग

जिसने एक बार विश्वासघात किया है उसका विश्वास कभी न करें। —शेक्सपियर

मूर्ख दौड़े हुए वहीं पहुंचते हैं जहां फरिश्ते भी जाने से डरते हैं। —स्मोलेट

शब्द जितने कम होंगे उतनी ही अच्छी प्रार्थना होगी। —लूथर

जो हमेशा जीने के लिए जीता है, वह कभी भी मृत्यु से नहीं डरता। —पेन

वह व्यक्ति स्वतंत्र नहीं है जो स्वयं का मालिक नहीं है। —एपिक्टेटस

वही अपनी पार्टी की सुसेवा करता है जो राष्ट्र की सुसेवा करता है। —रुदरफोर्ड बी. हेस

जरा धक्का लगाकर देखो। शायद ... हम पर रहम आ जाए।"

इतनी व्यक्तिगत किस्म की जा... कारी उपलब्ध कर लेने के बाद हम धक्का तो क्या, उनकी कार सिर पर उठाकर चल सकते थे। काफी दूर तक धक्का दि... पर वह स्टार्ट होकर न चली। इसी दौरा... हमने मशवरा दिया—"आप अपनी बेग... के साथ जाया कीजिए न! आखि... इसमें हर्ज ही क्या है!"

वे मुंह बिगाड़कर बोले, "वह भ... मुझे क्यों ले जाने लगी! अपनी फ्रैंडशि... में उसने स्वयं को अविवाहिता मशहूर कर रखा है और फिर मुझे क्या पड़ी है कि मैं उसकी दुम में बंधा रहूं! ... बार गरज पड़े तो वह स्वयं मेरे साथ जाए! मैं लानत भेजता हूं इस जिंदगी पर! . . ." यह कहकर वे कुछ औ... गुस्से की अवस्था में इंजन से उलझने लगे और हमने उनके मूड को औ... खराब होता देखकर इजाजत मांग... में ही बेहतरी समझी।

उनसे निबटकर किसी तीसरे ... आजमाने की हिम्मत न हुई। हमारे दोनों दोस्तों की दुर्दशा ने हमारे दि... दिमाग रोशन कर दिये थे। सीधे घर पहुंचे और घोषणा कर दी कि अगर अ... किसी ने हमारे सामने शादी का नाम लिया, तो हम घर छोड़कर किसी पागल-खाने में दाखिल होने की पूरी कोशिश करेंगे।

# क्षणिकाएं

## सुहागरात

सुहागरात के दिन
एक घरेलू, गांव की
भोली-भाली मगर चतुर
धर्म-परायण नयी पत्नी
बिदककर बोली—
शर्म नहीं आती
परायी बहन-बेटी को
छूते हुए

—आर. वी. सैलानी

## संपादक

'छपास' के मरीजों का
रजिस्टर्ड डॉक्टर
जो पहले तो
अभिवादन कर मुसकराता है
और फिर एकदम
'खेद' का इंजेक्शन लगाता है

—अवधनारायण पाण्डेय

## कानून के अंग

कानून के हाथ
बहुत लंबे हैं
माना कि
उसके बहुत मजबूत
शिकंजे हैं
फिर भी कुछ अपराधी
बच जाते हैं
शायद वे
कोहनी और कलाई के
बीच में आते हैं

—दिलीप चौधरी

## विद्रोह

चाहे जैसा हो
जिस लिए भी हो
कोई पसंद नहीं करता
अपने खिलाफ—विद्रोह को !

—कुमार पार्थिव

## जिंदगी

'ऐश-ट्रे' की
अधजली सिगरेट-सी है
आदमी की जिंदगी
जब तलक
पूरी तरह जल नहीं जाती
धुआंती है . . .

—जहीर कुरेशी

## अच्छा पड़ोसी

मेरा मित्र
अच्छा पड़ोसी
उसे मानता है
जो
अपने घर से
ज्यादा
दूसरों के घर के
बारे में
जानता है

—चन्द्रशेखर अगस्त्य

# कैंसर
## हमेशा मौत का दोस्त नहीं

● डॉ. विद्याभूषण

कैंसर !
रोम-रोम सिहरा देनेवाला एक भीतिकारी शब्द। ऐसा तिरस्कृत शब्द, जिसे लोगों का बस चले तो शब्दकोश से ही बहिष्कृत कर दें। कई कारणों से कैंसर मृत्यु का पर्यायवाची शब्द बन गया है। क्या सचमुच कैंसर हमेशा प्राण-घातक सिद्ध होता है ?

शायद नहीं।

'कैंसर' शब्द सुनते ही मुझे अपने शहर के एक ऐसे मजदूर नेता का स्मरण हो आता है, जो अपनी तरुण अवस्था में कैंसर के शिकार हो गये थे। उनके कैंसरग्रस्त होने की सूचना मात्र से लोगों के चेहरों पर विषाद घनीभूत हो उठा था, पर उन मजदूर नेता ने साहस नहीं छोड़ा। चिकित्सा करवाते रहे और मजदूरों की लड़ाई भी लड़ते रहे। कैंसर उन्हें मृत्यु की खाई की ओर नहीं धकेल सका।

कैंसर एक प्राणघातक रोग है—पर हमेशा नहीं। उल्लिखित मजदूर नेता की भांति संसार में हजारों ऐसे लोग हैं जिन्होंने कैंसर से लड़ाई लड़कर बाद में सुख-चैन की जिंदगी वितायी। इनमें से ही एक है—ब्रिटेन के दूरदर्शन का जादूगर डेविड निक्सन।

दो वर्ष पूर्व १९७४ में जब ४... वर्षीय डेविड निक्सन को पता चला कि उसे कैंसर हो गया है तब क्षण भर के लिए उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। विडंबना यह कि अपने करुण और कष्टकर अंत की अपेक्षा रोजी-रोटी की तात्कालिक समस्या ने उसे ज्यादा व्यथित और चिंतित किया। उसने स्वयं के कैंसरग्रस्त हो जाने की सूचना किसी को नहीं दी। व्यावसायिक हितों की दृष्टि से इस बात को प्रचारित करना डेविड निक्सन के लिए घातक होता। टी. वी. (दूरदर्शन) अधिकारी उसे लंबी अवधि के कांट्रेक्ट देने से घबराते। अतः उसने हिम्मत से

काम लिया और दूरदर्शन पर नियमित रूप से कार्यक्रम प्रस्तुत करने के साथ-साथ चिकित्सा भी करवाता रहा। उसने १० सप्ताह तक रॉयल मार्सडेन अस्पताल में 'रेडिएशन ट्रीटमेंट' करवाया। डेविड निक्सन के फेफड़े में एक ट्यूमर निकल आया था। 'रेडियम ट्रीटमेंट' के बाद डॉक्टरों ने उसे रोगमुक्त कर दिया और डेविड निक्सन ने नये विश्वास और नये उत्साह से अपने कार्यक्रमों का प्रदर्शन शुरू कर दिया।

डेविड निक्सन ने कैंसर-रोगी को होनेवाली शारीरिक से अधिक मानसिक यंत्रणा को स्वयं भोगा था। वह जानता था कि रोग से अधिक निराशा रोगी को

गायिका : हिल्डे गर्डेनेफ

अधिक तोड़ती है। इसलिए उसने ब्रेडफोर्ड अस्पताल में कैंसर-चिकित्सा की दिशा में शोध के लिए १ लाख पौंड की राशि एकत्र करने का बीड़ा उठाया।

टेनिस खिलाड़ी :
लिया पेरीकोली

'जादूगर' डेविडनिक्सन

उसने जनता के नाम एक अपील जारी करते हुए अपनी बीमारी के बारे में बताया— यह सिद्ध करने के लिए कि समय पर चिकित्सा उपलब्ध हो जाने पर कैंसर को पराजित किया जा सकता है, कि कैंसर एक असाध्य रोग नहीं है, रोगी तथा उसके परिवारवालों को निराश होने के बजाय आशा, विश्वास और साहस से काम लेना चाहिए।

कैंसर-शोध के लिए जारी आंदोलन के निदेशक डॉ. जैक फाउलर के अनुसार कैंसर के ४० प्रतिशत रोगियों को तो बचाया ही जा सकता है। यदि कुछ किस्म के कैंसर का प्रारंभिक अवस्था में पता लग जाए तो १० में से ९ रोगियों को ठीक किया जा सकता है।

एक प्रसिद्ध अभिनेत्री ग्लिनिस जोंस भी कैंसर से लोहा ले चुकी है। ग्लिनिस जोंस को अपनी अमरीका-यात्रा के दौरान इस बीमारी का पता चला। सत्रह वर्ष पूर्व तो कैंसर का और भी आतंक था, लेकिन ग्लिनिस जोंस ने भयभीत होने के बजाय चिकित्सकों से परामर्श किया और इलाज करवाने लगी।

कैंसर को परास्त करनेवालों में इटली की प्रख्यात टेनिस-खिलाड़ी लिया पेरीकोली का नाम भी उल्लेखनीय है। पेरीकोली के गर्भाशय में कैंसर हो गया था, लेकिन उसका समय पर पता चल गया और पेरीकोली को रोग से जूझने में आसानी हुई।

पेरीकोली ने बताया—"जब डॉक्टरों ने मुझे आपरेशन का सुझाव दिया तो मैं कुछ अनमनी-सी हो गयी। यह स्वाभाविक ही था, लेकिन मैंने विवेक नहीं खोया, न पागलों की-सी हरकतें करने लगी। मैंने इलाज करवाया। इलाज के अलावा जिस बात से मुझे बेहद लाभ हुआ वह था मेरा विश्वास।"

बाद में लिया पेरीकोली ने कैंसर से छुटकारा ही नहीं पाया, बल्कि आपरेशन के छह मास बाद ही इटली की महिला चैंपियनशिप भी हासिल की।

लिया पेरीकोली की भांति एक बमवर्षक विमानचालक कैप्टेन बेन राइट ने भी अपनी दृढ़ इच्छा और आत्मविश्वास के सहारे कैंसर पर विजय पायी।

**निराशा—रोग से अधिक खतरनाक**

यह बात डॉक्टर भी मानते हैं कि किसी भी रोग से मुक्ति पाने के लिए रोगी का मात्र औषध लेना पर्याप्त नहीं है। रोगी में इस बात का आत्म-विश्वास भी होना जरूरी है कि चिकित्सा से वह अवश्य रोगमुक्त हो जाएगा।

**इच्छाशक्ति का प्रभाव**

ब्रिटेन के लार्ड फीदर सिगरेट आदि न पीनेवाले एक दृढ़ व्यक्ति हैं। पिछले वर्ष जब डॉक्टरों ने उन्हें बताया कि उनके फेफड़े में कैंसर जड़ें जमा बैठा है तब वे चिंतित अवश्य हुए, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। उनके अपने शब्दों में, "पहले तो मुझे जबर्दस्त धक्का लगा, पर

मैंने हिम्मत नहीं हारी। निराशा में डूबने के बजाय मैंने यह सोचना शुरू कर दिया कि अब जिंदगी के शेष दो वर्ष किस तरह व्यतीत करूंगा। मेरा विश्वास था कि कम से कम मैं इतने वर्षों तक तो जीवित रहूंगा ही।"

इसके बाद लंदन के यूनीवर्सिटी कॉलेज अस्पताल में लार्ड फीदर ने रेडियो-थेरेपी शुरू की। कुछ समय बाद पता चला, उनकी बीमारी लाइलाज नहीं है।

में ही पता चल जाए।

इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप प्रख्यात अभिनेताओं लार्ड लारेंस ऑलिवर एवं जान वायने के नाम लिये जा सकते हैं।

सन १९६७ में लार्ड लारेंस ऑलिवर को पता चला कि वे कैंसर की गिरफ्त में हैं, पर उन्होंने निराश होने के बजाय पूरे विश्वास के साथ चिकित्सा शुरू की और इस धारणा को निर्मूल करके ही दम लिया

लार्ड लारेन्सऑलीवर

जानवायने

लार्ड फीदर

**कैंसर—मौत का परवाना नहीं**

इन दिनों लार्ड फीदर पूरी तरह स्वस्थ और प्रसन्न हैं। उनका कहना है, "कैंसर शब्द का उच्चारण किया जाता है तो अक-सर उसका अर्थ मौत के परवाने से ले लिया जाता है, पर हमेशा ही कैंसर मौत का परवाना हो, जरूरी नहीं। लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि डॉक्टरों के परामर्श के अनुसार चिकित्सा करवाने पर रोग-मुक्त होने की अच्छी संभावना होती है, विशेषकर यदि रोग का प्रारंभिक अवस्था

कि कैंसर मृत्यु का पर्याय है।

प्रख्यात अमरीकी अभिनेता जान वायने ने भी कैंसर से संघर्ष कर उस पर विजय पायी है।

**सिगरेट से तोबा**

सन १९७४ में एक दिन ६३-वर्षीय कवि एवं पटकथा-लेखक पॉल डेहन को पता चला कि उन्हें फेफड़े का कैंसर हो गया है। वे प्रतिदिन ६० सिगरेट फूंकते थे। यद्यपि डॉक्टरों ने उनसे कुछ नहीं कहा, तथापि पॉल डेहन ने मन ही मन यह जान

लिया कि लगातार सिगरेट पीना ही उनके लिए घातक हुआ है, पर अब निराश होने से कोई लाभ नहीं होगा। अतः उन्होंने डॉक्टरों की राय के अनुसार चिकित्सा शुरू की। आपरेशन के दिन उन्होंने सिगरेट का अंतिम कश खींचा और फिर जलती हुई सिगरेट को बुझाकर खिड़की की राह बाहर फेंकते हुए संकल्प किया, " मैं अब कभी सिगरेट नहीं पिऊंगा।"

स्वस्थ होने के बाद उन्होंने फिर कभी सिगरेट नहीं पी।

**आपरेशन से भय नहीं**

कैंसर से निरंतर संघर्ष कर मजे में जिंदगी गुजारनेवालों में एक प्रख्यात गायिका हिल्डेगर्ड नेफ भी हैं। उनके आज तक ५६ आपरेशन हो चुके हैं। नेफ का कहना है कि मुझे अब तक केवल एक बात ने जीवित रखा है और वह है जीवन की अदम्य लालसा तथा निराश होकर मृत्यु के सामने किंचित भी न झुकने का दृढ़ संकल्प——

"मैं कैंसर के बारे में भलीभांति जान चुकी हूं तथा और अन्य लोगों को कैंसर से लड़ने की प्रेरणा दे सकती हूं। मैं दुनिया के स्वस्थ लोगों से कह सकती हूं कि उन्हें जिंदगी से कितना प्यार करना चाहिए। उन्हें कहना चाहिए कि कैंसर जाए जहन्नुम में, जिंदगी प्यार करने और जीने के लिए है। पीड़ा ने मुझे सीख दी है कि आत्म-ग्लानि से हमेशा बचना चाहिए। पीड़ा ने मुझे जिंदा रहना और समस्याओं से जूझना सिखाया है।"

७ अगस्त, १९७३ को नेफ को डॉक्टरों ने बताया कि उसे कैंसर हो गया है। नेफ का विचलित होना स्वाभाविक था, लेकिन उसने शीघ्र ही स्वयं पर काबू पा लिया और बीमारी को भुलाकर एक नयी फिल्म का काम शुरू कर दिया।

नेफ के शब्दों में, "पहले तो मैं बहुत भयभीत हुई। क्रोध भी काफी आया। मेरा भयभीत होना स्वाभाविक था। क्रोध मुझे इसलिए आया कि वे चांद पर आदमी के जाने और चट्टानों के कुछ टुकड़े लेकर वापस आने के लिए अरबों डालर खर्च कर सकते हैं, लेकिन मुझे इस वाहियात बीमारी से अच्छा नहीं कर सकते। ऐसी वाहियात बीमारी से जो मुझे इतनी प्यारी जिंदगी से जुदा कर देगी। सात साल की बेटी से मुझे छीन लेगी।

"कुल मिलाकर, मेरे स्तन-कैंसर को दूर करने के लिए ५६ आपरेशन किये गये। आप पूछेंगे—पीड़ा हुई ? जी हां, पीड़ा तो हुई, पर मुख्य बात यह है कि मैंने एक शक्ति का स्रोत भी खोज निकाला।"

नेफ ने शराब की चुस्की लेने के बाद सिगरेट का एक कश खींचा और कहा, "लोग मौत से इतना भयभीत हैं कि वे भूल जाते हैं कि जिंदगी कैसे जी जाए।"

गालिब का एक शेर है—" **मौत का एक दिन मुअय्यन है, नींद रात भर क्यों नहीं आती।"** मैं इसमें थोड़ा संशोधन करूंगा—"मौत का एक दिन मुअय्यन है तो फिर क्यों परेशान हुआ जाए !"

शराब के सौदागर की आंखों पर पट्टी बंधी थी और वह चख-चखकर शराब की किस्म का वर्णन करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन कर रहा था। वह एक के बाद एक शराब का घूंट भरता और उसका सही नाम बता देता। इस तरह कोई बीस किस्म की शराब चखने के बाद उसके हाथ में सादे पानी का गिलास पकड़ा दिया गया।

सौदागर ने उसे चखा और गुर्राया, फिर चखा। अंत में वह बोला, "भद्रजनो, मैं अपने जीवन में पहली बार पराजित हुआ हूं। मुझे कुछ मालूम नहीं कि इस गिलास में क्या भरा हुआ है। मैंने इससे पहले इसे कभी नहीं चखा, लेकिन मैं एक बात दावे के साथ कह सकता हूं कि इसे कोई नहीं खरीदेगा।"

—अखिल कुमार

पति को पीहर गयी पत्नी का जवाबी टेलीग्राम मिला—'प्रिय, तुम्हारे वियोग में यहां मैं एक ही महीने में आधी रह गयी हूं, मुझे लेने कब आ रहे हो?'
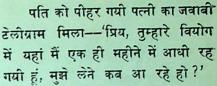
'एक महीने बाद,' पति ने उत्तर भेजा।

●

श्रीवास्तव साहब नित्य रात को देर से लौटते थे। चलते समय वे पत्नी से कहा करते, "चार बच्चों की मम्मी, गुड नाइट!'

एक रात श्रीवास्तवजी की पत्नी ने अपनी आवाज में शहद घोलते हुए जवाब दिया, "गुडनाइट, चार में से दो बच्चों के पिता, गुडनाइट!"

उस दिन के बाद श्रीवास्तवजी ने रात को बाहर निकलना एकदम छोड़ दिया।

●

श्रीवास्तवजी ने अपने सफल विवाहित जीवन का रहस्य अपने मित्र को बताया कि पत्नी के विषय में जो विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हें वे दिल में ही रखते हैं!

श्रीवास्तवजी अपने जिगरी दोस्त मोहन बाबू से कह रहे थे, "भई, मैं तो मसूरी पर जान छिड़कता हूं। उसकी बदौलत मेरे जीवन में कुछ ऐसे सप्ताह आये थे, जो अत्यंत खुशहाल थे।"

मोहन बाबू ने जरा चकित होकर कहा, "पर तुम मसूरी कभी गये तो नहीं!

# हंसिकाएं : काव्य में

## मेरी सरकार

क्रुद्ध पत्नी से हंसकर
उन्होंने इतना ही कहा था--
'आंखें मत दिखला मेरी सरकार मुझे
तेरा चुनाव
किसी मतदान से नहीं
मात्र--
मेरी सम्मति से हुआ था।'

## भूख

'बिल्लियों को रोटी बांटते हुए
बंदर ने कहा डांटते हुए—
'खेद से कहना पड़ता है
समान बंटवारे की ऐसी बातों के कारण
बहुत लोगों को भूखा रहना पड़ता है!'

## टिप्पणी

संपादक ने एक कहानीकार से कहा
'अबकि यह किस्सा कुछ जंचा नहीं
जो हिस्सा अच्छा है वह मौलिक नहीं
जो मौलिक है--वह अच्छा नहीं।'

## सूचना

बंधुओ!
हम अस्वीकृत रचनाओं के प्रकाशनार्थ
एक पत्रिका निकाल रहे हैं
लौटी हुई इन रचनाओं पर
कोई विचार-विमर्श नहीं किया जाएगा
और
उन्हें रद्दी के भाव लिया जाएगा।

--डॉ. सरोजनी प्रीतम

यदि गये होते, तो मुझे जरूर बताते।"

"भई, पिछले साल गरमी में मेरी पत्नी अपनी बहन के साथ गयी थी," श्रीवास्तव साहब ने स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, "मैंने अपने जाने के बारे में कब कहा!"

●

श्रीवास्तव साहब ने एक बार एक नाटक में अभिनय करने की जिम्मेदारी भी अपने सिर पर ले ली। श्रीवास्तव साहब के मित्र मोहन बाबू ने पूछा, "नाटक में तुम्हें कितने संवाद याद करने हैं?"

श्रीवास्तव साहब ने कहा, "भई, मुझे एक भी संवाद याद नहीं करना है। मुझे पति की भूमिका मिली है।" --ऊषा टंडन

●

डॉक्टर: नर्स, क्या यह जरूरी है कि उस रोगी के कमरे में रेडियो इतने जोर से बजे?

नर्स: जरूरी तो नहीं है, डॉक्टर, लेकिन मैं अभी-अभी उस रोगी के घाव की पट्टी खोलने जा रही हूं। मैं नहीं चाहती कि दूसरे रोगी उसकी चीख-पुकार सुन-कर भयभीत हों।

●

बाग के हरे-भरे घास के मैदान को सुरक्षित रखने के लिए माली ने वहां एक नोटिस टांग दिया—'घास को सुर-क्षित रखें।' दूसरे दिन माली ने देखा कि घास के मैदान तो सुरक्षित हैं, किंतु फूलों के बाग में बच्चे धमाचौकड़ी मचा रहे हैं।

—शारदा

# दफ्तर में मौसम

• ममता कालिया

मौसम अनायास सुहावना हो गया था। थोड़ी-थोड़ीं देर में बूंदा-बांदी होने लगती थी। जब तक लोग अपने छाते खोलते, फुहार बंद हो जाती। ऐसा लग रहा था जैसे बारिश के कंट्रोल-रूम में कोई शरारत से बार-बार बटन दबा रहा हो। उसने रिक्शे का हुड उतरवा दिया।

हाल ही शहर की दूकानों का रंग-रोगन होकर चुका था। अब सभी दूकानें एक-सी लगती थीं। पूरी सिविल-लाइंस एक कॉलोनी की तरह दिखायी दे रही थी। धुल-पुछकर वही सड़कें पहले से ज्यादा खुली और चौड़ी हो गयी थीं या शायद उसे ऐसा महसूस हो रहा था। उसे नहीं पता था कि मौसम का मूड पर इतना आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ सकता है। अभी थोड़ी देर पहले जब वह तैयार हो रही थी और गली में नन्हे-नन्हे बच्चों की एक छोटी टोली उछल-उछलकर चिल्ला रही थी 'या रब पानी दें', 'या रब पानी दें', वह उनके जोश और घिरते बादलों की ओर से बिलकुल उदासीन रेशमा को सुन रही थी—'हाय रब्बा नइयों लगदा दिल मेरा . . .' लेकिन जब वह

बाहर आयी, उस पर बारिश के पहले छींटे पड़े और वह सहसा उत्फुल्ल हो उठी।

वैसे यह उत्फुल्ल होने का समय नहीं था। यह दफ्तर जाने का समय था। दस बज चुके थे और उसे जल्द से जल्द दफ्तर पहुंच जाना चाहिए था। वह पिछले अठारह साल से लगातार दफ्तर जा रही थी और पिछले अठारह साल से लगातार लेट हो रही थी। साढ़े नौ बजे तक वह घड़ी के आगे शहंशाह की तरह लेटी रहती, चाय पीती, गाने सुनती, अखबार पढ़ती; फिर वह दौड़-धूप मचाने लगती। मुश्किल यह थी कि जिस दिन वह उन्नावी साड़ी पहनना चाहती, उस दिन उसे उन्नावी पेटीकोट न मिलता और जिस दिन पीला ब्लाउज मिल जाता, उस दिन पीली साड़ी मुचड़ी हुई मिलती। उसने कई बार तय किया कि एक छुट्टी के दिन वह सारे कपड़े संभालकर, सजाकर अलमारी में रखेगी, लेकिन इतवार आते और चले जाते, उसकी चीजें यों ही कमरे में चक्कर लगाती रहतीं। जूड़े के पिन—तकिये के नीचे, पेन—अखबारों के बीच, चप्पलें—ड्रेसिंग-टेबिल की दराज में, टॉवेल—रसोई में और लिपस्टिक—गुसलखाने में। इस गड़बड़झाले से उकताकर उसे दफ्तर याद आने लगता, जहां सारी फाइलें करीने से अलमारियों में रखी थीं। वह आंख मूंदकर सही फाइल निकाल सकती थी। फाइलों के अलावा और था भी क्या वहां! बेडौल मेजों और बदमिजाज लोगों से घिरा एक बड़ा हॉल, जिसमें बगैर पानी के कूलर घर्र-घर्र आवाज करता रहता।

उसने चाहा कि हॉल की खिड़कियां खोल दे, लेकिन तभी उसे सक्सेना और अब्बास की लड़ाई याद आ गयी और वह हिम्मत छोड़ बैठी।

उसे ठीक याद है, तब सर्दियों के दिन थे। उस हॉल में हीटर की व्यवस्था नहीं थी, बायीं ओर एक बड़ा-सा ताक था जिसमें पत्थर के कोयलों के बड़े-बड़े डले सुलगते रहते थे। सुबह कुछ देर के लिए हॉल गरम और आरामदेह लगता, फिर कोयले धीरे-धीरे ठंडे होने लगते और हॉल फिर गीला, सीला और सर्द महसूस होता।

इसके अलावा कोयलों के बुझने के साथ-साथ हॉल में कुछ ज्यादा ही अंधेरा मालूम देता। काफी ऊंचाई पर टिमटिमाते दो पीले बल्ब अंधेरे और मनहूसियत को कम करने की हिम्मत वर्षों पहले ही हार चुके थे। ऐसे ही एक दिन अब्बास ने सामने की खिड़की खोलने का एलान किया था। सक्सेना उस वक्त ऊंघ रहा था। अब्बास की आवाज से वह चौंककर उठा और बोला, 'नहीं, खिड़की मत खोलो, हवा आयेगी।'

'हवा के साथ-साथ रोशनी भी आयेगी।'

'मैंने कहा न, खिड़की मत खोलो!'

अब्बास जाम हुई सिटकनी से जूझ रहा था। एक झटके में उसने सिटकनी खोल ही ली। वह खिड़की खोलने लगा था कि सक्सेना ने उठकर उसकी बांह पकड़ ली।

अब्बास ने उसका हाथ झटक दिया।

दोनों गुत्थमगुत्था हो गये। सहसा दफ्तर में गली का माहौल हो गया। मौलिक गालियों का खुलकर प्रयोग किया गया, जिनमें एक-दूसरे की मां, बहन और बेटी से निकट के संपर्क स्थापित करने की मुनादियां हुईं, फिर अन्य साथियों के बीच-बचाव से मामला ठंडा हुआ। दोनों अपनी-अपनी कमीज झाड़ते, अपने-अपने हमदर्द दल को अपनी-अपनी बात बताने लगे। उस दिन और कोई काम नहीं हुआ और पांच की जगह साढ़े चार बजे ही सब उठ गये। जब दफ्तर सुनसान हो गया, रक्षा ने खिड़की खोलकर देखा था, कमरे के अंधेरे में विशेष अंतर नहीं पड़ा था। दायीं तरफ वह कब्रिस्तान था जिसके बारे में मशहूर था कि वहां रात में गिटार बजता सुनायी पड़ता है। गिटार से संबद्ध दो-एक त्रासद प्रेमकथाएं थीं, जो दफ्तर का चौकीदार मौका मिलते ही दोहराता था। रक्षा को

ये प्रेम-कथाएं झूठी और नकली लगती थीं। उसे सभी प्रेम-कथाएं झूठी और नकली लगती थीं।

दफ्तर का माहौल उसे तंग न करते हुए भी तंग था। एक भी ऐसा सहकर्मी नहीं था जिसे वह दोस्त के स्तर पर रख सके। वर्षों से एक ही कुरसी पर बैठे-बैठे वे या तो मंद रक्तचाप के मरीज हो चुके थे या मंद-बुद्धि के। किसी के साथ एक कप कॉफी बांटना भी दुश्वार था। औरत के प्रति एक 'घें-घें' दृष्टिकोण और महंगाई, इसके अलावा इनमें कोई विशेषता रक्षा को कभी नजर नहीं आयी। धड़ाधड़ आकस्मिक अवकाश लेते ये लोग किस्म-किस्म की बीमारियों के शिकार थे। उन्हें देखकर रक्षा को डर लगता, कहीं वह भी किसी ऐसी बीमारी की चपेट में न आ जाए! जैसे-जैसे उसकी उम्र बढ़ रही थी, उसे तकलीफों से डर लगने लगा था। उफ! इतनी सारी बीमारियां! इनसान आखिर कब तक, कहां तक बच सकता है, वह सोचती। कई बार तो उसने देखा था कि अभी पिछले हफ्ते जो नितांत स्वस्थ नजर आ रहा था, वह अब खांसता, कराहता अस्पताल में पड़ा छटपटा रहा है। तब उसे लगता, उसके पास वाकई बहुत कम वक्त रह गया है, उसे कोई बड़ा काम कर डालना चाहिए, कोई चुनौतीपरक काम। कभी-कभी उसे लगता अभी वह वर्षों नहीं मरेगी, मृत्यु उसके पड़ोस तक आकर लौट जाएगी।

अकसर लोग उससे पूछते, क्या उसे घर-परिवार की लालसा नहीं होती? अपना घर, अपना पति, अपने बच्चे! वह जानती थी, लोग उससे कैसे उत्तर की अपेक्षा रखते हैं, लेकिन वह उन्हें खुश न कर पाती। न जाने क्यों उसे परिवार की कल्पना से असुविधा होने लगती। जेहन में कुछ 'खड़खड़. चीं-चीं' की आवाजें होतीं और वह तुरंत फैसला कर लेती, यह सब उसे नहीं चाहिए। अपने को हर वक्त औरत मानना उसके बस की बात नहीं थी। इक्कीस साल की उम्र से काम करते-करते वह अब लगभग पुरुष हो गयी थी। शरीर-रचना के अलावा उसे अपने में और पुरुषों में कोई अंतर नजर नहीं आता था। यही वजह थी कि पुरुषों के प्रति उसका रुख समर्पण का नहीं, मुठ-भेड़ का था।

इस सबके बावजूद वह इस समय उत्फुल्ल थी।

जॉनसनगंज के चौराहे पर बकरियों का एक रेवड़ सड़क क्रॉस कर रहा था। सामने से आता एक आदमी रेवड़ में फंस गया। बकरियां उससे और वह बकरियों से घबरा रहा था। बच निकलने की कोशिश में वह बकरी की ही तरह मिमियाने लगा। रक्षा को लगा, वह बकरी-जैसी निरीह चीज से भी अपने को अरक्षित पा रहा है।

रक्षा की साड़ी भीग गयी थी।

दफ्तर पहुंचकर उसने उसके सूखने का इंतजार नहीं किया बल्कि साड़ी बदल ली। दफ्तर में अपनी अलमारी का निचला खाना उसने ऐसी ही चीजों से भर रखा था। कई अर्थों में यह निचला खाना उसे घर की याद दिलाता था, बिलकुल वैसे जैसे घर में उसके लिखने-पढ़ने की मेज उसे दफ्तर का आभास देती थी।

गुप्ता भी शायद अभी-अभी दफ्तर पहुंचा था। वह अपना गीला चश्मा जोर-जोर से रगड़ रहा था मानो चश्मा नहीं मर्तबान साफ कर रहा हो।

अब्बास गलियारे में चपरासी को ढूंढ़ रहा था। वह दफ्तर आते ही चाय पीता था। तभी शर्मा अपना टपटपाता छाता उलटा लटकाये आ गये।

वे उन सबमें वरिष्ठतम थे, इसीलिए जब भी निदेशक बाहर दौरे पर जाते, कार्यभार उन्हें सौंप जाते। ऐसे समय बाकी साथी उनके प्रति एक हिर्स का भाव महसूस करते। उन्होंने शर्मा का नाम रख दिया था 'कृते निदेशक।' शर्मा इन बातों से वाकिफ थे, लेकिन अपनी प्रतिक्रिया जाहिर नहीं होने देते थे। जब माहौल उनके खिलाफ कुछ ज्यादा गरम होने लगता, वे धीरे से अपनी कलम बंदकर दराज में रख देते और डिबिया से पान निकालकर मुंह में डाल लेते।

शर्मा ने बैठते ही फाइलें संभाल लीं, "मिस त्यागी, आज आप उपाध्याय पेंशन-केस के डिटेल देंगी।" रक्षा ने फाइल फौरन उसके सामने रख दी। कुछ देर वे आं[illegible] मिलाते रहे। दो-एक जगह उनकी उं[illegible] ठहरी। रक्षा ने स्पष्ट विवरण दि[illegible] रक्षा को खुशी हुई, उसका एक भी आंक[illegible] गलत नहीं निकला।

बारह बजते-बजते उसका [illegible] सा काम निबट गया। उसने देखा [illegible] की मेज पर अब्बास उबासियां ले रहा है "इतने अच्छे मौसम में तुम्हें सुस्ती [illegible] रही है!" रक्षा ने कहा। शर्मा हां में [illegible] मिलाते हुए बोले, "अच्छे मौसम का [illegible] मतलब ही होता है ज्यादा काम, [illegible] आराम। आप थोड़ा व्यायाम कि[illegible] कीजिए सुबह-सुबह।"

अब्बास ने तिलमिलाकर कहा, "दू[illegible] बादाम का इंतजाम आप कर दिया [illegible] तो मैं कसरत का इंतजाम करूं।" [illegible] का पान का डब्बा बैग से बाहर नि[illegible] आया, "मिस त्यागी आप लेंगी?" 'नहीं' रक्षा ने कहा, हालांकि उसे एहसास [illegible] कि दफ्तर के इतिहास में यह एक विशि[illegible] नजराना है।

कोई फाइल बकाया न होने [illegible] खुशी और बेफिक्री में रक्षा ने खड़े हो[illegible] कर सामनेवाली खिड़की अनायास खोली। अचानक उसने सकपकाकर सक्सेना [illegible] ओर देखा। सक्सेना मुसकरा दिया। "कितना सुहाना मौसम है!"

कब्रिस्तान बदस्तूर भीग रहा था।

—इलाहाबाद प्रेस,
रानीमंडी इलाहाबाद

# एक विश्वविद्यालय बूढ़ों के लिए

● सत सोनी

कोई व्यक्ति ५० साल की उम्र में ही बूढ़ा क्यों हो जाता है और कोई ८० साल में भी जवानी की मस्ती को कायम कैसे रखे हुए है? यानी आदमी (और औरत भी) बूढ़ा कब और क्यों होता है?

वैसे तो बुढ़ापे को रोकने की नाकाम कोशिशें सदियों से होती आयी हैं, लेकिन इधर दो-एक दशकों से इस दिशा में वैज्ञानिक प्रयासों ने काफी तरक्की की है। अब यह माना जाने लगा है कि बुढ़ापे को रोका तो नहीं जा सकता, उसे दस-बीस साल के लिए टाला जा सकता है या फिर बुढ़ापा अपने लिए और औरों के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

**भावात्मक कारणों का प्रभाव**

फिलहाल, वैज्ञानिक और समाजशास्त्री इस निष्कर्ष पर भी पहुंचे हैं कि शारीरिक कारणों के अलावा भावात्मक कारणों का भी वृद्धावस्था के साथ गहरा संबंध है। कोई व्यक्ति उतना ही बूढ़ा है जितना बूढ़ा वह अपने आपको समझता है। किंतु बुढ़ापे की प्रक्रिया तब और भी तेजी से शुरू हो जाती है, जब परिवार और समाज उसकी उपेक्षा करने लगते हैं और उसे यह महसूस करने पर मजबूर कर दिया जाता है कि वह बूढ़ा और बेकार हो गया है। या फिर पचास साल में अवकाश-प्राप्ति का डर सताने लगता है और मित्र तथा संबंधी तेजी से बिछुड़ने शुरू होते हैं और व्यक्ति अलग-थलग पड़ जाता है।

जब जीने की इच्छा न हो और जीने का कोई कारण नजर न आता हो तब मौत का खयाल आएगा ही!

तन-मन के अटूट संबंधों के सिद्धांत

तूलों विश्वविद्यालय के संस्थापक पियरे वालास

पर चलते हुए यह कहा जा सकता है कि जीने की चाह से शारीरिक क्षमता बनी रहती है। बौद्धिक, क्रियात्मक और भावात्मक गतिविधियों का प्रभाव भी शरीर पर पड़ता है। वास्तव में तन और मन साथ-साथ बूढ़े होते हैं। तन और मन एक-दूसरे के पूरक हैं और एक-दूसरे के लिए शक्ति के स्रोत हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि दोनों को गतिशील रखा जाए। इसके लिए समाज एक ऐसे वातावरण और जीवन-शैली का निर्माण करे कि बूढ़े व्यक्ति भी अपने को समाज के उपयोगी अंग समझें।

यहां यह उल्लेखनीय है कि कभी-कभी ढेर-सा धन भी वृद्धावस्था से संबंधित अनेक समस्याओं को हल नहीं कर सकता। यह बात बुढ़ापे में बहुत बुरी तरह महसूस होती है कि पैसा ही सब कुछ नहीं है।

**नयी दृष्टि, नयी दिशा**

इन भावनाओं को समझकर, बूढ़े लोगों को जीवन की नयी दृष्टि, नयी दिशा देने के लिए जापान में (६० वर्ष या इससे अधिक आयु के) बूढ़ों के लिए काकोगावा ह्योगो प्रीफेक्चर में १९६९ में वयोवृद्धों के लिए (विश्व)-विद्यालय की स्थापना की गयी, जहां से अब तक बीसियों 'स्नातक' निकलकर नया जीवन आरंभ कर चुके हैं।

इस 'विश्वविद्यालय' (इनामिनो गाकुएन) में छड़ी के सहारे आनेवालों की कमी नहीं है। कमजोर कानों और कमजोर आखोंवालों की संख्या भी काफी है। ऐसे विद्यार्थी भी हैं, जो ७० पार कर चुके हैं। तन से और मन से टूटे हुए ये लोग जब 'विश्वविद्यालय' में प्रवेश करते हैं तब निराशावाद उनके चेहरों से साफ टपकता है, लेकिन कुछ ही दिनों में इनके चेहरों पर एक खास किस्म की चमक आ जाती है, जिंदगी के प्रति रवैया बदल चुका होता है।

**पाठ्यक्रम के विषय**

'विश्वविद्यालय' के चार वर्ष के पाठ्यक्रम में दो प्रकार के विषय हैं: साधारण विषय और विशिष्ट विषय। साधारण विषयों का उद्देश्य है बूढ़े लोगों को समय के साथ चलाना। इसके लिए 'वृद्धों के लिए सकारात्मक जीवन-दर्शन', 'वयोवृद्धों का मनोविज्ञान', 'जापानी अर्थव्यवस्था', 'अंतर्राष्ट्रीय स्थिति-संबंधी दृष्टिकोण', 'समाज में बूढ़ों का स्थान', 'वृद्धों का साहित्य'—जैसे विषय पढ़ाये जाते हैं।

विशिष्ट पाठ्यक्रम में हर साल पांच विषय पढ़ाये जाते हैं—बागबानी, प्रकृति (मछली व पक्षी-पालन, फूल उगाने और सजाने की कला), घरेलू कामकाज (खाना पकाना, अपने कपड़ों की देखभाल आदि), बरतन बनाने की कला तथा बुढ़ापे के कानूनी पहलू। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय विषय है बागबानी। इसकी समुचित व्यवस्था है। विश्वविद्यालय के

५५,००० वर्गमीटर मैदान के दो-तिहाई हिस्से में बागवानी और खेतीबाड़ी की जाती है।

**सप्ताह में केवल एक बार**

विद्यार्थी सप्ताह में केवल एक बार विद्यालय आते हैं। सुबह साधारण सांस्कृतिक कक्षाओं में पढ़ते हैं और दोपहर बाद विशिष्ट कक्षाओं में। कुल मिलाकर वर्ष में १५६ घंटों की पढ़ाई होती है। वैसे तो अध्यापन-कार्य विद्यालय के प्राध्यापकों द्वारा होता है, लेकिन कभी-कभी बाहर से विशेषज्ञ आमंत्रित कर उनके व्याख्यान भी कराये जाते हैं।

पाठ्यक्रम में पिकनिक और ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण भी शामिल है। इसके अलावा विभिन्न ललित-कलाओं, जापानी चाय-समारोह, नृत्यकला और फूल सजाने की कला आदि के १३ क्लब हैं। विद्यार्थी अपनी रुचियों के अनुसार इन क्लबों के सदस्य बन जाते हैं।

बूढ़ों की कक्षा का एक दृश्य

**पत्राचार पाठ्यक्रम**

'इनामिनो गाकुएन' का पत्राचार पाठ्यक्रम भी है। जो बड़े-बूढ़े दूर रहते हैं अथवा अपंग होने के कारण विद्यालय में नहीं आ सकते, वे डाक द्वारा शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे विद्यार्थी वर्ष में दो-तीन बार विद्यालय आकर पढ़ाई कर सकते हैं। ठहरने की और भोजन की उत्तम सुविधाएं विश्वविद्यालय की ओर से की जाती हैं।

विद्यालय की पढ़ाई निःशुल्क है। इस समय लगभग २५०० विद्यार्थी हैं, जिनमें करीब एक हजार पत्राचार पाठ्यक्रम के हैं। इनमें पुरुषों की संख्या अधिक

है। सबसे अधिक संख्या है ६५ से ७० साल के लोगों की। सबसे अधिक आयु का विद्यार्थी ८४ वर्ष का है।

विश्वविद्यालय से 'स्नातक' बनने के बाद विद्यार्थियों को एक नयी जीवन-दृष्टि मिलती है। अधिसंख्यक छात्रों का कहना है, "नये मित्र बने हैं। अकेलेपन से छुटकारा मिला है। अब परिवार में मान-सम्मान मिलने लगा है। खाली बैठने का कोई सवाल नहीं। इसलिए मैं तन-मन से अधिक स्वस्थ हूं। काश, जीने की यह कला मैंने बहुत पहले सीख ली होती!"

**फ्रांसीसी विश्वविद्यालय के लक्ष्य**

बूढ़ों के लिए जापानी 'विश्वविद्यालय' एक बड़े विश्वविद्यालय का अंग है। फ्रांस का दावा है कि वृद्धों के लिए एक पूर्ण विश्वविद्यालय की स्थापना सबसे पहले उसने की है—१९७४ में तूलों में।

फ्रांस के इस विश्वविद्यालय में ५० से ९० वर्ष तक के डेढ़ हजार विद्यार्थी हैं, लेकिन औसत उम्र ६५ वर्ष है। संस्थापक श्री पियरे वालास का कहना है कि इस विश्वविद्यालय की सफलता इस बात का प्रमाण है कि बड़े-बूढ़े उस गतिहीनता को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं, जिसे समाज जबरदस्ती उन पर थोपता है।

तूलों का विश्वविद्यालय भी जापानी विश्वविद्यालय की तरह चलता है, लेकिन कुछ अंतर से। फ्रांस के विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य वृद्धावस्था की शारीरिक प्रक्रिया को धीमा करना है। इसलिए स्वास्थ्य पर अधिक जोर दि जाता है। शारीरिक प्रशिक्षण के पाठ्य क्रम में योग तथा अन्य व्यायाम शामि हैं। जंगलों में, खुले मैदानों में पैदल चल पर बल दिया गया है। समय-समय प विद्यार्थियों का डॉक्टरी निरीक्षण कि जाता है। इसके अतिरिक्त सफाई त वृद्धों के स्वास्थ्य और खान-पान पर वि षज्ञों के व्याख्यानों का आयोजन होता है

इस विश्वविद्यालय के तीन अ लक्ष्य हैं: समाज में वृद्धों को उनका स्था पुनः दिलाना, उनकी क्रियात्मक प्रति भाओं का विकास और उनके मन-मस्तिष्क को पुनः सक्रिय करना।

श्री वालास का कहना है कि फ्रांस में चूंकि सभी बूढ़ों को पेंशन मिलती है इसलिए हम चाहते हैं कि वे निःशुल्क सेवा करते हुए नये दायित्व संभालें। इसलिए उन्हें अस्पतालों में, बाल-सदनों में वृद्धाश्रमों आदि में काम करने की प्रेरणा और प्रशिक्षण दिया जाता है।

**क्रियात्मक प्रतिभाओं का विकास**

क्रियात्मक प्रतिभाओं के विकास के लिए उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखा जाता है। इसलिए सम्मेलनों, सिने-माओं, संग्रहालयों तथा ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा के साथ-साथ विभिन्न ललित-कलाओं का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सबसे उल्लेखनीय है वर्ष में दो बार होनेवाली कला-प्रदर्शनी, जिसमें ६० वर्ष से अधिक आयु के लोगों

के बनाये कलाचित्र और मूर्तियां रखी जाती हैं। विश्वविद्यालय के परिसर में आयोजित इस प्रदर्शनी को देखने के लिए बाहर से सैकड़ों लोग आते हैं। यह प्रदर्शनी इस बात का जीता-जागता प्रमाण है कि वृद्धों ने अतीत में जिन सुखों और दुखों को भोगा है, उन्हें वे बड़ी दक्षता और संवेदनशीलता के साथ व्यक्त कर आज के समाज को कुछ मौलिकता प्रदान कर सकते हैं।

बड़े-बूढ़ों के मन-मस्तिष्क को सक्रिय रखने के लिए परंपरागत गतिविधियों का सहारा भी लिया जाता है। इससे संबंधित पाठ्यक्रम में आवास, घरेलू बजट, चिकित्सा, परिवार-संबंध, युवाओं से संपर्क आदि विषय शामिल हैं। हर समस्या को विद्यार्थी सामूहिक रूप से हल करते हैं तथा प्राध्यापकों और अन्य सक्रिय व्यक्तियों का सहारा लेते हैं। इसके लिए विभिन्न शोध-टोलियां बना दी जाती हैं, जहां खुलकर विचार-विमर्श होता है।

योगाभ्यास, प्रदर्शनियों, सामाजिक कार्यक्रमों, गोष्ठियों तथा भ्रमण आदि के द्वारा विद्यार्थियों को पूरी तरह व्यस्त रखा जाता है। कक्षाओं में एक बार पुनः आकर 'छात्र-छात्राएं' अपने यौवन की उमंग और उल्लास को जैसे फिर से पा लेते हैं। यद्यपि उनमें नौजवानों की-सी नोक-झोंक नहीं होती, फिर भी २० वर्ष के नौजवानों से जब उनका विचार-विमर्श कराया जाता है तब बूढ़ों का जोश-खरोश एक नये रूप में सामने आता है।

**मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं**

'वृद्ध-विश्वविद्यालयों' ने सिद्ध कर दिया है कि वृद्धावस्था का अर्थ मृत्यु की प्रतीक्षा नहीं है, अपितु एक नये युग की शुरूआत है जिसमें बूढ़े लोग अपने अनुभवों द्वारा समाज को समृद्ध कर सकते हैं। अकेलेपन और उकताहट को उधेड़कर ये बूढ़े जिस उत्साह से नयी जिंदगी शुरू करते हैं, उससे तो कई नौजवानों को भी ईर्ष्या होने लगती है।

तूलों विश्वविद्यालय से प्रेरित होकर फ्रांस के अन्य आधे दर्जन स्थानों में भी ऐसे छोटे-छोटे विश्वविद्यालय खुल गये हैं। अब अमरीका और कनाडा में भी ऐसी योजनाएं बन रही हैं।

यदि कोई भी समाज चाहता है कि उसके वयोवृद्ध अलग-थलग पड़कर बोझ न बनें तो देर-सबेर ऐसे विश्वविद्यालय स्थापित करने ही पड़ेंगे। 'सक्रिय जीवन' से अवकाश प्राप्त कर आखिर कोई भी व्यक्ति सम्मान के साथ १५-२० साल क्यों न जिये?

—बी-७३, गुलमोहर पार्क,
नयी दिल्ली-११००४९

---

**हर समय ही काम के लिए समय कम रह जाता है और उसे भी बर्बाद कर डालें तो ऐसा लगता है कि कोई पाप कर डाला है।**
**—अर्नेस्ट हेमिंग्वे**

---

# समय हमारी पकड़ के बाहर है

• सुरजीत

एक सेकंड—केवल एक सेकंड ! समय को इस अल्पतम अवधि में क्या कुछ हो सकता है, शायद आपने इस पर कभी विचार नहीं किया होगा । मनुष्य और अन्य जीव-जंतुओं के शरीर में कई क्रियाएं इतनी विद्युतगति से संपन्न होती हैं कि इसमें सेकंड से भी कम समय लगता है । मनुष्य और जानवरों की इन फुरतीली क्रियाओं को नापने के लिए वैज्ञानिकों ने बहुत-से प्रयोग किये हैं । उदाहरण के लिए परीक्षण से पता चला है कि यदि किसी व्यक्ति का हाथ ऐसे तार से छू जाता है जिसमें विद्युत-तरंग दौड़ रही है तो वह सेकंड के आठवें भाग के अंदर अपना हाथ पीछे खींच लेता है । हाथ खींचने की यह क्रिया व्यक्ति बिलकुल अनजाने रूप से करता है और इस तरह उसके प्राण की रक्षा हो जाती है ।

## आधुनिक स्टाप-वाच

इस प्रकार के प्रयोगों में समय के न्यूनतम विरामों की माप विशेष प्रकार की घड़ियों से की जाती है । ये घड़ियां स्टाप-वाच कहलाती हैं । साधारण स्टाप-वाच एक बटन के दबाने से चल पड़ती है और फिर वही बटन दबाने से रुक जाती है । दो बार बटन दबाने के मध्यवर्ती विराम को घड़ी की सुई से पढ़ लिया जाता है और यह विराम सेकंड के दसवें भाग तक सही होता है । किंतु आधुनिकतम स्टाप-वाच बिजली की सहायता से स्वचालित बनायी गयी है । छोटी-से-छोटी क्रिया जिस अल्पतम अवधि में पूरी होती है उसका अनुमान लगाने के लिए यह घड़ी स्वयं ही चलती और रुकती है और समय के इस विराम को रेकार्ड कर लेती है । इसमें 'फोटो इलेक्ट्रिक' नाम के यंत्र से काम लिया जाता है । जब प्रकाश की कोई किरण उस यंत्र तक पहुंचती है तब उसमें विद्युत-तरंग उत्पन्न हो जाती है । प्रकाश बुझने पर तरंग भी रुक जाती है ।

मान लीजिए, हम यह पता करना चाहते हैं कि राइफल की गोली फायर होने से कितनी देर बाद अपने निशाने पर पहुंच जाती हैं । राइफल के पास एक फोटो-इलेक्ट्रिक-सेल ऐसे स्थान पर लगाया जाता है कि गोली बिलकुल उसके सामने से गुजरे । दूसरा सेल निशाने के पास रख दिया जाता है कि निशाने पर पहुंचने

वाली गोली उसके सामने से गुजरे। जैसे ही गोली पहले सेल के आगे से गुजरती है उसमें जानेवाले प्रकाश का सिलसिला जरा-सी देर के लिए रुक जाता है। उसके साथ ही उस विद्युत-तरंग में भी, जो एक पृथक मशीन पर रेकार्ड हो रही थी, एक व्यवधान पैदा हो जाता है और यह कागज पर रेकार्ड भी हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे सेल के सामने से गोली गुजरने का क्षण भी रेकार्ड हो जाता है। दोनों के मध्य जो अंतर होता है, उसे पढ़ लिया जाता है तथा उसे समय के विराम में बदल लिया जाता है।

इस प्रकार की स्वचालित घड़ियां सेकंड के हजारवें भाग तक की अल्पतम अवधि को आसानी से माप सकती हैं।

**वैज्ञानिक प्रयोगों का करिश्मा**

विशेषज्ञों का मत है कि एक सेकंड को यदि पांच भागों में बांटा जाए तो ऐसे तीन भागों में सर्वोत्तम शिकारी दस गज की दूरी से शिकार को निशाना बना लेता है।

मनुष्य सेकंड के चालीसवें भाग में पलक झपक लेता है। मानवीय छींक की क्रिया सेकंड के दसवें भाग में पूर्ण हो जाती है। इसी प्रकार नाक या मुंह से राल के जो कण उड़ते हैं, उनकी गति १३२ फुट प्रति-सेकंड होती है, अर्थात सौ मील प्रति-घंटा से भी अधिक!

मानवीय मस्तिष्क शरीर की तुलना में बिजली-जैसी तेजी से कार्य करता है। वह पर्वतारोही, जो किसी पर्वतीय अभियान में घिरकर दुर्घटनाओं का शिकार हो जाता है, पर्वत से गिरते हुए उसका मस्तिष्क सेकंड के एक भाग में ही बीती हुई घटनाओं, आनेवाले संकटों और उनसे बचने की सभी संभावनाओं का निरीक्षण कर लेता है।

यूरोप के दो पहलवान एक-दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो रहे थे। दस सेकंड के अंदर-अंदर एक ने दूसरे को पछाड़ दिया। एक प्रसिद्ध उपन्यासकार भी यह कुश्ती देख रहा था। उसने बाद में बताया कि उन दस सेकंड में उसका मस्तिष्क एक पूर्ण उपन्यास के प्लाट को तरतीब दे चुका था।

मस्तिष्क की क्रिया बहुत ही विस्मयकारी है। प्रयोग से पता चला है कि जब हम हरकत में आते हैं, तब वास्तव में मस्तिष्क पहले ही शरीर को हरकत करने का आदेश दे चुका होता है।

मानवीय आंख को किसी चीज को देखने और उसकी क्रिया मस्तिष्क तक
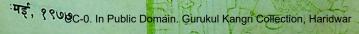
पहुंचाने में सेकंड का पांचवां भाग लगता है। सुनने की प्रक्रिया का समय लगभग एक-चौथाई सेकंड होता है।

दूसरे महायुद्ध में क्रिया और प्रति-क्रिया के मध्यवर्ती विराम के कई रोचक उदाहरण सामने आये। एक विध्वंसकारी युद्ध-पोत का कप्तान डैक पर दूरबीन लगाये वायुमंडल का निरीक्षण कर रहा था। सहसा उसकी नजर शत्रु के बमवर्षक विमान पर पड़ी। विमान के बम फेंकने और विमान तक बम पहुंचने का समय बहुत अल्प होता है, किंतु यदि प्रतिक्रिया तत्काल हो तो उस विराम में बचाव की अवस्था हो सकती है। कप्तान ने जैसे ही बम को विमान से अलग होते हुए देखा,
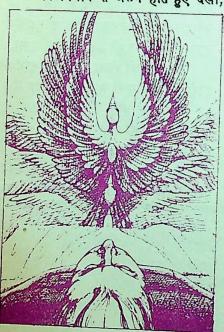
यह आदेश दिया कि जहाज की दिशा तुरंत मोड़ दी जाए, किंतु कर्मचारियों ने फुर्ती से कार्य नहीं किया। फलस्वरूप जहाज बमबारी का निशाना बन गया।

मनुष्य की तरह जानवर भी क्रिया और प्रतिक्रिया में बड़ी फुर्ती का प्रमाण देते हैं। लंदन के प्रसिद्ध चिड़ियाघर में एक ऐसे दृश्य की फिल्म ली जा रही थी जिसमें मेढक को बहुत छोटे-से कीड़े को निगलना था। फिल्म लेने के लिए जिस कैमरे का उपयोग किया जा रहा था, वह एक सेकंड में तीन सौ तसवीरें ले सकता था। डाइरेक्टर ने कैमरा चालू करने का आदेश दिया। देखनेवालों ने केवल इतना देखा कि मेढक ने जीभ हिलायी और कीड़ा लोप हो गया। यह सब इतनी तेजी से हुआ कि मानवीय नेत्र उसका निरीक्षण न कर सका। कीड़ों के जीवन के एक विशेषज्ञ जीन का कथन है कि मेढक या इसी श्रेणी के अन्य जंतु अपने शिकार को हड़पने के लिए जीभ निकालने और उसे फिर मुंह में वापस ले जाने की क्रिया सेकंड के पंद्रहवें भाग में संपन्न कर लेते हैं।

### गोरिल्ले की घात

जंतुओं के प्रसिद्ध फोटोग्राफर मैक्सोल ने 'लंदन टाइम्स' में अपने एक अभियान की कहानी लेखनीबद्ध की कि एक बार बहुत बड़े गोरिल्ले ने उस पर हमला कर दिया। यह गोरिल्ला मैक्सोल से पंद्रह गज की दूरी पर, एक पेड़ पर घात लगाये बैठा

हुए यह दूरी एक सेकंड से भी कम समय में तय की। था। गोरिल्ले ने फोटोग्राफर पर झपटते

एक अन्य शिकारी पोपल लिखता है कि वह एक बार जंगल में एक झरने के किनारे हिरण को पानी पीते देख रहा था। सहसा एक चीते ने पंद्रह गज की दूरी से आक्रमण किया। आक्रमण से पहले चीता गुर्राया था। संभवतः हिरण ने यह आवाज सुन ली थी और वह उसी समय सचेत हो गया था। चीता सेकंड से भी कम समय में वांछित स्थान तक छलांग लगा चुका था, किंतु उसका शिकार उससे भी अधिक फुर्ती दिखा गया और शिकार बनने से बच गया। चीते की छलांग लगाने की गति उस समय और भी अधिक हो जाती है जब वह क्रोध में होता है। बिफरा हुआ चीता एक सेकंड में एक सौ तीन फुट लंबी छलांग लगाता है, जो सत्तर मील प्रति-घंटा तक पहुंच जाती है।

छोटे जानवर भी खतरे की अवस्था में असाधारण गति का प्रदर्शन करते हैं। अमरीका का छिपकली-रूपी सांप बहुत तेजी से हरकत करता है। शिकारी मौसले का कथन है कि कालाहारी मरुस्थल में उसकी नजर एक छिपकली पर पड़ी। वह गहरी नींद सो रही थी। मौसले ने दबे पांव उसे पकड़ना चाहा। उसके हाथ छिपकली को पकड़ने के लिए आगे बढ़े, किंतु छिपकली के स्थान पर उसे धूल ही हाथ लगी। मरुस्थल के सांप और छिपकली अपने प्राण बचाने के लिए १८ मील प्रति-घंटा की गति से भागते हैं। इतनी तेजी से दौड़ते हुए जब चाहें खड़े भी हो जाते हैं।
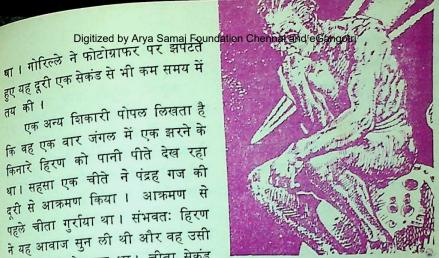
### उकाब-झपट्टा

एक बार एक बटेर और उकाब में जीवन और मौत का द्वंद्व जारी था। उकाब बार-बार बटेर पर झपट रहा था, पर बटेर ने उसके हर हमले को असफल बना दिया। एक बार उकाब बटेर के बहुत ही निकट पहुंचकर उस पर झपटने ही वाला था कि बटेर ने अपने पंख समेट लिये। वह एक छोटे-से पत्थर की तरह उन झाड़ियों की ओर गिरा जो उसके लिए सर्वोत्तम शरण-स्थान हो सकती थीं। उधर उकाब ने एक भरपूर गोता लगाया। वह बटेर से भी अधिक तेजी से गिरा और उसने नीचे पहुंचकर अपना पंजा फैला दिया। इससे पहले कि बटेर

अपने पंख खोलकर पुनः उड़ने का प्रयास करता, उकाब उचककर वायुमंडल में उड़ान भर चुका था। एक अन्य अवसर पर उकाब की असाधारण फुर्ती देखने में आयी। शिकारी ने कुछ उड़ते हुए कबूतरों को निशाना बनाया। एक कबूतर का पर जख्मी हुआ। वह वायुमंडल से धरती की ओर लुढ़कने लगा। इतने में एक उकाब नजर आया और कबूतर को धरती तक पहुंचने से पहले ही दबोचकर इस प्रकार लोप हो गया कि शिकारी मुंह देखता ही रह गया। इसी प्रकार एक अन्य कबूतर बंदूक का निशाना बनने के बाद धरती पर गिरा। शिकारी कुत्ता उसे उठाने के लिए आगे बढ़ा। जब तक कुत्ता जख्मी कबूतर को मुंह में पकड़े एक उकाब प्रकट हुआ और उसे उचक लिया। यह इतनी तेजी से हुआ कि शिकारी की बंदूक भी उकाब को न रोक सकी।

कलगीदार उकाब चिड़िया को इतनी सफाई से दबोचता है कि मानवीय आंख को तनिक भी यह अनुभव नहीं होता कि उसकी उड़ान में बाल बराबर अंतर आया है। उड़ान का यह दुर्लभ उदाहरण कई बार उनकी मौत का कारण भी बन जाता है। एक बार एक उकाब छोटे-से पक्षी का पीछा कर रहा था। नन्हा पक्षी सड़क के किनारे फैली हुई झाड़ियों में जा छिपा। उकाब ने पूरी तीव्रता से गोता लगाया। उसकी नजर टेलीफोन के उन तारों पर न गयी जो झाड़ियों के ऊपर से गुजर रहे थे। उनसे टकराते ही उकाब टुकड़े-टुकड़े हो गया।

मनुष्यों, जंतुओं और पक्षियों के अतिरिक्त छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े भी असीम फुर्ती का प्रदर्शन करते हैं। कालेज डी फ्रांस के प्रोफेसर ए. मैगनिन ने इन कीड़े-मकोड़ों की तीव्रगतिमान कैमरों से असंख्य फिल्में बनायी हैं। ये कैमरे एक सेकंड में तीस हजार तसवीरें ले सकते हैं। इन फिल्मों को जब स्क्रीन पर दिखाया गया तब कीड़ों की गतिविधियां स्पष्ट दिखायी नहीं देती थीं, अतः उनकी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के विभिन्न रेखा-चित्र तैयार किये गये जिनसे यह पता चला कि कीड़े-मकोड़े वायुमंडल में किस प्रकार सक्रिय रहते हैं। उनमें से कई सेकंड के हजारवें भाग में अपना काम कर जाते हैं।

प्रयोगों से यह सिद्ध हो गया है कि अपने प्राण बचाते समय मनुष्यों, पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों और जंतुओं में सबसे अधिक फुर्ती जंतु दिखाते हैं। यह बात उस समय पता चली जब विभिन्न जंतुओं पर बहुत समीप से गोली चलायी गयी, पर वे अपनी फुर्ती के कारण निशाना बनने से बच गये।

चाहे वह मनुष्य हो या जानवर या साधारण कीड़ा, सभी संकट के समय अनजाने ही स्वभाववश सेकंड के अति अल्पभाग में कुछ कर बैठते हैं और जानलेवा परिस्थिति से बेदाग निकल जाते हैं।

**—सी-३४, सुदर्शन पार्क,**
**मोतीनगर, नयी दिल्ली-११००१५**

# एक और लखनऊ

● संगमलाल मालवीय

लखनऊ की रंगीनमिजाजी अलिफ लैला के किस्से से कम नहीं। शायद जन्नत में भी 'हम फिदाए लखनऊ' का दम भरनेवालों की कमी न हो। लखनऊ की चिकन, लखनऊ का इतर, लखनऊ की कोठेवालियां और ऐतिहासिक इमारतों से दशहरी आम तक की खूब चर्चा रही है। और हां, अनेक बाजियों, जैसे पतंगबाजी, बटेरबाजी, कबूतरबाजी और लफ्फाजी में भी लखनऊ पीछे नहीं। लखनवी मुजरे और मुशायरे के क्या कहने! शामे-अवध आबाद हो उठती है।

लेकिन, लखनऊ का अतीत मात्र रंगीनमिजाजी तक ही सीमित नहीं रहा। वैराग्य, अध्यात्म और सधुक्कड़ी का अलख जगानेवाले महात्माओं, सूफियों और फकीरों की भी यहां कमी नहीं रही। आज भले ही वे न हों, लेकिन आस्था और

सूफी अब्दुल रहमान का मजार

सूफी नसरुल्ला साहब का मजार
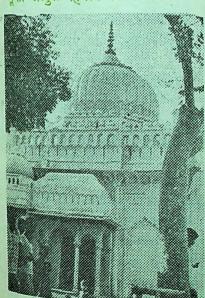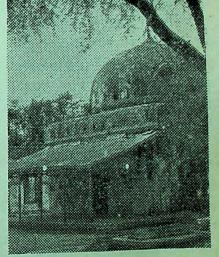
विश्वास की एक अनोखी दुनिया उनके मजारों के इर्दगिर्द बसी हुई है। गंडा, तावीज और दुआएं बटती हैं यहां। लोबान, अगरबत्ती की खुशबू से गमकते इन मजारों पर फूल-मालाएं, सिन्नी, बताशे और चादरें चढ़ती हैं।

**सूफी शाह मीना शाह (१३९९-१४७९ ई.)** पुराने लखनऊ के मशहूर इलाके चौक के करीब, वर्तमान मेडिकल कालेज की बगल में शाह मीना शाह की मशहूर दरगाह है। लगभग पांच सौ वर्ष पुरानी इस दरगाह पर सभी धर्मों के लोग अपनी मुरादें लेकर आते हैं।

शाह मीना आजीवन ब्रह्मचारी रहे। बचपन से ही वे साधु स्वभाव के थे। वे रात में बहुत कम सोते थे। जाड़े के दिनों में भी वे गीले कपड़े पहनते थे और कंकड़-पत्थर बिछाकर सोते थे। भझगवां (बाराबंकी) के शेख सारंग उनके गुरु थे। उनका कहना था कि दुनिया का दुख वह क्या दूर करेगा जिसने कष्ट को झेला ही नहीं! उनको माननेवाले हिंदुस्तान से बाहर अरब और अजन तक फैले हुए हैं। उनकी गद्दी का सिलसिला चिश्तिया निजामिया था।

कहते हैं शाह मीना साहब ने ३० साल तक लगातार उपवास रखे और सिर्फ चावल की माड़ी पीकर जीवित रहे। उनका मजार भारत के राष्ट्रीय स्मारकों में से एक है। हिंदू परिवारों में भी सूफी शाह मीना की मान्यता है। मंडन, सालगिरह, शादी-ब्याह में इन्हें बराबर [illegible] जाता है। हर साल चेहल्लुम के दिनों [illegible] शाह की दरगाह पर चार दिन का [illegible] होता है, जिसमें शामिल होने के लिए दूर-दूर से लोग यहां आते हैं।

**सूफी नसरुल्ला साहब** (१६वीं सदी) गोमती के किनारे मिट्टी के एक [illegible] टीले पर नसरुल्ला साहब का आस्ताना है। यह लखनऊ के रौजा गांव में स्थित
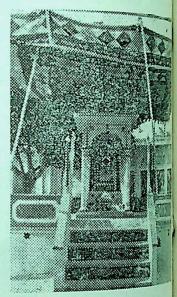
सूफी मीना शाह का मजार

है। नसरुल्ला साहब के मजार का पता लगा पाना कम मुश्किल काम न था। फिरंगीमहल के बुजुर्ग नासिर मोहम्मद साहब से प्राप्त पते पर हम रवाना हुए लेकिन ठाकुरगंज पहुंचने पर वहां के लोगों ने एक और मजार बतला दिया।

सूफी फरहव सुलेमानी के साथ लेखक

आखिरकार, भटकते हुए नासिर साहब की बतायी हुई सही जगह पर हम लोग पहुंच ही गये। डेढ़-डेढ़ फुट धूल, कच्चा रास्ता, बीच-बीच में पगडंडियों ने हमें उनके ऐतिहासिक मजार तक पहुंचाया। मिट्टी के ऊंचे टीले पर एक जीर्णशीर्ण मकबरानुमा इमारत दिखायी दी। ठीक बगल में एक मसजिद भी है। यहां के सज्जादानशीं शाह अब्दुल रहीम के परिवार के एक अधेड़-उम्र सदस्य से हम मिले।

"फरमाइए, कहां से आना हुआ?" उन्होंने पूछा।

दो शब्दों में मैंने उन्हें अपना मकसद समझाया। इसके बाद उन्होंने कहा—

यहां के मौजूदा सज्जादानशीं अब्दुल रहीम साहब बीमार हैं। फिर भी मैं आपकी मदद करूंगा: नसरुल्ला साहब अपने जमाने के माने हुए फकीर थे। उनके पीर मौलाना मोहम्मद गौस ग्वालियरवी थे। उन्हीं के हुक्म से वे लखनऊ आये। थोड़े दिन सूफी शाह मीना के मजार पर उनका कयाम रहा। फिर गऊघाट के वीराने में यहां चले आये। पूरी जिंदगी उन्होंने यहीं पर गुजारी। अमीरों-रईसों की संगत और रुतबे को उन्होंने अपने यहां पनाह नहीं दी।

कहते हैं, अपनी ऐतिहासिक यात्रा के दौरान जब अकबर लखनऊ आया तब वह सूफी नसरुल्ला साहब से भी मिलने पहुंचा। यह बात सलीम के जन्म से पहले की है। अकबर औलाद के लिए अनेक जगह भटका था।

नसरुल्ला साहब के हुक्म पर बादशाह सलामत को भीतर आने की इजाजत नहीं मिली। बादशाह को एक फकीर के दरवाजे पर रोक दिया गया! बादशाह ने दरबान के हाथ फारसी में एक मिसरा लिखकर भेजा—'दरे दुर्वेश रा दरबां नबामद' (फकीर के दरवाजे पर दरबान नहीं होने चाहिए।)

शाहसाहब ने जवाबी मिसरा लिख-

कर शेर पूरा कर दिया—'बिवायद ता सगे दुनिया न आयद' (दरवान जरूर होना चाहिए ताकि दुनिया भर के कुत्ते घर में बहककर न आ सकें।)

शीघ्र ही अकबर की सूझबूझ और नर्मदिली ने नसरुल्ला साहब का दिल जीत लिया। बाद में नसरुल्ला साहब के आदेश पर अकबर को फतेहपुर सीकरी में शेख सलीम चिश्ती से मिलने को कहा गया, जहां पहुंचकर अकबर की मुराद पूरी हुई। सलीम के जन्म के बाद अकबर ने ५१ गांव की जागीर सूफी नसरुल्ला के नाम लिखकर लखनऊ भेजी, लेकिन फकीर द्वारा यह तोफा अस्वीकार कर दिया गया और बादशाह सलामत के फरमान को गोमती में फिकवा दिया गया।

**सूफी दादा मियां (१८३४-१९००)**

सिटी स्टेशन के पास एक छोटी-सी कब्र-गाह में दादा मियां का मजार है। दादा मियां के यहां हर जुमेरात को 'जिन्नात की अदालत' लगती है। दादा मियां के दरगाह पर दूर-दूर से इलाज करवाने लोग आते हैं। रूहानी इलाज यहां होता है। प्रेतबाधा से पीड़ित बीमारों के चंगे होकर जाने के हजारों किस्से यहां आपको सुनने को मिलेंगे।

शाम के लगभग सात बज चुके हैं। आइए, मजार के चारों तरफ फैले प्रेत-बाधा से पीड़ित लोगों की ओर भी एक नजर डाल लें। लगभग डेढ़ सौ मरीजों की भीड़ हमारे सामने है। चीखते, चिल्लाते, पागलों-सी हरकतें करते अथवा [illegible] झूमते लोगों की भयानक तसवीरें आंखों के सामने हैं। औरतों की संख्या अधिक है। सभी औरतों के बाल खुले हुए हैं। तरह-तरह की ध्वनियों से वातावरण डरावना लगता है।

बचपन से ही दादा मियां नर्मदिल, भावुक और संत प्रकृति के थे। धार्मिक शिक्षा-दीक्षा उन्हें अपने पिता से ही मिली। लखनऊ और उसके आस-पास के कई से हिंदू और मुसलिम परिवारों के लोग दादा मियां के शिष्य थे। सूफी नईम साहब अंगरेजों से मिलने कभी नहीं गये। 'शमसुलउलमा' का खिताब उन्हें अंग-रेज सरकार द्वारा दिया गया। खिताब और तमगा लेने के लिए अंगरेज गवर्नर के यहां जाना पड़ता था, जिसे दादा मियां ने अपनी बेइज्जती समझी। बाद में अंग-रेज गवर्नर के आदेश पर मैजिस्ट्रेट ने उनके यहां आकर खिताब और तमगा उन्हें भेंट किया।

दादा मियां के पास दूर-दूर से लोग आते थे—गरीब-अमीर, राजे-महाराजे सभी। जन-कल्याण के लिए वे कर्जदार तक हो गये थे। यह बात तत्कालीन नानपारा स्टेट के राजा साहब को भी मालूम थी। एक बार वे नईम साहब से मिलने आये। उन्होंने हजार-हजार अशर्फियों की दो थैलियां बतौर नजराना नईम साहब को उपहार में भेंट की।

सूफी नईम साहब ने अपने शिष्य से

बदले में राजासाहब के लिए कुछ लाने को कहा। शीघ्र ही राजासाहब के सामने सूखी रोटी के कुछ टुकड़े पेश किये गये। राजासाहब ने दादा मियां की भावना का आदर करते हुए एक टुकड़ा मुंह में रख लिया। यह सूखी रोटी का टुकड़ा था। देर तक चबाते रहे, लेकिन टुकड़ा गले से नीचे नहीं उतर रहा था। आखिर अचानक सूफी नईम साहब ने मौन भंग करते हुए कहा, "इन अशर्फियों को ले जा सकते हैं। हमारी रोटी आपके गले से नहीं उतर रही है और आप उम्मीद करते हैं कि ये सोने के सख्त टुकड़े मेरे हलक से उतर जाएंगे। शायद आप मुझे गलत समझ बैठे हैं।"

**सूफी अब्दुल रहमान (१७४१-१८२९ ई.)**

लखनऊ में मौलाना अब्दुल रहमान सूफी के एक पुराने मजार की ओर आपको ले चलते हैं। आज से करीब डेढ़ सौ वर्ष पहले सूफी अब्दुल रहमान ने दुनिया से साया किया। वे सिंध के रहनेवाले थे। 'इल्मे-दीन' हासिल करने के बाद ज्ञान की खोज में उन्होंने देशाटन किया। जगह-जगह लोगों से मिलकर उन्होंने सूफी दर्शन का प्रचार किया। कहते हैं, एक बार सूफी रहमान शिष्यों को पढ़ा रहे थे। इसी बीच कोई फकीर उनके पास आया और बोला, —"जाहिरी इल्म तू बहुत दे चुका। यह शरीर तेरा अपना नहीं। तू इसका सही इस्तेमाल कर। इल्म की दुनिया से अलग तू प्रेम का अलख जगा। इनसानियत तेरा

हजरत सैयद शाह मोहम्मद सुलेमान कादरी

इंतजार कर रही है।"

मौलाना अब्दुल रहमान को यह बात लग गयी और एक दिन वे निकल पड़े फकीरी का अलख जगाने। लखनऊ में शाह मीना शाह के मजार पर काफी दिन उनका कयाम रहा। कहते हैं शाह मीना शाह के ही निर्देश पर उन्होंने छाछी कुआं में अपना निवास बनाया। उनका कहना था—"हम सब खुदा के बंदे हैं। लोगों के बीच भेदभाव करनेवाले इनसानियत के दुश्मन हैं। समूची इनसानियत की भलाई ही खुदाई इबादत है।"

दूसरों के दुख में दुखी और उनके सुख से प्रसन्न होने के लिए सतत अभ्यास और आत्मशुद्धि की आवश्यकता होती

है। यह पाठ उन्होंने लोगों को दिया। उन्हें विरोधियों का भी सामना करना पड़ा। लेकिन वे सच्चे वैरागी की भांति जन-कल्याण के मार्ग से विचलित नहीं हुए। उनके शिष्यों में हर धर्म के लोग थे।

मजार एक बहुत बड़े अहाते में स्थित है। पास ही 'पड़ाइन की मसजिद' हिंदू-मुसलिम एकता का प्रतीक बनकर खड़ी हुई है। कहते हैं, पड़ाइन या पंडाइन को नवाब बहुत मानते थे। पड़ाइन ने अपनी धार्मिक उदारता का परिचय देकर लखनऊ में अनेक मसजिदें बनवायीं, जिन्हें 'पड़ाइन की मसजिद' के नाम से जाना जाता है। सूफी अब्दुल रहमान ने छाछी कुआं की पड़ाइन की मसजिद में रहकर जीवन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बिताया। अनेक किताबें लिखीं, जिनमें कुछ आज भी उपलब्ध हैं। फारसी में लिखित (अनवा-रुल रहमान) में रहमान साहब का जीवन और दर्शन उल्लिखित है।

सूफी रहमान साहब फूलों के बहुत शौकीन थे। मृत्यु के बाद लखनऊ के एक पुराने हिंदू रईस द्वारा काफी समय तक उनके मजार पर चढ़ाने के लिए फूल भेजे जाते थे। सूफी रहमान साहब का कहना था—"फूलों से सबक लो। ये खुद महकते हैं और दूसरों के लिए भी खुशबू बिखेरते हैं। इनसानी जिंदगी अल्लाह की नेमत है। इसलिए जिओ तो सबके लिए—सिर्फ अपने लिए तो जानवर भी नहीं जीते।"

**सैयद शाह मोहम्मद सुलेमान**
**(१८५९-१९३५ ई.)**

सूफी सुलेमान साहब के जीवन का ए[क] महत्त्वपूर्ण भाग लखनऊ में बीता। आ[धु]निक सूफी संतों में उनका नाम बड़े आ[दर] से लिया जाता है। सुलेमान साहब गांधी-जी के आह्वान पर स्वातंत्र्य-युद्ध में कू[द] पड़े। उन्होंने इस उद्देश्य से पूरे देश का दौरा किया। उन दिनों सुलेमान सा[हब] पटना में रहते थे। सुलेमान साहब ने खि[ला]फत-आंदोलन के दौरान अपने लड़कों की पढ़ाई कालेज से खतम करवा दी। अंग्रेजी शिक्षा और तौर-तरीके का उन्होंने ब[हि]ष्कार किया। एक नेशनल हाईस्कूल की भी उन्होंने स्थापना की। इसके लि[ए] हकीम अजमल खां ने आर्थिक मदद दी थी। सूफी सुलेमान साहब ने गांधीजी की अहिंसावादी नीति को देश के लिए ए[क] जरूरत बताया।

धार्मिक एकता और बिरादराना [सं]बं[ध] को उन्होंने अपने शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाया। उनका कहना था कि देश के दुखी, दरिद्र, भूखे, नंगे करोड़ों लोग ईश्वर के अंश हैं—इनको पूजो और मानो। देश-विदेश में उनके माननेवालों की कमी नहीं।

सन १९२७ में सुलेमान साहब ने शफी अहमद फरहद को गोद लेकर उन्हें अपना मुंहबोला बेटा बनाया। लखनऊ में इन्हीं के यहां वे रुकते थे। उनके पि[ता] हकीम शाह मोहम्मद दाऊद अवध के नवाब वाजिदअली शाह के हकीम थे।

सूफी सुलेमान साहब ने अपने जीवन-काल में लगभग ५१ किताबें फारसी, उर्दू और अरबी में लिखीं। उनका जन्म १८५९ में और मृत्यु ३१ मई, १९३५ में पटना में हुई। इस तरह वे ७६ साल की उम्र में दिवंगत हुए। उनका मजार पटना के फुलवारी शरीफ में आज भी राष्ट्रीय एकता का दिव्य संदेश दे रहा है। यहां के पुस्तकालय में हर धर्म और दर्शन की पुस्तकें उपलब्ध हैं।

**सूफी फरहद से एक खुली बातचीत**

लखनऊ में सूफी शाह सुलेमान साहब के मुंहबोले फरजंद से मुलाकात किये बिना जिक्र पूरा न होगा। उनकी तलाश शुरू की। पता चला कि वे बहते दरिया की लहर हैं। उन्हें पकड़ पाना आसान काम नहीं। उनकी विद्वत्ता की तारीफ लोगों ने की। साथ ही उनके मुंहफट स्वभाव के भी चर्चे सुने। आखिर एक दिन मैंने उन्हें ढूंढ़ निकाला।

मजारों पर इलाज के लिए दूर-दूर से आते लोगों का हुजूम

पता चला फरहद साहब सिगरेट और कड़क चाय के बेहद शौकीन हैं। दिन में पचीस-तीस प्याले हलक से उतार लेते हैं।

मैंने बातचीत का सिलसिला शुरू किया: **"सूफी संतों पर लिखने के सिलसिले में मैं कई दरगाहों और मजारों पर घूमा।**

**वहां पर रूहानी किस्सों और झाड़फूंक का व्यापार भी देखने में आया। अनेक अपराध भी होते हैं इन मजारों की आड़ में। इस बारे में आपका क्या खयाल है ?"**

सूफी फरहद साहब बोले—"सूफियों के पुराने मजारों पर गद्दीवाला सिलसिला चलता है। हिंदुओं में भी यही सिस्टम है। उस्ताद के बाद शागिर्द और बाप के बाद बेटा गद्दी पर आता है। यह सिलसिला सैकड़ों सालों से चला आ रहा है। बुजुर्ग सूफियों के उसूलों पर चलने की कसम खानेवाले अगर शैतान बन जाएं तो इसमें गुनाह किसका हो सकता है ? इस जमाने में सूफी कहां हैं—कूफियों की ही जमात नजर आती है ! अगर कोई अफीम, गांजा, चरस का रोजगार करने लग जाए और खुद को सूफी कहे तो वह गुनहगार कहा जाएगा। खुदा की राह पर मक्कारी करनेवालों के खिलाफ भी एक मोर्चेबंदी की जरूरत है।

"कोई भी मजहब गलत काम करने या करवाने की इजाजत नहीं देता। धरम-करम और खुदा के नाम पर लूटनेवालों के चेहरे बेनकाब होने ही चाहिए।"

मैंने कहा, **"फरहद साहब, नकली कब्रों के बारे में भी कुछ रोशनी डालें तो शायद हजारों-लाखों लोगों को सही बात का पता चल जाए।"**

फरहद साहब बोले, "सभी मजारों के बारे में हर कोई नहीं जानता। किसी के नाम पर ईंट-गारा, चूने से रातों-रात नकली कब्रें बना दी जाती हैं, लेकिन यह काम बस्ती से दूर होता है। ऐसी कब्रों के नयेपन को बड़ी सफाई से खत्म कर दिया जाता है। फिर तो एक रात में 'किन्हीं साहबान' को अचानक सपना होता है। जाहिरा तौर पर उस जगह की तहकीकात की जाती है। इन कामों में पूरी तरह से इश्तिहारबाजी का सहारा लिया जाता है। फिर बाद में किसी न किसी फर्जी नाम से इन कब्रों को जोड़ दिया जाता है। जुमेरात को मेले लगते और कव्वाली का दौरदौरा शुरू होता है। गरीबों को रोटियां, खुटियां, मलीदा बंटना शुरू हो जाता है। नजरे-खुदा भी बटती है। बस साहब, बिजनेस चल निकला तो 'आपकी' जीत ही है। लेकिन यह काम पहुंचे हुए बदमाशों का होता है, जिनके साथ पूरा गिरोह होता है। धंधा करके बड़ा पैसा कमा रखा है इन लोगों ने। ऐसे लोग खुदा की राह पर पाप करते भी नहीं डरते। शायद जानते हैं कि वहां जाकर थोक भाव से माफी मांग लेंगे!"

—१४७, आशीर्वाद, केशव भादुड़ी रोड, लखनऊ-१

---

**पत्नी ने पति से पूछा, "प्रिय, क्या तुम्हारा प्यार प्रथम दृष्टि का था?"**

**"बिलकुल, अगर मुझे उसे दुबारा देखने का मौका मिलता तो फिर उसके चक्कर में आता ही क्यों !" पति ने उदास होकर कहा।**

# अपराध अनुसंधान और अंगुल-मुद्राएं

● ब्रजभूषण दुबे

१५८० ई. में प्रकाशित एक रिपोर्ट में चर्च ऑव स्काटलैंड के डॉक्टर हेनरी फाल्ड्स ने मुद्रण-स्याही (प्रिंट्स-इंक) से अंगुल-मुद्रा अंकित करने तथा अपराधी द्वारा अनजाने में अपराध-स्थल पर छोड़ी अंगुल-मुद्राओं (चांस-प्रिंट्स) के आधार पर उसे खोज निकालने के दो उपयोगी सुझाव दिये थे। तब से अब तक अपराध-अनुसंधान के क्षेत्र में हजारों अपराधियों को अंगुल-मुद्राओं के आधार पर दंडित किया जा चुका है। आगे की पंक्तियों में कुछ विश्वप्रसिद्ध मामलों की चर्चा की जा रही है—

**मिसेज फ्रीमेन ली हत्याकांड**

बुधवार, २ जून, १९४८ ई. को बर्कशायर (इंगलैंड) के मुख्य पुलिस-अधिकारी ने अपने अध्ययन-कक्ष में दूरभाष से यह सूचना प्राप्त की कि '९४ वर्षीय वृद्धा मिसेज फ्रीमेन ली की हत्या किसी ने कर दी।' चैपमेन तथा हिशलॉप इन दो पुलिस-अधिकारियों को इस मामले की जांच-पड़ताल हेतु नियुक्त किया गया था। ये दोनों पुलिस-अधिकारी स्थानीय लोगों से बातचीत करके मामले का सुराग लगाना चाहते थे तभी दूसरे दिन स्काटलैंड-यार्ड फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो के प्रधान मिस्टर एफ. आर. चैरिल घटना-स्थल पर पहुंच गये। १७ कमरेवाले उस मकान में हत्यारे द्वारा छोड़े गये 'चांस-प्रिंट्स' की खोज की गयी। ली के विस्तर से एक कार्ड-बोर्ड का छोटा चौकोर टुकड़ा मिला जो कुछ वर्ग-इंच का था। घंटों की बारीक खोज से मिले इस कार्ड-बोर्ड के टुकड़े पर बहुत सावधानी से रसायन (पाउडर) का प्रयोग करके 'चांस-प्रिंट' का कुछ अंश दृश्य रूप में उपलब्ध हुआ, जिसका तत्काल फोटो तैयार कर लिया गया।

यह कार्ड-बोर्ड पर प्राप्त हुआ 'चांस-प्रिंट' हत्यारे का भी हो सकता था, किंतु हत्यारे के किस हाथ की किस अंगुली का होगा यह सवाल बहुत टेढ़ा था। फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो में आगे की कार्रवाई हेतु इस टेढ़े प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर लेना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था।

मि. चैरिल ने इस समस्या को सुलझाने के लिए कार्ड-बोर्ड के उस चौकोर टुकड़े को जो कि कार्ड-बोर्ड के डिब्बे का

ढक्कन था, पचासों बार लगाकर खोला और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्ड-बोर्ड के ढक्कन पर मिला 'चांस-प्रिंट' हत्यारे के दायें अंगूठे अथवा दायीं मध्यमा का ही संभाव्य है। चांस-प्रिंट को दायीं मध्यमा का मानकर स्काटलैंड-यार्ड-फिंगर-प्रिंट-रिकार्ड में खोज की गयी और वह चांस-प्रिंट एक कुख्यात सेंधमार जार्ज रसेल की दायीं मध्यमा की छाप से मेल खा गया। जार्ज रसेल की अंगुल-मुद्राओं को १९३३ में संग्रहीत करके रखा गया था। ३३ से ४८ के लंबे कार्यकाल में वह एक होशियार अपराधी का जीवन व्यतीत कर चुका था। वह स्ट्रीट-अलवंस की एक संस्था में गुपचुप कार्यरत था जहां पहुंचकर पुलिस-अधिकारियों ने उसे हत्या के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया।

मि. चैरिल ने फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट के रूप में न्यायाधीश के समक्ष कार्ड-बोर्ड पर मिले दायीं मध्यमा के 'चांस-प्रिंट' की बड़ी छाया-छवि प्रस्तुत की और संदेह से परे सिद्ध कर दिया कि कार्ड-बोर्ड के ढक्कन पर मिला 'चांस-प्रिंट' (आंशिक अंगुल-मुद्रा) जार्ज रसेल की दायीं मध्यमा का है और मिसेज फ्रीमेन ली की हत्या के लिए वही दोषी है। प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों तथा अन्य सबूतों के अभाव में भी बर्कशायर-ऐशेज-कोर्ट के न्यायाधीश ने 'चांस-प्रिंट' के आधार पर दी गयी फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट मि. चैरिल की साक्षी को स्वतंत्र रूप से मान्यता देते हुए जार्ज रसेल को फांसी की सजा दी और इस प्रकार स्काटलैंड-यार्ड फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो ने विश्व के न्याया-लयों में फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट की साक्षी को ऐतिहासिक गौरव प्रदान किया।

**कूच-बिहार डकैती-कांड**

२९ नवंबर, १९५४ की शीतकालीन रात्रि में लगभग १ बजे लाठियों, टार्चों कुल्हाड़ियों तथा अन्य घातक हथियारों से तैयार कुछ अज्ञात डकैतों ने ग्राम गोपालपुर, जि. कूच-विहार (पश्चिम-बंगाल) के श्री चन्द्रकांत वर्मन के घर पर हमला बोला था। डाकू दरवाजा तोड़कर घर में घुसने की चेष्टा करने लगे, किंतु श्री बर्मन तथा उनके अन्य साथियों तथा परिजनों ने बड़ी हिम्मत और मजबूती से डाकुओं का मुकाबला करके उन्हें खदेड़ दिया। हां, घटना-स्थल पर उन्हें एक कटी हुई अंगुली छोड़कर भागना पड़ा। दूसरे दिन पुलिस ने घटना की रिपोर्ट पाकर घटना-स्थल से कटी हुई अंगुली अपने कब्जे में ले ली और फिर यह कटी हुई अंगुली कलकत्ता के फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो को आवश्यक जांच हेतु भेजी गयी। फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो के अनुभवी विशेषज्ञों ने इस कटी हुई अंगुली को हाथ से अलग हो जाने पर भी बारीकी से परीक्षा करके दायीं अनामिका घोषित किया और इसी आधार पर अपराधियों के बृहत-संग्रह में खोज की गयी। अनेक दिनों की लगा-तार मेहनत के परिणाम स्वरूप कटी

हुई अंगुली की मुद्रा धरमादू दोसाद उर्फ भीमा दोसाद की दायीं अनामिका की मुद्रा से मेल खा गयी।

सत्र-न्यायाधीश, कूच-विहार की अदालत में कटी अंगुली के आधार पर दी गयी फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट की साक्षी को अकाट्य माना गया और धरमादू के हजार न-न करने पर भी उसकी उपस्थिति अपराध-स्थल पर स्वीकार की गयी तथा धरमादू दोसाद को ७ वर्ष का सश्रम कारावास दिया गया।

अपराधियों की पक्की पहचान हेतु विश्व की पुलिस-शक्तियों को फिंगर-प्रिंट्स की नवीन प्रणाली प्रदान करनेवाले वंग-प्रदेश के फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट की यह उल्लेखनीय सफलता थी।

**राष्ट्रीय-संग्रहालय चोरी-कांड**

स्वाधीन भारत में महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक संग्रह की दुर्लभ वस्तुओं की अत्यंत सनसनीखेज चोरी राजधानी दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय से २५ अगस्त, १९६८ को हुई थी। अपराध-स्थल पर प्राप्त माचिस, धुंधले छोटे पद-चिह्न तथा लोहे की सलाखों को मोड़कर प्रवेश हेतु बनाये गये १-१ वर्ग-फुट के छोटे मार्ग के आधार पर पुलिस-अधिकारियों तथा अपराध-विशेषज्ञों ने यही अनुमान लगाया था कि एक लाख ७५ हजार मूल्य के गुप्त एवं मुगलकालीन रत्न-जड़ित आभूषणों तथा स्वर्ण-मुद्राओं की रहस्यपूर्ण चोरी करनेवाला चोर नाटे कद, साधा-

काली स्याही में सुरक्षित
अपराधी की पहचान

रण स्वास्थ्य तथा शक्ति-संपन्न देह का स्वामी कोई अकेला आदमी होना चाहिए।' मात्र इन धुंधले संकेतों के आधार पर योजनाबद्ध तरीके से लाखों के माल पर हाथ साफ करनेवाले चतुर चोर को पकड़ना कोई आसान काम नहीं था।

समय बीतने के साथ ही चोरी गयी वस्तुओं के विदेश पहुंचने की आशंकाएं प्रबल होने लगी थीं। सेंट्रल-फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो, कलकत्ता से बुलाये गये फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट श्री सी. जे. जानकीराम ने अपराध-स्थल पर पहुंचकर ध्यान से 'चांस-प्रिंट' की खोज की और उन्हें कांच के टूटे हुए टुकड़े पर तीन अदृश्य अंगुल-मुद्राएं (लेटेंट फिंगर-प्रिंट्स) मिलीं, जिन्हें रसायन (ग्रे-पाउडर) से दृश्य बनाकर

उन्होंने उसी समय स्थायी रूप से चित्रित कर लिया। तत्पश्चात समस्त अंगुल-मुद्रा-कार्यालयों में खोज की गयी। हैदराबाद में अपराधियों की पूर्व-संग्रहीत अंगुल-मुद्राओं में यादगिरी वल्द रमैया नामक एक पुराने अपराधी की दायीं अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी से अपराध-स्थल पर प्राप्त अंगुल-मुद्राएं मेल खा गयीं और इसी सबूत के आधार पर दिल्ली से आंध्र-प्रदेश के सिकंदराबाद जिले के ग्राम पिकेट में छिपे यादगिरी को चोरी के ७० दिन बाद ५ नवंबर, '६८ को गिरफ्तार किया जा सका।

यादगिरी की मां ने उसे पैर की कटी अंगुली के आधार पर पहचाना था, किंतु दिल्ली-पुलिस ने अपराध-स्थल पर छोड़ी गयी अंगुल-मुद्राओं के आधार पर उसे चोरी के अपराध में बंदी बनाया। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और दिल्ली के किसी वीरान श्मशान में गाड़े हुए ९९ आभूषणों को पुलिस के हवाले कर दिया। चुरायी गयी ३२ स्वर्ण-मुद्राएं गलाकर बेची जा चुकी थीं, अतः उनकी प्राप्ति नहीं हो सकी। चोरी के माल को गलाने तथा श्मशान में गाड़ने हेतु सहायता करनेवाले यादगिरी के सहायक हमीद रजा उर्फ यलप्पा को दिल्ली में ही बंदी बनाया गया। देश-विदेश में सनसनी फैलानेवाली ऐतिहासिक चोरी के नायक यादगिरी तथा सहयोगी यलप्पा को क्रमशः ४ तथा २ वर्ष का सश्रम कारावास हुआ।

**जहांगीर-मैंशन-हत्याकांड**

३, फरवरी १९७१ को महानगर बंबई के धोबी-तालाब आंचल के [illegible] जहांगीर-मैंशन के एक आधुनिक फ्लैट में ४ लोगों की छुरा घोंपकर नृशंस हत्या कर दी गयी थी।

मृत शरीरों पर कुल १४७ घाव मेडी-कल-रिपोर्ट में दर्ज किये गये थे।' [illegible] दिन की लगातार खोज के परिणाम-स्वरूप घटना-स्थल पर मिले 'चांस-प्रिंट्स' के आधार पर फीरोज आर. दारूवाला को इस हत्याकांड से संबंधित पाया गया। हत्यारा दारूवाला दक्षिण-बंबई-क्षेत्र से लोकसभा के लिए स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़ रहा था। घटना के १५–२० दिन बाद जब दारूवाला ने अपना नाम वापस ले लिया तब आजाद-मैदान-पुलिस ने उसे 'जहांगीर-मैंशन-हत्याकांड' के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया।

अदालत में न्यायाधीश के समक्ष हत्यारे फीरोज आर. दारूवाला के विरुद्ध अनेक सबूत पेश किये गये, किंतु उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सबूत पेश किया फिंगर-प्रिंट-एक्सपर्ट तथा बांबे-फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो के डाइरेक्टर श्री दारूवाला ने और उसी असंदिग्ध प्रमाण के आधार पर हत्यारे को मृत्यु-दंड मिला।

**—सेंट्रल फिंगर-प्रिंट-ब्यूरो,**
**३०, गोराचंद रोड, कलकत्ता-१४**

# दो सौ वर्ष पुराना गुरुद्वारा

• त्रिलोक दीप

कभी-कभी सैलानी बनकर घूमने से ऐसी नायाब चीजें दीख जाती हैं जिनके बारे में पहले बहुत कम जानकारी होती है। साल में एकाध बार एक दिशाहीन सैलानी के तौर पर मैं अपने ही देश में घूमने चला जाता हूं। सखी अगर कोई होती है तो अपनी कलम और उन यादों को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए कैमरा भी ले लेता हूं।

**भक्त का जीभ-दान**

कुछ दिन पूर्व हरियाणा, पंजाब एवं हिमाचलप्रदेश के कुछ अंचलों को देखने के लिए निकला। ज्वालामुखी में उस मंदिर को भी देखा जहां पिछले बरस एक श्रद्धालु ने भगवती माता के चरणों में अपनी जीभ चढ़ा दी थी। जीभ चढ़ाने की इस घटना से चारों ओर तहलका मच गया था। चारों तरफ से श्रद्धालु लोग उस भक्त को देखने के लिए उमड़ पड़े थे। उस घटना के बाद अब मंदिर के आसपास चौकसी बढ़ गयी है, खासकर उस दरबार में जहां उस श्रद्धालु ने अपनी जीभ चढ़ायी थी।

इस मंदिर के अतिरिक्त ज्वालामुखी में उस स्थान का भी अवलोकन किया जहां कई साल पहले प्राकृतिक गैस आयोग ने तेल और गैस ढूंढ़ने की कोशिश की थी। इस दिशा में पुनः प्रयास हो रहा है। वहां पर तेल या गैस होने का अनुमान इस बात से लगाया जाता है कि भगवती के मंदिर में जो ज्योति जलती है वह प्राकृतिक ज्योति है। इस तरह की ज्योति मंदिर के भीतर कई स्थानों पर निरंतर जलती रहती है।

**कुदरती मंदिर !**

कांगड़ा से चला पठानकोट की ओर। अभी पठानकोट के आधे रास्ते में ही था कि भीड़ में से आवाज आयी—'तिलोकपुर आ गया, जल्दी उतरो भाई।' यहां पर ही तो शिवजी का मंदिर है, बिलकुल कुदरती ! यहां से पानी निरंतर बहता रहता है। मैं भी बस से उतर गया। सड़क पार की। कुछ ऊबड़-खाबड़ पत्थरों को फांदता हुआ उस मंदिर तक पहुंच गया। वास्तव में तराशे हुए पत्थरों का यह अद्भुत मंदिर था। उस क्षेत्र पर प्रकृति का भी प्रभाव है। अंदर बैठे पुजारी से इस मंदिर के इतिहास के बारे में जब जानना चाहा तब उत्तर मिला—'काफी पुराना है, कुदरती है। शिवजी की जटाएं, शंख आदि आप देख ही रहे हैं।' बस, पुजारी का यह संक्षिप्त-सा जवाब था। मैं इस जवाब से मायूस हो मंदिर से

बाहर निकला। मंदिर के ऊपर से जाती हुई कुछ सीढ़ियां दीखीं। एक व्यक्ति से इन सीढ़ियों का रहस्य पूछा। उस व्यक्ति ने बताया कि ऊपर एक गुरुद्वारा है। उत्सुकता बढ़ी, सीढ़ियां चढ़ने लगा। काफी दूर तक सीढ़ियां चढ़ गया होऊंगा तब एक बहुत बड़ा खुला-सा मैदान दिखायी दिया। उसके बीचोबीच एक गुरुद्वारा था। गुरुग्रंथसाहब का पाठ हो रहा था। वहां माथा नवाया।

सौभाग्य से वहां संतोखसिंह नामक एक व्यक्ति से मुलाकात हो गयी, जो तिलोकपुर के एक मिडिल स्कूल में हेड मास्टर थे। कुछ सहमते हुए मैंने संतोखसिंह से इस गुरुद्वारे के इतिहास के बारे में पूछा। मेरी जिज्ञासा से संतोखसिंह बहुत खुश हुए। शायद वे इसी सवाल की प्रतीक्षा में थे। बोले, यह गुरुद्वारा दो सौ वर्ष पुराना है। तब महाराज रणजीतसिंह का इस इलाके पर शासन था। भाई लहणासिंह यहां के गवर्नर थे।

लहणासिंह धार्मिक विचारों के थे। गुरुद्वारा की दायीं तरफ उनके महल के खंडहर हैं। जाकर देखा तो महल की एक बड़ी ऊंची-सी मीनारनुमा दीवार ही खड़ी थी, लेकिन गुरुद्वारा में अब एक ऐसा कमरा बचाकर रखा गया है जो भाई लहणासिंह के समय का था। भाई लहणासिंह ने अपने महल के आसपास एक मसजिद और एक मंदिर का निर्माण भी कराया था। ये दोनों धार्मिक स्थान गुरुद्वारा के निकट ही हैं। उन्हें भी देखा। मंदिर में एक पंडित और मसजिद में एक मौलवी रहते हैं। उन्होंने भी इस ऐतिहासिक तथ्य का समर्थन किया, जो संतोखसिंह ने मुझे बताया था।

श्री संतोखसिंह ने मुझे यह भी बताया कि इन धार्मिक स्थानों की आय का स्रोत यहां पर गाहे-ब-गाहे आनेवाले सैलानियों के अतिरिक्त उन पर्वों पर एकत्र होनेवाली संगत है, जो विभिन्न सिख गुरुओं के जन्मदिवस मनाने यहां आती है। तिलोकपुर कांगड़ा जिला में आता है। इन तीनों स्थानों में गुरुद्वारे की देखभाल खासे नियोजित ढंग से होती है। यह भी बताया गया कि तिलोकपुर का यह गुरु-

दो सौ वर्ष पुरानी गुरुग्रंथ-साहब की जिल्द से पाठ

वजीर लहणासिंह के महल के खंडहर
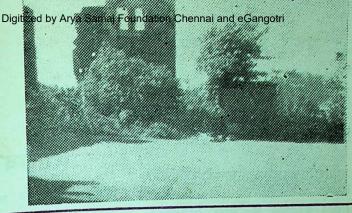
द्वारा 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी' के अधीन है, लेकिन लगता है कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी ने अपना अधिकार ही जतलाया है, उसकी देखभाल से उसे कोई सरोकार नहीं। इस तरह की शिकायतें अकसर पंजाब से बाहर के गुरुद्वारों के बारे में सुनने को मिलती हैं।

**दो सौ साल पुरानी गुरुग्रंथ की जिल्दें**

इस ऐतिहासिक गुरुद्वारे के अतिरिक्त मुझे गुरुग्रंथसाहब की ऐसी जिल्दें दिखायी गयीं जो सौ से दो सौ साल पुरानी थीं। इनकी संख्या ३१ है। निस्संदेह इतिहास की इन अनमोल कृतियों को जिस जतन से यहां पर सहेजकर रखा गया है वह सराहनीय है। दरअसल, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी को इन जिल्दों को अपने अधिकार में लेकर अमृतसर स्थित संग्रहालय या कहीं अन्य सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।

शिवजी मंदिर के पुजारी से जो निराशा हुई थी, यहां मंदिर-गुरुद्वारा-मसजिद के उपासकों से मिलकर दूर हो गयी। इन ऐतिहासिक धार्मिक स्थानों के कुछ नीचे और शिव-मंदिर के ऊपर बौद्धों का भी एक मंदिर है। यह मंदिर अधिक पुराना नहीं है। इस मंदिर की देखभाल और स्वच्छता का ध्यान जिस तरह लामा रखते हैं वह प्रशंसनीय है। वास्तव में इस तरह के अन्य अनेक भूले-बिसरे स्थान होंगे, जो शायद सरकारी अधिकारियों की निगाह में आने से रह जाते हैं। कितने ऐसे सैलानी होंगे जिन्होंने शिव-मंदिर के ऊपर जानेवाली सीढ़ियों पर चढ़ने और आखिर तक जाने की तकलीफ की होगी? इसका उत्तर श्री संतोखसिंह ने दिया—बहुत ही कम जिज्ञासु आते हैं। हम तो हमेशा इंतजार में रहते हैं।

शिव-मंदिर के आसपास इन प्रमुख धार्मिक स्थानों के बारे में कोई संकेतपट भी नहीं है। यह काम तो शायद हिमाचल-प्रदेश सरकार का पर्यटन-विभाग कर ही सकता है।

—१०, दरियागंज,
नयी दिल्ली-११०००२

# मिलो की वीनस

भरत के महल से निकाले जाने की आशंका
से
जंगल दशरथप्रिया के भवन में घुस पड़ता
है
श्रृंगार बिगाड़कर उन्हें बना देता है कैकेयी

गौतम को छल से बाहर निकालकर
पति के भेष में आ जाता है
मुर्गा अहल्या की कुटी में
सामाजिक नियमों के पथरीले पथ पर
पैरों तले रौंदा है उसे
क्या मुक्त कर पाये राम
जिन्होंने की निष्कासित
पैरों से भारी वैदेही !

आज का युवा वर्ग विद्रोह करता है
शराब की जगह चरस पीकर
लगाना चाहता है उन हाथों को
और लगाता है स्टेनलेस स्टील का ढांचा
चढ़ाता है बंदर का मांस, ट्रांसप्लांट करता है
जांघों की चमड़ी !
आज की युवती फेंककर दामन, जलाकर
चोली
बुझाना चाहती है आग जंगल की लगाकर
आग जंगल में
हाथों को लगाने का बीड़ा उठाना चाहती है
पाने के लिए अपनी नियति

——विश्वमोहन तिवारी
३३१, धौलाकुआं, नयी दिल्ली-११००१०

# वातावरण

सिगरेट, मोमबत्ती, गालिब
तीनों एक हैं
या
फिर अलग
पता नहीं
कुछ धुआं
कुछ अंधेरा
एकांत
मौत
रूमानी नहीं
असलियत हैं

एक वातावरण है——
जो बेगम अख्तर की आवाज ने
पैदा किया है
जिनसे वे सजीव हो उठे हैं
एक से जलते हुए हैं

मैं, बस मैं हूं
जो उनसे परे हूं
उनमें हूं
और नहीं भी हूं

——स्नेहमयी चौधरी
जी-६, माडलटाउन, दिल्ली-११०००९
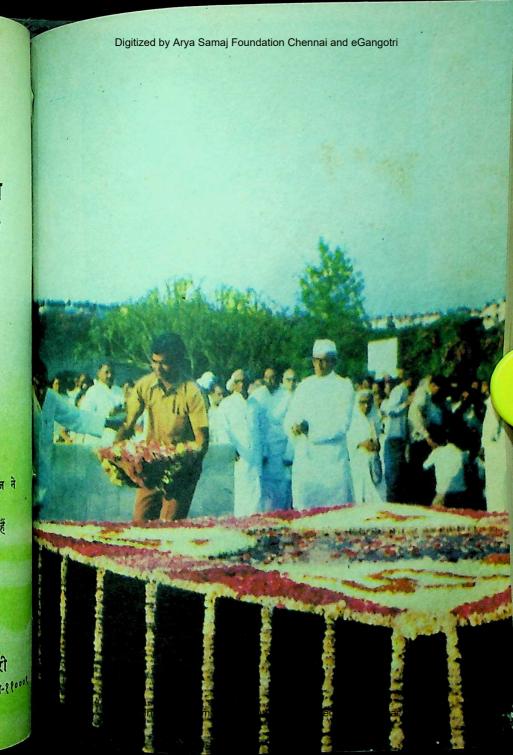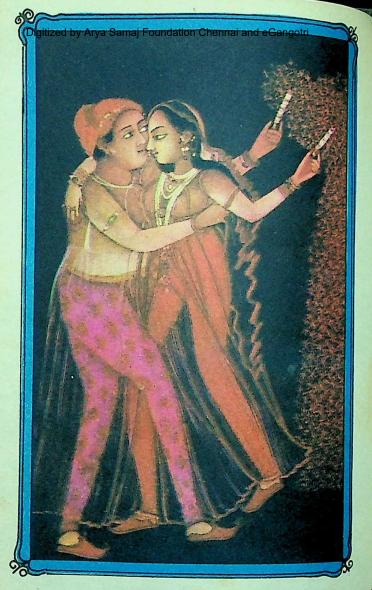
मनुष्य और पशु में एक बड़ा अंतर यह है कि मनुष्य को अपने भावों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए अनेक माध्यम, जैसे शब्द, चित्र, संकेत आदि की सुविधाएं प्राप्त हैं। कभी-कभी ऐसे भी अवसर आते हैं जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष को ही अपना अभि प्राय स्पष्ट करना चाहता है, भले ही वहां अन्य लोग उपस्थित हों। ऐसी स्थिति विशेषतया युद्ध अथवा प्रेम में उत्पन्न होती है। यहां स्पष्ट भाषा के बदले संकेतों अथवा प्रतीकों का उपयोग किया जाता है।

# पहाड़ी चित्रों में प्रेम-प्रतीक

● डॉ. भानु अग्रवाल

युद्ध में किसी समाचार को शत्रुओं से बचाते हुए अपने लोगों तक पहुंचाना अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। इसी महत्त्व के कारण इसका वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। इसके ठीक विपरीत प्रेम की स्थिति में भी प्रेमी-प्रेमिका अन्य लोगों की उपस्थिति में एक-दूसरे को अपना अभिप्राय गुप्त संकेतों से प्रकट करते हैं। यहां यह एक कला का रूप धारण कर लेता है। इस संकेत-कला का अध्ययन प्राचीन काल से ही हो रहा है तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

'कामसूत्र' के अनुसार प्रेमी-प्रेमिका चित्रों अथवा गुप्त संकेतों द्वारा मनोभावों का आदान-प्रदान करते थे, जैसे—प्रेमिका द्वारा तीन उंगलियां दिखाने का तात्पर्य है तीन दिन के बाद मिलना। इसी प्रकार कोमल पत्तों पर विभिन्न प्रकार की शक्लें बनाने का अर्थ है रति, क्रोध, शोक आदि का भाव व्यक्त करना। बालक, चित्र या प्रतिमा को चूमने, उठाने तथा उसका आलिंगन करने के बहाने अपने प्रेम-भाव को प्रकट किया जाता है। चित्रित या रंग-बिरंगी फांकोंवाली गेंद दिखाना, शंख, सीप, कौड़ियां, श्रृंगारदान, पान-सुपारी देना, गाय-बैल, बकरी-बकरे तथा मेढ़ों के जोड़े, मुर्गे, तोते आदि के चित्र देना भी प्रेमाभिव्यक्ति के ही विभिन्न रूप हैं।

चित्रों में संकेतों का प्रयोग मध्य-कालीन सूक्ष्म-चित्रकला (मिनिएचर आर्ट) में और उसमें भी मुख्यतः पहाड़ी चित्र-कला में मिलता है। इन चित्रों में प्रायः

अभिसारिका नायिका

नायक या नायिका को विशेष स्थिति में दिखाते हैं। सामान्यजन तो इस पृष्ठभूमि में नायक अथवा नायिका को ही देखेगा, परंतु जानकार व्यक्ति चित्रकार द्वारा व्यक्त गूढ़ अर्थ, यानी प्रतीक या संकेत भी समझ जाता है।

**चित्रों में प्रेमाभिव्यक्ति**

लता-वल्लरी का वृक्ष के चारों ओर लिपटना भी स्त्री-पुरुष के संसर्ग की ओर संकेत करता है। पहाड़ी तथा ईरानी शैली के चित्रों में ऐसे सरस भाव का चित्रण प्रायः देखने को मिलता है। 'कामसूत्र' के अनुसार यह स्त्री-पुरुष के 'लता-वंध' आलिंगन का प्रतीक है। इस प्रकार का चित्रण पहाड़ी चित्रकारों ने अपने चित्रों में बहुत किया है। राधा-कृष्ण या प्रेमी-युगल भुजबंधनों में बंधे दिखाये गये हैं और पास ही वृक्ष पर लता लिपटी दिखायी गयी है। कालिदास ने 'कुमारसंभव' में शिव-पार्वती की काम-क्रीड़ा के प्रसंग को लता-वृक्ष के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है।

**पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्यः**
**स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः।**
**लतावधूभ्यस्तरवोऽ**
**प्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि॥**

(अर्थात, पुष्पों के स्तबक (गुच्छे) जिनके स्तनों के समान थे और जो नवांकुर-रूपी अधरों से मनोहर हो उठी थीं, ऐसी लताओं-रूपी वधुओं ने भी अपने विनम्र भुज-बंधनों को वृक्षों के गले में डाल दिया।)

युगल प्रेमी

पहाड़ी चित्रकला में घड़ा, टोंटीदार सुराही तथा पतली गरदनवाली शीशी प्रायः नायक-नायिका के समीप दिखायी गयी है। डॉ. आर्चर के मतानुसार घड़ा, सुराही या इत्र-फुलेल की शीशी प्रेमी युगलों की प्रेम-पीड़ा अथवा आकांक्षा का प्रतीक है। स्वप्न में पहाड़ तथा सर्प रति के द्योतक हैं।

एक चित्र की कल्पना कीजिए—अभिसारिका रात्रि में अपने प्रेमी से मिलने जा रही है। उसके पीठ पीछे एक डाकिनी है और सामने की ओर सर्प। पृष्ठभूमि में एक पहाड़ पर भी सांप है। पेड़ पर लता चढ़ी है। सामान्य व्यक्ति तो सर्प अथवा पहाड़ को रास्ते की बाधाओं के रूप में लेगा, जब कि चतुर चित्रकार इन्हें रति के संकेतों के रूप में व्यक्त कर रहा है।
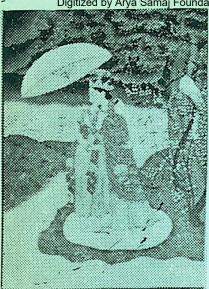
मनोविज्ञान में भी कामोत्तेजना के चढ़ाव-उतार को पहाड़ के आकार में ही मानते हैं। मनोविज्ञान में वृक्ष को लिंग का प्रतीक माना गया है। बिलकुल यही चीज पहाड़ी चित्रकारों ने भी मानकर केले के वृक्ष से आलिंगन करती नायिकाओं का चित्रण किया है, जो 'कदली-परिरंभ' शीर्षक से प्रसिद्ध है।

यहां एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राचीन चित्रकारों ने जिन वस्तुओं का शृंगारिक प्रतीकों के रूप में उपयोग किया है, उन्हें आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी सेक्स के प्रतीकों के रूप में मानते हैं। उदाहरणतया सांप, घोड़ा, सांड़, केला, नाशपाती, वृक्ष, आगे का दरवाजा, खिड़की, कमरा, तालाब, झील, नाव, कौड़ी, सीप तथा कमल का फूल और पत्तियां।

युद्ध और प्रेम परस्पर विपरीत स्थितियां हैं, किंतु इनमें प्रतीकों का एक-सा योग हुआ है। हां, युद्ध में प्रतीकों का विज्ञान के रूप में विकास हुआ है, जबकि प्रेम में कला के रूप में। चौंसठ कलाओं में प्रसिद्ध इस ललितकला में पहाड़ी चित्रकारों ने अपने मनोभावों को मनोवैज्ञानिक रूप में अंकित करके दर्शकों को भावोद्वेलित किया है।

**—सी-३२/६ विद्यापीठ रोड, वाराणसी-२**

ऊपर : वर्षाऋतु में राधाकृष्ण
नीचे : कदली परिरम्भ

• गुरदयाल सिंह
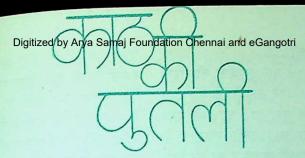
जब चौखट के भीतर पांव रखते ही कुलजीत ने घूंघट उठाकर कमरे में झांका तब महसूस हुआ जैसे दो वर्षों से मन में बने हुए कल्पनाओं के महल रेत की दीवारों की तरह गिरते चले जा रहे हों। कांपते हाथों से उसने दरवाजा बंद किया और सहमी-सहमी-सी खुली आंखों से कमरे को ताकने लगी।

सामने अलमारी के ऊपर सरसों के तेल का दिया टिमटिमा रहा था। पास ही रेशमी रूमाल में लिपटे कुछ ग्रंथ रखे थे। एक ओर धूप सुलग रही थी। उससे नीचे फर्श पर एक मृगछाला और चांदी के पावोंवाली छोटी चौकी रखी थी। चारों दीवारों पर सिक्ख गुरु साहिबान तथा योद्धाओं की तसवीरें लगी थीं। कमरे की बायीं दीवार के साथ दो पलंगों-जैसी चारपाइयां एक-दूसरी से कोई दो गज के फासले पर डाली हुई थीं। उन दोनों पर सुरमई रंग की चादरें बिछी थीं और केसरी रंग के सिरहाने रखे हुए थे। सभी कुछ बहुत पवित्र और पावन महसूस होता था।

कुलजीत की आंखें सुलगने-सी लगीं और बदन जैसे कांपने लगा। सूनी निगाह से एक बार फिर उसने देखा तो पहली वस्तुओं के सिवा दो बंद अलमारियां तथा छत से लटकता हुआ बिजली का बल्ब भी नजर आया। उसके अंदर एक उमंग-सी उठी और बच्चों के-से अंदाज में दरवाजे की ओर बार-बार झांकते हुए उसने स्विच दबा दिया। सभी वस्तुएं दूधिया प्रकाश में नहा गयीं, किंतु अगले ही क्षण उसने स्विच ऑफ कर दिया। क्षण भर में मानो रात छा गयी हो। दिये की रोशनी बहुत मद्धम हो गयी जान पड़ी। समझ नहीं आया कि बिजली के होते हुए भी यह दिया क्यों जल रहा था!

छाती में उठा एक गुब्बार-सा सिर की ओर चढ़ रहा जान पड़ा। खड़ी न रह सकी तो इधर के पलंग पर बैठ गयी। उसने एक उमंग से मेहंदी रंगे अपने हाथों की तरफ देखा। सोने की चूड़ियों और गले में पहने हार को टटोला तो ऐसा लगा जैसे उसे कोई जबर्दस्ती डोली में से उठाकर जंगल में ले आया हो। कुलजीत की आंखें पथरा-सी गयीं; अपनी ओढ़नी के छोर पर अपनी ही बनायी फूल-पत्तियों

को ताकती रही ...

दो वर्ष पूर्व जब कुलजीत की सगाई हुई थी, उसने अपने बापूजी के एक मित्र को बातें करते सुना था। वह इसी शहर का रहनेवाला था। उसने कुलजीत के मंगेतर और उसके खानदान का जो चित्र कुलजीत के बापू के सामने पेश किया वह पूरे का पूरा उसी तरह कुलजीत के मन पर अंकित था। दो वर्ष तक वह उसी चित्र को निहार-निहारकर बावरी-सी होती रही। अपने मंगेतर-सा सजीला जवान उसने कभी न तो देखा था, न ही सुना था। इतने सुंदर तथा सादे स्वभाव का वह शहरी लड़का था, जो शहर में कुलजीत को कभी भी नजर नहीं आया था। ऐसे प्रिय-मिलन की आशा कुलजीत के अल्हड़ मन में दो वर्ष तक चुपके-चुपके धड़कती रही थी। वह सत्रह वर्ष में ही यौवन की रानी बन गयी, जैसे मिलन की आशा में उसका रंग-रूप निखर आया हो। उस सुंदर शहर की खूबसूरत गगनचुंबी इमारतों के आकार-प्रकार मन में बनाती-बिगाड़ती रहती, जहां अपने बापू के साथ कभी-कभार जाया करती थी। खुले बाजार, शीशे की तरह चम-चमाती सड़कें, सुंदर कपड़े पहने साइकिल-सवार लड़कियां और गोरे-गोरे जवान लड़के––उसे सब कुछ बहुत भाता। उसका मन ऐसे शहर में बसने को कितना उतावला था!

और आज वह उसी शहर के एक मकान के भीतर बैठी थी। उसने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था कि शहर में ऐसे मकान भी होते हैं, जहां बिजली के होते हुए भी सरसों के तेल के दिये जलते हों। कभी सोचा भी नहीं था कि शहरियों के कमरे भी उनके गांव के गुरु-द्वारे की तरह सजाये हुए होते हैं।

कुलजीत पुतली की तरह चारपाई पर बैठी हुई थी। उसकी सब मानसिक शक्तियां शून्य-सी हो चुकी थीं। यहां तक कि अब यह भी नहीं सोच सकती थी कि वह कहां बैठी है।

बाहर से कुछ खट-खट हुई तो वह उठ खड़ी हुई। 'वे' अंदर आये तो कुल-जीत ने लंबा घूंघट खींच लिया। वे मधुर स्वर में 'शब्द' गुनगुनाते हुए मृगछाला पर जा बैठे। कुलजीत वहीं खड़ी रही।

कुलजीत ने घूंघट में से एक शर्मीली निगाह उधर डाली। इधर उनकी पीठ थी। उसको लगा जैसे उसकी सारी देह रक्तहीन-सी हो गयी हो। सिर के ऊपर सफेद 'दस्तार', सफेद कुरता और कच्छा हरा, गले में रेशमी-रूमाल पूर्ण-गुरुसिक्खों की वेशभूषा।

काफी देर वे अंतर्ध्यान हुए शब्द उच्चारते रहे और वह ज्यों-की-त्यों वहीं खड़ी रही। शब्द की समाप्ति पर वे उठे। उनका छरहरा बदन और सफेद हाथ-पांव देखकर कुलजीत को अपने ख्वाबों के चित्रों के अक्स फिर उभरते जान पड़े। जब वे आंखें मूंदे ही उठकर चौकी पर

बैठे, तभी कुलजीत उनका चेहरा भी देख पायी। इतने सुंदर चेहरे की उसने कभी कल्पना भी न की थी। छोटी-छोटी दाढ़ी, लंबी नाक, चौड़ा माथा और बड़ी-बड़ी आंखों में से चांद की चांदनी का-सा कुछ झरता प्रतीत हो रहा था। कुलजीत के होठों पर अपने-आप ही एक भीनी-सी मुसकान बिखर गयी और सीने में मीठी-मीठी जलन-सी होने लगी।

कितनी ही देर बाद उन्होंने आंखें खोलीं। उनमें कोई अजीब ही तेज था। कुलजीत उनमें झांक नहीं सकी। उसकी देह एक बार फिर बेजान-सी हो गयी।

"आप यहां आसन पर आइए, देवीजी!" उनका गंभीर, परंतु कोमल स्वर उसने सुना।

"शरमाइए नहीं! सतगुरुजी ने कहा है—'एक ज्योति दो मूर्ति।' आज सतगुरु की कृपा से दो पवित्र आत्माओं का मिलन हुआ है। यह शुभ दिन है। आइए, आसन के ऊपर पधारिए!"

उनकी नजरें, आवाज, आसन की तरफ इशारा करते हुए हाथ—सब कुछ कुलजीत को पवित्र लग रहा था। जब उसने उनकी आज्ञा अनुसार पहला कदम उठाया तब उसे लगा, जैसे वह सारी की सारी 'अपवित्र' हो। अपने भीतर से जाने कैसी दुर्गंध-सी आ रही थी। पांव डगमगाने लगे। वह सिमटी-सी आसन पर जा बैठी।

"शरमाइए नहीं, अच्छी तरह बैठिए।" वही आवाज उसने फिर सुनी, मीठी, पवित्र आवाज!

कुलजीत मर्यादा से ऐसे बैठ गयी, जैसे गांव के गुरुद्वारे में बैठा करती थी।

"घूंघट उठा दीजिए, यह गुरु-मर्यादा

नहीं है।"

उसने घूंघट उठा दिया।

"श्री गुरु साहिबजी के चरणों में सीस झुकाकर अपना जन्म सफल करो।" उन्होंने सिर झुकाकर, हाथ जोड़ते हुए कहा।

कुलजीत का सिर झुक गया।

अब उन्होंने कुलजीत की तरफ देखा। पलकें झुकी-झुकी-सी, मोटी-मोटी आंखें, तीखे नक्श, पवित्र अंग . . . उनकी आत्मा किश्ती की तरह डगमगाने लगी। एक क्षण को तो उनकी चेतना मानो 'भव-सागर' का भय ही भुला बैठी।

परंतु दूसरे ही क्षण उनके कंठ से एक गंभीर व भयभीत आवाज निकली, **'गुरु-शब्दी एह मन छोड़िये'** (गुरुजी की आज्ञा से मन की वृत्ति ठीक दिशा में लगाइये)।

उनकी आंखें मुंदती चली गयीं और जब फिर से खुलीं तो शांत झील के ऊपर तैरती हुई नाव की भांति अडोल तथा शांत थीं।

"हम भाग्यवान हैं देवीजी, जो आप-जैसी पवित्र आत्मा हमारे पास है। किंतु आपके वस्त्र सिंहनियों-जैसे नहीं। यह हार, गहने आदि सभी मानसिक-क्लेश के चिह्न हैं। उस अलमारी में सब वस्त्र रखे हैं, पहन लीजिए। गुर-मर्यादा अनुसार, पूर्ण-गुरसिक्ख किसी मलीन बुद्धि-संगनी के साथ विवाह नहीं रचा सकता। हमारे एवं आपके मां-बाप की मलीन-बुद्धि के कारण ही बिना अमृतपान कराये आपके 'आनंदकारज' करना पड़ा है। परंतु आपको पूर्ण-सिंहनी सजना चाहिए। सत-गुरु की शरण में जाकर आपकी भी अमृतपान से पवित्र की जाएगी। ही हमारे शरीरों और आत्मा का मिलन होगा।" वे आंखें मूंदे यह करते रहे।

कुलजीत को उन वाक्यों की ठीक समझ आ गयी थी, जिनमें लिए सिंहनी-जैसे वस्त्र धारण कर की आज्ञा की गयी थी। और किसी बात की उसे समझ नहीं आयी।

वह चुपचाप उठकर पीछेवाली मारी की ओर चली गयी। वे उधर किये, आंखें मूंदे, समाधि लगाये बैठे

कपड़े-गहने उतारकर कुलजीत 'वस्त्र' पहन लिये। लंबा कुरता, मोहरी की शलवार और सिर पर रंग की ओढ़नी। यह सब पहनते ही आप अपरिचित-सा जान पड़ा, पल भर को भी वह अपने बारे में ढंग से न सोच पायी। वस्त्र सजाकर से आसन पर आ बैठी।

उन्होंने एक भरपूर निगाह कुलजीत पर डाली और क्षण-भर में उनके विचार एक-दूसरे को बेधते चले गये, पर मगाती हुई आत्मा को गुरु-शब्दों का सहारा देकर उन्होंने मन को स्थिर किया। अब वे फिर शांत थे।

"आपने जूड़ा नहीं बांधा, पर देखिए तो इन वस्त्रों में आप कितनी शोभनीय दीख पड़ती हैं। धन्य हो सतगुरु! धन्य सतगुरु!" बहुत रसमय ढंग से उन्होंने कहा और आंखें मूंदकर फिर आसन जमा लिया।

कुलजीत फिर उठी। चोटी खोलकर सिर पर जूड़ा बांधा और जब आसन की ओर बढ़ी तब उसके पांव–जैसे किसी सांप ने जकड़ लिये। सारा बदन मानो अध-झुलसा हुआ-सा हो गया और वह बहुत मुश्किल से गिरने-पड़ने से बचती आसन पर आ बैठी।

"धन्य हैं आप–जैसी महान सिंघ-नियां!" उन्होंने समाधि भंग करके कहा, "आपका शरीर अब पवित्र है, पर जिह्वा तथा आत्मा पवित्र करने के लिए मेरे साथ शब्द उच्चारण कीजिए। आइए, हम यह अपनी पहली मिलन-वेला सतगुरुजी की पवित्र वाणी से सफल करें।"

वे मीठी-प्यारी ध्वनि में शब्द गायन करने लगे। एक तुक बोलकर वे चुप हो गये। उनकी आंखें मुंदी हुई थीं, परंतु कान कुलजीत की आवाज सुनने को उतावले हो रहे थे।
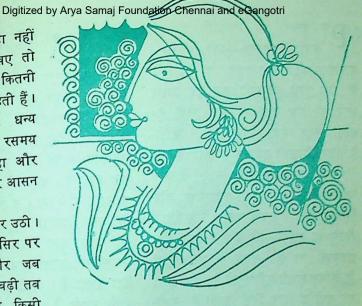
बहुत देर तक कुलजीत के ओठ न खुले; जवान मानो तालू से चिपक गयी हो, परंतु फिर अपने-आप उसके भीतर से कोई कुछ बोल उठा। वह बोलती रही, परंतु उसके सारे अंग फिर शून्य हो गये।

कुलजीत की दोनों आंखें बंद थीं और लंबी पलकों में से झरते हुए आंसू पीले पड़ चुके गालों पर से टूटे हुए तारों की तरह फिसलते, काली चुनरी के छोर में समा रहे थे।

उनकी दोनों रस-मुग्ध आंखें कुलजीत की सुरीली आवाज की मिठास से और भिंचती जा रही थीं। शब्द की ध्वनि से सभी कुछ शांत-सा हो गया था।

**—६/१२८ जैतो, जिला फरीदकोट (पंजाब)**

# एक काव्य पुरुष की अंतर्यात्रा

● डॉ. विजय शुक्ल

एक पत्थर की नक्काशी की हुई बेजान इमारत—बड़ी कोठी—दारागंज की संकरी सड़क पर है। इसी के ठीक पीछे की गली कुछ दूर जाकर आगे की एक गली से क्रास होती है। बायीं तरफ मुड़कर एक 'छोटी कोठी' है, जिसकी ऊंची इमारत के साये में एक तिमंजिला मकान खड़ा है। मकान के आगे 'कला-मंदिर' का एक कलात्मक बोर्ड दिखायी देता है। इस मकान के फर्शवाले हिस्से का कमरा गली से लगा हुआ ;तीन दरवाजों का है। कमरे में अलमारियां हैं, लेकिन खाली पड़ी रहती हैं। एक तख्त पर दरी व चद्दर बिछी रहती है, कभी-कभी वह भी नहीं। गावतकिया तख्त पर अवश्य रहता है। एक कोने में एक सुराही और पास ही एक खाली गिलास है। तख्त के नीचे चटाइयां या बैठने के लिए दरी है। कमरा ठंडा रहता है। धूप गली में ठीक दोपहर को ही आती है। इसके पहले या बाद में 'छोटी कोठी' की ऊंचाई में संपूर्ण कला-मंदिर ढका रहता है।

तख्त पर बैठा हुआ यह आदमी सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' है। सूर्यकांत वल्द रामसहाय। सूर्यकांत कान्यकुब्ज ब्राह्मण, लेकिन उसे अब नहीं मालूम कि वह कान्यकुब्ज है। उसे यह भी नहीं मालूम कि लोग उसको 'निराला' नाम से महाकवि मानते हैं। उसे अपना अतीत भूल गया है। वह नहीं जानता कि क्या था और कौन था। न तो वह किसी को चिट्ठियां लिखता और न ही वह दस्तखत करता हुआ देखा जाता है। सूर्यकांत 'मरमरिंग' करता हुआ तख्त पर बैठा रहता है। ओठों पर हमेशा हरकत होती रहती है। उस गली-रास्ते जाता हुआ महल्ले का कोई गंवार गोड़ पड़ता है, अपने साथी से भी गोड़ पड़वाता है और कहता है कि गुरु मंत्र पढ़ रहे हैं, गुरु को सिद्धि है। उधर से और कोई गुजरता तो वह पालागी कहता हुआ सिर झुकाकर आगे बढ़ जाता है। उस ठंडी गली में कभी-कभी घंटों कोई आदमी नहीं गुजरता। कमरे के सामने पड़ोस का कुत्ता जीभ निकाले सोया रहता है जिसे सूर्यकांत निहारता रहता है। कभी-कभी दरवाजे की देहरी पर बैठा हुआ

कुत्ते को स्पर्श करता है। कुत्ता आंखें मूंद सुख का अनुभव करता रहता है। चूंकि सूर्यकांत स्वयं से बात करता रहता है, कुत्ते को सहलाते देख ऐसा लगता कि वह उससे कुछ कह रहा है।

गरमियों की दोपहर में कमरे के दोनों दरवाजे बंद रहते हैं। सीलिंग फैन चलता रहता है। सुबह सूर्यकांत तहमद बांधे कुछ दूर टहलने निकल जाता है। जिस समय बरसात के मौसम में वह फुहारों का मजा लेता है उस समय उसकी दाढ़ी भीगकर उसके विशाल चेहरे पर चिपक जाती है। जाड़े के मौसम में ठीक दोपहर को अपने कमरे के सामने की गली के एक छोर से दूसरे छोर तक बुदबुदाता हुआ वह घूमता रहता है। कभी उसकी चाल मंद होती है और कभी तेज हो जाती है। दोनों छोरों के किसी ओर से, ऐसे समय में, यदि कोई अजनबी या महल्ले का बच्चा आता तो सूर्यकांत की आंधी-चाल देखकर वापस हो जाता या फिर बगल की किसी दूसरी गली से मुड़कर अपना रास्ता बदल लेता है। सूर्यकांत 'मरमरिंग' करते हुए कहता—"हम सब जानते हैं, हमारा हिसाब दो। कलकत्ता खराब शहर है। पक्की बिल्डिंग बनवानी है। जूते पड़ेंगे। भेड़ बकरी समझ रखा है क्या? चौदह हजार में क्या होगा, लाखों का हिसाब है। वह अभी बच्चा है। सब चश्मा लगाकर अंधे हो गये हैं।
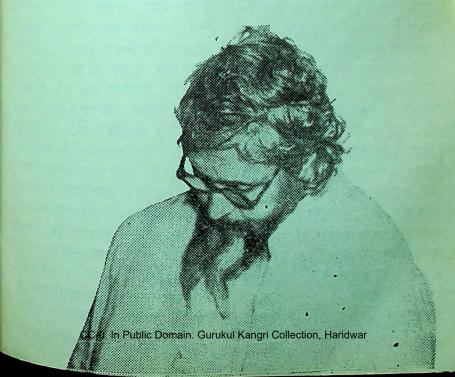
हमको अपना पेट बता दें। बहुत बड़े आदमी हैं। वह खूबसूरत है। हमें एक-एक पैसे का हिसाब दो। हमारी किताब खो गयी है।" सूर्यकांत इन टूटे हुए तारों के संवादों को कहता हुआ भयानक हंसी हंसता है।

वसिष्ठ गुरु सामने बैठा है। एक ही समय दोनों की वार्त्ताएं होती हैं। दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे हुए खुद से बात करते हैं। वसिष्ठ गुरु सूर्यकांत के सामने बैठा हुआ अपने आपसे कहता है—"तेलवाले गौड़जी पांच हजार लाये हैं। सुशीला बेवकूफ है। रुपये मेरे नाम पर दे देती है।" सूर्यकांत वसिष्ठ गुरु की बातचीत के समय अपने आप से संवाद जारी रखता है और भुनभुनाता है—"मार-मारकर खाल खींच लूंगा!" इक्के का घोड़ा सरपट दौड़ता रहता है...

वसिष्ठ का क्रम जारी रहता है—"सुशीला लंदन हो आयी, मेरे लिए मर रही है, मुझे सपना देती है, लंदन में संस्कृत पढ़ रही है।" ऐसे ही आमने-सामने बैठे हुए दोनों के संवाद जारी रहते हैं और वसिष्ठ गुरु चिलम भरता हुआ धीरे-धीरे उस पर कपड़ा लगाता है। अपने पोले मुंह से चिलम लगाने के पहले सुशीला का नाम लेता है और दम साध करके अंतिम सांस तक खींचता है। चिलम में लौ उठती है। सूर्यकांत उस लौ को देखता है। वसिष्ठ गुरु श्लथ होकर धीरे से सूर्यकांत को चिलम बढ़ा देता है। चिलम हाथ में लेते हुए सूर्यकांत बोल जाता है—"हम देख लेंगे कौन हिम्मत करने आयेगा मेरे सामने!" इसी तरह कहते हुए वह चिलम पर मुंह लगाता है।

गरमी के दिनों की एक सुबह गंगा झूंसी की तरफ है। दारागंज से झूंसी तक लोहे की पटरियों का बना हुआ रास्ता कुछ महीनों के लिए जी. टी. रोड बन जाता है, क्योंकि गंगा के ऊपर पांटून-ब्रिज बनाकर काम में ले आया जाता है। सुबह के समय पूरे कछार में चिड़ियों का शोर होता है। अच्छी बहती हवा में झूमते हुए, एक किनारे से चलते हुए, पीपे के पुल पर नर-राज सूर्यकांत अकेला टहलता है। कभी गंगा की प्रखर धारा को देखता है और कभी आकाश को। एक दिन ऐसी ही सुबह एक दहीवाला सूर्यकांत की बगल से निकल जाता है। सूर्यकांत उसे रोकना चाहता है, किंतु उसके पास उसे रोकने के लिए शब्द नहीं हैं, भाषा नहीं है। पीछा करते हुए वह उसके आगे हो जाता है और फिर उसके सामने खड़ा हो जाता है। दहीवाला सकपका कर सूर्यकांत को ऊपर से नीचे देखकर निर्जीव होने लगता है। अपने दही की खांची उतारकर वह उलटे पांव झूंसी की ओर भाग जाता है। सूर्यकांत उसे रोकना चाहता है, लेकिन उसे भागा हुआ देख कर चुप रहता है। हंडी का दही पीकर अघा जाता है। हंडी व खांची गंगा की धारा में फेंक देता है। दूसरे दिन से रोज

उसी समय सूर्यकांत पांटून-पुल पर घूमता है। आते-जाते आदमियों को, तरबूज, खरबूजा व ककड़ी बेचनेवाले किसानों को, दूधवालों को बड़े गौर से ढूंढ़ता, देखता रहता है, लेकिन वह दहीवाला नहीं दीखता। आखिर एक दिन वह दीख ही जाता है। इस बार सामने सूर्यकांत के खड़े होने पर भयवश उसके शब्द मुंह से बाहर ही नहीं निकलते हैं। सूर्यकांत के सामने वह दही और खांची रखता है। सूर्यकांत उसकी जेब में कुछ डालना चाहता है, किंतु शरीर के छू जाने मात्र से उसकी कंपकंपी बढ़ जाती है। वह फिर उलटे पैर झूंसी की ओर भाग जाता है।

और अंत में सूर्यकांत का शब्द-सेतु टूट गया। उसके भीतर का आवेग सात्विक (अभिनय) क्रियाओं द्वारा अधिक व्यक्त होता था। वह दही समझता, किंतु उसे दही कहते हैं, भूल चुका था। वह शब्द बोलता, लेकिन उसका दूसरों के लिए कोई अर्थ नहीं होता। वह हमेशा किसी आंतरिक संगीत की धुन में तन्मय रहता। वही धुन उसे ऐसी 'हृदय की मुक्तावस्था' पर पहुंचा चुकी थी, जहां किसी शब्द के अर्थ की तलाश में मनुष्य के भीतर जाकर, समझने की जरूरत होती है।

सूर्यकांत मनुष्य-जाति का महाव्यंग्य है। वह अपने ही व्यक्तित्व के एक बड़े भाग को अतीत बना देता है।

सूर्यकांत शब्दातीत है।

—जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

## कोई कली झरने न पाये

छोटी उमर से इसलिए
मैं सिर्फ एकाकी रहा
इस अनियंत्रित भीड़ में चलना नहीं आया मुझे
वैसे यहां पर दो तरह की
जिंदगी आसान है
लेकिन बताये कौन
किसके पास में ईमान है
कुछ लोग ऐसे हैं यहां
करवट बदलते ही नहीं
पर रास सूरज की तरह
ढलना नहीं आया मुझे
यदि बात धरती की करूं
तो रूठता आकाश है
अपने पराये के लिए
डिगने लगा विश्वास है
थी पास जिनके रोशनी
वे चल दिये अपने नगर
अब कह रहे हैं दीप-सा
जलना नहीं आया मुझे
मैं आग कितनी पी गया
लेकिन नहीं होती जलन
वह आदमी क्या? रोज
बदले बात और अपना चलन
वे व्यर्थ हैं हैरान मेरी
ताजगी को देखकर—
क्यों देह पर चंदन
अभी मलना मुझे नहीं आया

—राम अधीर—

—ब्राह्मणपारा, रायपुर (म. प्र.)

## वह अजनबी भाई

बात १९६६ की है। पिताजी के दुर्घटना-ग्रस्त होने के कारण उन्हें देखने अकेले श्रीगंगानगर से दिल्ली जा रही थी। सारी रात का सफर था। गोद में एक वर्षीया मिन्नी थी। आधी रात को बच्ची ने ऐसा रोना शुरू किया कि उसे बहलाना कठिन हो गया। इतने में एक नवयुवक मेरी ओर बढ़ा और मिन्नी को लेने के लिए बाहें फैला दीं और बोला, "बहनजी, थोड़ी देर इसे मुझे दे दीजिए। स्टेशन आ रहा है, मैं इसे प्लेटफार्म पर घुमा लाऊंगा।"

न चाहते हुए भी मैंने रोती हुई मिन्नी को उसे दे दिया। उसके बहलाने पर बालिका चुप भी हो गयी।

उसने बातों-ही-बातों में बताया, "बहनजी, मेरी मां को गुजरे बारह वर्ष हो चुके हैं। हम तीन बहन-भाई हैं। हमारी गरीबी के कारण बड़ी बहन हमारे पास कभी नहीं आतीं। मुझे आपको देखकर ऐसा लगता है, जैसे मैं अपनी बहन से मिल रहा हूं।" मैं फिर भी संदेह की नजरों से उसे देख रही थी।

सुबह सात बजे गाड़ी दिल्ली जंक्शन पर रुकी। मैंने डरते-डरते युवक से कहा, "एक स्कूटर कर दो, मुझे लोधी कॉलोनी जाना है।"

वह मेरी अटैची स्वयं उठाये चल दिया और चलता ही गया। मुझे काटो तो खून नहीं। मैंने साहस करके पूछा, "कहां चले जा रहे हो?"

उसने मुसकराकर सामने इशारा किया, "वहां, सामने फव्वारा बस स्टैंड पर। आपका स्कूटर पर अकेले इतनी दूर जाना ठीक नहीं।"

फिर उसने सभी यात्रियों के सम्मुख मेरे पांव छुए और कहा, "बहनजी, नमस्ते।"

मैं स्तंभित हो उसे देखने लगी कि कंडक्टर ने घंटी बजा दी। अकस्मात मेरे हाथ उस भाई को आशीर्वाद देने को उठे। मैंने उसकी पीठ पर हाथ फेरा और उसे धन्यवाद दिया। हम दोनों के नेत्र सजल थे।

—चंद्रकांता कक्कड़

## भ्रम से पैदा रोग

सन १९३० में मैं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (जिला परिषद) मेरठ का सदस्य था। जिला परिषद के इंजीनियर मेरे गांव के निकट के रहनेवाले थे। उनके चाचा बड़े सफल वैद्य थे। उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। बीमारी बहुत बढ़ गयी थी, हर समय खाट पर लेटे रहते थे।

महीने में प्रायः तीन-चार बार मैं उनके घर जाया करता था और इंजीनियर साहब से बातें करने के बाद घंटे, आध घंटे इनके चाचा के पास भी जरूर बैठता था। वे मुझसे स्नेह करते थे।

लोगों ने मुझे कई बार मना किया कि 'वैद्यजी के पास न बैठा करो। कुष्ठ रोग एक छूत की बीमारी है। कहीं तुमको न लग जाये।' मगर मैंने उनकी नसीहत की कोई परवाह न की।

कोई एक वर्ष बाद एक दिन अचानक मेरी नजर अपने नाखूनों पर पड़ी तो मैंने देखा कि मेरे नाखूनों का रंग बिलकुल वैसा ही हो गया था जैसा कि कुष्ठ रोग ग्रसित इंजीनियर साहब के चाचा के नाखूनों का था। मैं घबरा गया।

अगले दिन सुबह मैं मेरठ पहुंचा। वहां के बड़े अस्पताल में नाखून दिखाये और कहा कि मुझे कुष्ठ रोग होने का संदेह है। डॉक्टरों ने मुझे बहुत गौर से देखा और कहा, "यह खून की खराबी से हुआ है इसे कुष्ठ रोग भी कह सकते हैं, किंतु घबराने की कोई बात नहीं है।"

एक अन्य प्रसिद्ध डॉक्टर को भी दिखाया। उन्होंने कहा, "अपने हाथ साबुन से खूब मलो।" मैंने कहा, यह मैं कई बार कर चुका हूं लेकिन नाखूनों की रंगत में कोई फर्क नहीं हुआ है।"

उन्होंने बड़ी देर तक मेरे शरीर का मुआयना किया और बोले, "नुस्खा लिखता हूं, आठ दिन दवा पीकर देखो तब मुझसे फिर मिलना। फर्क जरूर पड़ेगा।"

मेरी भूख बिलकुल बंद हो गयी थी। दिनभर पड़ा रोग के विषय में सोचता रहता था।

जब तीन-चार दिन इसी तरह से गुजर गये तब मेरे भाई ने मुझसे कहा, "साबुन से रंग नहीं छूटा तो तुम चाकू से खुरचकर देखो।" वह चाकू ले आया। मैंने नाखून खुरचना शुरू किया। यह देखकर मैं हैरान हो गया कि नाखून पहले जैसे साफ हो गये। मुझे नया जीवन मिला।

अब मैं इस बात पर गौर करने लगा कि नाखून लाल कैसे हुए? कोई एक महीने से मेरे मसूढ़ों व दांतों में दर्द रहा करता था। मैं दो सप्ताह से 'पोटाशियम परमैंगनेट' (कीड़े मारने की एक दवा) पानी में डालकर कुल्ले कर रहा था। इसी दवा के लाल पानी से नाखूनों पर रंग चढ़ता ही गया और जब रंग खूब गहरा हो गया तब मेरी नजर नाखूनों पर पड़ी और मुझे कुष्ठ रोग होने का विश्वास हो गया।

—शिवनाथ सिंह शाण्डिल्य

## अविस्मरणीय

# राणकपुर के देवालय

● यशपाल जैन

राजस्थान अपने शौर्य के लिए विख्यात है, लेकिन शिल्प और स्थापत्य की दृष्टि से भी वह इतना समृद्ध है, इसकी अनुभूति पहली बार हुई। राणकपुर के देवालयों को देखा तो मुग्ध रह गये। भारतीय-वास्तुविद्या के ऐसे नमूने पहले कभी नहीं देखे थे।

विक्रम की पंद्रहवीं शती में एक श्रेष्ठी हुए थे धरणाशाह, जो राणकपुर के निकट नांदियाग्राम में रहते थे, बाद में वे मालगढ़ जा बसे। संवत १४४६ में अपने समकालीन आचार्य सोम सुंदर सूरि के संपर्क में आने पर उनके जीवन की दिशा बदल गयी और उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। अपनी कुशाग्र बुद्धि और कर्मठता से वे मेवाड़ के राणा कुंभा के मंत्री बने।

इस श्रेष्ठिराज धरणाशाह के हृदय में भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) का एक भव्य मंदिर बनवाने की कल्पना उदित हुई ! उन्होंने बहुत-से शिल्पकारों से मंदिर के नक्शे बनवाये, लेकिन कोई भी शिल्पी उनकी कल्पना के मंदिर का नक्शा नहीं बना सका। अंततोगत्वा मुंडारा गांव के शिल्पी देपा से उन्होंने अनुरोध किया। देपा ने जो नक्शा बनाया, वह ठीक वैसा ही था जिसका चित्र धरणाशाह के मस्तिष्क में अंकित था।

धरणाशाह ने राणा कुंभा से मंदिर के लिए जमीन मांगी। राणा ने जमीन दे दी और मंदिर के साथ ही वहां एक नगर बसाने की भी सलाह दी। माद्री पर्वत की तलहटी में बसे पुरातन मादगी गांव की भूमि चुनी गयी और मंदिर के साथ ही एक नगर भी बसाया गया, जिसका नामकरण राणा के नाम पर 'राणकपुर' किया गया।

## ६५ वर्ष में मंदिर बना

मंदिर का शिलान्यास सन १३६७ में हुआ और उसकी प्रतिष्ठा सन १४३२ में हुई। इस प्रकार उसके पूर्ण होने में ६५ वर्ष लगे। इसका उल्लेख मंदिर के मुख्य शिलालेख में मिलता है। प्रतिष्ठा आचार्य सोम सुंदर सूरि के द्वारा हुई।

मंदिर के नीचे एक तलघर है। उसी के बीचोबीच आदिनाथ का मुख्य मंदिर है। उसके चार द्वार हैं। मंदिर के गर्भगृह में चारों दिशाओं में भगवान आदिनाथ की ७२ इंच ऊंची संगमरमर की चार भव्य प्रतिमाएं हैं। मंदिर की दूसरी और तीसरी मंजिलों के गर्भगृहों में इसी प्रकार चार-चार जिन-मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। इसीलिए मंदिर को 'चौमुखा' या 'चतुर्मुख' कहा जाता है।

तलघर के चार छोरों के निकट चार छोटे-छोटे मंदिर हैं, जिनके चारों ओर १४४४ स्तंभों पर आधारित २४ मेघनाद-मंडप हैं। इन मंडपों में से ४ केंद्रीय मंडप तिमंजिले हैं और एक-दूसरे के ऊपर इस प्रकार बने हैं कि उनमें खूब रोशनी आती है और बारीक-से-बारीक कारीगरी भी देखी जा सकती है। कुछ रंगमंडप भी हैं।

मेघनाद-मंडपों की कला तो अद्वितीय है। उनके चालीस फुट ऊंचे स्तंभों को अलंकृत करनेवाली कला, मध्य में मणि-मुक्ताओं की मेखलाओं के सदृश तोरण, गुंबजों में सुशोभित देवियों की

आदिनाथ-मंदिर की एक दृश्य-झांकी
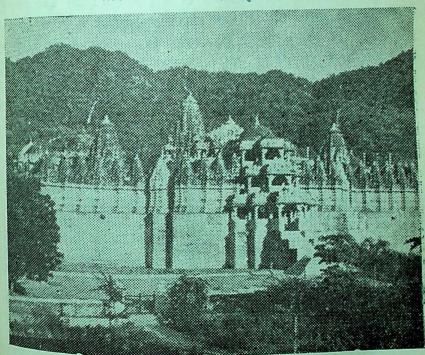
सजीव प्रतिमाएं और कोरणी से युक्त लोलक दर्शकों को चकित कर देते हैं।

२४ मेघनाद-मंडपों में ४ बड़े मंडपों की कला अद्‌भुत है, शेष छोटे और सादे हैं। बड़े मंडपों के अलंकरण निराले हैं। पश्चिमी मंडप में प्रवेश करने पर बायीं ओर के स्तंभ पर श्रेष्ठि धरणाशाह और वास्तु-शास्त्रज्ञ देपा की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। दूसरे मंडप में संगीत के विविध वाद्य दिखाये गये हैं। उत्तर में माता मरूदेवी हाथी पर आसीन हैं। फिर भगवान महावीर की माता के स्वप्न, महावीर का जन्म, पालने में उनका लेटना, अनंतर पूर्ण रूप से पद्मासन पर विराजमान। इनके अतिरिक्त महावीर की एक मूर्ति है, जिस पर पक्के मोती की पालिश है। तीसरे मंडप की झालर जहां देखने योग्य है, वहां एक आकृति ऐसी अंकित की गयी है, जिसके अंगों के मोड़ को देखकर भ्रम होता है, मानो रबड़ का कोई पुतला है।

पूर्व में कीचक की मूर्ति है, जि... एक सिर और पांच शरीर हैं। यहां ... फणींद्र की कलापूर्ण मूर्ति है। एक ... पर सहस्रफणा पार्श्वनाथ तथा दूसरे ... सहस्रकूट की कला अत्यंत प्रभावो-दक है। फणींद्र के पट्ट पर अनेक ना-नागिनें हैं, जिनकी पूंछें आपस में ... प्रकार लिपटी हैं कि पता नहीं चलता कि उनका अंत कहां होता है। पास ... आदिनाथ की मूर्ति है।

**मुक्ति की मान्यता**

तीन मंडपों के पूरा होते-होते धरणाशाह की मृत्यु हो गयी। अतः चौथे मंडप ... उनके भाई रत्नाशाह ने पूरा कराया। उसमें नंदीश्वर द्वीप का दृश्य है। पुराण ... मान्यता है कि वहां जाने पर मुक्ति ... जाती है। उसी के साथ दक्षिण में काम- दहन का दृश्य है। सबसे बारीक ...

सूर्यनारायण-मंदिर

पार्श्वनाथ के मंदिर में इंद्र की मूर्ति

इस चौथे मंडप में है।
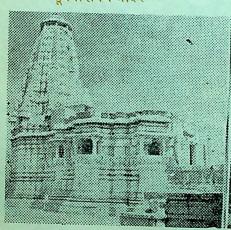
मंदिर में स्तंभों की संख्या और शोभा को देखकर दर्शक का मन चकित हो उठता है। प्रत्येक स्तंभ पर नाना प्रकार की सजावट है। विस्मय की बात यह है कि एक स्तंभ की कला दूसरे स्तंभ की कला से भिन्न है। फिर इन स्तंभों का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि प्रभु के दर्शन में कोई भी स्तंभ बाधा उपस्थित नहीं करता। कहीं भी खड़े होकर भगवान के दर्शन कर सकते हैं।

मंदिर में ८४ जिनालय हैं। जान पड़ता है मानो वे चौरासी लाख योनियों में भटकती संसारी आत्मा को भवसागर से पार होकर मुक्ति की प्रेरणा देते हैं।

मंदिर के उत्तर की ओर रायण वृक्ष तथा भगवान ऋषभदेव के चरण-चिह्न हैं, जो तीर्थराज शत्रुंजय का स्मरण दिलाते हैं। कहते हैं, यह वृक्ष ६०० वर्ष पुराना है। यह इस बात की भी याद दिलाता है कि शत्रुंजय में रायण वृक्ष के नीचे ही भगवान आदिनाथ को मुक्ति मिली थी।

यहां पर पालीताना के मंदिर का नक्शा, भगवान आदिनाथ की मूर्ति तथा भगवान महावीर के केवलज्ञान के उपरांत समवशरण की रचना के दृश्य अंकित हैं।

मंदिर के अंदर तो कला है ही, बाह्य भाग भी सुंदर कला से अलंकृत हैं। दूर से देखने पर मालूम होता है कि कलाविदों ने उन्हें सर्वांग सुंदर बनाने का प्रयत्न किया है।

**स्तंभ पर अकबर की मूर्ति**

मंदिर का क्षेत्रफल ४८,००० वर्गफुट है। उसकी नींव ३५ फुट गहरी है। भूकंप से रक्षा के लिए उसमें ७ धातुएं डाली गयीं और केसर, घी और चूने से मंदिर

पार्श्वनाथ-मंदिर का एक कलापूर्ण मंडप

आदिनाथ-मंदिर का एक कलापूर्ण स्तंभ
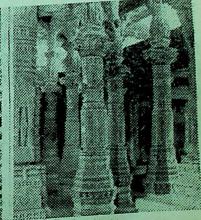
की चिनाई की गयी। १५०० कारीगर और २७०० मजदूरों ने काम किया। १५ करोड़ रुपये का खर्च हुआ। उसमें ८४ भोयरा (तलघर) थे, जिनमें से ७ मिले। इन तलघरों का निर्माण इसलिए किया गया था कि यदि मंदिर पर कोई आक्रमण करे तो उनमें मूर्तियों को संरक्षित किया जा सके। १०८ तोरण बनाये गये थे, जिनमें से १०५ आक्रांताओं ने तोड़ दिये। देवालयों के बनाने के लिए सोनाला के पर्वतों से, जो १६–१७ मील की दूरी पर है, ऊंटों, बैलों और भैंसों पर लाल पत्थर लाये गये। एक स्तंभ पर अकबर की मूर्ति है। उसने १६११ में आदेश दिया था कि इस मंदिर पर आगे कोई आक्रमण न करे। यह लेख वहां आज भी उपलब्ध है। किसी समय वहां तीन दरगाहें थीं, जिन्हें हटा दिया गया।

मंदिर के ऊपर दो घंटियां हैं, जिनकी आवाज दो मील तक सुनायी देती है। उनका वजन २६० किलो है। कहा जाता है, उनमें एक नर है, एक मादा।

जनश्रुति है कि इन मंदिरों का निर्माण देवमाया से हुआ है। मनुष्य की तो बिसात ही क्या है जो ऐसे विशाल देवालयों का निर्माण कर सके!

मुख्य मंदिर की मूर्ति और उसकी बैठक को मुसलमान आक्रमणकारियों ने खंडित कर दिया था, जिनका निर्माण संगमरमर से बाद में किया गया। शेष मंदिर दूसरे प्रकार के पत्थर के हैं। शिखरें ईंटों से बनायी गयी हैं।

पहले मंडप के पीछे १० [illegible] की मूर्तियां हैं। प्रवेशद्वार के सामने [illegible] वृक्ष की आकृति है, जो ॐ के रूप [illegible] मान्यता है कि ॐ के अंदर ही सारी [illegible] का विस्तार समाया हुआ है।

मंदिर को ११ मंजिला बनाने की [illegible] थी, लेकिन ५ मंजिलें ही पूरी हो [illegible] तब निर्माताओं ने ऊपर छज्जे बनवा [illegible] जिससे शिखर की ओर देखने पर [illegible] मंजिलें मालूम होती हैं।

आदिनाथ के मंदिर के पास [illegible] कलापूर्ण मंदिर पार्श्वनाथ का है, [illegible] भगवान पार्श्वनाथ की संगमूसा की [illegible] है। उसका बाहरी भाग बड़ी सुंदर [illegible] से सुसज्जित है। इसका निर्माण [illegible] मंदिर से बचे सामान से कारीगरों [illegible] अपने अवकाश के समय में किया था।

तीसरा मंदिर नेमिनाथ का है, [illegible] दीवारों पर बढ़िया कारीगरी है।

थोड़ी दूर पर चौथा मंदिर [illegible] नारायण का है, जो अपनी सादी [illegible] पर सुरुचिपूर्णता के लिए विख्यात है।

मंदिरों को देखकर हमारी [illegible] उस युग में पहुंच गयी, जबकि मनुष्य [illegible] उंगलियों, छेनियों और हथौड़ियों में [illegible] भरा था। आज सब प्रकार के [illegible] उपलब्ध होते हुए भी क्या कोई ऐसी [illegible] कृतियों का निर्माण कर सकता है?

—सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस,
नयी दिल्ली-११०००१

# भुलक्कड़-हजम चूरण

• श्याम गोइन्का

क्या आपको भूलना आता है ? आपको आता हो या न आता हो, मुझे भूलना आता है। बल्कि यों कहिए कि यही मेरी खासियत है, यही मेरी ताकत है, यही मेरी कूवत है ! जो मजा भूलने में है, वह याद रखने में नहीं। यदि इस फार्मूले में आपको एक प्रतिशत भी शंका की गुंजाइश हो तो खुद आजमा कर देख लीजिए। आप बिना शक मान जाएंगे कि भूलना एक जबर-दस्त कला है और यह कला जिसे हासिल हो जाती है उसे कलाकार कहा जा सकता है। कलाकार कई होते हैं, पर मैं इस कला का कीड़ा हूं। बस, फर्क इतना है कि कीड़ा बड़ी मंथर गति से चलता है, मैं इस विस्मयकारी विस्मरण पथ पर अत्यंत द्रुत गति से बढ़ता हूं—ओलंपिक धावक की तरह।

स्थिति यह है कि मेरी पत्नी मुझे पौ-फटते डांटना शुरू करती है, दफ्तर के लिए छूट भागने तक अनवरत फट-कारती रहती है और मैं हूं कि घर की चारदीवारी के बाहर कदम रखते ही आराम से सब कुछ भूल जाता हूं। बाजार से गुजरते वक्त बनिया, बजाज, मोदी, कोयलेवाला, दूधवाला सब बारी-बारी से मेरी टोपी उछालते हैं, मैं उछलवाता जाता हूं और भूलता जाता हूं। दफ्तर में बॉस रंग दिखाते हैं, अकसर लाल-पीले होते हैं, गरमागरम झिड़कियां पिलाते हैं। मैं फूंक-फूंक कर, चुस्कियां ले-लेकर पी लेता हूं, पर केबिन की लक्ष्मण-रेखा लांघते ही सारी स्मृतियों का सीता-हरण हो जाता है। लफ्ज तो लफ्ज कामा, फुलस्टाप तक याद नहीं रहता, झिड़कने का अंदाज तक याद नहीं रहता।

भूलने की महारत निरंतर अभ्यास के बाद हासिल की जाती है। मैंने यह

रियाज बचपन से ही किया है। सबक सीखता था, भुला देता था, फिर सीखता था, फिर भुला देता था। करते-करते अभ्यास इतना मजबूत और पक्का हो गया कि जब चाहा पढ़ा, किताब के सफे बंद किये और भूल गया। सब कुछ गुल, सब कुछ सफा। बड़ी मेहनत और मशक्कत से यह कला हासिल की है मैंने! बेशक, अपनी जिंदगी का काफी कीमती वक्त आप याद रख-रखकर बरबाद कर

चुके हैं, लेकिन अभी भी देर आयद, दुरुस्त आयद। अंगरेज लोग कहा करते थे कि बिलकुल न करने से तो देर सबेर करना बेहतर है। आपने भले देर कर दी, पर अभी कुछ नहीं बिगड़ा। अपने इष्टदेव का नाम लेकर अभी भी तुरंत इस अभ्यास का श्रीगणेश कर दीजिए।

मुझे तो आश्चर्य होता है कि बिना भुलाये आप जी कैसे रहे हैं? क्या याद रख-रख कर आपका जीना मुहाल नहीं हुआ? अब आप ही बताइए, बीबी के बेशुमार डांट-फटकार, कर्जदारों की वज़... दार धमकियां और मालिकों की ... बंद झिड़कियां याद रख-रखकर क्या को... कोई साधारण आदमी जिंदा रह सकता है? जिंदा रहने का एक ही राज है— भूलते जाओ। भूलना ही लंबी उमर का इकलौता गुर है, जिसका मूल श्रेय ... सारे गुरु घंटालों को है, जो बचपन ... ही बच्चे के सर में इतना कुछ ठूंस-ठूंस कर भरने की कोशिश करते हैं कि ... बेचारे के पास भूलने के अलावा दूसरा कोई चारा ही नहीं। बच्चा ही आदमी का बाप होता है। बचपन के संस्कार ही बड़ी उमर में नये-नये संस्करणों की तरह बार-बार छपते रहते हैं।

एक बात बता दूं? यदि मुझे भूलने की महारत नहीं हासिल हुई होती तो मैं आज तक अपनी बीवी के लिए दस हजार साड़ियां, एक हजार कंगन, पांच सौ चं... हार, दो सौ कर्णफूल, रंग-बिरंगी लिपस्टिक और बेशुमार सौंदर्य-प्रसाधन भेंट चढ़ा दिये होते। बताइए, क्या मेरा बाप वसी-यत में कोई सोने की खान मेरे नाम लिख गया था या कोई मिनिस्टर की कुर्सी बख्श गया था, जो मैं ये सारी बेहिसाब फरमाइशें पूरता रहता?

आज तक जितनी चीजें और नाचीजें दोस्तों और साथियों से उधार ली हैं, उन को अगर याद करूं या उनकी फेहरिस्त बनाऊं तो सारी जिंदगी उस याददाश्त

और फेहरिस्तवाजी के चक्कर में ही फुर्र हो जाएगी । फिर उन उधारित वस्तुओं का सदुपयोग कब करूंगा ? तो बस, अपने राम तो इस उधेड़-बुन की रामायण से दूर ही रहते हैं । एक भूल-सौ नियामत । हजार भूल-लाख नियामत ! भूलते जाओ तो बस जिंदगी में नियामत ही नियामत है । जितना याद रखो, बस कयामत ही कयामत है । इस कयामत को जितना टाल सको टालो, यही खुशहाली की चाभी है । इस चाभी की दूसरी कोई 'डुप्लीकेट' नहीं ।

मेरी बीवी को जब मुझे कोई खास बात खास रूप से याद रखवानी होती है तो वह मेरे रूमाल में गांठ बांध देती है । याददाश्ती का यह दकियानूसी इलाज है । पर मैं भी कच्चा खिलाड़ी नहीं । गांठें देखना याद ही नहीं रखता । कभी भूल से देख भी लेता हूं तो गांठ की बात ही भुला देता हूं । और मैं कर भी क्या सकता हूं ? एक गांठ पच्चीस-पचास रुपये से तो कम की होती नहीं ।

भूलने का आलम ही और है । भूलने वाला शख्स सदा अलमस्ती और बेखुदी में खोया रहता है । वैसी अलमस्ती और बेखुदी तो कबीर को भी नसीब नहीं हुई । जिंदगी में कितने लोग, कितनी बार छोटे-मोटे अहसान हम पर चाहे अनचाहे थोपते ही रहते हैं । अब उन सबको याद रख-रखकर अहसानों की गठरियों का बोझ अपने सर पर हम कहां और क्योंकर ढोते रहें ? क्या आदमी गधा है जो जिंदगी

भर बोझ ही ढोता फिरे ? बंगलादेशी अंदाज में अहसान को दिलो-दिमाग से शांति-कबूतरों की तरह फुर्र से उड़ा देने में ही भला है । देखिए, फिर दिल और दिमाग कितने हलके-हलके नजर आते हैं, चुटकलों की तरह हलके-फुलके ।

भूलना, वह लक्कड़-हजम चूरण है जो दुत्कार, फटकार, बदनामी, बेइज्जती, झिड़की, धमकी-जैसे गरिष्ठ से गरिष्ठ व्यंजनों की बेहिसाब ठूंस को भी साबूदाने की तरह गलाता जाता है, पचाता जाता है । मन पर मलाल की धुंधली से धुंधली रेखा भी नहीं जमने देता । पेट पर दर्द का छोटे से छोटा बल भी नहीं पड़ने देता ।

एक दिन मेरे पड़ोसी मेरी इस अल-मस्त फितरत से कुढ़कर मुझसे तुम-तुम हम-हम करने लगे । पिछले दो-चार वर्षों में मैंने सिर्फ कोई पचास-साठ बार कभी किताब या छाता या कैंची या टाई उनसे मांगी होगी । वे सब बड़ी बेशरमी से एक-

लघु-कथा

# गुलाम

अपने पुरखों की तरह वह भी एक बादशाह के यहां गुलाम था। पुरखों की तरह वह भी राजसेवा को धर्म मानता, भगवान पर विश्वास करता और नियमपूर्वक भगवान की पूजा करता।

एक दिन भगवान ने उसे दर्शन दिये और वरदान मांगने को कहा। आश्चर्यचकित गुलाम ने कहा, "भगवन ! मालिक को लंबी आयु दीजिए। उनके बच्चे, मेरे बच्चों और मेरे बच्चों के बच्चों के बच्चों का पेट पालते रहें।"

"और अपने लिए . . . ?"

गुलाम ने कुछ सोचते हुए कहा, "मैं मालिक की सेवा करता रहूं। मालिक क्रोध में मुझे बुरा-भला भी कहें, तो मेरे मन में बुरा विचार न आये।"

भगवान उसकी बात सुनकर दुःखी हुए। बोले, "यह धर्म नहीं है। तुमने अकारण धर्म और भाग्य के नाम पर अपने को गुलाम बना रखा है। उठो. . .बेड़ियां तोड़ फेंको!"

गुलाम को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वह घबराकर पूजा-घर के बाहर निकल भागा।

दूसरे दिन पूजा-घर खाली पाकर वह भगवान की मूर्ति के सामने जा बैठा। बोला, "भगवन, कल तुम्हारा वेश धर कर कोई शैतान यहां घुस आया था। बुरी आत्माओं से मेरी रक्षा करते रहना।"

**—सीतेश आलोक**

एक कर गिनवाने लगे। राम जाने वे इतनी पुरानी-पुरानी और छोटी-छोटी बेतुकी बातें याद कैसे रखते हैं? स्वयंवर-सभा में परशुराम के धुआंधार भाषण की तरह वे झाड़ते रहे और मैं लक्ष्मण की मंद-मंद मुसकान की तरह बिखरता रहा। वे खूब झड़े, मैं खूब बिखरा। वे थककर चकनाचूर हो गये, मेरा कुछ नहीं बिगड़ा। वे तंग आकर मेरी मां-बहन को याद करने पर उतर आये, मैं भूलने पर ही उतारू रहा। वे कांटों की तरह गड़ते रहे, मैं सुनता रहा और भूलता रहा। इस भूल-भुलैया की बदौलत ही उस गरमागरम माहौल से मैं भक्त प्रहलाद की तरह बेदाग बच निकला। खरोंच तक नहीं आयी। सुना है, उस दुर्घटना से मेरे पड़ोसी महाशय दस दिन तक चादर की तरह बिछे रहे। याद रखने के लाइलाज रोग ने आखिर उन्हें खाट पकड़वाकर ही चैन लिया। यदि बचपन से ही मेरी तरह भूलने का अभ्यास कर लिया होता, तो क्यों यह आफत मोल लेते?

अब मुझे ही देखिए। उस दिन जो कुछ ऊंची-नीची सुननी पड़ी, सब पी गया, प्यासे की तरह। और इस भूलने की लाजवाब प्रैक्टिस की असीम कृपा से आज भी पड़ोसीजी के पास जब जरूरत समझता हूं, पहुंच जाता हूं। जरूरतमंद आदमी का भुलक्कड़ होना अनिवार्य है।

**—५, जोली मेकर बंगला, कफ परेड, बंबई-४००००५**

# प्रकाशक जिसे फांसी पर चढ़ाया गया था

● अलका उपाध्याय

स्वाधीनता-प्रेम के लिए बहुत से रण-बांकुरों ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी। सिर पर कफन बांधकर १८५७ की जंग लड़ी और शहादत पायी। ऐसे वीरों की पंक्ति में एक व्यक्ति हुआ है—कुतुबशाह। उसके हाथ में तलवार नहीं थी, लेकिन वह सक्रिय था। उसने विद्रोहियों के घोषणापत्रों के प्रकाशनों और मुद्रण में भाग लिया, बदले में अंगरेजी सरकार से फांसी की सजा पायी।

**कालेज की लाइब्रेरी का नीलाम**

कुतुबशाह पेशे से प्रकाशक-मुद्रक नहीं था। वह एक विद्वान व्यक्ति था और पढ़ने-पढ़ाने से उसका ताल्लुक था। 'लाहौर क्रॉनिकल' के १० मार्च, १८५९ के अंक में प्रकाशित एक टिप्पणी से यह पता चलता है कि कुतुबशाह बरेली कालेज, बरेली में उर्दू का अध्यापक था। उस जमाने में ४० से ५० रुपये माहवार की तनख्वाह थी जो कि खासी बड़ी रकम थी। विद्रोह शुरू होने पर वह नौकरी छोड़ खान बहादुर खान की सेवा में पहुंच गया। वहां उसे 'आम प्रकाशक' मुकर्रर किया गया और उसकी शुरूआत उसने कालेज-लाइब्रेरी का नीलाम करके की। खान बहादुर खान के प्राय: सभी सामान्य आदेश मुख्य रूप से कुतुबशाह के नाम ही होते थे और अंगरेजों का नाश करने के घोषणा-पत्र पर भी उसका नाम प्रकाशित हुआ था। खान बहादुर खान की गिरफ्तारी तक कुतुबशाह अपना काम बखूबी करता रहा और बाद में मेरठ के विद्रोहियों में जा मिला।

१७ मार्च, १८५९ के 'दि फ्रेंड ऑव इंडिया' ने उस पर एक टिप्पणी देते हुए लिखा—"खान के पतन के बाद कुतुब मेरठ पहुंच गया, जहां वह नये विद्रोहियों के साथ हो गया। लेकिन खून सिर चढ़कर बोलता है, उसे गिरफ्तार किया गया और अब मुकदमे का इंतजार कर रहा है।"

१७ मार्च तक जिस मुकदमे का इंतजार हो रहा था, उसके फैसले पर अंकित तारीख है २५ मार्च, १८५९। जाहिर है न्याय का नाटक ही खेला गया होगा। मजे की बात यह कि बरेली डिवीजन के जिस स्पेशल कमिश्नर ने उसके बारे में फैसला दिया वह १८५७ में एक सैनिक था और कुतुबशाह विद्रोहियों की एक महत्त्वपूर्ण हस्ती।

कुतुबशाह को जिस घोषणा-पत्र के प्रकाशन-मुद्रण पर सजा-ए-मौत दी गयी वह शहजादा फीरोजशाह ने जारी किया था। उस घोषणा-पत्र की मूल प्रति तो अब उपलव्ध नहीं है, किंतु १७ फरवरी, १८५८ को उसका एक अनुवाद किया गया, जो अब भी तत्कालीन अंगरेजी फाइलों में राष्ट्रीय अभिलेखागार में संग्रहीत है। इस घोषणा-पत्र के प्रथम पृष्ठ के कुछ अंश का हिंदी अनुवाद इस प्रकार है:—

"शहजादा मिर्जा मुहम्मद फीरोज-शाह का घोषणा-पत्र, जो रजब, सन १२७४ की ३ तारीख तदनुसार १७ फरवरी, १८५८ को जारी किया गया।

"हिंदुस्तान के रहनेवाले सभी हिंदुओं और मुसलमानों को यह मालूम हो कि एक मुल्क पर राज करने की ताकत खुदा की एक बहुत बड़ी नियामत है और यह नियामत किसी अत्याचारी और क्रूर इनसान को नहीं दी जा सकती।

"पिछले कुछ सालों में अंगरेजों ने हिंदुस्तान के बाशिंदों को दबाना और तकलीफें देना शुरू किया है और बहुत-सी जगहों पर हिंदू और इस्लाम दोनों मजहबों को हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करने की बात चली है, जिससे वे अपना मजहब छोड़कर ईसाई मजहब कबूल कर लें।

"खुदा ने इस सबको नजर में रखते हुए हिंदुस्तान के बाशिंदों के दिल बदल डाले। अब हरेक आदमी अंगरेजों को मिटा देने पर तुला हुआ है और एक हद तक उन्होंने यह काम पूरा कर दिया है।

"सभी हिंदू और मुसलमानों को [illegible] भी मालूम होना चाहिए कि अंगरेज उनके सबसे बड़े दुश्मन हैं। अगर वे एक बार फिर कभी इस मुल्क में ताकतवर हो गये, खुदा न करे कि ऐसा हो, तो वे सभी मजहबों, जायदाद को खत्म कर देंगे और हर आदमी की जान के ग्राहक हो जाएंगे।

"मुल्क के सुप्रीमकोर्ट और पार्लियामेंट के विचार और इरादे संक्षेप में दिये जा रहे हैं, जिससे कि सभी लोगों को आगाह किया जा सके कि वे लापरवाही की आदत से छुटकारा पायें . . ."

घोषणा-पत्र के अंत में जो प्रिंट-लाइन दी गयी थी, उसमें कुतुबशाह का उल्लेख है, जिसके आधार पर अंगरेजों ने इस मुद्रक और प्रकाशक को फांसी की सजा दी। प्रिंटलाइन इस प्रकार है: "बहादुरी प्रैस बरेली में कटिहार के शासक नवाब के हुक्म से मौलवी कुतुबशाह की निगरानी में दारोगा शेख नियाजअली द्वारा मुद्रित।"

शहजादा फीरोजशाह के इस घोषणा-पत्र के प्रकाशन के जुर्म में चले मुकदमे के फैसले के हाशिये पर ही कुतुबशाह पर लगाये गये आरोप हैं। पहला आरोप है कि वह विद्रोहियों का नेता और उन्हें भड़कानेवाला है। दूसरा आरोप है कि वह कानून की निगाह में अंगरेजों के कातिलों का मददगार रहा। इसके लिए इसको

Proclamation issued by Prince Mirza Mahomed Feroze Shah, on the 3rd of Rajab 1274 corresponding with 17th February 1858.

Be it known to all the Hindoos and Mahomedan inhabitants of India, that to rule over a country is one of the greatest blessings from Heaven, and it is denied to a Tyrant or an Offender.

Within the last few years the British commenced to oppress the people in India under different pleas, and contrived to eradicate Hindooism and Mahomedanism, and to make all the people embrace Christianity.

The Almighty power observing this, diverted the hearts of the people to a different course, and now everyone has turned to annihilate the English and they have nearly done so

घोषणा-पत्र के कुछ अंश

ही गवाही काफी समझी गयी कि—"कुतुबशाह कोतवाली के सामने खड़ा था और तीन अंगरेजों की लाशें उसके आगे पड़ी थीं।" यह गवाही कुतुबशाह के मुकदमे में मित्रे नामक व्यक्ति ने दी थी। तीसरा आरोप था सरकारी संपत्ति की लूट। चौथा आरोप मुख्य रूप से यह था कि उसने "राजनीतिक अपराधियों को क्षमादान की शर्तों के तहत आत्म-समर्पण नहीं किया और बारहवीं घुड़-सवार सेना में राजद्रोह के उद्देश्य से एक जाली नाम से शामिल रहा।

कुतुबशाह पर आरोप तो चार लगाये गये, पर उनके सबूत नहीं जुटे। मुख्य अपराध यह रहा कि उसने विद्रोहियों के घोषणा-पत्र प्रकाशित किये। बरेली के स्पेशल कमिश्नर एच. वैनि-स्टार्ट ने इस मुकदमे का फैसला देते हुए लिखा कि कुतुबशाह को फांसी दी जाए—कैदी कुतुबशाह एक वहाबी है और जैसा कि हम सभी जानते हैं, इस मत के अनुयायी कितने गैर-समझौतावादी होते हैं।

वह बरेली कालेज में अध्यापक था और यह इस बात का सबूत है कि वह लिखाई-पढ़ाई का आदमी था। यह शपथ-पूर्वक कहा गया है कि ३१ मई, १८५७

को वह शहर में गया और झंडा उठाकर (जो कि ईसाइयों को मारने की निशानी है) यूरोपियनों को मारने का आदेश दिया। कालेज में उसने सरकारी स्कूल की संपत्ति नीलाम की।

जैसा कि रसीदों से जाहिर होता है वह खान बहादुर खान से १५० रु. महीना तनख्वाह लेता था। वह पीलीभीत नगर का अधीक्षक नियुक्त किया गया था, जैसा कि उसने अपने बयान में कहा है और गवाहों ने भी इसकी पुष्टि की है। उसने विद्रोहियों के घोषणा-पत्र मुद्रित और प्रकाशित किये जैसा कि दो कागजों पर 'कुतुबशाह' की मुहर होने से प्रमाणित होता है। मुलजिम ने मंजूर किया है कि यह उसी की छपाई है।

मुलजिम सरदार बहादुर नामक रिसालदार के साथ और संरक्षण को मेरठ पहुंचा था, जिसने उससे अपने सभी संबंधों को तोड़ लिया है और कहा है कि मुलजिम ने उसे गुमराह किया था। उसका विश्वास है कि मुलजिम को फांसी दी जानी चाहिए। मुलजिम ने अपने बचाव में एक लंबा बयान भी दिया है।

यह सच हो सकता है कि मुलजिम लड़ा न हो, पर यह साबित हो चुका है कि वह मुरादाबाद की तरफ बढ़ती फीरोजशाह की फौज में डिप्टी की हैसियत से था।

यह एक गंभीर बात है कि इस आलिम-फाजिल आदमी ने आग भड़कानेवाले घोषणा-पत्र जारी किये, जिन पर खान बहादुर खान की मुहर है और सरदार बहादुर ने (जो कि उसका साला कहा जाता है) इस बात की तसदीक की है कि मुलजिम एक 'पीरजादा' है और १२वीं घुड़सवार सेना में रह चुका है।

मैं पहले, दूसरे और तीसरे आरोपों को साबित समझता हूं और चौथा आरोप —'राजद्रोह के उद्देश्यों' शब्दों से खुद ही साबित है। और मैं कुतुबशाह वल्द बख्श उल्ला को फांसी देने की सिफारिश करता हूं।'

स्वतंत्रता-सेनानियों के क्रांतिकारी घोषणा-पत्र प्रकाशित करने के आरोप में कुतुबशाह को फांसी के तख्ते पर झूलना पड़ा। स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में वह शायद अकेला प्रकाशक था जिसे प्रकाशन-मुद्रण के लिए जिंदगी से हाथ धोने की सजा मिली।

—४०७, कल्पनानगर, पटेल मार्ग,
गाजियाबाद (उ. प्र.)

---

**एक वकील साहब ने गवाह को उखाड़ने के लिए उससे कहा—"तुमने कहा था, कि तुम अनपढ़ हो, पर तुमने मेरे सवालों के जो जवाब दिये हैं, उनसे तो ऐसा नहीं प्रतीत होता।"**

**गवाह—"जनाब, ऊटपटांग सवालों के सही-सही जवाब देने के लिए पढ़ा-लिखा होना जरूरी नहीं है।"**

# प्रोटीन आवश्यक क्यों

● डॉ. सीताराम तिवा[री]

शरीर की वृद्धि के लिए प्रोटीन का बड़ा महत्त्व है। शारीरिक विकास, बालकों की द्रुत-वृद्धि, आपरेशन के बाद स्वास्थ्य-लाभ, गर्भवती स्त्रियों, स्तनपान कराने-वाली माताओं आदि के लिए चिकित्सक सदैव अधिक प्रोटीनयुक्त पदार्थ, जैसे—दूध, अंडे, मांस आदि लेने पर जोर देते हैं।

स्रोत के आधार पर प्रोटीन को मुख्यतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) जंतु-प्रोटीन, जैसे—दूध, मांस, मछली, अंडे, झींगे आदि और (२) पादप प्रोटीन, जैसे—दालें, मेवे, मूंगफली, सोयाबीन, खली आदि। जंतु-प्रोटीन को शारीरिक विकास के लिए अधिक सामर्थ्यशील माना जाता है। शारीरिक विकास अथवा वृद्धि की क्रिया नये ऊतकों (टिशूज) के निर्माण से संपन्न होती है। बोलचाल की भाषा में इसे मांसपेशियों का निर्माण कहते हैं। शरीर में नये ऊतकों का निर्माण जटिल जैव-रासायनिक क्रियाओं के द्वारा तथा प्रोटीन-संश्लेषण के माध्यम से होता है। भोजन द्वारा ग्रहण की गयी प्रोटीन आहार-नली में विघटित होती है। विघटन का यह कार्य आहारनली में उपस्थित प्रकिण्व (एनजाइम्स) द्वारा, जिन्हें समग्र रूप से 'प्रोटिओलिटिक एनजाइम्स' कहा जाता है, होता है। इनके कारण प्रोटीन के [...]काय जटिल परमाणु छोटे परमाणुओं [में] विघटित हो जाते हैं, जिन्हें अमीनो-अ[म्ल] कहते हैं। प्रोटीन-संश्लेषण की क्रिया, जि[सके] द्वारा नये ऊतकों का निर्माण और प्र[...] प्राणी की वृद्धि होती है, अमीनो-अम्लों [के] आपसी संश्लेषण से प्रारंभ होती है। [...] प्रोटीन-विघटन क्रिया के विपरीत होती [है]।

विघटन

प्रोटीन ⇌ प्रोटीओसेज ⇌ पेप्टोन ⇌ पा[...]

पेप्टाइड्स ⇌ सिंपल पेप्टाइड्स ⇌ अमीनो-अम्ल

संश्लेषण

अभी तक २५ अमीनो-अम्लों [की] पहचान हो चुकी है और उन्हें पृथक [...] किया जा सका है। ये प्राकृतिक प्रोटी[न] के विघटन से प्राप्त होते हैं। वैज्ञानि[क] डब्लू. सी. रोज ने वर्षों तक जान[वरों] पर परीक्षण करने के पश्चात यह [...] किया कि सामान्य वृद्धि के लिए [कु]छ खास अमीनो-अम्लों की भोजन में [उप]स्थिति आवश्यक है, क्योंकि शरीर [में] इनका संश्लेषण आवश्यक मात्रा में [नहीं] हो पाता। इन आवश्यक अमीनो-अ[म्लों] की परिभाषा उन्होंने इस प्रकार की—

एक आवश्यक अमीनो-अम्ल वह है जिसका संश्लेषण प्राणी द्वारा, उपलब्ध सामग्री से, उतनी शीघ्रता से नहीं किया जाता जैसा उसकी सामान्य वृद्धि के लिए अपेक्षित है। अलग-अलग जाति के प्राणियों के लिए आवश्यक अमीनो-अम्लों की सूची अलग-अलग होती है।

मनुष्यों के लिए ८ अमीनो-अम्ल आवश्यक हैं, जिनके नाम हैं—लाइसीन, ट्रिप्टोफेन, फिनाइल ऐलेनीन, ल्यूसीन, आइसोल्यूसीन, थ्रिओनीन, मिथिओनीन और वेलीन। हिस्टीडीन भी शायद आवश्यक है, किंतु यह आहारनली में उपस्थित जीवाणुओं द्वारा संश्लेषित किया जा सकता है। आरजीनीन शायद वृद्धि के लिए आवश्यक नहीं है, किंतु प्रजनन (शुक्र-निर्माण) के लिए आवश्यक है। अतः द्रुत एवं सर्वांगीण वृद्धि के लिए इन दोनों की उपस्थिति भी भोजन में आवश्यक है और इन्हें भी 'आवश्यक अमीनो-अम्लों' की सूची में शामिल कर लिया गया है। शरीर के द्रुत विकास के लिए भोजन में न केवल इन अमीनो-अम्लों की उपस्थिति बल्कि इनका निश्चित मात्रा में होना भी आवश्यक है।

विभिन्न खाद्य-प्रोटीनों में इन आवश्यक अमीनो-अम्लों की उपस्थिति और उनकी मात्रा अलग-अलग होती है। शारीरिक वृद्धि और टूट-फूट की मरम्मत (प्रोटीन-संश्लेषण) की दर उनके विघटन से प्राप्त होनेवाले अमीनो-अम्लों के ऊपर ही निर्भर है। यदि किसी खाद्य-प्रोटीन में सभी आवश्यक अमीनो-अम्ल उपस्थित होते हैं और उनकी मात्रा मनुष्य की अधिकतम वृद्धि के लिए आवश्यक मात्राओं के अनुरूप होती है तो वह खाद्य-प्रोटीन, प्रोटीन-संश्लेषण में सर्वाधिक कार्यक्षम होती है। किंतु व्यवहार में केवल बहुत थोड़े से खाद्यों को छोड़कर शेष सभी में आवश्यक अमीनो-अम्लों की मात्रा मनुष्य में प्रोटीन-संश्लेषण के लिए आवश्यक मात्राओं के अनुरूप नहीं होती। एक या अधिक अमीनो-अम्ल की

**"अब तो मान गये कि 'बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख', चुनाव में वोटों की भीख मांगने पर भी तुम्हें कुछ नहीं मिला।"**

मात्रा आवश्यक मात्रा से कम होती है। किन्हीं-किन्हीं खाद्य-प्रोटीनों में वे पूर्ण रूप से अनुपस्थित होते हैं। ऐसी स्थिति में इन आवश्यक अमीनो-अम्लों की कमी के सापेक्ष में ही उस खाद्य-प्रोटीन की प्रोटीन-संश्लेषण की कार्यक्षमता घटती जाती है। यदि इनमें से एक भी अमीनो-अम्ल पूर्णतः अनुपस्थित हो तो शरीर में प्रोटीन-संश्लेषण और फलस्वरूप नये ऊतकों का निर्माण असंभव हो जाता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट है कि खाद्य-प्रोटीन द्वारा प्रदत्त अमीनो-अम्लों और उनकी मात्रा के ऊपर ही प्रोटीन-संश्लेषण (वृद्धि अथवा टूट-फूट की मरम्मत) की दर निर्भर है। किसी भी खाद्य-पदार्थ में प्रोटीन की मात्रा महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण है उसमें 'आवश्यक अमीनो-अम्लों' की उपस्थिति और उनकी पृथक-पृथक मात्रा, जो शरीर में प्रोटीन-संश्लेषण की दर निश्चित करती है। यही तथ्य किसी खाद्य-प्रोटीन की गुणवत्ता का आधार है।

अधिकांश जंतु-प्रोटीनों में सभी आवश्यक अमीनो-अम्ल कमोबेश उचित मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इसलिए इनके खाने से प्रोटीन-संश्लेषण अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है, जबकि पादप-प्रोटीनों में एक या अधिक आवश्यक अमीनो-अम्ल कम मात्रा में होते हैं, जिससे इनके खाने से प्रोटीन-संश्लेषण मंद गति से होता है। इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि जंतु-प्रोटीनों को, उनकी ऊतक-निर्माण में उच्च कार्यक्षमता के कारण ही, पादप-[illegible] की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त है। [illegible] दृष्टि से सभी प्राकृतिक प्रोटीनों में [illegible] दूध की प्रोटीन सर्वोत्तम मानी जाती है।

अब एक प्रश्न यह उठता है [illegible] भारत-जैसे देश के लोगों को, [illegible] का उत्पादन बहुत कम है और [illegible] मछली का उपयोग भी लोग उनके [illegible] होने या धार्मिक कारणों से नहीं [illegible] सकते, अपने शरीर में प्रोटीन की [illegible] किस प्रकार करना चाहिए? [illegible] एक ही उपाय है कि धान्यों के साथ-[illegible] दालें भी खूब खाइए, जो आसानी [illegible] उपलब्ध हैं। सभी दालों—चना, [illegible] उर्द, अरहर, मसूर आदि में मुख्यतः [illegible] ओनीन अमीनो-अम्ल कम मात्रा में [illegible] है, जबकि लाइसीन यथेष्ट मात्रा में [illegible] है, जो कि धान्यों—गेहूं, चावल, [illegible] बाजरा, मक्का आदि—में कम [illegible] में होता है। इसलिए जब भोजन में [illegible] एवं दालों दोनों का सम्मिलित [illegible] प्रयोग किया जाता है तब सीमित [illegible] अम्लों की पारस्परिक पूर्ति अपने [illegible] हो जाती है और इससे मिश्रित [illegible] की प्रोटीन-संश्लेषण की क्षमता [illegible] जाती है। इस दृष्टि से हमारे पूर्वजों [illegible] मिस्सी ( गेहूं-चना ) की रोटी का [illegible] प्रयोग होता था एवं जिसका गांवों [illegible] अभी तक प्रचलन है, उसके पीछे [illegible] वैज्ञानिक आधार है। इसका अनु[illegible] नगरवासियों को भी करना चाहिए।

—रावरपुरा, ललितपुर [illegible]

## दो उपन्यास

**बालिका वधू :** किशोर अवस्था में विवाहित दंपतियों को लेकर लिखे गये इस लघु उपन्यास में किशोर पति-पत्नी के मन में उठनेवाली तरंगों-उमंगों और प्यार-मनुहार के बड़े सजीव चित्र खींचे गये हैं। १४ वर्ष की बालिका-वधू रजनी १६ वर्ष के दूल्हे के साथ ब्याही जाती है। सुहागरात के समय रजनी और उसके पति के मध्य जो संवाद होते हैं वे मन को सहज ही गुदगुदा जाते हैं। सुहागरात में प्रणय-वार्त्तालाप के स्थान पर दूल्हे-दुलहिन द्वारा की गयी स्कूल की बातें, भूत-प्रेत की बातें और मिठाई की बातें पाठक का मन मोह लेती हैं। कहीं-कहीं संवाद इस हद तक अबोधता और भोलापन लिये हुए हैं कि पाठक रोमांचित हो उठता है। १६ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक के दांपत्य-जीवन में होनेवाली घटनाओं, प्रणय-संवादों, मनुहारों, रूठने-मनाने की हृदयहारी छबियां हैं। उपन्यास का आरंभ नायक के किशोर जीवन से शुरू होता है और अंत नायक-नायिका की अधेड़ावस्था से।

विमल कर बंगला साहित्य के जाने-माने रचनाकार हैं। समीक्ष्य उपन्यास बंगला से हिंदी में अनूदित है। अनुवाद विमल मिश्र ने किया है। अच्छे, प्रवाहमय अनुवाद के लिए विमल मिश्र बधाई के पात्र हैं। विमल कर को उनके एक अन्य उपन्यास 'असमय' पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। 'बालिका वधू' पर फिल्म भी बन चुकी है। कुल मिलाकर उपन्यास अच्छा बन पड़ा है।

**बालिका वधू**
**मू. लेखक—विमल कर, अनुवादक—विमल मिश्र, प्रकाशक—राजपाल ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६, पृष्ठ—१०५ मूल्य—८ रुपये**

**लाल पीली जमीन :** बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि पर आधारित है। बुंदेलखंड का ऊबड़-खाबड़ और आंचलिक परिवेश लेखक की कृतियों का आधार रहा है। यह उपन्यास भी उसी परिवेश को लेकर चला है, लेकिन उपन्यास को आंचलिक कदापि नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत उपन्यास लेखक की निरंतर परिमार्जित लेखकीय क्षमता का प्रतीक है।

'लाल पीली जमीन' का परिवेश और उसमें चित्रित जन-जीवन आम

आदमी से संबंधित है। उपन्यास के पात्र लछमन, केशव, उमा, शांति, मास्टर कौशल, शिवमंगल, कैलाश, सुरेश, शिवराम, मास्टर कंठी हमारे आसपास के जीवन में बिखरे हुए मिल जाएंगे। उपन्यास का वातावरण आज के भारतीय निम्न मध्य-वर्गीय जीवन के आक्रोश, उसकी मजबूरियों तथा तल्खियों को उजागर करता है और एक ऐसे यथार्थ की ओर ले जाता है जो जीवन की नियति है। ऐसे ही अवरोधक वातावरण में एक व्यक्ति को तलाश है अपने अस्तित्व की। जीवन की सारी असंगतियों, कुरूपताओं, विकृतियों और संवेदनाओं को बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया गया है।

**लाल पीली जमीन**

**लेखक--गोविन्द मिश्र, प्रकाशक--राजपाल ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ--३१०, मूल्य--२० रुपये**

**भारत की सम्पदा :** देश की धरती में छिपी तथा प्रकट संपदा से संबंधित सारगर्भित, प्रामाणिक तथा शोधपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करनेवाला एक संग्रहणीय विश्वकोश है।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय द्वारा अपने पूर्वप्रकाशित प्रकाशन 'वेल्थ ऑव इंडिया' की सामग्री का 'भारत की सम्पदा' शीर्षक से हिंदी में प्रकाशन किया जा रहा है। अब तक तीन पूर्ण खंड (अकारादि क्रमानुसार 'अ' से 'न' तक) तथा दो पूरक खंड ('पशुधन और कुक्कुट-पालन' तथा 'मत्स्य और मात्स्यिकी') प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत खंड इस श्रृंखला की चौथी कड़ी है। इस खंड में 'प' वर्ण के अंतर्गत आनेवाली संपूर्ण सामग्री (पक्षी से प्लैटोस्टोमा) को समेकित किया गया है।

पूर्व-परंपरा के अनुसार वानस्पतिक लेखों को उनके लैटिन नाम का लिप्यंतरण कर अकारादि क्रम में प्रस्तुत किया गया है तथा अन्य पदार्थों का विवरण प्रचलित हिंदी नामों के अनुसार दिया गया है। खनिज पदार्थों के प्रचलित नामों के प्रचलित अंगरेजी नाम भी दिये गये हैं।

आलोच्य ग्रंथ में वानस्पतिक पदार्थों चीड़, कालीमिर्च, पान, मटर, नाशपाती और नाशपाती, पीपल, सौंफ, पिस्ता, बाजरा, केवड़ा, खूबानी, बादाम, चेरी, आलूबुखारा, अफीम, अनार, ईसबगोल इत्यादि का संपूर्ण विवरण, उनके उत्पादों का आर्थिक उपयोग तथा आयात-निर्यात और उत्पादन से संबंधित नवीनतम आंकड़ों के साथ प्रस्तुत किया गया है। खनिज पदार्थों में इमारती पत्थर, पन्ना और बेरुज, पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस एवं प्लैटिनम खनिज के बारे में संपूर्ण जानकारी का समावेश किया गया है। लेखों में विस्तृत अध्ययन के लिए संदर्भों का भी उल्लेख किया गया है।

१०६ चित्रों तथा ९ रंगीन फलकों के समावेश से इस विश्वकोश की उपयोगिता और बढ़ गयी है।

**भारत की सम्पदा—प्राकृतिक पदार्थ (खंड–१)**
**प्रधान संपादक— स्वामी (डॉ.) सत्यप्रकाश, संपादक—तुरशनलाल पाठक, प्रकाशक—प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नयी दिल्ली-१२, पृष्ठ—४३०, मूल्य—८३ रुपये**

**—प्रभा भारद्वाज**

●

**नाटककार भारतेन्दु की रंग-परिकल्पना :** पाठ्यक्रमों में नाटक को प्राय: सैद्धांतिक दायरों में बांधकर रंगमंच को अलग कर दिया गया है, जबकि नाटक और रंगमंच पूर्णता के लिए एक-दूसरे पर आश्रित हैं। नाटक के पूर्ण अध्ययन के लिए आवश्यक है कि रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में नाटक का मूल्यांकन किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक इस आवश्यकता की कुछ सीमा तक पूर्ति करती है। नाटककार के मन में नाट्य-रचना से पूर्व एक रंगमंच विद्यमान रहता है। उसी आधार पर लेखक ने भारतेन्दु के नाटकों की मंचन-संभावनाओं पर विचार किया है, साथ ही भारतेन्दु के अनेक नाटकों के लिए मंच की रूपरेखा भी दी है। यदि इस रूपरेखा में कार्यव्यापार के आवश्यक निर्देश भी दे दिये जाते तो मंचन-कर्ता को और भी सहूलियत रहती। पात्र-प्रवेश, उसके बैठने-उठने आदि के स्थान का निर्देश भी दिया है। वास्तव में यह एक सामान्य रूपरेखा मात्र है। किसी भी नाटक के लिए एक मंच को निश्चित कर देना उस नाटक के प्रति अन्याय है, क्योंकि नाट्य-मंचन एक प्रयोग है, जिसके विस्तृत आयाम हैं।

**हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान :** दक्षिणी भारत में लिखे गये हिंदी शोध-प्रबंधों, पाठ्य-पुस्तकों, अनुवादों तथा मौलिक साहित्य पर दृष्टिपात करनेवाली संग्रहणीय कृति है। एक प्रकार से यह अहिंदीभाषी लेखकों द्वारा लिखे गये हिंदी साहित्य का इतिहास है। पुस्तक में इस बात पर बल दिया गया है कि हिंदी साहित्य के इतिहास में अहिंदीभाषी लेखकों के हिंदी साहित्य को भी यथायोग्य स्थान दिया जाना चाहिए।

**नाटककार भारतेन्दु की रंग-परिकल्पना**
**लेखक—डॉ. सत्येन्द्र कुमार तनेजा, प्रकाशक—भारती भाषा प्रकाशन, ५१८/६बी, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ—११०, मूल्य—१५ रु.**

**हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान**
**संपादक—प्रो. जी. सुन्दरेड्डी, डॉ. पी. आदेश्वर राव, डॉ. पी. अप्पल राजु, प्रकाशक—राजपाल ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ—१०४, मूल्य—८ रु.**

**एक और अभिमन्यु :** महाभारत में अभिमन्यु अन्याय के विरुद्ध बुलंद आवाज का

प्रतीक है। युगों बाद आज भी समाज में फैली बुराइयों और भ्रष्टाचार का व्यूह अपेक्षा करता है कि फिर कोई अभिमन्यु जन्म लेकर उसे भेद सके। अमित ऐसा ही एक अभिमन्यु है, जो समाज के हर क्षेत्र में बने व्यूहभेदन का बीड़ा उठाये है। पद, प्रतिष्ठा और शक्ति का भरपूर उपयोग करनेवालों से वह अकेला ही टकराता है। लेखक ने बताया है कि यह कार्य एक अभिनन्यु से नहीं होगा, इसके लिए तो अभिमन्युओं की परंपरा चाहिए। अमित यह कार्य अपने भावी पुत्र के हाथों सौंप देता है। यही संकेत है कि कोई न कोई अभिमन्यु इस व्यूह में प्रवेश अवश्य करेगा।

**——डॉ. शशि शर्मा**

**एक और अभिमन्यु**
**लेखक——रामगोपाल गोयल, प्रकाशक—— अभिनव प्रकाशन अजमेर, पृष्ठ——१०४, मूल्य——७ रु.**

**समन्वय योग प्रदीपिका एवं क्रिया योग :** योग के जिज्ञासुओं और साधकों के लिए दो उपयोगी पुस्तकें हैं। दोनों के लेखक योग के कुशल आचार्य स्वामी नित्य मुक्तानन्द जी हैं।

योग के बाह्य एवं अभ्यंतर दोनों ही पक्षों का उन्हें साक्षात अनुभव है, इसलिए स्वभाविक है कि उनके द्वारा प्रणीत दोनों पुस्तकें योग के नव जिज्ञासुओं तथा उच्च कोटि के साधकों के लिए अत्यंत उपादेय सिद्ध हों। जो मात्र शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आसन, मुद्रा, बंध आदि का अभ्यास करते हैं उन्हें भी निस्संदेह इन पुस्तकों से समुचित मार्गदर्शन मिलेगा।

'समन्वय योग प्रदीपिका' में छब्बीस प्रमुख योगासनों, छह प्रमुख प्राणायामों के साथ-साथ शारीरिक शुद्धीकरण के लिए बारसार धौति, शंख-प्रक्षालन, कुंजल क्रिया, जलनेति आदि का इसमें सचित्र विवेचन हुआ है। नेत्रबिंदु-साधन, त्राटक सिद्धि, अंतःकरण-दर्शन आदि योग के गंभीर विषयों को भी इस पुस्तक में स्थान दिया गया है। चेतनता और समाधि-साधन —जैसे गहनतम विषय को भी स्वामीजी ने सरल शब्दों में बताने की चेष्टा की है। अंत में विभिन्न प्रकार की साधनाओं का परिचय देकर तथा योग-साधन संबंधी प्रश्नोत्तरी डालकर पुस्तक की उपयोगिता बढ़ा दी गयी है।

'क्रिया योग' में सात प्रमुख क्रियाओं (विपरीत करणी मुद्रा साधन, पवनसंचालन, चक्रानुसंधान और चक्रभेदन, नाद संचालन, नासिकाग्र साधन, शब्द संचालन, त्रिकुटी-बिंदु साधन) का सुबोध एवं सरल भाषा में विवेचन किया गया है।

**——राजेन्द्र प्रसाद**

**'समन्वय योग प्रदीपिका'** एवं 'क्रिया योग' **लेखक——स्वामी नित्य मुक्तानंद,** प्रकाशक **——दिव्य जीवन संघ, पो.——**शिवानंद नगर, **टिहरी गढ़वाल (उ. प्र.),** पृष्ठ——क्रमशः **९३ एवं ३९ मूल्य——१०** रु. एवं ५ रु.

# हिम-प्रदेश

## • यासानुरी कवाबाता

शिमामुरा जब गाड़ी की गरमी को अंदर ही छोड़कर बाहर निकला तब उसे बाहर की सर्दी, ऊपर आकाश तक फैले हुए अंधेरे और जमीन की सफेदी का कोई अंदाजा न था। इस बर्फीले प्रदेश में वह पहली बार शीतकाल में आया था।

शिमामुरा ने बल्लियों पर लटक रहे छोटे-छोटे बर्फ के नुकीले टुकड़ों को देखा। लगता था मानो सब कुछ चुपचाप जमीन में डूब गया है।

"वह लड़की, जो संगीत-मास्टर के साथ रहती थी, आजकल यहीं है ?"

"तुमने उसे प्लेटफार्म पर नहीं देखा ? वही जो नीले कोट में थी ! वह संगीत-मास्टर के बीमार बेटे को लेने आयी थी।"

"ओह, तो वही थी . . . क्या हम उसे बुला सकते हैं—आज शाम को ?"

शिमामुरा को याद आया कि एक स्टेशन पर वह लड़की, जिसका नाम था योको, स्टेशन-मास्टर से आग्रह कर रही थी, "मेरे भाई का खयाल रखना, वह गरम कपड़े नहीं पहनता। और हां, उससे कहना छुट्टियों में घर आ जाए।"

याको ने खिड़की बंद करके लाल गालों को अपने दोनों हाथों से था। यह लड़की अविवाहित है, पर बीमार लड़के से इसका क्या रिश्ता है शायद बीमारी ने दोनों के बीच के को कम कर दिया था। बेहद कोशिश के बावजूद उस औरत का चेहरा उसे नहीं आ रहा था। (वह उससे दूर... भी दूर चली गयी, अब शिमामुरा के पकड़ने के लिए कुछ भी न बचा था।)

इस हालत में सिर्फ बायां हाथ खास तौर से बायें हाथ की छोटी ही उसके शरीर की गरमी महसूस रही थी। उसके शरीर में बिजलियां गयीं। उसके मन में एक प्रश्न उठा— वह औरत जिसे उसके हाथ याद कर हैं और सामने बैठी यह औरत, जिसकी आंखों में रोशनियां चमक रही हैं, दोनों में कोई संबंध हो सकता है?

शिमामुरा नहाकर कमरे में लौटा तो उसके कमरे में एक औरत खड़ी थी,

**यासानूरी कावाबाता जापान के इस सदी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में माने जाते हैं। १९६८ में इनके 'हिमदेश' ( स्नो-कंट्री ) उपन्यास पर इन्हें नोबेल-पुरस्कार मिला था। भयंकर अकेलेपन और असहायता की भावना प्रायः इनकी सभी कृतियों में व्याप्त है। शायद इसी अकेलेपन से घबराकर ७२ वर्ष की आयु में इन्होंने आत्महत्या कर ली थी। प्रस्तुत है उपर्युक्त उपन्यास ('हिमदेश') का रूपांतर। रूपांतरकार हैं—सरोज वशिष्ठ**

उसकी पोशाक जमीन को छू रही थी। क्या यह सचमुच ही गीशा बन गयी है? वह चुपचाप खड़ी रही, मानो उसे पहचानती ही नहीं। वह जल्दी-जल्दी उसके पास पहुंचा, पर दोनों ही चुप रहे। सफेद पाउडर में लिपटा चेहरा पहले मुसकराया और फिर एकदम पिघलकर रोने लगा।

शिमामुरा सोचने लगा—'मुझे माफी मांगनी चाहिए, हमारे बीच जो कुछ हुआ उसके बाद मैंने इसे एक भी पत्र नहीं लिखा। यह जरूर सोचती होगी कि मैं इसे भूल गया था।' यह सोचते समय शिमामुरा ने महसूस किया कि उसे पाकर वह अब बेहद प्रसन्न है। दोनों एक अनूठी मधुरता में लिपटे हुए थे। अपने बायें हाथ को आगे बढ़ाकर वह बोला, "इसे तुम्हारी याद सबसे ज्यादा आती है।"

"ओह!" उसने उसकी छोटी अंगुली पकड़ ली, उसका मुंह और गरदन लाल हो गये। उसका हाथ अपने गाल पर दबाकर वह बोली, "यह मुझे याद करता था?"

"मैंने इतने सर्द बालों को पहले कभी नहीं छुआ।"

"टोकियो में बर्फ गिर चुकी है या नहीं?"

"याद है, तुमने तब क्या कहा था? पर तुम गलत साबित हो गयीं। दिसंबर में कोई ऐसी जगह क्यों आता है?"

●●

बर्फ की चट्टानों का पर्वतों से नीचे गिरना बंद हो चुका था। पहाड़ों पर चढ़ने का मौसम आ गया था।

शिमामुरा बेकार-सा जीवन व्यतीत कर रहा था। अपनी खोयी हुई सचाई को ढूंढ़ने वह अकेला पहाड़ों पर दिन बिताता। सात दिन बाद गांव लौट तो उसने होटल की एक परिचारिका से कहा कि किसी गीशा को बुला लाओ। गांव की तेरह गीशाएं किसी उत्सव में भाग लेने गयी हुई थीं। हां, एक लड़की है जो संगीत-मास्टर के घर में रहती है। वह दो या तीन नृत्य दिखाकर लौट जाएगी, परिचारिका ने यह भी बताया था कि वह होटल अकेली नहीं आयेगी।

एक घंटे बाद परिचारिका उस लड़की को लेकर आ गयी। वह बेहद ताजा और साफ लग रही थी। उसकी पेटी बहुत कीमती थी और किमोनो उतना ही सस्ता। उसे दुःख हुआ। वे दोनों पर्वतों की बातें करने लगे तो परिचारिका चुपके से बाहर चली गयी। उस लड़की को पर्वतों के नाम ठीक से नहीं आते थे और शिमामुरा को शराब पीने की जरूरत महसूस नहीं हुई। अगर कोई सामान्य गीशा होती तो वह जरूर शराब पीता। वह इसी बर्फीले प्रदेश में पैदा हुई थी। बड़ी होकर वह टोकियो में जाकर गीशा बन गयी। उसका एक मित्र भी बन गया, जिसने उसके सब कर्जे उतार दिये और उससे नृत्य का स्कूल खोल देने का वादा भी किया, पर वह एक साल बाद मर गया—झिझकते हुए उसने अपने अतीत के बारे में बताया। अब वह उसके साथ खुलकर बातें क[illegible] लगा था। उसे काबुकी के बारे में [illegible] कुछ पता था। वह कलाप्रिय थी। [illegible] लड़की अच्छी मित्र बन सकती है—[illegible] सोचा।

अगले दिन शिमामुरा ने उससे क[illegible] "मेरे लिए कोई गीशा बुला दो।"

"मैं बुला दूं?" वह गुस्से में [illegible] हो गयी, "यहां वैसी औरतें नहीं हैं।"

"इसमें नाराजगी की क्या बात है? एक पूरा हफ्ता मैंने पर्वतों में अकेले बिता[illegible] है। मेरे दिमाग में गलत-गलत ख्या[illegible] आते हैं। मैं तुमसे ठीक से बात भी न[illegible] कर पाऊंगा।"

उसे चुप देख शिमामुरा समझ [illegible] था कि वह केवल पुरुष की निर्लज्ज[illegible] का प्रदर्शन कर रहा है—'पर इसे आव[illegible] क्यों पहुंचा है? यह तो इन बातों से परि[illegible]चित होगी!' उसका चेहरा बहुत [illegible] और कामुक लग रहा था।

"मैं अब कभी नहीं आऊंगी।"

"पर, मैं तुम्हें अपनी मित्र मान चु[illegible] हूं। अगर मैं तुम्हारे साथ इससे आ[illegible] बढ़ता हूं तो तुमसे बातें नहीं कर पाऊंगा। तुम अपनी ही पसंद की कोई सुंदर, [illegible] बोलनेवाली गीशा ले आओ।"

वह खिड़की से हटकर, जमीन पर बिछी चटाई पर बैठ गयी। वह अतीत में खो गयी थी, फिर भी शिमामुरा के बहुत ही नजदीक थी। उसे देखकर शिमामुरा का मन ग्लानि से भर गया था, पर उसने

झूठ नहीं बोला था। इस लड़की को बड़े नाज से रखना चाहिए, एकदम निश्छल भाव से। यह और सब औरतों से अलग है, पवित्र और निर्मल !

"मैं अपने परिवार को यहां ले आऊंगा। हम सब दोस्तों की तरह रहेंगे।"

"मैं समझ गयी हूं," उसने चपलता से कहा, "ऐसे रिश्ता पक्का हो जाता है।"

"तो फिर किसी को बुला दो।"

"पर दिन में तुम किसी औरत से क्या कहोगे?"

"रात को तलछट मिलने का खतरा रहता है।"

"तुमने इस गांव को इतना सस्ता समझ रखा है! यहां की गीशाएं अपनी इच्छा से आती हैं, अपनी जिम्मेदारी पर। अगर उनको यहां भेजा जाता है तो जिम्मेदारी भेजनेवालों की हो जाती है। यही अंतर है।"

"जिम्मेदारी?"

"अगर बच्चा हो जाए, या फिर कोई बीमारी लग जाए तो?"

"यहां कितनी गीशाएं हैं?"

"तेरह।"

"किसे बुलाना ठीक रहेगा," शिमामुरा ने परिचारिका के लिए घंटी बजा दी थी।

"मैं जा रही हूं, बुरा मत मानना।"

●●

सत्रह साल की उस गीशा पर एक नजर डालते ही शिमामुरा की औरत के लिए चाह खत्म हो गयी। वह क्या सोचेगी? पहाड़ों पर छायी नयी हरियाली को देखना उसके लिए ज्यादा आसान था।

एक घंटे बाद, जो मुश्किल से बीता था, उसने उसे विदा किया।

पर होटल के बाहर मोहक पर्वत देखते ही वह बहक गया था। बिना कारण वह हंसता रहा था।

देवदार के पेड़ों के नीचे वह खड़ी थी।

पहले ही क्षण से उसने इसी लड़की को पाना चाहा था। यह बात वह सीधे-सीधे क्यों न कह सका! अपनी ही नजरों में वह अरुचिकर हो गया, और वह मनोहारी।

उसकी पतली ऊंची नाक कितनी अनोखी थी! जब वह चुप होती तब भी लगता कि उसके होंठ हिल रहे हैं। उसकी भवें एक सीधी लकीर की तरह उसके चेहरे पर फैली हुई थीं। उसका मुंह गोल था। उसके स्तन भरे हुए थे।

इस सुनसान जगह दोनों अकेले थे और दोनों ही कितने चुप थे!

●●

शायद रात के दस बजे थे, वह उसके कमरे में ऐसे आकर गिरी थी मानो किसी ने उसे अंदर धकेल दिया हो। शराब में डूबी। उसके कदम बहके हुए थे। उसने एक गिलास पानी पिया।

वह कुछ यात्रियों के साथ शाम बिताकर आयी थी। वह लगातार बोलती ही जा रही थी—"मैं यहां क्या कर रही हूं? मैं अभी आती हूं। वे लोग मुझे ढूंढ़ रहे होंगे।"

एक घंटे बाद उसने बरामदे में कोई पदचाप सुनी। अंदर बैठे-बैठे उसे लगा था कि वह कभी दीवार से टकरा रही है कभी जमीन पर गिर रही है।

"शिमामुरा, शिमामुरा, मुझे कुछ नजर नहीं आ रहा है!"

वह चौंक उठा था। उसकी चीखती आवाज पूरे होटल में गूंज उठी। वह आकर उससे लिपट गयी थी—"तुम यहां हो?" वह जमीन पर गिर गयी। "मैं नशे में नहीं हूं। कौन कहता है कि मैंने शराब पी है? उफ! कितनी तकलीफ हो रही है! पानी . . . मुझे पानी पिला दो। उनकी शराब बहुत सस्ती थी।" वह अपना माथा सहलाने लगी थी।

उसने उसे आलिंगन में बांध लिया था। धीरे-धीरे सब प्रतिबंध ढीले पड़ गये।

वह सिरदर्द से तड़पने लगी थी, "नहीं . . . मुझे घर जाने दो!"

"अकेली? इतनी दूर! बारिश जोर से हो रही है! अपने कपड़े ढीले कर लो, थोड़ी देर आराम से लेटो, फिर चली जाना," शिमामुरा ने कहा।

"नहीं, ऐसे ही रहने दो।" सांस लेने में भी उसे तकलीफ हो रही थी। बार-बार वह कहती कि मैं घर जा रही हूं। उसने उसे अपने साथ पलंग पर खींच लिया। उसके होंठ शिमामुरा के होंठों पर थे। वह बेसुध-सी बार-बार कह रही

थी—"न, न! तुम तो कहते थे, हम केवल मित्र हैं! मैं वैसी औरत नहीं हूं। पर दोष तुम्हारा है। तुम हारे हो, तुम कमजोर हो, मैं नहीं!" वह मोहित-सी, अपनी ही बांह को काट रही थी। मानो अपनी खुशी को दवा रही हो। काफी देर थकी-हारी-सी वह लेटी रही।

"कितना वक्त बीत गया! सुवह होनेवाली है। यहां लोग वहुत जल्दी उठ जाते हैं।" उसने अपने वाल ठीक किये और कमरे से वाहर चली गयी।

शिमामुरा उसी दिन टोकियो लौट गया था।

"तुम्हें याद है तव तुमने क्या कहा था? पर तुम गलत थीं। ऐसी जगह कोई भी दिसंबर में क्यों आता है? मैं तुम पर हंसा नहीं था।"

वह मुसकरा रही थी। शायद उसे भी तव की याद आ रही थी। शिमामुरा के शब्द सुनकर उसका सारा शरीर लाल हो गया था।

"तुम क्या गिन रही हो?"

"उस दिन मई की २३ तारीख थी। पूरे १९९ दिन हो गये हैं।"

उसकी बातों में अजीब दर्द था—उस भिखारी की तरह जिसकी सब इच्छाएं मर चुकी हों। जो फिल्में और नाटक उसने कभी देखे नहीं, उनके बारे में वह बड़ी खुशी से चर्चा करती। कोई उसकी वात सुने, बस यही एक भूख थी उसे, अपने ही शब्दों से उसके शरीर में गरमी

भर जाती। बेशक वह यहां एक निर्वासित जीवन विता रही थी। पर उसकी आंखों में एक चपलता थी, चमक थी। अव वह एक गीशा बन चुकी है।

शिमामुरा उससे खुलकर बातें न कर पा रहा था। वह समझ गयी थी। वह खिड़की खोलकर उसकी दहलीज पर बैठ गयी। कमरे में ठंडी हवा की वाढ़-सी आ गयी।

"पागल हो गयी हो!" शिमामुरा भी खिड़की के पास आ गया। बाहर का दृश्य एकदम निश्चल था। बर्फ जम रही थी। चांद तो नहीं था, पर सितारों से आसमान भरा था।
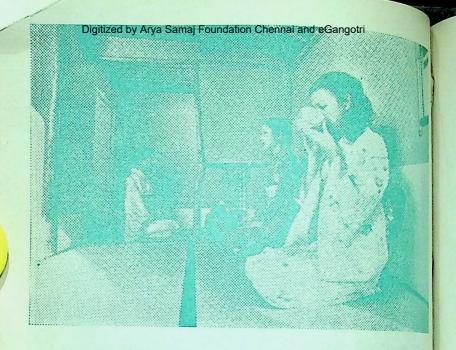
काली पहाड़ियां बर्फ में चमक रही थीं। उसे वह पारदर्शक और एकदम अकेली लगने लगी।

शिमामुरा ने उसके गले पर हाथ रखकर कहा, "तुम्हें ठंड लग जाएगी। देखो कितनी सर्दी है!" वह उसे पीछे खींचना चाहता था। पर वह खिड़की से चिपकी रही।

देवदार के पेड़ों के पीछे आधा गांव छिपा हुआ था। रेलवे-स्टेशन की बत्ती कभी जलती, कभी बुझती।

उसके बाल, खिड़की का शीशा, उसका किमोनो —सब कुछ ठंडा था। पैरों के नीचे बिछी चटाई भी सर्द थी। इतनी सर्दी उसने पहले कभी नहीं महसूस की थी।

वह पूरी रात न सो सकी थी। पेटी बांधने की आवाज से शिमामुरा की नींद खुल गयी।

पेटी बांधकर वह पलंग पर बैठ गयी। फिर बेचैनी से कमरे में टहलने लगी।

"अब मैं घर जा रही हूं। देखो दिन निकल आया।"

● ●

दोपहर को शिमामुरा सैर करने निकला। हलकी-हलकी बूंदा-बांदी हो रही थी। बच्चे बर्फ पर खेल रहे थे। एक सड़क के किनारे पांच-छह गीशाएं खड़ी थीं। उसे यकीन था कि इनमें कोमाको भी जरूर होगी। उसे देखते ही वह एक-दम लाल हो गयी। धीरे-धीरे वह उनके

पीछे-पीछे आ गयी।

"सबके सामने मुझे देखकर तुम शरमा क्यों गयीं? और अब मेरा पीछा कर रही हो!"

"मैं तुम्हें अपने घर ले जाना चाहती हूं। पास ही है।"

घर का फर्श मिट्टी का था, इसलिए बहुत ठंडा था। अंधेरा पार करके वह उसे सीढ़ियों की ओर ले गयी।

"तुम इतनी शराब पीती हो, इन सीढ़ियों से कभी गिरी नहीं?"

"बहुत बार। पर अब ज्यादा पीकर मैं ऊपर नहीं जाती।"

"तुम्हारे घर में कोई बीमार है?"

"तुम कैसे जानते हो?"

"कल की गाड़ी से वह आया है।"

"तुमने कल क्यों नहीं बताया?" वह एकदम घबरा गयी थी और फिर बताने लगी, "वह घर मरने आया है। उसे क्षय रोग है। वह २५ साल का है। टोकियो में काम करता था।" कोमाको ने यह सब तो बता दिया, पर उसके साथ उसका रिश्ता क्या है, वह इस घर में क्यों रहती है—यह सब नहीं बताया।

उसी दिन वह मालिश करवाने गया था तो मालिश करनेवाली औरत ने बताया था कि संगीत-मास्टर के बीमार बेटे के डॉक्टरों के बिल चुकाने के लिए कोमाको पिछले साल गीशा बनी थी। उसने यह भी बताया कि दोनों की शादी बहुत पहले

लेखक

तय हो गयी थी।

यह हृदयस्पर्शी बात, चाहे कितनी ही सच हो, वह मानने को तैयार न था। वह अपने को बरबाद कर रही है। इस तरह खुद को बेचकर डॉक्टरों के बिल अदा करना अगर बेकार नहीं है तो और क्या है? मैं उससे पूछूंगा, उसे समझाऊंगा। एकाएक वह उसकी नजरों में और भी निर्मल और पवित्र हो गयी।

"ये सब लोगों के बनाये किस्से हैं। मेरी शादी उससे कभी पक्की नहीं हुई थी। यह कहानी तो किसी सस्ती पत्रिका से चुरायी लगती है। मैं किसी की मदद करने के लिए गीशा नहीं बनी। हां, उसकी स्वर्गवासिनी मां की मैं बहुत आभारी हूं।"

तुम बचपन के दोस्त हो?"

"हां।"

"अगर तुम टोकियो न जातीं तो अब तक तुम्हारी शादी हो जाती।"

"शायद नहीं। पर, तुम चिंता क्यों करते हो? उसे मरने में अब ज्यादा दिन नहीं लगेंगे।"

शिमामुरा को कोई उत्तर न सूझा। और वह दूसरी लड़की योको, जो एक मां की तरह उस लड़के की देखभाल कर रही है, उसको कैसा लगता है? अभी-अभी वह कोमाको के लिए धुला हुआ नया कोमोनो लेकर होटल तक आयी थी। उसकी आवाज कितनी मधुर और धीमी है।

●●

अब तो कोमाको ने होटल से वापस जाना छोड़ ही दिया था। सुबह वह होटल-मालिक की बच्ची से खेलती। बाद में वह सोमिसेन बजाती। उसे तो केवल संगीत की भावना ही छूती।

कोमाको ने खुले आसमान की ओर देखा। सोमिसेन की ध्वनि में एक कंपन था। शहर से दूर, उसे स्वयं खबर न थी कि वह इस खुली प्रकृति का एक अंग बन चुकी है।

शिमामुरा धीरे-धीरे कोमाको के नजदीक पहुंचने के लिए विह्वल हो उठा। कोमाको के मृदु होंठों पर रोशनियां नाच रही हैं। उसके होंठों में वैसा ही आकर्षण था जैसा उसके शरीर में। उसकी चमकती गीली आंखें एक नन्ही बच्ची की आंखें थीं। उसकी त्वचा फूल-जैसी ताजी थी। वह कितनी मोहक और सुंदर लग रही है!

शिमामुरा के पास कहने को कुछ भी न था।

●●

टोकियो लौटने से एक रात पहले शिमामुरा ने कोमाको को बुलाया। रात के ग्यारह बजे थे। हवा बहुत ठंडी थी, पर कोमाको ने बाहर सैर करने की जिद की। सड़क पर बर्फ जमी थी। गांव में खामोशी थी। चांद ऐसे चमक रहा था मानो नीली बर्फ में खून जम गया हो।

"चलो स्टेशन तक चलते हैं" कोमाको ने जिद की।

"पागल हो गयी हो?"

"तुम्हें टोकियो लौट जाना है। स्टेशन देख आते हैं।"

कमरे में लौटकर कोमाको जमीन पर दुःखी मन बैठ गयी।

"क्या बात है?"

"तुम सो जाओ। मैं थोड़ी देर यहीं बैठूंगी। फिर घर जाऊंगी।"

"शिमामुरा ने हंसकर कहा, "मैं तुम्हें तंग नहीं करूंगा। रुक जाओ।"

"न।"

"इतनी सर्दी में घूमने क्यों निकली थीं? अब घर जाने की कोई जरूरत नहीं है।"

"पर मैं क्या करूं? तुम टोकियो

क्यों लौट रहे हो ?"

क्या इसे मुझसे इतना लगाव हो गया है ? यह कितनी दूर आ गयी है ! अब लौटेगी कैसे ?

"मैं यहां रुककर भी तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं ?"

वह उसे चुपचाप देखती रही और फिर मानो फूट पड़ी, "ऐसा मत कहो... ऐसा क्यों कहते हो ?" वह बेसुध-सी बोलती रही। उसकी आंखें गीली थीं।

कोमाको उसे स्टेशन पहुंचाने आयी।

एकाएक उन्होंने देखा, हांफती-भागती योको उनकी ओर आ रही थी। "एकदम घर चलो। युकियो की हालत खराब है," उसने कहा।

पीड़ा से भरी आंखें कोमाको ने बंद कर लीं। उसका चेहरा सफेद हो गया था।

योको अपनी बात कहकर तेजी से चली गयी।

"मैं घर नहीं जाऊंगी। मैं उसे मरता हुआ नहीं देख सकती। अब मैं अपनी डायरी में कुछ नहीं लिख पाऊंगी।"

गाड़ी सुरंग के अंदर से होती हुई उत्तर की ओर बढ़ने लगी। पहियों की आवाज में शिमामुरा को कोमाको की आवाज सुनायी देती रही। क्या युकियो आखिरी सांसें ले चुका होगा ? कोमाको वहां समय पर पहुंची होगी या नहीं ?

पिछले दो वर्षों में वह यहां तीन बार आ चुका है। कोमाको बहुत देर बाद उसके कमरे में आयी। "तुम क्यों आये हो ?"

"तुमसे मिलने।"

"झूठ। टोकियो में रहनेवाले सब झूठे होते हैं।" वह पलंग पर बैठ गयी। फिर धीमे स्वर में बोली, "अब मैं कभी किसी को विदा करने स्टेशन नहीं जाऊंगी। तुम्हें विदा करते समय मुझ पर क्या बीती थी, मैं तुम्हें कभी बता न सकूंगी।"

●●●

"उसका क्या हुआ ?"

"मर गया।"

"जब तुम मेरे साथ थीं ?"

"नहीं-नहीं, उस कारण नहीं। पर किसी को विदा करना मुझे अच्छा नहीं लगता। अच्छा, १४ फरवरी को तुम कहां थे ? मैं तुम्हारा इंतजार करती रही, उसी दिन आने का वायदा किया था तुमने। अब कभी तुम्हारा यकीन नहीं करूंगी।"

उस दिन बच्चों का त्योहार होता है। दस दिन पहले बच्चे बर्फ के टुकड़ों से महल बनाते हैं। नये साल के शुरू में घरों के बाहर लटकाये गये पुआल के रस्से इकट्ठे करके इसी महल के बाहर जमा कर दिये जाते हैं। १४ फरवरी को बच्चे इनको जलाते, छत पर चढ़कर पक्षियों को भगाने का गीत गाते, खूब रोशनी करते और पूरी रात बर्फ के महल में ही बिताते हैं। इसी त्योहार पर आने का वायदा कर गया था वह।

"तुम पूरे एक साल बाद आये हो, तुम जानते हो मुझ पर क्या बीतती है ?"

"तुम बदली नहीं हो," शिमामुरा ने उसकी ओर देखकर कहा।

"लोग कहते हैं, मैं जब से यहां आयी हूं, बिलकुल नहीं बदली हूं, पर यह जीवन तो बीत ही जाता है, एक साल के बाद दूसरा साल. . . " चांदनी में उसकी त्वचा सीप की तरह चमक रही थी।

"और अब तो मैं नये घर में रहती हूं। बाहर मिठाई और तंबाकू की दूकान है, ऊपर मेरा घर है। उनके यहां एक मैं ही गीशा हूं। वे मेरा बहुत खयाल करते हैं।

"हां, जानता हूं।"

"अच्छा, अगर समझते हो तो बताओ मैं क्या महसूस करती हूं?" उसकी आवाज में एक खिंचाव, एक आग्रह आ गया था, "देखा, नहीं बता सकते! तुम्हारे पास बहुत पैसा है, पर हो बिलकुल नासमझ।" उसका स्वर धीमा हो गया, "मैं बहुत अकेली हूं और मूर्ख भी। तुम कल ही टोकियो लौट जाओ न।"

"मुझे अपराधी ठहराना तुम्हारे लिए कितना आसान है! पर मैं अपनी बात तुम्हें नहीं समझा सकता।"

"क्यों नहीं समझा सकते?" उसकी आवाज में निराशा भरी थी। और फिर उसने अपनी आंखें बंद कर ली। वह खुद से ही पूछ रही थी कि क्या शिमामुरा उसे जानता है, उसे महसूस करता है। और उसने पाया कि उत्तर है—हां। "साल में एक बार काफी है। जब तक मैं यहां हूं

साल में एक बार आओगे न ?"

कोमाको जब घर चली गयी तब शिमामुरा गांव में घूमने गया।

सफेद दीवार के पास एक लड़की गेंद खेल रही थी। उसने लाल रंग का किमोनो पहन रखा था। सड़क के किनारे एक चटाई पर योको बैठी थी। वह सेम साफ कर रही थी। साफ और उदास स्वर में वह एक गीत गुनगुना रही थी।

शाम में डूबती पहाड़ियों को देखकर शिमामुरा का मन किसी शरीर की चाह करने लगा।

अगली सुबह जब उसकी आंख खुली तब कोमाको उसके कमरे में बैठी किताब पढ़ रही थी।

"तुम बहुत जल्दी आ गयीं।"

एक साधारण गृहिणी की तरह वह उसके सिरहाने बैठ गयी। अपना हाथ उसके घुटने पर रखकर वह उसकी छोटी अंगुली से खेलने लगा।

"मुझे घर जाने दो। मुझे बहुत काम करने हैं। बाल धोने हैं। पूरी रात मैं जागती रही हूं।"

पर वह जा न सकी। दोनों पिछले बगीचे में गये। घूमते-घूमते वे नदी किनारे पहुंच गये।

"चलो, तुम्हारे मंगेतर की कब्र देख आयें।"

कोमाको तनकर खड़ी हो गयी। एक मुट्ठी-भर अखरोट उसने शिमामुरा के मुंह पर फेंके।

"तुम मेरा मजाक उड़ा रहे हो?" अखरोट से उसके माथे पर चोट लग गयी। "तुम वहां क्यों जाना चाहते हो? तुम शायद भूल गये कि वह मेरा मंगेतर नहीं था।"

बेशक वह उसकी मंगेतर नहीं थी, पर उसी के बिल अदा करने के लिए वह गीशा बनी थी। कोमाको शिमामुरा की बांह पकड़कर बोली, "तुम दिल के साफ हो, और अच्छे आदमी भी हो। तुम्हें क्या परेशानी है?"

"लोग हमें देख रहे हैं।"

"तो क्या हुआ? टोकियो के लोग कितने उलझे हुए होते हैं। शोर और घबराहट में रहते-रहते उनकी भावनाएं टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं।"

"सब कुछ टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।"

"हां, जिंदगी भी . . . चलो कब्र पर चलते हैं।"

"अभी तो तुम बुरा मान गयी थीं।"

"अभी तक मैं एक बार भी वहां नहीं गयी। अब जाना आडंबर-सा लगेगा।"

"तुम तो मुझसे भी ज्यादा उलझी हुई हो।"

"मैं जिंदा लोगों के साथ पूरी तरह से खुल नहीं पाती हूं। अब वह मर चुका है। मुझे उसके साथ सचाई बरतनी चाहिए।"

वे देवदार के झुरमुट से बाहर निकल आये। वहां सन्नाटा ठंडी बूंदों-सा गिर रहा था। अचानक योको का गंभीर चेहरा झाड़ियों के पीछे नजर आया।

"मैं युकियो की कब्र पर नहीं आयी थी," कोमाको ने सफाई पेश की थी।

"कोमाको ने तीखे स्वर में कहा, "हमें उसे कब्र पर नहीं मिलना चाहिए था।"

"इसमें बुराई भी क्या है?"

"तुम कभी नहीं समझ सकोगे मेरी भावनाएं . . ."

सुबह के तीन बजे शिमामुरा का दरवाजा एक धमाके से खुला। कोमाको उसके ऊपर गिर गयी और बुदबुदाने लगी, "मैंने कहा था न कि मैं आऊंगी। देखो मैं आ गयी।" वह बेतहाशा हांफ रही थी।

"तुम तो आग की तरह दहक रही हो।"

"सिरहाने की जगह आग गयी तुम्हें। देखो, कहीं जल मत जाना।"

शिमामुरा ने बटन दबाकर रोशनी से भर दिया।

"न, न . . ." उसने अपना हाथों में छिपा लिया और फिर में घुस गयी। वह किमोनो के नीचे पहने थी। वह अपने नंगे पांव की कोशिश कर रही थी। जब वह आयी थी, शायद तभी उसने अपना साबुन और कंघियां इधर-उधर गिर थीं।

कैसी मनमानी लड़की है और अजीब! जब आयी तब कितनी

थी और कुछ समय में ही कितनी शांत हो गयी !

अब योको होटल में काम करने लगी थी। वह सदा चुप रहती। अब कोमाको को बुलाने का उसका मन कभी न करता। उसे कोमाको पर तरस आता और खुद पर भी।

और याको की निर्दोष आंखें उसे अपनी ओर खींचती रहतीं।

कोमाको विना बुलाये अकसर आ जाती।

हर बार वह अपनी एक-आध चीज उसके कमरे में भूल आती। कभी सिर्फ पानी पीकर चली जाती।

'फिर आऊंगी। शायद न भी आ सकूं। तीस मेहमान हैं और हम केवल तीन हैं। कम से कम छह गीशाएं होनी चाहिए।"

ऊपरी उदासीनता के नीचे दबी हुई इस औरत की प्रतिध्वनि शिमामुरा ने सुन ली थी।

"पर मुझे कोई शिकायत नहीं, क्योंकि सिर्फ औरत ही प्रेम कर सकती है।"

"यह दुनिया ऐसी ही है।" अपने ही कहे शब्दों की अनुर्वरता ने उसे ठंडा कर दिया।

●●

शिमामुरा जब योको को देखता तब उससे बेहद प्रभावित होता। उसकी आवाज कितनी अच्छी थी। योको ने उसे एक दिन बताया कि वह कोमाको से बेहद नफरत करती है। योको ने यह भी बताया कि वह नौकरी की तलाश में टोकियो जानेवाली है।

"मैंने सुना है तुम अपना सारा समय कब्र पर बिताती हो।"

"हां।"

'किसी और की कब्र पर नहीं जाओगी ?"

"कभी नहीं।"

"तो फिर टोकियो कैसे जाओगी ?"

"तुम मुझे अपने साथ ले चलो।"

"क्या युकियो तुम्हारा मंगेतर था ?"

"यह झूठ है!"

"कोमाको से तुम्हें क्यों नफरत है ?"

"कोमाको !" वह ऐसे बोली मानो किसी को बुला रही हो, "तुम कोमाको से अच्छा व्यवहार करना, उसका खयाल रखना।"

"पर मैं उसके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।"

"कोमाको कहती है कि मैं अब पागल हो जाऊंगी"—इतना कहकर वह कमरे से भाग गयी। कोमाको को योको के नाम से ही चिढ़ थी, पर एक दिन वह शिमामुरा से बोली, "तुम इसे अपने साथ क्यों नहीं ले जाते ? शायद यह पागल होने से बच जाए। मेरा भी भार हलका हो जाएगा।"

"क्या कह रही हो ?'

"तुम सोच रहे हो कि मैं नशे में बहक

## ज्ञान-गंगा

**अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।**
**ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ।।**

—मूर्ख सहज में संतुष्ट किया जा सकता है । पंडित उससे भी सहज में साधनीय है, परंतु अल्पज्ञ को ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते हैं ।

**दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।**
**मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।**

—दुर्जन विद्या से भूषित हो तो भी परित्याग के ही योग्य है । क्या मणि से भूषित सर्प भयंकर नहीं होता ?

**दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।**
**यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।**

—दान, भोग और नाश, धन की यही तीन गतियां हैं । जो न दान देता है और न धन को अपने उपभोग में लाता है, उसके धन की नाशरूपी तीसरी गति होती है ।

**पतितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।**
**प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ।।**

—हाथ से पृथ्वी पर फेंकी हुई गेंद भी ऊपर को उछलती है । इसी तरह भले आचरणवाले मनुष्यों की विपत्ति प्रायः स्थिर नहीं होती ।

—प्रस्तोता : महर्षिकुमार पांडेय

रही हूं । तुम उसे ले जाओ तो मुझे ... हो जाए । मैं फिर आराम से यहां ... कर सकती हूं ।"

वह नाराज हो गयी और ... चलती गयी । शिमामुरा उसे घर ... छोड़ने आया था । वह उसे अंदर ... गयी ।

"तुम्हें यहां का अकेलापन बुरा ... लगता ?"

"एक साल तो बीत गया ।"

शिमामुरा को लगा कि कुछ ... कहने को न था । वह जाने के लिए ... तो कोमाको बोली, "चलो, मैं तुम्हारे साथ होटल तक चलती हूं । सिर्फ ... तक . . ."

वह अंदर आ गयी, "तुम बिस्तर ... लेट जाओ ।" दो गिलास साके के लेकर ... उसके पास आयी ।

थोड़ी-सी ही शराब पीकर न ... क्यों उसका सिर घूमने लगा था ! ... आंखें बंद कर लीं । "तुम अच्छी लड़की ... हो ।"

वह टूटे-फूटे शब्दों में बोल रही ... "मैं बिलकुल अच्छी नहीं, तुम्हें अपने ... टोकियो लौट जाना चाहिए ।"

शिमामुरा न कोमाको को ... तरह पा सका था और न ही ... को ।

कोमाको अपने अतीत में खो ... थी । शिमामुरा को एकाएक महसूस हुआ ... कि कोमाको के अंदर की औरत ...

जीवित है !

"तुम अच्छी औरत हो।"

"कैसे अजीब आदमी हो !"

एकाएक कोमाको गुस्से में लाल हो गयी।

"मुझे तुमसे नफरत है।" वह बिस्तर से बाहर आ गयी थी और उसकी ओर पीठ करके आहत-सी बैठ गयी।

वह जानती थी कि उसे शिमामुरा ने इस्तेमाल कर लिया है और अब . . .

शिमामुरा उसके पीछे जाना चाहता था, पर जा न सका। कोमोको को उसने चोट पहुंचायी है, फिर भी . . .

वह उसके नजदीक नहीं आयी।

कोमाको से खुद को कैसे तोड़ा जाए ? क्या वह अपनी पत्नी और बच्चों को भूल गया है ? ऐसा नहीं था कि वह कोमाको के बिना जी नहीं सकता। कोमाको की आवाज उसे अपने अंदर सुनायी दी—एक गूंज जो खाली दीवारों से टकरा रही हो।

उसने चीजिमी प्रदेश जाने का प्रोग्राम बनाया।

लौटने पर कोमाको ने सवाल किया था—"कहां चले गये थे ?"

"कहीं भी नहीं . . ."

"तुम मुझे साथ क्यों नहीं ले गये ? मुझे साथ ले जाते तो इतने ठंडे हाथ लेकर कभी न लौटते।"

●●

एकाएक आग लगने का अलार्म बजने लगा था। दोनों ने मुड़कर देखा।

कोमाको चीख पड़ी। उसने शिमामुरा का हाथ कसकर पकड़ लिया। आग की लपटें फैल रही थीं।

"कहां लगी है ?"

"शायद संगीत-मास्टर के घर के पास !"

"नहीं, रेशम के कीड़ों के गोदाम में।"

आग फैलती ही गयी। लपटों का शोर मानो उन्हें सुनायी दे रहा था। शिमामुरा ने कोमाको को अपनी बांहों में भर लिया।

"डरने की क्या बात है ?"

"नहीं, नहीं, नहीं।" कोमाको फूट-फूट कर रोने लगी।

मुरा के हाथों में बहुत छोटा लग रहा था।

जब वे होटल पहुंचे तब लोग पहली और दूसरी मंजिल के बरामदों में खड़े आपस में आग के बारे में बातें कर रहे थे। एक ने बताया, "वे सबको बाहर निकाल रहे हैं। फिल्म को आग लग गयी थी और एक ही मिनट में चारों ओर फैल गयी।

"हम क्या करें ?"

कोमाको भागने लगी। शिमामुरा उसके पीछे-पीछे भागा।

"तुम यहीं ठहरो, लोग क्या सोचेंगे !"

"तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। मैं अकेली ही चली जाऊंगी," जाते-जाते उसने कहा।

"तुम मेरा कहीं इंतजार करो। कहां मिलोगे ?"

"जहां तुम कहोगी।"

"वहां सामने। पर नहीं, रहने दो।" वह लौटकर उसके नजदीक आ गयी। "तुमने कहा था मैं अच्छी औरत हूं और अब तुम लौट जाओगे। तुमने मेरे मन में नफरत भर दी है, ऐसा क्यों कहा तुमने? उस शाम मैं कितना रोयी थी। तुम्हें छोड़ते हुए मुझे डर लगता है, पर तुम लौट जाओ। तुमने मुझे रुलाया था, यह मैं कभी नहीं भूलूंगी।"

एक छोटी-सी गलतफहमी ने इस औरत पर कितनी गहरी चोट की है। आग की लपटें आसमान को छूने लगी थीं।

"जब तुम लौट जाओगे तब मैं इस तरह का जीवन छोड़ दूंगी।" कोमाको धीरे-धीरे चलने लगी, अपने बिखरे हुए बालों को छुआ और फिर रुक गयी "क्या बात है? वहां क्यों खड़े हो?"

शिमामुरा चुपचाप उसे देखता रहा।

"ओह! तो तुम मेरा इंतजार करोगे? और फिर बाद में मुझे अपने कमरे में ले जाओगे?"

●●

भीड़ के पीछे खड़ा शिमामुरा फैलती आग को देख रहा था।

थोड़ी देर बाद कोमाको उसके नजदीक आ गयी। उसका हाथ पकड़कर उसकी ओर देखने लगी। उसके बाल खुल गये थे। उसकी गरदन को देखकर शिमामुरा का मन हुआ कि उसे छू ले।

एक औरत का शरीर लपटों से निकलकर बाहर गिरा। पूरी भीड़ के मुंह से एक चीख निकली।

कोमाको ने चीखते हुए अपने हाथ आंखों पर रख लिये। यह चीख शिमामुरा को बहुत अंदर तक कोंच गयी। अभी भीड़ की रुकी हुई सांस लौटी भी न थी कि कोमाको शिमामुरा से खुद को छुड़ाकर आग की ओर भाग गयी। योको का [illegible] शरीर देखकर शिमामुरा एकदम ठंडा पड़ गया। पर योको मरी नहीं थी। उसका केवल रूपांतर हुआ था।

कोमाको पानी के पोखरों, जले-कटी लकड़ी के ढेरों में उठती-गिरती योको के पास पहुंच गयी। उसे अपनी छाती से लगाकर लौटने लगी। उसका चेहरा तना हुआ और केवल बेबस लग रहा था। उसके चेहरे के साथ-साथ योको का खाली-खाली चेहरा लटक रहा था। वह खालीपन उस पल का था जब शरीर से आत्मा उड़ जाती है। कोमाको, स्वयं को त्यागती हुई, सजा देती हुई आगे बढ़ रही थी। पल भर बाद भीड़ की आवाज लौट आयी और अब वह आवाज उन दोनों को अपने में समेट रही थी।

"पीछे हट जाओ। पीछे हट जाओ।" कोमाको की चीखें सुनायी दे रही थीं।

"यह लड़की पागल है, पागल है..."

उसने उस आधी पागल आवाज तक पहुंचने की बहुत कोशिश की, पर कोमाको और योको की मदद के लिए आगे आये हुए आदमियों ने शिमामुरा को बहुत पीछे धकेल दिया।

"आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे! सर बुरी तरह दुख रहा है।"

"मेरी मानो तो एनासिन ले लो।"

## जल्द आराम पाने के लिए तेज़ असर और विश्वसनीय एनासिन लीजिए

**तेज़ असर**–एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

**विश्वसनीय**–एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

**भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा**

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co., Ltd.

A/2/8-30

VISION-2

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग अंग ताज़गी की तरंग
Liril
THE FRESHNESS SOAP
Liril
अनोखा निराला लिरिल. हरा लहरिया. नीबुओं की सनसनाती ताज़गी वाला. गहरी सुगंध, ताज़गी की तरंग लिरिल...तुझे बनाए निखरी निखरी नार नवेली.
लिरिल
ताज़गी का साबुन नीबुओं की सनसनाती ताज़गी वाला
लिंटास-LR.27-1710 HI
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

प्यास का मौसम आया
लिम्का ताज़गी लाया
सुबह हो, दोपहर हो या हो शाम प्यास बुझाना ताजगी लाना लिम्का का काम ! इसमें प्यास बुझाने के लिए आइसोटॉनिक नमक और सेहत के लिए विटामिन 'सी' है !
Limca
लिम्का

भारतीय भाषाओं की
पत्रिका
प्रकाशन
पृथ्वी पर भी अंतरिक्ष यात्री उतरे थे!
जहां तक हो
Stardust
Talc
Binaca
हिन्दुस्तान

अब हर वर्ष
का
है!

# ... 2000 का लघु उद्योगपति

नन्हे से अरूण में लघु उद्योगपति बनने के कुछ आसार नज़र आये थे. और इसलिए उसके पिता ने. सिंडिकेट बैंक का साथ लेकर उसे वही बनाने के लिए पहले ही से कदम उठाएं थे.

अरूण के पहले जन्म-दिन पर, उसके पिता ने सिंडिकेट बैंक में 25 रूपये जमा कर के अरूण के नाम पर एक बचत खाता खोला, और उसी समय उन्होंने सिंडिकेट बैंक के संचयी जमा खाते में सिर्फ पांच वर्षों के लिए प्रति माह 100 रूपये की रकम जमा करना भी शुरू किया. जब अरूण 16, वर्ष का हो जाएगा, तब हम उसे हर महीना 173 55 रू. की रकम देंगे, जिससे उसकी तकनीकी शिक्षा का खर्च निकल जाएगा. इसके अलावा, जब वह 21 वर्ष का होगा, तब उसे 21,000 रूपये की पूंजी भी मिलेगी जिसे वह अपनी पहली लघु परियोजना में लगा सकेंगा.

सिर्फ 5 वर्षों के लिए की गयी बचत, आपके बच्चे के भविष्य को पलटा सकेगी.

सिंडिकेट बैंक में आइए. ... उठाए, आपके बच्चे का ... हम आपकी सहायता करेंगे.

**सिंडिकेट बैंक**

जहां सेवा ही जीवन का ध्येय है

maa (S) SB 47 HIN

● ज्ञानेन्दु

**नीचे कुछ शब्द दिये हैं, और उसके बाद उनके उत्तर भी। उत्तर देखे बिना आपकी दृष्टि में जो सही उत्तर हों, उन पर निशान लगाइए और फिर यहां दिये गये उत्तरों से मिलाइए। इस प्रक्रिया से आपका शब्द-ज्ञान अवश्य ही बढ़ेगा।**

१. **परिपाटी**—क. श्रृंखला, ख. अधिकार, ग. दायित्व, घ. रीति।

२. **विवेचन**—क. आलोचना, ख. गुण-दोष का विचार, ग. पाठ, घ. प्रशंसा।

३. **पारस**—क. स्पर्श, ख. परीक्षण, ग. एक कल्पित मणि, जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, घ. सफल।

४. **सांगोपांग**—क. श्रेष्ठ, ख. साथ-साथ, ग. सिद्ध, घ. पूर्ण।

५. **परिहार**—क. उपाय, ख. निषेध, ग. किसी दोष का हटाना, घ. अंत।

६. **वितृष्णा**—क. तेज प्यास, ख. घृणा, ग. विरक्ति, घ. असंतोष।

७. **प्राज्ञ**—क. बुद्धिमान, ख. धूर्त, ग. आध्यात्मिक, घ. फुर्तीला।

८. **नराधम**—क. चुगलखोर, ख. बेरहम, ग. नीच आदमी घ. ...

९. **निर्वैर**—क. विरक्त, ख. जिसमें वैर-भाव न हो, ग. सरल, घ. ...

१०. **दृष्टिपात**—क. नजरअंदाज, ख. नजर डालना, ग. निगाह फेरना, घ. ... गिरना।

११. **दुस्त्यज**—क. अनुचित त्याग, ख. जिसे त्यागना कठिन हो, ग. अति ... घ. दुष्ट।

## उत्तर

१. घ. रीति, चलन, क्रम। ... वैज्ञानिक निबंधों की **परिपाटी** ... में आरंभ हुई।

२. ख. गुण-दोष का विचार, ... तर्कपूर्ण निर्णय। पूर्ण **विवेचन** के ... ही किसी सिद्धांत को अपनाओ।

३. ग. एक कल्पित मणि, जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, सफलता प्राप्त करनेवाली वस्तु, वह व्यक्ति जिसके संसर्ग से लोग गुण प्राप्त करते हैं। ... कौन-सा **पारस** मिल गया है जो ... काल में वह धनी बन गया? वह ... में पारस है, जिसने लोगों के दूषित विचारों को बदल दिया है।

४. घ. पूर्ण, अंग-प्रत्यंग सहित। ... ग्रंथ में भारतीय दर्शन का **सांगोपांग** ... है। (स+अंग+उप+अंग)

५. ग. किसी दोष का हटाना, छोड़ना, त्यागना। अवगुणों का **परिहार** किये बिना मनुष्य ऊंचा नहीं उठ सकता।

६. ग. विरक्ति, संतुष्टि । कठोर मानसिक संयम से वितृष्णा उत्पन्न होती है।

७. क. बुद्धिमान, दक्ष। प्राज्ञ व्यक्ति समाज को नयी दिशा दर्शाते हैं। स्त्री. प्राज्ञा। प्राज्ञम्मन्य=अपने को बुद्धिमान समझनेवाला। (व्यंग्य में महामूर्ख को भी 'प्राज्ञ' कह दिया जाता है)।

८. ग. नीच आदमी। किस नराधम से पाला पड़ा है! (नर+अधम)

९. ख. जिसमें वैर-भाव न हो। दुष्टों से घिरा होने पर भी वह निर्वैर बना रहा।

१०. ख. नजर डालना, देखना। इन पंक्तियों पर दृष्टिपात कीजिए।

११. ख. जिसे त्यागना कठिन हो। सामान्य मनुष्यों के लिए धन दुस्त्यज है।

## पारिभाषिक शब्द

वेकेंसी=रिक्ति / रिक्तता
वेटिंग लिस्ट=प्रतीक्षा-सूची
अल्टीमेट=अंतिम / चरम
अल्टिमो=गतमास
टेबल=सारणी / पटल
हाउस=सदन
फ्रेट=मालभाड़ा
वैगन=माल-डिब्बा
कोच=सवारी-डिब्बा

## समस्या-पूर्ति-३५

### रक्ताभ

**प्रथम पुरस्कार—**

तन हरित वृंत पर डोल रहा
मन द्वार प्रणय के खोल रहा
भावातिरेक से कंपित हो
रक्ताभ अधर कुछ बोल रहा

—घनश्याम
विपत्र लिपिक, विद्युत आपूर्ति अवर-प्रमंडल, लाल दरवाजा, मुंगेर (बिहार)

पुरस्कृत प्रविष्टि के अलावा अन्य स्तरीय प्रविष्टियों के अभाव में इस बार द्वितीय पुरस्कार किसी को भी नहीं दिया जा रहा।
—संपादक
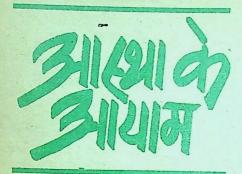
## हम भारतीय हैं

एक ब्रिटिश न्यायालय का 'कटघरा। अभियुक्त थे क्रांतिकारी उधमसिंह, उन्होंने जनरल ओ'डायर को गोली मारकर जलियांवालाबाग-हत्याकांड का बदला लिया था।

न्यायाधीश युवा क्रांतिकारी से प्रश्न कर ही रहे थे कि एक अंगरेज युवती भीड़ चीरती हुई न्यायालय में उपस्थित हुई। न्यायाधीश से उसने क्रांतिकारी उधम सिंह से कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी। अनुमति मिल गयी, तो उसने उधमसिंह से पूछा, "तुम्हारी रिवाल्वर में तीन गोलियां शेष थीं। तुमने मुझ पर गोली क्यों नहीं चला दी? ऐसा कर तुम आसानी से भाग सकते थे। तुम्हारे पास चाकू भी था। तुम उससे भी वार कर सकते थे? तुमने ऐसा क्यों नहीं किया?"

उधमसिंह उस अंगरेज़ युवती को पहचान गये। उसी के कारण तो वे गिरफ्तार हुए थे। उन्होंने विनम्रता से उत्तर दिया, "बहन, हम भारतीय हैं। नारी पर हाथ उठाना हमारी संस्कृति के विरुद्ध है। इसीलिए मैंने आप पर वार नहीं किया।"

उधमसिंह का उत्तर सुनकर अंग्रेज युवती की आंखें छलछला आयीं। भावुकता के कारण उसका गला रुंध गया। वह कुछ बोल नहीं पायी।

## एक समर्पित जीवन

सिस्टर एलिजाबेथ केनीके, जिन्होंने दीन-दुखियों की सेवा के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। यहां तक कि विवाह भी नहीं किया। यह प्रेरक प्रसंग उन्हीं के त्यागमय जीवन का है।

समय १९१०। देश—आस्ट्रेलिया। एलिजाबेथ तब किशोरी थीं। ऐश्वर्य के बीच जन्मी, पलीं और बढ़ीं।

एक दिन वे अपने घोड़े पर सवार होकर जंगल की प्राकृतिक सुषमा का आनंद लूटतीं चिंतामुक्त चली जा रही थीं।

सहसा एलिजाबेथ को कुछ बच्चों के रोने की आवाज सुनायी दी। उन्होंने तुरंत रास खींच ली। घोड़ा रुका, तो वे नीचे उतर पड़ीं। रोने की आवाज की दिशा में चल पड़ीं।

यह आवाज एक झोपड़ी से आ रही थी। वे झोपड़ी में गयीं, तो दृश्य देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। जमीन पर छह आदिवासी बच्चे पड़े-पड़े रो रहे थे। एलिजाबेथ ने बारी-बारी से उनके शरीर को स्पर्श किया, तो पाया उन सबका शरीर

तेज बुखार से तप रहा है। तभी उनका ध्यान झोपड़े के किनारे खांसती हुई बैठी वृद्धा पर गया। उन्होंने उससे बच्चों के माता-पिता के बारे में पूछा तो पता चला, वे हैजे के शिकार हो गये हैं। छह बच्चों में से चार को लकवा हो गया है। वह वृद्धा भी क्षय रोग की शिकार है।

एलिजाबेथ क्षणभर के लिए सोचती रहीं। अचानक उन्होंने एक फैसला किया। वे तुरंत घोड़े पर सवार होकर एक चिकित्सक के पास पहुंची।

यहीं नहीं, चिकित्सक द्वारा उन बच्चों को देखने के बाद उन्होंने उनकी देखभाल का जिम्मा भी अपने पर ले लिया। उनकी ममतामरी सेवा से बच्चे ठीक भी हो गये।

पर एलिजाबेथ केनीके के कर्त्तव्य की इतिश्री यहीं समाप्त नहीं हुई। उन्होंने सोचा, दुनिया में और भी लोग हैं, जिन्हें उनकी सेवा की आवश्यकता है। उन्होंने नर्सिंग की ट्रेनिंग ली। फिर चिकित्सक भी बनीं।

संबंधियों ने उन्हें विवाह का परामर्श दिया—"जब सारा संसार ही दीन-हीन अवस्था में पड़ा हो, तब कुछ व्यक्ति ऐसे भी होने चाहिए, जो स्वेच्छा से सांसारिक सुखों को तिलांजलि देकर, स्वयं को दीन-हीनों की सेवा के लिए समर्पित कर सकें। जहां तक मेरा सवाल है, दीन-दुखियों की सेवा ही मेरे लिए विवाह है।' एलिजाबेथ का उत्तर था

## वचनवीथी

**वाद-विवाद में हठ और क्रोध मूर्खता के पक्के सबूत हैं। —मौंटेन**

**वासना का पागलपन थोड़ी देर रहता है; किंतु उसका पछतावा बहुत देर। —शिलर**

**किसी युग की महत्तर घटनाएं, उसके सर्वोत्कृष्ट विचार हैं। विचार आचरण में आकर रहता है। —बॉइस**

**शत्रुओं की नासिका विद्या की बढ़ोतरी से कट जाएगी; पर विद्या की शोभा आचरण ठीक रहने से ही होगी। —इब्न-उल-वर्दी**

**कोई सत्य, दूसरे सत्य का विरोधी नहीं हो सकता। —हूकर**

**बुद्धि परीक्षण करने बैठती है; किंतु विवेक निरीक्षण से ही खुश रहता है। —पालशिरर**

**अपने विश्वास का शिकार बनकर मर जाना प्रशंसनीय है; अपनी महत्त्वाकांक्षा का धोखा खाकर मरना दुःखद है। —लैमरटिन**

**जो व्यक्ति यह सोचता है कि विज्ञान और धर्म में कोई वास्तविक विरोध है, उसे या तो विज्ञान का अल्पज्ञान है या वह धर्म से बहुत अनभिज्ञ है। —हैनरी**

अप्रैल अंक में 'समय के हस्ताक्षर' शीर्षक से बदायूं-कवि-सम्मेलन के तथा-कथित 'पिटे हुए' कवियों पर बेलाग और दो टूक सम्मति छापकर आपने निःसंदेह सारस्वत-धर्म निभाया है। आज के 'मंचीय' अखाड़ेबाजों के विषय में जो 'कटु सत्य'

## बदायूं में कवियों की पिटाई : पाठकों के विचार

आपने लिखा, वह प्रत्येक बुद्धिजीवी को कुरेद सकेगा, यह विश्वास मुझे है।

यह सत्य है कि 'कवि-सम्मेलन' अब एक व्यवसाय (भौंडे स्तर का) मात्र रह गये हैं और कुछ ऐसे कवि, जो कविता की आड़ में 'दलविशेष' का भौंडा प्रचार करते हैं, आज 'जनरुचि' को विकृत कर रहे हैं। सत्ता-पक्ष को गालियां देना, अश्लील द्विअर्थी पंक्तियां जोड़कर बदतमीजी करना और चुटकुलेबाजी से वातावरण विकृत करना ही इनके लिए 'कविता' है!

अब समय आ गया है कि 'हिंदी' के नाम पर चलनेवाली इस लूट और विकृत मानसिकता पर अंकुश लगाया जाए।

—डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', रुड़की

अप्रैल अंक में 'समय के हस्ताक्षर' के अंतर्गत तथाकथित कवियों के संदर्भ में आपकी टिप्पणी जोरदार है। हो सकता है, इससे कुछ कवि आपसे नाराज हो जाएं, पर यह सच है कि इस प्रकार के कवियों ने साहित्य के स्तर को बहुत ही नीचे उतार दिया है और उनकी निश्चय ही भर्त्सना की जानी चाहिए। हालत यह हो गयी है कि इन्हीं कवियों की निम्न स्तरीय हरकतों के कारण दूसरे साहित्यकारों को भी शंका की दृष्टि से देखा जाता है।

—डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना, इलाहाबाद

'समय के हस्ताक्षर' के अंतर्गत बदायूं में पिटे हुए कवियों के संदर्भ में आपकी बेहद बेबाक, बेलौस टिप्पणी पढ़ी। एक भ्रष्ट और निंदनीय सचाई को आपने बिना लाग-लपेट के बेपर्दा किया, अस्तु बधाई!

पर हकीकत यह है कि आज कवि विदूषक के दरजे के भी नहीं लगते। ये लोग सभ्यता और शालीनता का नग्न-नर्त्तन करना मंचीय स्वतंत्रता मानते हैं। इनकी तमाम तुकबंदी राजनेता, राजनीति के इर्द-गिर्द ही रहती है, गोया 'हिंदोस्तां' में इनसे जुदा और कुछ है ही नहीं। सामाजिक और अन्य पहलुओं से सर्वथा विमुख

एक ही पिटे हुए विषय पर 'कविता' के रूप में वाही-तबाही बकना ये स्वयंसिद्ध जागरूक अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते हैं। जबान की लगाम थामने का जरा संकेत भर करो कि स्वतंत्रता का नाम ले-लेकर डकराने लगते हैं। गो कि चित भी मेरी, पट भी मेरी! घिसे-पिटे चुटकुलों पर कविता गढ़ लेना इनकी हॉबी है।

मुख्य मुद्दा ये नहीं कि राजनीति या राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किये जाएं या नहीं? कहना सिर्फ इतना है कि व्यंग्य चुभता हुआ अवश्य हो, पर भद्दा नहीं, कल्पनाशीलता पैनी हो, मगर अश्लील नहीं!

पिछले दिनों यहां हुए एक कवि-सम्मेलन में एक कवि ने तमाम महिला श्रोताओं की उपस्थिति नजर अंदाज करके नितांत अर्थहीन कविताएं (?) और लतीफे सुनाये। वहां सपरिवार गयी हुई महिलाओं को सुनना और बैठना दूभर हो गया। उक्त कवि ने एक चुटकुले के आधार पर गाय के दूध और मां के दूध का अंतर स्पष्ट करते हुए बताया कि—'गाय के दूध में शक्कर मिलानी पड़ती है जब कि मां का दूध मीठा होता है! गाय के दूध को पापा पी सकते हैं, मगर मां के दूध को नहीं!' आदि-आदि। इसे स्थानीय जनता की कायरता या क्षमा-शीलता समझिए कि चुपचाप सुनती रही, वरना पिटने के लिए यह भी कोई कम 'चीप' मुद्दा न था! हां, संयोजक ने जरूर अपनी रुष्टता प्रकट की, मगर अस्पष्ट रूप से!

मेरे ख्याल से कविता के नाम पर आंय-बांय बकनेवाले के साथ साल, दो साल के अंतर पर इस तरह का हादसा हो जाना, मंच की प्रतिष्ठा और सही मायनों के कवियों के हक में है!

**—प्रतिभा कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर**

'बदायूं में कवियों की पिटाई : विदूषक सम्मेलनों के नजारे' पढ़ा, स्थिति स्पष्ट हो गयी।

कविता केवल कवि की ही सृष्टि नहीं, एक प्रकार से पाठक की भी सृष्टि समझी जाती है। कविता पाठकों के हृदयों में न पैठ सकी, तो वह कविता ही किस काम की! कवि सार्थक जन्मा तभी है, जबकि वह पाठक तो पाठक, जाति और देश के जीवन में स्फूर्ति पैदा कर दे, उनके हृदय में घर बना ले।

हास्य, स्वस्थ मन का सहज उच्छलन होता है, स्वस्थ जीवन का सहज प्रोद्भास होता है, वह सदैव निर्मल होता है। उपहास के द्वारा ताड़ने के उद्देश्य से किया गया व्यंग्य हास्य नहीं है, और न चुभनेवाली कटुता से युक्त वक्रोक्ति ही हास्य है।

**—ब्रज बिहारी 'अटल', मुजफ्फरपुर**

अप्रैल अंक में 'समय के हस्ताक्षर' स्तंभ के अंतर्गत आपकी साहसपूर्ण टिप्पणी की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। वास्तव में, ये कवि सम्मेलन विदूषक सम्मेलन ही नहीं, भांड सम्मेलन और भाड़े के सम्मेलन होकर रह गये हैं। मंचीय कवि

# कादम्बिनी

वर्ष २२ : अंक ७
मई, १९८२

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

## निबंध एवं लेख



## स्थायी स्तंभ



आवरण : राइटर्स (मॉडल), फालसिंह गिरोटा (कैमरा लिये युवती)

## कहानी एवं हास्य-व्यंग्य



## कविताएं



## सार-संक्षेप




संपादक
राजेन्द्र अवस्थी,

कार्यकारी अध्यक्ष :
एस. एम. अग्रवाल
हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह

संयुक्त संपादक :
शीला झुनझुनवाला
सह-संपादक : दुर्गाप्रसाद शुक्ल
उप-संपादक :
प्रभा भारद्वाज, डॉ. जगदीश चंद्रिकेश, भगवती प्रसाद डोभाल, सुरेश नीरव, धनंजय सिंह, चित्रकार : सुकुमार चटर्जी
प्रूफरीडर : स्वामी शरण

पता : संपादक—'कादम्बिनी', हिंदुस्तान टाइम्स लि., १८–२०, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नयी दिल्ली-११०००१

वार्षिक मूल्य : ३८ रुपये

# काल-चिंतन

—संबंधों की अपेक्षाओं ने मुझे गर्त में भेज दिया है; परेशान हूं... क्या करूं... ?

●

—एक कथा : उजड़ा गांव, दस-बीस झोपड़ियां, थका-हारा एक संन्यासी। भूख से पीड़ित जैसे ही उस उजाड़-से गांव में वह पहुंचा, लोगों ने घेर लिया उसे। सभी दरवाजे खुले थे, उसकी भूख भला पूरी क्यों न होती। वह तब भी निर्विकार ... थोड़ी देर में वहां से वह चला गया।

—दूसरी कथा : एक बहुत बड़ा कस्बा, उद्योग और व्यापार का केंद्र। वही संन्यासी दूसरी शाम वैसे ही थका-हारा वहां पहुंचा। किसी ने नहीं घेरा उसे। हताश, उसने एक आदमी से भोजन की याचना की तो उसने भिखारी समझकर दस पैसे उसके हाथ में रख दिये! ... 'दस पैसे !' उसने अट्टहास किया और पागलों की तरह उस सिक्के से खेलता हुआ वह गांव के बाहर चला गया!

●

—अपेक्षाओं का प्रतिफल यही होता है। जिस दिन अपेक्षा के बादलों ने आ घेरा, उपेक्षा की गरम लू ने तत्काल कब्जा किया।

—तैरती हुई हवा कोयले-से काले बादलों को भी उड़ा ले जाती है; सूखी और सूनी रह जाती हैं—किसान की फटी हुई आंखें।

—जितनी अधिक अपेक्षा होगी, उतने ही गहरे गर्त में गिरने की संभावना भी है। महारथी कृष्ण ने संभवतः इसीलिए कहा था, 'मा फलेषु कदाचन् !'

●

—शहर, गांव और कस्बे आदमियों से भरे हुए जंगल हैं। इस जंगल में जितने हिंस्र पशु रहते हैं, उतने सघन वनों में नहीं हैं।

—आदमियों के जंगल में ताजे गरम रक्तपान के लिए निरंतर एक-दूसरे से होड़ लगी रहती है! हर आदमी एक-दूसरे का शिकार है; वह अपने ही भीतर के शिकारी से मदांध है।

—उससे बेहतर हैं वे सघन वन, जहां विहार करते वनचरों ने अपनी लक्ष्मण-रेखाएं आप बना ली हैं। नितांत अव्यवस्थित से लगनेवाले वे, सबसे ज्यादा व्यवस्थित हैं और

# काल-चिंतन

'पहचान' की पूजा करते हैं !

—आदमी सबसे पहले 'पहचान' को शिकार बनाता है। सभी वही हैं, कौन किससे, क्या, कहे !

●

—संबंध वास्तव में एक विचार-सूत्र हैं।

—संबंध अमूल्य हैं, उन्हें किसी कीमत पर नहीं आंका जा सकता।

—नये संबंध बनाने के लिए पुराने संबंधों को तोड़ना जरूरी नहीं है। संबंध एक अटूट श्रृंखला है; लेकिन संबंध अमरबेल भी नहीं है।

—अमरबेल बिना जड़ के फैलती रहती है, संबंध जड़ों को खोखला करते हुए बनते, बिगड़ते, टूटते, मिटते और जुड़ते भी हैं।

—पुरानी लकड़ी में लगी दीमक की तरह संबंधों के सिलसिले कब भीतर-ही-भीतर एक-दूसरे को खाने लगें, कोई नहीं जानता।

—जिंदगी एक समूचा नाटक है, लेकिन हम उस नाटक के मात्र एक पात्र हैं। हमारी भूमिका निश्चित है।

—निश्चित भूमिका में अपने को केंद्रित हम कर लें तो विषय-ततैया से बचे रहेंगे। अचानक कोई, क्यों काटेगा हमें यदि छतने को तोड़कर उससे शहद निकालने की अपेक्षा हमने नहीं की।

—छतना एक मकान है; किसी का मकान तोड़नेवाला अपने मकान को भी सुरक्षित नहीं रख सकता।

—रस-लोलुपता सिद्धांतवादिता नहीं है। सुविधा-केंद्रों और सुविधाभोगी क्षणों को तलाशते हुए लोगों पर एक पहरुआ निरंतर नजर रखे रहता है।

—पहरुआ अदृश्य है, वह हर स्थिति में हर जगह पीछे लगा है, पकड़ में आते ही वह अंधे कुएं में ढकेल देता है और बिना अट्टहास किये मौन फिर आगे बढ़ जाता है।

—अपनी जिंदगी की सीवन को पहेरुए के हाथ क्यों सौंपते हैं हम ? धोखे से मुठभेड़ हो जाए तो हमें धागा बनना चाहिए, सूई नहीं।

—सूई चुभाकर धागा भरना, घाव पर मरहम लगाना है। घाव करना ही अपराध है, इसे समझे बिना चलना एक दृष्टिहीन का मार्ग तलाशना है।
—सही मानिए तो पूजा-पाठ मात्र एक दिखावा है; मौन प्रार्थना से बड़ी चीज कोई नहीं है। इसी तरह संबंधों का प्रकटीकरण मन के भीतर पलनेवाली ततैया के अंडे हैं; अप्रकट रखें तो अंडों को पोषण नहीं मिलेगा।
—महादृष्टा इसीलिए कह गये हैं—कम बोलो, सुनो मत, उतना देखो जितने से रास्ता मात्र रोशनी की एक लकीर दिखायी दे।
—अनुभव कड़ुवा होता है; बचपन जिनके साथ बीता है, दैदीप्यमान यौवन के दिनों में वे ही कठफोड़वा का काम करते हैं!
—अपने लोग ही अपने दुश्मन होते हैं! अपने शहर से ज्यादा खतरनाक जगह दूसरी नहीं है!
—अपेक्षाओं की अटूट श्रृंखला में आबद्ध एक धनपति वहां से भिखारी बनकर ही निकलेगा। उसकी इस स्थिति पर सबसे पहले समारोह का सदाबहार पौधा वही लोग रोपेंगे।
—वे कूटनीतिज्ञों से कम नहीं हैं।
—कूटनीति का सिद्धांत ही सुविधा-भोगी है।
—वह जब देशों से व्यक्तियों में जन्मता है, तो दर्द पहुंचाता है!
—दर्द देने और दर्द पहुंचने में अंतर है।
—एक सुखकर नियति के लिए दर्द देना शायद जरूरी है।
—अपनी अमानुषिक पिपासाओं की शांति के लिए दर्द पहुंचाना, मनुष्य धर्म को कलंकित करना है। देखना यह चाहिए, संबंधों के घेरे अपेक्षाओं के मेघों में आवृत्त दर्द पहुंचाने के लिए अग्रसर तो नहीं हैं?
—आदमी की समझ इसी परख पर निर्भर है।
—कच्चा आदमी जो होगा, उसका हर काम कच्चा रहेगा।
—मजबूत आदमी बनने के लिए उभरते हुए आदमियत के अंकुर को सही पोषण देना जरूरी है।
—इसी सावधानी से हम जीवित रह सकते हैं। कल सुबह होगी और फिर सूरज निकलेगा इसी आस्था के कारण तो हम जीवित हैं, अन्यथा हम सब अंधेरे के निवाले बन जाते।
—मजबूत आदमी बनें हम; चक्रव्यूह में घिरना हमारी आवश्यक नियति है, इसलिए उससे निकलना पहले ही सीख लें हम!
—मिलें सबसे खुलकर; हमारा अट्टहास ब्रह्मास्त्र का काम दे; कोई मैल न आने दें अपने

भीतर; रहें वही बाहर जो भीतर हैं; क्या बिगड़ेगा फिर ! बिगड़ता है यदि तब भी तो परेशानी नहीं, शिव को गरल मजबूरी में ही तो पीना पड़ा था।
—गरल पीकर हम विषधर बन जाएंगे। अपने को सुरक्षित रखना है तो इस विवशता को झेलना ही होगा !
—दो चेहरे लेकर हम सब जीते हैं; एक चेहरा हम इसे भी समझ लें, संबंधों के दायरे प्रत्येक गलत अपेक्षाओं के बीच लौह-आवरण में आबद्ध रहेंगे।
—एक निरापद व्यक्ति के लिए भय क्या है ?
—जीते हैं वही जो अपनी जिंदगी हमेशा मुट्ठी में लिये चलते हैं।

●

—आदमियों का जंगल सबसे खतरनाक है, क्योंकि यहां के पशुओं की 'पहचान' नहीं है, पहचान हो भी जाए तो नये-नये पशु जन्मते रहते हैं। अनंत ज्ञान की तरह जन्मने की यह पहेली भी अनंत है।
—ऐसे जंगल में हमें जीना है; दूसरे के लिए शायद हम भी हिंसक प्राणी हों; इस ज्ञानबोध के साथ संबंधों को घड़ियाल के अंडों की तरह पालिए जमीन पर, आप सुरक्षित रहेंगे। घड़ियाल पानी की अतल गहराइयों में ही अपनी शक्ति सुरक्षित रखता है; जमीन उसके लिए मात्र क्षण भर का उपादान है।
—क्षण की नहीं, सदियों की प्रतीक्षा करें हम—क्योंकि मनुष्यता को हम कभी नष्ट नहीं होने देंगे, इसी किलकारी के साथ हमारा जन्म होता है।

## अगला अंक : कुछ विशिष्ट आकर्षण

- जालसाजी में वैज्ञानिक भी पीछे नहीं हैं
- देशभक्त डाकू: जिसने हमेशा पाकिस्तान में डाका डाला
- इक्कीसवीं सदी एशिया की होगी
- मौत के साये में पलती हिलती मीनारें
- जार्ज बर्नाड शॉ की प्रेमिका हत्यारिणी थी !
- विश्व का सबसे बड़ा छलिया— जिसने मायापुरी बसायी
- सूक्ष्म शरीर की सहायता से बृहस्पति लोक की यात्रा

### ज्योतिष : आपकी परेशानियों का निदान

इस स्तंभ के लिए अप्रैल अंक में आमंत्रित प्रश्नों में से चुने हुए प्रश्नों के उत्तर। अगले अंक से ही इस नये लोकप्रिय स्तंभ की शुरुआत।

तेहरान जा रहे ईरानी विमान की परिचारिका की आंखों में न कोई खुशी है और न ही शराब की खुमारी...। पत्रिकाओं की मेज पर इस्लामी संदर्शन मंत्रालय से प्रकाशित और जम्हूरियत का गुणगान करनेवाले अखबारों का ढेर है।

अलवांद पहाड़ के साये में फैला तेहरान कुदरत की खूबसूरती का खजाना है। लेकिन अब बेजान-सा लगता है। दो मोरचों पर एक साथ लड़ रहा है—ईरान। एक मोरचा मुल्क के भीतर ... खून-खराबे से भरी घरेलू जंग, दूसरा बाहर इराक से ऐलान के साथ चल रही जंग।

**गरीबी का साम्राज्य**

पहलवी-जमाने की सारी यादगारों पर पीछा लगाया जा रहा है। मध्य तेहरान का नंदन-कानन फराह दिवा पार्क झाड़-झंखाड़ से ढक गया है। फव्वारे जंग खा रहे हैं। महल और शाही इमारतों पर ताले पड़ गये हैं या फिर मुल्लाओं के मनमाने ढंग से इस्तेमाल होने लगे हैं। शाह जाते-जाते मुल्क की दौलत से दस हजार करोड़ डालर स्विस बैंक में पहुंचा गये। अब ईरान पैसे-पैसे को मुहताज है। 'मुना-रिकीन' (इराक सहित हर विरोधी) से लंबी लड़ाई लड़ रहा है, तेल का अंबार लग रहा है और ईरानी तेल पर पाबंदी की अपनी चाल अमरीका कामयाबी से चलाये जा रहा है।

एक समय पश्चिम का टुकड़ा बन चुका तेहरान फिर पूरब का शहर बन गया

आयतुल्ला खुमैनी

● डॉ. ऋतुपर्ण शर्मा
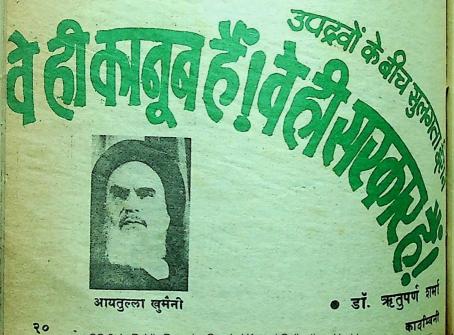
है। मांसल औरतों और फारसी तहजीब के लिए जानी-मानी राजधानी में हर तरफ बेढंगे लिबास नजर आने लगे हैं। खातूनें जुल्फें बिखराये और लापरवाही से कपड़े पहने चाहे-जहां देखी जा सकती हैं। हिलटन होटल के अहाते में छातियां खोलकर घूमनेवाली खूबसूरत नाजनीनों का धंधा खुमैनी राहबर (नेता) ने चौपट कर दिया है। पश्चिमी लिबास पहननेवाली लड़कियों पर अब आवाजकशी और गालियों की बौछार होती है। रायल तेहरान हिलटन अब होटल इस्तगलाल (आजादी) हो गया है।

**उपद्रवों से छलकता तेहरान**

पड़ोस में चलनेवाली लड़ाई की फिल्म छोड़कर तबियत बहलाने के लिए लोग फिरदौसी बाजार घूम आते हैं! टेलीविजन और रेडियो के कार्यक्रम मुल्कपरस्ती के नगमों, कुरान की आयतों और खुमैनी के साथ-साथ दूसरे मुल्लाओं के फतवों से ठसाठस हैं। वलीं अस्र पहलवी और तख्ते जमशेद-जैसी सरसब्ज रौनकदार गलियां उजाड़ हो चली हैं। उनके किनारे
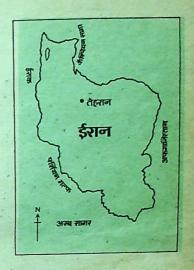
दरवाजे आधे खोलकर चलनेवाली चमचमाती दुकानें हंगामे की आशंका होने पर कभी की बंद हो सकती हैं।

तेहरान उपद्रवों से छलक रहा है। गोलियों की आवाज चाहे-जब सन्नाटा तोड़ देती हैं। इंकलाबी सिपाही 'पसदरां' जहां-कहीं 'मुजाहिदीनें खल्क' नाम से मशहूर वामपंथी उदारवादी छापामार गुटों से टकरा जाते हैं, वहीं लड़ाई। मध्य तेहरान लड़ाई का मैदान बन गया है। दक्षिणी तेहरान के मेहनतकश लोगों पर

**व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु लड़नेवाला व्यक्ति हर युद्ध में अंततः हारता है… यह स्वार्थ—जितना निकृष्ट होता है, हार का नतीजा भी—उतना ही कड़वा होता है…आज समूचा ईरान इसी कड़वाहट से लबालब है…। मौजूदा हालात में वहां हुकूमत, बंदूक, दहशत, चीख और खामोशी-जैसे कुछ शब्द हैं, जिनको हरकत में कह सकते हैं। ईरान की हाल की यात्रा से लौटे डॉ. ऋतुपर्ण शर्मा के ताजा अनुभव…**

दिवंगत शाह का पुत्र रज़ा—नया शहंशाह!

'पसदरां' का असर बढ़ा है। उत्तरी तेहरान के मध्यम और उच्च मध्यम वर्गीय उपनगरों में मुजाहिदीनों ने हथियारों के खुफिया जखीरे और छिपने के अड्डों का जाल बिछा लिया है।

**साफ-सुथरा भारतीय दूतावास**

भारतीय राजदूत अकबर खलीली का दूतावास हंगामी इलाके के बीच भी साफ सुथरा है। वे बताते हैं कि गोलीबारी के ये नजारे तेहरान की रोज-ब-रोज के जिंदगी के हिस्से बन गये हैं। अब उन्हें नजरअंदाज कर दिया जाता है। सड़कों की पटरियों और दीवारों पर गोलियों के बेशुमार छेद हालात के गवाह हैं। इस दुश्मनी के कारण ईरान की जिंदगी इतनी खूंख्वार हो गयी है, कि पहचान में नहीं आती। एक दिन 'पसदरां ने उत्तरी तेहरान में सलाबाद महल के पास कुछ बड़े मुजाहिदीन नेताओं को ठिकाने लगा दिया। अगले ही दिन मुजाहिदीनों ने तीस 'पसदरां' मौत के घाट उता... हिसाब चुका दिया। कुल मिलाकर ... गिनने का काम होकर रह गया है... गृहयुद्ध।

**इंकलाबी सिपाहियों का ...**

तेहरान में डर का बाजार गरम है। ... जारी है। शाम छह बजते न बजते ... सुनसान हो जाती हैं। इंकलाबी सि... राह चलते को रोकने लगते हैं। लोग ... नहीं खोलते। सोच-समझकर बोलते हैं ... बात कहीं जालिम 'पसदरां' के कान ... न पड़ जाए, जिसके खुफिया बे-पहचान... गाड़ियों में घूमते रहते हैं। लोग बात घु... हैं, खासकर किसी अजनबी से होनेवा... बातचीत में। बोलना ही पड़े तो सरका... नजरिये की महफूज पटरी पर चल प... हैं।

इस्लामीकरण की आंधी ने ई... की सूरत बदल दी है। इंकलाबी सिपा... हियों की सेना मुल्लाओं की मरजी के मुताबिक मजहबी जुनून में डूबी है। मुल्ला... उन्हें जोश देते हैं, करबला कुरबानी मा... रही है। और ये इंकलाबी बंदे 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाते हुए टूट पड़... हैं। शुरू के हल्ले में इराक खुजिस्तान के रेगिस्तान में घुस आया है। अब इंकलाबी बंदे कवायद और अनुशासन में ढली इराकी पल्टनों को भारी पड़ रहे हैं। अहवाज... सुसनगार्द में उन्होंने इराकियों की एक पूरी रेजीमेंट पकड़ ली और उससे सोवि... यत-संघ में बने एक हजार टैंक छीन लिये।

शुरू में तेजी से बढ़े इराकी दस्तों का मुकाबला 'पसदरां' से हुआ तो छठी का दूध याद आ रहा है। राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने कोशिश की कि हथियाये ईरान-इलाके का इस्तेमाल, शत्त-अल-अरब जहाजी रास्ते पर कब्जे के लिए, सौदेबाजी में कर लें। इसमें वे नाकामयाब रहे। एक झपाटे में काम तमाम कर देने को उठा हाथ लंबी लड़ाई के दलदल में जा गिरा है, जो धीरे-धीरे ईरान और इराक दोनों को निगलता जा रहा है।

### असली हुकूमत 'पसदरां की

शहादत के उतावले 'पसदरां' के लोगों ने खुमैनी का विश्वास जीत लिया है। अब वे ही कानून हैं, सरकार हैं। मुल्क में एकमात्र-ऐसे लोग जो कुछ कर रहे हैं। कैसे खड़ी हुई है यह इंकलाबी फौज? आयतुल्ला खुमैनी को महसूस हुआ, कि मुल्लाओं के पास अपनी फौजी ताकत का होना जरूरी है। उसने अपने साथी मुल्लाओं से कहा कि निचले तबके के अल्लाह से डरनेवाले नौजवानों की भरती शुरू कर दें। बस खड़ी हो गयी मुल्लाओं और खुमैनी के प्रति जवाबदेह और वफादार बंदों की फौज। सदर दफ्तर उस इमारत में, जहां पहले अमरीकी दूतावास था। आयतुल्ला के करीबी प्रकाशक डा. कलीम सिद्दीकी बताते हैं कि 'पसदरां' में बावन हजार नौजवान हैं और भरती जारी है। उनको सैनिक, बगावत का दमन, खुफियागिरी, अंदरूनी हिफाजत और

ईरान-वासियों का अमरीका विरोधी प्रदर्शन

अवाम से ताल्लुक के पांच कामों में लगाया गया है। सबसे ऊपर एक परिषद है, जिसमें फौजी हिस्से के सदर मोहसिन रिजाल अहम हस्ती हैं।

मुल्क के विश्वविद्यालय बंद हैं और अभी दो-तीन साल और रहेंगे। इसलिए कि इस्लामी पाठ्यक्रम तय होने हैं। इस बीच कम पढ़े-लिखे बेशुमार ईरानियों के लिए 'पसदरां' से बढ़कर शगल नहीं। ईरान में आज वही एकमात्र फलता-फूलता उद्योग है। अब इन लोगों का दखल एक और हमशक्ल संगठन 'जिहादे-साजंदेगी' के जरिये समाज कल्याण में भी हो गया है। उम्मीद दी जा रही है कि मुल्क के ग्रामीण आबादी के अस्सी प्रतिशत को स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाएं, प्रायोगिक कृषि फार्म और ट्यूब-वैल-जैसी चीजें मुहैया करा दी जाएंगी।

सरकारी मामलों में बढ़ते बोलबाले और सत्ता केंद्र से नजदीकी की वजह से 'पसदरां' में मुजाहिदीनों और मास्को के हाथों में खेल रहे वामपंथियों की घुसपैठ हो रही है। ईरानी और विदेशी प्रेक्षक भी सोचते हैं, कि डावांडोल ईरान में खुमैनी के न रहने पर राजनीतिक हालात विस्फोटक होनेवाले हैं, जबकि इस्लामी पहरुए गुट सत्ता की लड़ाई में अपने-अपने मोहरे सरकाने के लिए एक दूसरे से भिड़ जाएंगे।

मुल्लाओं की जमात में कितने ही मतभेद हैं। 'रूहे अल्लाह खुमैनी' के संबोधन और हर जगह खुमैनी की तसवीर को कुछ लोग पाखंड कहते हैं। आयतुल्ला-समर्थक कहते हैं कि तसवीर कोई बुत नहीं है, जिस पर इस्लाम में पाबंदी है। और 'रूहे अल्लाह' तो नायब-इमाम का दरजा बख्शना है।

**खुमैनी के साथियों का सफाया**

इंकलाब के वक्त के खुमैनी के ज्यादातर साथियों को मुजाहिदीन साफ कर चुके हैं। अब ऐसे लोगों की बाढ़ आ गयी है, जो दाढ़ी बढ़ाये, कुरान की आयतें बोलते घूमते हैं। इस खींचतान के बीच खुमैनी 'पसदरां' की तरफ झुकते जा रहे हैं, जिसमें उनकी उम्मीदों के असली इंकलाबी मौजूद हैं। बंदूक संभाले मजहबपरस्त आदमी।

शाह के जमाने के आला अफसरों और वजारत के पचान्नवे प्रतिशत लोग हटा दिये गये हैं। बड़ी-बड़ी कुरसियों ... पहुंच गये, छोटे-मोटे किरानी किसी ... रफ के नहीं।

**काला बाजारी पनप रही**

तीस लाख बैरल से ज्यादा तेल हर ... बाहर भेजनेवाले ईरान को आज पांच ... बैरल पर गुजारा करना पड़ रहा है। ... दान का महाकाय तेल-शोधक कारखा... इराकी हमले में तबाह हो चुका है। पश्चि... देशों की ईरानी तेल पर पाबंदी ने ... ठप कर दिया है। तेल निर्यातकों की ... मुश्ती और महंगी लड़ाई का खर्च अलग ... है। ईरान को अब पेट्रोल उत्पादनों ... आयात करना पड़ रहा है। मजबूरी ... हर माह पचीस से पचास करोड़ डालर ... घाटा उठाकर गाड़ी खींचते जाने की। ... माली दबाव ने आम इरानी को दफ्तरे... (राशन कार्ड) की गिरफ्त में ढकेल दि... है। खाद्य-सामग्री और ईंधन के वितर... केंद्रों पर सारे दिन लंबी कतारें लगी रह... हैं। कालाबाजारी पनप रही है। कीम... चुकाने को तैयार हो तो हर चीज हाजि... धंधा करनेवाले या बाजारी लोग राशन ... माल कालेबाजार में पहुंचा रहे हैं। मु... बोल नहीं सकते, ये लोग मदद करते ... हैं। सरकार का इन पर कोई काबू नहीं।

दफ्तर-चे हासिल करने के लिए छान... बीन और राजनीतिक वफादारी की त... कीकात के लंबे दौर से गुजरना पड़ता है।

**अमीरी खत्म हो रही है**

उच्च वर्ग और उच्च-मध्यम वर्ग तेजी से ...

खत्म हो रहा है। इन लोगों को नौकरियों से निकाल दिया गया है या धंधे और कारखाने बंद हो जाने से ये स्वयं बेरोजगार हो गये हैं। अब वे उन दिनों की बचत से काम चला रहे हैं, जब दो काम करके सालाना पचास हजार डालर कमाते थे।

विदेशी ताल्लुकात के मामले में ईरान ने काफी दुश्मन बना लिये हैं। इजराइल, इराक-जैसे देशों से संबंधों की बात एक तरफ कर दें, तब भी मुल्लाओं की निगाहों में सोवियत संघ काफिर है और अमरीका शैतान। अरब देशों के शाह, शेख और अमीरों को ईरान साम्राज्यवादियों का पिट्ठू कहता है और पाकिस्तान के सदर जिया को 'जिया-उल-बिलात' यानी झूठ का पिटारा। ले-देकर बस हिंदुस्तान रह जाता है, जिसे खुमैनी इज्जत की नजर से देखता है, संजीदगी से अपना हमदर्द मानता है। सही और गलत, अच्छे और बुरे के बारे में महात्मा गांधी की राय को उतनी ही अहमियत देता है, जितनी पैगंबर मुहम्मद की इस्लामी क्रांति को। फिर भी अरब देशों के साथ खड़े होने के भारतीय रुख को वह 'चांदी के चंद टुकड़ों पर बिक जाना' मानता है।

पिछले साल के आखिर में अफगानिस्तान में सोवियत दखलंदाजी की वर्षगांठ के मौके पर, ईरानी नौजवानों ने तेहरान स्थित सोवियत दूतावास में भारी तोड़-फोड़ की। मास्को ने आपत्ति की, तब कह दिया गया कि यह क्रोधित अफगानों की

शाह— विश्व शक्ति बनने का अधूरा स्वप्न

करतूत है। और जब सोवियत संघ ने मुस्तकिल तौर पर अफगानिस्तान में कब्जा जमा लिया है, अपना दूतावास तब फौरी तौर पर ईरानी कब्जे में चले जाने से परेशान होने की क्या जरूरत?

इन खतरनाक हालातों से घिर जाने पर भी लगता है, कि इस्लामी नेतृत्व कोई बहुत परेशान नहीं है। उसे यकीन है कि इमाम खुमैनी के जरिये कुरान के रास्ते पर चल कर मुल्क हर बीमारी से छुटकारा पा लेगा। बस थोड़ा-सा समय लगेगा चीजों को सही रास्ता अख्तियार कराने में। मजहबी जुनून से भरी सरकार के हाथों हुई देश की दुर्दशा पर टिप्पणी करते हुए एक विदेशी को कहना पड़ा है कि 'विश्वास पहाड़ हिला देता है लेकिन ईरानी मुल्लाओं ने साबित कर दिया कि वह एक मुल्क भी नहीं चला सकता।' ●

> **समय आएगा जबकि उदारता और नम्रता से कहे हुए तीन शब्दों को, घृणित तीक्ष्णता से लिखे हुए तीन सहस्त्र ग्रंथों की अपेक्षा, कहीं अधिक कल्याणकारक पुरस्कार मिलेगा।**
> —हस्कर

# वहां जिंदा हैं कब्र में दफनाये गये लोग

• डेविड टिनडाल
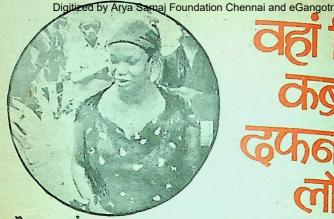
वेस्ट इंडीज का हिती द्वीप एक ऐसा द्वीप है, जिसे जीवित मुरदों का द्वीप कहा जा सकता है। इस द्वीप में कई ऐसे पुरुष और महिलाएं हैं, जो दसियों साल पहले मर चुके थे, कब्र में दफनाये जा चुके थे, लेकिन वे फिर भी आज जिंदा हैं।

क्लेवेस नारकिसे नामक एक व्यक्ति की मृत्यु अस्पताल में २ मई, १९६२ को हुई। उसे मृत्यु के दूसरे दिन गांव के निकटवर्ती कब्रिस्तान में दफना दिया गया। चार-पांच साल बाद उसे जिंदा लेकिन दुबले-पतले, फटेहाल, दीन-हीन व्यक्ति के रूप में देखा गया। सबसे पहले उसे उसकी बहन एंजेलिना ने अपने घर पर बैठे देखा और भूत समझकर डर के मारे बेहोश हो गयी।

नारकिसे जब जिंदा था, तब उसका अपने पड़ोसी से जमीन को लेकर कई वर्षों से झगड़ा चल रहा था। झगड़ा इतना बढ़ा कि मारपीट की नौबत तक पहुंच गया। पड़ोसी ने नारकिसे से निपटने के लिए एक तांत्रिक ओझा का सहारा लिया।

आज नारकिसे को विश्वास है कि उस ओझा ने नारकिसे के भोजन में जहर मिला दिया, जिससे कुछ ही दिनों में नारकिसे को सांस लेना दूभर हो गया और उसके कफ में खून जाने लगा।

नारकिसे का कहना है कि उसे सब कुछ याद है कि अस्पताल में इलाज के बाद वह कैसे मरा, उसे दो डॉक्टरों ने किस प्रकार मृत घोषित किया और उस समय उसकी बहन एंजेलिना ने किस तरह विलाप किया।

उसके बाद उसे यह भी याद है कि उसे ताबूत में रखा गया। ताबूत में रखने के बाद डॉक्स के ऊपर की लकड़ी का तख्ता रखकर, उसमें कीलें ठोककर बंद किया गया। कीलें ठोकते समय

ऊपर: जादू-टोने की शिकार फ्रांसिना

बायें : नारकिसे : कब्र से निकलने के बाद। दायें : ओझा मार्शल पियरे

एक कील तख्ते को चीरती हुई उसके गाल में गड़ गयी, जिसका निशान उसके गाल पर आज भी है।

जब उसे कब्र में दफनाकर सभी रिश्तेदार चले गये, तब रात के समय वही ओझा आया। उसने कब्र खोदी, उस ताबूत को खोला और उसने उसे उसके नाम 'नारकिसे' से इस तरह पुकारा, जिस तरह कोई सोते हुए आदमी को जगाने के लिए पुकारता है। उसकी पुकार पर वह उठ बैठा। ओझा उसे निकालकर बाहर ले आया और उसे पीने के लिए कोई औषधि दी। इसके बाद ओझा उसे उसके हाथ बांधकर मीलों पैदल चलाता हुआ अपने खेत पर ले गया।

उस ओझा ने नारकिसे से दो साल तक अपने खेत पर गुलाम मजदूर के रूप में काम लिया। वहां पर इस तरह के और भी गुलाम मजदूर थे। जब कई साल बाद वह ओझा मर गया और किसी तरह ये गुलाम मजदूर पुलिस के हाथों पड़ गये, तब पुलिस ने उन्हें जेल में डाल दिया और घोषणा करायी कि इन गुलाम मजदूरों के रिश्तेदार आकर उन्हें ले जाएं। बाकी मजदूरों को तो उनके रिश्तेदार ले गये, लेकिन नारकिसे का इतनी दूर कौन रिश्तेदार था? जब उसे लेने कोई नहीं आया, तब पुलिस ने उसे छोड़ दिया।

**समुद्र से घिरा एक छोटा-सा द्वीप हिती, जहां आज भी ऐसे कई स्त्री-पुरुष जिंदा हैं, जो वर्षों पहले मर चुके थे, कब्र में भी दफनाये जा चुके थे। एक ऐसे द्वीप की रोमांचक दास्तान, जहां जादू में बंधी है, सबकी जिंदगी ही नहीं, मौत भी!**

नारकिसे के पास पैसा तो एक भी था नहीं, फिर गुलाम मजदूर के रूप में उसे जो यातनाएं दी गयी थीं, मार-मारकर जो जी-तोड़ मेहनत करायी गयी थी, उससे वह इतना कमजोर हो चुका था कि वह कुछ भी करने की स्थिति में नहीं था। लिहाजा वह हिती के दक्षिणी भाग के एक गांव में जा बसा और उसने किसी तरह अपने आपको जिंदा रखा। फिर कुछ हालत सुधरने के बाद वह अपने गांव लौट आया।

हिती की राजधानी पोर्ट-ऑव-प्रिंस के अस्पताल के मनोवैज्ञानिक डॉ. लामरेक डोयोन कई साल की लगातार कोशिशों से नारकिसे को मानसिक रूप से स्वस्थ कर पाये, जिससे वह अपने जीवन की इस भयावह दुर्घटना के आतंक को बहुत कुछ भूल सका।

वहां के डॉक्टर अभी इस बात का पता लगाने की कोशिश में है कि वह कौन-सी औषधियां थीं, जिनके प्रयोग से ओझा ने नारकिसे को 'मार' भी दिया और फिर 'जिला' भी लिया। डॉ. डोयोन पिछले दस साल से इस रहस्य को सुलझाने में लगे हुए हैं, क्योंकि उनके सामने नारकिसे-जैसे और भी कई व्यक्ति आये हैं।

**एक और दर्दभरी दास्तान**

डॉक्टर डोयोन ने नारकिसे को तो ठीक कर लिया है, लेकिन वे तीस वर्षीय एक महिला फ्रांसिना को ठीक नहीं कर पाये हैं। फ्रांसिना उनके उपचार में पांच साल से है। फ्रांसिना की युवावस्था में अन्य लड़कियों की तरह शादी हुई। उसका एक प्रेमी भी था, जिससे उसने शादी के बाद भी अपने संबंध बरकरार बनाये रखे। इस पर पति ने दुखी होकर एक ओझा की शरण ली। ओझा ने फ्रांसिना को भी ऐसा ही जहर दिया, जिससे वह 'मर' गयी। नाते-रिश्तेदारों के सामने उसे दफनाया गया। तीन साल बाद नाते-रिश्तेदारों को पता चला कि फ्रांसिना भी नारकिसे की भांति जीवित-मृतकों में से एक है।

ओझा ने उसे भी कब्र में से निकालकर जीवित किया और दो साल तक उससे अपने खेत पर गुलाम मजदूर की तरह काम लिया, लेकिन उसके साथ इस बुरी तरह व्यवहार किया गया कि वह दो साल बाद ही कोई काम करने के लायक नहीं रही। फिर उस 'नाकारा' औरत को खेत से बाहर दूर ले जाकर फेंक दिया गया। लेकिन उस पर कुछ राहगीरों की नजर पड़ गयी। वह उस समय ऐसी अवस्था में थी कि बोल भी नहीं सकती थी। राहगीरों ने पुलिस को सूचना दी और पुलिस ने उसे अमरीकन मेडिकल मिशनरी में भेज दिया, जहां वह बड़ी मेहनत के बाद स्वस्थ हो सकी। लेकिन ओझा ने उसकी कलाइयों को तोड़ दिया था, जिसकी वजह से वह अपने हाथ से खाना भी नहीं खा सकती थी। खाना उसे दूसरे लोग ही खिलाते हैं। और, सबसे दुःखद स्थिति तो यह है कि अपने गांव, अपने पति या मां-बाप के पास भी नहीं

लौट सकती, क्योंकि वे उसे जाति-बाहर कर चुके हैं।

डॉ. डोयोन का फ्रांसिना के बारे में कहना है कि वह नहीं कह सकते कि फ्रांसिना ठीक हो जाएगी या नहीं, और अगर ठीक हो पायी, तो कितने समय में, क्योंकि तावूत में ऑक्सीजन की कमी की वजह से फ्रांसिना का मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो चुका है। दूसरी बात, कमजोर मस्तिष्क के कारण फ्रांसिना अपने आपको आज भी उस ओझा का गुलाम मजदूर मानती है।

**मृत महिला उठ बैठी**

ऐसे ही एक ओझा का पता भी चल चुका है। उसका नाम मार्शल पियरे है। पियरे ने भी इस बात का इकबाल किया है कि उसने इस तरह कई लोगों को जहर दिया है। पियरे हर समय बेसबॉल कैप पहने और धूप का चश्मा लगाये रहता है, जिससे लोग उसकी आंखों में झांककर न देख सकें। वह सेंट मार्क नामक कस्बे में साइकिल पर सवार हो, घूमता-फिरता है। उसने एक बार एक अवसर पर अपनी चमत्कारी-शक्ति का प्रदर्शन भी किया था। उसके सामने एक ऐसी औरत लायी गयी थी, जिसे किसी दुश्मन ने जहर देकर मार दिया था। पियरे ने उस औरत को सफेद चादर में लपेटकर आदमी की एक खोपड़ी के साथ ताड़ के पत्तों से कब्र में दफनवा दिया। इसके बाद पियरे ने कांच के चमकदार गिलास को एक हाथ में लेकर मंत्रोच्चारण किया। जब वह गिलास में से लेकर मुरगी के बच्चे के खून को शव पर छिड़क रहा था, तब उसके अनुयायी जोर-जोर से मंत्रोच्चारण दोहरा रहे थे। तभी कुछ देर में वह मृत महिला उठ बैठी। उसे बताया गया कि यह उसका पुनर्जन्म है। इसके बाद उस औरत की बांह पर एक टीका लगाया गया और इस टीके पर एक औषधि लगायी गयी, जिससे वह औरत चौबीस घंटे बाद बिलकुल ठीक-ठाक हो गयी।

पियरे ने वह दवा भी बनाकर दिखायी। उसने झाड़ियों से लकड़ियां एकत्र कर आग जलायी और उस पर देगा रखकर किसी कब्र से निकाली गयीं ताजा हड्डियों को पकाया और फिर उसमें एक मरा हुआ मेढ़क और सेंद्र क्रैब (एक प्रकार का केंकड़ा) डाला। ये दोनों जीव बहुत ही जहरीले होते हैं। इन सबको पकाकर कुछ द्रव्य और कुछ पाउडर बनाया गया।

इस द्रव्य और पाउडर को न्यूयार्क की लेबोरट्री में परीक्षण के लिए भेजा गया।

यहां के रहनेवाले अधिकांश लोगों के लिए ये औषधियां उस काले जादू का हिस्सा हैं, जिसका यहां पर बहुत ही जोर है। यहां के लोग जादू-टोने पर बहुत विश्वास करते हैं, और उनकी जिंदगी और मौत इसी जादू से बंधी हुई है। ●

**हर नयी राय, आरंभ में ठीक एक के अल्पमत में होती है।**

—कारलायल

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में

# भाड़े के कातिल

● राकेश कोहरवाल

१० दिसंबर, १९८१ को व्हाइट हाऊस (अमरीका का राष्ट्रपति निवास) ने एक सनसनीखेज रहस्योद्घाटन किया कि लीबिया के नेता कर्नल गद्दाफी ने राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन की हत्या हेतु एक मौत का दस्ता भेजा है।

तीसरे दिन व्हाइट हाऊस ने अपने इस पिछले बयान की पुष्टि करते हुए कहा कि कर्नल गद्दाफी ने राष्ट्रपति रीगन की हत्या को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से न केवल एक दस्ता ही भेजा है, बल्कि दो दस्ते भेजें हैं। इस संदर्भ में अब पूर्ण विवरण मिल जाने के बाद व्हाइट हाऊस को ऐसे षडयंत्र के बारे में जरा-सी भी शक की गुंजाइश नहीं रही है और इन दस्तों में शामिल हत्यारों के अनुमान से तैयार किये गये रेखा-चित्र खुफिया विभागों, अमरीकी कस्टम सर्विस तथा सीमा-सुरक्षा फोर्स के पास भेज दिये गये हैं।

**राष्ट्रपति की हत्या के षडयंत्र**

अमरीका के राष्ट्रपति की सुरक्षा और हत्या के षडयंत्रों या प्रयास की खबरें तो वैसे आम हो चली हैं, लेकिन इन मौत के दस्तों के बारे में जो विवरण दिया गया, वह वास्तव में कहीं ज्यादा रोचक और सनसनीखेज था। हालांकि कर्नल गद्दाफी ने ऐसे किसी भी षड्यंत्र का खंडन किया। पर इस विवरण ने दुनियाभर में नयी आतंकवादी तकनीक और उसकी पृष्ठ-भूमि पर से काफी कुछ परदा हटाने का काम किया है।

इस विवादास्पद षडयंत्र के बारे में बताया गया है कि इन दो मौत के दस्तों में 'भाड़े के कातिल' शामिल हैं। इन दस्तों में 'फिलीस्तीनी मुक्ति मोरचे', 'जापानी रेड आर्मी' तथा प. जरमनी के 'बादेर मिनोफ' गिरोह के सदस्यों का शामिल

होना बताया गया। पहले दस्ते में शामिल पांच सदस्यों के नाम इब्राहिम अलहया, अहमद जुमा (दोनों ईरानी), अहमद अब्बास (फिलीस्तीनी), अली शफीक (लीबियाई) तथा ल्युट्ज (स्विस) इन पांचों 'भाड़े के कातिलों' के बारे में कहा गया कि इनको कर्नल गद्दाफी के संरक्षण में त्रिपोली में रह रहे दुनिया के मशहूर आतंकवादी इल्यिच रामीरेज सिमरेज कार्लोस ने प्रशिक्षित किया है।

ओ) ने ही की। और फिर जब विमान-अपहरण की तकनीक का प्रचलन हो गया, तब इसी पी. एल. ओ. ने म्यूनिख (प. जरमनी) में ओलंपिक खेलों के दौरान इजरायली खिलाड़ियों की हत्या करके आतंकवाद में 'मौत के दस्तों' के प्रयोग को जन्म दिया। यह बात दूसरी है कि आज पी. एल. ओ. खुद भी इसी तकनीक का शिकार बन गया है, क्योंकि इजरायल दूसरे देशों के आतंकवादियों को खरीद-

लीबिया द्वारा अमरीका भेजे गये कातिलों के गिरोह के तीन सदस्य

दूसरे मौत के दस्ते के बारे में कहा गया कि इसमें छह सदस्य शामिल हैं और इसकी अगुआई खुद कार्लॉस कर रहा है। बाकी सदस्यों को उपरोक्त आतंकवादी संगठनों का ही सदस्य बताया गया।

**मर्ज बढ़ता गया, दवा के साथ-साथ**

वैसे तो आतंकवाद को ईजाद करने के मामले में अमरीका के अपराधी गिरोह 'माफिया' का नाम लिया जाता है, लेकिन आतंकवाद के जरिए राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु 'विमान-अपहरण' की शुरूआत फिलीस्तीनी मुक्ति मोरचे (पी. एल.

कर पी. एल. ओ. पर हमले करवा रहा है।

**कैसे-कैसे हैं ये गिरोह ?**

पी. एल. ओ. द्वारा आतंकवाद के राजनीतिकरण के बाद से लातिन-अमरीकी देश, प. जरमनी, इटली और जापान इस लहर से ज्यादा प्रभावित हुए हैं। इंग्लैंड की 'आयरलैंड लिबरेशन आर्मी' ने भी आतंकवादी तकनीक को अपना लिया है। इस तरह दुनियाभर में तरह-तरह के आतंकवादी गिरोह बन गये हैं। इनमें से अधिकांश का काम तो केवल भाड़े की कमाई खाना ही है। सौदागर इनको भरपूर कीमत

देते हैं और इनके सदस्य उस काम को बगैर किसी हिचक के सरअंजाम देते हैं। इनको राजनीति, देश, धर्म और परिणाम से कोई लेना-देना नहीं है। वे तो केवल 'भाड़े के कातिल' भर हैं।

आज ऐसे 'भाड़े के कातिलों' को तैयार करनेवाले गिरोहों में पी. एल. ओ. के अलावा 'जापानी रेड आर्मी', इटली 'रैड ब्रिगेड', प. जरमनी का 'वादेर मिनोफ' गिरोह, 'अफरीकन यूनिटी फोर्स', कांगो का 'मैड माइक', लेबनान का 'शिया ग्रुप', अज्ञात संगठन 'ब्लैक कैट', पाकिस्तान का 'अल जुल्फिकार', आयरलैंड की 'रेड आर्मी', इंडोनेशिया का 'कमांडो जेहाद', कनाडा का 'कुवेक फ्रंट' शामिल माने जाते हैं।

**पिछले एक दशक में पांच लाख राजनीतिक हत्याएं हुई हैं। और इनमें से अधिकांश हत्याओं के जिम्मेदार हैं वे भाड़े के कातिल, जिनका न कोई आदर्श है और न सिद्धांत। मात्र धन के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं, एक आम आदमी से लेकर किसी राष्ट्रपति की हत्या तक!**

**आतंकवादियों में भारतीय भी**

पिछले दिनों पंजाब में कथित खालिस्तानी उग्रपंथियों द्वारा की गयी राजनीतिक हत्याओं के सिलसिले में भी अकसर 'डैथ स्काड' का उल्लेख आया है।

इस संदर्भ में 'पी. एल. ओ.' द्वारा भारतीय युवकों की भरती को नजरअंदाज नहीं किया जा रहा है। ऐसी भरती का भंडाफोड़ ८ दिसंबर, १९८१ को एक अंगरेजी संवाद-समिति ने किया। उस समाचार में कहा गया था कि 'पी. एल. ओ.' काफी संख्या में भारतीय युवकों को 'भाड़े के कातिलों' के रूप में प्रशिक्षित कर रहा है। हालांकि, दूसरे ही दिन 'पी. एल. ओ. की नयी दिल्ली स्थित दूतावास ने 'भाड़े के कातिल, तैयार करनेवाली बात का तो खंडन कर दिया, लेकिन इतना अवश्य स्वीकारा कि 'पी. एल. ओ.' के लिए सौ भारतीय युवक बतौर स्वयं सेवक काम कर रहे हैं।

**क्या करते हैं ये गिरोह?**

अभी हाल ही में पिछले वर्ष १८ दिसंबर को रोम स्थित नाटो सैन्य संगठन में तैनात अमरीकी सेना के ब्रिगेडियर जनरल जेम्स एल. डोजियर को उनके घर से अपहृत कर लिया गया। बाद में इस अपहरण की जिम्मेवारी इटली की 'रेड ब्रिगेड' ने अपने ऊपर लेते हुए घोषित किया कि जनरल को फांसी दे दी गयी है; पर उनका यह दावा झूठा था। डोजियर को छुड़ा लिया गया है।

**राजनीति पर भाड़े के कातिल हावी**

पिछले वर्ष ही २५ नवंबर को डरबिन से बंबई आ रहे एयर इंडिया के बोईंग ७०७

को अपहृत करके सेशिल्स ले जाया गया। इन अपहरणकर्ताओं के बारे में भी कहा गया है कि वे 'भाड़े के कातिल' थे और किसी के इशारे पर भारतीय विमान के जरिए सेशिल्स पहुंचकर, वहां अपने उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे। इस संदर्भ में दक्षिण अफरीका की सरकार का नाम लिया गया, लेकिन उसने इंकार किया है। वैसे इस गिरोह की गिरफ्तारी में कांगो का आतंकवादी नेता कर्नल मिचेल और उसके गिरोह 'मैड माइक' के ४२ सदस्य हाथ आये हैं।

७ दिसंबर को कर्नल गद्दाफी के खिलाफ भी ऐसे ही 'भाड़े के कातिलों' ने अपना कारनामा दिखाया। लीबियाई एयर लाइंस का विमान रोम से त्रिपोली जा रहा था कि लेबनानी शिया ग्रुप के तीन आतंकवादियों ने विमान को अपहृत कर लिया और जबरन बेरूत ले गये।

चाड में पिछले तीन माहों से गृह-युद्ध चल रहा है और सरकारी सूत्रों के अनुसार लीबियाई प्रशिक्षित 'भाड़े के कातिलों' द्वारा लगभग चार हजार सैनिकों की हत्या की जा चुकी है। 'भाड़े के कातिलों' के कारनामों में सबसे रोचक कांड, पिछले साल ही २ मार्च को कराची से रावलपिंडी को उड़ान भर रहे पाकिस्तानी एयर लाइंस के विमान बोईंग ७३७ का अपहरण रहा। हालांकि शुरू में यह कहा गया कि इसका अपहरण भुट्टो के पुत्र मुर्तजा भुट्टो द्वारा गठित 'अल जुल्फिकार' के सदस्यों ने

कातिल कार्लोस, जिसकी कई देशों को तलाश है !

अफगानिस्तान की मदद से किया। लेकिन बाद में इस तथ्य की पुष्टि हुई कि मुर्तजा भुट्टो ने दुनिया के विख्यात आतंकवादी हत्यारे कार्लोस, जो कि काफी अरसे से कर्नल गद्दाफी की शरण में है, के जरिए विमान अपहरण करवाया। इस काम में जहां अप्रत्यक्ष रूप से लीबिया के नाम को भी शामिल किया गया, वहां यह भी कहा गया कि कार्लोस ने इस काम के बदले मुर्तजा से भारी रकम ली और इस योजना का संचालन भारत में रह कर किया।

### आतंकवादी गिरोह बढ़ रहे हैं

दरअसल इस आतंकवादी तरीके के उपयोग के मामले में भले ही सारे देश खुद के शामिल होने की बात से इंकार करते हैं, लेकिन सचाई यह है कि जहां ऐसे गिरोह अपराधी भावना से बने हैं, वहीं इनका इस्तेमाल राजनीतिक हत्याओं और एक-दूसरे देश से बदला लेने में किया जा रहा है।

यह बात अलग है कि आज आतंकवादियों को सबसे ज्यादा संरक्षण कर्नल गद्दाफी ही दे रहे हैं, लेकिन इसके बावजूद लीबिया जवाबी हमलों से बचा नहीं

है। वैसे मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात की हत्या में भी ऐसे ही 'भाड़े के कातिलों' का नाम लिया जाता है।

इस संदर्भ में एमनेस्टी इंटरनेशनल ने भी चिंता व्यक्त करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार आयोग का ध्यान आकर्षित किया है। उसके अनुसार पिछले एक दशक में दुनिया के अंदर पांच लाख राजनीतिक हत्याएं हुई हैं।

**कार्लोस कौन है?**

इन 'भाड़े के कातिलों' और आतंकवादी गतिविधियों में शामिल गिरोहों के बारे में तथ्य यह है कि 'मैड माइक' को छोड़कर अन्य तमाम प्रमुख गिरोहों के मुखियाओं के चेहरे सामने नहीं आये हैं। माफिया कातिलों के मुखियाओं का आज तक पता नहीं चल सका है।

इन सबमें जो व्यक्ति सबसे ज्यादा खतरनाक माना जा रहा है, वह है कातिल इल्यिच रामीरेच सिमरेज, जिसे दुनियाभर में कार्लोस के नाम से जाना जाता है। मजा इस बात का है कि वर्तमान में उक्त कातिल का अपना कोई गिरोह नहीं है। बल्कि 'भाड़े के कातिलों' को प्रशिक्षण देकर वह भारी रकम कमा रहा है। दुनियाभर की एजेंसियां उसकी तलाश में हैं, लेकिन वह लीबिया की राजधानी त्रिपोली में अपने छद्मवेश में मजे से रह रहा है।

कार्लोस को वेनेजुएला के एक वकील का पुत्र कहा जाता है। उक्त वकील मार्क्सवादी था। उसे, कार्लोस के लंदन में पढ़ाई के दौरान ही यह शक हुआ कि [illegible] पुत्र पूंजीवादी आदतें सीखता जा रहा है। उसने कार्लोस को वहां से हटाकर [illegible] भेज दिया। बाद में वह मास्को [illegible] लुमुम्बा विश्वविद्यालय में भरती हो [illegible] कहा जाता है कि वहीं वह के. जी. बी. के संपर्क में आया और उसको प्रशि[illegible] किया गया। बाद में पता नहीं क्या हुआ कि के. जी. बी. ने उसको अलग भी [illegible] दिया। ऐसा माना जाता है कि वास्तव में यह एक चाल थी, क्योंकि कार्लोस ने तमाम आतंकवादी गिरोहों और माफिया कातिलों को प्रशिक्षण देकर अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देशों के लिए सिर-दर्द पैदा किया।

यह बात अलग है कि वह खुद [illegible] अपार धन लेकर प्रतिस्पर्द्धी सरकारों [illegible] एजेंट के रूप में हत्याएं वगैरा करता और करवाता रहा है। लेकिन रूस के खिलाफ उसको किसी भी षडयंत्र में शामिल नहीं पाया गया है। कहते हैं कि राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या हेतु हत्यारे को प्रेरित करने में [illegible] कार्लोस शामिल था। इसी तरह ईरान के अपदस्थ शाह जब अमरीका के मैक्सिको नगर में रह रहे थे, तब भी कार्लोस उनकी हत्या करने की एक योजना में शामिल था।

वह तरह-तरह के नामों और चेहरों के सहारे लगातार सी.आई.ए. (अमरीका), डी.एस.टी. (फ्रांस), मोसाद (इजरायल) तथा एस. आई. एस. (ब्रिटिश) के एजेंटों को चकमा देता आ रहा है। —सी-४६, कृषि-विहार, मस्जिद मोठ, दिल्ली-४८

अरबी कहानी

# दर्द का रिश्ता

• त्वा हुसैन

अब्दुल बहुत ज्यादा परेशान था। उसके बाल बिखरे हुए थे और चेहरे से परेशानी जाहिर हो रही थी। उसे गांव-वालों के बरताव पर जरा भी ताज्जुब नहीं हो रहा था। उसे इस बात का एहसास था कि इंसान अपने गुनाहों को छुपाने के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है, यही उसकी प्रकृति है।

इस वक्त वह शीराज के नजदीक एक गांव के आखिरी सिरे के मकान के दरवाजे के सामने खड़ा था। उसके पीछे उसकी कमजोर-सी बीवी भी थी, जो कई दिनों से दर्द और तकलीफ के भंवर में फंसी हुई थी।

औरत के लिए दो कदम भी चल पाना कठिन था। मगर जब मुसीबत सिर पर आ पड़ती है, तब सब कुछ करना पड़ता है। वह ऐसी ही परिस्थितियों में घिरी हुई थी। एक धुंधली-सी आस लिये हुए वह अपने पति के साथ गांव के एक-एक मकान पर गयी। मगर उसकी किस्मत में नाकामी और निराशा लिखी हुई थी। इसीलिए उसे कहीं आसरा नहीं मिला। हर किसी ने उसे दुत्कार दिया।

और अब वे दोनों गांव के इस आखिरी मकान के दरवाजे के सामने खड़े थे। उन्हें यहां से भी किसी तरह की सहायता की उम्मीद नहीं थी। लेकिन आखिरी कोशिश कर लेने में क्या हर्ज है, यही सोच-कर अब्दुल इस मकान तक आया था। घोर निराशाओं के अंधेरे में उसे रफीक, उस मकान के स्वामी से आशा की एक हलकी-सी किरण मिलती नजर आ रही थी। और ऐसा ही हुआ।

उन दोनों को दयनीय अवस्था में देखकर रफीक को बड़ा तरस आया।

और उसने लोगों के विरोध की परवाह किये बगैर उन दोनों को अपने यहां रहने की इजाजत दे दी।

रफीक बहुत ही रहमदिल और सहृदय था। जब कभी वह किसी को मुसीबत में देखता, तब उसे लगता कि स्वयं उस पर मुसीबत आ पड़ी है। यही वजह थी कि उसने अब्दुल और उसकी बीवी को अपने यहां टिकने की इजाजत दे दी थी। वह अच्छी तरह जानता था कि गांव

का बच्चा-बच्चा उनसे नफरत करता है, उन्हें मुजरिम समझता है। लेकिन रफीक अपने दिल के हाथों मजबूर था।

लेकिन इस हमदर्दी के साथ-साथ उसके दिल में एक डर भी पैदा हो गया था। वास्तव में वह अपनी पत्नी नज्जो से भयभीत था। रफीक अपनी पत्नी नज्जो से बहुत डरता था। वह उसे नाराज नहीं कर सकता था। वह थी भी एक झगड़ालू और झक्की किस्म की औरत। घड़ी में तोला, घड़ी में माशा। उसका स्वभाव ही ऐसा था।

नज्जो जब लौटकर घर आयी, तो वही हुआ जिस बात का रफीक को डर था। उसे रफीक की हरकत बिलकुल ही पसंद नहीं आयी। वह गुस्से से आग बबूला हो गयी।

"क्या आवारा लोगों के लिए मेरा ही घर रह गया है? गांव के सारे मकान, स्थान और होटलें क्या उठ गयीं?" वह क्रोध से तमतमा उठी।

रफीक ने अब्दुल की वकालत में कुछ कहना चाहा, तो वह और अधिक भड़क उठी। कहने लगी, "अगर वे इतने ही शरीफ हैं तो गांव के चौधरी ने उन्हें अपने यहां आसरा क्यों नहीं दिया? गांव के किसी दूसरे आदमी ने उन्हें अपने यहां क्यों नहीं टिकाया?" एक क्षण चुप रहने के बाद वह फिर उबल पड़ी, "तुम्हारी अक्ल पर तो पत्थर पड़ गये हैं। कम से

कम यह तो सोच लिया होता कि दुनिया हमें क्या कहेगी ?"

बूढ़ा रफीक फौरन खुशामदी स्वर में कहने लगा, "अरी कमबख्त ! जरा धीरे बोल। वे दोनों सुनेंगे, तो क्या सोचेंगे ?"

"वाह ! यह भी खूब रही। मैं क्या किसी से डरती हूं ?" नज्जो तेज स्वर में कहने लगी, "मेरा अपना घर है। जो मेरे जी में आएगा, वही कहूंगी। तुम्हारी अक्ल तो घास चरने गयी है। तुम तो दूसरों को

आखिर उसके पास सबूत क्या है कि वह औरत उसकी बीवी है ?" नज्जो तुरशी से बोली, "तुम्हें ऐसे आवारा लोगों को अपने यहां ठहराते शर्म नहीं आती ?"

उन दोनों को घर में ठहराने की बात गलत थी। रफीक ने उन्हें मकान के बाहर अस्तबल में रहने के लिए जगह दी थी। खुद नज्जो भी इससे परिचित थी। मगर वह बोले जा रही थी। वह रुकने का नाम नहीं ले रही थी। उसे अपना

भी अपने-जैसा ही समझते हो . . .। याद रखो, तुम्हारी यही हरकतें एक न एक दिन नुकसान पहुंचाएंगी। किसी दिन तुम सिर पकड़कर रोओगे। ये आवारा लोग एक न एक दिन . . ."

"अरी, ये आवारा नहीं, मियां-बीवी हैं . . . मियां बीवी !" रफीक ने नज्जो की बात काटकर कहा।

"हां-हां, वे तो मियां-बीवी हैं। उन्होंने कहा और तुमने मान लिया।

होश नहीं रह गया था। रफीक जानता था कि नज्जो को जब गुस्सा आता है, तब वह दिवानी हो जाती है। इसीलिए उसने ज्यादा कुछ बोलना उचित नहीं समझा। वह करवट बदलकर लेट गया। उसे मालूम था कि इस तरह नज्जो कुछ देर बाद खामोश हो जाएगी। यही सोचकर वह नींद का बहाना करता हुआ नकली खर्राटे भरने लगा। खर्राटों की आवाज से नज्जो और अधिक तैश में आ गयी।

"तुम्हें तो नजर नहीं आता। कम से कम यह तो देख लेते कि उसकी हालत कितनी खराब है। खुदा न करे, अगर उसे कुछ हो गया तो गाववालों को कौन जवाब देगा? अच्छे हातिमताई के बाप बने! ...घर बैठे एक मुसीबत मोल ले ली।"

बूढ़े रफीक ने उसकी सुनी-अनसुनी कर दी। इसके बावजूद उसकी पत्नी का पारा ठंडा नहीं हुआ। वह निरंतर बड़-बड़ाये जा रही थी, "उसकी भोली-भाली सूरत देखकर पिघल गये! यही बात है न? . . . मैं तुम्हें अच्छी तरह जानती हूं। लेकिन याद रखो, मैं तुम्हारी इन हरकतों को चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर सकूंगी। सारी परेशानियां क्या मेरी ही किस्मत में लिखी हुई हैं? सारा-सारा दिन काम करो और जब जिस्म टूटने लगे, तो आराम भी न करो। भाड़ में जाए ऐसा घर! . . . या खुदा!"

नज्जो बड़बड़ाती रही। लेकिन दिन-भर की थकी होने के कारण यह सिल-सिला ज्यादा देर तक नहीं चला। नींद ने उसे जल्दी ही अपनी आगोश में ले लिया और गुस्से की हालत में ही वह सो गयी।

इधर रफीक पहले ही दुबककर सो गया था। कमरे की खामोशी में अब असली खर्राटों की आवाज सुनायी दे रही थी।

आधी रात के लगभग एकाएक रफीक की आंख खुल गयी। किसी औरत की दर्दभरी आवाज ने उस की नींद उचाट कर दी थी। जायजा लेने और ध्यान से [illegible] पर रफीक ने जाना कि आवाज [illegible] में अस्तबल की ओर से आ रही है। [illegible] परेशान हो गया। मन-ही-मन वह [illegible] करने लगा, "ए खुदा! नज्जो को [illegible] तरह सोया रहने दे। वह अगर जाग [illegible] तो कयामत आ जाएगी।"

लेकिन इससे पहले कि वह [illegible] खत्म करता, नज्जो आंखें मलती हुई [illegible] बैठी। कुछ देर तक हालात का जा[illegible] लेने के बाद वह खामोशी से अस्तबल [illegible] ओर चली गयी। यह देखकर रफीक [illegible] के मारे कांपने लगा। या अल्लाह! [illegible] इज्जत तेरे हाथ में है, दिल-ही-दिल [illegible] वह कहने लगा।

वह मजबूर था। उसके वश में कु[illegible] भी नहीं था। बिस्तर पर लेटे-लेटे हाल[illegible] का जायजा लेने के अतिरिक्त वह कु[illegible] भी नहीं कर पा रहा था। परेशान नि[illegible] से वह अंधेरे में घूरता हुआ अस्तबल [illegible] ओर से आनेवाली कराहों को ध्यान [illegible] सुनने लगा।

"तुम यहां से उठकर बाहर [illegible] जाओ।" नज्जो ने अस्तबल में प्र[illegible] करते हुए अब्दुल को हुक्म दिया।

रफीक ने भी नज्जो की आवाज सुनी [illegible] वह पहले ही की तरह अपने स्थान पर [illegible] बैठा रहा। उसके कान पूर्ववत अस्तब[illegible] से आनेवाली आवाजों की ओर लगे हु[illegible] थे। कुछ देर बाद उसने लकड़ियां तोड़[illegible] की आवाज सुनी। उसने सोचा, नज्जो [illegible]

शायद अपने हाथ-पैर तपाने की गरज से आग जला रही है।

वातावरण की चुप्पी को केवल दबी-दबी सिसकियां ही तोड़ रही थीं। रफीक ने पलटकर देखा, नज्जो आंगन में एक देगची उठाये चली जा रही थी। दूसरी देगची चूल्हे की तेज आंच पर रखी थी।

रफीक इस पहेली को समझने की कोशिश करने लगा। लेकिन वह कुछ भी न समझ सका। वह अभी इसी अवस्था में बैठा था कि नज्जो गर्म पानी की दूसरी देगची उठाये अस्तबल की ओर जाती दिखायी दी। रफीक फौरन उसके पास गया कि वास्तविक्ता का पता लगायें। लेकिन नज्जो उसको देखकर बोली, "तुम जाओ, आराम करो।" और रफीक नन्हें बच्चे की तरह कमरे में लौट आया।

उसकी परेशानी और जिज्ञासा में कोई कमी नहीं आयी। उसका मस्तिष्क निरंतर इस पहेली को सुलझाने में व्यस्त था।

कुछ देर बाद नज्जो कमरे में आयी और पुराने कपड़ों की गठरी उठाकर वापस चली गयी। रफीक की इच्छा हुई कि उसका हाथ पकड़कर पूछे कि आखिर माजरा क्या है? तुम मुझे क्यों नहीं बतातीं? लेकिन नज्जो को रोकने का साहस उसे नहीं हुआ। वह जहां था, वहीं खामोशी से बैठा रहा।

अभी ज्यादा देर नहीं हुई थी कि अब्दुल उसे दरवाजे पर खड़ा दीखा। वह बेहद परेशान और घबराया हुआ लग रहा था। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। उसे देखकर मालूम होता था कि उसके लिए जिंदगी और मौत का सवाल पैदा हो गया है।

उसे इस हालत में देखकर रफीक का दिल भर आया। बिस्तर से उठकर वह उसके पास गया और बोला, "क्या बात है भाई, तुम इतने परेशान क्यों हो? क्या नज्जो ने तुम्हें घर से निकाल दिया? अफसोस है . . . औरतों को मैं अच्छी तरह जानता हूं। दुनिया की सब औरतें एक-जैसी होती हैं . . .।"

रफीक अभी अपना जुमला पूरा भी नहीं कर पाया था कि अस्तबल से एक नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनायी दी और इस आवाज ने संपूर्ण वातावरण को अपने में समो लिया।

—अनु.: हबीब कैफी

**लक्जमबर्ग से एक भारतवासी द्वारा अपने रिश्तेदार को लिखा पत्र :**

**"हमें नहीं मालूम था कि लक्जमबर्ग में अपने नौकर का दाह-संस्कार कराना हमें इतना महंगा साबित होगा। लक्जमबर्ग में दाह-संस्कार का कोई इंतजाम नहीं है। दाह-संस्कार के लिए शव को एक पड़ोसी देश में भेजा जाता है। वहां से भस्मी डाक से भेजी गयी। इस भस्मी पर लक्जमबर्ग सरकार ने 'आयात-कर' लिया। वजह? सरकारी कानून के मुताबिक, "विदेशी फर्मों द्वारा प्रोसेस हुई वस्तुओं पर आयात-कर लिया जाता है।"**

# एक खतरनाक नात्सी षड्यंत्र का भंडाफोड़

चालीस वर्ष पहले की घटना। द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी चरम सीमा पर था। हिटलर की नात्सी पार्टी की सरगरमी की धूम मची हुई थी। रोज नयी-नयी उत्तेजनापूर्ण खबरें अखबारों में पढ़ने को मिलतीं। नात्सी सेनाएं एक के बाद एक शहरों को फतह करती हुई आगे बढ़ रही थीं। षड्यंत्रकारी अपनी करनी में कुछ भी न उठा रखते थे। दक्षिण-अमरीका में बड़े-बड़े नामी-गिरामी जासूसों का जाल बिछा हुआ था। अकेले ब्राजिल में ही ४० से अधिक जासूसी एजेंट अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तोड़-फोड़ में लगे थे। ये लोग संचारण-संप्रसारण के शक्तिशाली ट्रांसमीटर, रेडियो-रिसीवर, खुर्दबीन, कंपास, केमरा आदि से लैस थे। इन्हीं दिनों ब्राजिल के प्रमुख नगर साओ पाउलो में एक भयानक षड्यंत्र पकड़ा

● डॉ. जगदीश चन्द्र जै[illegible]

गया, जिसमें सरकार के काउंसल का [illegible] हाथ था।

**षड्यंत्र का सुरा[illegible]**

साओ पाउलो के एक टूटे-फूटे घर [illegible] एक कागज का पुरजा मिला, जिस [illegible] लिखा हुआ था—'क्वींस मैरी'! [illegible] जहाज कनाडा के दो हजार सिपाहि[illegible] को लेकर रिओ द जनेरिओ से आस्ट्रेलि[illegible] के लिए रवाना होने वाला था। पुलि[illegible] के लिए यह एक बहुत बड़ा संकेत था। पुलिस का माथा ठनका। फौरन ही इंग्लै[illegible] और अमरीका के राजनयिकों को सूचना दी गयी कि 'क्वींस मैरी' नात्सी पनडुब्बि[illegible] का शिकार होने वाला है। यह खबर पाते ही जहाज के जाने का मार्ग बदल लिया गया।
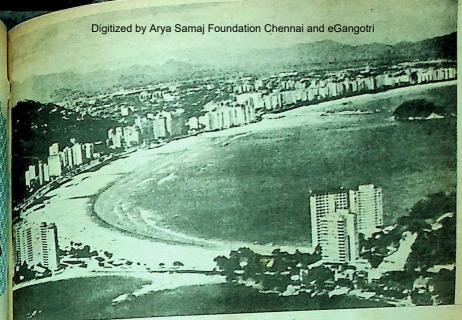
षड्यंत्रकारियों का अड्डा : सांतोस बंदरगाह

इस गंभीर षड्यंत्र के पता लगाने का श्रेय कुशल पुलिस-अधिकारी ऐलपीदियो रिआली को है, जो उस समय ३२ वर्ष के युवा थे और अब ७२ वर्ष के होकर रिटायर्ड जीवन बिता रहे हैं। इस षड्यंत्र की खोज-बीन की शुरुआत दिसंबर, १९४१ से होती है जब कि एक भूरे बालोंवाला आदमी धुंधला-सा सूट पहने, चश्मा लगाये साओ पाउलो की एक दुकान पर दिखायी दिया ओंडोमीटर ( रेडियो स्टेशन के संप्रसारण की लंबाई मापने का यंत्र ) की तलाश में। जब उसने दूकान पर ओंडोमीटर के बारे में पूछताछ की, तो दूकानदार को कुछ शक हुआ। वह लड़ाई का जमाना था और उस यंत्र की बिक्री पर प्रतिबंध लगा हुआ था। लेकिन दूकानदार ने अपने चेहरे के भावों से कुछ जाहिर न होने दिया। वह अपने एक पॉलिश मित्र को ग्राहक के पास छोड़कर दूकान के अंदर चला गया। पॉलिश मित्र ने ग्राहक से पूछा, "क्या आप अंगरेज हैं ? मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि आप जरमन होने चाहिए, क्योंकि आप की अंगरेजी में जरमन भाषा का लहजा है।"

उत्तर में उस व्यक्ति ने कहा, "देखिए, मैं अंगरेज हूं। मेरा जरमन लहजा इसलिए है कि मैंने ब्रेसलो ( जरमनी ) में इंजिनियरिंग का अध्ययन किया है।"

दूकानदार अंदर से आ चुका था। उसने अपने ग्राहक से कहा, "देखिए, इस समय वह यंत्र उसके पास नहीं है, लेकिन कुछ दिनों बाद आ जाएगा।" दूकानदार ने उससे अपना पता लिख देने को कहा। ग्राहक ने कागज की चिट पर लिख दिया

—'ओ. मैंडेस, सांतोम होटल।'

दूकानदार सोचने लगा, यह आदमी कहता है कि वह अंगरेज है, जरमन उसका लहजा है, और उसका नाम है पोर्त्तगीज ! दूकानदार को अपने पुलिस अधिकारी मित्र ऐलपीदिओ रिआली की याद आयी। १५ दिसंबर, १६४१ का दिन था। जबकि ब्राजिल के एक बड़े जासूसी मामले की खोजबीन शुरू हुई। दो महीने बाद जब कोई और आदमी दूकान पर दिखायी दिया उसी यंत्र की तलाश में, तब जासूसी नाजियों के केंद्र का पता लगा और ऐलपीदिओ ब्राजिल में ४० जासूसों के अग्रणी नील्स क्रितियेंसन को गिरफ्तार करने में कामयाब हो सके।

### ऐलपीदियो की योजना

ऐलपीदिओ रियाली ने षड्यंत्र का पता लगाने के लिए सरगरमी से काम शुरू कर दिया। उसने अपने दूकानदार मित्र से मिलकर सब बातों का पता लगा लिया। सबसे पहले, एक पुलिस के सिपाही को दूकान पर तैनात कर दिया गया, जो ओंडोमीटर के खरीददार की निगरानी करे। दूसरे पुलिस की एक टोली साओ पाउलो से ६० किलोमीटर के फासले पर बसे हुए ब्राजिल के सबसे बड़े बंदरगाह सांसोस के सांत्तोस होटल की तरफ रवाना की गयी ओ. मैंडेस नामक व्यक्ति का पता लगाने के लिए। लेकिन इस नाम का कोई व्यक्ति वहां नहीं मिला। अब इस रहस्य का पता कैसे चले ?

ऐलपीदिओ, लेकिन हार मानने वाले न थे। पुलिस ने स्वार्जी को गिरफ्तार कर लिया जो कि एक प्रभावशाली व्यक्ति था। उस समय वह अपने दो मित्रों के साथ भोजन कर रहा था। पुलिस की पूछताछ से पता चला कि सांत्तोस में जरमन काउंसलर के लड़के हांस उलरिच्च युबेले को ओंडोमीटर की जरूरत थी, इसलिए एक आदमी को वह यंत्र खरीदने के लिए भेजा गया था। यूबेले को उसके दफ्तर में गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन युबेले द्वारा सही-सही बयान न दियें जाने के कारण तहकीकात आगे न बढ़ सकी। केवल इस बात का पता लगा कि वह यंत्र थियोडोर विली कंपनी के नौ-संचालन विभाग के कर्मचारी गेराड शोएडर नामक व्यक्ति के पास है। उसे फौरन गिरफ्तार कर लिया गया। उसने मंजूर किया कि उसने उस यंत्र को हैनरिच ब्लाइनरोथ को दे दिया था। यहां से यह यह यंत्र इंटैग्रेटिस्ट पार्टी के संचालक ऐंटोनिओ कून्हा के पास पहुंचा, वहां से सांत्तोस म्युनिसिपिलिटी के किसी कर्मचारी, आखिर में इंटैग्रेटिस्ट पार्टी के सदस्य से होता हुआ जोविनो वेत्तो के घर से बरामद हुआ।

### दुभाषिया भी जासूस निकला

ऐलपीदिओ रिआली को अपनी तहकीकात में काफी परेशानियां हुईं। गिरफ्तार किये गये जरमन लोगों के बयान समझने के लिए जिस दुभाषिये को नियुक्त किया गया था, वह भी जासूसों के दल का ही आदमी निकला। ऐसी हालत में पुलिस ने तब

किया कि उलरिच युवेले के बयान पर ही ध्यान केंद्रित किया जाए। उसीसे पता लग गया कि वह भूरेबालोंवाला व्यक्ति एक विस्थापित जरमन एजेंट है और वह ब्राजिल में नात्सी गुप्तचर विभाग की ओर से सक्रिय है; उसका नाम है—नील्स क्रिस्तियेंसन।

लेकिन इस व्यक्ति का पता कैसे लगाया जाए? मगर उसका पता उलरिच युवेले के पिता सांत्तोस के जरमन काउंसलर ओटो युवेलो के एक पत्र में मिल गया। भूरे बालोंवाले व्यक्ति का पता लगाना था, जो दूकान पर ओंडोमीटर खरीदने आया था, और जो अपना गलत नाम बताकर चकमा दे गया था। ऐलपीदिओ ने पुलिस के प्रमुख अधिकारी की अनुमति प्राप्त की तथा एक जांच करनेवाले व्यक्ति और दूकानदार को साथ लेकर हवाई जहाज द्वारा रिओ द जेनेरिओ पहुंच गये।

**पुलिस अधिकारियों का बुद्धि-कौशल**

नील्स क्रिस्तियेंसन के नाम का पता होने के बावजूद ऐलपीदिओ इस बात का निश्चय नहीं कर सके कि सचमुच वही आदमी जासूसी दल का नेता है। और फिर यदि किसी को उसके घर चुपचाप भेजा जाए और वह घर पर नहीं मिला तो? क्योंकि उसे जरूर इस खोजबीन के बारे में पता लग गया होगा। ऐलपीदिओ ने एक तरकीब सोची। उसने गलत लाइसेंस के नंबरवाली दो मोटरें लीं तथा दूकानदार, दुभाषिये और दो पुलिस के आदमियों को लेकर सुबह ही सुबह क्रिस्तियेंसन के घर पहुंचा। कुछ समय तक उन्होंने उस घर की निगरानी रखी, लेकिन इस बीच न कोई घर के अंदर गया और न बाहर आया। यह देखकर ऐलपीदिओ ने दुभाषिये को घर का दरवाजा खटखटाने को कहा।

दरवाजे पर दस्तक दी गयी। कोई नहीं आया। अबकी बार जोर की दस्तक दी गयी। एक शकल दिखायी दी।

नात्सियों का नेता: हिटलर

दुभाषिये ने पूछा, "लूकस (क्रिस्तियेंसन का सांकेतिक नाम) अंदर हैं?"

"जरा ठहर जाइए", उत्तर मिला। कुछ देर बाद दुभाषिये को अंदर आने को कहा गया। तरकीब काम कर गयी। नील्स क्रिस्तियेंसन गिरफ्त में आ गया।

जासूसी नेता ने बहुत विरोध किया और कुछ देर तक जरमन भाषा में कुछ-कुछ बड़बड़ाता रहा। उसे तहकीकात करनेवाले अधिकारी के पास चुपचाप बैठ जाने को कहा गया। इस बीच घर की तलाशी

लेने पर फोटोग्राफ-प्रयोगशाला, दूर-संचार की मशीन, केमरा, रेडियो-रिसीवर, खुर्दबीन और शक्तिशाली ट्रांसमीटर्स और एक लकड़ी के बक्से में चौड़े सिल्क के कागज बरामद हुए, जिनमें 'रिओ द जनेरिओ' में आने-जानेवाले जहाजों की सूचना दी गयी थी। एक किताब में बड़े फोटो को छोटे रूप में प्रस्तुत करने वाले दो माइक्रो-फोटोग्राफ बरामद हुए, और साथ में अमरीका से जरमन के संप्रसारण के समय उपयोग में किये जाने वाले संकेतों की सूचनाएं भी। यह सब देखकर जासूस दल के नेता को बड़ी घबराहट हुई और उसने अपने माइक्रो फोटोग्राफ पुलिस के हाथ से झपट लेने की कोशिश की, लेकिन अब कुछ नहीं हो सकता था। ऐलपीदिओ उसके कमरे को तेज निगाह से देख-परख रहा था कि उसे क्रिस्तियेंसन द्वारा संप्रसारित आखिरी समाचार का भी पता लग गया, जो क्वींस मैरी जहाज को नष्ट करने के लिए भेजा गया था।

समय बहुत तेजी से भाग रहा था। क्षणभर भी रुकने का समय न था। एलपीदिओ ने तुरंत पुलिस मुख्य अधिकारी फिलितो म्यूलर के दफ्तर से संपर्क स्थापित कर अंगरेज और अमरीकी राजदूतों को स्थिति की गंभीरता की सूचना दी। फौरन ही क्वींस मैरी के कमांडर को चेतावनी दी गयी, जिससे उसने जहाज के मार्ग को बदल दिया। नात्सी जरमन पनडुब्बियां जहाज के गुजरने का इंतजार करती हुई चक्कर मारती रहीं। इटली के रेडियो पर घोषणा सुनायी दी कि जहाज गायब है और बाद में दूसरी घोषणा में कहा गया कि उसे डुबा दिया गया है। कहना न होगा कि यह अंगरेज जहाज कुछ दिनों बाद कुशलता से आस्ट्रेलिया पहुंच चुका था।

**नात्सी जासूसी नेता की रामकहानी**

ऐलपीदिओ के अनुरोध पर क्रिस्तियेंसन को साओ पाउलो लाकर उसे एक नजरबंदीगृह की कोठरी में रखा गया। किसी को इस रहस्य का पता न चलने दिया। यह निश्चय हो गया कि वह एक जबर्दस्त नात्सी था। वह बड़ा इंजीनियर अथवा वैज्ञानिक बन सकता था। लेकिन बन गया एक भयंकर जासूस। उसे बताया गया कि गुप्तचर बनने में उसे सफलता नहीं मिल सकती और यदि जरमन युद्ध जीत भी गया, तो या तो उसे गोली मार दी जाएगी, या फांसी दे दी जाएगी। उसे यह भी कहा गया कि ब्राजिल में फांसी की सजा नहीं है और यदि वह चाहे तो उसकी प्रेमिका से भी उसे मिलाया जा सकता है।

नात्सी जासूस पुलिस की चपेट से बचकर नहीं जा सकता था। उसने अपने बयान में सच-सच कह दिया।

'नील्स क्रिस्तियेंसन' उसका फर्जी नाम है, जो उसे डैनिश नात्सी खुफिया पुलिस से लिया है। उसके माता-पिता पोलैंड के रहनेवाले थे, उसका जन्म जरमनी में हुआ है। १६२२ में ब्रेसलो से उसने

मैकेनिकल इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की। डेनमार्क और इंग्लैंड में उसने नौकरी की। जब वह जरमनी आया, तब उसे जरमन खुफिया पुलिस द्वारा जासूसी का काम सुपुर्द कर दिया गया। जुलाई, १९४० में उसे हवाई सेना में भेज दिया गया, फिर नौ सेना में। जनवरी, १९४१ में उसे हॉंबुर्ग लाया गया और यहां एक जरमन नौ-सेना के अध्यक्ष के हुकुम से उसे दक्षिण अमरीका में एक रेडियो ट्रांसमीटर लगाने का काम दिया गया। ट्रांसमीटर को ब्राजिल में लगाये जाने की योजना बनी। उसका सांकेतिक नाम लूकस रखा गया। वह 'हेरमेन' जहाज द्वारा अप्रैल, १९४१ में ब्राजिल पहुंचा जहां थियोडोर विली कंपनी के 'जुंकर एरोप्लेंस कं.' (हिटलर के लड़ाकू विमान बनाने वाली कंपनी) के भूतपूर्व कर्मचारी हाइंस ट्यूटलेटर 'रिओ द जेनेरिओ' के बंदरगाह पर मिले। उसे मरचेंट मरीन का यूनिफार्म पहनने के लिए तीस हजार डालर की रकम दी गयी थी। उसके ब्रीफ-केस में एक ट्रांसमीटर रहता था। बाद में उसे गुस्ताफ ऐंजेल्स के पास ले जाया गया, जो जासूसी के राजनैतिक और औद्योगिक तंत्र के अधिकारी थे।

ऐंजेल्स के गुप्तचर बंदरगाह पर तैनात थे। उसके बाद उसे मोटर से सांत्तोस ले जाया गया, जहां जरमन काउंसलर ओटो युबेले उसका इंतजार कर रहे थे। उन्हें 'चार्लटोन' नाम की एक किताब पेश की गयी, जो सोने की मशीन का एक टेक्निकल सूची-पत्र था। यह एक गुप्त संकेत-पत्र था। रिओद लौटकर 'सेंट्रल होटल में ठहरा. वहां ओंदिना गेइसोटो से उसकी मुलाकात हुई।

जरमन काउंसलर ओटो युबेले को, जिसने इंग्लैंड को सबसे अधिक मात्रा में कॉफी का निर्यात करने के कारण पदक प्राप्त किया था, तथा गुस्ताफ ऐंजेल्स को और जोयरिंग के शिक्षक और ऐंजेल्स के लिए काम करनेवाले लुडविग बेबेर को फौरन गिरफ्तार कर लिया गया। ऐलपीदिओ क्रिस्तियेंसन को एक प्राइवेट जहाज से मेरिओ ले गये, इस बात की पुलिस के अधिकारियों को भी खबर नहीं थी। लेकिन जब क्रिस्तियेंसन को जेल होने के समाचार स्थानीय-पत्रों में प्रकाशित हुए, तब उसका माथा ठनका। उसे इस बात का वचन दिया गया था कि इस रहस्य को गुप्त रखा जाएगा।

एलपीदियो रिआली की यह आपबीती सुनकर मैं आश्चर्यचकित होकर क्षणभर के लिए उसकी तरफ देखता रह गया। ब्राजिलियन कॉफी की आखिरी घूंट खत्म हो चुकी थी। ऐलपीदिओ की कहानी आज भी मेरे मन को कचोटती रहती है!

—१०/१४६, आजादनगर, जे. पी. रोड,
अंधेरी (पश्चिम) बम्बई-५८

**किसी रिवाज के इतने कट्टर पक्षपाती न बनो कि सत्य की कुरबानी करके उसे पूजने लगो।**
—जिमसन

**भारतीय दर्शन में मंत्र-जाप तथा विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति हेतु मंत्रों की जाप-संख्या एक सौ आठ ही हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा क्यों बतायी गयी है? इस संख्या के पीछे क्या कोई वैज्ञानिक आधार भी है? मंत्र और संख्या के बीच क्या कोई संबंध है? अनेक ऐसी ही जिज्ञासाओं का समाधान, इस लेख में पढ़िए ...**

# मंत्र १०८ का रहस्य

• विनोद अवस्थी

क्या आपने कभी यह सोचा है कि हम जो मंत्र-जाप करते हैं, या गुरु द्वारा मंत्र प्रदान किये जाने पर यह आदेश मिलता है कि इस मंत्र का नियम से नित्य १०८ जाप करना है तो इस १०८ संख्या का हमारे मंत्र-जाप से क्या संबंध है? यह संख्या पूरी १०० क्यों नहीं बतायी गयी? यह कोई और संख्या भी तो हो सकती है। इस गूढ़ रहस्य का भेदन करने पर जो परिणाम अध्ययन-मनन व चिंतन द्वारा प्राप्त हुआ, वह पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। हमें अपने प्राचीन ऋषियों के चिंतन व अगाध-ज्ञान पर श्रद्धा से नतमस्तक होना पड़ता है।

इस जगत में हम जो कुछ भी देखते हैं, उन सबमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पंच तत्व हैं। इनकी उत्पत्ति का स्रोत आकाश है—आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी का गुण गंध, जल का रस, अग्नि का तेज, वायु का स्पर्श और आकाश का शब्द है। इस प्रकार संसार के सभी पदार्थों का मूल गुण आकाश तत्व है—वैसे संसार के सभी पदार्थों का मूल गुण शब्द है, इसी कारण शब्द को 'शब्द-ब्रह्म' या 'परमात्मा' का प्रतीक कहा गया है।

**शब्द और संख्या का अंतःसंबंध**

यों तो संपूर्ण शब्द ब्रह्म के ही रूप हैं, परंतु भिन्न-भिन्न शब्दों का गुण और प्रभाव भी भिन्न-भिन्न है, इसलिए प्रत्येक शब्द को अंक या संख्या में परिवर्तित कर उसकी माप कर ली जाती है। विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति के लिए विभिन्न मंत्रों की जाप-संख्या भी हजार, ग्यारह सौ, लाख, सवा लाख आदि हुआ करती है। संख्या और शब्द के संबंध से हमारे ऋषि पूर्णरूप से परिचित थे। यही वजह है कि

किसी मंत्र में सौ अक्षर हैं, तो किसी में २२ अक्षर हैं, आदि-आदि। शब्द और संख्या का घनिष्ठ संबंध है।

इसी प्रकार संख्या और क्रिया (जाप) का भी घनिष्ठ संबंध है। मंत्र और प्रयोजन के अनुसार मालाएं भी भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं, उदाहरण के लिए २५ मणियों की माला, ३० मणियों की माला, २७ मणियों की माला आदि, किंतु रुद्राक्ष की १०८ मणियों की माला सर्व-सिद्धिदायक मानी गयी है। १०८ संख्या जाप के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। १०८ की संख्या का जितना महत्त्व है, उतना ही इस संख्या में निहित रहस्य भी महत्त्वपूर्ण है।

**संख्या की व्याख्या**

१०८ संख्या में १,०,८ तीन अंक हैं। इन तीनों अंकों के गूढ़-रहस्य यह हैं—

अंक-१ व्यापक, एक ब्रह्म का बोधक है, जब वह अद्वैत रूप से रहता है। तात्पर्य यह कि शब्द और संख्या में संबंध होने के कारण समस्त पदार्थों के मूल में जैसे शब्द हैं—वैसे ही अंक भी।

०–शब्द के मूल—आकाश को शून्य कहते हैं, और अंक के मूल को भी शून्य, शून्य से ही शब्द और अंक की उत्पत्ति होती है।

**ॐ पूर्णमदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥**

अंक-८ माया का द्योतक है, यदि आप आठ के पहाड़े को गुणा करें, तो गुणनफल जोड़ने पर योग घटता-बढ़ता जाता है, यही हाल माया का है। वह निरंतर घटती-बढ़ती रहती है, किंतु जब ब्रह्म रूप अंक एक और पूर्णता का प्रतीक शून्य आया, वहीं माया तिरोहित हो जाती है, उदाहरणस्वरूप—

८×१=८
८×२=१६=१+६=७
८×३=२४=२+४=६
८×४=३२=३+२=५
८×५=४०=४+०=४
८×६=४८+४=८=१२=१+२=३
८×७=५६=५+६=११=१+१=२
८×८=६४=६+४=१०=१+०=१
८×९=७२=७+२=९
८×१०=८०=८+०=८

**अंक ज्योतिष का आधार**

इसी तरह यदि १०८ संख्या को जोड़ा

जाए, तब १+०+८=९ परिणाम आता है और, यदि ९ के पहाड़े का गुणनफल जोड़ा जाए, तो परिणाम ९ ही रहेगा। इसी प्रकार ब्रह्म न घटता है, और न ही बढ़ता है। आद्या शक्ति एवं ब्रह्म— 'सीताराम', 'राधाकृष्ण' नाम का मूल्यांकन अंक ज्योतिष के नियम से करें, तो परिणाम १०८ ही आएगा। सीता और राधा नाम शक्ति-स्वरूप हैं और राम तथा कृष्ण ब्रह्मरूप हैं। सीताराम व राधाकृष्ण का वर्णक्रम से मूल्यांकन निकाला जाए, तो परिणाम १०८ ही निकलता है, जैसे—

| अ | आ | इ | ई | उ | ऊ | ए | ऐ | ओ | औ | ऋ | ॠ | अं | अः |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १४ |

| क | ख | ग | घ | ङ | च | छ | ज | झ | ञ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
| ट | ठ | ड | ढ | ण | त | थ | द | ध | न |
| ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ | १९ | २० |
| प | फ | ब | भ | म | य | र | ल | व | श |
| २१ | २२ | २३ | २४ | २५ | २६ | २७ | २८ | २९ | ३० |
| ष | स | ह | क्ष | त्र | ज्ञ | | | | |
| ३१ | ३२ | ३३ | ३४ | ३५ | ३६ | | | | |

इस वर्णक्रम के अनुसार सीता राम, राधाकृष्ण के वर्णों का मान निकाला—

सीताराम=स+ई+त+आ+र+आ+म=३२+४+१६+२+२७२+२५+५४+५४+१०८

इसी प्रकार राधाकृष्ण का मान ५०+५८ होता है और परिणाम १०८ निकलता है।

## ज्योतिष का आधार

ऊपर का उदाहरण अंक-ज्योतिष के आधार पर था। अब आइए ज्योतिष-विद्या के अनुसार : सूर्य जब संपूर्ण १२ राशियों पर एक पूरा चक्र लगा लेता है, तब एक वृत्त पूरा करता है। एक वृत्त में ३६० अंश होते हैं। इस प्रकार सूर्य की एक प्रदक्षिणा के अंशों की कला बनाएं, तब ३६०×६० =२१,६०० 'कला 'हुई। यह तो सभी जानते हैं सूर्य ६ मास उत्तरायण में रहता है, और ६ मास दक्षिणायण में। इस तरह यदि २१,६०० को दो भागों में विभक्त करने से १०,८०० संख्या प्राप्त हुई।

प्रत्येक दिन सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक 'काल' का माप ६० घड़ी माना गया है। घड़ी=६० पल और १ पल=६० विपल। इस प्रकार एक अहोरात्र ६०×६० =२१,००० विपल हुए। इसके आधे दिन में १०,८०० और इतने ही रात्रि में हुए।

हमारे महर्षियों ने भी आजकल वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार दशमलव आधार पर काल और संख्या का समन्वय किया था। इसी के अनुसार १०,८०० की उपलब्ध संख्या अंक के दो शून्य छोड़ देने पर १०८ की संख्या प्राप्त हुई। हमारे महर्षियों ने शब्द, काल, संख्या आदि का पूर्ण रूप से सामंजस्य कर दिया था, तभी तो १०८ मणियों की माला से मंत्र-जाप का विधान है। १०८ जप संख्या आदि: शक्ति और ब्रह्म का बोध कराती है।

—सी. डी. ए. (हेडक्वार्टस)
डी-ब्लाक, सेना भवन, नयी-दिल्ली

• मार्टिन एल. ग्रास

**हेराल्ड रॉबिन्स---अनेक बहुचर्चित उपन्यासों के सफल लेखक। उनके अनेक उपन्यासों पर फिल्में भी बन चुकी हैं। अनाथालय में पले, अपने परिश्रम के बल पर एक फर्म में सीनियर वाइस प्रेसीडेंट के पद पर पहुंचे हेराल्ड रॉबिन्स संयोग से लेखक बन गये। प्रस्तुत है उनसे एक भेंटवार्ता।**

प्रश्न : इस बात में कोई संदेह नहीं कि आप अमरीका के सबसे अधिक सफलतम उपन्यासकार हैं। क्या आप आरंभ से ही लेखक थे ?

रॉबिन्स : हरगिज नहीं। मैं तो संयोगवश लेखक बन बैठा हूं। मेरी अंतिम नौकरी यूनीवर्सल पिक्चर्स में वित्तीय वाइस-प्रेजीडेंट के रूप में थी।

प्रश्न : तो फिर आप वित्तीय वाइस-प्रेसीडेंट से सब से अधिक बिकनेवाले उपन्यासकार कैसे बन गये ?

रॉबिन्स : मैंने १९४७ के लगभग लिखना शुरू किया था और वह भी यों कि यूनीवर्सल पिक्चर्स प्रोडक्शन इंचार्ज विलियम गोइटच के साथ मेरी शर्त लग गयी थी। विलियम ने फिल्में बनाने के लिए एक पुस्तक खरीदी थी, जो मेरी राय में एक कौड़ी की न थी। मैंने कहा था कि प्रत्येक व्यक्ति इससे अच्छी पुस्तक लिख सकता है, यहां तक कि मैं भी। विलियम ने कहा कि सौ-सौ डालर की शर्त रही। तुम ऐसा नहीं कर सकते, अतः इस प्रकार मैंने लिखना शुरू कर दिया।

प्रश्न : और इस शर्त के परिणाम में आपने क्या लिखा ?

रॉबिन्स : वही उपन्यास, जिसका नाम

है—'नेवर लव एस्ट्रेंजर' (कसी अजनबी से कभी प्यार न करना)। यह १९४८ में प्रकाशित हुआ और सबसे अधिक बिकनेवाला घोषित किया गया।

प्रश्न : लेखक बनने से पहले आप स्वयं को एकाउंटेंट समझते थे या बिजनेसमैन ?

रॉबिन्स : मैं एकाउंटेंट नहीं था। मैंने हिसाब-किताब में प्रशिक्षण अवश्य प्राप्त किया था, जिसने मुझे रकमें और आंकड़े आदि याद रखना सिखाया। इस विद्या ने लेखक बनने में बहुत मदद की।

प्रश्न : किस प्रकार ?

रॉबिन्स : वह इस प्रकार कि मैं अपने उपन्यासों की रूप-रेखा तैयार नहीं करता, बल्कि पूरी की पूरी पुस्तक पूर्ण ब्यौरों सहित मेरे मस्तिष्क में संयोजित रहती है।

**लेखन : अच्छी आजीविका**

प्रश्न : पहला उपन्यास लिखने के बाद क्या आपने पूरा समय लिखने के बारे में निश्चय कर लिया था ?

रॉबिन्स : नहीं। सच बात तो यह है कि मैं इस बारे में उस समय तक गंभीर नहीं हुआ था, जब तक मैंने दूसरा उपन्यास 'दि ड्रीम मर्चेंट्स' नहीं लिखा था। मैंने अनुमान लगाया कि घर बैठे लिखते रहना, प्रतिदिन तैयार होकर कार्यालय जाने से कहीं अच्छा जीविका-साधन है। मैं कार्यालय छोड़ना चाहता था, पर १९६८ में सात वर्ष का सेवा-अनुबंध हस्ताक्षर कर चुका था। अतः जब तक अनुबंध की
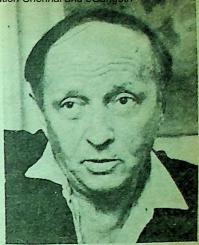
हेराल्ड रॉबिन्स

अवधि समाप्त नहीं हुई, मैं नियमित रूप से कार्यालय जाता रहा। इस सेवावधि के अंतराल में मैंने दो अन्य उपन्यास लिखे '७९ पार्क एवेन्यू' और 'ए स्टोन फॉर डैनी फिशर।'

**समीक्षा : एक व्यर्थ चीज**

प्रश्न : क्या समीक्षकों ने 'ए स्टोन फॉर डैनी फिशर' को हाथों-हाथ लिया था ?

रॉबिन्स : जी नहीं ! समीक्षक महाशयों ने मेरे किसी एक भी उपन्यास का सही रूप में स्वागत नहीं किया !

प्रश्न : पुस्तक-समीक्षा की साहित्यिक स्थिति के बारे में आपका क्या मत है ?

रॉबिन्स : मेरे विचार मे यह एक व्यर्थ चीज है। सीधी-सी बात है। लोग पुस्तकों पर समीक्षा अपने अहं की संतुष्टि के लिए करते हैं। मेरा विचार है कि गंभीर साहित्यिक समीक्षा अमरीका में

कभी-कभार ही देखने को मिलती है। मेरा खयाल है कि समीक्षक वास्तविक साहित्य के बजाय सामान्य लोकप्रिय साहित्य को अधिक रोमांचक बनाते हैं।

**एक पुस्तक से साढ़े सात करोड़**

प्रश्न : क्या आप हमें बता सकते हैं कि आप अपनी एक पुस्तक का कितना अग्रिम रुपया प्राप्त करते हैं ?

रॉबिन्स : साढ़े सात मिलियन डालर (लगभग साढ़े सात करोड़)।

प्रश्न : एक पुस्तक पर . . . ?

रॉबिन्स : जी हां! बिलकुल! एक पुस्तक का ही तो बता रहा हूं और मैं एडवांस और गारंटी के रूप में प्राप्त करता हूं।

प्रश्न : आपको यथार्थवादी और रोमांचकारी लेखक माना जाता है। आपके विचार में क्या आपकी पुस्तकों में 'सेक्स' की भरमार नहीं ?

रॉबिन्स : मेरे विचार में तो उनमें उतना ही 'सेक्स' मौजूद है, जितना उस कहानी के लिए आवश्यक है। प्रत्येक कहानी के अनुरूप 'सेक्स' की मात्रा में कमी यां बढ़ोतरी होती रहती है।

**लेखन में 'सेक्स'**

प्रश्न : हमें तो यों लगता है, जैसे 'सेक्स-क्रांति' आप पर आच्छादित है या कम से कम उससे अधिक प्रभावित हैं। जब आपने पहले-पहल 'सेक्स' का अंधाधुंध उपयोग किया, तो आपका यह उपयोग खासा चौंका देनेवाला था। क्या ऐसा नहीं था ?

रॉबिन्स : जब 'डैनी फिशर' प्रकाशित हुआ था, तब लोग उसे कागज में लपेट कर ले जाया करते थे। उनका खयाल था कि मैंने बड़े दुस्साहस का काम लिया है। किसी ने एक बार मेरे बारे में कहा था कि मैं उपन्यासों में 'सेक्स' का उपयोग करने में 'पिता' हूं, तो मैंने जवाब में कहा था कि 'यदि मैं पिता हूं, तो हेनरी मिलर दादा था। मैं नहीं कह सकता कि फिर आप चासर को किस संबंध से संबोधित करेंगे।' मुसीबत यह है कि मेरे उपन्यास ६२ देशों की ३९ भाषाओं में प्रकाशित हो रहे हैं। जहां अलग-अलग, अपितु धरती-आकाश के अंतरवाली, नैतिक धारणाएं प्रचलित हैं। कई देशों में मेरे उपन्यासों में से 'सेक्स' निकाल दिया गया है, तो अन्य देशों में उनमें से हिंसा निकाल दी गयी है।

**श्रेष्ठतम उपन्यासकार!**

प्रश्न : गुस्ताखी माफ! क्या आप स्वयं को एक अच्छा लेखक समझते हैं ?

रॉबिन्स : मैं जो कुछ भी हूं, श्रेष्ठ लेखक हूं। मैं इस समय संसारभर का श्रेष्ठतम उपन्यासकार माना जाता हूं।

प्रश्न : आपके पास ऐसी कौन-सी बात है, जो अन्य लेखकों के पास नहीं ?

रॉबिन्स : मैं वही कुछ लिखता हूं, जो अनुभव करता हूं, जो देखता हूं। मैं किसी काल्पनिक संसार के बारे में नहीं, अपितु इस संसार के बारे में लिखता हूं, जिसमें हम रह रहे हैं, और मेरा खयाल है, यह काम मैं दूसरों की अपेक्षा बेहतर करता

हूं। फिर यह कि मैं रस्म-रिवाज का निकट से अवलोकन करता हूं और जो कुछ लिखता हूं, वह सामान्य लोगों के बारे में होता है। मैं, बस, यह करता हूं कि लोगों को उनके अपने बारे में और जो कुछ वे अनुभव करते हैं, उसे पहचानने में उनकी मदद करता हूं।

प्रश्न : आप एक पुस्तक कितने समय में पूरी कर लेते हैं ?

रॉबिन्स : दो वर्ष से कुछ अधिक समय में।

**हर पुस्तक एक लड़की की तरह**

प्रश्न : इस सारे समय में शारीरिक परिश्रम का कितना भाग होता है ?

रॉबिन्स : यह प्रत्येक पुस्तक की प्रकृति पर निर्भर करता है। हर पुस्तक नयी लड़की की तरह है, जिसको समझने के लिए समय चाहिए। यह बात मैं पहली बार बता रहा हूं कि जब मैं 'दी लोनली लेडी' नामक उपन्यास लिख रहा था, तो मेरी पत्नी ग्रेस मुझे कहने लगी, 'मैं तुम्हारी किसी हीरोइन से ईर्ष्यालु नहीं हुई थी, पर इस दुष्ट ने खासे समय से तुम्हें मुझसे दूर रखा हुआ है।'

**प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा**

प्रश्न : क्या आपको अधिकांश सामग्री पुनः लिखनी पड़ती है ?

रॉबिन्स : नहीं, बिलकुल नहीं। जो रचना मैं पहली बार लिख देता हूं, वही पाठक पढ़ते हैं।

प्रश्न : आपने आरंभिक शिक्षा कहां

प्राप्त की ?

रॉबिन्स : न्यूयार्क में। वाशिंगटन हाई स्कूल में पांचवीं कक्षा तक, पर पांचवीं कक्षा पास न कर सका था। मैं स्कूल से भाग गया था और नौसेना में नौकर हो गया। उस समय मेरी आयु १७ वर्ष थी।

प्रश्न : क्या उस समय आपका नाम 'हैराल्ड रोबिन्स' था ?

रॉबिन्स : वास्तव में मेरे तीन नाम रहे हैं। सबसे पहले मेरा नाम फ्रांसिस केन था, जो मेरे जन्म के प्रमाणपत्र पर भी दर्ज है। फिर रोबिन्स परिवार ने मुझे मुतबना बनाया। वे चाहते थे, मेरा नाम हेराल्ड फिलिप रॉबिन रखा जाए, पर मैंने स्वीकार करने से इनकार कर दिया, अतः उन्होंने फिर मेरा नाम हैराल्ड फ्रांसिस रख दिया। बाद में एलफर्ड कनीपफ ने मेरा नाम बदलकर हैराल्ड रॉबिन्स रख दिया। यही प्रसिद्ध हुआ।

प्रश्न : क्या आप अनाथ थे ?

रॉबिन्स : ग्यारह वर्ष की आयु तक अनाथालय में परवरिश पाता रहा। फिर साढ़े चार वर्ष रॉबिन्स परिवार में पलता रहा।

प्रश्न : इस समय आपकी आयु ?

रॉबिन्स : ६७ वर्ष का हूं।

प्रश्न : आपका व्यवसाय कैसा चलता रहा है ?

रॉबिन्स : मैं कई बार दीवालिया हो चुका हूं। इक्कीस वर्ष का होने से पूर्व मैं दो करोड़ रुपये कमाकर गंवा चुका था।

प्रश्न : क्या स्टाक मार्किट में ?

रॉबिन्स : हां !

प्रश्न : शुरू-शुरू में आपको 'अश्लील लेखक' कहा जाता रहा है। क्या आपके पालन-पोषण में इस बात का हस्तक्षेप रहा है ?

रॉबिन्स : मेरा पालन-पोषण 'नरक के रसोईघर' (अनाथालय) में हुआ है। ऐसे वातावरण में, जहां 'सेक्स' और मादक पदार्थ पालन-पोषण का अंग समझे जाते थे, मेरा बचपन बीता। मैं दस वर्ष की आयु में कोकीन खाता था और ग्यारह वर्ष की आयु में चरस पीता था।

**पाठक ही लेखक बनाते हैं**

प्रश्न : अच्छा, पुस्तकों के संसार में चलते हैं। यह बताइए कि क्या समीक्षकगण कभी हेरल्ड-रॉबिन्स को भी स्वीकार करेंगे ?

रॉबिन्स : न करें, पर लेखक को तो पाठक बनाते हैं, न कि समीक्षकगण ! डिकेंस, ड्युमाज और टॉलस्टाय को उनके पाठकों ने लेखक बनाया है, समीक्षकों ने नहीं। बल्कि, समीक्षक तो उन्हें बुरा-भला कहते रहे। ड्युमा को बहुत अधिक माडर्न होने का ताना दिया जाता था। विक्टर ह्युगो को उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'लेस मिजरेबल' सहित सभी रचनाओं के लिए बुरी समीक्षाओं का सामना करना पड़ा। डिकेंस ने होगार्थियन शैली के उपन्यास 'डेविड कापरफील्ड' और 'निकोल्स निक्लबाई' लिखे, तो उन्हें बुरी तरह लताड़ा गया। उन पर आरोप लगाया गया कि वे ऐसे लेखक हैं कि जब तक उन्हें अखबार में उनके धारावाहिक छपनेवाले उपन्यास की अगले सप्ताह की किश्त का अग्रिम पारिश्रमिक न दे दिया जाए, वह लिख ही नहीं सकते थे!

**समालोचना का शिकार**

प्रश्न : क्या आप स्वयं को डिकेंस और ड्युमाज की पंक्ति में खड़ा पाते हैं ?

रॉबिन्स : हां, एक दृष्टि से, क्योंकि मैं तीस वर्ष से साहित्यिक आलोचना का शिकार रहने के बावजूद पिछले वर्ष मेरी एक करोड़ पुस्तकें बिकीं। इस वर्ष दो करोड़ पुस्तकें केवल अंगरेजी भाषा में बिक चुकी हैं। १९८१ के अंत तक विश्व भर में मेरी २२ करोड़ पचासी लाख पुस्तकें बिक चुकी हैं। मेरे विचार में इस बात से ही सिद्ध हो जाता है कि मुझे कितने अच्छे पाठक प्राप्त हैं।

—प्रस्तुति : सुरजीत

## जेब खर्च

**सनत कुमार शर्मा, गंगानगर : मैं १६ वर्षीय, हायर सेकंड्री विज्ञान का विद्यार्थी हूं । मैं अपने नानाजी के पास रहता हूं । उन्होंने मुझे सब कुछ दिया है, लेकिन अब घर का खर्च भी काफी है और मेरी पढ़ाई के लिए खर्च पूरा करने के लिए उन्हें काफी दिक्कत होती है। वे परेशान भी बहुत हैं। फिर भी मुझे वे खर्च तो, कैसी भी कठिनाई हो देते ही हैं। लेकिन विद्यालय में पिताजी के नाम के स्थान पर भी नानाजी का ही नाम है। क्या मैं अपने पिताजी से खर्च के लिए दावा या अनुरोध कर सकता हूं ? उनके पास काफी भूमि भी है। मुझे विश्वास है कि आप मेरी समस्या का समाधान करेंगे ।**

गोद दे दिये जाने के बाद बालक का संबंध अपने परिवार से टूटकर गोद लेने-वाले परिवार से जुड़ जाता है । नानाजी का नाम पिता के स्थान पर किस रूप में लिखना शुरू किया, यह तो आपके पत्र से स्पष्ट नहीं होता । यदि आप नानाजी द्वारा गोद ले लिये गये हैं, तब पूर्व पिता से आप खर्च की मांग नहीं कर सकते। यदि ऐसा नहीं है, तब हिंदू दत्तक ग्रहण एवं भरण-पोषण अधिनियम १९५६ की धारा २० आपके भरण-पोषण के अधिकार को स्वीकार करती है । उक्त धारा के अंतर्गत अल्प-वयस्क पुत्र के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व माता तथा

पिता का है । इस संदर्भ में भारतीय दंड प्रक्रिया १९७४ की धारा १२५ का सहारा भी लिया जा सकता है ।

## दूसरी शादी

**लाल्लू भैया, टूंडला : मैं २९ वर्षीय स्वस्थ एवं भारत-सरकार की सेवा में तृतीय श्रेणी राजपत्रित कर्मचारी हूं । मेरी शादी को दस वर्ष गुजर गये, परंतु अभी तक एक भी संतान नहीं हुई, जिससे मेरी पत्नी दुःखी एवं खिन्न रहती है। वैसे मेरी पत्नी भी शारीरिक दृष्टिकोण से काफी स्वस्थ है एवं उसकी उम्र २६ वर्ष है । मैंने कई अच्छे से अच्छे डॉक्टरों एवं वैद्यों को दिखलाया, पर कोई लाभ न हुआ । मुझे बच्चे की बहुत इच्छा है । क्या मैं बच्चे की चाहत के कारण दूसरी शादी कर सकता हूं ? जबकि राजपत्रित कर्मचारी एक पत्नी के रहते दूसरी शादी**

नहीं कर सकता।

बच्चे की चाहत, किसी रिश्तेदार का या अन्य स्थान से बालक गोद लेकर पूरी की जा सकती है। आप अनाथ-आश्रम से बच्चा ले सकते हैं, इससे एक अनाथ बालक को घर तथा माता-पिता का प्यार मिल जाएगा ग्रौर आपको बच्चा।

बच्चा न होने के कारण आपको दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं मिल सकता। आपके विवाह को दस वर्ष हो गये हैं, पत्नी स्वस्थ है, ग्रौर जैसा कि आपके पत्र से स्पष्ट है आप दोनों में कोई मन-मुटाव नहीं है; ऐसी स्थिति में दूसरे विवाह की बात सोचना उचित नहीं है। संतान प्राप्ति में देर के सिद्धांत पर आजकल पूरे देश में बल दिया जा रहा है। आप दोनों की आयु भी बहुत अधिक नहीं है। विवाह के पंद्रह-बीस वर्ष बाद भी पहली संतान होने के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। जीवन का आधार विश्वास होता है। योग्य डॉक्टर से अपनी एवं अपनी पत्नी की चिकित्सा करवाते रहें, हो सकता है आपकी यह इच्छा भी पूरी हो जाए।

## पिता की संपत्ति पर हक

**टी. सी. सैनी, ऋषिकेश : हम पाच भाई, दो बहन हैं। हमारे पिताजी ने कोई वसीयत नहीं की। पिताजी के देहांत के बाद नगरपालिका से करों का नोटिस माताजी के नाम आता रहा। माताजी अब पिताजी द्वारा अर्जित भूमि को बेच चाहती है तथा हमारे द्वारा हिस्सा मांगने पर पुलिस बुलाने की धमकी देती हैं। क्या पिताजी द्वारा अर्जित भूमि पर अकेले माताजी का अधिकार है या हम भी अपना हिस्सा मांग सकते हैं?**

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के ग्रंतर्गत आपके दिवंगत पिताजी की संपत्ति का बटवारा होगा। सभी भाई, बहनें तथा आपकी माताजी संपत्ति में बराबर के मालिक हैं। पूरी संपत्ति का अधिकार माताजी को नहीं मिल सकता। आप भी उस संपत्ति के ग्रंतर्गत आनेवाले मकान में रह सकते हैं। अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए, आप संपत्ति का बटवारा करने के लिए न्यायालय में आवेदन कर सकते हैं। इस आवेदन के साथ-साथ आप संपत्ति बेचे जाने पर भी रोक लगा सकते हैं। अपना हिस्सा अलग करवा लेने के बाद आप उस पर यदि नियमानुसार हो तो, नया निर्माण भी कर सकते हैं।

## किरायेदारी

**रवींद्र कुमार गर्ग, आगरा : मैं एक कोठी की ऊपरी मंजिल में करीब पांच साल से किराये पर रह रहा हूं। किराया मैं हर माह नकद देता रहा हूं, जिसकी रसीद न मैंने कभी मांगी, न ही उन्होंने कभी दी। अभी पिछले दिनों उन्होंने हमें छह महीने के अंदर मकान खाली करने के लिए कहा है, जब कि मैं इस स्थिति में नहीं हूं कि मकान खाली कर सकूं। मुझे**

**अब इसके लिए क्या करना चाहिए।**

मकान-मालिक किस कारण से मकान खाली कराना चाहता है, इसका उल्लेख आपके पत्र में नहीं है। इसलिए यह बताना कि उस आधार पर मकान खाली होने की व्यवस्था है, या नहीं—बताना संभव नहीं है। किराये की रसीद आपको मांगनी चाहिए। रसीद न होने की स्थिति में किराया अदायगी का प्रमाण आपको न्यायालय में देना होगा। यदि आप उचित प्रमाण जुटाकर अदालत में प्रस्तुत कर पायें, तो न्यायालय किराया अदायगी का आपका तर्क स्वीकार कर सकता है।

## 'एक्स्पीडाइट' कैसे हो ?

**मुहम्मद साबिर, बरेली : मैं एक कंपनी में स्थायी कर्मचारी था। नौ साल के बाद मुझे कंपनी ने 'विश्वास-समाप्ति' ( लॉस ऑव कांफीडेंस) के आरोप में सन ७० में अचानक नौकरी से निकाल दिया। मैं मामले को श्रम न्यायालय में ले गया। जहां आठ साल बाद फैसला हुआ, जो मेरे खिलाफ गया। अतः मैंने हाइकोर्ट में रिट दायर की, जिसे मंजूर करते हुए हाईकोर्ट ने कंपनी को लिखित बयान दाखिल करने का नोटिस दिया। सालभर बीत गया, लेकिन कंपनी ने बयान दाखिल नहीं किया, इसलिए मामला अपरिपक्व स्थिति में अनिर्णित पड़ा हुआ है।**

**मैंने इस संबंध में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री व मुख्य न्यायाधीश, इलाहाबाद को लिखा, जिसके उत्तर में इलाहाबाद हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार का पत्र मिला कि मैं न्यायोचित ढंग से उच्च न्यायालय में मुकदमे की शीघ्र सुनवायी किये जाने के लिए शीघ्र-सुनवायी (एक्स्पीडाइट) की प्रार्थना करूं। मेरे वकीलों का कहना है कि जब तक मुकदमा कंपनी के लिखित उत्तर सहित परिपक्व न हो जाए, तब तक 'एक्स्पीडाइट' के लिए प्रार्थना-पत्र नहीं दिया जा सकता! सलाह दीजिए कि मुझे क्या करना चाहिए?**

न्यायालय में चल रहे मुकदमें के शीघ्र निपटान के लिए प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति या प्रदेश के अन्य अधिकारियों को आवेदन भेजने की कोई आवश्यकता नहीं होती। आपको इलाहाबाद उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार की सलाह मानकर उच्च न्यायालय में मुकदमे की शीघ्र सुनवायी के लिए आवेदन करना चाहिए। आवेदन में अपनी पूरी परिस्थिति तथा उन कारणों का, जो मुकदमे की शीघ्र सुनवायी का औचित्य दर्शाते हों, वर्णन अवश्य करें। आपका आवेदन स्वीकार करते समय न्यायालय विपक्ष को एक निश्चित तिथि तक उत्तर देने का आदेश दे सकता है, और उसके बाद मुकदमे की सुनवाई कर सकता है। ●

**'विधि-विधान' स्तंभ के अंतर्गत कानून-संबंधी कठिनाइयों के बारे में पाठकों के प्रश्न आमंत्रित हैं। प्रश्नों का समाधान कर रहे हैं, राजधानी के एक प्रसिद्ध कानून-विशेषज्ञ —रामप्रकाश गुप्त**

एक बातूनी विद्यार्थी की शिकायत करते हुए शिक्षक ने पिता से कहा, "आपका लड़का पढ़ने में काफी तेज है लेकिन बात बहुत करता है। इसके जैसा बातूनी तो मैंने आज तक नहीं देखा।"

"आप शायद इसकी मां से नहीं मिले हैं।" पिता ने कहा। —दिनेश श्रीवास्तव

★

पहला आदमी : मेरा इस दुनिया में ऐसा कोई नहीं जो मेरे गम में शरीक हो सके। दूसरा आदमी : अरे, तुम इतने दुःखी क्यों होते हो? एक सहज उपाय है, अपनी तकलीफों का राष्ट्रीयकरण कर दो।

—अभिराम जयशील

नेता जी, आपकी कटिंग व दाढ़ी बना दी हैं अब तो यह कुर्सी छोड़िये!

"तुम्हारी पत्नी तो यार बिल्कुल बि... की तरह कार चलाती है।"

"हां, बिलकुल वैसे ही। पेड़ों ... गिराती हुई।"

—डॉ. प्रदीप मुखोपाध्याय 'आ...

★

पत्नी के बार-बार मना करने पर भी ... सज्जन की शराब पीने की आदत ... छूट रही थी। एक दिन शाम को वह श... पीकर घर आये। पत्नी नाराज न हो इ... लिए चुपचाप लेट गये और एक बड़ी-... किताब उठाकर पढ़ने लगे। जब प... ने उन्हें देखा तो कहा, "क्यों जी, आ... फिर शराब पीकर आये हो?"

"न... न... नहीं तो!"

"तब यह अटैची उठाकर क्या क... रहे हो?" —किशोरचन्द्र अग्रवा...

★

एक वीर रस के कवि
लोहे का टोप पहने / रिवाल्वर लटकाये
दो बंदूकधारी / दायें बायें
मंच पर आये,
श्रोतागण घबड़ाये / संयोजक चकराये
बोले—'यह आपने कौन-सा ड्रामा किया है
कविता के क्षेत्र में क्या हंगामा किया है'
सुनकर वे बोले—'बदायूं कवि सम्मेलन से
लौटने के बाद / यही निर्णय लिया है।'

—प्रेमकिशोर 'पटाखा'
दादरी, गाजियाबाद

कविता : क्या तुम एक हाथ से स्कूटर चला सकते हो?

अमित : बिलकुल चला सकता हूं।

कविता : तो फिर अपनी नाक साफ कर लो, काफी देर से बह रही है।

—नीरज जैन

★

एक कैदी ने पत्रकारों को बताया, "मैं सुंदर औरतों के कारण यहां पहुंचा हूं।"

"किन सुंदर औरतों के कारण?"

"उन सुंदर औरतों के कारण, जो सोने के हार गले में पहनकर घर से निकलती हैं।"

—इंदु आनंद

★

एक नवयुवती को 'चैरिटी शो' के लिए धन-संग्रह का काम सौंपा गया। वह दनदनाती हुई एक फिल्म अभिनेता के पास जा पहुंची और उससे मोटी रकम का एक चैक हासिल करके फिर संस्था के अध्यक्ष से मिली। उत्साह से बोली, "आप अंदाजा लगा सकते हैं कि उसने संस्था के लिए क्या दिया? पूरे ५०० रुपये का चैक!"

शांत भाव से अध्यक्ष ने पूछा, "सच-मुच! लेकिन क्या उसने चैक पर दस्तखत भी किये?"

"किये थे पर मैंने उसे काटकर अपने आटोग्राफ बुक में चिपका लिया है।"

# हंसिकाएं

## भ्रम

त्रिशंकु व प्रेमी की
गति समान
दोनों को अधर में रहने का उन्मान।

## लाभांश

रूपसि को रोते देखकर
आश्वासन देने लगे
जहां पानी देखा, वहीं नाव खेने लगे।

## स्तरीय

राष्ट्रीय स्तर के ढेरों कवियों को
मंच पर उन्होंने घंटों बिठाये रखा . . .
फिर बोले . . .
"धैर्य धरें . . . लाचारी है
राष्ट्रीय स्तर के दर्शकों की
तलाश जारी है।"

## मात्र

उन्होंने कहा—
"उत्पादन वर्ष में
परिवार नियोजन का मनाएंगे आप, सिर्फ एक सप्ताह।"

## प्रेम

विवाह—यानी
धर्म के संबंध
धर्म के बारे में, वे कहते हैं
"हम धर्म निरपेक्ष राज्य में रहते हैं।"

—डॉ. सरोजनी प्रीतम
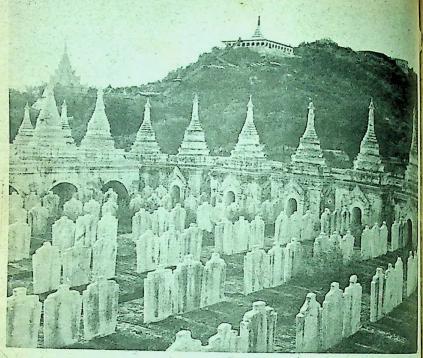
चैत्य निर्माण की परंपरा

# उन्होंने अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी कर दी थी

● विट्ठलदास मोदी

भारत में तथा विदेशों में चैत्य-निर्माण की परंपरा गौतमबुद्ध के परि-निर्वाण के पश्चात बहुत तीव्रगति से फैली। परंतु बुद्ध-पूर्व के भारत में भी चैत्य-परंपरा पुरातनकाल से चली आ रही थी। रामायण और महाभारत में स्थान-स्थान पर चैत्यों का उल्लेख आया है। यदि ये दोनों ग्रंथ भगवान गौतमबुद्ध के पूर्वकालीन हैं, तब तो स्पष्ट ही चैत्यों का अस्तित्व बुद्धपूर्व सिद्ध होता है। अन्यथा भी पालि वाङ्मय में भगवान गौतमबुद्ध के जीवन-काल में ही अन्य अनेक पूर्व निर्मित चैत्यों का उल्लेख है। 'कस्सपस्स दसबलस्स चेतिय' याने दसबलधारी भगवान कश्यप-बुद्ध के चैत्य का उल्लेख है, जो गौतमबुद्ध के पूर्व हुए थे। इस उल्लेख के अनुसार

ऊपर : धर्म चैत्य—मांडले का कुदोडो चैत्य
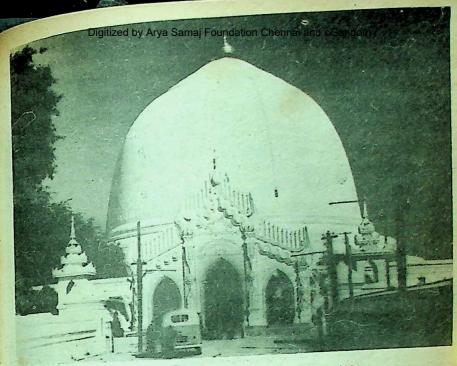
संगाइँ का धातु चैत्य—कामूडो राजमणि चूल पेगोडा

**जिन संतों के दाह-स्थानों पर चैत्य निर्माण हुए, वे धीरे-धीरे पूज्य-स्थल बनते गये। मृत संतों को देवलोकगामी मानकर देवता की तरह उनकी पूजा होने लगी, चैत्य देव-स्थान बनते गये, लोग वहां आकर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे, धीरे-धीरे लोगों की मनोकामनाएं पूरी होने लगीं**

कश्यप-चैत्य भगवान गौतमबुद्ध के समय तो विद्यमान था ही; नौ सौ वर्ष पश्चात प्रसिद्ध चीनी-यात्री फाहियान के समय तक भी कायम रहा, क्योंकि उसने भी अपनी भारत-यात्रा में इस चैत्य के दर्शन का उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त भी बुद्धकालीन पालि-साहित्य में ऐसे अन्य अनेक चैत्यों का उल्लेख है, जहां भगवान बुद्ध अपनी धर्म-यात्रा के दौरान ठहरा करते थे और स्थानीय लोगों को धर्मोपदेश दिया करते थे। उन दिनों का एक प्रसिद्ध चैत्य, 'अग्ग आलव चैत्य' था, जहां प्रवास करते हुए उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये।

**चैत्य-निर्माण की परंपरा**

वैशाली के अनेक चैत्य अत्यंत मनोहारी रहे होंगे, तभी भगवान ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष वैशाली छोड़कर कुशीनगर की ओर प्रस्थान करते हुए कहा था, "रमणीय है आनंद! वैशाली! रमणीय है उदयन-चैत्य! रमणीय है गौतमक-चैत्य! रमणीय है सत्तंब-चैत्य!

महामुनि उद्देश्य चैत्य की मूर्ति

रमणीय है बहुपुत्त-चैत्य ! रमणीय है सारंदद-चैत्य ! रमणीय है चापाल चैत्य ! ''

इन रमणीय चैत्यों में भगवान ने वैशाली-प्रवास के दौरान अनेक बार निवास किया, और स्थानीय लोगों को धर्म की शिक्षा दी।

लगता है, पुरातनकाल में किसी संत महापुरुष की चिता पर चबूतरा (चौरा) बनाने की प्रथा थी। किन्हीं विशिष्ट चबूतरों पर सम्मान के लिए खुली छतरी चिनी जाती रही होगी—जैसे कि आज भी राजस्थान में प्रचलित है। किन्हीं-किन्हीं चबूतरों पर ठोस स्तूप बनाकर उनके सिरे पर सम्मानसूचक छत्र स्थापित किया जाता रहा होगा। इस प्रकार किसी संत की चिता पर उसके स्मारक के रूप में चैत्य का निर्माण किया जाता होगा। चैत्यों के लिए उन दिनों लोक-भाषा में 'चेतिय' शब्द का प्रयोग होता था, जिसका अर्थ था—लोगों की धर्म-चेतना जगानेवाला स्थान।

**दाहस्थान, पूज्य-स्थल बने**

जिन संतों के दाह-स्थानों पर चैत्य निर्माण हुए, वे धीरे-धीरे पूज्य-स्थल बनते गये। मृत संतों को देवलोकगामी मानकर देवता की तरह उनकी पूजा होने लगी। चैत्य देव-स्थान बनते गये। लोग वहां आकर अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने लगे। शनैःशनैः कुछ लोगों की मनोकामनाएं पूरी होने के कारण ये स्थान पूजन-अर्चन के साथ-साथ मनौती मनाने के स्थान भी बनते गये। ऊपर जिन चैत्यों का नाम आया है, उनमें 'बहुपुत्तक चैत्य' ऐसा ही एक देवस्थान रहा होगा, जहां लोग पुत्र-प्राप्ति की मनो-कामना पूरी करने जाते रहे होंगे। उनके इर्द-गिर्द यात्रा पर आये श्रद्धालु भक्तों के ठहरने की धर्मशालाएं बनती गयीं।

चैत्यों में चापाल-चैत्य की अपनी महत्ता है। गौतम बुद्ध यहां अक्सर निवास किया करते थे। यहीं भगवान ने अपने अस्सीवें वर्ष की फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन इच्छा-मृत्यु का संकल्प किया था और भविष्यवाणी की थी कि तीन महीने पश्चात अगली वैशाख-पूर्णिमा को वे अपना शरीर त्यागेंगे।

**चैत्य : ध्यान केंद्र**

इससे लगता है कि चैत्य-निर्माण की

परंपरा लोगों को धर्म-संपन्न बनाने हेतु ध्यान-साधना के लिए चली होगी। राग-द्वेष और मोह की अग्नि-ज्वाला से सदैव चिता सदृश धधकते रहनेवाले चित्त को निर्वाण की शीतलता और शांति प्राप्त कर सकने में जो स्थान सहायक हो, उसे चेती अथवा चेतिय (संस्कृत में चैत्य) कहने लगे। वस्तुतः आकुल-व्याकुल चित्त को स्थिर, शांत और निर्मल करने की साधना ही चेतिय (चैत्य) कहलाने योग्य है। अनित्यबोध की चेतना जगाये, वही चेतिय। धर्म के प्रति चित्त को सचेत करे, वही चेतिय। परंतु धीरे-धीरे यही साधना केंद्र जन-साधारण के लिए महज पूजा-पाठ व कर्मकांडों के स्थान बन गये होंगे। जैसे कि आज भी अनेक देशों में बौद्ध-चैत्य पूजा-पाठ व धर्म कर्म-कांडों के लिए ही अधिक प्रयुक्त होते हैं, ध्यान-भावना के लिए कम।

बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ दिनों पूर्व ही उनके प्रमुख शिष्य सारिपुत्त और महा-मोग्गलान ने शरीर त्यागा। उनके अस्थि-अवशेषों पर भगवान ने इसी हेतु चैत्य निर्माण करवा दिये। भगवान गौतमबुद्ध के बाद तो चैत्यों की निर्माण-परंपरा तीव्र गति से आगे बढ़ी। उन दिनों तीन प्रकार के चैत्यों का निर्माण हुआ करता था :

**१—परिभोग चेतिय (चैत्य) :**

ऐसे चैत्य, जिनके गर्भ में भगवान बुद्ध द्वारा प्रयोग में लायी गयी किसी भौतिक वस्तु को स्थापित कर उस पर चैत्य निर्माण किया गया हो। ऐसे ही परिभोग चैत्य के अवशेष बंबई नगरी से लगभग ८० मील उत्तर की ओर नाला-सुपारा नामक गांव में खुदाई से प्राप्त हुए हैं। यह स्थान पूर्वकाल में सुप्पारक पत्तन के नाम से पश्चिम भारत का एक प्रसिद्ध बंदरगाह था। यहां के निवासी पुण्य नामक व्यापारी ने भगवान से धर्म-साधना सीखकर अध्यात्म की ऊंची अवस्थाएं प्राप्त कीं। स्वदेश लौटकर वह व्यापारी यह कल्याणकारी विद्या अनेक लोगों को सिखाने लगा, जिसके परिणामस्वरूप इस प्रदेश में ध्यान-साधना की परंपरा चल पड़ी। अनेक बौद्ध-गुफाएं और गुफाओं

मांडले के महामुनि चैत्य का प्रवेश द्वार

के भीतर बने चैत्य इसके प्रमाण हैं। इस सुप्पारक स्तूप की खुदाई में भगवान गौतमबुद्ध का भिक्षा-पात्र प्राप्त हुआ है, जो कि बंबई के सरकारी संग्रहालय में सुरक्षित रखा है।

**२—धातु चेतिय (चैत्य) :**
भगवान बुद्ध अथवा अन्य जीवनमुक्त अरिहंतों के अस्थि-अवशेषों पर स्थापित चैत्य 'धातु-चैत्य' कहलाते हैं। भगवान गौतमबुद्ध के परिनिर्वाण पर उनकी शरीर की दाहक्रिया के पश्चात् जो फूल बचे, उन्हें उस समय के मगध, वैशाली, शाक्य, मल्ल आदि आठ प्रसिद्ध राज्यों के शासकों में विभक्त किया गया और सबने अपने-अपने राज्य के प्रमुख स्थान में इन धातुओं को स्थापित कर चैत्य निर्माण कराये। इन राजाओं में सबसे अधिक शक्तिशाली मगधनरेश अजातशत्रु था। उसने कुछ ही समय पश्चात् इन सब प्रदेशों से बुद्ध के अवशेष छीनकर अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में एकत्र कर स्थापित किये। कालांतर में जब पाटलिपुत्र पर अशोक का राज्य हुआ, तब उसने इन अवशेषों को पुनः निकालकर विभक्त किया और भारत के अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित चैत्य बनाये। पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई करने पर पिप्पलि (कपिलवस्तु), कुशीनगर, सारनाथ आदि अनेक पुराने स्तूपों के गर्भ में भगवान बुद्ध के धातु-अवशेष मिले हैं। ऐसे ही सारिपुत्त, और महामोग्गलान के धातु-अवशेष सांची के स्तूपों के गर्भ में मिले हैं। ये सारे स्तूप धातु-चेतिय की गिनती में आते हैं।

भगवान बुद्ध के अवशेष भारत के बाहर भी पहुंचे। ऐसी मान्यता है कि उनके जीवनकाल में ही आधुनिक रंगून (प्राचीन उक्कल नगर) के दो स्थानीय प्रवासी भारतीय व्यापारी तपस्स एवं भल्लिक भगवान बुद्ध के कुछ केशधातु अपने साथ ले गये और रंगून की डगोन पहाड़ी पर स्तूप बनाकर उन्हें उसके गर्भ में स्थापित किया। यह बर्मा का प्रमुख स्तूप है जो कि श्वेडगोन पगोड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान के शरीर धातु का एक अंश (एक दांत) श्रीलंका भी पहुंचा और वहां कैंडी में निर्मित एक पुरातन स्तूप के गर्भ में स्थापित किया गया। ऐसे चैत्यों के लिए धातुगर्भ (पालि में धातु-गब्भ) शब्द प्रचलित हुआ जो कि कालांतर में धगब्भ डगब्भ, डगोबा होता हुआ आज की सिंहली भाषा में 'डगोभा' हो गया। पश्चिम के लोग श्रीलंका आकर बसे और वहां से कुछ लोग बर्मा और श्याम गये तो उनके साथ यह 'डगोभा' शब्द विकृत होता हुआ 'पगोडा' के रूप में प्रयुक्त होने लगा। विदेशी भाषाओं में धातुगब्भ चैत्य के लिए, बल्कि सच तो यह है कि सभी चैत्यों के लिए पगोड़ा शब्द प्रचलित हो गया है।

**३—धम्म चेतिय (चैत्य) :**
—पिछली पच्चीस शताब्दियों में देश-

विदेश के अनेक लोगों ने भगवान बुद्ध के सम्मान में अनगिनत चैत्यों का निर्माण किया। न इतनी परिभोग वस्तुएं उपलब्ध हो सकती थीं और न ही शरीर-धातु। अतः एक परंपरा चली, जिसके अनुसार भगवान के उपदेश का कोई महत्त्वपूर्ण पद किसी स्वर्ण-पत्र या ताम्र-पत्र पर अंकित कराकर उसे भू-गर्भ में स्थापित कर उस पर चैत्य निर्माण किया जाने लगा। देश-विदेश के अनेक पुरातन स्तूपों की खुदाई में अनेक धातु-पत्र प्राप्त हुए हैं, जिन पर बुद्ध-वाणी अंकित है। ऐसे चैत्य धर्म-चैत्यों की गणना में आते हैं।

**४—उद्देसिक चेतिय (उद्देश्य चैत्य) :** भगवान बुद्ध के लगभग ५०० वर्ष बाद देश-विदेशों में उपरोक्त तीन प्रकार के चैत्य ही बनते थे। परंतु इसके बाद उनकी मूर्तियां बननी शुरू हुई और ऐसे अनेक चैत्य व गुफाओं का निर्माण हुआ, जिनमें उनकी स्मृति के उद्देश्य से उनकी मूर्तियां स्थापित की गयीं। ऐसे ही भारत तथा भारत के बाहर भी पहाड़ों को काटकर ध्यान और भिक्षुओं के निवास के लिए बनी हुई गुफाओं में भी मूर्तियां स्थापित की गयीं और गुहा-चैत्य बनाये गये। ये सभी उद्देश्य-चैत्य की गणना में आते हैं। वैसे तो जब मूर्ति पूजने का प्रचलन बढ़ा, तब परिभोग चैत्य, धातु चैत्य और धम्म चैत्य में भी मूर्तियों की स्थापना होने लगी।

**५—विपश्यना, ध्यान चेतिय (चैत्य) :** बर्मा के प्रसिद्ध साधनाचार्य स्व. सयाजी ऊ बा खिनने चैत्य-निर्माण की परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ी। उन्हें चैत्य का उपयोग प्रमुख रूप से विपश्यना साधना के लिए ही करना था। अब तक जितने

लेखक

चैत्य स्तूपों के रूप में निर्मित हुए मिलते हैं, वे लग-भग सभी भीतर से ठोस चिने जाते थे। इन्होंने भीतर से खोखले चैत्य का निर्माण किया, जिसमें साधकों के ध्यान के लिए आठ दिशाओं में आठ और खुलने-वाले गुहा-कक्ष बनाये और उनके बीचो-बीच एक गोलाकार कक्ष बनाया गया, जिसमें आचार्य स्वयं ध्यान कर सकें और समय-समय पर उससे सटे हुए इन आठ कक्षों में ध्यान करते हुए साधकों को यथो-चित मार्गदर्शन दे सकें। इन आठ कक्षों के आगे थोड़ी दूरी पर अन्य गुहा-कक्ष बनाये गये। रंगून में बने इस अंतर्राष्ट्रीय साधना केंद्र के चैत्य का प्रयोग विपश्यना साधना के लिए होता रहा है और इस चैत्य-भूमि से अनेक अच्छे साधक तैयार होकर अपने और बहुतों के मंगल का कारण बन सके हैं।

आरोग्य मंदिर, गोरखपुर (उ. प्र.)

**एक सज्जन अपने मित्र से शिकायत करते हुए बोले, "क्या कहूं भाई! साड़ियों के पीछे मेरी पत्नी तो एकदम पागल हो गयी है। परसों एक साड़ी लाने का तकाजा था, आज सुबह-सुबह फिर एक साड़ी मांगने लगीं।"**

# समय

गरज मत यह बरसने का समय है
न फट पड़, खुद को कसने का समय है

दरारें पड़ गयी हर खेत में हैं
यह अंखुओं के उकसने का समय है

बुझा दे बिजलियां, अंधा कहीं का !
जुगनुओं के रहसने का समय है

नहा ले, धूल का लहरा समुंदर
धरा में नभ के धंसने का समय है

तरल बन घन, सरल बन वीर-बांके,
य' सूखों के सरसने का समय है !

—जानकीवल्लभ शास्त्री
—निराला निकेतन, मुजफ्फरपुर–१

# चटकती देह अनार की

अग्नि पुरुष लिखने लगा किरणों से इतिहास
चटकी देह अनार की बढ़ी नदी की प्यास

पेड़ों ने धारण किया फिर बैरागी वेश
मृगछाला पहने खड़े, मुड़ा दिये सब केश

सूनी सब डालें हुई आंगन हुए उदास
तेज हवा बिखरा गयी सूखे सभी लिबास

छांह चिरैया हो गयी किरणें पैनी धार
धूप निगोड़ी हो रही आरी कभी कटार

अमर बेल-सी चढ़ रही दिन-दिन धूप [illegible]
वेणी मारे गोफना चितवन हुई गुलेल

मौलसिरी कचनार से उमगी मधुर सुगंध
गुलमोहर करने लगा दर्दीले अनुबंध

—राजकुमारी रश्मि
द्वारा, सुरेश टेलर्स, चंपाबाग—नई सड़क
लश्कर—ग्वालियर-१ (म. प्र.)

# आस्था

कोहसारों पर उतरी
धूपीली दोपहर
जब उतर रही थी
मेरी चेतना पर
तब यह अहसास
गहरा हो रहा था कि
तुम हमेशा
उस मोड़ पर
खत्म होते हो
जहां से शुरू होती है
मेरी जिंदगी की लड़ाई
और एक अनजाने आलम से
सिमटकर बिखर जाते हैं
आस्थाओं के बेजार टुकड़े

—सरस्वती माथुर
ए-२, सिविल लाइन्स जयपुर-६

सामंतशाही भले ही कितनी क्रूर रही हो, उसने संस्कृति और कला के भरपूर भंडार भरे हैं। तलवार की नोक पर जीने और मरनेवाले जुझारू योद्धाओं के मन का नवनीत पत्थरों की रग-रग में घुला हुआ है। कोमलतम गहराइयों की अभिव्यक्ति थार के रेगिस्तान को रससिक्त किये है। उन्नत मस्तक अजेय दुर्ग और अभेद्य प्राचीरें राजपूती शौर्य व पराक्रम के सजीव कथानक हैं। अनूठी कलाकृतियां समय की लोरियां पी-पीकर मंदिरों की गोद में सोयी पड़ी हैं। पत्थरों के ... उभरी संगीत की मीठी-मीठी धुन रेत के टीलों से टकराकर बिखर जाती है। प्राचीन मारवाड़ मंडोर राज्य का ... भी पुरातत्व की पहचानी ... से गूंज रहा है। जोधपुर से ६५ कि० मी० दूर ओसियां की उजड़ी-उजड़ी बस्ती ... ही किसी गुमशुदा लय का ... आइए, हम भी इसकी कुछ पहचान ...

छाया : शिव...

# रेगिस्तानी कथाव में गूंजती बांसुरी

• विष्णु खन्ना
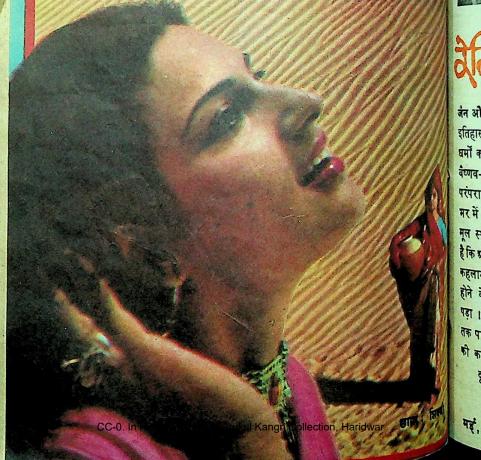
**जैन और वैष्णव धर्म का संगम**

इतिहास ने ओसियां नगरी को दो महान धर्मों का संगम स्थल माना है। जैन और वैष्णव-धर्म की अलग-अलग व सम्मिलित परंपराएं इस कस्बे की धरोहर हैं। देश-भर में फैले बिखरे ओसवाल जैन इसे अपना मूल स्थान मानते हैं। यह कहना कठिन है कि ओसियां के कारण यह जाति ओसवाल कहलायी या इस जाति का आदि स्थान होने के कारण नगर का नाम ओसियां पड़ा। हां, ये दोनों नाम अतीत से आज तक परस्पर जुड़े हुए हैं। इन अटूट संबंधों की कड़ी है सच्चिया माता का मंदिर।

दूर से दिखायी देनेवाले टीले को एक मजबूत परकोटे ने घेर रखा है। टीले के ऊपर ही तो सच्चिया माता का दरबार है। देवी का यह मंदिर स्थापत्य कला की मुखर शहनाई-सा मोहक है। छोटे-बड़े शिखर समूह मुख्य भवन की दीवारों, आलों और खंभों पर कुशल छेनियों की सफलता के प्रमाण-पत्र टेके हुए हैं। ये प्रमाण-पत्र देवी-देवताओं की नयनाभिराम कलात्मक आकृतियों के रूप में हैं। मंदिर की कोई प्रामाणिक जन्म-पत्री न होने के कारण निर्माता के नाम और जन्म-तिथि पर मतभेद स्वाभाविक हैं, लेकिन कला

ऊपर : ओसियां स्थित सच्चिया माता के मंदिर के दो दृश्य

महिषासुर मर्दिनी का मंदिर

वर्धमान जैन-मंदिर

और सौंदर्य के लिए पारखियों में कोई मतभेद नहीं। हां, अधिकांश विद्वान इस निर्माण को ११-१२ वीं शती का मानते हैं।

ऊपर तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां हैं। सीढ़ियों के ऊपर काल-क्रम ने लहरियों-दार सात तोरणों का निर्माण किया है। तोरण-जैसे किसी खूबसूरत दुलहन के चेहरे पर मोतियों की झालर लटका दी हो। सीढ़ी-दर-सीढ़ी, तोरण-दर-तोरण पार करते हुए हम मुख्य भवन के सामने सहन में पहुंचते हैं। हम—जिनमें वैष्णव भी हैं, जैन भी। नवरात्र की चहल-पहल में हम दोनों समुदायों की भाव-विभोर लहरें आशीश सिंधु में लीन हो जाना चाहती हैं। किंवदंतियों के धरातल पर टिकी प्राचीन प्रतिमा आशीर्वाद के मोती लुटाती है।

ओसवाल जैन, सच्चिया माता को अपनी कुल देवी मानते हैं, लेकिन ओसियां में अब एक भी ओसवाल परिवार स्थायी रूप से नहीं रहता। हां, बच्चों के मुं संस्कार व अन्य धार्मिक अनुष्ठानों लिए अकसर आते रहते हैं। इस मंदिर निर्माणकर्त्ता के रसोइयों का वशंज मा जानेवाला एक सोमानी रगो परिवा बीकानेर में बसा हुआ है। इस परिवा के सदस्य प्रति वर्ष क्वार के नवरात्र बीकानेर से पैदल चलकर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने आते हैं।

गुर्जर प्रतिहार काल का एक अ प्रतिष्ठित साज, सच्चिया माता की सु तरंगों से संगत कर रहा है। यह है आठवीं सदी में राजा वत्सराज का बनवाया हुआ भगवान महावीर का मंदिर। चौड़े चबू तरे पर बना पत्थरों का यह साज कला के आरोह-अवरोह की हर कसौटी पर खरा उतरता है। बरामदे के खंभों के अबोले स्वर, शिखर व गुंबद के सौंदर्य पर मुग्ध इस मंदिर का अनूठा तोरण, किसी दु

गान की भूमिका-सा है।

**एक हम-उम्र शंख-ध्वनि**

ओसियां के इस वाद्य-समूह में कुछ और साज भी अपनी पहचान बनाये हुए हैं। सूर्य मंदिर एक ऐसी ही हम-उम्र शंख-ध्वनि है। मुख्य प्रवेश-द्वार के दो लंबे स्तंभ कला और सौंदर्य की प्रतियोगिता में एक दूसरे को हेय समझ रहे हैं। पत्थरों की दीवारों पर विष्णु, वाराह, सूर्य व नरसिंह आदि की साकार छवियां उभर रही हैं। शिखर सौंदर्य में कमल की पंखुरियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। कमल की गोद में सिमटा आमलक-जैसे किसी सलोनी की गोद में मासूम बच्चा हो। सूर्य मंदिर अपनी प्राचीन गरिमा को तो संजोये है, लेकिन सूर्य की प्रतिमा समय के अंधेरों में गुम हो गयी है।

कुछ अन्य मंदिर भी अपनी पहचान बोल लेते हैं। हरिहर नाथ के मंदिर की दीवारें कृष्ण की बाल लीलाओं का रंगमंच हैं। अकंप किंतु सजीव, और अत्यंत मनोहारी।

एक जलतरंग भी इस वाद्य-समूह में भागीदार है, लेकिन इस साज में अब न जल है और न तरंग इसे खातन बावड़ी कहते हैं। ओसियों के 'ऑरकेस्ट्रा' में यह साज काफी बाद में शामिल हुआ, किंतु सगंत ज्यादा नहीं कर सका, सुर जल्दी टूट गये। किंतु इस गहरी बावड़ी की दीवारों पर सीढ़ियों की अद्‌भुत विसात-सी जड़ी हुई है। 'टाइल' की तरह बिछे हुए, चौकोर सीढ़ी-समूह की यह विशेषता है कि किसी भी एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी तक पहुंचा जा सकता है। बावड़ी की एक दीवार पर किसी टूटे-से महल के खंडहर टंगे हुए हैं। बेचारे का मस्तक फूट चुका है, हाथ-पांव टूटकर बिखरे पड़े हैं, कलेजा दो टूक है, महल फटी-फटी आंखों से बावड़ी की जल-हीन गहराइयों पर चढ़ी मिट्टी की परतों को नापने का प्रयास करता रहता है।

पत्थरों के कान्हा के मुंहलगी कला की बांसुरी, थार के रेगिस्तानी कछारों में गूंज रही है, ओसियां इसी गूंज की बेसुध-सी कड़ी है।

—बैंक स्ट्रीट, मेरठ

**'डेली मेल' में छपी एक खबर :**

'एल्यर की पत्नी ने अदालत में अपने पति के खिलाफ तलाक की अर्जी पेश करते हुए अदालत को बताया कि सारा झगड़ा इस बात को लेकर उठा था कि उसके पति को बिजली से चलनेवाली चीजों, जैसे इस्तरी, वाशिंग मशीन, गीजर आदि से बहुत लगाव है, और वह उसे हमेशा इनका इस्तेमाल करने पर मजबूर करता रहता है। पर, एक तो उसे इन चीजों से कोई मोह नहीं है और दूसरे जब भी वह इन चीजों का इस्तेमाल करती है, वे अचानक बिगड़ जाती हैं। इतने पर भी, गृहस्थी की गाड़ी किसी तरह आगे चल रही थी। पर, मेरे धैर्य का बांध उस समय बिलकुल टूट गया, जब उसने एलेक्ट्रिक-चेयर (वह कुरसी जिस पर बैठाकर अपराधी को मारा जाता है) खरीदने का आर्डर दिया।'

## मारीशस की कहानी

दिन-ढले नौकरी से लौटकर जब मैं घर में प्रविष्ट हुआ, तब वहां व्याप्त निस्तब्धता को देखकर मेरा माथा ठनका। ऐसी निस्तब्धता मेरे यहां पारिवारिक कलह से पहले पसर आती है या उसके बाद। ब्रीफकेस कमरे में रखकर जब मैं बगलवाले ड्राइंग रूम में गया तब वहां अपनी पत्नी मीनू को खड़ी पाया। उसका चेहरा अस्वाभाविक रूप से गंभीर था। निस्संदेह ऐसा कोई असामान्य या अशोभनीय कांड घटा होगा, जिसके कारण वह गंभीरता से परिप्लुत अंदर-ही-अंदर उफन रही थी।

"ऐसी क्या बात हो गयी जो तुम्हारा चेहरा इस कदर उतर आया है, मीनू?" मैंने अपने स्वर को पूर्णतया संयत करके कहा। उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बस खुली खिड़की के बाहर देखे जा रही थी। उसका चेहरा चाहे उतर आया था, पर उसका पारा अत्यधिक चढ़ा हुआ था, ऐसा मैंने तब जाना जब उसे अपनी साड़ी का पल्लू अपनी अंगुली में लपेटते-खोलते देखा। ऐसा वह तभी करती है जब उसकी परेशानी अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है।

"तुम मुंह से कुछ कहोगी भी या यों ही चुप्पी साधे . . .।" मैं अपना वाक्य पूरा कर पाता, इससे पहले मीनू झल्लाकर बीच में ही चीख पड़ी, "काश मैंने चुप्पी नहीं साधी होती तो आज यह नौबत नहीं आती। मैं देख रही हूं कि मैं जितना

गम खाती हूं, तुम्हारे भाई को उतनी ही शह मिल रही है। मैं समझ नहीं पाती कि जब उन्हें शराब नहीं पचती, तब फिर वे क्यों नशा करके नाहक तमाशा खड़ा करते हैं। आखिर उन्होंने मुझे समझ क्या लिया है? बे-जबान कठपुतली या दर-ब-दर की भिखारिन? माना वे बड़े हैं, बड़े बनकर रहें, पर यह क्या कि बात-बात पर जली-कटी सुनाएं। जब मैं उनका दिया नहीं खाती, तब फिर उनकी धौंस क्यों सहूं? उन्होंने अपनी एक रसोई क्या बना ली है—जैसे उनका मिजाज ही नहीं मिलता, पर मैं भी बता दूंगी, कि उस रसोई के बिना भी मेरा गुजारा हो सकता है। और तुम भी कान खोलकर सुन लो, कि आज के बाद मैं उस मुई रसोई में कदम रखनेवाली नहीं, चाहे तुम मेरी खाल ही क्यों न उधेड़ लो।''

बात धीरे-धीरे मेरी समझ में आ रही थी। हो-न-हो आज भी भैया ने नशे की हालत में किचन को लेकर कोई हंगामा खड़ा किया होगा। अब मुझे लगने लगा है, कि शादी से पूर्व कोई अलग चौका न बनाकर मैंने अपने जीवन की सबसे बड़ी भूल की है। पर मुझे भी क्या पता था, कि शादी के बाद स्थितियां इस कदर बदल जाएंगी। क्या पता था कि मां की मृत्यु के पश्चात जो भाभी मेरी छोटी-से-छोटी जरूरत का खयाल रखती थी, मुझपर किसी प्रकार की आंच न आने देती थी, मेरी शादी के पश्चात बात-बात पर मेरी पत्नी

से लड़ने-झगड़ने को तैयार रहेगी। क्या पता था, कि जिस भाई ने पढ़ा-लिखाकर मुझे इस लायक बनाया है, कि समाज में अपनी 'पोजीशन' बना सकूं, गृहस्थी का भार स्वयं वहन कर सकूं, वही नशे में धुत्त, मेरी पत्नी की उपेक्षा करने की ताक में रहेंगे।

"जरा मैं भी तो सुनूं ऐसी क्या बात हो गयी, जो उस रसोई में कदम न रखने की ठान ली है तुमने।" बात की गंभीरता को नजरअंदाज करने के उद्देश्य से मैंने कहा। कई बार जब ऐसी-वैसी कोई बात हो जाती है और मीनू शिकायत करती है, तब मैं अपनी बातों द्वारा उसे यह एहसास दिलाने की कोशिश करता हूं, कि जो कुछ हुआ है वह ऐसी असाधारण घटना नहीं जिसको लेकर झगड़ा मोल लेने की कोई आवश्यकता है। पिछले कुछ अनुभवों ने यह बताया है, कि मेरी ओर से जरा-सा बढ़ावा पाकर मीनू सारे घर को सर पर उठा लेने को तैयार हो जाती है। इसीलिए ज्वालामुखी को आकार लेने से पहले उसे दबा रखने में ही अपनी भलाई दिखती है।

"मैं रसोई में चावल बीन रही थी, कि तुम्हारे भाई नशे में चूर वहां आकर भोजन करने लगे। मुझे क्या पता था, कि वे लड़ने की ठानकर आये हैं और किसी बहाने की तलाश में हैं। जैसे ही सूप से भरा चावल फटका, चोट खाये शेर की तरह दहाड़ उठे, कि मैंने जान-बूझकर उनकी थाली में धूल-धक्कड़ झाड़ दी है। मैं कुछ कहती, इससे पहले उन्होंने हाथ की थाली हवा में उछाल दी। के बाद उनके मुंह में जो अंडबंड बका। जाते-जाते उन्होंने यह भी कह कि मैं नहीं चाहता मेरी रसोई में घरवाली के अलावा कोई दूसरा पकाये। इस घर में आकर मैंने बहुत है, अब सहा नहीं जाता। अब मैं जान हूं, कि जब तक अपना चूल्हा-चौका नहीं बना लेती, इस घर में तब तक शांति की सांस लेना मुहाल है।"

"क्यों बात का बतंगड़ बना रही मीनू? तुम तो भैया के स्वभाव को जान ही हो। वे मुंह से चाहे कुछ भी बक मन में बैर नहीं पालते। जान-बूझकर सही, कौन जाने गलती से ही तुमने भोजन में धूल फटक दी होगी।"

"इनसान गलतियों का पुतला ही है और जब इनसान होकर मुझसे अनजाने एक गलती हो गयी हो, तब हुई थाली उछालने की क्या जरूरत?"

मीनू के तर्कों का मेरे पास कोई जवाब न था, पर उसकी दलीलों से सहमत होकर मैं उस झगड़े को और बढ़ाना नहीं चाहता था। बात को वहीं समाप्त करने के लक्ष्य से कहा, "देखो मीनू, बाहर की उलझनों से मैं वैसे भी बहुत अधिक परेशान हूं। अगर तुम मेरी उलझनें बांटने की बजाय मुझ पर और भार लाद दोगी, तो मैं अपनी जिम्मेदारियां भली-भांति निभा नहीं पाऊंगा।"

"तुमने कितनी आसानी से अपनी सफाई दे दी, कि तुम अपने बाहर की उलझनों से परेशान हो; पर मैं पूछ सकती हूं, कि घर की उलझनें सुलझाना क्या पति का कर्त्तव्य नहीं होता? क्या मुझे इसीलिए व्याह करके लाये थे, कि गृहस्थी की चक्की में मैं इस बेरहमी से पीसी जाऊं और तुम मुझे मझधार में अकेली छोड़कर तमाशा देखो।" अंतिम वाक्य कहते-कहते मीनू का गला भर आया और उसकी आंखों में आंसू छलछला आये।

मैंने बहुत कम अवसरों पर मीनू को रोते देखा है। उसके आंसू घनीभूत अंतर्पीड़ाओं के सूचक हैं। अश्रु-वर्षण करते मीनू के नेत्रों को देखकर मेरा मन विद्रोह कर उठा। मन हुआ, भैया-भाभी के प्रति मेरा जो अदब-लिहाज है और मेरे अंदर जो सहिष्णुता एवं नियंत्रण है, उन सबको झाड़-झटककर उनसे एक-एक बात की सफाई मांगूं। लेकिन दूसरे ही पल मैं अपने को संयत करके, बिना कुछ कहे कमरे से बाहर चला गया।

कुछ समय पश्चात मैंने अपने को समुद्र-तट पर चहलकदमी करते हुए पाया।

रात करीब नौ बजे जब घर लौटा, तब सारे लोग गहरी नींद में गाफिल सो रहे थे, ... शायद आज की घटना से बेखबर।

सवेरे किसी जाने-पहचाने शोर से
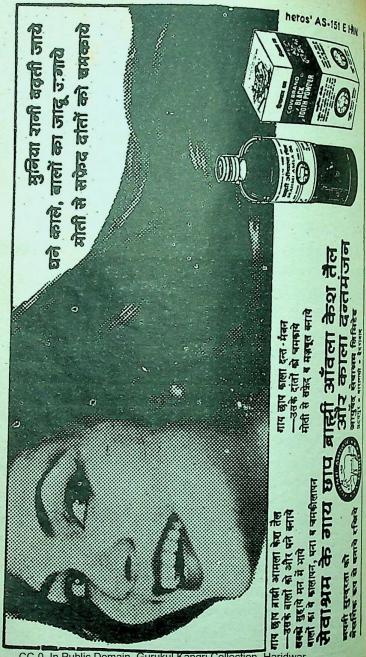
मेरी नींद उचटी। आंख मूंदे-मूंदे ही मैं विचार करता रहा, कि बाहर से आने-वाला शोर आज इतनी स्पष्टता से कैसे सुनायी दे रहा है। फिर-जैसे वायु-वेग से सारी बातें मेरी समझ में आ गयीं। रात को मीनू गुस्से में उबल पड़ी थी, कि वह किचन में पांव धरनेवाली नहीं। मैंने समझा था कि बहस की गरमागरमी में उसने ऐसा कहा होगा, पर अब ज्ञात हुआ कि उसने अपने संकल्प का निर्वाह करते हुए किचन में पकाना बंद कर दिया था और हमारे शयन-कक्ष के एक कोने में स्टोव जलाकर खाना तैयार कर रही थी। कमरे के संकरेपन और एक ही कक्ष में खाने-पीने-सोने की 'ऑडीटी' के विचार से मेरे अंदर नाराजगी-जैसी कोई चीज कुलबुलाने लगी, पर फिर रात की गरमा-गरमी के बारे में सोचकर मेरा रोष ठंडा पड़ गया।

कुछ समय पश्चात मैं बिस्तर से उठा और शौचालय की ओर चल दिया। शौच से निवृत्त होकर आया, तब भी मीनू को पकाने में मशगूल पाया। दांत ब्रश करके गुसलखाने में चला गया। लौटा तो देखा, मीनू मेरा ब्रीफकेस तैयार कर चुकी थी।

आठ बजते-बजते मैं कॉलेज जाने के लिए तैयार था। जब मैं घर से निकला, तब मीनू ने कहा, "आज जल्दी घर आइ-एगा।" जी हुआ पूछूं, "क्यों आज कोई खास बात है क्या?" पर मुंह से निकल गया, "आज कोई नया गुल खिलाने का इरादा है क्या?" इन शब्दों के साथ जो मैंने मीनू को देखा, तो लगा-जैसे मेरा हृदय विदीर्ण हुआ चाहता है। उसके चेहरे से बेचारगी और बेकसी टपक रही थी। मैंने उपर्युक्त शब्द क्यों और किसके लिए कहे, कुछ ठीक बता नहीं सकता, पर इतना अवश्य है, कि मैंने अपने अंदर के ऊधम मचाते रोष एवं असंतोष को आवाज दी थी।

रात तो जैसे-तैसे कट गयी थी, पर आज का दिन मुझपर भारी था। कॉलेज के कामों में किसी प्रकार जी नहीं लग रहा था। मन बार-बार क्लास-रूम की चहारदीवारी से निकलकर घर की ओर दौड़ जाता और कल के कांड का विश्लेषण करने लगता।

दोपहर तीन बजे जब 'डिसमिसल' की घंटी लगी, तब मुझे रंचमात्र भी राहत का एहसास न हुआ . . . मैं जो इस वक्त के लिए सदा लालायित रहता था, विशेष-कर विवाह के पश्चात।

घर की ओर बढ़ते हुए मेरा मन किसी अव्यक्त भय, एक अनाम संशय से आशंकित था। कहीं मेरी अनुपस्थिति में कल रात की झड़प ने महाभारत का रूप तो धारण न कर लिया हो। कहीं मीनू मेरे सवेरेवाले चुटीले शब्दों से आहत होकर कुछ नादानी न कर बैठी हो। इस विचार-मात्र से मेरे समूचे शरीर में एक सिहरन-सी दौड़ गयी। मुझे लगा, जैसे-मेरी चाल में अनायास तेजी आ गयी।

घर लौटा तो मीनू का कहीं पता न था। बिना जूते-कपड़े उतारे, बिस्तर पर लद गया। आखिर कहां चली गयी वह? किससे पूछूं? कोई भी तो नजर नहीं आता। फिर एकाएक भाभी दिखायी दीं। पर चाहकर भी उनसे मीनू के बारे में कुछ पूछ न सका। यों ही पड़ा-पड़ा न जाने कब एक झपकी-सी आ गयी मुझे। आंखें खुलीं तो पाया, मीनू मेरे जूते-मोजें उतार रही थी।

"कहां चली गयी थीं मीनू?" मेरा स्वर भारी था। एकटक! घुटी-घुटी-सी सिसकियां। फिर आंसुओं की दो निर्बंध धाराएं। उन बरसती आंखों को देखकर मेरा मन रो उठा। जी हुआ, मीनू से बेतरह लिपट जाऊं और चाहे-अनचाहे उस पर ढाये गये एक-एक अन्याय की क्षमा मांगूं, पर इससे पहले मीनू सिसकती हुई झटके से बाहर चली गयी थी।

अभी मैं लेटा ही था, कि दूर से साइकल की आती आवाज ने भैया के घर लौटने की पूर्व सूचना दी। मेरी आंखें दरवाजे ही की ओर लगी हुई थीं, पर भैया उधर से नहीं गुजरे। आज सवेरे भी नौकरी पर जाते हुए वे घर के पिछवाड़े से कतराकर निकल गये थे। शायद मीनू के सामने आते हुए झिझक हो रही थी उन्हें।

थोड़ी देर बाद वे आवाज दे रहे थे, "जरा इधर आना तो अजय। एक जरूरी बात करनी है।"

मैं चुपचाप उनके कमरे में चला गया। भैया आंखें नीची किये खड़े थे। जाते ही उन्होंने कहा, "कल रात जो कुछ हुआ, उसके लिए मैं शर्मिंदा हूं। हो सके तो मेरी ओर से मीनू से माफी मांग लेना और उसे रसोई में ही पकाने को कहना।"

"माफ करना भैया, इस मामले में किसी को भी कुछ कहकर मैं बुरा बनना नहीं चाहता। यह आग आपकी लगायी हुई है और इसे बुझाने का जिम्मा भी आप ही का है।"

भैया की बोली तो बंद! शायद वे ऐसे मुंहतोड़ जवाब के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें चुप्पी साधे देखकर मैं अपने कमरे में लौट आया। मीनू वहीं बिस्तर पर बैठी थी। उसके चेहरे का भाव बता रहा था कि वह भैया और मेरे बीच का संवाद सुन चुकी थी।

"भाई-भाई के बीच मुझे कुछ कहने का अधिकार तो नहीं, पर भैया को ऐसा टका-सा जवाब देकर तुमने अच्छा नहीं किया। उन्हें अपनी गलती का एहसास हो गया, यही क्या कम है? भैया लाख बुरे हों, पर हैं तो वे अपना ही खून। और फिर लाख रोको, बर्तन साथ रहेंगे तो टकरायेंगे ही, पर इससे संबंध टूट तो नहीं जाता।" मीनू के इन शब्दों को सुनकर मैं अवाक रह गया। शायद कुछ कहने की गुंजाइश भी न थी। —त्रिओले, मॉरिशस

**लोगों से काम लेने के लिए मखमल की म्यान में तीव्र मस्तिष्क होना चाहिए।**
—जार्ज इलियट

# पृथ्वी पर भी अंतरिक्ष यात्री उतरे थे!

● कृष्णबिहारी अस्थाना

यदि आपसे कहा जाए कि आज से चौदह-पंद्रह हजार वर्ष पूर्व कुछ व्यक्ति किसी अन्य ग्रह से अपने वैज्ञानिक साधनों द्वारा इस पृथ्वी पर उतरे थे, और यहां काफी अरसे तक रहे, तो संभवतः आपको विश्वास नहीं होगा; किंतु आपकी जो कुछ भी प्रतिक्रिया हो अब ऐसी संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसे तथ्य सामने रखे हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन मनुष्य ने जिन्हें देवता कहकर संबोधित किया था, वह काल्पनिक अस्तित्व नहीं थे; बल्कि किसी अन्य ग्रह से आये हुए मनुष्य थे। वह श्वेत-पीतवर्ण, विशालकाय तथा दीर्घायु थे ।

एक तिब्बतीय लामा ने जो इस समय लोब सांग रामया के उपनाम से अपने देश के संबंध में पुस्तकें लिख रहे हैं, अपनी एक पुस्तक 'दि थर्ड आई' में इस बात का उल्लेख किया है कि जिस समय उनको संन्यास की अंतिम दीक्षा दी जा रही थी, उनको तीन गुरुजन दलाई लामा के पोटाला के पहाड़ी महल के सौ मीटर नीचे सुरंगों द्वारा एक ऐसे कमरे में ले गये, जिसमें तीन शव रखे हुए थे। यह कंकाल नहीं थे वरन समूचे सुरक्षित शव थे। दो पुरुषों के और एक स्त्री का शव था। पुरुषों की लंबाई पांच मीटर तथा स्त्री की साढ़े तीन मीटर रही होगी। उनके गुरुजनों ने बताया कि यह शव देवताओं के हैं, जो जलप्लावन के पूर्व तिब्बत में रहते थे। उस समय तिब्बत पठार नहीं था, बल्कि समुद्र के तट पर था।

**प्राचीन ग्रंथों में वर्णन**

रामया ने यह भी बताया है, कि देवताओं के उड़नेवाले विमानों का वर्णन तिब्बतीय प्राचीन साहित्य में है। देवताओं का वर्णन प्रायः संसार के सभी प्राचीन साहित्य में है। दक्षिणी अमरीका तथा मैक्सिको के आदिवासियों की मौखिक परंपराओं में भी देवताओं के आने तथा चले जाने का वृत्तांत है। इस संबंध में एरिक व्रान डेनिकन ने कई पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अपनी पुस्तक 'दि गोल्ड ऑव गॉड्स' में उन्होंने लिखा है, कि दक्षिणी अमरीका के इक्वेडर देश में इंडीज पर्वत के नीचे सैकड़ों मील लंबी सुरंगे खोदी हुई हैं, जो हथौड़े और छेनी की काटी नहीं जान पड़तीं, क्योंकि उनकी दीवारें बिलकुल चिकनी और सपाट

उजबेकिस्तान में प्राप्त प्राचीन कलाकृति
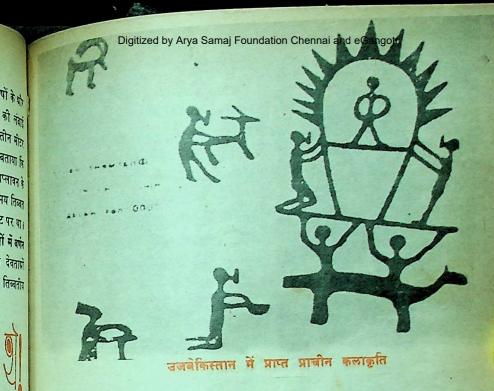
हैं। मेरिक्ज नाम के एक इतिहासकार इन सुरंगों का अध्ययन कर रहे थे, और उन्होंने सोने के सैंकड़ों पत्रों पर किसी अनजानी लिपि में लिखे हुए लेख पाये हैं। उसमें सोने की बहुत-सी वस्तुएं भी प्राप्त हुई हैं, जो आश्चर्यजनक हैं। देवताओं का विस्तृत वर्णन बाइबिल के पुराने टेस्टामेंट तथा अपने वेदों में भी है। ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस ने भी लिखा है कि जब वह मिस्र गया था, तब वहां के मंदिरों के पुरोहितों ने उसको बताया, कि उनके पूर्वज ११,००० वर्ष पूर्व देवताओं के साथ रहते थे, किंतु ११,००० वर्षों से कोई देवता पृथ्वी पर नहीं है। देवताओं के समय से लेकर हेरोडोटस के जाने तक जितने पुरोहित हुए थे उनकी काष्ठ की प्रतिमाएं हेरोडोटस को दिखायी गयी थीं। प्राचीन काल का मनुष्य न तो किसी मनोवैज्ञानिक विकृति का शिकार था, और न मिथ्याभाषी था। वास्तव में उस समय कुछ ऐसी घटनाएं घट गयीं जिनको वह समझ नहीं सकता था; किंतु घटनाएं इतनी आश्चर्यजनक थीं कि वह भूल भी नहीं पाया। यही कारण है, कि संसार के सभी भागों में उन घटनाओं की याद अब तक किसी न किसी रूप में सुरक्षित है। ऋग्वेद संसार का सबसे पुराना और बड़ा साहित्य है, जिसमें केवल देवताओं की स्तुतियां तथा उनसे संबंधित घटनाओं का वर्णन है। यह वर्णन सीधा-सादा और अलंकार रहित है।

एक अमरीकी हवाबाज : संभवतः प्राचीन अंतरिक्ष यात्री भी ऐसे ही थे

**किसी अन्य ग्रह से अपने वैज्ञानिक साधनों द्वारा इस पृथ्वी पर मनुष्यों के उतरने और काफी अरसे तक रहने की बात अब सर्वथा अविश्वसनीय नहीं कही जा सकती! कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसे तथ्य सामने रखे हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है, कि प्राचीन मनुष्य ने जिन्हें देवता कहकर संबोधित किया था, वह काल्पनिक अस्तित्व नहीं थे। बल्कि किसी अन्य ग्रह से आये हुए मनुष्य थे !**

देवताओं के आगमन संबंधी ऋचाएं पढ़ने के पश्चात जरा भी संदेह नहीं रह जाता है, कि वह देवगण किसी अन्य ग्रह से आये हुए यात्री थे। किसी दिव्य लोक का निवासी होने के कारण ही इनको देव कहा गया है।

**अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः ।**

( स्वयं ही कर्म में निरत होनेवाले द्युलोक से अनायास ही नीचे आये हुए हैं। )

ऋ. वे. १-१६८-४०

**विमानों का वर्णन**

वैज्ञानिक प्रसाधनों से सर्वथा अनभिज्ञ, आदिमानव ने अपनी सरल बुद्धि से देवताओं के विमानों को जो कुछ समझा-वैसा ही वर्णन कर डाला है। जो केवल घोड़े और बैलों से खींचे जानेवाले रथों से परिचित था, उसकी प्रतिक्रिया :

**क्ववोऽश्वाः क्वामीशवः कथं शेक कथा यय ।**

**पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥**

( तुम्हारे घोड़े किधर हैं ? उनकी लगाम कहां है ? कैसे तुम सामर्थ्यवान हुए हो? और तुम भला कैसे जाते हो? उनके पीठ की जीन और नथुने की रस्सी कहां धर आये हो? )

ऋ. वे. ५-६१-२

**अनेनो वो मरुतो यामो अस्तवनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।**

**अनवसो अनभीशू रजस्तूर्व रोदसी पथ्या याति साधन् ॥**

( हे मरुत वीरो ! आपका रथ दोषरहित रहे। उसको घोड़े जोते नहीं जाते, रथ पर न बैठनेवाला भी जिसको चलाता है। जिस पर रक्षा का कोई साधन नहीं है, जिसको लगाम नहीं है; धूलि उड़ाता, इच्छा पूर्ण करता हुआ आकाश और पृथ्वी के मध्य भाग से जाता है। )

ऋ. वे. ६-६६-७

इसी प्रकार की सैकड़ों ऋचाओं में उड़नेवाले, तथा पानी पर उतर जानेवाले,

सयेन पक्षी की भांति मनोवेग से जाने-वाले तथा बहुत आवाज करनेवाले विमानों का स्पष्ट उल्लेख है।

**प्रथम आगमन वृहस्पति का**

ऋचाओं के वर्णन के अनुसार देवगण किसी अन्य ग्रह से आये हुए यात्री थे। वह एक साथ नहीं आये थे, वरन अकेले-अकेले अंतरिक्ष-यानों से उतरे थे। प्रथम प्रकट होनेवाले व्यक्ति को आर्यों ने वृहस्पति कहा है। उनका यान पानी पर उतरा था। (१-३०-१८) देवगण जो आर्यों के बीच आये थे, कुल मिलाकर ग्यारह थे। बाद में जब उनको युद्ध करना पड़ा, तब एक छोटी-सी सेना भी उन्होंने बुलायी थी, जिन्हें मरुद्गण कहा गया है। लोग बैरकों में रहते थे, गणवेश पहनते थे, कतारों में चलते थे और इनके कंधे पर मशीनगन-जैसा हथियार लटकता रहता था (१-३७-३; १-१६६-६)

जिस समय देवता पृथ्वी पर उतरे, उस समय आर्यों का निवास-स्थान तिब्बत था। हिमालय इतना ऊंचा नहीं था, हिमालय तथा तिब्बत के संपूर्ण क्षेत्र में बड़ी-बड़ी झीलें फैली हुई थीं। इनमें से कुछ का पानी केवल सिंधु, सरयू तथा ब्रह्मपुत्र द्वारा समुद्र को जाता था। देवताओं ने सबसे पहले इन झीलों के पानी को नियंत्रित किया और पहाड़ों से मार्ग खोदकर सात नदियों को बहाया ( २-१२-३ )। झेलम, चुनाव, रावी, सतलज, व्यास, सरस्वती तथा गंगा देवताओं द्वारा खोदकर निकाली गयी हैं ( ७-१८-८ )। जिसे हम आज सिंधु-

सामिली (महाराष्ट्र) में प्राप्त प्र[illegible] अंतरिक्ष यात्री की पोशाक
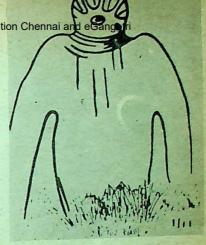
गंगा का विशाल मैदान कहते हैं। उस समय यहां पर श्याम वर्णवालों की एक विकसित नागरिक सभ्यता थी। इन लोगों के पास बड़े-बड़े किले थे। जब देवताओं ने नदियों को बहाया, तब इस नागरिक सभ्यतावालों ने, जिनके नेता, शंबर, वृत्र, शुष्ण, बलि, अशुष, कुयव आदि थे, जमकर देवताओं का विरोध किया। फिर बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें देवताओं ने विद्युत ऊर्जा का प्रयोग करके सैकड़ों नगरों को भस्म कर दिया। लाखों लोग मारे गये और श्याम वर्णवाले लोगों की सभ्यता समाप्त हो गयी। उनके स्थान पर देवताओं ने आर्यों को बसाया और उनको राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था देने के पश्चात, महा जल-प्लावन आने के पूर्व, चले गये। उसके बाद फिर कभी नहीं आये।

इस युद्ध में देवताओं ने टैंकों का भी प्रयोग किया था, जिसे वेदों में दधिक्रा देव व अश्व कहा गया है। यह टैंक सेनाओं के

आगे-आगे चलता था। चलते समय धूलि से सन जाता था। जब यह चारों ओर हजारों शत्रुओं से लड़ता है, तब सजा-संवरा हुआ भयंकर और दुर्निवार हो जाता है (४-३८-८)।

**देवताओं द्वारा कल्याण-कार्य**

उत्तर भारत में आर्यों को बसाने के बाद देवताओं ने उनके लिए बहुत से कल्याणकारी कार्य किये। उनको खेतों में बोने के लिए नये और उत्तम बीज दिये; उनके पशुओं को पुष्ट किया (१-११०-८); ऐसी नसल की गायें तैयार कीं, जो बिना बच्चा दिये दूध देती थीं (१-११६-१०); बांझ स्त्रियों को कृत्रिम गर्भाधान से बच्चे उत्पन्न कराये (१-११७-२४); नल-कूपों का निर्माण किया (१-११६-६) अगस्त और वशिष्ठ नाम के दो टेस्ट-ट्यूब बच्चे भी पैदा किये, जिसका वर्णन वशिष्ठ के वंशजों ने बड़े गर्व के साथ सातवें मंडल में किया है। मरुतों द्वारा बिना बादल के वर्षा कराये जाने का भी उल्लेख है। अश्विदेवों ने खेल नरेश की पत्नी को लोहे की टांग लगायी। कण्व जो अंधे थे, उनको आंखें प्रदान कीं। च्यवन जो समय से पूर्व बूढ़े हो गये थे, उनकी चिकित्सा करके बिलकुल जवान बना दिया और दो पत्नियों का पति भी बना दिया (१-११६-१०)।

**आर्यों का वैज्ञानिक ज्ञान**

देवताओं के साथ रहकर आर्यों को कुछ ऐसे वैज्ञानिक तथ्यों का भी ज्ञान हो गया था, जो यूरोपवालों को १६ और १७वीं शताब्दी में और कुछ तो हम लोगोंको बीसवीं शताब्दी में, मालूम हुआ। नीचे कुछ ऋचाएं दी जा रही हैं:

> **अयं षकुर्वीरमिमीत धीरो न याम्यो भुवनं कच्चनारे।**

(इस वृद्धिवर्धक सोम ने पृथ्वी के छह भू-भाग बनाये हैं, जिनसे अधिक कोई-भू-विभाग नहीं है।) ऋ. वे. ६-४७-३

> **षड्भारां एको अरचन् विभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।**
> **तिस्रो महीरूपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका॥**

(न चलनेवाला एक सूर्य छह भारों को धारण करता है। उस नियम पर चलने-वाले श्रेष्ठ सूर्य को किरणें घेर लेती हैं। सब लोकों से ऊपर सतत गमन करनेवाले तीन लोक हैं, जिनमें एक लोक दिखायी देता है और दो लोक गुहा में छिपे रहते हैं, अथवा अदृश्य हैं।) ऋ. वे. ३-५६-२

सूर्य के चारों ओर घूमनेवाले लोकों के संबंध में, इस पृथ्वी के चक्र करने तथा इसके छः महाद्वीपों के बारे में उस अति प्राचीनकाल में ज्ञान होना बड़ी आश्चर्य जनक बात है।

(वर्तमान जानकारी के अनुसार पृथ्वी पर सात महाद्वीप हैं)

—३६, अनंतपुरा, आजमगढ़

**"सरकार द्वारा मान्य जापान स्पेस ट्रेवल ट्रेड एसोसियेशन द्वारा सूचित किया जाता है कि ५०० से ज्यादा जापानी मंगल लोक और चन्द्र लोक में १,००० एकड़ से ज्यादा जमीन खरीद चुके हैं।"**

# निशिगंधा महके

चीनांशुक सुरभित अंधियारा
गंधमुखर सुधि की रस-कारा
सुरभिसंधि कर कलियां हंसतीं कुछ कहके
निशिगंधा महके

वन-उपवन तन-मन रस घोले
हरकारे-सी पुरवा डोले
चलदल-सा हलचल मन करता
ये बैरी पपिहा जब बोले
चिनगारी-सी उड़े चतुर्दिक
पात-पात दहके

गुपचुप रसभीनी बतियों-सी
सुरभि संदेशे कितने कहती
लुक-छिप सोनजुही झुरमुट में
अनब्याही साधों-सी सजती
व्यथा-बिहग चहके

मन की किन गहरी पर्तों से
दबी पीर-सी रह-रह उभरे
सुरभि-परी चंदनी नवेली
रसवंती कुंजों में बिहरे
कितनी बार बरजकर हारा
पग-पग पग बहके

—आदित्य अग्निहोत्री
अंगरेजी विभाग,
जयनारायण डिग्री कालेज,
लखनऊ

# गजल

जीवन किसी मरुथल से गुजरने की बात है
बन-बन के बार-बार बिखरने की बात है

पतझर के फूल हो गये सपनों का क्या करें
खिलने से पहले बाग में झरने की बात है

मंझधार से मजाक मुबारक हो आपको
केवल यहां तो पार उतरने की बात है

गलियों में अंधेरे की जो हलचल हुई लगा
फिर चांदनी के चीर को हरने की बात है

करते हैं लोग जब हमें आगे जुलूस के
लगता है कुछ तो है कहीं मरने की बात है

आंगन में उनके आज जो दाने रंगे पड़े
साजिश है कोई पंख कतरने की बात है

—डॉ. हनुमंत नायडू
४, स्टार्की टाउन, सदर मंगलवारी, नागपुर

# उपनगर-मार्ग पर

लक्ष्यहीन, उपनगर-मार्ग पर
राही एक बढ़ा
चला-जहां से हुई सुबह
रुक गया-जहां फिर सांझ हो गयी
स्वर्ण मिला तो हर्ष नहीं
दुख भी न, कहीं मणि अगर खो गयी
निज मोती का हार तोड़कर
पगडंडी पर जो बिखराता
कौन कहे, वह कौन ज्योति से
तम की ओर कढ़ा
जो बनने के सपनों में
मिटती जाती, हस्ती वह देखो
हंस-रोकर आखिर गा दे
यों मन चाही मस्ती वह देखो
जिसकी भूलों का पछतावा
हर दिन एक भूल ही करना
किन हाथों ने उसके भावी
का विद्रूप गढ़ा
रुक जाता कुछ सोच तनिक
अपनी गति को पहचान निमिष भर
फिर दो पांव सहज बढ़ जाते
कुछ अधिकार नहीं तन-मन पर
गिरि-मालाओं से घिरकर वह
जिधर देखता शिखर सुनहरा
हर चोटी से उतर-उतरकर
उसकी ओर चढ़ा

—राजेन्द्र प्रसाद सिंह
'आधुनिका'; खबड़ा रोड,
[illegible]पुर-८४२००१

# कौन है ?

य नाट्य विद्यालय के बाहर
स्वामी फ्रूट कार्नर है—
र, जहां चाय भी मिलती है
राधास्वामी जिसके नाम पर फ्रूट
कार्नर है
राधास्वामी जो चुस्की ले-लेकर चाय
पी रहे हैं

है ?

देश है

उस में जड़ ऊर्जा है
ने व्यास का जल पीकर
स्फूर्ति का अनुभव किया था
का इस एक ने चाय पीकर किया है
महाशय कह रहे हैं,
स्वामी की चाय पीकर तन-बदन में
आ गयी है,
नाट्य भूमिका में जान आ जाएगी
असल, दर्शक का रस
वेतन पर नियुक्त
बनानेवाले इस छोकरे की चाय में है

—डॉ. मोतीलाल जोतवाणी
बी-१४, दयानंद कालोनी,
लाजपतनगर, नयी दिल्ली-१००२४

**हम लोग बंदूक की शक्ति पर पहलवानी मुद्रा में उसे ललकार रहे थे और ... एक दूसरे पहलवान की तरह सफल धावा करने की योजना बना रहा था...। ... रोमांचक शिकार-प्रसंग—'कादम्बिनी' के सुपरिचित लेखक एवं मध्यप्रदेश के ... प्राप्त चीफ कंजरवेटर ऑव फॉरेस्ट, डॉ. एस. डी. एन. तिवारी की कलम से**

शिकार-कथा

# वन भैंसे ने जब शिकारी को मार डाला

• डॉ. एस. डी. एन. तिवारी

वन में विचरण करनेवालों को हाथी के बाद सबसे अधिक भय वन-भैंसे से लगता है। जब वह सह-कुटुंब यानी भैंसों और उनके बच्छड़ों के साथ रहता है, तब तो इतना भय नहीं, जितना कि जब वह अकेला रहे। अनायास ही वह धावा बोल दे, मोटर-कार इत्यादि में टक्कर मार दे। यदि व्यक्ति पेड़ पर चढ़ जाए तो छोटे-मोटे पेड़ को गिरा ही दे या दस बारह फुट तक की ऊंचाई से अपने सींगों द्वारा उसे नीचे खींच ले। शेर जब तक नर-भक्षी नहीं हो, तब तक उससे भेंट करने में आनंद ही आता है, बहुधा भय नहीं लगता।

वन-भैंसा पालतू भैंसों से कम से कम डेढ़ गुना मोटा ताजा होता है और उनसे दोगुने से भी कहीं अधिक शक्तिशाली। इसका शिकार उसके मोटे चमड़े के लिए व उसके सिर को मढ़ाकर टांगने के लिए किया जाता रहा है। उसका गोश्त गांववाले खाया करते हैं। पर शिकारी कुछ ही भैंसों का शिकार करते थे, क्योंकि उसकी 'ट्राफी' की कीमत बहुत अधिक नहीं रहती थी। अनुभवी शिकारी ... सभी प्रकार के वन्य प्राणियों के शिकार के अनुभव के पश्चात भैंसे का शिकार करते थे। इसे मारने के लिए बहुत ताकतवर राइफल की आवश्यकता होती थी। और निशाना भी अचूक रहना आवश्यक था। जिस प्रकार दूसरे वन्य प्राणियों का शिकार हांका द्वारा किया जाता है, उस प्रकार भैंसे का संभव नहीं है। एक बार मैंने उनका हांका करवाया था केवल इसलिए कि देखें उस क्षेत्र में ...

कितने ...
तोड़कर ...
सूंघने ...
यदि ह...
गया, ...
भान ...
व...
करीब ...
भैंसों ...
हैं। इ...
तीसरे ...
हैं। ...
समय ...
रहते ...
मालग...
तब ...
वन ...
जब ...
एक ...
मिल...

कितने हैं, पर वे थोड़ी ही देर बाद हांका तोड़कर उसके बाहर चले गये। उनकी सूंघने की शक्ति बहुत अधिक होती है। यदि हवा की दिशा का ध्यान नहीं रखा गया, तब मचान पर बैठे शिकारी का भान इन्हें हो जाता है।

वनों में जंगली भैंसे एक मौसम में करीब एक ही वन-खंड में रहते हैं। विभिन्न भैंसों के झुंड अपना-अपना क्षेत्र बना लेते हैं। इस क्षेत्र में वे एक से दूसरे व दूसरे से तीसरे मैदान, दिन-रात में बदलते रहते हैं। किसी एक मैदान में वे प्रायः निश्चित समय में आते हैं व निश्चित समय तक रहते हैं। एक बार १९५३ में जब मैं मालगांव (बस्तर) में डेरा कर रहा था, तब वहां लगभग तीन किलोमीटर पर घने वन में घास का एक बड़ा मैदान था। जब भी मैं वहां से निकलता, तब ही वहां एक मस्त भैंसा निश्चित समय पर मिलता था। मैं इसकी टोह लेता रहा, पता लगा कि वह प्रायः ९ बजे सुबह इस मैदान में आता है। जब जगदलपुर क्लब में, समय की पाबंदी पर चर्चा चल रही थी, तब मैंने वन-भैंसों के निश्चित समय में एक स्थान पर रहने की बात बतायी। इस स्थल में भैंसे बहुत कम दिखायी देते थे। झट से मेरे शिकारी कलेक्टर मित्र ने कहा कि मैं गप्प मार रहा हूं और दूसरे दिन वे मेरे डेरे में आकर ठहरे। मैं उन्हें सुबह ही उस मैदान की ओर ले गया। इसके एक छोर पर छिपकर सावधानी से मैदान में चारों ओर हम लोगों ने दृष्टि फैलायी, पर भैंसा नहीं दिखा और उन्होंने मेरी बात को गलत बताना चाहा। मैंने झट घड़ी देखी। नौ बजने में अभी पंद्रह मिनट थे। मैंने अपनी बचत के लिए कहा कि अभी पंद्रह मिनट बाकी हैं। खैर वे आधा घंटे रुकने को तैयार हो गये। उन्हें तो मेरी बात काटनी थी।

पंद्रह मिनट के बाद ही ठीक नौ बजे

वह भैंसा मैदान की दूसरी ओर आ गया व चरने लगा। मेरा अध्ययन व अवलोकन सही निकला। वे अपने साथ बड़ी शक्तिशाली राइफल लाये थे। मेरे पास ४२३ माजर राइफल थी। भैंसे और हम लोगों के बीच की दूरी करीब २०० मीटर थी। इतनी दूरी से कभी भी भैंसा, शिकारी पर नहीं दौड़ता। मेरे मित्र ने भैंसे को ललकारा उसने हम लोगों को देख तो लिया था, पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। चरने में ही व्यस्त रहा। हम लोग पेड़ों की आड़ छोड़कर मैदान में जहां कोई पेड़ नहीं था, करीब ८ मीटर उसकी ओर आगे बढ़े। उन्होंने फिर उसे ललकारा, वे चाहते थे कि भैंसा बीच मैदान में आ जाए व हम लोग वृक्षों के पास रहें। जब गोली चलायी जाए और यदि गोली ठीक न बैठे या उसकी मार को वह कुछ सहकर हम पर धावा बोले, तब हमको भागकर पेड़ पर चढ़ जाने का समय तो मिल जाए।

वन-भैंसे ने फिर भी कुछ ध्यान नहीं दिया। अब उन्होंने दो मजदूरों से जो हम लोगों के साथ थे, कहा कि वे वृक्षों के पास ही रहें। मुझे उनके कुछ पीछे रहने को कहा गया। हम दोनों ने राइफल जो भरी थी, उसके 'सेफ्टी कैच' खोल दिये, जिससे घोड़ा दबाने पर बंदूक चल जाए। वे अब सावधानी से एक मीटर आगे बढ़े और ग्रामीण भाषा में उसको ललकारने लगे। आदिवासी इस तमाशे को देखकर बहुत आनंद ले रहे थे। पर हम लोग सतर्क थे। अबकी बार भैंसे ने अपना सिर ऊंचा किया व हम लोगों की ओर घूरकर देखा। उसने कान भी हिलाये। बंदूक की सही मार के लिए दूरी अब भी कुछ अधिक थी। भैंसे के अंदाज से हम लोग भागकर पेड़ पर चढ़ सकते थे, इसलिए उसने फिर सिर नीचा किया और चरने लगा। मेरे मित्र करीब एक मीटर आगे बढ़े और फिर उसे ललकारने लगे। अबकी बार भैंसे ने सिर उठाया और उसे कुछ कुछ ऊपर नीचे करने लगा। वह सामने का पैर भी उठाता व फिर नीचे रखता। जब भी भैंसा ऐसा करता है, तब समझना चाहिए कि अब वह धावा करने के इरादे में है। हम लोग बंदूक की शक्ति पर पहलवानी मुद्रा में उसे ललकार रहे थे। और वह भी दूसरे पहलवान की तरह सफल धावा करने की योजना बना रहा था। जिस प्रकार अच्छे शिकारी अपनी एक भी गोली व वार बरबाद नहीं करते, उसी प्रकार खूंखार वन्य प्राणी भी असफल धावा नहीं करते। इसके पश्चात मेरे मित्र लौटने लगे और हम लोग पेड़ों की तरफ आ गये। भैंसे ने भी चरना आरंभ कर दिया। मैंने मित्र से पूछा कि उन्होंने गोली क्यों नहीं चलायी। उन्होंने बताया कि भैंसे के सींग उतने बड़े नहीं थे—जितने बड़े सींगवाले भैंसे को पहले मार चुके थे। दूसरे, जानवर की दूरी कुछ अधिक थी। शायद

निशाना लगने के बाद भी वह शीघ्र नहीं मरता व हम लोगों पर धावा बोलने में सफल हो जाता। भैंसा बिलकुल जवान था और मैं उनके विचार से सहमत था। हम लोग बातचीत करते-करते डेरे को लौट आये। यह अनुभव भी बहुत ही लोमहर्षक व आनंदमय रहा।

एक बार दक्षिण वस्तर क्षेत्र में मैं प्रवास पर गया था, वहां एक मृतक का स्मारक देखने को मिला। उस पर मृतक का नाम, मृत्यु का कारण, इत्यादि लिखा हुआ था। ग्रामीणों ने बताया कि वह एक पारसी शिकारी का है, जो करीब एक वर्ष पूर्व भैंसे के शिकार के लिए आया था। वह बहुत दक्ष शिकारी था और उसने पहले भी कई शेर मारे थे। उसका निशाना अचूक था। घर का धनी था व अपने पिता का इकलौता बेटा था। भैंसे के शिकार का उसने कानूनन परमिट लिया हुआ था। वह कई दिनों तक अपने निर्धारित वन-खंड में रहा व वन-भैंसों का अध्ययन व अवलोकन करता रहा। अंत में उसे एक बहुत बड़ा भैंसा दिखा और उसने उसके शिकार का कार्यक्रम बनाया। दूसरे दिन वह पूरी तैयारी से भैंसे की टोह में पैदल गया। उसे भैंसा मिला। वह उसके काफी निकट पहुंच गया और उसने भैंसे पर अपनी बंदूक चलायी। बंदूक भी ५५५ एक्सप्रेस थी। निशाना ठीक बैठा, पर भैंसा बहुत बलवान था। वह मरते-मरते शिकारी पर बिजली की गति से टूट पड़ा और उसने अपने सींगों से उसे वहीं ढेर कर दिया। भैंसा भी वहीं मर गया। यदि वह कुछ अधिक दूरी पर होता तो बच जाता। परंतु शिकारी नजदीक से मारना चाहता था, जिससे गोली पूरी ताकत से भैंसे को लगे। भैंसा भी समझदारी के साथ पेड़ों की आड़ छोड़कर सामने तभी आता है, जब वह समझता है कि वह शिकारी को अपनी लपेट में ले लेगा।

इस मृतक-स्मारक को देखते ही मुझे मालगांव के भैंसे के अनुभव का स्मरण हो आया। उस दिन यह ठीक ही हुआ कि हम लोगों ने उस पर गोली नहीं चलायी थी। मुझे व मेरी टुकड़ियों को महीनों वन में लगातार विचरणकर वन का सर्वेक्षण करना था। वन्य प्राणियों से प्रायः प्रतिदिन ही भेंट हुआ करती थी। उनसे निडर व निष्कपट साक्षात्कार में कुछ और ही आनंद था।

**—'समय' प्रोफेसर्स कॉलोनी, भोपाल**

**न्यूयार्क के डिपार्टमेंटल स्टोर के मालिक को मिला पत्र :**

**'प्रिय महोदय, २९ नवंबर को मैंने आपकी दूकान से ३५ डॉलर की कीमत का एक ऊनी स्वेटर खरीदा था। परसों मेरे फ्लैट में आग लग जाने की वजह से वह स्वेटर जल गया : कृपया यह सूचित करने का कष्ट करें कि क्या आपने उस स्वेटर का बीमा करा रखा था ? यह मैं इसलिए पूछ रही हूं कि अभी तक मैंने आपको स्वेटर के दाम अदा नहीं किये हैं।**

**आपकी—एम. एलिस।'**

फांसी ! नजरबंदी !! और कोड़े!!!

# पाकिस्तान से बुद्धिजीवी भाग रहे हैं?

● जमनादास अख्तर
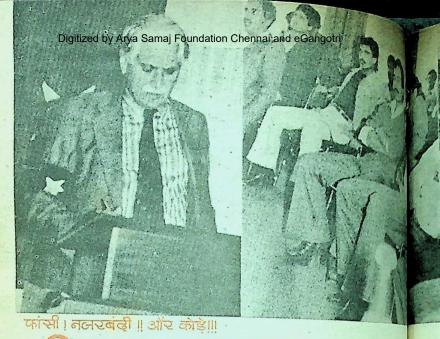
कुछ दिन पहले ही तो बड़े ढोल ढमक्के से इस्लामाबाद में 'मजलिसे-शूरा' ( अर्थात संसद ) नियुक्त की गयी थी। पाकिस्तान सरकार ने दैनिक समाचार पत्रों पर से सैंसर हटा लेने की घोषणा की थी; परंतु जहां उस समय भी चुपके से संपादकों को कह दिया गया था, कि वह सैनिक शासन की आलोचना नहीं कर सकते, परंतु अब तो मामला और भी स्पष्ट हो गया है। अभी संपादकों को आदेश दिये गये हैं, कि वह राजनीतिक गतिविधियों से संबंधित कोई समाचार प्रकाशित नहीं कर सकते।

जनरल जिया ने आज से तीन वर्ष पहले ही समाचार-पत्रों पर कड़े प्रतिबंध लगाकर पत्रकारों की आवाज को कुचल दिया था। गत आठ वर्षों में पाकिस्तान में कम से कम पचास समाचार पत्रों को बंद किया जा चुका है, इनमें मि. भुट्टो का दैनिक 'मुसावात' भी शामिल है, जो तीन स्थानों से प्रकाशित हुआ करता था। इसके संपादक श्री बरनी पाकिस्तान पत्रकार संघ के अध्यक्ष थे। उन्हें गिरफ्तार करके जेल में कोड़े लगाये गये। उनके डेढ़ दर्जन साथियों को कैद और कोड़े लगाने की सजाएं दी गयीं। श्री बरनी कबायली मार्ग से अफगानिस्तान भाग गये और वहां से इंगलैंड।

**लेखकों के विरुद्ध अभियान**

जिया सरकार ने अपने कठपुतली पत्रकारों द्वारा स्वतंत्रता प्रेमी पत्रकारों, लेखकों, कवियों और कलाकारों के विरुद्ध अभियान चलाया। इन पर भारत और रूस के एजेंट होने के आरोप लगाये गये। यह आरोप भी लगाया गया, कि वे इस्लाम के विरोधी हैं और पाकिस्तान का अस्तित्व खत्मकर देना चाहते हैं। रेडियो और टी. वी. के कई कलाकारों को इस्लाम और पाकिस्तान के शत्रु करार देकर मांग की गयी, कि इन्हें नौकरी से हटाकर कैद किया जाए।

दो मास हुए बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियों का चक्कर चला। इस्लामाबाद विश्वविद्यालय की प्रोफेसर बेगम अख्तर जमाल को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर यह आरोप लगाया गया, कि वह इस्लाम के विरुद्ध प्रचार करती हैं। वातस्व में उनका एक मात्र दोष यह था कि वह तानाशाही को पसंद नहीं करतीं। उन्होंने अपनी विचारधारा के अनुसार कई कहानियां लिखी हैं और पाकिस्तानी जनता इन कहानियों को पसंद करती है। प्रोफेसर अख्तर जमाल इन दिनों कैद हैं। उनको तरह-तरह की धौंस-धमकियां दी गयीं, परंतु उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया।

**उप-कुलपति भाग गयी**

इस्लामाबाद में कायदे-आजम विश्वविद्यालय की उप-कुलपति डॉ० कनीज यासफ को गिरफ्तार करने के लिए तानाशाही ने जाल बिछाया था। उन पर यह आरोप लगाने का फैसला किया गया था, कि वह सेना में विद्रोह का प्रचार करती हैं, परंतु वे समय रहते ही गायब हो गयीं और भागकर लंदन पहुंच गयीं। इस

समय वह 'पाकिस्तान लिब्रेशन फ्रंट' के साप्ताहिक पत्र 'इंकलाब' का संपादन कर रही हैं। वह इसी फ्रंट के अध्यक्ष ब्रिगेडियर उस्मान खालिद की बड़ी बहन हैं। ब्रिगेडियर खालिद कुछ वर्ष पहले ही लंदन आये थे।

मैंने लंदन में डॉ. कनीज से भेंट की, उन्होंने कहा, "भारत के लोग भाग्यशाली हैं, क्योंकि भारत में स्वतंत्रता और गणतंत्र की जड़ें मजबूत हैं। हम पाकिस्तानियों के लिए इससे बढ़कर दुर्भाग्य और क्या हो सकता है, कि हमारे सिरों पर सैनिक तानाशाही की तलवार हमेशा लटकती रहती है।"

लायलपुर ( अब फैसलाबाद ) की प्रमुख डॉक्टर और कौंसिलर डॉक्टर जुबैदा को 'अल-जुलफिकार' के गोरिल्लों की सहायता करने के आरोप में गिरफ्तार करके लाहौर के बदनाम शाही किले में नजरबंद कर दिया गया है। उनके विरुद्ध एक युवक से यह बयान दिलाया गया, कि वह उसे अपना बीमार पठान बेटा बताकर पठानों के वेश में काबुल ले गयी थीं, जहां उसे मीर मुर्तजा भुट्टो द्वारा स्थापित अल-जुलफिकार कैंप में गोरिल्ला युद्ध की ट्रेनिंग दिलाकर पाकिस्तान वापस लाया गया। उसके ग्रुप के नेता लाला असद ने लाहौर में भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री चौधरी जहूर इलाही की गोली मारकर हत्या की थी और लाहौर हाई कोर्ट के मुख्य न्यायमूर्ति मौलवी मुश्ताक को, जिसने कि मि. भुट्टो को फांसी की सजा का आदेश दि[या] था, गोली मारकर बुरी तरह घायल क[र] दिया था, लाला असद नवंबर, १९[..] में लियाकत आबाद, कराची के [..] में पुलिस का मुकाबला करते हुए मा[रा] गया था। इस ग्रुप की एक महिला सद[स्य] रोबीना कुरैशी को भी गिरफ्तार कर लि[या] गया था।

पाकिस्तान से भाग आनेवाले लेखकों में ऋषि खां और शेर अफगन खां भी शामि[ल] हैं। ऋषि खां जरमनी में आश्रय लिये हु[ए] हैं और वहां से यूरोप में जिया के विरु[द्ध]

**गत आठ वर्षों में पाकिस्तान में [..] कम से कम पचास समाचार पत्रों को [..] किया जा चुका है, इनमें मि. भुट्टो [..] दैनिक 'मुसाबात' भी शामिल है, जो ती[न] स्थानों से प्रकाशित हुआ करता था।... जिया सरकार ने अपने कठपुतली पत्रकारों द्वारा स्वतंत्रता-प्रेमी पत्रकारों, लेखकों, कवियों और कलाकारों के विरुद्ध अभियान चला रखा है...**

अभियान चला रहे हैं, शेर अफगन खां रावलपिंडी के कवि हैं और बेगम भुट्टो के पोलिटिकल सेक्रटरी भी रह चुके हैं। उन्हें हॉलैंड में हाल ही में आश्रय मिला है।

**अफजल बंगश**

खान अफजल बंगश पेशावर के प्रमुख लेखक और मजदूर किसान नेता हैं। देश के विभाजन से पहले वर्षों कांग्रेस में रहे, परंतु वह खान अब्दुल गफ्फार खां से मत-भेद के कारण लीग में चले गये थे।

पाकिस्तान की स्थापना के बाद कई बार उन्होंने जेल-यात्रा की। वह किसान-मजदूर पार्टी के अध्यक्ष हैं। मि. भुट्टो ने उन्हें गिरफ्तार किया था। रिहा होते ही वे भागकर काबुल के रास्ते इंगलैंड आ गये। यहां से उन्होंने तानाशाही के विरुद्ध प्रचार के लिए 'मुजाहमत' नामक मासिक पत्रिका निकाली। श्री बंगश की पार्टी इन दिनों पश्चिमी बरलिन से 'आगे बढ़ो' नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

बलूचिस्तान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सरदार अताउल्ला मैंगल और प्रसिद्ध नेता सरदार खेर बक्श मजारी भी भाग गये हैं। दोनों लगभग एक वर्ष लंदन में रहने और वहां पर 'बलूचिस्तान लिब्रेशन फ्रंट' स्थापित करने के बाद काबुल स्थित अपने प्रधान कार्यालय में आये हैं।

**हमीद बलूच को फांसी**

गत वर्ष बलूचिस्तान विद्यार्थी संघ के नेता हमीद बलूच और उसके दो साथियों को कोएटा जेल में फांसी दी गयी, ये तीनों ओजस्वी लेखक भी थे। बाद में इसी संघ के अन्य विद्यार्थी नेताओं को फांसी दी गयी। अब्दुल रहमान एक और युवा नेता थे, जिन्हें पुलिस ने गोली से उड़ा दिया। हमीद बलूच ने फांसी से पहले अपने एक मित्र को पत्र लिखा, जिसमें उसने हबीब जालब की कविता की इन पंक्तियों का उल्लेख किया—

**सच की राहों में**
**जो मर गये हैं**
**फासले मुखतसर**
**कर गये हैं**
**सुख न लूटेगा कोई लुटेरा**
**आनेवाला जमाना है तेरा**

मालाकंडव (कबायली इलाके) के प्रसिद्ध लेखक और कवि मौलवी मुशताक सादिक को पुलिस ने गोली मार दी, क्योंकि वह तानाशाही के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे।

खान अफजल बंगश के उत्तराधिकारी खां फतेहयाब अली खां कराची जेल में नजरबंद हैं। वारिस बलूच को कराची की सैनिक अदालत ने छह माह की कैद और दस कोड़े लगाने की सजा दी। लरकाना में एक सैनिक अदालत ने सात विद्यार्थियों को छह मास से एक वर्ष कैद और दस-दस कोड़े लगाने की सजा दी।

कराची विश्वविद्यालय में अंधाधुंध गिरफ्तारियां करने पर विरोध प्रकट करते हुए उप-कुलपति ने त्यागपत्र दे दिया।

गत वर्ष पखतून युवा-नेता और कवि नासर खां अतकजेई को २१ अगस्त के दिन फांसी पर लटका दिया गया।

किसान-नेता शेर अली बाबा को पेशावर के किला बाला हिस्सार में नजरबंद कर दिया गया है।

पेशावर, वार सद्दा और स्वात के विद्यार्थी नेता, कवि और लेखक अनायतुल्ला यासु, शाहजहान खां, बेहरामद खां और फरीदउल्ला वकील की भी जेलों में मार-पीट की जा रही है।

**हबीब जालब और साथी**

पाकिस्तान बनने के बाद प्रमुख कवि हबीब

जालब आजकल फिर नजरबंद हैं। उन पर इतना जुल्म किया गया है कि 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' ने उन्हें—"आत्मा का कैदी" करार दिया है। उनकी कविताएं और गीत जगह-जगह गुनगुनाये जाते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कविता की कुछ पंक्तियां हैं—

**किसी संग-दिल के दर पर**
**मेरा सिर न झुक सकेगा**
**मेरा सिर नहीं रहेगा**
**मुझे इसका डर नहीं है**

जनरल जिया पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने लिखा—

**एक शख्स के हाथों मुद्दत से**
**रुसवा है वतन दुनियाभर में**
**इबलीसनुमा इस इंसां की**
**ऐ दोस्त सना क्या लिखना**
**एक बात पै कोड़े और जेलें**
**बातल के शिकंजे में हैं यह जां**
**इनसानों के सेल में बैठे हैं**
**खूंखार दरिंदे हैं रक्सां**
**ऐ मेरे देश के फनकारो**
**जुल्मत पै न अपना फन वारो**
**यह महल सराओं के वासी**
**कातिल हैं सभी अपने यारो**
**विरसे में हमें यह गम है मिला**
**इस गम को नया है क्या लिखना**

**हर शाम यहां शामे वीरां**
**महफिल महफिल आहों का धुआं**
**जिस शहर की धुन में निकले थे**
**वह शहर दिले बरबाद कहां**
**सैहरा को चमन, बन को गुलशन**
**बादल को रिदा क्या लिखना**

जालब की कविता—'कायदे-आजम देख रहे हो अपना पाकिस्तान', बहुत ही लोकप्रिय है।

**अब्बासी शहीद और साथी**

'पाकिस्तान फेडरल यूनियन ऑव स्टूडेंट्स' के उप-प्रधान श्री नजीर अब्बासी पर जेल में इतना जुल्म किया गया, कि वह शहीद हो गये। उनके साथी श्री जाम साकी, उत्तर-प्रदेश से गये हुए प्रोफेसर जमाल नकवी, कवि रहमद कमाल वास्ती, कम्मर अब्बास, असगर खादिम, डा. मुहम्मद खान, शमीम वास्ती, इम्तियाज आलम, सिंध विद्यार्थी संघ के अध्यक्ष अमर लाल, बका मुहम्मद, अफजल बलूच और उनके दरजनों दूसरे साथी जेलों में सड़ रहे हैं। पाकिस्तान के गृहमंत्री ने गत मास कहा, कि इन्हें किसी भी हालत में रिहा नहीं किया जाएगा, यह पाकिस्तान को खत्म कर देना चाहते हैं।

—पटौदी हाउस, नयी दिल्ली-११०००१

## लंबी दाढ़ीवाले भाई

एक स्कॉटिश व्यक्ति जिसकी दाढ़ी-मूंछ साफ थी, अमरीका से लौटकर अपने गृह नगर के स्टेशन पर अपने भाइयों की खोज करने लगा, कुछ देर के प्रयत्न के बाद तीन दाढ़ीवाले भाइयों को देखा, "तुम लोग इतनी भारी दाढ़ियां क्यों रखे हो?"

"क्या तुम्हें मालूम नहीं!" सबसे बड़े भाई ने कहा। अमरीका जाते समय दाढ़ी बनाने का रेजर तुम साथ ही ले गये थे।"

हम नहीं सूक्ष्म जीव-विज्ञानी कहते हैं

# जहां तक हो अस्पताल मत जाइए

● प्रेमानन्द चन्दोला

रोगी के रोग-निवारण के लिए देख-भाल, परिचर्या और उपचार के सिद्धांत तो एक ही हैं, चाहे रोगी घर पर रहे या अस्पताल में। वैसे अस्पताल में सारी सुविधाएं होती हैं, उपकरण होते हैं और डॉक्टर की देखरेख और निगरानी चौबीसों घंटे उपलब्ध रहती है। आज हर-एक नागरिक को घरेलू परिचर्या के बारे में जानना जरूरी है, क्योंकि बढ़ती आबादी-वाले अपने देश में हो सकता है, मौके पर हर बीमार व्यक्ति के लिए अस्पताल में बिस्तर या चारपाई मयस्सर न हो। वैसे भी कई लोग रोगी की देखभाल घर पर ही करने की इच्छा रखेंगे और रोगी तो हर तरह से इसमें खुश ही रहेगा। इसमें रोगी का मनोवैज्ञानिक पहलू भी निहित है। आर्थिक पहलू से भी अस्पताल या नर्सिंग होम की अपेक्षा घर पर की देखभाल पर पैसा भी कम खर्च होगा। अस्पताल में मिजाजपुरसी और देखभाल के लिए घर से आने-जाने में जो असुविधा, समय की बरबादी और परेशानी होती है --उसे भी सभी अच्छी तरह जानते हैं। हां, यह जरूर है कि डॉक्टर की हिदायत के अनुसार सब बातें करनी होंगी और यदा-कदा डॉक्टर का घर पर आना भी जरूरी है।

ये तो थीं सामान्य बातें, सामान्य रोगियों के बारे में। लेकिन गंभीर रूप से बीमार रोगियों को तो अस्पताल में भरती करना ही पड़ेगा, चाहे कितनी ही असुविधाएं क्यों न हों। रोगी की दृष्टि से वहां विघ्न-बाधाएं कम रहेंगी, यह निश्चित है।

**सूक्ष्म जीव-विज्ञानियों की चेतावनी**

शीर्षकवाली बात हम नहीं कह रहे हैं, बल्कि आज के जमाने के जाने-माने सूक्ष्म-जीव-विज्ञानी ( माइक्रोबायोलॉजिस्ट ) कह रहे हैं कि—"जहां तक हो अस्पताल मत जाइए, अगर-वैसा ही इलाज आपको घर पर मुहैया हो रहा है; क्योंकि अस्प-ताल बीमारियों के जनन-स्थल और संक्र-मण फैलानेवाले जबरदस्त अड्डे हैं।"

सूक्ष्म जीव-विज्ञानियों के अनुसार रोगी को मजबूरी में ही अस्पताल ले जाना चाहिए और रोगी का उपचार घर पर ही होने देना चाहिए। आज के वैज्ञानिक युग में हर नागरिक को, घर पर भी रोगी की सुचारु परिचर्या के लिए संबद्ध आधुनिक विधियों तथा आधारभूत जानकारियों से लैस रहना चाहिए, कि वक्त जरूरत

काम चल सके। इससे बिना बात में अस्पताल में हरएक को भीड़ से राहत मिलेगी और वहां गंभीर रोगियों को भरती होने और बिस्तर मिलने में आसानी रहेगी। डॉक्टरों, नर्सों आदि पर भी भार कम पड़ेगा और अधिक रोगियों का जमावड़ा नहीं होगा। आहार-चिकित्सा और प्रकृति-चिकित्सा की ओर भी थोड़ा रुझान रहे तो इससे फायदा ही रहेगा।

**हर आठवें रोगी को संक्रमण**

किसी भी रोगजन (पैथोजेन) का नाम लीजिए, तब आप पाएंगे, कि वह आपके महल्ले या अड़ोस-पड़ोस की अपेक्षा अस्पताल में आसानी से मंडराता हुआ पाया जाएगा; क्योंकि अस्पताल में हर तरह के रोगी जो आते हैं। अस्पताल के वातावरण में तो ये रोगजन अधिक संख्या में अधिक सक्रिय रहते हैं और ज्यादा कारगुजारी दिखलाते हैं। आठ में से एक मौके पर इस बात की पूरी संभावना है, कि अस्पताल में रोगी को वह संक्रमण हो जाएगा, जो उसे भरती के समय न था। ऐसा इसीलिए कि अस्पताल वे स्थान हैं जहां सुग्राही या ग्रहणशील रोगियों और संचारी कारकों को आपसी घनिष्ठ संपर्क में लाया जाता है। लेकिन यह तो मजबूरी में ही होता है, पूरी लाचारी में, मरता क्या न करे !

अधिकांश अस्पतालों में सभी वार्डों की दूषित हवा बहकर खूब घुलती-मिलती है और विभिन्न रोगाणुओं को इधर-उधर बड़े मजे में फैलाती रहती है। इस बात को पुख्ता करने के लिए एक महानगर के अस्पतालों का उदाहरण देना बेहतर होगा। करीब तीन साल पहले एक महानगर के चार अस्पतालों में पैदा हुए अस्सी बच्चे बेचारे 'सामोनेला न्यूपोर्ट' के संक्रमण के बाद बच नहीं सके। यह संक्रमण उन्हें अस्पताल में ही हुआ। कभी-कभी वार्डों में 'टिटेनस' की गंभीरता की भी संभावना रहती है। इसीलिए 'सैनेटोरियम' या आरोग्यशालाएं आबादी से दूर खुले वातावरण में या पहाड़ी स्थानों पर होती हैं। रोगी खुली हवा में दिन-रात शुद्ध हवा का सेवन करते हैं। हवा यदि दूषित होती भी है तो वह चीड़, देवदार या अन्य वृक्षों की पत्तियों द्वारा छानकर शुद्ध कर ली जाती है।

**मिलावट का कुप्रभाव**

आज के युग में बसों, कारों, वाहनों आदि में आने-जाने के कारण पैदल चलना-फिरना कम होता है, जिससे शरीर फिट नहीं रहता है। भोजन की मिलावट से भी स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और शरीर में कई रोग घर कर लेते हैं। आज के युग का तनाव, कृत्रिमता और नाजुकमिजाजी भी शरीर की क्रियात्मक गड़बड़ियों में बहुत योग दे रही है। आबादी की बढ़ोतरी के कारण होनेवाली स्थान की कमी से भवनों की घिच-पिच हो रही है। इस तरह पार्कों और खुले स्थानों की कमी के साथ-साथ अधिक से अधिक पेड़ पौधों के लिए जगह बच ही नहीं पाती।

अस्पताल में वार्डों के बीच खूब खुला स्थान न होने और अस्पताल का विशाल खुला क्षेत्र न होने से यह हवा स्वच्छ न होकर दूषित ही बनी रहेगी।

**स्वच्छता का अभाव**

इधर डॉक्टरों की कृपा और अस्पतालों की दवा रोगियों को ठीक करती है, तो उधर वहां की हवा खराबियां करती है। लेकिन इस हवा के अलावा एक चीज और है जो वातावरण में रोग फैलाकर गड़बड़ी करती है, और वह है अस्पताल का मलवा व कूड़ा-करकट, जिसे बिना जलाये हुए खुले में यूं ही फेंक दिया जाता है। पट्टियां, रुई, फर्शों की सफाईवाली गंदगी, रोगियों के कपड़े, और यहां तक कि प्रयोगोंवाले मृत जानवर आदि यूं ही कूड़ेदान में डाल दिये जाते हैं। इसके बाद एक और कुचक्र शुरू होता है। कूड़े से पैसा कमानेवाले यानी रद्दीवाले कूड़ेदानों को उलट-पलटकर इस्तेमाल होनेवाली मदों को बीनकर फिर से उन्हें इस्तेमाल में वापस ले आते हैं। कुछ अस्पतालों में पुराने मैट्रेस या गद्दे नष्ट न करके बेच दिये जाते हैं।

सूक्ष्म जीव-विज्ञानियों का कहना है कि अधिक संक्रामक मृत लोगों से भी रोग फैलते हैं, जबकि उन्हें लाश-गाड़ी के अलावा सार्वजनिक वाहनों द्वारा अस्पताल से घर या श्मशान-घाट अथवा दफनानेवाली जगहों पर ले जाया जाता है। अस्पतालों में लाश-गाड़ियां होती ही नहीं हैं। अस्पतालों के पास इतना फंड भी नहीं होता, बड़ी मुश्किल से तो अस्पतालों में 'एंबुलेंस' गाड़ियों की और जरूरी मदों की व्यवस्था हो पाती है।

अस्पताल में बच्चे, जले रोगी तथा शल्य-चिकित्सावाले रोगी संक्रमणों के प्रति सबसे अधिक सुग्राही या संवेदनशील होते हैं। कभी-कभी तो यह संक्रमण अस्पताल में होनेवाले उपचारवाले लाभ की अपेक्षा अनुपात में बहुत अधिक खतरनाक और हानिकर होता है। इसीलिए वार्डों को बारी-बारी से विसंक्रमित किया जाता है, कि लगातार इस्तेमाल से रोगाणुओं का जमाव न होता रहे।

**और भी चीजें हैं संक्रमण फैलानेवाली**

दूषित और अनछनी हवा, साथी रोगियों तथा मिलनेवाले व्यक्तियों के अलावा संक्रमण के अन्य स्रोत हैं—पानी के पाइप, नल, टंकियां और शौचालय तथा स्नान-घर। कभी-कभी अस्पताल का चिकित्सा व परिचर्या से संबद्ध कर्मचारीवर्ग भी संक्रमण का स्रोत होता है। अपर्याप्त रूप

से विसंक्रमित ( स्टेरीलाइज्ड ) कैथेटर, नलियां और इंजेक्शन की सुइयां भी संक्रमण का कारण हो सकती हैं। रुधिराधान यानी खून लेने-देने के दौरान भी विशेष परिस्थितियों में विषाणु या वाइरस के संक्रमण से यकृतशोथ ( हिपेटाइटिस ) का संचार हो सकता है।

**एंटीबायोटिक दवाओं का प्रभाव**

अस्पताल में होनेवाले संक्रमण के बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन ( वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन) ने भी एक लेख में इस तरह से अपनी बात कही है—'जिन अस्पतालों में एंटीबायोटिक दवाएं बहुत अधिक इस्तेमाल होती हैं, वहां के वातावरण में इन दवाओं के प्रतिरोधी (सहनशील), जीवाणु (बैक्टीरिया) मेज में बने रहते हैं, जो नष्ट नहीं होते।'

दिल्ली के अस्पतालों में एक सामान्य संक्रमण' **'स्यूडोमोनास एरुजिनोसा'** नामक जीव के कारण होता है। यह अधिकांश 'एंटीबायोटिक' औषधियों का प्रतिरोधी होता है, यहां तक कि विसंक्रमण-तरलों से भी इसका बाल बांका नहीं होता। यह धीरे-धीरे अविनाशी जो बन जाता है। वैसे संक्रमण की दृष्टि से विकसित और विकासशील देशों में कोई अंतर नहीं है, दोनों जगह बातें एक-सी हैं। रोगाणु [illegible] मायने में समदर्शी हैं।

बात यह भी नहीं कि घरों में [illegible] बिल्कुल निरापद होता है। कहने का आशय यही है कि अस्पताल में लोग संक्रमणमुक्त होने जाते हैं, न कि संक्रमणयुक्त होने। पर आज की इस प्रगति के युग में समाज की सभी इकाइयों का मिला-जुला नैतिक दायित्व है, कि समग्र रूप से जीवन के सभी पहलुओं पर ईमानदारी से दृष्टिपात करें और नागरिक भावना से विचार कर कार्य करें, तभी सबकी भलाई व कल्याण है।

सूक्ष्मजीव-विज्ञानियों की बात फिर से दोहरा दें, कि जीवनदाता डॉक्टरों की सहायता लीजिए और मजे में इलाज कराइए पर घर पर ही, और केवल मजबूरी में ही अस्पताल में भरती होइए वरना लेने के देने भी पड़ सकते हैं। लेकिन विपत्ति में और गंभीर अवस्था में तो अस्पताल की शरण गये बगैर काम नहीं चलेगा। अस्पताल जाना भी पड़े तब, वहां कम से कम दिन ठहरना ही उचित होगा।

**—ई-१, साकेत, एम. आई. जी. फ्लैट्स**
**नयी दिल्ली-११००१७**

**मलयेशिया की खबर है कि १३७ साल का एक बूढ़ा एक बेटे का बाप बना है। एक रिपोर्टर से बातें करते हुए, पेंगलू युसुफ नाम के इस आदमी ने कहा, "मेरी असली उम्र तो भई, १०८ साल है। मैंने अपनी शादी दो साल पहले ही की थी, जब मैं जंगलों और समुद्र में काम करते-करते तंग आ गया था। एक दिन, अचानक मुझे लगा कि मैं इतना बूढ़ा हो गया हूं कि अब मुझे सहारे और देखभाल के लिए कोई औरत चाहिए।"**

**यूसुफ की बीवी ने रिपोर्टर से कहा, "इतना बूढ़ा कहां है मेरा शौहर ? देखने में ८० साल से ज्यादा का नहीं लगता।"**

कहानी

# आदि पीड़ा

• विलास गुप्ते

वे तीनों बहुत पहले से खड़े थे। पिछली बस से रवाना हो गये होते, मगर वह रद्द कर दी गयी थी। उसके तीन घंटे बाद यह बस थी। तब से बस स्टैंड पर खड़े, बैठे या लेटे समय गुजारा था। बीच-बीच में जाकर टिकट-खिड़की पर पूछ भी आते। ठीक साढ़े पांच बजे खिड़की पर हलचल मची, तब वे भी वहां जाकर खड़े हो गये। 'क्यू' में खड़े लोगों ने उन्हें 'लाइन' से आने को कहा। वे फिर भी खिड़की के पास बढ़ने लगे, तब लोगों ने डांटना शुरू कर दिया। उन्होंने भी जिद पकड़ ली। दो 'क्यू' में खड़े रहे और एक ने खिड़की में हाथ डाल दिया। 'क्यू' में सबसे आगे खड़े व्यक्ति ने बुकिंग क्लर्क को आगाह कर दिया कि वह आदमी 'क्यू' में नहीं है। उसने और उसके साथियों ने कहा कि वे तीन-चार घंटे से खड़े हुए हैं और 'क्यू' में खड़े लोगों से बहुत पहले वहां आये हुए हैं। 'क्यू'वालों का कहना था कि वे गयी रात से ही क्यों न आये हों, पर 'क्यू' में न होने के कारण टिकट नहीं मिल सकता। बुकिंग-क्लर्क ने उन्हें टिकट देने से मना कर दिया। वे वहां से हट गये, मगर 'क्यू' में नहीं लगे।

वे लोग दस के आस-पास होंगे गिनती में। चार

मर्द, तीन औरतें बाकी बच्चे—भीलों की अपनी परंपरागत वेशभूषा में। कपड़े के उड़े रंग की तरह चेहरे पर भी एक तरह की बदरंगीयत छायी हुई थी और जगह-जगह पड़े छेद अनुभवों की गवाही दे रहे थे। रिश्ते में एक शादी निकली थी इसलिए उन्हें अपने गांव जाना था। खेती-बाड़ी का या दूसरा कोई काम न रहने पर वे अपने-अपने टप्परों से निकलकर इस शहर में आ गये थे। सड़क या मकान बनाने के काम पर रोजनदारी से काम करते, रात को वहीं कहीं लकड़ी जलाकर खाना बनाते और खुले में सो रहते।

जब कई बार 'क्यू' के आसपास चक्कर लगाने के बाद भी कुछ नहीं मिला, तब वे 'क्यू' में खड़े हो गये, सबसे पीछे। 'क्यू' में खड़े लोग उन्हें गंवारूपन पर फटकार रहे थे कि अब तक 'क्यू' में लगे होते तो काफी आगे आ जाते। 'क्यू' में उनके पीछे कोई नहीं था। उनके साथवाला चौथा आदमी भी 'क्यू' में खड़ा हो गया। जब वे खिड़की के पास पहुंचने को थे, तब तीन-चार आदमी आये और लाइन तोड़कर टिकट लेने लगे। उन्होंने लाइन से आने को कहा तो एक आगंतुक ने इन्हें सिर से पैर तक देखा और कहा, "आदिवासी हो न ? तुम्हारी 'लाइन' अलग से लगती है। जैसे सरकारी नौकरियों में तुम्हारा अलग से कोटा होता है न -वैसा ही यहां भी है।"

उसने हाथ बढ़ाकर टिकट ले लिया। उसके बाद दूसरे लोगों ने भी। वे चारों

"आदिवासी हो न ? तुम्हारी 'लाइन' अलग से लगती है-जैसे सरकारी नौकरियों में तुम्हारा अलग से कोटा होता है न, वैसा ही यहां भी है।"

अपनी 'लाइन' को देखते रहे। आखिर बुकिंग क्लर्क ने कहा, "चल मामा, किधर जाना है ?"

उन्होंने टिकट खरीदे और अपनी

पोटलियां, बालटियां और छिलपियों के गट्ठर लेकर बस में चढ़ गये। जहां खाली सीटें दिखीं वहीं बैठ गये। औरतें खड़ी रहीं। थोड़ी देर बाद कुछ यात्री आये और उन्हें उठा दिया। वे दूसरी खाली सीटों पर जाकर बैठ गये, मगर वहां से भी उठा दिये गये। उन्होंने एतराज किया तो बताया गया कि टिकट खिड़की से सीटों के नंबर दिये गये हैं, जो टिकट के पीछे लिखे गये हैं। किसी ने उनके टिकट

देखे, फिर कहा कि उन पर तो कोई नंबर नहीं है। दूसरे ने हंसकर कहा कि इनका नंबर तो 'एस. टी.' है, याने 'स्टेंडिंग टिकट !' कंडक्टर भी आ गया और उसने साफ कह दिया कि उसके पास कोई खाली सीट नहीं है और जिसे चलना हो, वह खड़े-खड़े चले। उन्हें वहीं जाना था, जहां तक बस जाती थी। उन्होंने देखा कि आगे ही आगे की सीट पर एक ही आदमी बैठा है। उनमें से दो वहीं जाकर बैठ गये।

बस चली, तो दो युवक उनके पास आये और उनसे पूछा, "टिकट पर नंबर लिखा है?" वे चौंककर उठ गये और बताया कि नंबर तो नहीं है। एक युवक ने रौब से बताया कि वह 'रिजर्व सीट' है और हर कोई उस पर नहीं बैठ सकता। फिर अपने साथी से कहा, "बैठिए," और खुद भी बैठ गया। उसने पहले तो दोनों को वहां से हटने का इशारा किया, फिर जाने क्या सोचकर अधेड़ उम्र के आदमी से कहा, "अच्छा चल, तू भी बैठ जा, थोड़ी-सी जगह पर।" पिछली बस की सवारियां भी रुकी हुई थीं, इसलिए बेहद भीड़ थी। सीटों की दोनों तरफ की कतारों के बीच का पूरा गलियारा यात्रियों से ठसाठस भर गया था।

हर यात्री उन्हें अपने से दूर ठेल रहा था। यात्री आपस में बातें कर रहे थे कि वे लोग बहुत गंदे हैं, शायद नहाते भी नहीं। शरीर की दुर्गंध की बात कहकर हर कोई उन्हें आगे या पीछे जाने के लिए डांट रहा था। उन्हें बारबार नसीहत दी जा रही थी कि वे सीधे खड़े रहें और उनकी पोटली या शरीर का कोई अंग उन्हें छूने न पाये। साथ ही साथ बस-यात्री आरक्षण पर भी चर्चा करते रहे।

औरतें बच्चों को गोद में लिये-लिये थक गयीं, तब नीचे बैठ गयीं। तभी आगे से चौथी सीट के कोनेवाले व्यक्ति का ध्यान अपने से कुछ आगे नीचे बैठी उस औरत की ओर गया। वह जवान थी और

छाती उघाड़कर बच्चे को दूध पिला रही थी। उसने कुछ सोचा और अपने पीछे की ओर खड़े दो शहरी लोगों से कहा, "अरे, आप लोग आगे जाकर 'बोनट' पर क्यों नहीं बैठ जाते ? दो जने तो बैठ लेते हैं वहां," फिर उसने 'बोनट' के पास खड़े लंगोटधारी से कहा, "अबे पीछे हट।"

वह घबराकर पीछे हट गया। दोनों शहरी यात्री 'बोनट' पर जाकर बैठ गये। उनके आ जाने से इन्हें पीछे हटना पड़ा, फलतः अन्य यात्रियों को भी। वह औरत खिसककर ठीक उस व्यक्ति की बगल में आ बैठी। उस व्यक्ति ने अखबार फैला दिया और उसकी आड़ से अपना बांया हाथ नीचे लटकाकर उस जवान औरत के खुले शरीर को छूने लगा। उस औरत ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की। अब वह अखबार पढ़ने के बहाने अपनी बांयी हथेली से 'स्पर्श-सुख' में लीन हो गया।

बस 'स्टार्ट' होने के थोड़ी देर बाद ही अगली सीट पर बैठा अधेड़ उठ गया। दरअसल, सीट पर बैठे उन तीनों शहरियों ने इस कदर जगह घेर ली थी कि उसे बैठे रहने में असुविधा हो रही थी। उससे तो खड़े रहने में अधिक सुविधा थी। युवक ने खिसककर फैलते हुए कहा, "क्यों, जमा नहीं क्या ?" फिर हंसकर बोला, "भई इन लोगों को तो खड़े रहने की आदत है। बैठना इन्हें झंझट लगता है, खड़े रहते हैं, तो खुश रहते हैं।"

पिछली सीटवाले ने बातचीत में अपना महत्त्व दर्ज कराते हुए कहा, "[illegible] ये लोग अब तो बसों में सफर करने [illegible] हैं, नहीं तो पहले मीलों पैदल चलते थे।"

बगल की सीट से किसी ने कहा,

**इनमें होली को पहले वाले हाट के दिन लड़का या लड़की अपने मनपसंद साथी के गालों पर गुलाल लगाते हैं और शादी करने के लिए जंगल में भाग जाते हैं...क्यों तू किसको गुलाल लगाने वाला है, कोई छांट रखी है क्या ?...**

"मगर अब तो बसों और रेलों में इन्हीं की भीड़ दिखायी देती है।"

पीछे की तरफ जो दो पुरुष खड़े थे, उनमें एक तरोताजा नवयुवक था। उससे लगकर बैठे एक पेटधारी ने मजाक के लहजे में पूछा, "क्यों रे, शादी-वादी हो गयी ?"

नवयुवक ने लजाकर मुसकराते हुए 'ना' सूचक गरदन हिला दी। पड़ोसी ने पेटधारी को किसी रहस्योद्घाटन की मुद्रा में बताया कि इनमें होली के पहलेवाले हाट के दिन, जिसे वे भगोरिया कहते हैं, लड़का या लड़की अपने मनपसंद साथी के गालों पर गुलाल लगाते हैं और शादी करने के लिए जंगल में भाग जाते हैं। उसने नवयुवक से पूछा, "क्यों, तू किसको गुलाल लगानेवाला है, कोई छांट रखी है

क्या ?"

नवयुवक लजाकर मुसकराता रहा। दूसरी कतार से किसी ने दूसरे पुरुष से पूछा, "क्यों मामा, आज महुआ पी कि नहीं ? अरे तुम लोगों का तो
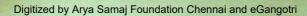
काम ही नहीं चलता उसके बिना," फिर मुसकराकर कहा, "कभी हम आयें तुम्हारे गांव, तो हाथभट्टी की दारू पिलाओगे ना?"

आदमी ने हलकी-सी स्वीकृति के साथ गरदन हिला दी। वह फिर बोला, "और मुर्गा ? अरे उसके बिना तो कोई मजा ही नहीं है।"

पड़ोसी यात्री ने उस मजाक को और आगे बढ़ाते हुए कान में कहा, "और आगे का इंतजाम ? वो भी तय कर लो, सब चलता है इन लोगों में !"

बस चलती रही, यात्री लोग बीच के स्थानों पर उतरे भी, पर जाने कब दूसरे कोई खाली सीट पर बैठ जाते और वे खड़े के खड़े रह जाते। आखिर बस जब अपने गंतव्य से एकाध घंटे के फासले पर आ गयी, तब उन्हें लगा कि अब बैठने को जगह मिल सकती है। वे जब बैठने के लिए आगे बढ़े, तब तीन 'सीटर' बेंचों के यात्री फैलकर बैठ गये कि तीसरा कोई बैठ ही न सके। कुछ शहरी औरतों ने अपने सोये हुए बच्चों को उन खाली सीटों पर लिटा दिया। उनकी ओर देखकर एक यात्री ने कहा, "जाओ, पीछे की सीटों पर बैठ जाओ। इतनी तो जगह खाली पड़ी है, क्या यहीं बैठोगे ?" चारों पीछे ही पीछे की सीट पर जाकर बैठ गये। तभी किसी ने कहा, "वाह मामा, बड़ी शान से बालकनी में बैठे हो !"

रात ग्यारह बजे बस अपने गंतव्य पर पहुंच गयी। यात्री उतरने की जल्दी करने लगे। हर कोई उन्हें पीछे धकेलकर खुद पहले उतर गया। अंत में वे अपनी पोटली, गट्ठरों के साथ उतरने लगे। अधेड़ आदमी सबसे अंत में था। वह उतरने को ही था कि बड़े बाबूनुमा एक व्यक्ति ने उसे अगली सीट के नीचे रखे दो

## स्वयं से पराजित

भीतर से खंड-खंड
विभाजित
टूटे हुए हम
स्वयं से पराजित
सारा क्रोध-निराशा
बाहर उगलते
थूकते-गालियां बकते
गालियों का कोष खाली
तो उपदेशक की मुद्रा
धारणकर
भाषणों की बौछार कर देते
भाषण-धारा
हमें छुए न छुए
कोई बात नहीं
दूसरे तो डूब जाते

भीतर से रीते
बाहर संघर्षरत
जुटाने में वैभव
जो जुटकर भी जुड़ता नहीं
मिलकर भी मिलता नहीं
सजायें कहां उसे ?
अंदर की विकृत
प्लास्तर उतरी दीवारों पर
वह सजता नहीं !

—डॉ. सुधा जैन
१०३५, सैक्टर २४ बी.,
चंडीगढ़

बंडल उतारने को कहा। फिर हंसते-हंसते उन बंडलों को सामने के होटल तक रखवा लिया। एक बंडल से आठ-दस पोस्टर निकाले और अधेड़ को देते कहा, "ले रख ले। तेरे काम आएंगे। सरकार ने तुम लोगों के लिए ही छापे हैं।"

धीरे-धीरे सब यात्री रवाना हो गये। उन लोगों का गांव यहां से सात-आठ किलोमीटर था, जहां कोई बस नहीं जाती थी। तय किया गया कि सुबह उठकर चल देंगे। रात को रुकने का ठिकाना देखने लगे। बस स्टैंड के बाहरी टप्पर के नीचे उन्होंने अपना सारा ताम-झाम रख दिया। और ईंटें-पत्थर जोड़कर लकड़ियां सुलगाने लगे, ताकि पेट की आग को बुझाया जा सके। इसी में खुश थे कि चूल्हा जलाने के लिए उनके पास काफी कागज हैं।

वहीं खड़े ठेलेवाले ने उनके पास पोस्टर देखे तो पास में आकर कहा, "इन कागजों का क्या करेगा ? ला, मुझे दे दे।"

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया तो उसने दोनों मुट्ठियों में सेव-चिवड़ा भरा और बच्चों को बांटना शुरू किया। दोनों हाथ खाली होते ही वह अधेड़ के पास आया और बोला, "बस, अब तो खुश ! ला इधर," और उसने वें पोस्टर झपट लिये। ठेलेवाला उन पोस्टरों से पुड़िया लायक टुकड़े बनाने लगा, बच्चे सेव-चेवड़ा खा लेने के बाद उंगलियां चाटने लगे। अधेड़ और उसके साथी भीतर-बाहर से रिक्त-से इधर-उधर देखने लगे और उनके साथ की औरतें धुंआंती लकड़ियों को फूंके मारने लगीं।

—७२, पत्रकार नगर, इंदौर

# बुद्धि-विलास

**अपनी बुद्धि पर जोर डालिए और यहां दिये प्रश्नों के उत्तर खोजिए । उत्तर इसी अंक में कहीं मिल जाएंगे । यदि आप सारे प्रश्नों के उत्तर दे सकें, तो अपने सामान्य ज्ञान को श्रेष्ठ समझिए, आधे से अधिक में साधारण और आधे से कम में अल्प ।**
**—संपादक**

१. **एक** कक्षा में २० लड़के तथा ३० लड़कियां हैं। १४० अमरूदों को उनमें किस तरह बांटा जाए कि प्रत्येक लड़के को लड़की से दो अमरूद अधिक मिलें ?

२. **त्रिपुरा** राज्य का कौन-सा क्षेत्र बंगलादेश की घिरी बस्तियों—दाहग्राम तथा अग्रिकोटा को उसके मुख्य भू-भाग से अलग करता है—और जिसे वह गलियारे के तौर पर चाहता है ?

३. **आधुनिक** भारतीय चित्रकला पुनरुद्धारक किसे माना जाता है ?
क. नंदलाल बोस, ख. राजा रवि वर्मा, ग. अवनीन्द्रनाथ टैगोर।

४. **अंटार्कटिका** महाद्वीप पर किस भारतीय ने सबसे अधिक समय बिताया है ?
क. एस. पी. गोदरेज, ख. डॉ. परमजीत सिंह सेहरा, ग. डॉ. एस. जेड. कासिम, घ. वी. पी. वोरा ।

५. **दुनिया** में चावल की सबसे अधिक प्रति-हेक्टेयर उपज किस देश में होती है ?
क. चीन, ख. थाईलैंड, ग. द. कोरिया, घ. जापान ।

६. **तपेदिक** के कीटाणु (ट्यूबरकल-बैसिलस) का पता किसने लगाया था ?

७. **भारत** के विधान-मंडलीय इतिहास में पहली बार ऐसा कब हुआ है कि अध्यक्ष के निर्णायक मत से ही मंत्रिमंडल को बचाया जा सका हो ?

८. **राज्यसभा** के सदस्य को केंद्रीय वित्त-मंत्री का पद पहली बार कब और किसे सौंपा गया ?

९. **भारत** में टेलीफोन-सेवा का प्रारंभ कब और कहां हुआ ?

१०. **नीचे** दिये गये चित्र को ध्यान से देखिए और बताइए यह क्या है—
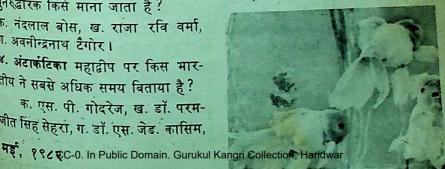
# भारतीय संतों द्वारा रूस में शिव मंदिर

● उदयनारायण सिंह

अतीत-काल से भारत तथा मध्य एशिया के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध कायम रहे हैं। बारहवीं सदी में अजरबैजान में पंचतंत्र की कथाएं लोकप्रिय हो गयी थीं। चौदहवीं शताब्दी में अजरबैजान में स्थापित देश-अल्शाफा नामक वैज्ञानिक-केंद्र में भारतीय विद्वान अध्यापन कार्य करते थे। मध्य-एशिया में प्राचीन भारतीय हिंदू संस्कृति एवं सभ्यता के अवशेष यत्र-तत्र मिलते हैं, जिनसे इस बात का पता चलता है कि हिंदू संस्कृति ने रूस में पहुंचकर वहां की जनता को अनुप्राणित किया है। भारत तथा मध्य-एशिया के मैत्री-संबंधों के इतिहास में एक ऐसा भी समय आया था, जबकि भारतीय साधु-संतों ने वर्तमान अजरबैजान प्रदेश की राजधानी बाकू के निकट स्थित तेल-क्षेत्रों में एक हिंदू मंदिर की स्थापना कर दोनों देशों के संबंधों को और भी दृढ़ किया था। यह मंदिर धरती को फोड़कर स्वतः प्रकट अग्नि-ज्योति को ज्वालामाई के रूप में प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए तैयार किया गया था। ईसवी सन की प्रथम शती

**१६वीं शती—जब आवागमन के साधन आज-जैसे समुन्नत नहीं थे, तब अजरबैजान में आजीविका के लिए जा बसे भारतीयों ने बाकू में एक अग्निमंदिर की स्थापना की। उसकी स्थापना की त्रिशती पर प्रस्तुत है यह लेख –**

में जरथ्रुस्त के अनुयायी अर्थात प्राचीन ईरान में व्यापक रूप से फैले धर्म के मानने-वाले आग की इन ज्वालाओं की पूजा किया करते थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस मत का स्थान इस्लाम ने ले लिया और अग्निपूजकों की कुछ टोलियां ही यहां रह गयीं। ये टोलियां पारसियों की थीं, जो भागकर भारत चली आयीं, और कुछ हजार यहूदियों की थीं, जो फारस में ही रह गयीं, लेकिन इस बीच इन ज्वालाओं की प्रसिद्धि पूर्ववत बनी रही।

**आप्पशेरोन प्रायद्वीप में अग्नि**

सोलहवीं शताब्दी में भारत और कॉकेशस के क्षेत्रों के बीच व्यापार कार्य पूर्ववत चल

बाकू स्थित अग्नि-पूजकों का मंदिर जिसका निर्माण १७१३ से १८१६ के बीच हुआ

रहा था। इस समय अजरबैजान के शेमाख, बाकू और दूसरे शहरों में भारत से आये हुए व्यापारी और दस्तकार अधिकाधिक संख्या में आबाद हो गये थे। बताया जाता है कि इन्हीं लोगों ने आप्पशेरोन प्रायद्वीप पर अग्नि की प्रतिष्ठा की और उसकी पूजा प्रारंभ की। खुरासानी के निकट की कुछ इमारतों का निर्माण भारतीयों ने सन १६८३ में कर दिया था। जब इस अग्नि की प्रतिष्ठा लोगों में अधिक बढ़ गयी, तब भारत से आनेवाले तीर्थ-यात्रियों की संख्या में भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी और अनेक साधु-संन्यासी इस पवित्र ज्योति के समीप रहने लगे। मंदिर के बारे में प्राप्त सबसे पुराना पुरालेख ताराचंद नाम के एक बढ़ई ने अंकित किया था, जिसका काल १७१३ ईसवी है।

अरब इतिहासकार मसूदी ने इस मंदिर के बारे में उल्लेख किया है कि यहां काफी संख्या में अग्निपूजक निवास करते थे। कतिपय यात्रियों ने इस मंदिर को पारसियों एवं हिंदू लोगों का मंदिर कहा है, लेकिन अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यह हिंदू मंदिर ही है। यह मंदिर अखंड-ज्योति के पास निर्मित किया गया। यह एक प्राकृतिक गैस की अखंड-ज्योति थी। मंदिर १७१३ से १८१६ के बीच निर्मित हुआ बताया जाता है। सबसे पुराना भवन अस्तबल का है, तथा सबसे बाद का बना हुआ बेदी मंदिर है, जो अभिलेख के अनुसार भारतीय व्यापारियों के दान से बनाया गया था। पंचकोण

आंगन रेतीली दीवार से बना है, और तीर्थ-यात्रियों के लिए दो दर्जन कोठरियां हैं। वर्गाकार मुख्य-मंदिर आंगन के बीच में है, जिसमें छोटा-सा गुंबद है। बताया जाता है कि १८वीं और १९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में साठ से लेकर सत्तर व्यक्ति मंदिर की धार्मिक क्रियाओं में भाग लिया करते थे। सामान्यतः मंदिर की धार्मिक क्रियाओं का संचालन भारत से आये हुए साधु-संत ही किया करते थे। मंदिर का अंतिम बड़ा समारोह १८५० में रूस के जार अलेक्जेंडर-द्वितीय की उपस्थिति में हुआ था। सन १८२३ में अपने एकाकीपन से ऊबकर मंदिर के एकमात्र पुजारी ने भी मंदिर छोड़ दिया और वह भारत वापस आ गया।

एक फ्रांसीसी यात्री विलोट ने मंदिर के विषय में सन १६८१ में ये बातें लिखी थीं—'कुएं के नजदीक एक ज्वाला-मुखी से अग्नि-शिखायें आठ से दस ज्वालामुखों से निकलती हैं। इस जगह का नाम 'आतिशगाह' अर्थात अग्निगृह है। इसकी उपासना अभी तक हिंदू लोग करते हैं। बताया जाता है कि इस मंदिर के निर्माण में बीस वर्ष (१७१३ से १७३३ तक) लगे थे।'

### पृथ्वी से उछलती हुई लपटें

रूस के प्राच्य-विद्याविद वेरेजिन ने, जिन्हें रूसी विज्ञान अकादमी ने मंदिर देखने के लिए भेजा था, लिखा है: 'हम ज्यों-ज्यों मंदिर के निकट पहुंचते गये, त्यों-त्यों प्रकाश तेज होता गया और जब हम

प्रसिद्ध रूसी चित्रकार ग्रिगोरी गगारिन द्वारा चित्रित पुजारी का एक चित्र

एक पहाड़ी पर चढ़ गये, तब वह पूरी तरह से दिखायी देने लगा।

जिस समय रूसी पर्यटक वेरेजिन ने मंदिर की यात्रा की, उस समय भी मंदिर काफी सुंदर दिखायी दे रहा था। भूरे रंग के पत्थर से निर्मित मंदिर की चारों दीवारों पर चार ऊंची-ऊंची मेहराबें बनी थीं। मंदिर के बीच भाग में एक बलि-वेदी थी और छत के ऊपर एक गोलाकार घंटाघर है, समूचा मंदिर एक चहारदीवारी से घिरा है, जिसके भीतरी भाग में इमारतें खड़ी हैं। इसमें पुजारियों एवं तीर्थ-यात्रियों के लिए २४ कमरे बने

हुए हैं। अठारहवीं शताब्दी के रूसी पर्यटक आई. वेरेजिन ने मंदिर का सुंदर वर्णन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि भारतीय मंदिर सुडौल पंचकोण के आकार का है, जिसकी ऊंची दीवारें भूमिगत कोठरियों के पास खड़ी हैं। दीवारों की ऊंचाई २१ फुट के लगभग है, और भवन का घेरा लगभग ४६० फुट है। बाहर के फाटकों के प्रस्तर पर गुलाब का फूल उत्कीर्ण है, जिसके दोनों ओर सिंह की आकृति बनी है।

**भारतीयों ने बस्ती बसायी**

रूसी विद्वान दोने ने भी इस मंदिर की यात्रा की थी। उसने पुजारियों से एक लंबी पांडुलिपि, महाभारत के पाठ तथा कई स्तवन प्राप्त किये। मंदिर के बारे में सबसे पहले जैकसन नामक अंगरेज ने सन १६४७ में अपने यात्रा-विवरण द्वारा जानकारी प्राप्त करायी। इसी अंगरेज के विवरण से पता चलता है कि १८वीं शताब्दी के प्रारंभ में बाकू में एक भारतीय बस्ती बस गयी थी। मंदिर में प्राप्त शिलालेखों से यह बात भी स्पष्ट हो चुकी है कि मंदिर में उत्तर भारत के निवासी निवास किया करते थे।

भवन के सिंहद्वार पर जो शिलालेख हैं, उनमें जो बातें लिखी हैं, उनका अनुवाद इस प्रकार है—'नरपतियों में श्रेष्ठ विक्रमादित्य के युग में इस सिंहद्वार का निर्माण अग्निपूजकों के लिए किया गया। सुबोधराज और उत्तांगद बंधु—१८८३ श्रावण (१८२७) के कृष्ण पक्ष का ग्यारहवां दिन।' केंद्रीय शरण-स्थल पर खुदे लेख का अनुवाद इस प्रकार है—'इसका निर्माण राजा विक्रमादित्य के युग में हुआ। इस मंदिर का निर्माण माजागाय (ग्राम) के बुद्धहेला ने किया था, जो कि अब कुरुक्षेत्र में रहते हैं... पौष कृष्ण पक्ष का नौवां दिन (संवत १८७३)।'

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी 'जापान' पुस्तक में इस मंदिर का उल्लेख किया है। उन्होंने ६ सितंबर १६३५ में इस मंदिर की यात्रा की थी। उन्होंने लिखा है कि मंदिर के फाटक पर नीचे का लेख इस प्रकार हैं—

**॥ ६० ॥ ओं श्री गणेशाय नमः श्लो—१ क ॥ स्वरित श्री नरपति विक्रमादित्य रा–२ ज साके ॥ श्री ज्वाला श्री निमत दरवा –३ जा वणायाः अतीकेचन गिर संन्यासी–४ रामदहावासी कोटेश्वर महादेव का ॥ आजोस वदि ८१ संवत् १८६६ ॥ ५ ॥**

राहुलजी ने लिखा है कि 'चांद्र तिथि 'निमत' और 'वणायाः' पर ध्यान देने से मालूम होता है कि अतिकेचन गिरि हरियाणा या कुरुक्षेत्र के समीप के रहने-वाले थे। संस्कृत न जानने पर भी वे साक्षर थे, क्योंकि संयुक्त अक्षरों में उन्होंने गलती नहीं की है।'

**आपरूपी ज्वालामाई**

मंदिर के चौकोर हवनकुंड में अग्नि की ज्वाला अथवा ज्योति सन १६२५ तक अक्षुण्ण जलती रही, और इसके बाद बुझ गयी। यह ज्वाला भारतीय साधुओं

के लिए आश्चर्य की वस्तु थी, लेकिन सामान्य रूसी के लिए यह एक साधारण-सी बात थी। तेल-क्षेत्रों में स्वाभाविक रूप से गैस धरती फोड़कर निकला करती है। भारतीयों ने इस अग्नि-ज्वाला को आपरूपी ज्वालामाई की संज्ञा दी, और अपने खर्च से मंदिर की स्थापना की।

### भारतीय अग्निपूजक

इस क्षेत्र में रहनेवाले भारतीय अपना दाह-संस्कार हिंदू रीति से किया करते थे। मुरदों को जमीन में गाड़ते अथवा नदी में प्रवाहित न कर पवित्र अग्नि में जलाना वे अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे। इसी उद्देश्य से मंदिर के निकट एक गर्त के ऊपर, जिसमें गैस का बाहुल्य था, पत्थर की एक भट्ठी बनायी गयी थी। मृतक के शरीर पर गाय के घी का लेप किया जाता था और फिर उसी भट्ठी में रखकर जला दिया जाता था। मंदिर के पुजारियों ने रूसी यात्रियों को बताया था कि अनेक बार स्वयं भारत से उच्चकुल के व्यक्तियों के शव जलाने के लिए खुरासान लाये जाते थे। जलाने के बाद उनकी राख भारत भेज दी जाती थी। इससे स्पष्ट है कि इस स्थान की पवित्रता की ख्याति न केवल बाकू के समीपवर्ती क्षेत्रों तक ही, वरन भारत में भी उस समय हो गयी थी, जबकि यातायात और संचार के साधन आजकल के समान उन्नत न थे। विगत शती के सुप्रसिद्ध रूसी कलाकार ग्रिगोरी गगारिन ने भारतीय अग्निपूजकों के चित्र बनाये हैं, जो अधिक स्वाभाविक हैं ... आज भी इस बात का स्मरण कराते ... कि उनकी वेशभूषा, आचार-व्यवहार कै... रहा होगा। ये चित्र यहां के संग्रहालय ... प्रदर्शित हैं। सन १९६९ में मंदिर ... जीर्णोद्धार कर उसे संग्रहालय का ... दिया गया है, और मुख्य-वेदी की ज्वा... को पुनः प्रज्जवलित कर दिया गया है।

सुप्रसिद्ध कथाशिल्पी तथा 'कादम्बिनी' के संपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी ने, जिन्हों... १९७९ में सोवियत संघ की यात्रा की ... अपनी पुस्तक 'दोस्तों की दुनिया' ... लिखा है, 'भारतीय व्यापारियों ने अग्नि... मशाल के ऊपर एक मंदिर बनवा दि... जिसके ऊपर त्रिशूल लगा हुआ है। मंदि... की चहारदीवारी में सत्ताइस छोटे-छो... कमरे हैं, जिनमें पहले संत रहा करते थे। ... यह मंदिर इस बात का प्रतीक है कि रूस और भारत के बीच सदियों पहले से अबाध व्यापार संबंध रहे हैं।'

—५/१०१५ रामकृष्णपुरम
नयी दिल्ली—...

एंटवर्प (बेल्जियम) के एक मिया-बीवी, गर्दा और अरमांद, ने शादी के ... में यह समझौता किया था कि जब कभी उनमें झगड़ा होगा, तब वे एक सिक्का उछालेंगे। जो जीतेगा, उसी की बात मानी जायेगी। चालीस साल तक हमेशा हारने के बाद, एक दिन गर्दा ने सिक्के को ध्यान से देखा। सिक्के के दोनों ओर 'सिर' बना था, और इस तरह सिक्का उछालने पर जब अरमांद 'सिर' बोलता था, तो जीत उसी की होती थी।

"एक बार सुर-लोक में गयी तो फिर ... ध्यान ही नहीं रहा कि कौन सामने है, कौन पीछे? ... उस रोज के बाद मैंने फैसला कर लिया कि जीवनभर गाती ही रहूंगी। यश की भूख नहीं थी मुझे ... चाहती थी कि खूब मेहनत से आत्मा को घोलकर गाऊं ... और गाती ही रहूं।"

# बड़ी मैना : छोटी मैना

● मणि मधुकर

"मैंने जब पहली बार महफिल में गाया तब, मौसी ने मुझे कलेजे से लगा लिया। वह बार-बार मुझे चूमती रही और कहती रही—'चल, उधर तो चल, सब लोग तेरी तारीफ कर रहे हैं। बोलते हैं—अरे, यह तो 'बड़ी मैना' का नाम रोशन करनेवाली 'छोटी मैना' है।'... मेरी नानी की एक जमाने में खूब शोहरत थी और वे 'बड़ी मैना' कहकर पुकारी जाती थीं। ...."

कमरे में सिद्धेश्वरी देवी की आवाज गूंज रही थी। करीब छह वर्ष पहले, सिद्धेश्वरी देवी की अस्वस्थता के दिनों में 'टेप' की गयी इस मुलाकात को सुनते हुए मुझमें हमेशा एक घनी-घनी उदासी जमने लगती है। मन पर मनों बोझ पड़ जाता है। बीमारी के बावजूद सिद्धेश्वरी देवी ने मुझे कुछ सवाल पूछने की अनुमति दी थी और अस्पताल की नर्स द्वारा टोका-टोकी करने पर भी उन्होंने पूरी बातचीत के दौरान एक भरपूर जिंदगी से झिलमिलाती हुई मुसकराहट को कहीं गुम नहीं होने दिया था। आवाज में अलबत्ता उमर के आखिरी दौर की थकान थी, किंतु शब्दों की आत्मीय कौंध में वह बहुत कम पहचान में आती थी।

"सिर्फ डेढ़ साल की थी मैं। तभी मां नहीं रही। मौसी ने ही पाला-पोसा और प्यार दिया मुझे। राजेश्वरी देवी नाम था। सचमुच वे देवी थीं। हिंदी-उर्दू की, जो भी तालीम मेरी हुई, मौसी की ही वजह से। ग्यारह बरस की रही हूंगी कि पिताजी भी चल बसे, लेकिन मौसी ने मुझे हर दुःख से उबारा, आगे

बढ़ाया ग्रौर लायक बनाया . . .।"

सांस फूल गयी थी उनकी। स्वर टूट गया था। जिस आवाज में जड़-चेतन को सम्मोहन में बांध लेने की सामर्थ्य थी, लकवे ने उसे जर्जर बना दिया था। किंतु एक जबरदस्त ग्रंदरूनी जिद थी सिद्धेश्वरी देवी में कि वह बीच-बीच में पक्षाघात के दबाव को जैसे परे ठेल देती थीं।

"हमारे यहां गाने-बजाने की बात तो नयी थी नहीं। काशी के राजा थे बलवंत सिंह ग्रौर चेतसिंह। हमारे नाना बदरीराम उनकी महफिलों में अव्वल तबलची थे। मुझे जो सुर-ज्ञान मिला, वह तो उस माहौल से ही मिला। मैं दिन-रात सुरों की दुनिया में रहती थी।"

**—आपने शुरू में किससे सीखा ?**

"सियाजी महाराज गुरु रहे मेरे। आठ साल की थी, तभी से मौसी ने उनके चरणों में डाल दिया। सियाजी महाराज के कोई बच्चा नहीं था। उन्होंने मुझे बेटी मान लिया: राग की बारीक से बारीक जानकारी देनेवाला ऐसा उस्ताद मैंने नहीं देखा। मैंने जिंदगी में जो कुछ सम्मान पाया, सब सियाजी महाराज की कृपा से।. . . .हर शुक्रवार को कलावंतों की संगीत-सभा होती थी—जुमागी ! महाराज को जब लगा कि लड़की की तैयारी ठीक-ठाक हो गयी है, तब वे मुझे 'जुमागी' में ले जाने लगे। खुद संगत करने बैठते थे। बड़े-बड़े कलाकारों को 'जुमागी' के नाम से कंपकंपी छूटती थी, लेकिन गुरुजी मुझे ऐसी हिम्मत बंधा[...] कि मैं पूरे विश्वास से गाती थी। '[...] से मेरी चर्चा होने लगी। सुमेरू, [...] शंभू खां, नज्जू खां. . .कल्लन खां[...] माहिर सारंगिये थे उस वक्त. . .[...] मेरी सराहना करते थे वे लोग, [...] वक्त पर दाद देते थे। वीरू महा[...] वाचा मिसर, हरिजी, अनोखेलाल [...] कंठे महाराज ने तबला बजाया है [...] साथ, ग्रौर सदा पीठ थपथपायी है [...] उन लोगों को मैं आज भी याद [...] हूं, तो दिल कैसा-कैसा हो जाता है। [...] कलाकार को जब तक सच्चे मुंह से [...] नहीं मिलता, वह आगे नहीं बढ़ सकता[...]

**—पंचगाछिया वाला एक [...] कइयों से सुना है. . .क्या है वह ?**

"बताती हूं। सब बताती हूं। [...] केवल एक घटना मात्र नहीं थी, [...] जिंदगी का बहुत बड़ा मोड़ था।"

जबान कुछ लड़खड़ाती है, [...] सिद्धेश्वरी देवी संभल जाती हैं। [...] आंखों में गुजरे हुए जमाने की [...] डोलने लगी थीं तब। होंठ तनिक [...] गये थे। चेहरा जाने कितनी बातें [...] करता हुआ धीमे-धीमे सोचने लगा [...] एक पल के लिए मुझे लगा कि मानो [...] मेरी उपस्थिति भी भूल गयी हैं, लेकि[...] छलांग-सी लगाकर सिद्धेश्वरी देवी [...] की दीवारों को लांघ आयीं ग्रौर इस [...] मेरे रूबरू, 'प्रकट' हो गयीं।

"सियाजी महाराज का हुक्म था [...]

पंचगाछिया राज दरबार में गाओ। उमर थी तब मेरी सोलह-सत्रह बरस की। कुछ जानती नहीं थी। उस रोज ठंसाठंस जमा थे लोग, बड़े-बड़े लोग। गाया मैंने। केदार में खयाल। गुरु की यही आज्ञा थी। एक बार सुर-लोक में गयी तो फिर....ध्यान ही नहीं रहा कि कहां हूं, कौन सामने है, कौन पीछे ? एकदम लीन हो गयी।...होश आया तो देखा, उस्ताद फैयाज खां मेरे कंधे पर हाथ रखे हुए हैं और वाह-वाह कर रहे हैं। मैं खुशी से फूली नहीं समायी। उस रोज के बाद मैंने फैसला कर लिया कि जीवन-भर गाती ही रहूंगी। यश की भूख नहीं थी मुझे....चाहती थी कि खूब मेहनत से...आत्मा को घोलकर गाऊं और संसार मेरी कला का लोहा माने।"

**—सियाजी महाराज के अलावा भी क्या आपने किसी से कुछ सीखा ?**

"बहुत सीखा। सियाजी महाराज ने तो मुझमें प्राण ही फूंके थे। समझ रहे हो न ? रोम-रोम पर उनका अहसान है। लेकिन मैंने बड़े रामदासजी से, देवास-वाले उस्ताद रज्जब अली से और लाहौर के इनायत खां साहब से सीखा, हुनर हासिल किया।"

**—आपने तो कठिन साधना की है। क्या आपने नयी पीढ़ी को अपनी कला देने की बात भी सोची है ?**

"नहीं सोचती तो 'भारतीय कला-केंद्र' और 'कत्थक-केंद्र' में कैसे आती ? शांति और सविता—दो बेटियां हैं मेरी, लेकिन जिनको मैंने सिखलाया है, उनसे तो मेरा परिवार बहुत बड़ा बन जाता है।"

**—श्रोताओं से कोई शिकायत ?**

"नहीं। अगर कोई डूब के गाएगा तो सुननेवालों को भी अपने रंग में रंग लेगा। अपनी कमी को दूसरों पर नहीं थोपना चाहिए।"

**—लेकिन...क्या आधुनिक मन ठुमरी में रस लेता है ? क्या शास्त्रीय-संगीत लोगों को भाता है ?**

"मैं लंदन और रोम में गा चुकी हूं, काटमांडू और काबुल में भी। जो ठुमरी के बारे में कुछ नहीं जानते थे, वे भी खुश हुए और देर तक तालियां बजाते रहे।...दुनिया में बड़ी अशांति है, और जो अपने को हिंदुस्तानवालों से ज्यादा आधुनिक मानते हैं, वे शास्त्रीय-संगीत में शांति खोज रहे हैं।"

**—आप अब जल्दी ही स्वस्थ हो जाएं, यही शुभकामना है मेरी ! आपकी सुर-साधना...एक समूचे युग की राग-तपस्या है।**

"मैं तो स्वस्थ हूं। रोग शरीर को लगता है, मन को नहीं। कला में ही कलाकार की तंदुरुस्ती है।"

बाहर...पतझर में झरते हुए पत्तों का शोर हो रहा है। उन सूखे पत्तों में मैं सिद्धेश्वरी देवी की पदचाप सुनता हूं, जो आहिस्ता-आहिस्ता दूर होती जा रही है। 'टेप' पर उन्हें सुनना, जैसे उनकी 'उपस्थिति' का स्वप्न था।!

**—७/२ राजेन्द्र नगर, नयी दिल्ली–६०**
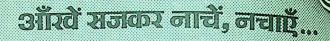
व्यंग्य

फर्ज करंथी हंगरी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं। उनकी छोटी-छोटी रचनाओं में व्यंग्य बड़े पैनेपन के साथ उभरता है। प्रस्तुत है, उनकी एक रचना--

# दया के फरिश्ते

• फर्ज करंथी

मैं आपको उस सिपाही के बारे में बताना चाहता हूं, जिसने मुझे सोचने का बिलकुल अवसर नहीं दिया। वह भलाई और बुराई के फरिश्तों की तरह चौक में खड़ा था।

हुआ यह था कि मैं जल्दी में चलती हुई ट्राम से कूद पड़ा था। संतुलन बिगड़ने के कारण मैं मुंह के बल गिरता, तभी किसी ने सहायता के रूप में मेरी बांह अपनी कठोर मुट्ठी में जकड़ ली।

मैंने अपनी आंखें खोलीं। देखा, एक सिपाही मेरी बांह थामे हुए है।

उसने मुझ पर एक स्नेहपूर्ण दृष्टि डाली। उसकी आवाज में सहृदयता थी, "घबराइए नहीं, आप बिलकुल सुरक्षित हैं। मैं न पकड़ता तो आप जख्मी हो जाते।"

मेरी आंखें सजल हो आयीं, "क्या आप मुझे देख रहे थे? आप तो दया के फरिश्ते हैं। हम लोग व्यर्थ में आप लोगों को उद्दंड, अहंकारी और अभिमानी समझते हैं, हालांकि आप लोग हमारी सहायता करते हैं . . .।"

"ठीक है श्रीमान . . . !"

मैंने गरमजोशी से उसका हाथ देर तक दबाये रखा। फिर बोला, "आपका बहुत-बहुत धन्यवाद . . . मैं यह बात कभी न भूलूंगा . . . मुझे आपका नंबर तक याद रहेगा। यह आज से मेरा लकी नंबर होगा . . . आपका नाम ?"

"जीनस वार्गा . . . श्रीमान !"

"अच्छा, ईश्वर आपको प्रसन्न रखे, जीनस वार्गा . . . मैं आपको कभी नहीं भूलूंगा !"

कितनी अजीब बात थी! वह मेरा हाथ नहीं छोड़ रहा था, "एक मिनट ठहरिए श्रीमान . . . अभी बात खत्म नहीं हुई। क्या मैं आपका नाम जान सकता हूं ?" उसने एक नोटबुक निकाली, "हां, श्रीमान, पता ? . . . आयु ? . . . जन्म-तिथि ? श्रीमान, आपका कोई शनाख्ती-निशान भी है ?"

"अच्छा तो यह बात थी ! क्या तुम मेरी रिपोर्ट करना चाहते हो ?"

"तो आपका क्या विचार है ? क्या आपके खयाल में मैं आप से यूं ही मनोविनोद कर रहा था, इसलिए कि आप एक चलती ट्राम से छलांग लगाकर उतरे हैं ?"

अनु.: सुरजीत

# एक मौत बेखौफ घूमती है

● डॉ. रामदरश मिश्र

**महानगर कितना बड़ा शब्द है—कितना मायावी, कितना मोहक ! यह उसकी छाया में पलनेवालों के भीतर आधुनिकता और बड़प्पन का कितना दंभ भर देता है। ... यहां कुछ ऐसा है, जो कस्बे या गांवों में नहीं है, इसलिए गांवों, कस्बों में रहनेवाले हमें अधिक भाग्यशाली मानते हैं... महानगरीय संस्कृति पर प्रस्तुत है एक विचारोत्तेजक लेख...**

महानगर कितना बड़ा शब्द है—कितना मायावी. कितना मोहक ! यह अपनी छाया में पलनेवालों के भीतर आधुनिकता और बड़प्पन का कितना दंभ भर देता है। हां, मुझे भी लगता रहा है कि मैं यहां आकर कुछ बड़ा हो गया हूं, कुछ नयी या आधुनिक चेतना से संपन्न हो गया हूं। यहां कुछ ऐसा है, जो कस्बों या गांवों में नहीं है, इसलिए गांवों, कस्बों या छोटे शहरों में रहनेवाले हमारे मित्र संबंधी या साहित्यकार हमें अपने आप अपने से अधिक भाग्यशाली और बड़ा मान लेते हैं। वैसे इस भ्रम की खुशबू में जीते रहना कितना अच्छा लगता है।

इस महानगर में मैं रोज ही तो निकलता हूं और बहुत कुछ देखता हूं। कभी-कभी सोचता हूं, आखिर कहां है महानगर? क्या है महानगर? जो दिन भर घूमने के बाद शाम को विचार करने लगा कि क्या मुझे कुछ मिला, तो लगा कि जो कुछ मिला, वह हमारे गांवों, कस्बों और शहरों से एकदम भिन्न तो नहीं है। और मुझे अपनी ही एक कविता याद आ गयी, जिसे मैंने इस महानगर में आने के कुछ ही दिन बाद लिखा

था। उस समय शायद मेरे मन में महानगर की नयी चेतना को लेकर बहुत-बहुत नयी कल्पनाएं थीं और मैं बहुत उत्सुक होकर इसे देख और भोग रहा था, और उन बिंदुओं की तलाश कर रहा था, जिन पर वह गांव या कस्बे से अलग माना जाता है, लेकिन जो मुझे अनुभव हुआ वह विचित्र ही था और यह कविता उसी अनुभव की उपज थी। मैं, फिर तो इस महानगर की जिंदगी का ऐसा अंग बन गया कि उसकी निजता या सामान्यता की पहचान करने की बेचैनी ही समाप्त हो गयी।

महानगर आधा तो गांव ही है, इसके आधे लोग गांव से आये हुए हैं—वे पढ़े-लिखे लोग भी हैं और शारीरिक मेहनत-मजूरी करके पेट पालनेवाले लोग भी। पढ़े-लिखे लोग गांवों से जुड़े रहकर भी धीरे-धीरे उनसे कट जाते हैं और शहर में ही घर बनाकर रहने की सोचने लगते हैं तथा अपनी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में ही उलझे रहने के कारण तथा एक नयी प्रकार की मानसिकता विकसित हो जाने के कारण ये लोग गांव में रह रहे अपने बाप-मां, भाई-बहन आदि से कट जाते हैं (फिर भी किसी न किसी तरह जुड़े रहते हैं) किंतु मजदूर तबका नौकरी-चाकरी के बाद गांव लौट जाता है और नौकरी के क्रम में भी वह लगातार गांव से जुड़ा रहता है। शहर में अकेला रहकर पैसे बचा-बचाकर गांव भेजता रहता है। दरअसल, ये लोग एक ओर महानगर में गांव को ले आते हैं, दूसरी ओर महानगर के भले-बुरे प्रभावों को गांव की ओर ले जाते हैं।

महानगर शिक्षा के केंद्र हैं, वहां से बड़े-बड़े अखबार, पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं। देश के बड़े-बड़े बुद्धिजीवी, साहित्यकार, पत्रकार और नेता रहते हैं। देश और समाज की सड़ी-गली मान्यताओं

को बदलकर एक स्वस्थ मानवीय और सामाजिक चेतना के प्रसार की आवाज वहां से उठती है, किंतु क्या सचमुच मान्यताओं के बदलाव में ये बातें कोई अहम भूमिका निभा पा रही हैं, अर्थात क्या ये अपनी मनचाही दिशा में मान्यताओं को तोड़ और बना पा रही हैं? क्या आधुनिक से दीखनेवाले महानगरीय लोग धर्म-कर्म की रूढ़ियों से सचमुच मुक्त हैं?

**बदलती मान्यताएं**

मुझे तो लगता है कि महानगरों की छाया में पलनेवाली तीन-चार शक्तियां प्रमुख हो गयी हैं, जो अपने ढंग से मान्यताओं को बदल रही हैं। पश्चिमी पद्धति की शिक्षा-व्यवस्था, पनपते हुए नये अमीरों की फूहड़ प्रदर्शनप्रियता, उनकी गोद में सत्ता का केंद्रीयकरण, धर्म और पैसे का गंदा समीकरण आदि। देश के आजाद होने के इतने वर्षों बाद भी अपनी भाषाएं गौरव और अधिकार नहीं पा सकीं और इसीलिए उनसे संपृक्त भारतीय सांस्कृतिक परंपरा भी अपनी मूल्यवत्ता खो बैठी। 'कानवेंटी' शिक्षा के प्रति मोह बढ़ता गया और अंगरेजी भाषा, पश्चिमी वेशभूषा, रहन-सहन, संगीत-नृत्य की नकल के प्रति खोखला आकर्षण बढ़ता गया, बढ़ता जा रहा है। इन स्कूलों और फिर उन्हीं की तरह के कालेजों में पढ़नेवाले छात्रों में एक बेशर्म प्रकार की तेजी पैदा होती है। वे बेशर्मी के इजहार को एक दर्शन के स्तर पर स्वीकार और विकसित कर लेते हैं। इस क्रम में मध्यवर्गीय मानसिकता के मां-बाप का बुरा हाल होता है। वे चाहते तो हैं कि संतान 'कानवेंट' में ही पढ़े, अफसर बने, पैसा और पद प्राप्त करे, लेकिन 'कानवेंटी' व्यवहार उन्हें उद्दंडता लगता है, और यदि संतान शराब, चरस, गांजा के सेवन और मुक्त-यौन व्यापार तक पहुंच गयी, तब तो फिर उनकी मानसिक उद्विग्नता का क्या कहना?

**नयी पीढ़ी की मानसिकता**

यह परिदृश्य नयी पीढ़ी की मानसिकता को बदल रहा है। जो छात्र 'कानवेंटी' शिक्षा से नहीं गुजरे हैं, वे भी काफी दूर तक इससे प्रभावित हो रहे हैं, और परिवार, समाज, देश, संस्कृति आदि के बारे में जो मान्यताएं रही हैं, उन्हें जाने-अनजाने तोड़ रहे हैं। नये संदर्भों में प्रचलित मान्यताओं का टूटना एक सहज व्यापार है और मानव-इतिहास के विकास के लिए आवश्यक भी, किंतु टूटने की जमीन सही होनी चाहिए। महानगरों में मान्यताओं की टूटन या बदलाव जिस जमीन पर आधारित है, वह सही नहीं है। नयी पीढ़ी में सही प्रकार का बदलाव उस समुदाय से पैदा होगा, जो आर्थिक और सामाजिक चेतना से लैस होकर अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक अस्मिता तथा अधिकारों के लिए संघर्ष करता है, जो अपनी स्वस्थ परंपरा का आदर करता हुआ आगे की ओर देखता है। जाहिर है, ऐसा नहीं हो रहा है और इसका प्रभाव किसी-न-किसी रूप में गांव

के युवकों पर भी पड़ रहा है और अधिक अधकचरे रूप में पड़ रहा है।

उसी से जुड़ा हुआ परिदृश्य है नये अमीरों का। काले धंधे से रुपये कमा-कमाकर लोग नये अमीर बन गये हैं। खानदानी अमीरी की एक लंबी परंपरा लोगों को एक संस्कार देती है, एक विशेष प्रकार का आभिजात्य उनमें दिखायी पड़ता है, किंतु नये अमीर, पैसेवाले तो बन जाते हैं, पर उन्हें अमीरी का भीतरी संस्कार, तहजीब और शऊर नहीं प्राप्त होता। वे पैसे के अश्लील प्रदर्शन को ही अमीरी मानते हैं। ये परिवार की संबंध-

**महानगर के मध्यवर्गीय मानसिकता के मां-बाप चाहते तो हैं कि संतान 'कानवेंट' में ही पढ़े, अफसर बने, पैसा और पद प्राप्त करे, लेकिन 'कानवेंटी' व्यवहार उन्हें उदंडता लगता है ...**

मान्यताओं, सामाजिक मूल्यों की मान्यताओं, सांस्कृतिक मान्यताओं को बहुत विकृत रूप दे रहे हैं। वे रामलीलाओं की पवित्रता नष्टकर उन्हें व्यावसायिक रूप दे रहे हैं। वे बीच-बीच में राम, सीता, हनुमान आदि को उनके अभिनय के लिए छोटे-छोटे इनाम देकर बीच-बीच में अपना नाम घोषित कराते हैं। नयी अमीरी द्वारा प्रदर्शित नयी नागरिक सभ्यता सिनेमा, विज्ञापन, माइकवाद, तड़क-भड़क आदि में अपने को रूपाश्रित कर रही है। गांव के सुविधा-संपन्न लोग भी इनका अनुकरण कर रहे हैं। शहरी वातावरण का एक विकृत प्रभाव हमारे गंवई संबंधों व मूल्यों की मान्यताओं को आहत कर रहा है।

**राजनीति : साधन नहीं, स्वामिनी**

महानगर किसी-न-किसी रूप में सत्ता और राजनीति के केंद्र या उपकेंद्र भी हैं। जाहिर है, राजनीति देश की सुरक्षा का एक साधन है, किंतु वह साधन न रह कर स्वामिनी बन गयी है। इस राजनीति के साथ संपत्ति

और दलीय प्रतिबद्धता अपरिहार्य भाव से जुड़ी है। चुनाव पैसे और दलीय उठा-पटक का पर्याय बन गया है। पैसे, क्षेत्र-वाद और जातिवाद तथा संप्रदायवाद के सहयोग से खेला जाता हुआ राजनीति का खेल गांवों तक में धंस गया है। इस खेल ने हमारे सामाजिक जीवन की सामूहिकता को बुरी तरह झकझोरा है। महानगर की छाया से उठकर इसने क्षेत्रवाद और जातिवाद के जहर को चारों ओर

फैला दिया है—जैसे हर घर राजनीति का एक मुहरा बन गया है और दूसरे घर के सामने तन कर खड़ा है। असुरक्षा, अकेलेपन, स्वार्थ-लिप्सा आदि के प्रसार में इस राजनीति का बड़ा गहरा हाथ है।

दरवाजे-दरवाजे न रहकर
कोई न कोई झंडा बन गया है
और झंडा बनकर ही निकलते हैं
पंचायतों में / मेलों में / स्कूलों में / पर्वों में
एक दूसरे को मौन घूरते रहते हैं
बीच की दूरियों में उगती रहती हैं कचहरियां

★

कोयल गाती है किसी झंडे का गीत
फूल खिलते हैं किसी झंडे की प्रीति
खेत पकते हैं लेकर किसी झंडे की आंच
घेर कर किसी झंडे को हवा रही है नाच
एक प्रेम होता है झंडे की मीठी छांह में
एक मौत बेखौफ घूमती है झंडे से घिरी राह में

महानगरों की छाया में एक चीज और बनी और विकसित हुई है, वह, है तमाम श्रमिकों में संघ चेतना। यह संघ-चेतना महानगरों से होकर गांवों के खेतिहर मजदूरों में भी पहुंची है। यह चेतना सुविधा-संपन्नों के साथ चले आते उनके संबंध-बोध को झकझोर रही है, एक नये संबंध कायम करने के लिए प्रेरित कर रही है। उन्हें इस बात के लिए तैयार कर रही है कि वे अपनी जाति, अपने आर्थिक और सामाजिक अधिकारों तथा प्रचलित अंध-मान्यताओं के बारे में नये सिरे से सोचें और आदमी की जिंदगी जी सकने के लिए शोषकों के साथ संघर्ष करें। —आर-३८, वाणी विहार, उत्तमनगर, नयी दिल्ली-५८

## तन-मन के बटवारे

कितने बंदनवार सजाये आशाओं के द्वारे
वेदी तक आकर भी मेरे सपने रहे कुंवारे

तृष्णाएं सागर तक दौड़ीं
लेकिन जल खारा का खारा
जाने कैसे राख हो गया
चंदन वन सारा का सारा
ऐसी आंधी चली समय की
गीत हुए बनजारे

मेरी आंखों का काजल ही
आंचल पर का दाग बन गया
मेरे माथे का कुमकुम ही
हवन-कुंड की आग बन गया
सिंदूरी रेखा कर बैठी
तन-मन के बटवारे

पखवारेभर महकी मेंहदी
पहरों तक गूंजी शहनाई
पांव महावर, रची हथेली
रिश्तों ने सौगंध उठाई
लेकिन पचरंगी चूनर के
रंग थे कच्चे सारे

—प्रभा ठाकुर

५-ए, आशा कॉलोनी,
जुहू तारा रोड, सांताक्रुज (पश्चिम)
बंबई-५४

# एक डाक-टिकट का मूल्य ७६ लाख रुपये

• **संजय गोठवाल**

डाक-टिकट संग्रह करना भी एक विचित्र शौक है, और इस शौक को पूरा करने के लिए शौकीन मिजाज लाखों रुपये भी खर्च कर डालते हैं। एक डाक-टिकट, जो अन्य लोगों को साधारण लग सकता है, पारखी-शौकीन निगाहें उसे खरीदने के लिए हजारों नहीं, लाखों रुपये खर्च कर सकती हैं।

नयी दिल्ली में हुई अंतर्राष्ट्रीय डाक-टिकट प्रदर्शनी में एक ऐसा ही डाक-टिकट लोगों के आकर्षण का केंद्र बना हुआ था। यह डाक-टिकट ब्रिटिश गुयाना का था और उसकी मूल कीमत केवल एक सेंट थी, लेकिन आज उसकी कीमत विश्व के बाजार में एक मिलियन डालर अर्थात ७२ लाख रुपये है, यह टिकट तीन माह पूर्व अमरीका में ६५ लाख रुपये के अंदर बेचा गया।

१८५६ में ब्रिटिश गुयाना के [illegible] मास्टर ने, डाक-टिकटों का स्टाक [illegible] होने पर स्थानीय तौर पर ५० टिकट [illegible] और उन पर जारी करते समय [illegible] कर दिये।

लगभग १७ वर्ष पश्चात सन [illegible] में उक्त एक डाक-टिकट सर्व प्रथम [illegible] गुयाना के संग्रहकर्त्ता स्कूली छात्र को [illegible] किंतु उसे उसकी बनावट पसंद नहीं [illegible] और उसने उसे एक स्थानीय संग्रह[illegible] मित्र को ६ शिलिंग में बेच दिया। [illegible] वर्षों बाद उसने यह टिकट लिवरपु[illegible] एक स्टांप-डीलर को पांच सौ डालर [illegible] बेच दिया। उसने पुनः उसे आस्ट्रि[illegible] एक धनाढ्य को बेच दिया। उसने [illegible] डाक-टिकट को अपने संपूर्ण संग्रह [illegible] बरलिन डाक-टिकट संग्रहालय को [illegible] कर दिया। १९२३ की नीलामी में ब्रि[illegible] गुयाना की वह टिकट ३२,५०० डालर [illegible] बिकी। बाद में यह टिकट पुनः नील[illegible]

विश्व में डाक-टिकट के जन्मदाता कहे जानेवाले सर रालेड हिल (जन्म ३ दिसंबर, १७९५ इंगलैंड)। पहला डाक टिकट सन १८४० में निकाला, जिसका नाम पेनीब्लेक था। भारत सरकार ने भी इस वर्ष सर रालेड हिल की स्मृति में दो रुपये का एक टिकट जारी किया है

में ४२ हजार डालर में बिका।

१९७० में इस टिकट की पुनः नीलामी में, कीमत इतनी अधिक हो गयी कि सभी आश्चर्यचकित रह गये। अमरीका के एक संग्रहकर्त्ता इरविन बेनबर्ग ने इसे २.८० हजार डालर में खरीदा। वर्तमान में इस डाक टिकट की 'इंश्योर्ड' कीमत ७६ लाख रुपया है।

अपने रूप और आकार के लिए यह टिकट न केवल प्रसिद्ध, बल्कि संसार का सबसे कीमती व दुर्लभ डाक-टिकट है।

कहा जाता है कि केवल यही एक-मात्र ऐसा डाक-टिकट है जो रानी एलिजाबेथ के संग्रह में नहीं है। कौन जानता है कि वह अब भी, कभी भी इसके लिए बोली लगा सकती हैं। यह जानते हुए भी कि इसके लिए एक बार उनके पिता ने बोली लगायी थी, किंतु उससे ऊंची बोली किसी अन्य व्यक्ति ने लगा दी थी।

हलके लाल रंग के कागज पर काली स्याही से छपे इस डाक-टिकट का रूप अष्ट भुजाकार है और इसके मध्य तैरते हुए जहाज का चित्र है। इसकी बनावट बेहूदा है। इसे बहुत गंदा भी बताते हैं। और इसके कोने भी काट दिये गये हैं। पोस्ट-मास्टर के हस्ताक्षर ने इसके रूप को और भी बिगाड़कर रख दिया है फिर भी यह डाक-टिकट बहुमूल्य है।

बेनबर्ग ने १२ वर्ष की उम्र में सर्वप्रथम इस टिकट को न्यूयार्क की एक प्रदर्शनी में देखा था। फिर टिकट व्यवसाय के विस्तार के साथ ३० वर्ष पश्चात वह इस टिकट को खरीदने में सक्षम हुआ।

उदयपुर की अरावली फिलेटलिक सोसायटी के सेक्रेट्री श्री के.डी. सिंह के अनुसार भारत में राष्ट्रीय स्तर पर पहला डाक टिकट सन १८५४ में निकला। सोसायटी के प्रवक्ता श्री हर्ष कुमार ने बताया कि इस प्रकार की प्रदर्शनियां यों तो भारत में पहले भी कई आयोजित की जा चुकी हैं, किंतु पी.सी.आई. के संयुक्त तत्वावधान में एफ.आई.पी. ने भारत में प्रथम बार अंतर्राष्ट्रीय स्तर की यह डाक टिकट प्रदर्शनी आयोजित की थी। इसमें इस मूल्यवान डाक-टिकट को प्रदर्शित किया गया। प्रदर्शनी के दौरान इसे कड़े सुरक्षा प्रबंध के साथ ही विशेष तौर पर बने बुलेट-प्रूफ डीम में रखा गया था। यह टिकट हमेशा हथियारबंद सुरक्षा अधिकारियों की निगरानी में रहता है, एवं उन्हीं की निगरानी में चार्टर्ड हवाई जहाज से लाया, ले जाया जाता है। महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी स्थल पर इसे हेलीकोप्टर से लाया जाता है और इसका मिलिट्री सम्मान के साथ स्वागत किया जाता है।

**—२९, झोणी रेत गली, उदयपुर**

# नेपोलियन की शव-परीक्षा

**सेंट हेलना द्वीप में अंगरेजों के निर्वासित कैदी के रूप में नेपोलियन ने अपने जीवन के अंतिम लगभग साढ़े पांच वर्ष बिताये। उसने ये वर्ष कैसे बिताये और उसकी मृत्यु कैसे हुई, आप गतांक में पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत है, इस किश्त में उसकी मृत्यु के कारणों की जांच-पड़ताल—**

● मुकुंददास माहेश्वरी

६ मई, १८२१, रविवार दोपहर २ बजे नेपोलियन की शव-परीक्षा प्रारंभ हुई। शव-परीक्षा डॉ. अ्रंटोमारकी ने की। कुल मिलाकर १७ व्यक्ति उस समय उपस्थित थे। तीन गर्वनर के प्रतिनिधि, तीन सेंट हेलेना के लांगवुड नगर के सदस्य, तीन नेपोलियन के रक्षकदल के सदस्य तथा आठ डॉक्टर।

शव-परीक्षा प्रारंभ होने से पूर्व डॉ. अ्रंटोमारकी ने नेपोलियन के शरीर का परीक्षण किया। उसके शरीर पर बहुत-सी पुरानी चोटों के निशान पाये गये। एक ऐसा ही बड़ा निशान उसके सिर पर था, जो संभवतः ट्यूलोन के युद्ध में उस पर पड़े प्रहार का द्योतक था। तीन ऐसे ही निशान उसके बायें पैर पर थे। ये जख्म उसे रेटिस बॉन युद्ध क्षेत्र में लगे थे। उसकी बायीं जांघ पर भी जख्म के निशान देखे गये। नेपोलियन की लंबाई सिर से पैर तक पांच फुट साढ़े छह इंच थी। दाहिने हाथ की अ्रंगुली से बायें हाथ की अ्रंगुली तक दोनों हाथ पूरी तरह फैले हुए पांच फुट

छह इंच नापे गये। उसके सिर का घेरा बाइस सही दो बट्टा पांच इंच था। उसके हाथ और पांव अपेक्षाकृत छोटे थे। गला भी छोटा था। छाती चौड़ी थी तथा पेट काफी फूला हुआ था।

नेपोलियन की शव-परीक्षा जिन औजारों से की गयी थी, वे आज भी पेरिस के चिकित्सा संकाय के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

पोस्ट-मार्टम रिपोर्ट के तीन विवरण प्रकाश में आये हैं। पहली शासकीय विज्ञप्ति है, जिस पर ब्रिटिश सर्जन डॉ. स्राट, अर्नाट, मिचेल, बार्टन और लिविंगस्टोन के हस्ताक्षर हैं। दूसरी, डॉ. वाल्टर हैनरी की रिपोर्ट है, जो १२ सितंबर को सर हडसन लो के व्यक्तिगत अनुरोध पर लिखी गयी और तीसरा विवरण डॉ. अंटोमारकी की पुस्तक 'लैसर्डनियर्स, मौमेंटस् डी नेपोलियन' में है, जो नेपोलियन की मृत्यु के चार वर्ष उपरांत सन १८२५ में पहली बार प्रकाशित हुई थी।

शासकीय विज्ञप्ति इस प्रकार है—

लांगवुड, सेंट हेलेना

६ मई, १८२१

नेपोलियन बोनापार्ट के शरीर को चीरने पर दृष्टिगोचर रिपोर्ट—

ऊपर से देखने में शरीर बहुत मोटा दिखता था और इसकी पुष्टि पहले चीरे से हुई, जो बीच में लगाया गया। यहां छाती के मध्य भाग पर एक इंच मोटी चरबी व पेडू पर डेढ़ इंच मोटी चरबी की परत थी। पसली की कोमलास्थियों को काटने पर तथा वक्षस्थल की खोह को खोलने पर बायें फेफड़े के उस भाग की तरफ, जो बायीं ओर सन्नद्ध था, बहता हुआ चिपकनेवाला द्रव पाया गया। बायीं खोह में करीब तीन औंस लालिमायुक्त द्रव पाया गया, तथा दायीं खोह में करीब आठ औंस। फेफड़े काफी मजबूत थे। हृदय के चारों तरफ पायी जानेवाली झिल्ली स्वाभाविक थी, जिसमें करीब १ औंस द्रव था।

हृदय सामान्य आकार का था, पर बहुत चरबी से ढंका हुआ था। आरिकल्स और वेंट्रिकल्स (हृदय के भाग) में कोई विशेष बात नहीं थी। केवल मांस-पेशियों के भाग सामान्य से कुछ अधिक पीले थे।

पेडू चीरने पर उसे ढांकनेवाली जाली जिसमें चरबी रहती है, विशेष रूप से मोटी पायी गयी तथा पेट चीरने पर उस घेरे में बीमारी की गहरी पैठ पायी गयी। ऊपर की सतह पर कड़े जोड़ बन गये थे। विशेष

रूप से जब पेट और अंतड़ी के जोड़ के घुमाव एवं लीवर की बायीं पट्टी को अलग किया गया, तब पेट की परतों के नीचे एक नासूर निकला। यह उदर से आंतों में जाने के मार्ग से एक इंच की दूरी पर था और छोटी अंगुली उसके बीच से निकल सकती थी। पेट की भीतरी सतह करीब पूरी तरह कैंसर के समान बीमारी से ग्रस्त थी या कैंसर की ओर बढ़ते हुए हिस्से थे। ये विशेष रूप में उदर से आंतों में जाने के मार्ग के निकट पाये गये। खाने की नली के अंतिम छोर के पास हृदय के समीप का एक छोटा-सा भाग ही केवल स्वस्थ दशा में दिख रहा था। पेट बड़ी मात्रा में कॉफी के समान तरल पदार्थ से भरा था।

लीवर का बांयें हिस्से का ऊपर उठा हुआ घुमाव परदे से चिपका हुआ था। पेट में बीमारी से उत्पन्न जुड़ावों के अलावा लीवर में कोई अस्वस्थता नहीं दिखी। (पहले प्रारूप में लिखा था, 'लीवर संभवतः सामान्य से थोड़ा बड़ा था।') पेडू के हिस्सों के शेष भाग स्वस्थ दशा में थे।

बांयें गुरदे के स्वरूप में थोड़ी विशेषता देखी गयी।

**हस्ताक्षर : थामस स्रोट एम. डी. चिकित्सक एवं पी. एम. ओ.; आर्चिबाल्ड अरनाट एम. डी., २० वीं रेजीमेंट के सर्जन; चार्ल्स मिचेल एम. डी. एच. एम. एस. 'वाइगो' के. सर्जन; फ्रांसिस बर्टन एम. डी. ६६वीं रेजीमेंट के सर्जन; मैथ्यू लिविंगस्टोन एच. सी. सर्विस के सर्जन।**

नेपोलियन की मृत्यु पेट के कैं[सर से] हुई या सेंट हेलेना की जलवायु के [दुष्प्र]भाव के कारण लीवर में सूजन आ[ने से] हुई—यही दो संभावनाएं हैं, जिन [पर] उपरोक्त शव-परीक्षा की रिपोर्टों में म[त]भेद है। इसी उलझन में नेपोलियन स्वा[भा]विक मौत मरा या मारा गया इस म[सले] का निदान अंतर्निहित है।

**डॉक्टरों में म[तभेद]**

डॉक्टर अंटोमारकी ने अपनी रिपोर्ट [में] लिखा है कि नेपोलियन का लीवर [...] हेपाटाइटिस की बीमारी से प्रभावित [था]। इतिहास साक्षी है कि जब शासकीय रि[पोर्ट] लिखी जा रही थी, तब ब्रिटिश डॉ[क्टर] स्राट ने भी लीवर को 'बहुत बड़ा हु[आ]' लिखना चाहा था। लीवर के प्रश्न [पर] शव-परीक्षा में उपस्थित डॉक्टरों में का[फी] मतभेद हुआ। बड़ी कठिनाई से [...] अनुरोध पर डॉक्टर स्राट ने मूल रि[पोर्ट] में अपनी हस्तलिपि में यह स्पष्ट रू[प से] लिखा था कि 'संभवतः लीवर स्वा[भा]विक स्थिति से थोड़ा बड़ा था।' जब [यह] रिपोर्ट गवर्नर सर हडसन लो के [पास] प्रकाशन की अनुमति के लिए भेजी ग[यी], तब उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। फ[लतः] डॉक्टर स्राट को दबाववश उपरोक्त सं[शो]धित वक्तव्य को भी रिपोर्ट में से अ[लग] करना पड़ा। डॉक्टर अर्नाल्ट चेपलिन [ने] अपनी पुस्तक—'सेंट हेलेना—कौन क्या?' में लिखा है कि डॉक्टर स्राट द्वारा तैयार की हुई मूल प्रति रेवरेंड ब्रुक आ[...]

**नेपोलियन की मृत्यु पेट के कैंसर से हुई या सेंट हेलेना के जलवायु के दुष्प्रभाव के कारण लीवर में सूजन आने से—यही संभावना है, और इन्हीं पर डॉक्टरों में मतभेद है। यदि इस पर कोई निर्णय निकाल सकें तो यह समस्या हल हो सकती है कि नेपोलियन स्वाभाविक मौत मरा या मारा गया . . .**

के पास सुरक्षित है, जिसमें डॉक्टर स्नाट की हस्तलिपि में उल्लेख है कि लीवर के संबंध में उनका वाक्य सर हडसन लो के आदेश से निरस्त किया गया। शव-परीक्षा की रिपोर्ट के गहन अध्ययन के उपरांत १९१३ में रायल कालेज ऑव सर्जन के संग्रहालय के संरक्षक प्रो. कीथ ने अपने व्याख्यान में स्वीकार किया था—'यह स्पष्ट है कि नेपोलियन प्रारंभ में स्थानीय बुखार से पीड़ित था, जिससे उसका लीवर बुरी तरह प्रभावित हुआ।'

**कैंसर से मृत्यु**

डॉक्टरों के दूसरे पक्ष का कथन है कि नेपोलियन की मौत पेट के कैंसर से हुई। इसका समर्थन शासकीय विज्ञप्ति में तथा डॉक्टर वालटर हेनरी ने अपनी रिपोर्ट में किया है। आनुवंशिक दृष्टि से नेपोलियन के पिता चार्ल्स बोनापार्ट संभवतः कैंसर से मरे थे, ऐसा नेपोलियन को बताया गया था और उसे इसने स्वीकार भी किया था। यही कारण था कि २२ अप्रैल, १८२१ को नेपोलियन ने डॉक्टर अंटोमारकी को यह निर्देश दिया था, 'मेरी मृत्यु के उपरांत, जो अधिक दूर नहीं है, मैं चाहता हूं कि आप मेरे शरीर को खोलें। मैं पसंद करूंगा कि कोई भी अंगरेज चिकित्सक मेरे शरीर को न छुए। किंतु अगर सहयोग अनिवार्य हो, तब आप सहायता के लिए डॉ. अर्नाट की राय ले सकते हैं। आप मेरे हृदय को निकालेंगे, उसे मदयुक्त शराब में रखकर चांदी के पात्र में सुस्थापित करेंगे और सम्राज्ञी (मेरी लुई) को पारमा में प्रदान करेंगे। मेरी विशेष कामना है कि आप मेरे शरीर का ध्यानपूर्वक परीक्षण करेंगे और अपने निष्कर्षों की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करेंगे। इसे आप इसी तरह सम्राज्ञी को मेरे पुत्र के लिए प्रदान करेंगे। मुझे बाध्य होकर विश्वास करना पड़ रहा है कि मैं 'पाइलोरस ऑव सिरोसिस' बीमारी से मर रहा हूं, जिसने मेरे पिता के प्राण लिये। संभवतः यह रिपोर्ट डॉक्टरों को ऐसे कदम उठाने को अनुप्राणित करे, जिससे मेरा पुत्र इस दुर्भाग्य से बच सके।'

इसे इतिहास की विडंबना ही कहना होगा कि नेपोलियन का पुत्र ड्यूक ऑव रिचडेट पेट की बीमारी से मुक्त तो रहा, पर छाती के क्षय रोग से २२ जुलाई, १८३२ को युवाअवस्था में वियाना में अपनी मां की गोद में मरा। उसकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व आस्ट्रिया के सुप्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ

मेटरनिक ने उसे देखा था और अपनी पुस्तक 'संस्मरण' में लिखा था, 'मैंने इससे अधिक दु:खद मरणासन्न स्थिति का चित्र कभी नहीं देखा।' नेपोलियन के पुत्र की कब्र पेरिस में नेपोलियन की कब्र के पास ही स्थित है। मैंने पिता-पुत्र की इन कब्रों को देखा है।

**अंतिम साध भी अधूरी**

जिस समय नेपोलियन की शव-परीक्षा चल रही थी उस सयम सेवक-दल के सदस्य

मांथोलोन ने ब्रिटिश सर्जन रीड से निवेदन किया था कि मरने से पूर्व सम्राट नेपोलियन की इच्छा थी कि उनका हृदय सम्राज्ञी मेरी लुई को एवं उनके सिर के बाल परिवार के सदस्यों को प्रदान किये जाएं। नेपोलियन के हृदय को उसके शरीर से निकाला गया और शराब से भरे हुये चांदी के पात्र में रखा गया।

किंतु हतभाग्य ! हृदय को सर हडसन लो के हस्तक्षेप के कारण शव के बगल में रखकर दफना दिया गया। इस तरह नेपोलियन की अंतिम साध अधूरी ही रह...

उसके पेट के हिस्से को ... अंटोमारकी स्वयं अपने पास ... रखना चाहते थे, अत: उसे भी ... निकाला गया, किंतु शासकीय ... के कारण इसे भी नेपोलियन के मृत ... के साथ कब्र में रखा दिया गया। ... को मध्यांह १२ बजे नेपोलियन के ... को सम्राट के रूप में सजाकर ... शहर से दो मील दूर 'टारव्रेट' नामक ... के पास दो वृक्षों के मध्य दफना दिया ...

इस सारे कांड पर से लगभग ... वर्ष बाद परदा उठा तब, जबकि फ्रांसी... को सेंट हेलेना से उसके अवशेष वापस ... लाने की अनुमति प्राप्त हुई। १५ अक्तू... १८४० को उसके शव को कब्र से ... गया। इतिहास की इस अभूतपूर्व घड़ी ... उपस्थित थे, उसके सेवक दल के कुछ सदस्य यथा—काउंट बरट्रेंड, गारगाड मार... नवारा, अरचमबालट, पीरन आदि ... उन्होंने अश्रुपूरित नयनों से अपने ... सम्राट के मुख को चंद मिनटों के ... देखा, जो इतने दीर्घ अंतराल के ... भी सुरक्षित था। फिर दो माह ... पेरिस के स्मारक इनवेल्डिज के ... के नीचे इस अमर सम्राट के शव को ... लाख सैनिकों के अभिवादन और ... दस लाख सजल नेत्रों के समक्ष पूर्ण राज... सम्मान के साथ सुरक्षित रख दिया गया।

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि नेपोलियन पेट के कैंसर से पीड़ित रहा ...

या न रहा हो किंतु लीवर की बीमारी से वह निश्चित रूप से ग्रस्त था और यह आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता कि उसकी मौत का एक प्रमुख कारण लीवर का प्रभावित होना था। सेंट हेलेना में निर्वासित होने के पूर्व नेपोलियन का पेट बिलकुल ठीक था। स्वयं उसके शब्दों में, "आपने मेरे पेट के बारे में क्या कहा डॉक्टर? देखिए साहब, मेरा पेट बिलकुल ठीक रहा है। मुझे कभी भी, कहीं भी, किसी भी दशा में तनिक भी दर्द महसूस नहीं हुआ . . ।"

असंदिग्ध रूप से जलवायु का प्रकोप ही उसकी इस बीमारी के लिए उत्तरदायी था और अंगरेज राज्यशाही उसकी अकाल मौत के लिए जिम्मेवार ठहरायी जा सकती है।

अगले अंक में 'नेपोलियन की वसीयत'

"डॉक्टर साब' डॉक्टर साब"...
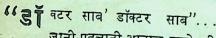
जानी-पहचानी आवाज सुनते ही वार्ड की तरफ बढ़ते हुए, मेरे कदम अपने आप ही रुक गये। सामने शमा खड़ी थी। आत्म-विश्वास से भरा चेहरा, अधरों पर हलकी-सी मुसकान, नव-विवाहिता जो थी। एकाएक मेरे मस्तिष्क में दो वर्ष पहले का वह दृश्य घूम गया। क्या यह वही शमा है जो 'राइनॉलॉजी (नासिका संबंधी चिकित्सा विज्ञान) क्लिनिक' में अपनी नाक और चेहरा मफलर में छिपाये आयी थी। भगवान से नाराज चूंकि जन्म से ही उसकी आधी नाक न जाने कहां लुप्त थी। खयालों के बांध को तोड़ते हुए वह बोली, "डॉक्टर साब, ये मेरे पति हैं। डॉक्टर सहारिया से मिलाने ले जा रही हूं।"

हां, डाक्टर सहारिया ने ही तो उसे नया जीवन दिया था। नाक प्रतिरोपण का आपरेशन कर। वरना क्या उसकी शादी हो पाती!

शमा-जैसे न जाने कितने ही व्यक्ति हैं जिनकी दुर्भाग्यवश जन्म से ही नाक अपूर्ण होती है, या फिर बाद में किसी चोट के कारण अथवा लड़ाई-झगड़े में सुंदर नाक का कुछ हिस्सा या पूरी नाक खो बैठते हैं। वैसे आपने कुष्ट रोग से ग्रस्त व्यक्तियों को भी देखा होगा कि उनकी नाक बीच से दब-सी जाती है, मानो खोखली हो गयी हो। ऐसा होता है, कुष्ट रोग के विनाशकारी रोगाणुओं के कारण जो नाक के बीच के हिस्से को दीमक के समान नष्ट कर देते हैं।

**सौंदर्य और मर्यादा की प्रतीक**

नाक हमारे चेहरे के सौंदर्य का एक अभिन्न अंग है। साथ ही साथ वातावरण से ली गयी हवा को स्वच्छ और उसे शरीर

**नाक—चेहरे के सौंदर्य का एक अभिन्न अंग। साथ ही वातावरण से ली गयी हवा को स्वच्छ और उसे शरीर के अनुरूप तापमान में परिवर्तितकर नली द्वारा फेफड़ों में पहुंचाने-वाला आवश्यक अंग भी। . . . किसी कारणवश क्षतिग्रस्त हो गयी नाक को अब प्रतिरोपण-विधि द्वारा ठीक भी किया जा सकता है।**

चिकित्सा

# अब नाक का भी प्रत्यारोपण संभव है

● डॉ. यतीश अग्रवाल

के अनुरूप तापमान में परिवर्तितकर नली द्वारा फेफड़ों में पहुंचाती है।

अब आवश्यकता एक ऐसी विधि की थी, जिसके द्वारा ऐसे व्यक्तियों में जिनकी नाक खंडित हो, उसे नैसर्गिक बनाया जा सके और साथ ही साथ वे समाज में मर्यादा प्राप्त कर सकें।

इस दिशा में चिकित्सक अनेक वर्षों से प्रयास कर रहे हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में शल्य-चिकित्सकों ने प्रयास किया कि त्वचा की मदद से अधूरी नाक को पूरा किया जाए। विचार अच्छा था, लेकिन इसका कोई ठोस प्रारूप न था।

उन दिनों त्वचा से बनी नाक ऑप-रेशन के कुछ समय बाद ही चिपक जाती थी। इससे नासिका की विकृत्ति भी खत्म हो जाती थी, और श्वास-क्रिया में भी बाधा आ पड़ती थी।

चिकित्सकों को इन प्रयोगों से यह एहसास हुआ कि नाक-निर्माण का सपना तभी साकार हो सकता है, जबकि उसे एक ठोस ढांचे पर बनाया जाए। इसके लिए चिकित्सकों ने हड्डियों की सहायता लेनी प्रारंभ की। टांग की हड्डी टिबीया, माथे की हड्डी आदि हड्डियों को लेकर, चिकित्सकों ने उन्हें नाक का आकार देने के प्रयास किये। इसके बाद हाल के कुछ वर्षों तक वे कान और पसली से लिये गये कार्टिलेज, अर्थात उपास्थि का उपयोग नाक का आकार बनाने में करते रहे। यह प्रयास अत्यंत ही प्रशंसनीय थे, लेकिन यह समस्या का पूरा हल न था। एक तो आकार देते समय नाक उपयुक्त आकार की नहीं बनती थी और दूसरी ओर फाइब्रोसिस के कारण नासिका पूरी खुली नहीं रह पाती थी। मृत व्यक्ति की नाक का भी कुछ अंश निकालकर प्रति-रोपित किया गया। लेकिन क्या मृतक

डॉक्टर पी. एस. सहारिया

शरीर से पूरी तरह नाक का वह भाग, जो हड्डी से नहीं बना होता है, निकाला जा सकता है और उसका उपयोग प्रतिरोपण में किया जा सकता है, यह विचार हाल ही में नयी दिल्ली स्थित सफदरजंग अस्पताल के इ. न. टी. विशेषज्ञ डॉ. पी. एस. सहारिया को आया।

**एक सपना यह भी**

उन्होंने यह सोचा कि जब दिल, गुर्दे, कार्निया, कान में औसिकल (एक प्रकार की कान के अंदर के भाग की छोटी हड्डी) आदि प्रतिरोपित करने के प्रयोग किये जा सकते हैं, तो क्यों न मृतक शरीर से नाक का भाग अलगकर प्रतिरोपित करने का प्रयोग किया जाए। और फिर वे अपने कुछ सहयोगियों के साथ अस्पताल से जुड़े मेडिकल कालेज, यूनिवर्सिटी कालेज ऑव मेडिकल साइंसेंज के डाइसेक्शन हॉल में मृतकों के नाक की डाइसेक्शन करने में एकजुट होकर लग गये।

हां, यहा आप को बता दें कि हमारे नाक केवल ऊपर के थोड़े से भाग में ही हड्डियों से बनी होती है। नीचे का लगभग तीन चौथाई से भी अधिक भाग कार्टिलेज अथवा उपास्थि के ढांचे से बना हुआ होता है। कार्टिलेज एक प्रकार का सफेद रंग लिये हुए लोचदार, अस्थि से मिलता-जुलता ऊतक है। इसीलिए इसे कोमलास्थि के नाम से भी जाना जाता है। यह अस्थियों से जुड़कर शरीर के ढांचे का निर्माण करती है।

**पुनः प्रत्यारोपण**

डाइसेक्शन हॉल में हुए परिक्षणों से यह तथ्य उभरकर सामने आया कि नाक के समूचे नीचे के तीन चौथाई भाग, जो कि अनेक कार्टिलेज से बना होता है, को अंदरूनी तौर से ऐसी सफाई से अलग किया जा सकता है, कि देखनेवाले को यह भी पता न चले कि मृतक की नाक से कार्टिलेज गायब है, जब तक कि वह उसे छूकर न देखे।

विशेषज्ञों ने फिर प्रतिरोपण प्रयोग शुरू कर दिये।

सबसे पहले प्रतिरोपण के लिए कई मृतकों की नासिका से कार्टिलेज निकाले गये। इसके लिए यह उपयुक्त पाया गया कि मृतक की मृत्यु चौबीस घंटे के अंदर ही हुई हो। उसे मृत्यु से पहले कैंसर आदि -जैसा कोई रोग न हुआ हो, और वह ज्यादा से ज्यादा पचास वर्ष का हो, क्योंकि उमर अधिक होने पर कार्टिलेज में लोच
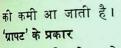
की कमी आ जाती है।

**'ग्राफ्ट' के प्रकार**

नाक से निकाले गये कार्टिलेज को साफकर जिवाणुरहित शीशी में, जिसमें पहले से ही प्रतिरक्षक होता है, डाल दिया जाता है। प्रतिरक्षक का काम फोर्मिलिन नामक एक सहज ही उपलब्ध प्रतिरक्षक के घोल से लिया जाता है।

फोर्मिलिन में डूबे कार्टिलेज के 'ग्राफ्ट' को फिर ४° से. ग्रे. के तापमान में रख लिया जाता है। इस दौरान जीवाणु परीक्षणों से यह भी देख लिया जाता है कि ग्राफ्ट पूरी तरह रोगाणुरहित तो है।

ग्राफ्ट दो प्रकार के होते हैं। कुछ ऐसे, जिनमें नाक का समूचा कार्टिलेजनियस भाग होता है। इन्हें पूर्ण 'ग्राफ्ट' कहा जाता है। इसके अलावा कुछ ऐसे 'ग्राफ्ट' होते हैं, जिनमें नाक की कुछ एक कार्टिलेज ही रहती हैं। इन्हें आंशिक 'ग्राफ्ट' कहा जाता है। इनका भी अपना महत्त्व है।

पूर्ण 'ग्राफ्ट' ऐसे व्यक्तियों में उपयोग किया जाता है, जिनकी समूची नाक दुर्घटना में कट गयी होती है। दूसरी ओर ऐसे व्यक्तियों में, जिनके नाक का कोई एक हिस्सा कट गया होता है, उनमें आंशिक 'ग्राफ्ट' का इस्तेमाल होता है।

**रोचक विधि ऑपरेशन की**

ऑपरेशन की विधि भी बेहद रोचक है। आप तो शायद विश्वास ही नहीं करेंगे। खासकर ऐसे व्यक्तियों में जिनमें समूची नाक का प्रतिरोपण करना होता है। सबसे पहले व्यक्ति के माथे की त्वचा से फ्लैप बनाये जाते हैं, जिसमें 'ग्राफ्ट' का आरोपण किया जाता है। माथे से ली गयी त्वचा का पहनावा दे, उसे वहीं पूरी तरह नाक का रूप दे दिया जाता है। करीब तीन हफ्तों के बाद उसे अपने सही

स्थान पर पहुंचा दिया जाता है। जब वहां उसको उपयुक्त मात्रा में रक्त मिलने लगता है और रक्त कोशिकाएं विकसित हो जाती हैं, तब माथे से उसका संपर्क तोड़ दिया जाता है और फिर नाक को पूरी तरह उपयुक्त रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार बनी नाक देखने में लगभग सामान्य नाक की तरह ही लगती है और नासिका का छिद्र भी पूरी तरह बना रहता है। —यानि कि सौंदर्य के साथ-साथ नासिका की कार्य-क्षमता भी पूरी तरह बनी रहती है।

दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति, जिनमें नाक का कुछ भाग ही आरोपण करना होता है, उनमें ऑपरेशन की विधि बहुत ही सीधी है। कटे हुए या रोग से नष्ट हुए भाग को बाहर कर दिया जाता है और आंशिक 'ग्राफ्ट' को प्रतिरोपित कर प्रतिरोपण-क्रिया संपन्न की जाती है। मजे की बात तो यह है कि यह सारी क्रिया दस से पंद्रह मिनटों की अल्प-अवधि में ही की जा सकती है। ऑपरेशन के लिए चूंकि लगभग सभी काट नासिका के अंदर की तरफ से दिये जाते हैं, इसलिए व्यक्ति की नाक पर जरा भी निशान नहीं आता।

सफदरजंग अस्पताल में डॉ. सहारिया और उनके सहयोगी डॉ. कुदुश अहमद, डॉ. बीना सक्सेना, डॉ. विजय एवं डॉ. वैनकट ने कुल मिलाकर, पिछले तीन सालों में लगभग साठ ऐसे ऑपरेशन किये हैं? अब तक मिले परिणाम बहुत ही संतोषजनक रहे हैं। किसी भी केस में यह देखने को नहीं मिला कि शरीर ने 'ग्राफ्ट' को स्वीकार न किया हो, या फिर शरीर में उसके विरुद्ध किसी भी प्रकार के कोई प्रतिरोधक तत्व ही पनपे हों। सामान्यतः किसी भी 'ग्राफ्टिंग'-क्रिया में यह एक समस्या बन जाती है। व्यक्ति को अस्पताल में अब लंबे समय तक रहने की आवश्यकता भी नहीं है।

डॉ. सहारिया और उनके सहयोगी इन सफलताओं से संतुष्ट हों, ऐसा नहीं। वे चाहते हैं कि कुष्ट रोग के ऐसे रोगी जिनका रोग रोगाणुनाशक औषधियों से पराजित कर लिया गया है, उनके लिए भी इस नव-विकसित तकनीकी का उपयोग हो। ऐसे व्यक्ति कुष्ट-रोग से छुटकारा पा लेने के बाद भी समाज में उपेक्षा के पात्र बने रहते हैं। डॉ. सहारिया का विश्वास है कि अगर आंशिक 'ग्राफ्ट' विधि से उनकी नाक सामांन्य कर दी जाए, तो उनके पुनर्वास में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम होगा। प्रतीक्षा है, तो केवल वित्तीय अनुदान की।

—१८-१०, सी. पी. डब्ल्यू. डी. फ्लैट
साकेत, नयी दिल्ली-११००१७

बैंकाक के ९२ साल के एक किसान लिम विमसोंग ने अपने विवाह की ७३वीं वर्षगांठ पर अदालत में तलाक की अर्जी पेश करते हुए जज से कहा, "हम दोनों का स्वभाव मेल नहीं खाता।"

कहानी

# इन्साफ का खून

● कन्हैयालाल गांधी

गुरु पूर्णिमा को बीते दस दिन हो चुके थे। रात के साढ़े आठ का समय था और आकाश में घने और काले बादल तैर रहे थे। रोशन सेठ की हत्या के समाचार ने सारे गांव में सनसनी पैदा कर दी थी। यद्यपि समस्त राजनगर पर अंधेरे की चादर तनी हुई थी, सड़कों पर रोशनी का नाम तक नहीं था, गलियों में बिजली के खंबों पर बल्ब महीनों से नदारद थे, परंतु पुरुष गलियों में खड़े होकर और स्त्रियां घरों की छतों पर चढ़कर दुर्घटना की अनेक प्रकार से चर्चा कर रही थीं।

गांवों तथा छोटे कस्बों में रात्रि जल्दी उतर आती है। चार बजे प्रातः का जगा हुआ किसान शाम को थकामांदा घर लौटता है, तब वह और उसका श्रांत बैल रात्रि के आगमन के साथ कुछ खा-पीकर सो जाते हैं। इसलिए राजनगर में मिठाई और पानवालों की दूकानों को छोड़कर सभी दूकानें सूर्यास्त के साथ बंद हो जाती थीं।

सेठ रोशनलाल प्रति सायं साढ़े सात बजे तक दूकान बंद करके घर लौट जाते थे। आज घर में जल्दी वापस लौटने को कह गये थे, परंतु जब सवा आठ तक वे घर न पहुंचे, तब उनका लड़का पुनीत विलंब का कारण पता लगाने के लिए दूकान की ओर चल दिया। वहां पहुंचकर देखा, तो दूकान का दरवाजा आधा बंद था और अंदर रोशनी जल रही थी। पुनीत समझ गया कि आज पिताजी को रोकड़ संभालने में देरी हो गयी है, शायद बिक्री कुछ अधिक हुई है। अधिक बिक्री का सोचकर पुनीत का हृदय गद्‌गद होने लगा।

दूकान का दरवाजा ऊपर करते ही पुनीत के होश उड़ गयें। काटो तो शरीर में लहू का नाम नहीं! पिताजी के सिर से लहू बह रहा था। यह देखकर पुनीत का रंग पीला पड़ गया। उसके हाथ-पैर कांपने लगे। उसका सिर चकराने लगा, परंतु पुनीत ने मनोबल और समझदारी से काम लिया। लोगों की भीड़ वहां एकत्र होने से पूर्व वह पुलिस को घटनास्थल पर बुलाना चाहता था, क्योंकि ऐसा करने से अभियुक्त का पता लगाने और डॉक्टरी इलाज में आसानी होती। इसलिए उसने फौरन अपने आपको संभाला। उसने दूकान का दरवाजा फिर वैसे ही नीचे खींच दिया और पुलिस-स्टेशन पर पहुंचा। पांच मिनट के अंदर पुलिस की पूरी गारद डॉक्टर के साथ रोशनलाल की दूकान पर थी।

डॉक्टर ने रोशनलाल का परीक्षण करते ही उसे मृतक घोषित कर दिया। पुलिस ने दूकान के अंदर और बाहर अच्छी तरह से देखा। दूकान के अंदर सभी सामान ठीक पड़ा था, परंतु पैसों की वह थैली गायब थी, जिसमें रोशनलाल दिनभर की आमदनी बांधकर घर ले जाते थे। दूकान के नजदीक किसी अभियुक्त का कोई निशान दिखायी नहीं पड़ता था।

दारोगा साहब ने फैसला किया कि सुराग लगाने के लिए रात-रात में जिला हेडक्वार्टर से उन कुत्तों को लाया जाए, जो सूंघते-सूंघते चोर-डाकुओं के डेरे तक पहुंच जाते हैं। जिला हेडक्वार्टर राजनगर से केवल पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर था। आधी रात से पहले कुत्ते

मौके पर पहुंच चुके थे।

जमीन पर कुछ अस्पष्ट पद-चिह्नों को सूंघते-सूंघते कुत्ते आगे-आगे चल रहे थे, और पुलिस उनके पीछे-पीछे! प्रायः मनुष्य पशु को चलाते हैं, परंतु कभी-कभी पशु भी इस प्रकार मनुष्य को चला लेता है। चलते-चलते कुत्ते गांव के बाहर मेव-जाति के झोपड़ों तक पहुंच गये और एक झोपड़े के सामने खड़े हो गये। पुलिस कुत्तों के साथ झोपड़े के अंदर गयी। कुत्ते वहां रहनेवाले एक पल्लेदार पर कूदकर चढ़ने लगे। कुत्तों ने यही क्रम वहां दो और झोपड़ों में भी किया। पुलिस ने तीनों पल्लेदारों को अपनी हिरासत में ले लिया। ये पल्लेदार हर दूसरे-तीसरे रोज रोशनलाल से काम की मजदूरी लेने जाते थे। उस शाम भी वे पहले की भांति दूकान पर गये थे। आज दरवाजा ऊंचा किया, तब वे अवाक और दंग रह गये। उन्होंने समझा कि शायद अचानक गिर जाने से लाला के सिर से खून बह गया है, और इसलिए वे बेहोश हो गये हैं। जैसा कि ऐसी स्थिति में एक हिंदुस्तानी अक-सर करता है, सहानुभूति में आकर उन्होंने सेठ के हाथों और पैरों को छुआ और दो एक आवाजें भी लगायीं, परंतु जब उन्होंने देखा कि रोशनलाल का शरीर तो नितांत ठंडा पड़ चुका है, तब वे बहुत घबरा गये। उन्होंने तनिक एक दूसरे को 'किंकर्तव्य विमूढ़' की स्थिति में देखा और फिर वहां से फौरन चले जाने का निर्णय किया। उनके भाग्य से आसपास की सभी दूकानें बंद हो चुकी थीं और किसी ने उन्हें उधर आते-जाते न देखा। खैरियत यह भी रही कि रोशनलाल की दूकान थोड़ी एक तरफ थी। तीनों मेव दूकान से भाग चले, परंतु उनके हृदयों में जबरदस्त खींचातानी घर किये हुए थी। उन्होंने लाला का नमक खाया हुआ था। लाला ने उनकी बहू-बेटियों के विवाह में सदैव शगुन डाला

था। पर्व-त्योहार पर लाला के यहां से उनके बच्चों के लिए हमेशा कुछ मिठाई आती थी। सेठ रोशनलाल के मृतक-शरीर को इस प्रकार वहां अकेला छोड़ने पर भगवान के घर में वे क्या जवाब देंगे? कस्बे से बाहर निकलकर अपने घर पहुंचने से पूर्व उनके पांव रुक गये। उन्होंने सोचा कि उन्हें लाला के घर जाकर पुनीत को इसकी सूचना अवश्य करनी चाहिए थी, परंतु फिर उन्हें विचार आया कि पुलिस तो इस मामले में जरूर हस्तक्षेप करेगी ही और पहली सूचना उनकी ओर से होने के कारण उन्हें गवाहियों के सिल-सिले में पुलिस-स्टेशन के चक्कर लगाने पड़ेंगे। एक वर्ष पूर्व पड़ोस के गांव में इसी प्रकार की एक घटना होने पर पुलिसवालों ने वहां के चार कुम्हारों को उनके पड़ोस में हुई चोरी की रिपोर्ट लिखवाने पर सात दिन तक पुलिस-स्टेशन में बुलवाकर खूब परेशान किया था और अंत में उन्हें ही पकड़कर जेल में डाल दिया था। यदि पुलिस ने उनके साथ कहीं वैसा ही व्यवहार किया, तब उनके बच्चे बेचारे तो भूखे मर जाएंगे! इन्हीं सोचों के बीच वे कभी आगे चलते और कभी रुक जाते। आखिर, वे अपने-अपने घरों में पहुंच गये, परंतु उनके मन भारी थे।

तीनों मेवों को पुलिस-स्टेशन पर लाया गया। गांव के लोग पुलिस और कुत्तों के कार्य-कौशल पर मुग्ध थे और पुलिस की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे।

पुलिस ने रात भर तीनों पल्लेदारों की खूब पिटाई की। पल्लेदारों ने जो तथ्य था, सब बता दिया, परंतु पुलिस को उन पर विश्वास न हुआ। मजदूर पर चोरी, डाके और कत्ल का शक करना आम बात है। सादे लिबासवाले पर हाथ उठाना और भी आसान होता है। तीन दिन तक तीनों पल्लेदारों के कपड़े उतारकर, उनके हाथ-पैर बांधकर, उन्हें उलटा लटकाकर, उनकी खूब मरम्मत की गयी। उनके

शरीर पर नीले निशान पड़ गये। पिटाई से उनके पैर सूज गये। उन्हें सात दिन और सात रात जगाये रखकर, नितांत बेहाल कर दिया गया। मार-मारकर उनमें से दो को तो विकलांग भी कर दिया गया। परंतु उनकी जबान पर यही शब्द थे, कि सेठ की हत्या के बारे में उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। आखिरकार, पुलिस ने उनका चालान तैयार किया और उन्हें जज के सामने पेश कर दिया गया। उपलब्ध प्रमाणों के आधारों पर जज को पुलिस की रिपोर्ट पर पूरा विश्वास हो गया। इसके लिए काफी आधार भी थे। एक तो पल्लेदार पैसे के लिए सदा जरूरतमंद रहते थे। दूसरा, सेठ रोशनलाल के यहां उनका नियमित आना-जाना रहता था और इनसे बढ़कर पल्लेदारों का जुर्म वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध हो चुका था। शायद यह विस्मृत हो गया कि चोरी और कत्ल के आधार केवल आर्थिक जरूरतें ही नहीं होतीं, धन-लोलुपता और कुसंगति भी हो सकते हैं। यह नहीं सोचा गया कि पल्लेदार लाला की दूकान पर वर्षों से आ रहे थे, सेठ की कृपा से ही उन्हें बारह मास रोजगार मिल रहा था, इसलिए वे रोशनलाल की हत्या क्यों

पेश हो चुका था। उसे वापस लेने पर पुलिस के विरुद्ध कार्यवाई हो सकती थी। दारोगा के हृदय में प्रतिशोध की भीषण अग्नि प्रज्वलित हो उठी। इन 'नवजात शिशुओं' द्वारा पुलिस को इतना बड़ा धोखा! थाने में तीन मास से एक साथ दो हत्याओं के कांड की खोज चल रही थी। दारोगा ने ये दोनों कत्ल इन युवकों के सिर पर डालने का निर्णय किया। कच्चे मुजरिमों को कुछ भी मनवाने में क्या देर लगती है? उनसे दो हत्याओं को करने की स्वीकृति लिखवा ली गयी। सुबह होने पर कोर्ट में चालान पेश हो गया। नेता को बात का उस समय पता चला, जब वे हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते थे। युवकों को आठ-आठ साल के कठोर कारावास का दंड मिला। पुलिस ने पल्लेदारों के खिलाफ केस की पैरवी ढीली कर दी। पल्लेदारों के भाग्य खुल गये। एक साल मुकदमा चलने के बाद जज ने तीनों पल्लेदारों की रिहाई का हुक्म दे दिया। हां, उन्हें अपना चरित्र ठीक रखने की चेतावनी अवश्य दे दी। दारोगा साहब को तीन हत्याओं का सुराग लगाने के बदले में पदोन्नति मिल गयी और उस थाने में उनके सभी सहयोगियों को प्रशस्ति-पत्र प्रदान किये गये। न्याय का खून हुआ, परंतु न्याय के प्रहरियों की जीत हुई।

—डी १/८२, भारती नगर
नयी दिल्ली

था। पर्व-त्योहार पर लाला के यहां से उनके बच्चों के लिए हमेशा कुछ मिठाई आती थी। सेठ रोशनलाल के मृतक-शरीर को इस प्रकार वहां अकेला छोड़ने पर भगवान के घर में वे क्या जवाब देंगे? कस्बे से बाहर निकलकर अपने घर पहुंचने से पूर्व उनके पांव रुक गये। उन्होंने सोचा कि उन्हें लाला के घर जाकर पुनीत को इसकी सूचना अवश्य करनी चाहिए थी, परंतु फिर उन्हें विचार आया कि पुलिस तो इस मामले में जरूर हस्तक्षेप करेगी ही और पहली सूचना उनकी ओर से होने के कारण उन्हें गवाहियों के सिल-सिले में पुलिस-स्टेशन के चक्कर लगाने पड़ेंगे। एक वर्ष पूर्व पड़ोस के गांव में इसी प्रकार की एक घटना होने पर पुलिसवालों ने वहां के चार कुम्हारों को उनके पड़ोस में हुई चोरी की रिपोर्ट लिखवाने पर सात

ही

का लड़का था और दूसरा गांव के
का लड़का था। दोनों दोस्त और
गर्द भी। कई-कई दिन घर से गायब
थे। उनके माता-पिता को भी
परवाह नहीं थी। समाज-नेता की
के दिनों में वोटों के व्यापार से
आमदनी हो जाती थी। राजनीति
सूत्रधारों के दरबार में 'नेताजी' की
पहुंच थी, इसलिए लोग उनसे कुछ
खाते थे। नेताजी ने अपने पुत्र के
भी यही पेशा सोच रखा था, अतः
अपने बेटे के आवारा होने का तनिक
दुख नहीं था, बल्कि ऐसे व्यवसाय में
केवल घूमने-फिरनेवाला व्यक्ति ही
याब हो सकता है, पढ़ाकू और
प्रकार का नहीं। नाई तो मन ही मन
प्रसन्न था, कि नेता के पुत्र के संग में
पुत्र का भविष्य भी एक दिन चमक उठेगा।
गांव का कोई आदमी इन लड़कों की ओर
ध्यान नहीं देता था। दोनों लड़के शराब
पिये हुए थे। शराबी शराब पीकर
अधिक पीने से बाज नहीं आता। वह
प्रक्रिया में और आगे बढ़ता है।
उनकी रिक्शा शराब के ठेके के सामने
से गुजरी। उनमें से एक नौजवान ने
साथी से कहा, "जाओ, एक बोतल
ले आओ"।

साथी ने उत्तर दिया, "पैसे तो
हो चुके हैं।"

नशे में झूमते हुए पहले युवक ने
"कोई बात नहीं, आज शाम एक

रोशनलाल को ठंडा कर देंगे।" •

यह सुनकर रिक्शावाला जरा चौंका, लेकिन बड़ी चतुरता और समझदारी से काम लेते हुए उसने कहा, "कोई बात नहीं, मैं आपको एक बोतल ला देता हूं। मुझे पैसे कल दे देना।" नशे में चूर शराबी को अक्ल की बात कम ही सूझती है। उन्होंने रिक्शेवाले की पेशकश का स्वागत किया। दोनों युवक बोतल चढ़ाकर उसी रिक्शे में एक दूसरे पर पड़ गये। रिक्शावाला अपनी गाड़ी को सीधा पुलिस स्टेशन पर ले गया और पुलिस को पूरी कहानी कह सुनायी। पुलिसवाले दोनों युवकों को खूब पहचानते थे। सामाजिक नेता ने बड़े घरों तक अपनी रसाई के कारण पुलिस का नाक में दम कर रखा था। मानों ईश्वर ने घर बैठे-बिठाये नेता के साथ सारा हिसाब चुकाने का एक स्वर्ण अवसर भेज दिया हो।

पुलिस ने दोनों युवकों को अपनी हिरासत में ले लिया। थोड़े ही डंडे पड़ने की देर थी कि नव-हत्यारों की अपनी जबानी बात का नीर-क्षीर हो गया।

युवकों का कहना था कि सेठ रोशनलाल ने रोकड़ मिलाकर थैली में डाली ही थी कि वे दोनों उसके सिर पर पहुंच गये। दूकान में पड़े एक बाट से उन्होंने उसकी हत्या की थी और पैसों की थैली लेकर वे वहां से चंपत हो गये थे।

पुलिस के सामने अब एक विचित्र स्थिति थी, पल्लेदारों के खिलाफ चालान पेश हो चुका था। उसे वापस लेने पर पुलिस के विरुद्ध कार्यवाई हो सकती थी। दारोगा के हृदय में प्रतिशोध की भीषण अग्नि प्रज्वलित हो उठी। इन 'नवजात शिशुओं' द्वारा पुलिस को इतना बड़ा धोखा! थाने में तीन मास से एक साथ दो हत्याओं के कांड की खोज चल रही थी। दारोगा ने ये दोनों कत्ल इन युवकों के सिर पर डालने का निर्णय किया। कच्चे मुजरिमों को कुछ भी मनवाने में क्या देर लगती है? उनसे दो हत्याओं को करने की स्वीकृति लिखवा ली गयी। सुबह होने पर कोर्ट में चालान पेश हो गया। नेता को बात का उस समय पता चला, जब वे हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते थे। युवकों को आठ-आठ साल के कठोर कारावास का दंड मिला। पुलिस ने पल्लेदारों के खिलाफ केस की पैरवी ढीली कर दी। पल्लेदारों के भाग्य खुल गये। एक साल मुकदमा चलने के बाद जज ने तीनों पल्लेदारों की रिहाई का हुक्म दे दिया। हां, उन्हें अपना चरित्र ठीक रखने की चेतावनी अवश्य दे दी। दारोगा साहब को तीन हत्याओं का सुराग लगाने के बदले में पदोन्नति मिल गयी और उस थाने में उनके सभी सहयोगियों को प्रशस्ति-पत्र प्रदान किये गये। न्याय का खून हुआ, परंतु न्याय के प्रहरियों की जीत हुई।

—डी १/८२, भारती नगर
नयी दिल्ली

# वे बम बांधकर युद्धपोत पर कूद गये

• शीला झुनझुनवाला

उस दिन तोकियो में हम होटल से एक टैक्सी में रवाना हुए। एक परिचित के घर जाना था। एक दिन पहले भी उनके यहां हो आये थे, इसलिए रास्ता जाना-पहचाना था। लेकिन अब टैक्सीवाला दूसरे ही रास्ते से ले जा रहा था, जो शायद कुछ लंबा था। बीच में 'फ्लाई ग्रोवर' पड़ा। वहां टैक्सीवाले को अपना मित्र मिल गया। उसने गाड़ी रोकी और मित्र से बातें करने लगा। हमें लगा कि किराया काफी बढ़ जाएगा। मीटर एक बार चालू हो जाता है, तो गाड़ी खड़ी रहने पर भी प्रतीक्षा के समय के पैसे दिखाने के लिए धीमी गति से चलता रहता है।

परिचित के घर पहुंचकर पैसे देने लगे, तो यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि टैक्सीवाला उससे काफी कम पैसे मांग रहा है, जो मीटर दिखला रहा है। वजह जानने के लिए हमने उससे इशारे से पूछा कि ऐसा क्यों? न हमें जापानी आती थी और न उसे हिंदी या अंगरेजी। किंतु इशारों की भाषा सर्वव्यापी होती है। सो उसने इशारे से समझाया, कि चूंकि वह रास्ते में मित्र से बात करने अपने काम से रुका

**जापान में हर व्यक्ति, स्त्री हो या पुरुष, बूढ़ा हो या बच्चा, इस बात के लिए सजग है कि उसके देश के नाम पर कहीं धब्बा न लग जाए, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्र-प्रेम की ऐसी उत्कट भावना इतने व्यापक पैमाने पर बहुत कम देशों में देखने को मिलेगी**

था और मित्र से मिलने के लिए ही उसने लंबा रास्ता चुना था, इसलिए उस दूरी और इंतजार के पैसे उसने कम कर दिये हैं। हमारी आंखों में उन जगहों की तसवीरें उभरने लगीं, जहां लोग इसी उधेड़-बुन में रहते हैं, कि कोई पर्यटक या अनजान व्यक्ति हत्थे चढ़े, तो उसकी जेब ज्यादा से ज्यादा हलकी कर दें।

व्यवहार में ईमानदारी की यह मिसाल अपने में अकेली नहीं है। हर कदम पर होते हैं, इसके दर्शन। हमारे एक पूर्व-परिचित मित्र ने बताया, कि कैसे वे एक बार अपना कीमती सामान टैक्सी में भूल गये थे और समझ लिया था कि सामान गया! लेकिन टैक्सीवाले ने वह सारा सामान सुरक्षित रूप में उन तक पहुंचा दिया था।

### चोरी का जिक्र न करें

जापान स्थित भारतीय दूतावास में काम करनेवाले हमारे एक मित्र ने बताया, कि कुछ दिन पहले एक होटल में ठहरे एक विदेशी पर्यटक की कुछ धनराशि चोरी चली गयी। उसने इधर-उधर शिकायत की—तत्काल अखबार में भी यह खबर छप गयी। पैसे मिलने की कोई आशा नहीं थी, लेकिन दूसरे दिन से ही उन सज्जन के पास छोटी-बड़ी धनराशि, इस अनुरोध के साथ आने लगी कि वह जापान में अपनी चोरी हो जाने का जिक्र कहीं न करें। उनके पास इतना धन आ गया, जो चोरी गयी राशि से बहुत ज्यादा था। उन्होंने अपनी खोयी रकम रखकर बाकी धनराशि जापान की कुछ समाज-सेवी संस्थाओं को भेज दी। इस बीच पुलिस ने भी उन्हें पूरा आश्वासन दिया था, कि वह चौबीस घंटों के भीतर अपराधी का पता लगाकर उसे पकड़ लेगी। और हुआ भी ऐसा ही। चोर पकड़ा गया। वह जापानी नहीं था। इटली से आया एक पर्यटक था, जो उसी होटल में ठहरा था।

जापानी चरित्र के ये नमूने उन लोगों को अजूबा लग सकते हैं, जिनके यहां अपने छोटे से स्वार्थ के लिए भी कुछ भी कर गुजरना जायज समझा जाता है। जापान में हर व्यक्ति, स्त्री हो या पुरुष,

बूढ़ा हो या बच्चा इस बात के लिए सजग है, कि उसके देश के नाम पर कहीं धब्बा न लग जाए। राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्र-प्रेम की ऐसी उत्कट भावना इतने व्यापक पैमाने पर बहुत कम देशों में देखने को मिलेगी। अपने देश के नाम पर आंच न आने देने के लिए वहां हर व्यक्ति बड़ी से बड़ी कुरबानी करने को तैयार मिलता है।

**देशप्रेम में 'हाराकिरी'**

हमें वहां कुछ ही दिन पहले एक किशोर द्वारा की गयी 'हाराकिरी' यानी आत्म-हत्या की दर्दनाक दास्तान सुनने को मिली। बच्चे से कुछ गलती हो गयी थी। उसकी मां ने उसे झिड़का और कह दिया, 'इस तरह का हाल-हवाल अभी है, तो बड़ा होकर क्या करेगा—क्या देश के नाम को कलंक लगाएगा?' छोटा-सा बच्चा, पर उसका किशोर मन इस बात को बरदाश्त नहीं कर सका, कि उसकी वजह से उसके देश का नाम बदनाम हो। उसने आत्म-ग्लानि में डूबकर अपनी जान दे दी।

देश की खातिर अपनी जान देनेवालों के नामों से भरे हैं जापान के इतिहास के पन्ने। कितनी ही घटनाएं, कितनी ही कहानियां हैं, उनके देशप्रेम की साक्षी। दूसरे महायुद्ध के दौरान ब्रिटेन के अभेद्य जहाज 'क्वीन एलिजाबेथ' के विनाश का प्रकरण जापानी शौर्य और देशभक्ति की ऐसी कहानी है, जिसका रंग कभी फीका नहीं पड़ेगा। उस समय तक बने जहाजों में सबसे बड़ा बनाया था ब्रिटेन ने यह युद्धपोत। इस्पात की मोटी चादरों से मढ़ा, कि तोप का गोला भी उससे टकरा-कर छिटक जाता। मुकाबले का कोई रास्ता न रह गया, तब अपनी जान देने का निश्चय करके तैयार हुए जापानियों की एक टोली आगे आयी। अपने शरीरों पर विनाशकारी बम बांधकर हवाई जहाज से वे युद्धपोत के ऊपर पहुंचे और धुंआ छोड़ रही उसकी चिमनी में कूद पड़े। 'क्वीन एलिजाबेथ' जापानी [illegible] और देशभक्ति की कहानी अपने पीछे छोड़ता हुआ भारी विस्फोट के साथ सागर की लहरों में समा गया।

देश और समाज के हित में त्याग करने या जान दे देने की घटनाएं और देशों में भी कम नहीं हैं, लेकिन जापान इस मामले में शायद सबसे आगे है। दूसरे देशों में भी इस तरह के लोग होते हैं, पर जापान की एक विशेषता है कि वहां प्रत्येक नागरिक का यह चरित्र है, कि उसके लिए राष्ट्रहित सर्वोपरि है। जहां देश की भलाई या उसके नाम का सवाल आया नहीं, कि और हर चीज गौण होकर रह जाती है।

**संस्कारों का बीजारोपण बचपन में**

किन संकल्पों की अग्नि में तपकर और किन संस्कारों के सांचे में ढलकर बना है जापान का यह अपराजेय चरित्र! इसका बीजारोपण औसत जापानी के व्यक्तित्व में बचपन के दिनों में ही हो जाता है। फिर नन्हे अंकुर को पोषण मिलता है स्वस्थ पारिवारिक और सामाजिक परि-

वेश, रचनात्मक शिक्षा और प्रशिक्षण व्यवस्था तथा धार्मिक आस्थाओं से।
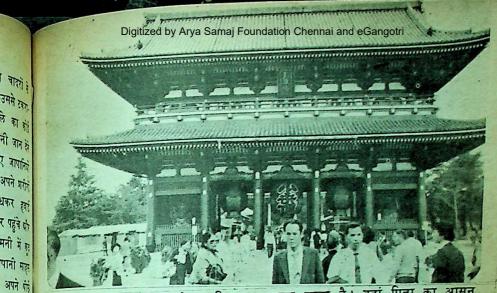
जापानी बच्चे आरंभ से ही देखते हैं, कि उनके समाज में हर व्यक्ति का सम्मान उसकी स्थिति के अनुसार निश्चित है। एक व्यक्ति दूसरे से मिलता है, तो इन्हीं तयशुदा तरीकों से उसके प्रति अपनी भावनाएं व्यक्त करता है। वहां उम्र को आदर दिया जाता है और उम्र में अपने से बड़ों को झुककर सम्मान दिया जाता है। परिवार के सदस्यों को उनके व्यक्तिगत नामों से न पुकारकर रिश्तों से संबोधित किया जाता है। जैसे—बड़े भाई का नाम कभी नहीं लिया जाता है, वरन उसे 'निसान' कहा जाता है। इस जापानी शब्द का अर्थ होता है, अग्रज। इसी तरह बहन, भाई, माता-पिता, पुत्र-पुत्रियों आदि को पुकारते हैं।

**बड़ों का हर जगह सम्मान**

जापानी समाज में पुरुष को नारी से श्रेष्ठ माना जाता है। वहां पिता का आसन माता की तुलना में ऊंचा है। फिर भले ही व्यावहारिक रूप से माता प्रभावशाली क्यों न हो। इसी तरह छात्र या छात्रा से शिक्षक श्रेष्ठ है। छात्र आगे चलकर देश का प्रधान मंत्री बन जाए, तब भी जब वह अपने भूतपूर्व शिक्षक से मिलेगा, तब उसी तरह झुककर अभिवादन करेगा—जैसे शिक्षा-प्राप्ति के दिनों में करता रहा था। मेजबान के मुकाबले में मेहमान का दरजा ऊंचा माना जाता है। विक्रेता या व्यापारी अपने ग्राहक को झुककर नमस्कार करता है। इस सबके पीछे सीधा तर्क यही है, कि जिससे जितनी मेहरबानी हासिल करनी है, उसको उतना झुककर सलाम करना है। शिक्षा संस्था हो, क्लब या कोई संगठन, लोगों का स्थान नियत रहता है। हर किसी को अपने से श्रेष्ठ के सामने झुकना पड़ता है।

अनेक शालाओं में तो छात्र-छात्रा

के कॉलर में लगे बटन ही बता देते हैं, कि वह किस कक्षा में है। इसी तरह संस्था या संगठनों की बैठकों में भी बैठने का स्थान व्यक्तियों की श्रेष्ठता के क्रम में निर्धारित है। जापान में व्यक्ति की इस सापेक्ष हैसियत का पता न हो, तो यह समझना भी मुश्किल हो जाता है, कि उसे अभिवादन किस तरीके से किया जाए।

**व्यक्ति समूह का एक हिस्सा**

जापानी बच्चा बचपन से ही शिष्टाचार के ये नियम सीखने लगता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है और समाज के विभिन्न क्षेत्रों के संपर्क में आता है, उसकी व्यावहारिकता परवान चढ़ती जाती है। जीवन की सफलता के लिए यह सब बहुत आवश्यक है। क्योंकि जापान में एक व्यक्ति की हैसियत, एक समूह के हिस्से के रूप में ही आंकी जाती है। अपने परिवार, शाला, क्लब, व्यापार जैसे समूह के साथ ही उसकी पहचान बनती है। व्यक्तिवादी को वहां स्वार्थी या अहंकारी समझा जाता है। एक समूह से दूसरे या एक कंपनी से दूसरी में भागते रहनेवाले को वहां अच्छा नहीं माना जाता है। समूह के प्रति वफादारी पूरे जीवनभर चलती है।

**बुनियादी शिक्षा का विशेष महत्त्व**

जापान में नर्सरी या किंडरगार्टन स्कूल में बच्चे के प्रवेश पर इतना जोर दिया जाता है, जितना विश्वविद्यालय में प्रवेश के समय भी नहीं दिया जाता। लोग मानते हैं, कि मुकाम पर पहुंचना बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर है, कि शुरुआत कैसे होती है। वहां मां अपने पढ़नेवाले बच्चे से कभी दूर नहीं होती। बच्चे की शिक्षा पर इस जोर ने 'क्योइकू मामा' का अस्तित्व कायम किया है। ऐसी माता जो बच्चे को चैन नहीं लेने देती। उसे सबसे बड़ा संतोष तभी मिलता है, जब उसका बच्चा आगे बढ़े और सफलता प्राप्त करे। हालांकि जापानी बच्चे को अब अपने पाठ रटने में पहले-जैसी मशक्कत नहीं रह गयी है। अध्ययन और अध्यापन से संबंधित कितने ही आधुनिकतम उपकरण वहां खूब प्रचलित हो चुके हैं। इनकी सहायता से छात्र की प्रगति अधिक तेजी से होती है और उसका कौशल बढ़ता है।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के सोपान तो जापान के अधिकांश बच्चे पार कर लेते हैं पर विश्वविद्यालय में प्रवेश सबको नहीं मिल पाता। असफल प्रवेशेच्छुओं की संख्या सफल से कई गुनी होती है। ये चाहें तो अगले सत्र में फिर भाग्य आजमा सकते हैं, या कहीं और जा सकते हैं। कोई-कोई अतिशय भावुक युवक या युवती इस असफलता से दुःखी होकर आत्महत्या तक कर बैठते हैं। सत्र-आरंभ के दिनों में इस प्रकार की घटनाओं के समाचार अखबारों में अक्सर पढ़ने को मिलते हैं।

**छात्र-जीवन में कठोर श्रम और अनुशासन**

जापान में विश्वविद्यालय के छात्र का जीवन कठोर परिश्रम और अनुशासन

के पहियों पर चलता है। किताब की दूकानों, निजी अध्यापकों के घरों, विशेष अध्यापन केंद्रों परीक्षा भवनों में भीड़ ही भीड़ नजर आती है। वहां बेशुमार महाविद्यालय हैं। इनमें से बहुत फल-फूल रहे हैं, पर प्रतिष्ठित बहुत थोड़े हैं और उनमें स्थान सीमित है,

पारिवारिक, सामाजिक परिवेश और शिक्षा से भी कहीं बढ़कर धर्म की भूमिका रही है, जापानी चरित्र के निर्माण में। धर्म कोई भी हो, व्यक्ति और समाज को हमेशा सही रास्ते पर चलने की प्रेरणा देता है। यह अलग बात है कि कुछ स्वार्थी और चालाक लोग, जिनके हृदय में धार्मिकता का अंश भी नहीं होता, धर्म के नाम पर फिरकापरस्ती और अन्य कई बुराइयों की आग भड़काकर अपने हाथ सेंकते हैं। लेकिन वास्तविक धर्म में कर्त्तव्यों और वर्ज्यों का स्पष्ट विधान है। इसलिए जो सच्चे अर्थों में धार्मिक हो, उसके गलत रास्ते पर चलने या बुराई में पड़ने का सवाल ही नहीं उठता है।

**धर्म का प्रभाव विशिष्ट**

जापान पर धर्म का कितना प्रभाव है, यह वहां के बेशुमार मंदिरों और उनमें होनेवाली भीड़ से समझा जा सकता है। शायद ही कोई गांव, कस्बा या नगर-महानगर का गली-मुहल्ला ऐसा मिले, जहां मंदिर नहीं हैं। सामाजिक, पारिवारिक जीवन से जुड़ा कोई भी शुभ कार्य या नया कार्य ऐसा नहीं है, जिसके लिए लोग सबसे पहले देवता का आशीर्वाद लेने न जाते हों। हजारों मंदिरों में आये दिन लगनेवाले मेले, धर्म में जापानियों की प्रबल आस्था के प्रमाण हैं। यह आस्था उनके जीवन का सबसे बड़ा संबल है।

जापान में १९४६ में जो नया संविधान लागू हुआ, उसके अनुसार राज्य किसी धर्म के पालन में न तो सहभागी है और न किसी तरह संरक्षण देता है। राजकीय धर्म कोई नहीं, लेकिन हर नागरिक को अपनी इच्छानुसार धर्म पालने की पूर्ण स्वतंत्रता है। सन १९७८ के अंत में हुई गणना के अनुसार वहां ८ करोड़ ८० लाख २० हजार ८८० बौद्ध थे और ९ लाख ५० हजार ४९० ईसाई। अस्थाई रूप से बसे विदेशी नागरिकों को मिलाकर करीब ३६ हजार मुस्लिम भी जापान में हैं!

**जापान के एक तलाकशुदा पति हर साल अपनी 'मुक्ति' की साल गिरह मनाते थे। ऐसे ही एक सालगिरह-समारोह में उनकी भेंट अपनी भूतपूर्व पत्नी से हो गयी। अब वे पुनः पति-पत्नी हैं।**

★

**लॉस एंजिल्स (अमरीका) के मुक्केबाज आर्ट आरागन को इस जुर्म में अदालत में पेश किया गया कि उसने अपने विरोधी को अपनी बीवी को 'भेंट' देने का प्रस्ताव रखा था।**

व्यंग्य

# और, मैंने 'हां' कर दी

● सुरेशकुमार जैन

मैं उस उम्र को पहुंच चुका था, जब उससे पहले पड़ोसियों और उनके बाद मां-बाप को उसकी शादी किसी लड़की के साथ करवा देने की चिंता सताती है। मां-बाप जितनी बार शादी के बारे में कहते थे, उतनी ही बार मैं मना करता था।

कारण यह था कि मेरे शादीशुदा पड़ोसियों, मित्रों, एवं संबंधियों की स्थिति यदि दुखद नहीं थी तो इतनी सुखद भी नहीं थी कि शादी के लिए रजामंदी दे सकता। अब देखिए ना, कोई इसलिए दुखी है कि अधिक बच्चे हैं तो कोई इसलिए कि बच्चा नहीं है। एक बच्चा हो जाए, इसके लिए गंडे-तावीज बंधाये जा रहे हैं। बस, किसी तरह एक बच्चा हो जाए, ताकि कुल का नाम रोशन हो सके।

दूसरी तरफ जिनके बच्चे हैं उन्हें, और होते ही चले जा रहे हैं। लड़कियां ही लड़कियां हो रही हैं, इंतजार है कुल-दीपक का, चाहे वह कुल डुबो ही दे। अब बच्चे हैं, तो जाहिर है उनके खाने-पीने, पहनने का प्रबंध करना भी मां-बाप की जिम्मेदारी है। इसी में सारी जिंदगी निकली जा रही है, अपनी जिंदगी कुछ रह ही नहीं गयी है।

एक मित्र हर वक्त अपनी पत्नी की फिजूलखर्ची से परेशान हैं। एक अन्य मित्र, मय पत्नी के नौकरी करते हैं, एक प्यारा-सा बच्चा है। सुबह दफ्तर जाने लगे तो बच्चों को बच्चा-घर में छोड़ गये। शाम को आते वक्त लेते आये। बच्चे के सामने खिलौने रखकर पहले नाश्ता किया, फिर खाने-पीने में लग गए। लानत है ऐसी शादी पर!

इसके अलावा आजकल विवाहिताओं के आये दिन जलकर मर जाने के समाचारों ने भी दिमागी परेशानी काफी बढ़ा रखी है। हो सकता है, किसी दिन आपस में थोड़ी बहुत खटपट हो जाए। फिर मेरे घर में भी वही सब कुछ हो, जो अखबारों में छप रहा है।

इन्हीं सब बातों को देख-सुनकर मैंने अपनी मां को अपना निर्णय बता दिया। साथ ही मां पर काम का बोझ न रहे, एक नौकर की भी व्यवस्था कर दी।

नौकर का काम सुबह से ही शुरू हो जाता। चाय देना, हजामत का सामान रखना। और दूसरे छोटे-मोटे काम भी उसके जिम्मे कर दिये गये, लेकिन साहब, नौकर आखिर नौकर ही है। कुछ दिनों बाद उसने गड़बड़ करनी शुरू की। चाय दे गया, तो शेव का सामान गायब है।

अब आवाज दे रहे हैं, "राधे, शेव का सामान क्या हुआ ।" जवाब मिलता है, "अभी लाता हूं बाबूजी, चाय पी रहा हूं ।" खैर, हजामत का सामान आया, तो पानी गायब ! नहाने जाता, तो तौलिया है, लेकिन और कपड़े नहीं हैं । पूछने पर उत्तर मिला, "गलती हो गयी ।"

इतने पर ही गनीमत नहीं थी । एक दिन मां कहने लगी, "बेटा, ऐसा मालूम होता है कि राधे सामान लाने में गड़बड़ करने लगा है । भाव में गड़बड़ कम होती है तौल में अधिक !" मैंने कहा, "देखूंगा !"

कुछ दिनों बात तो चमत्कार ही हो गया । पता चला कि घी खत्म हो गया । मां का कहना था, "इस महीने न तो कोई त्यौहार था और न ही कोई मेहमान आये, फिर समय से पहले घी खत्म होने का मतलब, कहीं न कहीं गड़बड़ है । अभी चीनी का भी घपला हो चुका है लेकिन मैंने तुमसे नहीं कहा । अब पानी सिर से ऊंचा होता जा रहा है । कुछ न कुछ इंतजाम करना पड़ेगा । न हो तो शादी ही कर डालो । अपने आप संभालेगी तुम्हें भी और घर को भी । तनख्वाह देकर आदमी रखने से कहीं घर संभलता है ?"

बात विचारणीय थी । मां ने बात ही नहीं कही थी, 'अल्टीमेटम' दे डाला था । फिर भी शादी का इरादा नहीं बन पा रहा था । सोचा, एक बार राधे से बात करके सब कुछ साफ-साफ कह दिया जाए । इतवार को दोपहर को उसे पकड़ा । जो कुछ अब तक मेरी जानकारी में आया था, सब कुछ कह डाला । उसने अपना दोष नहीं स्वीकारा, कहने लगा, "हो सकता है, बाबूजी, घी कुछ ज्यादा लग गया हो । जहां तक तोल का मामला है, आगे से ख्याल रखूंगा ।" मेरा चित्त प्रसन्न हो गया । मेरा नौकर ऐसा नहीं है । हो सकता है, उसने गड़बड़ न की हो और जो कुछ वह कह रहा है, ठीक हो ।

लेकिन यह खुशी ज्यादा दिन नहीं चल सकी । कुछ महीने तो सब ठीक-ठाक चला, बाद में गाड़ी फिर वहीं आ गयी । शिकायतों का दौर शुरू हो गया । मां ने स्पष्ट कह दिया, "बस, अब तो तुम चटपट शादी के लिए 'हां' कर डालो । सब कुछ टीक हो जाएगा ।"

उस वक्त, 'सोचूंगा', कहकर जान छुड़ा ली । पर बाद में सोचने लगा, मां ठीक ही तो कहती है । दिल कड़ा कर मां को अपना निर्णय बता दिया । आपको इसलिए बता रहा हूं कि आप भी मेरी मदद करना चाहें, तो कर दें ।

**—५१३४, बस्ती हरफूलसिंह,**
**सदर थाना रोड, दिल्ली**

**न्यूयार्क के नाई को मिला पत्र :**

**"प्रिय महोदय, डिकी के बाल काट देना । उसकी जेब में ६० सेंट रखे हैं । बाल काटने के दाम ज्यादा हों, तो बाल कम काटना । —डिकी की मां ।"**

# केले के फूल से सर्पदंश की चिकित्सा

• तुषारकांति घोष

जहां तक मुझे मालूम है, अधिकांश विषैले सांप आदमी से डरते हैं और जब तक वे मुश्किल में न पड़ें, आक्रमण नहीं करते। मगर 'कय' जाति के बड़े फनधर सांप ('किंग कोबरा'), आदमी से डरना तो दूर, अधिकांश मौकों पर अकारण ही आक्रमण कर बैठता है। ऐसे सांप दूधराज, पातराज, शंखचूड़, काल-केउटे आदि हैं।

मेरे एक आत्मीय उत्तर भागलपुर के एक गांव में चिकित्सक थे। उनके पास एक बहुत अच्छा 'भूटिया' घोड़ा था, जिस पर बैठकर वे गांव-गांव रोगी देखने जाते थे। एक बार वे एक गांव में कोई रोगी देखने गये। वहां पास के एक दूसरे गांव से एक व्यक्ति उनके पास आया। वह उन्हें किसी रोगी के लिए अपने गांव ले जाना चाहता था। दोनों गांवों के बीच एक बड़ा मैदान था। वह आदमी मैदान के बाहर होकर उन्हें ले गया। इस रोगी को देखकर वे पहले रोगी के घर लौट आएंगे, ऐसा तय हुआ था, अतः वे नये रोगी को औषध देकर पहले गांव की ओर लौटने लगे। अकेले ही लौटे। मैदान के पास आकर यह सोचकर—'इतना चक्कर काटकर जाने से क्या लाभ ? मैदान के उस ओर ही तो वह गांव दिखायी दे रहा है, मैदान के भीतर होकर ही चलूं। मैदान में लंबी-लंबी घास है तो क्या हुआ, मैं तो घोड़े पर बैठा हूं,' वे मैदान में बढ़ गये। थोड़ी ही दूर गये थे कि चार-पांच किसानों से भेंट हो गयी। वे हाथों में लाठियां लिये हुए थे। उन्हें देखकर वे किसान बोले, "अरे, आप इधर कहां जा रहे हैं ? इस मैदान में एक बड़ा खतरनाक केउटे सांप है, जो आदमी को देखते ही हमला करता है, हम लोग यहां खेत में काम करते हुए भी देखिए, ये लाठियां साथ रखते हैं। वह हमारी तरफ भागता है, तो हम दूर से लाठियां फेंकने लगते हैं। लाठियों के भय से वह दूर चला जाता है। बाबूजी, आप इस रास्ते न जाइए।"

डॉक्टर बाबू थोड़े गंवार किस्म के आदमी थे। उन्होंने किसानों की बात न मानी और यह सोचकर कि 'मैं घोड़े पर रहूंगा, सांप मेरा क्या करेगा ?' वे मैदान में आगे बढ़ गये। जाते-जाते उनके कानों में पीछे से किसानों की आवाज आयी,
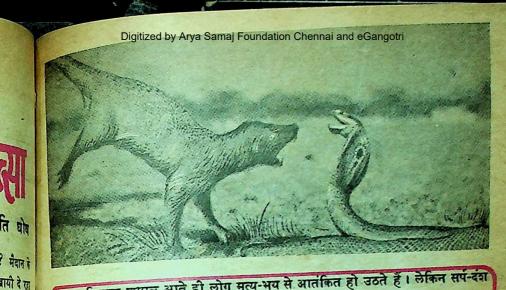
**सांप—जिसका खयाल आते ही लोग मृत्यु-भय से आतंकित हो उठते हैं। लेकिन सर्प-दंश का परिणाम मृत्यु हो, जरूरी नहीं।**

**'अमृत-बाजार पत्रिका' के संचालक संपादक श्री तुषारकांति घोष के सर्पों के संबंध में कुछ रोमांचक संस्मरण**

"यह बंगाली तो जरूर मुश्किल में पड़ेगा।"

डॉक्टर साहब जाते-जाते सांप की बात सोचने लगे। थोड़ी ही दूर गये थे कि पीछे से 'हिस्हिस्' की आवाज सुनायी दी। मुड़कर देखा कि एक प्रकांड केउटे (शायद पातराज) फन उठाये खड़ा है। पूंछ की तरफ का थोड़ा-सा भाग जमीन पर है, बाकी सारा शरीर शून्य में उठा हुआ है। लगा, जैसे वह शरीर का सारा भार पूंछ पर डाले हुए है। थोड़ी देर बाद ही उसने अपना सिर नीचा कर लिया और बड़े वेग से उनकी ओर दौड़ा। डॉक्टर साहब के तो प्राण सूख गये। उन्होंने घोड़े की पीठ पर पैर से ठोकर लगा-लगाकर, चाबुक मारमारकर जितने जोर से दौड़ा सकते थे, दौड़ाया। मगर वे अच्छी तरह जानते थे कि सांप पीछा कर रहा है, क्योंकि 'हिस्हिस्' की आवाज बराबर आ रही है। बीच-बीच में मुड़कर देखते, तो पाते कि घोड़े और सांप के बीच की दूरी प्रायः एक-सी ही है। किसी तरह वे मैदान के छोर पर पहुंच ही गये। यहां एक छोटी-सी नदी थी। सात-आठ हाथ चौड़ी, मगर बहुत गहरी। वे जान की खातिर घोड़ा लेकर नदी के उस पार छलांग मार गये। घोड़ा नदी को पार कर गया, पर वे उसे संभाल न पाये। घोड़ा गिर पड़ा और वे भी छिटककर दूर जा गिरे। दोनों को बहुत चोट आयी, पर उस वक्त दिल में सांप का डर इतना प्रबल था कि उन्होंने चोट की परवाह न करते हुए खड़े होकर पीछे

देखा, सांप दिखायी नहीं दिया। नीचे की ओर देखा। अनुमान सही था। सांप नदी में गिर पड़ा था, शायद उसे भी चोट लगी थी। वह नदी-किनारे थोड़ा-सा फन उठाये पड़ा था। नदी-किनारे जुते खेत में अनेक बड़े-बड़े मिट्टी के ढेले थे। डॉक्टर उन्हें उठा-उठाकर सांप को मारने लगे। एक-दो बार निशाना चूका। अंत में एक ढेला सांप की पीठ पर जाकर लगा और उसकी कमर टूट गयी। वह मर गया।

डॉक्टर साहब और उनका घोड़ा दोनों लंगड़ाते हुए गांव लौटे।

जब किसानों ने सुना कि डॉक्टर साहब ने उनके उस विराट शत्रु को खत्म कर दिया, तब उन्होंने उनके घर पहुंच-कर उन्हें एक दूधवाली बकरी भेंट की।

**सर्प-विष का असर**

पाकिस्तान बनने से पहले की घटना। हमारे अमृतबाजार गांव से दस मील दूर सुख-पुकुर गांव में एक नवयुवक खेत में काम कर रहा था। एकाएक एक मेड़ के ऊपर से एक केउटे सांप ने उसकी उंगली में काट खाया। लड़का हिम्मतवाला और प्रत्यु-त्पन्नमति भी। उसने तत्काल हंसिये से वह उंगली काट फेंकी। चार-पांच दिन की चिकित्सा से उसका घाव बहुत-कुछ ठीक हो गया। उसने सोचा, खेत चलकर उस सांप को खोजा जाए और बदला लिया जाए। वह खेत में गया। सांप का बिल देखने लगा। खोजते-खोजते उसे एक जगह अपनी कटी उंगली दिखायी दी। उसे देखकर उसके मन में एक बड़ा ही अनिर्व-चनीय भाव पैदा हुआ। वह कटे भाग को उठाकर घुमा-फिराकर देखने लगा। जाने क्या मन में आया, कटे भाग को अपनी उंगली से लगाकर सोचने लगा कि यह ठीक इस जगह था। इसके थोड़ी ही देर बाद उसका शरीर जाने कैसा होने लगा। जल्दी से घर लौटकर उसने घर-वालों से सारी बात बतायी। तुरंत चिकित्सा भी की गयी, मगर उसे बचाया नहीं जा सका। कटी उंगली का विष उसके सारे शरीर में फैल गया था।

**'जलसार': सर्प-दंश से मृत व्यक्ति का इलाज**

सर्प-दंशन से प्रायः मृत्यु हो जाती है, कारण—जिस गति से विष कार्य करता है, उस गति से औषध नहीं कर पाती। बहुत बार तो चिकित्सा शुरू होने से पहले ही स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है। सर्प-दंशन की विभिन्न चिकित्साओं की बात सुनी जाती है और समय से प्रयोग किया जा सके, तो किसी-किसी चिकित्सा-प्रणाली का बड़ा अच्छा फल होता है। हमारे देश में ऐसी प्रथा है कि सर्प-दंशन से मरे आदमी का दाह-संस्कार नहीं किया जाता। ऐसे शव को नदी के पानी में बहा देने का नियम है। इसीलिए बेहुला ने लखिंदर के शरीर को बेड़े पर रखकर पानी में बहा दिया। एक बार मर जाने पर आदमी को कोई जिंदा नहीं कर सकता। पर बहुत बार ऊपर से व्यक्ति पूर्णतः

मृत लगता है, पर वह मरा नहीं होता। वह विष से इतना प्रभावित रहता है कि उसमें जीवन का कोई लक्षण दिखायी नहीं देता। ऐसे मृत लोग कभी-कभी बच भी जाते हैं। और उनकी एकमात्र चिकित्सा होती है जल। लोग जब सर्पकाटे से मरे व्यक्ति को पानी में बहाते हैं, तो उनके मन में एक क्षीण आशा रहती है—शायद यह किसी तरह बच जाए। ऐसे 'मृत' रोगयों के लिए 'जलसार' नामसे एक प्रकार की चिकित्सा की व्यवस्था है। मेरे स्वर्गीय पिता ने इस विषय में काफी कुछ शोधकार्य कर बहुत पहले एक पुस्तक 'सर्पाघातेर चिकित्सा' लिखी थी, जिसमें सर्पकाटे की सहज-सरल चिकित्सा-पद्धतियां बतायी गयी हैं। उस पुस्तक की एक घटना का उल्लेख करता हूं।

**केले के फूल का चमत्कार**

कोई बीस साल पहले की बात है। हम लोग खुलना जिले में महकमा बागेरहाट की नदी पर नहाने जा रहे थे। नौ बजे होंगे। देखा कि नदी-किनारे भीड़ है। कौतूहलवश हम वहां गये। देखा कि जमीन पर एक मृत व्यक्ति पड़ा है। और तीन-चार लोग उसे घेरे बैठे हुए हैं। उन्होंने बताया, "हमारा घर यहां से तीन कोस दूर है। इसे रात सांप ने काट खाया। कितना ही इलाज कराया, लेकिन बेकार! गांव के चौकीदार ने कहा, 'कंपनी का हुक्म है, सांप के काटने पर सरकारी डॉक्टर से परीक्षा कराये बिना मृतक को जलाया नहीं जा सकता।' सो, डॉक्टर को दिखाने आये हैं।"

हमारे साथ मुंसिफ अदालत के एक बाबू थे। उन्होंने मृतक का परीक्षण कर कहा, "मैं इसे बचाऊंगा।" और फिर उन्होंने कुछ कलसियां और एक केले का फूल मंगाया। फूल का ऊपरी भाग गोलाई में काटा। एक व्यक्ति मृतक को बिठाकर पकड़े रहा और वे उसके तालू पर उसके सिर में गरमी लाने के लिए केले के फूल के अग्रभाग को घिसने लगे। फिर उन्होंने मृतक के सिर से चार-पांच हाथ ऊपर से पानी की धार बराबर छोड़ते रहने को कहा। प्रायः आध घंटे तक इस तरह पानी डालते रहने के बाद भी उसके शरीर में जीवन का कोई चिह्न दिखायी नहीं दिया, तो उसकी जड़ देह में चेतना लाने के लिए एक कपड़े का कोड़ा-सा बनाकर उसकी पीठ पर जोर-जोर से मारने लगे, सिर पर पानी भी पड़ता रहा। बहुत देर तक जलधारा पड़ते रहने के बाद रोगी की आंखों की पलकें थोड़ी-थोड़ी कांपने लगीं, और इसके बाद उसने आंखें खोल दीं।

—अनु.: ब्रजगोपालदास नागर

"कमाल है! वह इतनी साड़ियों का आखिर करती क्या है?"

"पता नहीं भाई, मैंने तो कभी लाकर दी नहीं।" —ऋतुराज बुड़ावनलाला

# हंसी के झरते आंसू

• तारादत्त निर्विरोध

एक उस्ताद थे—संगीत आकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र ! मौसीकी के प्रति पूर्णतः समर्पित। उनका एक मार्मिक संस्मरण याद आ रहा है। उस्ताद जरा लंगड़े थे लहराकर चलते थे।

एक महफिल में जाना था। संभ्रांत, अभिजात, वर्ग के पुरुष और महिलाएं। उस्ताद का गायन सुनने को उत्सुक। बारी आयी। उस्ताद की आदत थीं कि वे श्रोताओं के बीच में बैठते थे। उठे और लहराती चाल से मंच की ओर बढ़े। उनके लंगड़ेपन पर कुछ महिलाएं हंस पड़ीं।

उस्ताद मंच पर थे। एक निगाह आत्मविश्वास से भरपूर निगाह श्रोताओं पर डाली। गला खखारा और गुरु-गंभीर आवाज में बोले, "जो हंस रहे थे, उन्हें रुला न दूं, तो नाम नहीं।"

आलाप शुरू किया। सूर का पद और उस्ताद की तन्मय स्वर-लीला !

"मैया मोरी, मैं नहि माखन खायो !"

मां का दिल उडेल दिया था गायक ने। हंसनेवाली महिलाएं चुप थीं। वात्सल्य और करुणा का समुद्र श्रोताओं के हृदयों में हिलोरें मारने लगा। गायन समाप्त करके उस्ताद मंच से उतरे—मुसकराते हुए। अपनी सदाबहार लहराती चाल से चलते हुए श्रोताओं में आ विराजे।

सन्नाटे के बीच महिलाओं की सिसकियां साफ सुनायी दे रही थीं।

"रुला न दू, तो नाम नहीं !" उस्ताद की चुनौती का उत्तर थे।—खनकती हंसी के झरते आंसू !

★

जायसी महान कवि थे, सूफी-संत थे और साथ ही बेहद कुरूप। एक आंख नहीं थी।

एक बार उनकी तारीफ सुनकर बादशाह ने बुलाया। पहले तो संत-कवि ने टालना चाहा, फिर मित्रों-भक्तों की मनुहार पर चले गये। भरा दरबार। बादशाह सिंहासन पर बैठे थे। जायसी आये। राजा के चेहरे पर उपेक्षा की मुसकान। सभासद भी दबी हंसी ओठों पर लिये हुए। तिलमिला गये महाकवि। बैठे नहीं। उलटे पांव वापस लौटे, यह कहते हुए—

**'मोहि का हंसेसि कि कोहरहिं ?'**

तू मेरी कुरूप देह पर हंस रहा है या उस कुम्हार पर, जिसने मुझे बनाया है ?

बादशाह और सभासद विस्मित और लज्जित हो आये थे, किंतु सूफी-संत कवि लौट चुका था।

—जनसंपर्काधिकारी, झुंझुनू

# एडवर्ड अष्टम की हिटलर से सांठ-गांठ थी

● **अमरनाथ राव**

## एडवर्ड-अष्टम और प्रेम-प्रकरण

आज से छियालिस वर्ष पूर्व इंगलैंड के सम्राट एडवर्ड अष्टम ने अपनी प्रेमिका श्रीमती वेलिस वारफील्ड स्पेंसर सैम्प्सन की खातिर ब्रितानिया के तख्तो-ताज को ठुकरा दिया था। उनके इस अपूर्व त्याग को देखते हुए असंख्य लोगों ने एक स्वर से उन्हें बीसवीं सदी का मजनूं, फरहाद, रांझा और रोमियो का खिताब दिया। इस अनोखे प्रेमी की आम कहानी कुछ इस प्रकार है। युवराज एडवर्ड अलबर्ट क्रिश्चियन जार्ज एंड्र पैट्रिक डेविड ने अपने कौमार्य के चालीस वसंत व्यतीत कर दिये। इस बीच वे न जाने कितनी ही राजकुमारियों और दूसरी ललनाओं के दिलों की धड़कनों में बसे रहे, लेकिन उन्होंने किसी के भी मुहब्बत के नजराने को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने दिल दिया तो अपने से उम्र में काफी बड़ी तथा शादीशुदा अमरीकी महिला श्रीमती सैम्प्सन को। श्रीमती सैम्प्सन के रूप के चितेरे एडवर्ड इस कदर उसके प्रेम में खोये, कि उन्हें न तो अपनी मान-मर्यादा की ही चिंता रही, न ही इंगलैंड के भावी सम्राट के रूप में अपने उत्तरदायित्वों की। इसी बीच २० जनवरी, १९३६ को ब्रिटेन के तत्कालीन सम्राट जार्ज पंचम की मृत्यु हो गयी। अगले दिन एडवर्ड को इंगलैंड का सम्राट घोषित कर दिया गया। उनके विधिवत राज्याभिषेक की तैयारियां शुरू हो गयीं। तभी जनता को उनकी रासलीला की खबर लग गयी। सारे साम्राज्य में तहलका मच गया। प्रजा सैम्प्सन को अपनी साम्राज्ञी मानने को तैयार नहीं थी। मान्य परंपरा के अनुसार सम्राट की शादी किसी राजकुमारी से ही हो सकती थी, परंतु एडवर्ड अपने निर्णय पर अटल थे। देश के समक्ष एक जबर्दस्त संवैधानिक संकट उपस्थित हो गया। विकल्प दो ही थे: या तो एडवर्ड गद्दी पर बैठे या अपनी प्रेमिका से ब्याह रचायें। उन्होंने दूसरा विकल्प चुना। अपनी प्रजा से विदा लेते हुए ११ दिसंबर १९३६ को प्रसारित रेडियो संदेश में उन्होंने जिस भर्रायी आवाज में अपनी बात कही, उससे अनेक लोगों की आंखें नम हो गयीं। उन्होंने कहा : "आज मैं राजपाठ से पूर्णरूपेण निवृत्त हो रहा हूं। अब मुझ पर किसी प्रकार का बोझ नहीं है।" राज-

त्याग के लगभग छः महीने बाद ३ जून, १९३७ को उन्होंने श्रीमती सैम्प्सन से शादी कर ली। उनका छोटा भाई ब्रिटेन का सम्राट बना तथा उसने एडवर्ड को 'ड्यूक ऑव विंडसर' का मानद ओहदा प्रदान किया।

**गलतियों के कारण राजपाठ का त्याग**

स्पष्टतया इस सर्वविदित इतिवृत्त से एडवर्ड अष्टम की जो छवि हमारे सामने उभरती है, वह एक उदात्त चरित्र-नायक

**सर्वविदित यही है कि जार्ज अष्टम को एक प्रेम-प्रकरण के कारण इंगलैंड की राजगद्दी का उत्तराधिकार त्यागना पड़ा था, लेकिन क्या सचाई यही है? सचाई यह है कि एडवर्ड के हिटलर से गुप्त संबंध थे और वे हिटलर को आर्थिक मदद भी दिया करते थे। इससे ग्रेट ब्रिटेन की सारी सत्ता के हिलने का भय था, आखिर उन्होंने हिटलर से दोस्ती क्यों की?**

तथा आदर्श प्रेमी की है। लेकिन इधर कई लेखकों, इतिहासकारों तथा जीवनीकारों ने उनकी इस प्रतिमा को खंडित करनेवाले तथ्यों को प्रकाश में लाया है। लेखक द्वय चार्ल्स जे. बी. मर्फी और जोसेफ ब्रायन तृतीय ने सद्यः प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द विंडसर स्टोरी' (विंडसर की कहानी) में बताया है कि एडवर्ड अष्टम को प्रेम की उदात्त भावनाओं की वजह से नहीं, बल्कि अपनी गलतियों के कारण विवश होकर राजगद्दी छोड़नी पड़ी थी।

राजमाता साम्राज्ञी मेरी ने देश की संवैधानिक परंपराओं तथा चर्च और प्रजा की भावनाओं की कद्र करते हुए अपने लाड़ले की प्रेमिका से मिलना तक अस्वीकार कर दिया। युवराज द्वारा कारण पूछने पर उन्होंने दो टूक उत्तर दिया, "मैं उस कुलटा से मिलना नहीं चाहती।" वर्तमान वैधानिक व्यवस्थाओं के अंतर्गत युवराज की शादी किसी गैर राजवंशीय लड़की से नहीं हो सकती थी, बात इतनी ही नहीं थी। श्रीमती सैम्प्सन को अपने वर्तमान पति से अभी तक विधिवत तलाक भी नहीं मिला था। युवराज एडवर्ड को आशा थी कि राज्याभिषेक होने तक उसे तलाक मिल जाएगा और वे किसी न किसी प्रकार से अपनी मां, सरकार तथा प्रजा को अपनी प्रेमिका को पत्नी बनाने की इजाजत देने के लिए राजी कर लेंगे। लेकिन ताजपोशी के ऐन मौके तक श्रीमती

सैम्प्सन को तलाक नहीं मिल सका। तब युवराज को लाचार होकर गद्दी छोड़नी पड़ी। अपनी मृत्यु से कुछ पूर्व उनके पिता की यह भविष्यवाणी ग्यारह महीनों में सच साबित हो गयी कि 'हमारा यह लंपट पुत्र अपने को एक वर्ष में पूरी तरह से बर्बाद कर लेगा।'

**दुर्बल चरित्र**

उक्त लेखकों के मतानुसार युवराज एडवर्ड को सब तरह से विवश होकर राज्यत्याग करना पड़ा। यहां यह बात बता देनी भी आवश्यक है कि उक्त दोनों लेखकों ने एडवर्ड को काफी नजदीक से देखा-सुना है। चार्ल्स मर्फी ने एडवर्ड के अनुरोध पर गुमनाम रहकर उनकी आत्मकथा लिखी थी तथा ब्रायन तृतीय ने एक जल-सेना अधिकारी के रूप में एडवर्ड के साथ काम किया था। अतएव उनके द्वारा अपनी पुस्तक में वर्णित विषय-वस्तु को हम कपोल-कल्पित व बेबुनियाद नहीं मान सकते। उन्होंने एडवर्ड के भावुकतापूर्ण रेडियो-संदेश को सुनकर बहुत से श्रोताओं को तिरस्कार से नाक-भौं सिकोड़ते देखा था। एडवर्ड के चरित्र की कमजोरियों को उजागर करनेवाली बाद की कई घटनाओं का भी अपनी पुस्तक में उन्होंने जिक्र किया है। मसलन यद्यपि एडवर्ड ने लाचार होकर राजपाट छोड़ा था, परंतु उनके मन से राज्य-सुख की लिप्सा मरते दम तक नहीं गयी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान एडवर्ड पेरिस के समीप एक युद्ध मोर्चे पर तैनात थे। जब जर्मन फौज पेरिस पर धावा बोलने को हुई, तो वे चुपचाप मोर्चे से खिसक गये और स्पेन जा पहुंचे। वहां पर उन्होंने गुप्त रूप से हिटलर से संपर्क स्थापित किया।

हिटलर ने उन्हें लालच दिया कि यदि उन्होंने जरमनी के लिए काम किया तो जरमनी की विजय के बाद उन्हें इंग्लैंड का राजा तथा उनकी पत्नी को इंग्लैंड की महारानी घोषित कर दिया जाएगा। एडवर्ड स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने देश तथा मित्र राष्ट्रों के साथ गद्दारी करने के लिये राजी हो गये। परंतु चर्चिल को इस षड्यंत्र की भनक लग गयी। उन्होंने एडवर्ड को रण-स्थल से हटाकर बहामा द्वीप का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। युद्ध-समाप्ति के बाद एडवर्ड सपत्नीक बहामा के 'नारकीय दड़बे' से निकल भागे। उन्होंने तत्कालीन सरकार से अपने को अमरीका में इंग्लैंड का राजदूत नियुक्त किये जाने का अनुरोध किया। लेकिन उनकी एक न सुनी गयी। तब वे अपनी पत्नी के साथ सामान्य नागरिक का जीवन व्यतीत करने लगे।

**नीतियां एक बहुत बड़ा कारण**

उक्त लेखकों के अलावा जेम्स पोल एवं सुजेन नामक दो अमरीकी इतिहासकारों ने भी अपनी खोजभरी नयी पुस्तक 'हू फिनांस्ड हिटलर' (हिटलर को धन किसने दिया) में एडवर्ड अष्टम द्वारा राज्यत्याग

की परिस्थितियों की विशद् एवं सुविचारित विवेचना की है। उनका विचार है कि उन्हें अपनी प्रेमिका के लिए नहीं, वरन अपनी नीतियों और अपने दृष्टिकोण की वजह से ब्रिटेन की राजगद्दी से वंचित होना पड़ा था। शुरू से ही उनका झुकाव जरमनी की ओर था तथा वे दिल से नात्सी विचारधारा का पक्षधर थे। सरकार को एडवर्ड की कारगुजारियों का पता चल गया। फलतः सरकार ने सैम्पसन कांड को मात्र एक निमित्त बनाकर उन्हें राज्यच्युत कर दिया। इन दोनों इतिहासवेत्ताओं ने अपने कथन के प्रमाण-स्वरूप कई जरमन तथा ब्रिटिश स्रोतों से प्राप्त सामग्री सामने रखी है। उन्होंने नात्सी विदेश मंत्री तथा इंगलैंड में जरमनी के भूतपूर्व राजदूत वान रिबेनट्रोप द्वारा २, जनवरी १९३८ को हिटलर को प्रेषित एक ज्ञापन-पत्र को भी उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया था, "यह माना जा रहा है कि राष्ट्रीय समाजवाद के जरिये सब कुछ संभव है। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री बाल्डबिन को पहले ही शंका हो गयी थी कि अपनी विचारधारा के कारण एडवर्ड अष्टम जरमनी-विरोधी नीतियों का पूरा-पूरा समर्थन नहीं करेंगे। परिणाम-स्वरूप उन्हें राज्याधिकार से वंचित होना पड़ा।"

इसी भांति लंदन से प्रकाशित होनेवाले अंगरेजी दैनिक 'संडे टाइम्स' ने अभी कुछ ही दिन पूर्व दावा किया था कि एडवर्ड अष्टम ने राष्ट्रहित के खिलाफ हिटलर के साथ संपर्क स्थापित किया था। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरंत बाद महारानी एलिजाबेथ द्वितीय के पिता एडवर्ड षष्टम् ने अंटोनी ब्लंट नाम एक कला-इतिहासज्ञ को गुप्त रूप से जरमनी भेजा था। उसके मिशन का लक्ष्य जरमनी से उन सनसनीखेज मूल दस्तावेजों को उड़ा लेना था, जिनसे एडवर्ड अष्टम् और हिटलर के बीच के संबंधों का पर्दाफाश हो सकता था तथा ब्रिटिश राजघराने की इज्जत पर आंच आ सकती थी। इस बात की पुष्टि हेस के राजकुमार फिलिप ने भी की है। ज्ञातव्य है कि राजकुमार फिलिप इंगलैंड के राजघराने के रिश्तेदार हैं।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम यह सहज निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि एडवर्ड अष्टम् को महज अपनी प्रेमिका के लिए नहीं, अपितु अपनी विचारधारा तथा देश-विरोधी गतिविधियों की वजह से ब्रिटेन की गद्दी पर आसीन होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

**—८४६, बाबा खड़कसिंह मार्ग,**
**नयी दिल्ली-११०००१**

**एक कॉलेज के नोटिस-बोर्ड पर लगा एक नोटिस : 'हमारी मांग है कि हमारे साथ पढ़नेवाली लड़कियां 'ना' बिलकुल न कहें। यदि हमारी यह मांग पूरी न हुई, तो हम आंदोलन करेंगे।'**

# तनाव से मुक्ति

• डॉ. सतीश मलि[illegible]

## नींद से घिरी रहती हूं

**क. ख. ग., साहनेबाल : मैं १७ वर्षीय बी.ए. की छात्रा हूं। रात को-जैसे ही पढ़ने बैठती हूं—वैसे ही नींद से आंखें बोझिल हो जाती हैं। जितनी मैं इन दिनों में मेहनत करने की सोच रही हूं, उतनी ही अधिक नींद आ दबोचती है। साथ ही हर समय जुकाम रहने लगा है। कृपया कोई समाधान लिखें।**

चिंताग्रस्त मनःस्थिति में कई बार नींद कम आती है। आपकी चिंता परीक्षा को लेकर है। प्रारंभ में नियमित रूप से न पढ़ना, सारी मेहनत परीक्षा के समय के लिए छोड़ देना आदि कुछ कारण हैं। यदि बहुत सारा पाठ्यक्रम अध्ययन के लिए छूटा हो, या क्षमता से अधिक नंबर लाने की होड़ भी तनाव का कारण है। और इन सब प्रक्रियाओं से नींद अधिक आ सकती है। कारणों की खोज कीजिए। उसी का समाधान ही इस समस्या का सही निराकरण है।

## ये कमबख्त शब्द

**म. क., सीधीः मैं २० वर्षीय युवक हूं, परेशानी यह है कि बहुत बोलता हूं। सामनेवाले को महसूस होने लगता है, कई बार टोक भी दिया जाता हूं। नियंत्रण के बावजूद, कमबख्त शब्द मुंह से बाहर निकल ही जाते हैं। सोचते-सोचते तनाव-सा हो जाता है, क्या करूं?**

मनोविज्ञान की दृष्टि से हमें अच्छा श्रोता होना चाहिए। साथ ही यदि बोलना चाहें, तो पहले दूसरों की रुचि व दृष्टिकोण को परखें और उसके अनुकूल बोलें ताकि आप उनमें उत्सुकता पैदा कर सकें। इससे वार्तालाप आगे भी होगा और वाद-विवाद भी संभव होगा। साथ ही बोलने की क्षमता को आप सामाजिक उपयोगिता व उत्पादन के तौर पर लें। एक अच्छे वक्ता की शिक्षण व राजनीतिक जीवन में बहुत आवश्यकता होती है।

## मस्तिष्क में खराबी

**क. ख. ग., बनारस : मेरी आयु २४ वर्ष है। पिछले तीन वर्षों से शरीर के बांयी ओर का आधा भाग सामान्य से भिन्न प्रतीत होता है। शारीरिक प्रक्रियाएं सामान्य से कम हैं। कभी-कभी वस्तुएं बहुत दूर-सी दिखायी देती हैं, परंतु यह कुछ समय पश्चात सही हो जाता है।**

कभी-कभी सीधी ओर का शरीर दायीं तरफ झुका व 'पीछे' महसूस होता है और गिरने-जैसी अनुभूति होती है। सिर का एक्स-रे व आंख-जांच सही हैं। कृपया कोई समाधान लिखें—

दिमाग के ये दोनों लक्षण 'टेंपॉरल लॉब्स' (Temporal lobs) व 'पेरिटियल लॉब्स' (Parietial lobs) से संबंधित हैं। स्नायुरोग विशेषज्ञ द्वारा जांच तथा 'ई. ई. जी.' कराना आवश्यक है। तुरंत जांच कराने पर सही उपचार संभव हो सकेगा।

## भावनात्मक संबंध कैसा

**वीरेन्द्रकुमार सिन्हा, समस्तीपुर :** ३०-वर्षीय सरकारी नौकर हूं, साथ ही 'ट्यूशन' भी करता हूं। मेरा अपनी शिष्या से लगाव हुआ, परंतु जाति अलग होने के कारण यह संबंध विवाह में नहीं बदल सका। उसके विवाह में मैं सम्मिलित भी हुआ और शादी में भी व्यवस्था के कार्य में शरीक हुआ। अब उसके पति को पता चल चुका है, वह जहां एक ओर घबरा गयी, दूसरी ओर अभी भी मुझसे आकर्षण बनाये हुए है। मेरी मदद के सिवा पढ़ना नहीं चाहती। जीव-विज्ञान की स्नातिका है। मां बननेवाली है। मैं क्या करूं?

मेरे विचार से अपने आपको उससे दूर ही रखना चाहिए। आपकी किसी प्रकार की मदद उसके दांपत्य जीवन में बाधक हो सकती है। अपने प्रति आकर्षण का नाजायज फायदा उठाने की बहुत सारे पुरुषों में ललक होती है। इस प्रवृति को कठोरता से रोकना चाहिए। आप अपना हृदय टटोलें—कहीं आपके मन में भी कोई चोर तो नहीं छिपा बैठा है।

**इस स्तंभ के अंतर्गत अपनी समस्याएं भेजते समय अपने व्यक्तिगत जीवन का पूरा परिचय, आयु, पद, आय एवं पते का उल्लेख कृपया अवश्य करें।**

## मां-बाप के प्यार से वंचित

**मदनकुमार, चंडीगढ़ :** हम नौ भाई-बहन हैं। पिता का प्यार क्या? ध्यान भी न मिला। अच्छा विद्यार्थी था। जब भी मुझे शादी-ब्याह में जाने को कहा जाता, तब मैं यह कहकर मना कर देता, कि मेरे कपड़े गंदे हैं। मन में सोचता वहां जाकर क्या करूंगा, किससे बात करूंगा। न जाने पर मार भी खाता। मित्रगण दो या तीन थे। एक बार कान खजूरा दूकान पर निकला, तब से सांप व ऐसे जीव-जंतुओं से डरता हूं। बी. एड. में लड़कियों के साथ पढ़ता था, परंतु झेंप के कारण बात करने की इच्छा के बावजूद बात कभी नहीं की। दरवाजे पर यदि लड़की देखी तो कमरे से बाहर न आता। मन करता है अब नौकरी छोड़कर बंबई भाग लूं। एकाकीपन बहुत खलता है। न कहीं आता-जाता हूं और न कोई दोस्त है।

आपकी समस्याओं का आरंभ बचपन से हुआ। पिता का प्यार बहुत बच्चों की वजह से भी न मिल पाया हो, ऐसा भी संभव है। आपकी सारी समस्याओं का हल है, सामाजिक होना। मित्रगण बनाना। लड़कियों, बड़ों से, जिनसे भी झेंप हो उनसे मेल-जोल रखना। यदि आप ठान लेंगे, तब ही इसका हल संभव है। बंबई तो समस्या से भाग खड़े होने की इच्छा का ही द्योतक है।

## नशा कैसे छोड़ें

**किशन जोशी, हावड़ा : आयु ३६ साल है। कारखाने में मशीन चलाने का काम करता हूं। अफीम, भांग आदि खाता हूं। छोड़ने की चेष्टा की, परंतु असफल रहा। रोज सेवन न करने से दिमाग काम नहीं करता। कृपया नशा छोड़ने का तरीका बतायें।**

**म. प्र., सिंगोली : मेरे पिता अफीम खाते थे। उनके लिए इधर-उधर से खरीदकर लाता था—मिलावट तो नहीं है, यह देखने के लिए मुंह में डालकर चख ही लेता था। पिता तो स्वर्गवासी हो गये परंतु मुझे १०० ग्राम से अधिक मात्रा खानी पड़ती है। लोग कहते हैं—छोड़ोगे तो मर जाओगे। छोड़ने का कोई तरीका बतायें।**

अफीम व भांग का नशा सच में शरीर, दिमाग आदि के लिए बुरा है। इसे छोड़ने के लिए कड़े मनोबल व प्रबल इच्छा की आवश्यकता है। आप अपने घर में बैठे इसे नहीं छोड़ सकते। ऐसा करने से कई बार जीवन को खतरा हो सकता है। यह नशा खत्म करनेवाली यूनिट में दाखिल होकर ही छुड़ाया जा सकता है। इसका प्रबंध दिल्ली में जी. बी. पंत अस्पताल व अखिल भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा संस्थान में हुआ है। कलकत्ता में या मध्यप्रदेश के किसी मेडिकल कॉलेज के मनोचिकित्सा विभाग में ऐसी यूनिट है या नहीं पता लगा लें।

यदि छोड़ना चाहते हैं तो मन को पहले अच्छी तरह टटोल लें।

---

## घरेलू-उपचार

### लू लगना

ग्रीष्म ऋतु में तेज गर्म हवा का प्रभाव शरीर पर हो जाने की स्थिति में निम्नलिखित उपाय करने से लाभ होता है—

१. बर्फ को आहिस्ता-आहिस्ता चूसते रहें।

२. प्याज का रस चौथाई प्याला पीना चाहिए।

३. २५ ग्राम धनिया एक गिलास पानी में भिगा दें। कुछ समय पश्चात उसे छानकर यथारुचि चीनी डालकर पीयें।

४. पकी हुई इमली के गूदे को हाथ-पैर के तलवों पर भली प्रकार मलें।

५. कच्चे आम को आग में पकाकर, उसका रस निचोड़कर, शर्बत बनाकर पीना चाहिए तथा पैर और हाथ के तलवे पर भी मालिश करनी चाहिए।

—कविराज वेदव्रत शर्मा

# गोष्ठी

**सूर्यकुमार पांडेय 'रश्मि', जौनपुर : भाषाओं के संदर्भ में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के साथ 'देशी भाषा' या 'भाषा' ('भाखा' भी) का उल्लेख पाया जाता है। यह कौन-सी भाषा है? उदाहरण देकर स्पष्ट करें तो उत्तम हो।**

आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में उन शब्दों को देशी कहा है, जो संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव रूपों से भिन्न हों। रुद्रट और हेमचंद्र-जैसे आचार्यों ने भी यही मत व्यक्त किया है, कि ये ऐसे-शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति किसी संस्कृत धातु अथवा शब्द से व्याकरण के नियमों के अनुसार नहीं होती। वास्तव में ये देशी शब्द जन-भाषा के प्रचलित शब्द थे। जन-भाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती। यह आम बोलचाल की भाषा होती है और ऐसी भाषा को प्राचीन काल से ही 'देशी भाषा' या 'भाषा' कहा जाता रहा है। पाणिनि के समय में संस्कृत बोल-चाल की भाषा थी। अतः पाणिनि ने संस्कृत को भाषा कहा। पतंजलि के समय तक संस्कृत केवल शिष्ट-समाज के व्यवहार की भाषा रह गयी और प्राकृत बोलचाल की भाषा बन गयी। अतः उस समय प्राकृत को भाषा कहा गया। प्राकृत के बाद जब अपभ्रंश जनभाषा बनी, तब वह भी भाषा या देशी भाषा कहलाने लगी। अपभ्रंश के कवियों ने अपनी भाषा को देशी कहा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' की भाषा को अवधी न कहकर 'भाखा' कहा है। मराठी संत ज्ञानेश्वर नें भी गीता की अपनी मराठी टीका 'ज्ञानेश्वरी' की भाषा को मराठी न लिख-कर 'देशी' लिखा है। अतः 'देशी भाषा' जनभाषा का ही नाम है। जिस काल में जो भाषा आम बोलचाल की भाषा रही है, वही देशी कहलाती रही है।

**सुबोधसिंह पवार एवं चिंता पवार, बेरमो (बिहार) : छोटे बच्चों को झूला झुलाने के लिए (जो छोटे पैरों के कारण उस पर बैठकर अपने आप नहीं झूल सकते) झूले को काफी ऊपर ले जाकर छोड़ देते हैं। इसमें काफी ताकत लगानी पड़ती है, जबकि बाद में हलके-से धक्के से ही काम चल जाता है। बच्चे का भार उतना ही रहने पर भी बाद में ताकत कम क्यों लगती है?**

सच पूछें, तो झूले को बहुत ऊपर ले जाने की आवश्यकता ही नहीं है। आप उसे हलका-सा धक्का देकर दोलायमान

करके अनुनाद (रेजोनेंस) में ले आइए, वह बिना अधिक ताकत लगाये ही कुछ समय बाद जोर से झूलने लगेगा। वैज्ञानिक भाषा में कहें तो किसी पिंड को झुलाने के लिए उसके दोलन के चरण में उस पर प्रभाव डालना चाहिए अथवा पिंड के स्वाभाविक दोलन के आवर्तकाल के बराबर आवर्तकाल से पिंड को धकेलना चाहिए। इस प्रक्रिया में झूला झूलते बच्चे का भार उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता, जितना कि झूले की स्थितिज और गतिज ऊर्जाओं का। भौतिकी में स्थाई संतुलन-स्थिति के आसपास होनेवाली गति को दोलन कहते हैं। झूला जब किसी चरम स्थिति पर होता है, तब उसका वेग और गतिज ऊर्जा शून्य के बराबर होते हैं। इस स्थिति में स्थितिज ऊर्जा अधिकतम होती है। झूला नीचे की ओर आता है, तब स्थितिज ऊर्जा कम होने लगती है और वह गतिज ऊर्जा में परिवर्तित होने लगती है, जिससे उसका वेग बढ़ता जाता है। सबसे नीचे के बिंदु पर पहुंचने पर उसकी गतिज ऊर्जा और वेग अधिकतम होते हैं। उसके बाद झूला फिर ऊपर उठना शुरू करता है, उसका वेग कम होने लगता है और स्थितिज ऊर्जा फिर बढ़ने लगती है। बच्चे को झूला झुलाना दरअसल स्थितिज ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करना है और इस नियम को जान लेने पर आप यह समझ सकते हैं, कि स्थिर झूले को ऊपर उठा ले जाने में बल का प्रयोग अधिक और उसमें दोलन तथा अनुनाद उत्पन्न हो जाने पर बल का प्रयोग कम क्यों होता है।

**नरेशचंद्र गोस्वामी, मुजफ्फरपुर: 'आजीवक संप्रदाय' क्या था और उसकी क्या मान्यताएं थीं?**

'आजीवक संप्रदाय' ब्राह्मणवाद, पुरोहित वर्ग और उसके सिद्धांतों तथा कर्मकांडों का विरोधी संप्रदाय था। इसके संस्थापक मखलि गोसाल बुद्ध और महावीर के समकालीन थे। गोसाल की शिक्षाएं संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय, दीघ निकाय तथा बौद्ध और जैन ग्रंथों में मौजूद हैं। आजीवक मतावलंबी पुरोहितों के कर्मकांडों का पूरी दृढ़ता से विरोध करते थे और आत्मा के आवागमन के सिद्धांत का मजाक उड़ाते थे। उनकी मान्यता थी, कि इस समस्त ब्रह्मांड का आधार ब्रह्म नहीं, बल्कि चार भौतिक तत्त्व जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि हैं। संसार में जो कुछ होता है वह कर्म द्वारा नहीं, बल्कि नियति द्वारा होता है। कहते हैं कि मखलि गोसाल ने राजा अजातशत्रु से कहा था, 'तमाम कशेरुकदंडी, पशु, जिनमें एक या अधिक संवेदनाएं होती हैं, तमाम अंडों अथवा डिंब-ग्रंथियों से उत्पन्न जीव, वनस्पतियां आदि अपने भिन्न-भिन्न स्वभावों के कारण विविध रूपों में परिवर्तित होते हैं।'

**गौतम कुमार 'वसु', डाल्टनगंज: प्रोटीन की 'पेप्टाइड शृंखला' क्या है?**

पेप्टाइड प्रोटीन की मूल इकाई को कहते हैं। एक ऐमिनो एसिड का ऐमिनो समूह, पासवाले ऐमिनो एसिड के कार्बोक्सिलिक समूह से लग जाता है और जल का एक अणु बाहर निकल आता है, तब जो रासायनिक समूह बनता है उसे, पेप्टाइड कहते हैं। इस प्रकार पेप्टाइड की एक शृंखला में नाइट्रोजन का एक परमाणु हाइड्रोजन से जुड़ा रहता है (ऐमिनो समूह) जो फिर कार्बन से लगा रहता है और कार्बन, ऑक्सीजन से। इस पेप्टाइड शृंखला के विद्युतीय गुण बड़े महत्त्व के हैं, क्योंकि नाइट्रोजन और हाइड्रोजन में तो घन विद्युत रहती है, जबकि दूसरे सिरे पर लगी ऑक्सीजन और कार्बन को हम इस विद्युत शृंखला का ऋण सिरा मान सकते हैं। इस तरह यह ऋण विद्युतीय सिरा दूसरी पेप्टाइड शृंखला के हाइड्रोजन-नाइट्रोजनवाले धन विद्युतीय सिरे को अपनी ओर खींचता है और एक पेप्टाइड से दूसरा, दूसरे से तीसरे, इस तरह बहुत-से पेप्टाइडों के जुड़ने से यह शृंखला कितनी ही लंबी हो सकती है। जब कोई पेप्टाइड शृंखला खुली होती है, तब इसका मतलब यह है कि इस रासायनिक सांकल के एक सिरे पर एक मुक्त ऐमिनो समूह है और दूसरे सिरे पर एक मुक्त कार्बोक्सिल समूह है और दोनों के बीच में एक ऐमिनो एसिड है जो पेप्टाइड की कड़ी से जुड़ा रहता है।

**शाह संतोषी, भोपाल : निर्वात (वैक्यूम) पैदा करनेवाले 'पारद पंप' की कार्यविधि क्या है?**

**एक व्यक्ति अपने डाक्टर मित्र से : मुझे खुशी है कि मैंने अनिद्रा पर तुम्हारे भाषण को सुना।**

**डाक्टर : क्या सचमुच तुम्हें भाषण दिलचस्प लगा?**

**व्यक्ति : वह बात नहीं। पर भाषण सुनकर मेरी बीमारी दूर हो गयी।**

पारद पंप (यह अपने आविष्कारक के नाम पर 'लैंग्यूर पंप' भी कहलाता है) में एक छोटा-सा शीशे का पाराधारी बरतन एक प्रारंभिक निर्वात पंप के साथ उस जगह से जुड़ा रहता है, जिसमें निर्वात पैदा करना होता है। पारे को गरम किया जाता है और प्रारंभिक निर्वात पंप पारद वाष्पों को बाहर निकालता है। रास्ते में पारदवाष्प गैस के अणुओं को साथ लेकर उन्हें प्रारंभिक निर्वात पंप तक ले जाते हैं। पारे के परमाणु, द्रव में परिवर्तित हो जाते हैं। उन्हें प्रवाही जल से ठंडा किया जाता है और पारा फिर उस बरतन में गिरता है, जहां से उसने अपनी यात्रा शुरू की थी।

## चलते चलते एक प्रश्न और ...

**नईम अहमद, लखनऊ : प्रेमियों के पारस्परिक आकर्षण में कौन-सा वैज्ञानिक नियम काम करता है?**

मनुष्य, नामक सामाजिक प्राणी के पुनरुत्पादन का नियम। —बिंदु भास्कर
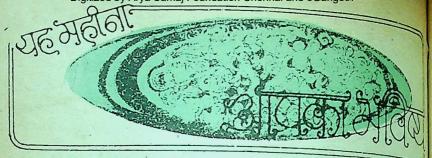
● प्रो के. ए. दुबे 'पद्मेश'

**ग्रह स्थिति : राहु मिथुन में, मंगल, शनि कन्या में वक्री, गुरु तुला में वक्री, केतु धनु में, बुध वृष में। १४ अप्रैल से सूर्य वृष में। १२ अप्रैल से मंगल मार्गी, २१ से बुध वक्री। २५ अप्रैल से शुक्र मेष में।**

**मेष (चु, चे, चो, ल, ली, लू, लो, अ)**

२ से १० तथा १२ से २० मई के मध्य रुके हुए कार्य संपन्न होंगे। बनायी गयी योजना को कार्यरूप में परिणत करें, सफलता मिलेगी। स्थानांतरण, मकान परिवर्तन आदि के प्रयास में भी सफलता मिलेगी। भ्रमण, यात्रा का भी सुखद योग है। यात्रा में सामान के प्रति सतर्कता आवश्यक है। आर्थिक रूप से बनायी गयी योजना सफल हो सकती है। प्रसन्नता व शांति की अनुभूति होगी। धार्मिक प्रवृत्ति में वृद्धि होगी। पत्नी के स्वास्थ्य के प्रति भी सतर्क रहें। शिक्षा, प्रतियोगी या विभागीय परीक्षा में आशातीत सफलता मिलेगी। संतान की प्रगति की दिशा में शिक्षा, नौकरी, विवाह आदि के संबंध में किये जा रहे प्रयास सफल होंगे। स्वास्थ्य एवं दुर्घटना के प्रति सावधानी आवश्यक है।

**वृष (ई, उ, ए, ओ, ब, बी, बू, बो)**

१५ से २४ मई के मध्य का समय श्रेष्ठ सफलतादायक होगा। आत्मविश्वास में वृद्धि के कार्य के प्रति लगन व उत्साह में वृद्धि होगी। नवीन मित्र या सहयोगी के सहयोग से रुका हुआ कार्य संपन्न होगा। पुत्री के विवाह के संबंध में किये जा रहे प्रयास सफल होंगे। सुख के साधनों में वृद्धि होगी। प्रियजन-मिलन, मानसिक सुख-शांति का समय कहा जा सकता है। १४ मई तक स्वास्थ्य, दुर्घटना, व्यवसाय, एवं प्रतिष्ठा के प्रति सतर्कता आवश्यक है। विवाद में न पड़ें। सुख के साधनों में व्यवधान न उत्पन्न होने दें। मानसिक सुख-शांति को कायम रखें। १४ तक तथा २५ से ३१ मई का समय सतर्कता एवं संयम का है।

मिथुन (क, की, कू, के, को, घ, छ, ह)

१ से १३ मई का समय किये गये प्रयासों में सफलता देगा। किसी महिला-अधिकारी, नेता या सहयोगी से सहयोग मिलेगा। संपर्क से रुका हुआ कार्य भी हो सकता है। धन, प्रतिष्ठा, पद के संबंध में भी लाभ उठा सकते हैं। संतान की उन्नति विवाह, नौकरी, शिक्षा आदि के संबंध में किये जा रहे प्रयास सफल होंगे। रचनात्मक कार्य, लेखन व शोध-कार्य की दिशा में भी सफलता मिलेगी। नारी सुख की पूरी संभावना है। १४ मई से स्वास्थ्य, पद, प्रतिष्ठा के मामले में ध्यान रखें। व्यवधान न उत्पन्न होने दें। यात्रा करते समय सामान व दुर्घटना के प्रति भी सतर्क रहें। खाने-पीने में संयम लाभ-प्रद होगा।

कर्क (ही, हू, हे, ड, डी, डू, डे, डो)

१ से १० तथा २५ से २९ मई के मध्य पद, प्रतिष्ठा व धन के संबंध में चल रहे प्रयास में सफलता मिलेगी। लेखन-राजनीति, शोधकार्य, शिक्षा आदि की

## पर्व एवं त्योहार

१ मई : जानकी जयंती, मई दिवस, ३ : मोहिनी एकादशी व्रत, ५ : प्रदोष व्रत, ६ : नृसिंह जयंती, ७ : पूर्णिमा, ११ : गणेश चतुर्थी, १६ : शीतलाष्टमी, १९ : अचला एकादशी व्रत, २१ : प्रदोष, २२ : वट सावित्री व्रत एवं अमावस्या, २६ : गणेश-चतुर्थी, २८-विंध्यवासिनी पूजा, ३० : धूमावती जयंती।

**राशियां और प्रभाव :** गुरु, मंगल, शनि ग्रह के वक्री होने के कारण, अग्निभय, दुर्घटना अपराध एवं अराजकता में वृद्धि होने की संभावना है। किसी भी राशि के व्यक्ति शिकार हो सकते हैं। वृष, कन्या, वृश्चिक, मीन राशि के व्यक्तियों को विशेष सावधानी रखनी चाहिए। स्वास्थ्य, परिवार एवं व्यवसाय में आर्थिक परेशानियां आ सकती हैं। आकस्मिक दुर्घटना के शिकार भी हो सकते हैं। खाने-पीने में संयम अधिक रखें। हर संभव दुर्घटना से बचने का प्रयास करें। देश को भी अराजकता, अग्नि एवं सूखा के कारण हानि उठानी पड़ेगी। भीषण गरमी से बीमारी का भय भी हो सकता है।

**शांति कैसे करें**

ह्रीं धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्कान्ति समप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मंगलं प्रणमाम्यहम्॥

मंगल-यंत्र या मंगल देवता के चित्र के सामने अगरबत्ती जलाकर १०८ बार मंत्र का जाप करें। सभी राशियों के व्यक्तियों को लाभ मिल सकता है।

दिशा में उठाये गये कदम सफल होंगे। उच्च अधिकारी, राजनेता या पिता आपकी उन्नति में विशेष सहयोगी हो सकते हैं। उनका सहयोग मिलेगा, लेकिन आप किस सीमा तक उसका उपयोग कर सकते हैं, यह आपकी योग्यता पर निर्भर करता है। धन, पद, प्रतिष्ठा के क्षेत्र में विशेष सफलता अर्जित कर सकते हैं। व्यावसायिक साथियों, भाइयों आदि के विवाद में न पड़ें। षडयंत्र एवं दुर्घटना से बचने का प्रयास करें।

सिंह (म, मी, मू, मे, मो, ट, टी, टू, टे)

१ से १२ व २५ से ३१ तक का समय ऐसा होगा, जब आपको कीर्ति, धन, प्रतिष्ठा के क्षेत्र में सफलता मिलेगी। प्रयासों में गति दें, उद्देश्य से विचलित न हों, तभी उसका पूरा लाभ मिल सकता है। यात्रा भी करनी पड़ सकती है। विदेश-यात्रा का प्रयास सफल हो सकता है। आर्थिक, संपत्ति, (जमीन, मकान) आदि के संबंध में चल रहे प्रयास सफल होंगे। किसी बुद्धिजीवी व्यक्ति का संपर्क लाभ भी मिल सकता है। महिला-मित्र, बहन के विवाद एवं झगड़े में न पड़ें। प्रेम-प्रसंग पर भी संयम लाभप्रद होगा। राजनीतिक प्रयास सफल होंगे। स्वास्थ्य एवं पारिवारिक रिश्तों के मामलों पर विशेष सतर्कता रखें।

**कन्या (टो, प, पी, पू, ष, पो, ढ़)**

१४ से २५ मई के मध्य का समय महीने का श्रेष्ठ काल होगा। बनायी गयी योजना को कार्यरूप में परिणत करने से सफलता मिलेगी। प्रतिष्ठा, पद, रोटी-रोजी के साधनों में वृद्धि भी संभव है। बेरोजगार व्यक्तियों को अपनी शक्ति रोजगार प्राप्त करने में केंद्रित करनी चाहिए। सफलता मिल सकती है। पत्नी के स्वास्थ्य, नौकरी, पद, स्थानांतरण आदि की दिशा में किये जा रहे प्रयास सफल होंगे। मांगलिक कार्य में भी सफलता मिल सकती है। प्रथम व अंतिम सप्ताह में व्यवसाय, परिवार एवं स्वास्थ्य के मामले में परेशानियां न उत्पन्न होने दें। विवाद, झगड़े और दुर्घटना से बचें।

**तुला (र, रा, रू, रे, रो, त, ता, तू, ते)**

१ से १३ मई के मध्य रोजी-रोटी के साधन में वृद्धि के प्रयास सफल होंगे। नये व्यवसाय, नौकरी का प्रयास भी सफल हो सकता है। रोजगार की समस्या का निदान भी मिल सकता है। परिवर्तन, स्थान परिवर्तन की दिशा में सफलता मिल सकती है। परिवार में उन्नति व दायित्वों की पूर्ति की दिशा में भी सफलता के योग बनते हैं। पत्नी को नौकरी, पद, प्रतिष्ठा आदि के संबंध में किये जा रहे प्रयास सफल होंगे। १४ मई से शारीरिक कष्ट के प्रति अवश्य सतर्कता रखें। संतान के कारण मानसिक शांति न भंग होने दें। व्यावसायिक उलझनों के प्रति भी सावधान रहें। प्रेम, मित्रता के क्षेत्र में झगड़ा एवं विवाद न करें। भावुकता एवं क्रोध पर नियंत्रण लाभप्रद होगा।

**वृश्चिक (न, नी, नू, ने, नो, य, यी, यू)**

१४ से २४ मई के मध्य रोजगार प्राप्ति की दिशा में सफलता मिल सकती है। स्थानांतरण, मकान-परिवर्तन, नौकरी में पद वृद्धि या परिवर्तन के प्रयास में विशेष बल दें, सफलता मिल सकती है। अधिकारियों से बिगड़े हुए संबंधों में सुधार होगा। पारिवारिक वातावरण सुख-शांति पूर्ण होगा। कन्या के विवाह के संबंध में किये जा रहे प्रयास में सफलता मिलेगी। शोधकार्य, लेखन, रचनात्मक कार्यों में सफलता मिलेगी। १३ मई तक तथा २५ के बाद के समय में स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहें संबंधित अधिकारी, पारिवारिक सदस्यों के विवाद एवं झगड़े में न पड़ें। क्रोध पर संयम रखें।

**धनु (ये यो, भ, भी, भू, ध, फ, ढ़, भे)**

१ से १४ मई के मध्य बनायी गयी योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने से लाभ मिलेगा। रचनात्मक, लेखन, कला, साहित्य आदि के क्षेत्र में किये जा रहे प्रयोग सफल होंगे। शोधकार्य में भी लाभ मिल सकता है। शिक्षा, प्रतियोगी या विभागीय परीक्षा में आशातीत सफलता मिलने की आशा है। संतान के संबंध में सुखद समाचार प्राप्त होगा। उसकी उन्नति शिक्षा, नौकरी, विवाह आदि के संबंध में किये जा रहे प्रयास

सफल होंगे। भौतिक सुखसाधनों में वृद्धि होगी। मकान, वाहन, भौतिक वस्तुओं में वृद्धि के प्रयास सफल होंगे। १५ मई से स्वास्थ्य, व्यवसाय के प्रति सतर्क रहें। यात्रा में भी दुर्घटना के प्रति सतर्कता आवश्यक है।

**मकर (भो, ज, जी, जू, जे, जो, ख, खी, ग, गो)**

१ से १० तथा २४ से २८ के मध्य महिला-मित्र के कारण रुके हुए कार्य संपन्न हो सकते हैं। सहयोग का लाभ भी मिल सकता है। भौतिक सुख साधनों में वृद्धि की संभावना है। एक लंबे समय से जिस सुख की खोज थी, उस सुख की अनुभूति भी संभव है। यात्रा भी करनी पड़ सकती है। मांगलिक कार्यों की दिशा में भी सफलता मिलेगी। शोधकार्य, लेखन, साहित्य आदि के क्षेत्र में किये जा रहे प्रयोग सफल होंगे। शिक्षा, प्रतियोगी परीक्षा आदि के क्षेत्र में भी सफलता मिलेगी, यह माह उपलब्धियों का माह कहा जा सकता है। अपने समय का पूरा-पूरा उपयोग लक्ष्य प्राप्ति के लिए करें।

**कुंभ (गू, गे, गो, स, सी, सु, से, सो, द, दा)**

२ से १४ तथा २२ से २८ मई के मध्य का समय कीर्ति, प्रतिष्ठा, धन, पद-वृद्धि के प्रयास में सफलता देनेवाला है। मित्र, भाई आपकी उन्नति में सहायक होगा। यात्रा भी करनी पड़ सकती है। योजना को कार्यरूप में परिणत करने से लाभ मिलेगा। सहयोगी पुरुष एवं स्त्री दोनों ही हो सकते हैं। सहयोग आपकी योग्यता पर निर्भर करता है। आर्थिक मामले में भी सफलता मिलेगी। कर्ज की स्थिति में सुधार आएगा। मकान, जमीन से संबंधित विवाद में सफलता मिलेगी। दुर्घटना, चोरी, अग्नि आदि से अवश्य सतर्क रहें। उच्च व्यक्तियों के संपर्क का लाभ मिल सकता है। लेखकों के लिए यह माह विशेष महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

**मीन (दी, दू, थ, झ, दे, दो, च, ची)**

२ से ८ तथा १४ से २६ मई के मध्य व्यवसाय में प्रगति के साधनों में वृद्धि होगी। बनायी गयी योजना को कार्यरूप में परिणत करें, तभी लाभ संभव है। उसे कल्पना में ही सीमित न रखें। नारी मित्र से सहयोग मिल सकता है। कीर्ति के प्रयास विशेष रूप से सफल होंगे। पद, प्रतिष्ठा, स्थानांतरण की दिशा में भी किये जा रहे प्रयासों में भी सफलता मिल सकती है। यात्रा भी करनी पड़ सकती है। विदेश-यात्रा का प्रयास भी सफल हो सकता है। चोरी, दुर्घटना, अग्नि भय से अवश्य बचें। मंगल-मंत्र का जाप व मंगल का दान लाभप्रद होगा।

—१८ एम. आई. जी., रतनलाल नगर, कानपुर-२०८०२२

**स्पष्ट लेखक, स्वच्छ चश्मे के समान, इतना गहरा नहीं दिखता, जितना कि वह है; गंदला गंभीर दिखता है। —लेंडर**

# नयी कृतियां

## जिंदगी से जुड़े कुछ पठनीय उपन्यास

### जोगती

'देवदासी' प्रथा के आधारभूत विवरण देनेवाला उपन्यास **'जोगती'** दुर्गाप्रसाद शुक्ल की एक मार्मिक कृति है। कहना पड़ेगा कि एक तरह से यह 'देवदासी' परंपरा की समग्र समाजशास्त्रीय प्रकृति को अभिव्यंजित करती है। उपन्यासकार ने अपनी कथा की भूमि महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर बसे कुछ गांव निर्दिष्ट की है। इन गांवों में नीची जाति के लोगों की एक भयावह नियति है, कि स्त्री हो या पुरुष, उसे समाज में 'सार्वजनिक संपत्ति' बनने के लिए विवश होना पड़ता है। यह अभिशाप केवल उन निरीह लोगों के लिए है, जिनके जिम्मे यह धार्मिक अंधविश्वास पड़ा है कि लटों में 'जट' पड़ने पर किसी भी बालिका को 'जोगती' या 'देवदासी' बनना पड़ता है, तो पूरी उम्र किसी भी सवर्ण की वासना के लिए खुद को समर्पित करना पड़ता है। ताराबाई की 'आत्मकथा' के जरिये उपन्यासकार ने इस घिनौनी परंपरा को तो अनावृत किया ही है, साथ ही साथ कारखाने-मालिकों के शोषण, मंदिरों में पनपनेवाले अनाचार और इस धार्मिक-व्यवस्था के अंतर्गत पोषित होनेवाली अपराधवृत्तियों के प्रसंगों का साहसपूर्ण ढंग से अंकन किया है।

आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि धर्म-व्यवस्था की जर्जर कड़ियां कुछ दूरस्थ अंचलों में विमानवीकरण का चक्र चलाए रहती हैं, और शोषणकारी, स्वार्थी वर्ग उन कड़ियों के बाहरी मुलम्मे को निरंतर चमकाये रखते हैं, ताकि ईश्वर, महान-मूल्य एवं आदर्शों की फांस में निरीह, आर्थिक रूप से अत्यंत दयनीय लोग फंसे रहें। 'जोगती' में लेखक ने 'वर्तमान' से अतीत की यात्रा की है। ताराबाई के भयासन्न वर्तमान से एक पूरे सामाजिक विरूप का अतीत खुलता चलता है। इसमें गोमा, कर्नाटकी, श्यामा, यशवंता, सुध्या, पुजारी, तुक्या और दूसरे अनेक चरित्र हैं, जो सामाजिक त्रासदी के अविभाज्य अंग हैं। परंतु धीरे-धीरे जैसे-जैसे अंधविश्वासों की दासता से ऊपर उठने के सामाजिक आंदोलन सामने आते हैं, अछूतोद्धार की एक विराट चेतना फैलने लगती है, तो स्वयं प्रताड़ित खेमों में एक सुगबुगाहट नजर आने लगती है। तमाम विरोधों के बावजूद बुरे विश्वासों के चंगुल से मुक्ति के आंदोलन तीव्रतर होने

लगते हैं। 'जोगती' में ताराबाई द्वारा अपनी बेटी संगीता की जट काटकर फेंक देने का जो प्रसंग अंत में आता है, वह वस्तुतः एक प्रतीक है। एक ऐसा प्रतीक जो उस छिपे विश्वास को आलोकित करने लगता है, जो शायद इस मार्मिक कृति का उद्देश्य भी है। मध्यवर्ती भारत के सांस्कृतिक जीवन और वहां की भाषाई संस्कृति के जीवंत दृश्यों को व्यक्त करने के कौशल से संपृक्त यह उपन्यास क्षेत्रीय समस्याओं को कुशलता से व्यक्त करता है। प्रकाशक—पराग प्रकाशन, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली, मूल्य—तीस रुपये।

—गंगाप्रसाद विमल

**वंश-वृक्ष :** कन्नड़ भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री एस. एल. भैरप्पा की एक सशक्त औपन्यासिक कृति है। इस उपन्यास को कर्नाटक साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी किया जा चुका है। **'वंश-वृक्ष'** में श्री भैरप्पा ने आस्थाओं के कई मूल प्रश्नों को उठाकर पाठक की चेतना को झकझोरने का सफल यत्न किया है।

उपन्यास के मुख्य पात्र हैं, श्रीनिवास श्रोत्रिय, जिनका जीवन भारतीय आदर्शों का एक प्रेरणास्पद उदाहरण बनकर सामने आता है। श्रीनिवास श्रोत्रिय को जीवनभर दुःख ही दुःख मिलता है, फिर भी वे अपने दैनंदिन के कर्त्तव्य से विमुख नहीं होते। युवा बेटा कपिला नदी की बाढ़ में बह जाता है। वह अपने पीछे विधवा पत्नी कात्यायनी और बेटे चीनी को छोड़ गया है।

कालांतर में कात्यायनी का पुनर्विवाह होता है और बेटा, दादा श्रीनिवास श्रोत्रिय के पास ही रहता है। लेकिन पुनर्विवाह कर भी कात्यायनी का जीवन सुखी नहीं होता। उसके मन में निरंतर चलनेवाला धर्म-कर्म और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का द्वंद्व अंततः उसके प्राण ले लेता है। वही नहीं, उसका बेटा चीनी भी उसके प्रति तिरस्कार का भाव रखता है। उपन्यास का अंत अत्यंत करुण है और पाठक के मन पर एक बोझ-सा बना रहता है। उपन्यास के हिंदी में अनुवादक हैं—डॉ. वी. बी. पुत्रन, मूल्य—चालीस रुपये।

**पहाड़ी जीव :** सुप्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यासकार श्री शिवराम कारंत के लोकप्रिय उपन्यास 'बेट्टद जीव' का हिंदी अनुवाद है। अनुवादक हैं—बी. आर. नारायण। 'पहाड़ी जीव' मूलतः एक आंचलिक उपन्यास है और इसमें कर्नाटक के एक पहाड़ी क्षेत्र मलेनाड के जीवन का सुंदर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास के नायक हैं—गोपालय्याजी भट्ट, जो स्वभाव से सहृदय एवं हंसमुख हैं। लेखक अपनी एक खोयी हुई गाय की तलाश में जंगल-जंगल भटकता हुआ अंत में गोपालय्याजी के घर अतिथि बनता है। वार्त्तालाप के दौरान गोपालय्याजी का अतीत खुलता चलता है, जिससे पता चलता है कि वे कितने जीवट के आदमी हैं। उनकी पत्नी—शंकरी को एक दुःख है कि बेटा कभी

निर्जन में बसे गांव में नहीं आता। पर गोपालय्याजी 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्ति हैं। वे निर्विकार भाव से सुख-दुःख दोनों को स्वीकार करते हैं। उपन्यास पठनीय है। मूल्य: अठारह रुपये।

**बीते कल की छाया:** श्रीचंद्र अग्निहोत्री का एक सशक्त उपन्यास है। इसमें उन्होंने जमींदारी-उन्मूलन से पूर्व के ग्रामीण-जीवन की कहानी कही है। ताल्लुकेदार बोधासिंह, जो स्वयं एक जमींदार के घर गोद आते हैं, एक गरीब किसान के बेटे जग्गू को गोद लेते हैं। पत्नी 'रानी साहिबा' आपत्ति करती हैं, तो उन्हें अपना अतीत याद आ जाता है और वे उन्हें समझा देते हैं। ताल्लुकेदार का बेटा बनकर जग्गू जगजीतसिंह उर्फ लाल साहब हो जाता है। शायद, ताल्लुकेदार की हवेली पर कोई अभिशाप है और जगजीतसिंह भी निस्संतान मरता है। रह जाती है उसकी पत्नी शिवकली, जो परिस्थितियोंवश अपनी हवेली को एक सेठ के नाम पट्टे पर लिख देने के लिए विवश हो जाती है। अब वह उसी सेठ से दस रुपये मांगने पर मजबूर है।

लेखक ने उपन्यास में पतनोन्मुख जमींदारी संस्कृति का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। मूल्य—बाइस रुपये।

**दारुल शफा:** श्री राजकुमार मिश्र का आज की राजनीति के भीतरी दांवपेचों, आपसी काट छांट और नेताओं की वास्तविक तसवीर प्रस्तुत करने वाला एक यथार्थवादी उपन्यास है।

उत्तर प्रदेश में तीन महीने के राष्ट्रपति शासन के बाद पार्टी का मंत्रिमंडल बनने जा रहा है। लगभग निश्चित हो गया है कि उत्सुकदास भावी मुख्यमंत्री होंगे, क्योंकि उन पर गुरुपदस्वामी का वरद-हस्त है। पार्टी में एक ही पक्ष ऐसा भी है, जो उत्सुकदास को मुख्यमंत्री नहीं होने देना चाहता। कुछ घंटों की कहानी को लेखक ने अपने कथ्य एवं शिल्प की ताजगी से एक रोचक उपन्यास का रूप दे दिया है।

दारुल शफा में चलनेवाला यह संघर्ष एक 'यादवी-संघर्ष' है, जिसमें हर व्यक्ति अपने प्रतिपक्षी के घिनौने अतीत को बड़ी बेरहमी से उजागर करता है।

'दारुल शफा' लखनऊ में विधायकों का रेस्ट हाउस है। लेखक ने इसे ही केंद्र बनाकर अपनी कहानी कही है। उसने जो तसवीर खींची है, वह बेहद भयावह है। उपन्यास पढ़कर प्रतीत होता है, कि सत्ता का दावेदार हर व्यक्ति भ्रष्टाचार के पंक में आकंठ डूबा हुआ है। पारंपरिक चरित्र की कसौटी पर इनमें कोई खरा नहीं उतरता।

उपरोक्त चारों उपन्यासों के प्रकाशक हैं—शब्दकार, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-६, मूल्य—पैंतालिस रुपये।

—डी. प्रसाद

## विविध

**वे चिंघाड़ते हाथी:** वन्य-जीवन एवं वन्य पशुओं पर बहुत कम अच्छी पुस्तकें लिखी गयी हैं। श्री विराज की यह पुस्तक इस

अभाव को एक अंश तक पूरा करती है।

पुस्तक में लेखक ने आज से पंद्रह वर्ष पूर्व, १९६७ में, हरिद्वार के घने वनों में की गयी यात्राओं का रोमांचकारी विवरण दिया है। लेखक अपने कुछ साथियों के साथ जंगली हाथियों को देखने इन वनों में गये थे। उनके विवरण एक ओर जहां हरिद्वार के वनों की प्राकृतिक सुषमा से परिचित कराते हैं, वहां उनसे जंगली हाथियों के स्वभाव की भी जानकारी मिलती है। एक पालतू हथिनी और उसके क्रुद्ध महावत के प्रसंग में वे लिखते हैं, कि पशुओं को वश में करने के लिए सबसे आवश्यक बात यह है, कि उन पर यह प्रभाव डाल दिया जाए, कि वे मनुष्य का कुछ बिगाड़ नहीं सकते। . . . लेकिन पशुओं का स्वभाव जाता नहीं, जब भी मौका मिलता है, तभी हमला करने से वे चूकते नहीं।

आज जंगल कटते जा रहे हैं। इससे प्रकृति का संतुलन तो बिगड़ ही रहा है, प्राकृतिक सुषमा एवं वन्य-पशुओं का भी लोप होता जा रहा है। **'वे चिंघाड़ते हाथी'** पुस्तक हमें एक ऐसे बिलकुल अछूते, अपरिचित संसार में ले जाती है, जहां जंगल का सौंदर्य अभी भी बरकरार है, भले छापे के अक्षरों में!

प्रकाशक—हेमगंगा प्रकाशन, एच-१, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२, मूल्य—छत्तीस रुपये।

# ज्ञान-गंगा

**तिष्ठतां तपसि पुण्यमास जन्सम्पदोऽनुण-यन्सुखैषिणाम्।**
**योगिनां परिणमन्विमुक्तये केन नास्तु विनयः सतां प्रियः॥**

—विनयशीलता तपस्या में निरत धर्मार्थी लोगों को पुण्य प्रदान करती है, सुखार्थी जनों के लिए संपत्ति प्रदान करती है और योगियों को मुक्ति प्रदान करती है। अतः कौन-सा ऐसा कारण है कि वह (सदाचार) सज्जनों को प्रिय न हो। तात्पर्य यह है कि विनयशीलता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चतुवर्ग को देनेवाली है।

**परोपकाराय सतां विभूतयः।**

—सत्पुरुषों की सारी विभूतियां (ऐश्वर्य आदि) परोपकार के लिए होती है।

**अस्ति रत्नमनागसः**

—निष्पाप मनुष्य के लिए अमूल्य रत्न स्वयं उपस्थित हो जाते हैं।

**न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।**

—जो श्रम नहीं करता, उसके साथ देवता मित्रता नहीं करते।

**ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्टिनम्**

—जो मानवता में ब्रह्म के दर्शन करते हैं, वास्तव में वे ही परमेश्वर को समझते हैं।

—प्रस्तोता : महर्षिकुमार पाण्डेय
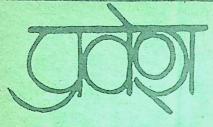
इस बार हम पाठकों को परिचित करा रहे हैं, विधुलता गोस्वामी से। इनकी पांचों रचनाएं पढ़ने से हमें लगा, कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के अनुभवों को वह शब्दों में ढालकर कविता के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार उनकी कविता उनके निजी मनोभावों का उद्घाटन है। प्रस्तुत हैं, उनकी पांच कविताओं में से चुनी हुई तीन कविताएं।

—संपादक

## जलते टेसू फूल

शिशिरांत,
नंगे पेड़ों की नुकीली
बेतरतीब टहनियां
आकाश की छाती पर
चुभन की सीमा
अस्तित्व की पीड़ा
लिए-जिए कोई क्यों
सारी उम्र का रोना
जंगली घास
निष्कंप भाव
ठोस ओस–पलकों में
कोहरे की शाल लपेटे
दूधिया सुबह जलती
लक्ष लक्ष टांक दिये
जलते टेसू फूल, किसी ने
अंगारों की तपन
( अदेखी ) छुअन
हथेलियां जलती हैं अब भी
अक्रम आंखों में
विस्मृत स्वप्न-रश्मियां
बुनी हुई गांठें
फीकी मुस्कराहटें
करे ( खोले ) कोई कैसे
विश्वासों का अतिक्रमण

## बोझ

मेरे ख्याल मेरे अपने हैं
इन पर अपने ख्यालों का
लबादा मत ओढ़ाओ
घुटकर सीने में दफ्न
------हो चुके जो
उन पर पहले ही
कफन का अभिशप्त बोझ है
ढोऊंगी कहां तक
इन बोझों को
जर्जर कंधों पर
समाज की परंपराओं के
व्यर्थ इन संबंधों को
पत्थरों के शहर में
पत्थरों के नीचे
दब जाने दो इन सब को
कालांतर में नवीन
अस्तित्व प्राप्त कर लेने को

# आसमान की मौत

अदम्य विश्वास-सा चुंबन
सिंदूरी भोर का सूरज
आसमान की आंखें,
डबडबा - - - आयी, और
बरस पड़ी फिर
प्यासी-धरा पर
छितरी-तूलिका
क्षुब्ध मन
बिखरे सौ रंग
काले, पीले, हरे या नीले
जिंदगी कैनवास पर
जाने किसकी अरथी
सूरज का विश्वास
जीने का अर्थ
हर शाम आसमान की मौत

● विधुलता गोस्वामी

## आत्म-कथ्य

जन्म : दो फरवरी १९५६ (भोपाल),
शिक्षा : एम. ए. ( हिंदी ) एल. एल. बी.

आत्मिक संत्रास को-वैसे कविता का नाम देना कहां तक उचित है, मैं नहीं जानती; किंतु आत्मिक अनुभूति चाहे वह दुःख की परिणति हो अथवा सुख की, अपनी हो या परायी और चाहे एक दृष्टि से अनेक दृष्टियों को सर्चलाइट-सा अनुभूत सत्य हो; मेरे मन में वही सब कुछ शब्दों और भावों में ढलकर कविता के रूप को प्राप्त करता है।

कविता लिखना उद्देश्य नहीं, वरन मनः नियति है, इसलिए लिखना ही होता है। संप्रति : भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल से 'मोहन राकेश के कथा साहित्य का मनो-विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर शोध में संलग्न।

—छावनी पोस्ट ऑफिस के पास, स्ट्रीट नं. ३, भोपाल-४६२००१

सार-संक्षेप

# रोमांस प्रेम के पंखों पर

● लेव शेनिन

दो अलग-अलग जगहों व जलवायु में पले हुए युगल प्रेमियों की यह एक रोमांचक प्रेम-कथा है। वैसे तो मैंने अपने जासूसी जीवन में कई जघन्य अपराधों की खोजबीन की थी, लेकिन अपने अनुभवों की डायरी में खासकर इस कथा को लिखने का मेरा यह भी इरादा है कि मैं सारी दुनिया को यह बता देना चाहता हूं कि एक अपराध वेत्ता की सूक्ष्म दृष्टि केवल गूढ़तम अपराधों की खोज के लिए ही नहीं होती है, अपितु सामान्य जन-जीवन के पहलुओं पर भी वे लोगों की कानूनी मदद कर सकते हैं!

१३ नवंबर, सन १९३८ की यह घटना है।

दोपहर का वक्त था। कलासिन क्षेत्र के स्टारित्सकी जिला स्थित गुलुखोव गांव के निवासी अपने-अपने खेतों पर काम कर रहे थे। अचानक उसी समय आकाश-मार्ग से छोटा-सा चमकदार कोई विदेशी विमान आकर कुछ दूरी पर रुक गया।

खेतों में काम कर रहे ग्रामीण लोग उसे देखकर आश्चर्यचकित हो उठे, उनमें आपस में कानाफूसी भी होने लगी। लोग बड़े शंकित दृष्टि से उस विमान की ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। उनमें से कुछ साहसी लोगों ने उसके पास जाकर देखा—एक विदेशी युवक, जो पॉयलट की

**अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए उसने क्या नहीं किया ?**

**वह अंगरेज था, और प्रेमिका रूसी। लेकिन प्रेम न जाति का बंधन मानता है, न धर्म का, न देश का। उसने प्रेमिका से मिलने के लिए एक छोटा-सा विमान खरीदा और देश की सीमाओं को तोड़ता हुआ एक दिन रूस जा पहुंचा। वह जानता था कि रूस में इस अवैध-प्रवेश के लिए उसे सख्त कैद भी मिल सकती है। उस पर क्या बीती, पढ़िए प्रख्यात रूसी गुप्तचर लेव शेनिन की कलम से। इस प्रेम-प्रसंग का उल्लेख लेव शेनिन ने अपनी पुस्तक 'डायरी ऑव ए क्रिमिनोलॉजिस्ट में किया है। सार-संक्षेप के अंतर्गत पढ़िए, इसी पुस्तक का एक अंश। प्रस्तोता—कुमार सरल।**

वेशभूषा में था, विमान के बाहर आकर विशुद्ध रूसी भाषा में उनसे कह रहा था, "श्रीमान, आप लोग मुझे देखकर भयभीत न हों! मैं भी आपके देशवासियों से प्यार करता हूं, मुझसे आप लोगों का कोई अहित नहीं होगा। मैं तो लंदनवासी हूं और लंदन से यहां तक उड़कर सीधे अपनी रूसी प्रेमिका को लेने आया हूं।"

उसका लच्छेदार भाषण जारी था, तभी एक ग्रामीण वृद्धा शासा—भीड़ में से निकलकर गुस्से से कांपती हुई बोली, "बंद करो यह सब बकवास! तुम बहुत चालाक आदमी लगते हो, अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से तुम हमें बहका नहीं सकते। क्या तुम्हारे देश में लड़कियों का अकाल आ पड़ा था, जो तुम रूसी लड़की से शादी करना चाहते हो? अच्छा, चलो! मेरे गांव में तुम्हारी खातिरदारी भी हो जाएगी और वहीं पर तुम्हारा हालचाल भी पूछ लिया जाएगा!"

इसके बाद ग्रामीण उस युवक को घेरे हुए गांव तक ले आये। तत्काल वहां के निकटवर्ती अधिकारी को भी बुलवाया गया। अधिकारी के आने पर युवा पॉयलट ने भयभीत होकर एक ही सांस में कहना शुरू कर दिया, "श्रीमान, मेरा नाम ब्रायन माण्टेग्यू ग्रोवर है। मैं एक ब्रिटिश तेल इंजीनियर हूं। इससे पूर्व मैंने मास्को और ग्रोजनी नगर में काम भी किया है। लंदन से सीधे अम्सटर्डम, ब्रेमेन आदि होता हुआ सीधे गुलुखोव गांव आ पहुंचा। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि मैंने बिना वीसा लिये रूसी सीमा में प्रवेश किया है। पर ऐसा मैंने अपनी रूसी प्रेमिका के लिए ही किया।"

अधिकारी ने उस विदेशी युवा पॉयलट को मास्को ले जाने का फैसला किया।

दूसरे दिन यानी १४ नवंबर को अधिकारीगण उसे लेकर मास्को शहर

आये। वहां पर प्रतिरक्षा मुख्यालय में बाकायदा उससे कलमबद्ध बयान लिया गया। युवा पॉयलट ग्रोवर एक स्वस्थ-सुंदर एवं ऊंचे कद का भूरी आंखोंवाला बड़ा ही स्वतंत्र विचारवाला अच्छा समझदार युवक था। अधिकारियों के समक्ष उसने बड़ी निडरतापूर्वक बयान दिया। बयान की शुरूआत इस प्रकार थी :

"श्रीमान, मेरा यह दुर्भाग्य है कि मैं बिना वीसा प्राप्त किये, रूसी सीमा में आया हूं। लेकिन, मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूं कि इसमें मेरा कोई गलत उद्देश्य नहीं था। ग्रोजनी नगर स्थित एक फैक्ट्री में कार्यरत एक रूसी युवती ऐलेना से मेरा प्यार हो गया।

"मैं अपना जुर्म जानता हूं और उसके तहत कैद या जुरमाना भी भुगतने को तैयार हूं। यहां आने से पूर्व एक अंगरेज वकील ने मुझे बताया था कि सोवियत क्रिमिनल कोड में धारा ५१ को वहीं की धारा ५६ व ३ निरस्त कर सकती हैं।"

ग्रोवर धाराप्रवाह रूसी भाषा में निर्भीक होकर बोलता जा रहा था। उसकी बातों में जांचकर्ता अधिकारी भी काफी रुचि ले रहे थे, लेकिन औपचारिकतावश उन्होंने उससे कई सवाल पूछे। ग्रोवर ने अवैध रूप से रूसी सीमा का अतिक्रमण किया ही था।

ग्रोवर से पूछताछ चल ही रही थी, तभी जांच अधिकारी को उसने बताया कि वह एक अच्छा इंजीनियर भी है। पढ़ाई पूरी करने के बाद, उसे सोवियत संघ के ग्रोजनी नगर एवं मास्को में अच्छे पद एवं वेतन पर नौकरी मिल गयी और वह अपना देश छोड़कर यहां चला आया था। लेकिन, जैसाकि उसने मास्को के बारे में अपने देश में तरह-तरह की भ्रांतियां सुनी थीं, वैसा उसे यहां पर कुछ भी नहीं लगा। बल्कि, यहां की धरती और यहां के लोगों ने उसे सहज ही आकर्षित कर लिया।

ग्रोवर ने आगे बतलाया, "सर्वप्रथम, मास्को आकर मैं मेट्रोपोल होटल में ठहरा था। वहां देशी-विदेशी उच्च वर्गीय परिवार के लोग आकर ठहरते थे। मास्को शहर की रंगीनवादियों में मुझे इस होटल की अपनी अलग ही शान नजर आयी।

"कभी-कभी मैं होटल के बड़े हाल में बिछी कुरसियों पर एक ओर बैठकर वहां के वातावरण का जायजा भी लिया करता था। यहां पर प्रायः शाम को सारी केबिनें आरक्षित पायी जाती थीं। उस पर जासूस, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, व्यापारी एवं संभ्रांत परिवारों के स्त्री-पुरुषों की भीड़ बनी रहती थी। धीरे-धीरे मैंने भी उनमें दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी।"

ग्रोवर ने अधिकारियों को आगे बताया कि इसके बाद वह रोज सदाबहार रेड स्क्वायर पर भी घूमता। क्रेमलिन की प्राचीन दीवारों की सजावट देखता हुआ गोल-गोल पत्थरों से बने अर्बाट स्ट्रीट की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में भी कई बार घूम

चुका था। धीरे-धीरे वह वहां की परिस्थितियों और वातावरण में पूर्णतया घुल-मिल-सा गया था। इसके कुछ दिनों बाद वह ग्रोजनी नगर में अपने काम पर आया, तो यहां का वातावरण भी उसे अपने अनुकूल ही लगा। उसे लग रहा था, जैसे वह उन लोगों के बीच वर्षों से रह रहा हो!

ग्रोजनी नगर में ही एक दिन उसकी मुलाकात ऐलेना से हुई। ऐलेना एक औषधिशाला में रसायनज्ञ थी। धीरे-धीरे दोनों की मित्रता प्रगाढ़ होती गयी। फिर दोनों को एक-दूसरे से प्यार-सा हो गया। उनमें सच्चा प्यार था। तभी तो, वह आज कानून के मजबूत सीखचों में आ खड़ा हुआ था।

थोड़ा रुककर उसने पुनः बतलाना शुरू किया, चूंकि, वे दोनों ही अलग-अलग भाषा-भाषी थे, अतः एक दूसरे से अपनी बात कहने-सुनने के लिए यह जरूरी था, कि वे एक दूसरे को अपनी-अपनी भाषा भी सिखायें! अतः वे एक-दूसरे से भाषा सीखने लगे। इस दौरान उन्हें एक दूसरे को करीब से देखने सुनने का मौका मिला और उनका प्रेम-व्यापार अपने प्रथम चरण पर चल पड़ा। उनके विचारों-व्यवहारों में भी पूरी समानता थी।

### अतीत के प्रेम-प्रसंग

ग्रोवर ने अपनी प्रेम-कहानी बड़े विस्तार से सुनायी। उससे जांच-अधिका-

रियों के सामने जो अतीत सामने आया, वह कुछ इस प्रकार था:

इन प्रेमी-प्रेमिकाओं की स्वच्छंद गतिविधि को देखकर ऐलेना के पिता मि. गोलियस, जो स्वयं एक ख्यात रसायनज्ञ थे, कुछ चिंतित हुए। वे अपनी एक मात्र बेटी ऐलेना को बहुत चाहते थे। एक दिन उन्होंने दुखी होकर अपनी पत्नी से कहा, 'यह लंबे पैरोंवाला युवक ऐलेना के साथ क्यों बराबर घूमता-फिरता रहता है। उससे मिलना-जुलना मुझे कतई पसंद नहीं है।'

इस पर ऐलेना की मां ने अपनी पुत्री का पक्ष लेते हुए कहा, 'लेकिन, मुझे तो वह युवक बहुत शिष्ट लगता है। वाणी और व्यवहार से भी वह किसी संभ्रांत घराने का लगता है।' पत्नी के कथन का विरोध करते हुए गोलियस चीख उठे, 'क्या सोवियत संघ में तुम्हें विवाह योग्य कोई लड़के ही नहीं मिलते? मैं तो ऐलेना

को कदापि उस लंदनवासी युवक से शादी नहीं करने दूंगा !'

पति के कथन का डटकर मुकाबला करते हुए पत्नी पुनः गरजी, 'आखिर आप यह सब क्यों सोचते हैं ? आखिर, वह भी तो एक इनसान है। उसमें भी दया-ममता आदि होगी !'

गोलियस हार से गये, उन्होंने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा, 'तुम यह सब समझने की कोशिश क्यों नहीं करतीं कि वहां का रहनेवाला प्राणी वहां के वातावरण और जलवायु का आदी होगा ! किंतु, अचानक कोई विदेशी वहां आ पहुंचे, तो उसे शीघ्र ही कोई भयंकर रोग पकड़ सकता है। फिर, दोनों भिन्न-भिन्न देश के वासी हैं। उनकी भाषा एवं संस्कृति भी भिन्न है। आखिर, यह सब कैसा खिलवाड़ है ?'

इस तर्क-वितर्क के दौरान वे लोग शायद यह भूल ही गये थे कि वहां से हजारों मील दूर लंदन में बैठे ग्रोवर के मां-बाप भी कुछ इसी प्रकार सोच रहे होंगे। कारण, ग्रोवर की मां भी अपने पुत्र के लिखे पत्रों में ऐलेना नामक किसी युवती के बारे में बराबर पढ़ती आ रही थी। वह सोच रही थी, कि विदेश में रहकर उनका बेटा कहीं किसी लड़की से इश्क तो नहीं लड़ा रहा है ! आखिर, एक बार डाक से प्राप्त पत्रों की तह में एक युगल जोड़ी का चित्र उसे आ मिला। उसमें ग्रोवर के साथ कोई रूसी लड़की भी थी, जिसका उसने बार-बार अपने पत्रों में उल्लेख किया था।

श्रीमती ग्रोवर का मन आशंकाओं से भर उठा और वह ऐलेना के बारे में तरह-तरह की आशंकाएं करने लगी। उसने सोचा, वह क्रूर प्रकृति की होगी। बेहद झगड़ालू, बात-बात पर गुस्सा होनेवाली। उसने कई परिचितों से उसका जिक्र किया, अपनी आशंकाएं जाहिर कीं, पर सभी ने उसे सांत्वना ही दी।

कुछ दिनों के बाद ग्रोवर का तबादला ग्रोजनी से मास्को हो गया, तो ऐलेना भी मास्को आकर उसके साथ ही रहने लगी। दिन हंसी-खुशी के बीच बीत रहे थे।

सन १९३४ में ग्रोवर का मास्को में अनुबंधित काम खत्म हो गया तो उसे स्वदेश लौटना पड़ा। वह स्वदेश तो लौट आया, पर प्रेमिका के बिना उसे सब कुछ सूना-सूना-सा लगने लगा। ऐलेना से उसे इतना प्यार हो गया था कि वह पुनः मास्को लौट चलने की बात हर समय सोचने लगा। लेकिन, वहां उसे पुनः कोई दूसरा काम ही नहीं मिल रहा था और न ही उसके पास वहां तक पहुंचने के लिए वीसा ही था। ग्रोवर के दिन बड़ी बेचैनी से बीत रहे थे। अंततः उसने फैसला कर लिया, कि वह एक दिन अवश्य ही अपनी प्रेमिका के पास जाएगा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने एक उपाय भी खोज निकाला।

वह लंदन-फ्लाइंग क्लब में सम्मिलित हो गया और महीनों तक उड़ान सीखता

रहा। साथ ही अपने जेबखर्च आदि से बचा-बचाकर कुछ दिनों में उसने १७३ पौंड की खासी रकम एकत्र कर ली। इस रकम से उसने एक पुराना, किंतु छोटा, हवाई जहाज 'पाइपर-कब' भी खरीद लिया।

३ नवंबर, सन १९३८ को ग्रोवर ने ब्रासबर्न विमान-तल से अपने विमान में मास्को के लिए उड़ान भरी। रास्ते में अम्सटर्डम, ब्रेमेन, हम्बर्ग, स्टाकहोम आदि होता हुआ सीधे गुलुखोव गांव तक पहुंचा था, और अब पुलिस की हिरासत में था।

ग्रोवर का बयान लेने के बाद जांचकर्ता द्वारा ऐलेना गोलियस के बयान भी लिये गये। उसके बयानो से उन्हें ज्ञात हुआ कि वे दोनों एक दूसरे से बहुत प्रेम करते हैं। अत: उन्हें हवालात में भी मिलने की आज्ञा दे दी गयी। जब वे दोनों हवालात के अंदर मिले, तब काफी प्रसन्न थे और उनकी आंखों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। शायद ग्रोवर ने ऐलेना के कान में फुसफुसाकर कुछ कहा भी था।

**प्रेम के पंखों पर**

इस अद्भुत प्रेम-प्रकरण की खबर जब दोनों देशों के समाचार पत्रों को मिली, तब उन्होंने इस कांड की खबर सुर्खियों के साथ छापी।

'बीसवीं सदी का रोमांस : प्रेम के पंखों पर', 'एक अंगरेज के प्रेम का चमत्कार', 'प्रेम ने अंतरिक्ष को भी मात कर दिया।' आदि-आदि ... शीर्षकों से अखबारों के पन्ने रंग उठे। 'डेली-टेलीग्राफ' और 'मार्निंग-पोस्ट' नामक पत्र के ताजे अंकों में इस प्रेम-प्रकरण की खबर खूब जोर-शोर से छपी। लोगों ने राह चलते समाचार-पत्र पढ़-पढ़कर खूब रस लिया। इतना ही नहीं, सुप्रसिद्ध समाचार संस्था—'रायटर' ने भी २८ नवंबर को अपने प्रसारण में बताया कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री सर नेविवनो चैम्बरलेन ने मास्को स्थित ब्रिटिश राजदूत को इस मामले पर खास वार्ता करने का आदेश दिया है।

इससे पूर्व एक कर्मठ ब्रिटिश सांसद ने २३ नवंबर को ही यह मामला 'हाउस ऑव कामन्स' तक ले जाने की धमकी दी थी। जरमनी के फासिस्टवादी पत्रों ने तो अपने अग्रलेख में यहां तक लिखा था

## बुद्धि-विलास के उत्तर

**१. प्रत्येक लड़के को ४ तथा लड़की को २ अमरूद, २. तिनबिघा, ३. ख. (१९वीं शताब्दी), ४. ख. (सोवियत दल—१९७१-७३—के साथ १८ मास से अधिक समय तक रहे), ५. ग. (६.२ टन), ६. जरमन डॉ. राबर्ट कोच (१८८२ ई.), ७. केरल विधानसभा, अविश्वास-प्रस्ताव के विरुद्ध मत (४ फरवरी '८२), ८. विगत जनवरी में प्रणव मुखर्जी को, ९. सन १८८२ की २८ जनवरी को बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में (अब शतवार्षिकी संपन्न), १०. गोल्ड-फिश।**
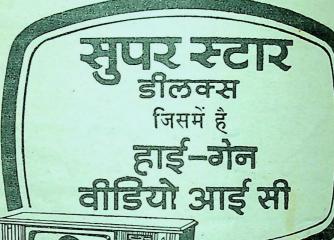
कि 'उसे तो मृत्यु-दंड दे देना चाहिए। क्योंकि, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट लोग प्रेम का अर्थ जानने में असमर्थ होते हैं। साथ ही, क्या उसे यह भी नहीं मालूम है कि मास्को में लोग बगैर 'श्रम-संघ' की इजाजत लिये प्रेम-विवाह के चक्कर में नहीं पड़ते हैं। मास्को में आधुनिक लैला-मजनू बनने के लिए कोई जगह नहीं है, अर्थात ऐसे लोगों के लिए वहां मृत्यु-दंड के अलावा अन्य कोई न्याय नहीं है!'

फासिस्टों के उपरोक्त तर्क का उत्तर देते हुए एक अंगरेज प्रवक्ता ने लिखा कि 'यद्यपि, सोवियत संघ को सर्वाधिकार है कि वह ग्रोवर पर विधिवत मुकदमा चलाये। परंतु, प्रेम और कानून दोनों ही नवीन नहीं। आदिकाल से वे शाश्वत सत्य के प्रतीक रहे हैं! क्या सोवियत संघ की कानून संहिता दो नवजवान दिलों के धड़कनों की टीस को बर्दाश्त कर सकेगा? इस प्रकार हम सभी लोग धैर्यपूर्वक इस मुकदमे के सुखद परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

**अदालत में**

एक अंगरेज प्रेमी एवं रूसी प्रेमिका के इस प्रेम-प्रणय का रोचक मुकदमा ३१ दिसंबर, १९३८ को मास्को के सिटी कोर्ट में विधिवत आरंभ हुआ। उस दिन इस न्यायालय के इर्द-गिर्द काफी भीड़ जमा हो गयी थी। उस विशाल जनसमुदाय में पत्रकार, वकील, राजनेता, राजदूत एवं युवा लोग भी काफी उत्सुकतापूर्वक खड़े होकर उस प्रेम-कथा के अंतिम भाग की झलक भी देखना चाहते थे। कुल मिलाकर, उस दिन न्यायालय में काफी असामान्य भीड़ एकत्र थी। सभी की उत्सुक निगाहें न्यायाधीश के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं।

अधिकारियों ने ग्रोवर का परिचय कुछ इस प्रकार दिया था :

३७ वर्षीय अंगरेज युवक ब्रायन माण्टेग्यू ग्रोवर, जो सन १९०१ ई. में इंगलैंड के फोल्क स्टोन नामक जगह पर पैदा हुआ था, पढ़-लिखकर युवा होने पर एक कुशल इंजीनियर बना। ग्रोवर दंपति ने अपने पुत्र को ऊंचे पद एवं वेतन पर कार्य दिलाने में भरसक मदद की। इसी समय मास्को के एक तेल संस्थान ने भी एक विज्ञापन देकर किसी योग्य इंजीनियर की जरूरत जाहिर की। पत्र-व्यवहार के बाद, उसने वह काम ले लिया। और मास्को आ गया। यहां पर ग्रोजनी नगर के एक औषधि संस्थान में भी उसे जाना पड़ा। उसी औषधि केंद्र में ऐलेना गोलियस नामक एक युवती भी रसायनज्ञ थी। उसने अपने सुंदर मुख एवं धीमी मुसकान से प्रथम दर्शन में ही ग्रोवर का मन मोह लिया था। ग्रोवर भी उसके प्रेम में ऐसा डूब चुका था कि इंगलैंड लौटने पर वहां पर भी उसे नहीं भुला सका। फलस्वरूप, सोवियत सीमा में अवैध रूप से प्रवेश करने पर उस पर मुकदमा चलाया जा रहा है।

अदालत के उस साधारण कमरे में

इंगलैंड की अदालतों-जैसी चमक-दमक थी, न दिखावापन। उसमें न तो ज्यादा फर्नीचर थे और न कर्मचारीगण ही दीख रहे थे। बस, सामने साफ सुथरी दीवार पर लेनिन की तसवीर लगायी गयी थी, जो सद्भावना एवं शांति का प्रतीक स्वरूप लग रहा था। इतना ही नहीं, न तो वहां पर कोई वर्दीधारी चपरासी ही दिखा, न स्टेनो और जिरह करते हुए वकील लोग। बिलकुल सीधे-सादे न्याय के लिए वह जनता की अदालत थी।

निश्चित समय पर मुख्य न्यायाधीश अदालत में दाखिल हुए। उनके आते ही उस कमरे में चल रही कानाफूसी व शोर-गुल भी बंद हो गया और लोग शांतचित्त होकर न्यायाधीश की ओर उत्सुक नजरों से देखने लगे। सामने कुरसी पर बैठे हुए न्यायाधीश के चेहरे पर भद्रता एवं शिष्टता साफ दिखलायी पड़ती थी। उन्हीं के पास पड़ी दो कुरसियों पर जूरी में सम्मलित दो महिला प्रतिनिधि भी बैठी थीं। संप्रति, इस अदालत की सामान्य रूपरेखा से उसका ऐच्छिक सम्मान एवं दृढ़ विश्वास साफ जान पड़ता था। दुनिया की अन्य अदालतों से दूर वहां कुछ ऐसी बात थी—जिससे वे जनता का सही विश्वास अर्जित करने में सक्षम थे।

**मुकदमे की कार्यवाही**

न्यायाधीश महोदय ने बिलकुल शांत स्वर में कहा, "अब इस मुकदमे की कार्यवाही आरंभ की जा रही है।"

प्रतिवादी पक्ष के वकील 'मास्को-अधिवक्ता संघ' के एक सदस्य बैरिस्टर कोमोरोव पैरवी कर रहे थे। वकीलों की कार्यवाही के पश्चात अभियुक्त को भी अपना बयान देना था। अतः ब्रायन गोवर ने खड़े होकर बड़े शांत स्वर में कहा, "माननीय न्यायाधीश महोदय, मैं अदालत को जो कुछ भी बताऊंगा, वह सब अक्षरशः सत्य होगा! अब मैं आपको विशुद्ध रूसी भाषा में ही अपनी सारी कथा सुनाता हूं, यद्यपि मुझे दुभाषिया भी दिया गया है, लेकिन मैंने वर्षों मास्को में रहकर रूसी भाषा अच्छी तरह बोलना-लिखना सीख लिया है। आज भी मुझे गर्व है कि आपके देश की भाषा एवं लोगों से मैंने बेहद प्यार किया है। उदाहरण के लिए मैंने ऐलेना से प्यार किया और नतीजे में यहां तक आ पहुंचा हूं। इतना ही नहीं, इस देश के विकास में मेरा भी श्रम है। मुझे यह भी याद है कि वर्षों से यहां के देशवासियों से मेरा सौहार्द्रपूर्ण संबंध रहा है। इस प्रकार मैंने अपनी सारी दिली बातें आपको बता दी हैं। अब अदालत जैसा चाहे 'मुझे सजा दे या मुक्ति!"

उपरोक्त बयान देकर ग्रोवर शांत-चित्त आकर अपनी कुरसी पर बैठ गया। उसका चेहरा पूर्ववत निर्भीक एवं शांत था। कहीं कोई शिकन नहीं आयी थी क्योंकि, ऐलेना से उसे सच्चा प्रेम था। सच्चे प्यार में अगर प्रेमी की जान भी चली जाए, तो पुनर्जन्म लेकर दोनों का

पुनर्मिलन होता है!

इस प्रकार पूरे तीन घंटे तक प्रतिवादी का बयान एवं उसके वकील की जिरह को सुनकर न्यायाधीश महोदय उठकर अपने चैंबर में सलाह-मशविरे के लिए चले गये। उनके जाते ही अदालत के कमरे में पुनः शोरगुल आरंभ हो गया। लोगों में तरह-तरह की चर्चाएं होने लगी, उनमें कुछ आशावादी थे, तो कुछ निराशावादी!

**न्यायाधीश का निर्णय**

थोड़ी देर बाद, घंटी बजने के साथ जूरी सहित जज भी अपनी जगह पर आकर पूर्ववत बैठ गये। अदालत में पुनः शांति आ गयी। न्यायाधीश भी काफी गंभीर मुद्रा में थे। थोड़ी देर बाद मुख्य न्यायाधीश ने तत्काल अपना निर्णय सुना दिया, 'जिसमें उन्होंने ब्रायन मांटेग्यू ग्रोवर को हवाई उड़ान भरकर सोवियत संघ में अवैधानिक रूप से प्रवेश करने के लिए अपराध संहिता की धारा ५९ एवं ३ के अनुसार उसे दोषी पाया गया था। अदालत द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया था कि वहां उन कार्यों से कोई मतलब नहीं है, जिससे कि उक्त अपराध हुआ है! अदालत इस अकाट्य सत्य को भी मानती है कि प्रतिवादी एक रूसी युवती से सच्चा प्रेम करता है और वह युवती भी इसे दिल से चाहती है। दोनों अपनी प्रेम-परीक्षा में अब उत्तीर्ण हो चुके हैं। हम सब लोगों को ग्रोवर का सम्मान करना चाहिए। इस प्रकार मात्र धारा ५१ के आधार पर अदालत उसे मात्र १५०० रूबल जुर्माना अथवा एक माह की कैद की सजा देती है।'

न्यायाधीश के इस विवेकपूर्ण निर्णय पर अदालत में लोगों ने उनकी जय-जयकार की। लोगों ने इस अनोखे एवं ऐतिहासिक प्रेम-प्रकरण के निर्णय तथा जज की बुद्धिमत्ता पर उन्हें बधाइयां दीं। इस अनोखे निर्णय की खबरें रेडियो मास्को तथा बी. बी. सी. ने प्रसारित कीं। ६ जनवरी, सन १९३९ के ताजा ग्रंक में 'डेली-टेलीग्राफ' एवं 'मार्निंग पोस्ट' ने भी रूसी विधि व्यवस्था की सराहना करते हुए लिखा कि इस प्रकरण से लगता है कि रूसी संविधान में मानव मूल्यों पर ही अधिक बल दिया जाता है।

इस निर्णय के दो-तीन दिनों बाद ग्रोवर ने एलेना से विवाह कर लिया। फिर विधिवत वीसा लेकर लंदन के लिए रवाना हो गये। लंदन विमान-तल पर पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, युवक-युवतियों ने इस युगल प्रेमियों का दिल खोलकर स्वागत किया।

हेडक्वाटर ने एक पुलिस स्टेशन को फरार अपराधी के विभिन्न रूप से खींचे गये छः फोटो भेजे। दूसरे दिन एक कांस्टेबिल ने हेडक्वाटर को तार भेजा--

"आपने जो चित्र भेजे हैं, उनमें से पांच अब तक गिरफ्तार किये जा चुके हैं। बाकी की तलाश जारी है।"

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गौरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित।

मुंहासों की क्रीम
ESKAMEL
FOR THE TREATMENT OF PIMPLES AND ACNE
डाक्टरों की सिफारिशवाली मुंहासों की क्रीम.
अगर आप समय रहते सावधान नहीं होते, तो मुंहासे जाते-जाते बड़े भद्दे दाग़ छोड़ जा सकते हैं. इस काम में आप दो तरह से अपनी मदद कर सकते हैं. चाहे जितनी खुजली आए, मुंहासों को हाथ न लगाइए, मुंहासों की क्रीम एस्कमेल लगाइए — जो मुंहासों और मुंहासों के दाग़ की रोकथाम में सहायक है.
हाथ न लगाइए! अगर आप मुंहासे खोदेंगे, खरोंचें या छुएंगे, तो वे फैल सकते हैं.
अपने चेहरे पर गीली रूई से एस्कमेल लगाइए.
एस्कमेल में दो विशिष्ट तत्त्व हैं जो इनका फैलना रोकते हैं, त्वचा के तेल तत्त्व कम करते हैं. और इस तरह मुंहासों को जल्दी सुखाते हैं.
SK&F
स्मिथ, क्लाइन एण्ड फ्रेंच उत्पादन.
• एस्कमेल एक रजि. ट्रेडमार्क है.
लिंटास-ESK-2-172 HI

पुनर्मिलन होता

इस प्रक
वादी का
जिरह
उठकर
के लि
के कम
लोगों
उनमें
वादी
न्या

हवाई उड़ान भरकर सोवियत संघ में अवैधानिक रूप से प्रवेश करने के लिए अपराध संहिता की धारा ५६ एवं ३ के अनुसार उसे दोषी पाया गया था। अदालत द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया था कि वहां उन कार्यों से कोई मतलब नहीं है, जिससे कि उक्त अपराध हुआ है ! अदालत इस अकाट्य सत्य को भी मानती है कि प्रतिवादी एक रूसी युवती से सच्चा प्रेम करता है और वह युवती भी इसे दिल से चाहती है। दोनों अपनी प्रेम-परीक्षा में अब उत्तीर्ण हो चुके हैं। हम सब लोगों को ग्रोवर का सम्मान करना चाहिए।

फिर विधिवत ... लेकर लंदन के लिए रवाना हो गये। लंदन विमान-तल पर पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, युवक-युवतियों ने इस युगल प्रेमियों का दिल खोलकर स्वागत किया।

हेडक्वाटर ने एक पुलिस स्टेशन को फरार अपराधी के विभिन्न रूप से खींचे गये छः फोटो भेजे। दूसरे दिन एक कांस्टेबिल ने हेडक्वाटर को तार भेजा—

"आपने जो चित्र भेजे हैं, उनमें से पांच अब तक गिरफ्तार किये जा चुके हैं बाकी की तलाश जारी है।"

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से डा. गौरीशंकर राजहंस द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित।

# मुंहासों के लिए ऐसी क्रीम चुनिए जो न केवल मुंहासों की बल्कि मुंहासों के दाग़ की रोकथाम में भी सहायक हो

# एस्कमेल

## मुंहासों की क्रीम

अगर आप समय रहते सावधान नहीं होते, तो मुंहासे जाते-जाते बड़े भद्दे दाग़ छोड़ जा सकते हैं. इस काम में आप दो तरह से अपनी मदद कर सकते हैं. चाहे जितनी खुजली आए, मुंहासों को हाथ न लगाइए, मुंहासों की क्रीम एस्कमेल लगाइए—जो मुंहासों और मुंहासों के दाग़ की रोकथाम में सहायक है.

डाक्टरों की सिफारिशवाली मुंहासों की क्रीम.

हाथ न लगाइए! अगर आप मुंहासे खोदेंगे, खरोंचें या छुएंगे, तो वे फैल सकते हैं.

अपने चेहरे पर गीली रूई से एस्कमेल लगाइए.

एस्कमेल में दो [illegible] तत्व हैं जो इनका फैलना रोकते हैं, त्वचा के तेल तत्त्व कम करते हैं, और इस तरह मुंहासों को जल्दी सुखाते हैं.

SK&F

स्मिथ, क्लाइन एण्ड फ्रेंच उत्पादन.

* एस्कमेल एक रजि. ट्रेडमार्क है.



लिंटास-ESK-2-174 HI

# सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला

# आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

*"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।*

*इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।*

**सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?**
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

**रोग लक्षण क्या हैं?**
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

**क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?**
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

**एनासिन कैसे सहायक होती है?**
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज़ असर है– क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टरें सब से ज़्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है– क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

**आपको और क्या करना चाहिए?**
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर ग़रारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
जेफ्री मॅनर्स के एनासिन विभाग की ओर से

A 16-4/77 *Regd. T.M.

# शब्द सामर्थ्य बढ़ाइए

• शांडिल्यायन

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों, उन पर चिह्न लगाइए और अगले पृष्ठ पर दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

१. **वदान्यता**—क. बराबरी, मुकाबला, ख. उदारता, विशालहृदयता, ग. दूसरों से कोई बात कहना, घ. सौम्यता, सुशीलता।

२. **विदग्ध**—क. जो जले नहीं, अदह्य, ख. भस्मीभूत, पूर्णतः जला हुआ, ग. निपुण, चतुर, पंडित, घ. जलनेवाला, ईर्ष्यालु।

३. **लासानी**—क. चिपचिपा, लासे-जैसा, ख. जिसकी तुलना या जोड़ का कोई न हो, ग. सरल, जो कुटिल न हो, घ. सुंदर।

४. **उद्धत**—क. जो कहीं से लिया गया हो, उद्धृत, ख. सनकी, पागल, ग. ढीठ, अशिष्ट, घ. उद्यत, तैयार।

५. **जुजबंदी**—क. गुटबंदी, दलबंदी, ख. जिल्द बांधना, ग. किताब के छपे फर्मों को एक में सीना, घ. किसी चीज के टुकड़ों को जोड़-जोड़कर उसे पूरा बना देना।

६. **उत्ताल**—क. कठोर, ख. अहंकारी, ग. झील, घ. ऊंचा, प्रचंड।

७. **दौरदौरा**—क. दौरा, फिट, ख. बोलबाला, ग. समय, घ. भागदौड़।

८. **चंचुप्रवेश**—क. चोंच डालना, ख. दखलअंदाजी, ग. दाल-भात में मूसलचंद होना, घ. साधारण ज्ञान।

९. **पुत्रेष्टि**—क. पुत्र की इच्छा या कामना, ख. पुत्र पैदा होने पर किया जानेवाला एक संस्कार, ग. पुत्र-प्राप्ति के लिए प्राचीन भारत में किया जानेवाला एक यज्ञ, घ. पुत्र की प्राप्ति।

१०. **मुसन्ना**—क. विधवा, ख. रसीद आदि का वह दूसरा भाग जो रसीद देनेवाले के पास रह जाता है, ग. चोरी, घ. एक प्रकार की मौसमी।

११. **प्रत्यूष**—क. तड़का, ख. अमृत, ग. विश्वास, घ. इरादा।

१२. **नतपाल**—क. नाव का झुका हुआ पाल, ख. नमित, ग. तराजू का एक ओर अधिक लटकना, घ. प्रणतपाल।

१३. **दौर्मनस्य**— क. पागलपन, सनकीपन; ख. बुराई, निंदा; ग. दुर्भाव, दुर्भावना, बुरी भावना; घ. मानसिक अशांति।

१४. **तौंसा**—क. क्रोध, गुस्सा, ख. अपमान, निंदा, ग. बड़ाई, प्रशंसा, घ. बड़ी गरमी, शिद्दत की गरमी।

## उत्तर

१. ख. उदारता, विशालहृदयता। **वदान्यता** में उसकी समता में दूर-दूर तक कोई नहीं है। तत्, सं., स्त्री.।

२. ग. निपुण, चतुर, पंडित। तुम्हारे मित्र **विदग्ध** व्यक्ति हैं, उनका तो सभी सम्मान करते हैं। तत्. वि.।

३. ख. जिसकी तुलना का कोई न हो, अनुपम। वह पहलवान तो पूरे शहर में **लासानी** है, भला तुम क्या खाकर उससे हाथ मिलाओगे! अरबी, वि.।

४. ग. ढीठ, अशिष्ट। तुम्हारे इस तरह **उद्धत** होने से काम नहीं चलेगा।

५. ग. किताब के छपे फर्मों को एक में सीना। यों तो 'जुज' शब्द का अर्थ 'टुकड़ा' है, किंतु पुस्तक-व्यवसाय में चार, आठ या सोलह पृष्ठों के समूह या फर्मों को 'जुज' कहते हैं। किताब की **जुजबंदी** हो रही है, इसके बाद जिल्दबंदी होगी। फारसी, स., स्त्री.।

६. घ. ऊंचा, प्रचंड तथा भयंकर। समुद्र की **उत्ताल** तरंगों को देखकर छोटी-सी नौका से उस द्वीप तक जाने का विचार स्थगित करना पड़ा। तत्., वि.।

७. ख. बोलबाला, प्रधानता, प्रबलता। पिछले दिनों देश में चुनाव का **दौर-दौरा** रहा। अरबी 'दौर' की पुनरुक्ति से यह शब्द बना है। सं., पुं.।

८. घ. साधारण ज्ञान, थोड़ी जानकारी। उनका **चंचुप्रवेश** तो कई विषयों में है, किंतु गहरी जानकारी शायद किसी की भी नहीं है। तत्., सं., पुं.।

९. ग. पुत्र की प्राप्ति के लिए प्राचीन भारत में किया जानेवाला एक यज्ञ। दशरथ ने **पुत्रेष्टि** यज्ञ किया था। तत्., सं., पुं.।

१०. ख. रसीद आदि का वह दूसरा भाग जो रसीद देनेवाले के पास रह जाता है। **मुसन्ना** पर आपके हस्ताक्षर इस बात के प्रमाण हैं कि रसीद आपको दी गयी थी। अरबी, सं., पुं.।

११. क. तड़का, भोर, प्रभात। **प्रत्यूष**-वेला में उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त हो पढ़ने बैठ जाया करो। तत्., सं. पुं.।

१२. प्रणतपाल, शरण में आये व्यक्ति की रक्षा करनेवाला। यह शब्द नत+पाल—इन दो शब्दों से मिलकर बना है। उस-जैसा **नतपाल** मैंने देखा नहीं! तत्., सं., पुं.।

१३. ग. दुर्भाव, दुर्भावना, बुरी भावना। उसके प्रति मेरे मन में किसी भी प्रकार का **दौर्मनस्य** नहीं है। तत्., सं., पुं.।

१४. घ. कड़ी गरमी, शिद्दत की गरमी। अगर एक सप्ताह और पानी न बरसा तो इस **तौंसे** में सारी खेती सूख जाएगी। 'तौंसा' शब्द सं. के ताप-उष्मा का तद्भव है। तद्., सं., पु.।

आपके स्वस्थ - संतुलित 'समय के हस्ताक्षर'—'लेखक कीचड़ किस पर उछाल रहे हैं ?' के लिए बधाई स्वीकार करें।

**—र. शौरि राजन,**
**दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास**

जून मास का 'कादम्बिनी' अंक अच्छा लगा। यातना भरी कहानियों ने शरीर में रोमांच भर दिया। नयी कृतियां भी पसंद आयीं।

**—शिव. पी. मधुर, जोवनेर (राजस्थान)**

अपनी ईमानदारी को बेचकर सत्ता के साथ डुगडुगी पीटनेवाले लेखकों के संबंध में 'समय के हस्ताक्षर' के तहत जून अंक में आपने बड़ी सामयिक चेतावनी दी है कि राजनीति से अधिक अविश्वसनीय कुछ भी नहीं है।

नये सूचना-मंत्री के विचारों से आशा जगी है कि अब देश सूचना और प्रसारण के क्षेत्र में सही दिशा की ओर बढ़ सकेगा।

मानसून संबंधी लेख जरा और परिपक्व ढंग से लिखा जाता तो शालेय निबंध-जैसा बनने से बच जाता। डॉ. बाछोतिया और राजकुमार 'सुमित्र' की कविताएं तथा आपातकाल की यातनाभरी कहानियां मार्मिक रहीं।

**—डॉ. दुर्गा पाठक 'आरती', जबलपुर**

चेकोस्लोवाकिया के हिंदी विद्वान डॉ. ओदोनेल स्मेकल का 'विदेशों में कैसी हिंदी चलेगी?' शीर्षक ज्ञानवर्धक लेख प्रेरणास्पद लगा। लेकिन मैं उनके विचार से सहमत नहीं कि भारत में हमें हिंदी का अपरिग्रही रूप अपनाना चाहिए। ऐसी हिंदी कृत्रिम और क्लिष्ट होगी और निश्चय ही कालांतर में खत्म हो जाएगी।

**—डॉ. सतीश चंद्र मिश्र, भोपाल**

'संविधान के घातक स्थल' शीर्षक लेख पढ़कर मैं रोमांचित हो उठा। अपने निर्णय में जस्टिस खन्ना ने जिन-जिन खतरों की ओर संकेत किया था, देश को उनका ही सामना करना पड़ा। आशा की जानी चाहिए कि देश के कर्त्ता-धर्त्ता संविधान में आवश्यक संशोधन कर इन दोषों को दूर करेंगे। **—श्याम मिश्र, वर्धा**

जून अंक सामान्य ज्ञान बढ़ाने में अत्यंत सहायक रहा है। 'राष्ट्रपति का चुनाव कब और कैसे' लेख अच्छा था। 'बिन पायों का पलंग' कहानी के माध्यम से लेखक ने नारी-मुक्ति आंदोलन के मिथ्यात्व पर जो प्रहार किया है वह कुछ सोचने के लिए विवश करता है।

**—एम० जैन, ग्वालियर–४७४००२**

# कादम्बिनी

वर्ष १७ : अंक ९
जुलाई, १९७७

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबंध एवं लेख

संपादक

## राजेन्द्र अवस्थी

### कथा-साहित्य



### कविताएं



### सार-संक्षेप



### स्थायी स्तंभ



मुखपृष्ठ : कुल भाटिया, योग जॉय, खुर्रम अमरोही

**संयुक्त संपादक : शीला झुनझुनवाला**

सह-संपादक : दुर्गाप्रसाद शुक्ल, उप संपादक : कृष्णचंद्र शर्मा, प्रभा भारद्वाज, चित्रकार : सुकुमार चटर्जी

# काल-चिंतन

— प्रश्न है : व्यक्ति जीवन का इतना दुःख, इतना दर्द-संघर्ष-पीड़ा किसके लिए, क्यों सह जाता है ?

●●

— सहज भाव से उत्तर दिया जा सकता है, 'जीना एक मजबूरी है । मृत्यु सांसों के द्वार तभी खटखटाएगी जब सांस की अंतिम इकाई टूटने लगेगी ।'

— इस प्रक्रिया तक पहुंचने में अनेक खतरे पैदा किये जा सकते हैं :

- विषपान
- दुर्घटना के लिए प्रयत्न
- आत्मदाह

— प्रमाण उपलब्ध हैं, इन सारे प्रयत्नों ने अपंग, आश्रित और शरीर-क्षयी बनाकर अपनी ही मृतप्राय देह का भार ढोने के लिए आदमी को विवश छोड़ दिया है ।

— वह आंख में पट्टी-बंधे कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात एकरस क्रंदन करता रहा है; मृत्यु ने तब भी उसे जीवन नहीं दिया और उसकी गुहार तथा पुकार दूसरों के लिए दया का पात्र बनकर उसका मखौल उड़ाती रही है ।

— अर्थ हुआ आत्महत्या के समस्त साधनों के बावजूद जीवन-पथ पर लगा मील का अंतिम पत्थर संघर्षों के बाद ही मिलेगा ।

— जीवन में संघर्ष अनिवार्य है ।

— मनुष्य-जन्म स्वयं चेतना की संघर्षरत प्रक्रिया का प्रतिफल है ।

— अनिवार्यता विवशता भी हो सकती है और अंधेरे में सफेद फूलों की तरह चमकनेवाली एक मुसकान भी ।

●●

— कहानी एक सागर-यात्री की है— अनंत, अथाह जलराशि और केशराशि की तरह रात्रि के सघन अंधकार में काजल की कोठरी का खिसकना । अनमने यात्री ने अपनी बौद्धिक क्षमताओं को गिरवी रखकर पानी म छलांग लगानी चाही; तभी उड़नेवाली मछलियों का श्वेत समूह बिजली की तरह कौंध गया । यात्री की छलांग रुक गयी : ये जीवनदायिनी किरणें कहां से आयीं ? वह जहाज के शिखर पर माथा थामकर लेट गया और सो गया । आत्म-

हत्या के सभी मंसूबे व्यर्थ; अनवरत मानसिक संघर्ष के फल विफलता के द्वार पर उस तरह चिपक गये जैसे क़ीमती कागज सस्ती गोंद से चिपक जाता है।

— यात्रा कठिन थी, लंबी भी और एकाकी—उसे काटनी पड़ी !

— काश ! हमारी एक भी चाह पूरी हो सकती !

●●

— सृष्टि एक चक्र है : सरिता सागर म; सागर महासागर में; महासागर सूरज-किरणों में; किरणों का विलीनीकरण बादलों में; बादल का परिवर्तन पानी में; पानी का उतार धरती पर; धरती की फिसलन गड्ढे और नालों में और नालों का बेसब्र प्रवाह फिर सरिता में।

— एक सत्य जहां से शुरू हुआ था, असलों के अनंत दरवाजों से टक्कर खाता हुआ अंततः फिर वहीं पहुंच गया।

— वहीं पहुंचना था तो इतनी लंबी यात्रा क्यों ?

— यह भी नियति है। सब कुछ जानते और पहचानते हुए भी हम वही करते हैं, जो नहीं करना चाहिए।

— आदमी अपनी आयु के पैर कितने भी आगे बढ़ा ले, वह अंततः रहता एक बालक ही है।

— बालक यानी निरीह और अज्ञानी।

— कोई भी व्यक्ति ज्ञान के भंडार को नहीं खरीद सका।

— आदमी के भीतर जितना ज्ञान भरा है, कोई उसे बाहर निकाल नहीं सका, इसीलिए विश्व निरंतर गतिशील है और आगे बढ़ रहा है।

— सभ्यता के विकास का क्रम अक्षय ज्ञान-संपदा की ही थाती है। उसी से ज्ञानशील मशीनों का निर्माण हुआ और कंप्यूटर-जैसे द्रुत संवेगों को जन्म मिला।

— मनुष्य की अतृप्त भटकन और जीवन की अनजानी देहली की अनभिज्ञता सभ्यता के इतिहास की मूल रेखा बनी है।

●●

— वृद्ध और अपंग जीवन की आकांक्षा से प्रेरित हैं।

— सारी बीमारियों को तोड़ फेंकने की इच्छा कभी टूटती नहीं।

— प्राप्य को प्राप्त करने का संघर्ष आत्मचेतना है।

— मृत्यु के निकट पहुंचकर मृत्यु-इतर जीवन का शाश्वत स्मृति-चिह्न छोड़ जाने की लालसा सहज उद्भूत सत्य है।

— जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे, अपेक्षित-अनपेक्षित इकाइयों को दान देना, पुण्य लूटना या धर्म बनाये रखना नहीं, बल्कि मात्र मन का संतोष है।

— संतोष आकाश के बीच खड़ा हुआ वह नर्म परतोंवाला समतल धरातल है, जो न तो धरती की चुंबकीय शक्ति से प्रभावित होता और न शून्य के खिंचाव-क्षेत्र में पड़ता ।

— वह त्रिशंकु की तरह अधर में लटका हुआ वह महानतम समतल है जो मनुष्य के जीवन से सार्थक, अ-सार्थक सभी तरह के कार्य कराता है ।

— कहा है, 'जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ।'

— संतोष मिलता कहां है ?

— किसे ?

— कब ?

— मिला भी है कभी ?

— महान तपस्याओं, अनंत यात्राओं और अथाह आकांक्षाओं की थकान भी संतोष को नहीं पा सकी ।

— लेकिन मानव-मूल्य और मानव की क्रियाएं उसी ओर गतिशील हैं ।

— होना भी चाहिए, क्योंकि होने और न होने का पुरातत्त्व न रहे तो शोध किसका ?

●●

— दोस्त ! मनुष्य जो दुःख, दर्द, संघर्ष, पीड़ा—और मैं यह भी कहूं कि सुख, सुख का एक महानतम क्षण, वियोग का दीर्घताप और संयोग का मौन आमंत्रण—सभी कुछ वह मात्र अपने संतोष के लिए सहता है ।

— मनुष्य शायद जीता ही अपने लिए है और विडंबना यह कि वह जिंदगी-भर दूसरों के लिए जीने का नाटक रचाता रहता है ।

विनोद अग्रवाल

# पुलिस को भी माफ

देश की बदली हुई स्थितियों के संदर्भ में प्रश्न यह उठता है कि पुलिस की भूमिका क्या है ? आपातस्थिति के दौरान जो ज्यादतियां की गयी हैं उनके लिए जिम्मेवार कौन है—उस समय के प्रशासक अथवा पुलिस या दोनों ? यह सोचते ही एक घटना याद आ जाती है । श्री पी. एन. सिंह को जेल में जो यातनाएं दी गयी हैं वे समाचारपत्रों के माध्यम से सामने आ चुकी हैं। इन यातनाओं के लिए जिम्मेदार एक पुलिस-अफसर से (जो अब रिटायर्ड हो गये हैं) हमने पूछा कि आखिर पुलिस-अफसरों की जिम्मेदारी मनुष्यता के प्रति भी कुछ होती है या नहीं ? उन्होंने जवाब दिया, 'हम तो उस देवी के नौकर हैं और उनके हित के लिए कानून के रक्षक हैं। यह कहना गलत है कि पुलिस जनता की सेवक है ।'

इस उत्तर ने सचमुच हमें चौंका दिया और सोचने के लिए मजबूर किया है कि यदि हमारे देश की पुलिस का यही रवैया है तो यह स्थिति कहां तक चलेगी। यद्यपि पुलिस के अफसरों के कर्तव्यों के संबंध में जो विचार सामने आये हैं वे कुछ दूसरे भी हैं। श्री तारकुंडे ने हाल ही में अपने एक भाषण में कहा था कि 'भारतीय पुलिस का व्यवहार जनता के प्रति अच्छा नहीं है। उसे जनता के सेवक के रूप में कार्य करना चाहिए।' उन्होंने यह भी कहा था कि 'यह एक दुःखद स्थिति है कि हमारी पुलिस का लोकतंत्र के प्रति आदर नहीं'। हमारे प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने यह बात कई बार दोहरायी है कि पुलिस को जनता का सेवक होना चाहिए। श्री जयप्रकाश नारायण ने कई बार कहा है, 'पुलिस में विवेक हो और जिस आदेश को वह गलत समझती है उसे मानने से वह इनकार कर दे'। गृह-मंत्री श्री चरणसिंह ने हाल ही एक इंटरव्यू में (जो अगले अंक में प्रकाशित हो रहा है) हमसे कहा कि 'पुलिस को कानून की रक्षा करनी चाहिए और मैंने तो इंस्पेक्टर जनरल ऑव पुलिस को बुलाकर यहां तक कह दिया है कि वह मेरे भी गलत आदेश को मानने से इनकार कर सकता है।' गृह-मंत्री का यह भी खयाल है कि पुलिस को सामाजिक और असामाजिक तत्त्वों में भेद बरतना चाहिए और अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझनी चाहिए। दिल्ली के उच्चपदस्थ पुलिस-अधिकारी ने एक महत्त्वपूर्ण बात अपने भाषण में कही थी कि पुलिस के सिपाही और अधिकारी आखिर वृहत्तर भारतीय समाज के ही अंग हैं। इसलिए जैसा समाज होगा वैसी ही पुलिस होगी। हम नहीं जानते कि यह बात कहां तक विवेकपूर्ण है। लेकिन यह स्पष्ट है कि न तो समूचा समाज भ्रष्ट और गलत है और न ही समूचा समाज अच्छा है। उसमें कई तरह के लोग हैं—विवेकशील भी, डाकू और चोर-उचक्के भी। यदि उक्त पुलिस-अधिकारी की बात मान ली जाए, तो यह मानना पड़ेगा

# नहीं किया जा सकता

कि पुलिस-सेवाओं में विवेकशील व्यक्ति नहीं जाते। वास्तव में यह बात भी गलत है। 'इंडियन पुलिस सर्विस' में जो व्यक्ति चुने जाते हैं वे सभ्य समाज के और संस्कारी परिवार की निष्ठावान प्रतिष्ठित इकाई होते हैं। पुलिस जनता की सेवक है और उसे समाज में शांति, व्यवस्था और अनुशासन बनाये रखने के लिए नियुक्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पुलिस के सिपाही अथवा पुलिस के अफसर जनता के साथ की गयी ज्यादतियों को बर्दाश्त नहीं कर सकते। उन्हें अपराधियों और शिष्ट समाज के बीच के अंतर को स्पष्ट समझना होगा। आश्चर्य तो यह है कि जब पुलिस-अधिकारी स्वयं अपराध करने के बाद पकड़ा जाता है और उसके साथ दूसरा पुलिसवाला ज्यादती करता है तब वह शोर मचाता है कि उसके साथ व्यवहार ठीक नहीं हुआ। यदि पुलिस के अधिकारी ज्यादतियों पर विश्वास

करते हैं तो उन्हें ज्यादतियां सहनी भी चाहिए। यूरोप और पश्चिम के अनेक देशों का भ्रमण करते हुए हमारा पुलिस से कई बार सामना हुआ और हम विश्वास के साथ यह कह सकते हैं कि वहां की पुलिस सही माने में जनता को सहयोग देती है और उसकी मार्गदर्शक है। उस तरह की पुलिस-व्यवस्था की कल्पना इस समय कम से कम इस देश में एक सपना है।

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि सारी पुलिस-व्यवस्था हमें अंगरेजी सत्ता के साथ मिली है। यही पुलिसवाले थे जिन्होंने भारतीय होकर भी अंगरेजों के जमाने में अपने ही देश के लोगों के साथ नृशंस व्यवहार किया था; यद्यपि एक उदाहरण है कि अंगरेजों के समय में जब भारतीय नेवी को गोली चलाने के आदेश दिये गये थे तब उसने अकारण गोली चलाने से इनकार कर दिया था। वह एक विदेशी सत्ता का समय था। हमारी पुलिस ने तब भी अधिकांशतः जनता के साथ धोखा ही किया था। आजादी के बाद जनता और पुलिस एक ही देश, एक ही समाज और एक ही नागरिकता की इकाई हैं। आशा थी कि अब कम से कम उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आयेगा और वह सही स्थिति को समझेगी। लेकिन उसे समझाये कौन? हमारी प्रशिक्षण-व्यवस्था अब भी अंगरेजों की दी हुई लीक पर चली जा रही है। परिणाम यह है कि पुलिस-मनोविज्ञान में कोई बहुत अंतर नहीं आया है और इसके फलस्वरूप इस देश का सभ्य नागरिक प्रत्येक पुलिसवाले को घृणा और हीनता की दृष्टि से देखता है और अपराधी बेहद घबराता है। पिछले बीस महीनों में पुलिस-यातनाओं के समाचारों ने हमारी आंखें खोल दी हैं। हमारी समझ में यह नहीं आता कि लारेंस, जार्ज फर्नांडीज, राजन और स्नेहलता-जैसे ढेर-से व्यक्तियों की एक लंबी सूची है जिनके साथ पुलिस ने जो अत्याचार किये हैं उसकी प्रेरणा के स्रोत क्या रहे हैं? यह मान लेना गलत होगा कि राजनेताओं के निर्देश से ऐसा सब हुआ है। राजनेता संभवतः मात्र आदेश देते हैं, तौर-तरीके नहीं बताते। लेकिन यदि आपात-स्थिति में यह भी बताये गये हैं तब तो बात और है।

हमारे सामने मूल प्रश्न यह है कि आपात-स्थिति की ज्यादतियों की बात करते समय हम राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को तो देखते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि इन अमानुषिक कार्यों के लिए जिम्मेदार अफसरों की भी एक लंबी श्रृंखला रही है। जहां राजनैतिक भ्रष्टाचारों की विभिन्न स्तरों पर जांच की जा रही है वहां यह भी आवश्यक है कि पुलिस की ज्यादतियों की भी जांच की जाए और ऐसे पुलिस-अफसरों को कदापि क्षमा नहीं किया जाना चाहिए जिन्होंने अपनी मनुष्यता को ताक में रखकर अपने ही देश के उन व्यक्तियों के खून के साथ खेलने की कोशिश की है जो देशद्रोही नहीं थे बल्कि देश की एक विशिष्ट व्यवस्था के विरोधी थे। गलत व्यवस्था का विरोध करना प्रजातंत्र का अधिकार है और हमने प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था को स्वीकार किया है तो उनसे मिलनेवाले स्वाभाविक अधिकारों को भी स्वीकार करना होगा।

आई. पी. एस. अफसरों ने हाल ही में अपनी गलतियों को स्वीकार किया है और सही 'चरित्र' की ओर बढ़ने के लिए निश्चय किया है—यदि वे ऐसा कर सके तो भारतीय पुलिस के इतिहास में यह एक नया कदम होगा। •

• शिवकुमार कौशिक

जिस 'हिरदय' में श्याम विराजे
जिस गोकुल में मुरली बाजे
साधु करे बसेरा !

प्रकट में यह रचना भक्तिरस के किसी कवि की प्रतीत होगी, पर वास्त-विकता यह है कि यह पाकिस्तान के कौमी शायर हफीज जालंधरी की है। कुछ और पंक्तियों का मुलाहजा फरमाइए—

**रंग-रंग से जले ज्वाला**
**अंग-अंग का रूप निराला**
**नयन जपें दर्शन की माला**
**साजे सांझ-सवेरा**
**बस दर्शन—दर्शन की माला !**

तीन-खंडीय 'शाहनामा-ए-इसलाम' के रचयिता हजरत हफीज के अनुसार उनकी उपर्युक्त रचना मीरा के कृष्ण-प्रेम से प्रेरित है और उनका व्यक्तित्व वाल्मीकि के उस वाक्य विशेष से प्रभावित है जिसमें कलाकारों की तीन श्रेणियां बतायी गयी हैं। वे कहते हैं : "मेरे दीवानखाने में सिर्फ दो तसवीरें हैं—एक हाली की, दूसरी गालिब की, और अगल-बगल रखी इन तसवीरों के नीचे मैंने वाल्मीकि का वह वाक्य लिखा है जो ऊपर बताये गये

जिन्दगी की राह में अनेक तूफानों से गुजरना पड़ा

श्लोक का अर्थ है।

"वाल्मीकि के लिहाज से कलाकारों की तीन श्रेणियां कौन-सी हैं?" मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया : "एक वे जो दिन-दहाड़े लूटने में माहिर हैं, दूसरे वे जो मिलकर मारते हैं। तीसरे वे जो इनसान को अपनी रचनाओं से ऊपर उठाते हैं, यानी जो इनसान के अंदर छिपी ऊंचाई को उभारते हैं—

**झूठा सब संसार प्यारे**
**झूठा सब संसार**
**मोह का दरिया**
**लोभ की नैया**
**कामी खेवनहार**
**मौज के बल पर चल निकले थे**
**आन फंसे मंझधार**
**प्यारे सब झूठा संसार !**

तीसरे दशक में हफीज साहब ने जब कबीर, मीरा आदि से प्रेरित गीतों को मुशायरों में सुनाया, तब जैसा कि उनके मेजबान जफर पयामी (दीवान बरिंदर नाथ) ने बीच में टोकते हुए बताया, उर्दू-जगत में उनके खिलाफ एक तूफान खड़ा हो गया और यह तूफान भी एक रचना दे गया :

**हफीज अपनी बोली**
**मुहब्बत की बोली**
**न उर्दू, न हिंदी**
**न हिंदुस्तानी**

जफर पयामी ने जैसे ही हफीज साहब की यह सुर्चाचित रचना पढ़ी, हफीज साहब की आंखें एकदम दमक आयीं—"गांधीजी ने मेरी इस रचना की बड़ी तारीफ की और नेहरूजी तो मेरी एक रचना पर खुशी से उछल पड़े।"

"वह कौन-सी रचना थी?" यह पूछे जाने पर उन्होंने बताया : "यह बात लंदन की है। वहीं उनकी सदारत में मैंने यह रचना सुनायी थी—

**सब हैं भिखारी भारत के द्वारे**
**अपने वतन में सब कुछ है प्यारे**

हफीज साहब इस रचना के साथ जैसे बैठे-बैठे ही बीते जमाने में पहुंच गये। बोले, "जवाहरलाल 'भारत' शब्द पर बहुत खुश हुए और इसके इस्तेमाल के लिए मेरा शुक्रिया भी अदा किया : दरअसल, अपने देश का असल नाम यही है—'भारत' और 'भारतवर्ष', हिंदुस्तान तो दूसरों का दिया नाम है।"

गांधीजी और जवाहरलालजी का जब जिक्र आया तब बातों ही बातों में कायदे आजम जिन्ना साहब का भी नाम उभर आया—"एक दिन उन्होंने (जिन्ना साहब ने) मुझे बुलाया और पूछा : आखिर अब यह फसाद क्यों? पाकिस्तान फसाद के लिए नहीं बल्कि उसे खत्म करने के लिए बनाया गया है, ताकि हम अलग-अलग अपनी तरक्की कर सकें!"

"क्या उनकी इस भावना को आपने किसी नज्म में उतारा?"

मेरे इस सवाल का बड़ी फुरती से उन्होंने जवाब 'हां' में दिया और बोले,

"लीजिए, वह भी सुन लीजिए। यह शायरी पाकिस्तानियों को मुखातिब करते हुए लिखी गयी थी—

**नये दौर में मेहनत सरमाया गरदानी जाएगी**
**मुफ्तखोर की तोंद न आली पाया जानी जाएगी**
**कद्रे हुनर मेयार ही से पहचानी जाएगी**
**पैसे पर मन्कूश कोई भी राय न मानी जाएगी**

हफीज साहब के अनुसार 'नये दौर में' शीर्षक से पाकिस्तान के भावी स्वरूप पर लिखी गयी यह पहली नज्म थी। "लेकिन, क्या आपने उस दौर पर भी कोई नज्म लिखी, जिसमें..."

मैं अभी अपना सवाल पूरा भी नहीं कर पाया था कि वे बोल उठे, "क्यों नहीं, आखिर जो कुछ हुआ, वह सीधे दिल पर चोट करनेवाला था, पर उससे भी अधिक चोट पहुंचानेवाली बात यह थी कि जो शायर आम आदमियों की नुमाइंदगी करने का दम भरते थे, वे खामोश थे। उन्हें खामोश देख एक दिन मैंने उनमें से एक को टोका—'बोलिए, आखिर कुछ बोल क्यों नहीं रहे?' वे साहब बोले—'क्या आप हकीकत बयानी कर पाएंगे?'

'क्यों नहीं?' मैंने कहा।

'तो फिर एक बैठक बुला ली जाए?'

'जरूर,' मैंने कहा।

'और आप उसकी सदारत कर सकेंगे?'

अहले कलम रंगे-जहां देख रहे हैं ?

'जरूर!' मैंने फिर कहा।"

हफीज साहब ने आगे बताया, "और इस बैठक में मैंने एक सवालिया नज्म पढ़ी। ये सवाल वहां मौजूद सभी शायरों से थे—

**ऐ अहले कलम**
**रंगे-जहां देख रहे हो?**
**यह खून का सैलाबे-रवां देख रहे हो?**
**है खाके-वतन शोलाफिशां देख रहे हो?**
**अफलाक पे आहों का धुआं देख रहे हो?**
**यह कहरे-सियासत है या कहरे इलाही?**
**ऐ अहले-कलम देख रहे हो यह तबाही?**
**बरछों पे चढ़ाये हुए अज साम के परचम**

**हर सीनाए दोशीजा-ए-मासूम का सर खम**
**इस जिस्मे बरहना पे भी**
**हर दुख्तरे आदम आती है नजर ओढ़े हुए चादरे मरियम**
**खामोश निगाहों की हया देख रहे हो ?**

हफीज साहब के साथ लेखक

देखा, अपने ही इन सवालों के बीच जैसे वे कहीं डूब-से गये; कुछ खामोशी के बाद भर्राये-से स्वर में बोले, "जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ ।" इन शब्दों के साथ जैसे उनकी निगाह में कई दृश्य एकसाथ उभर आये । उनके सामने ही बैठे उनके मेजबान जैसे हकीकत को ताड़ गये । वे उन्हें टोक उठे—"सुबह से काफी बोल चुके हैं, अब कुछ आराम भी कर लीजिए ।" वे तुरंत बोल उठे—

**जो मेरे दिल में है कहने दीजिए**
**या मुझे खामोश रहने दीजिए !**

यह कह हफीज साहब हंसे, फिर मेरी ओर देखते हुए बोले, "मरी में कुछ ही फासले पर सन '६५ की जंग में एक बम फटा । मेरे कुछ चोट भी आयी, पर उससे ज्यादा दिमाग पर असर पड़ा । तब से ठीक तरह से नींद नहीं आती, लिहाजा सेहत ठीक नहीं रहती । 'बेटा' ठीक कहता है । इन जनाब को मैं 'बेटा' तभी से मानता हूं, जब ये अपने को लाहौर में 'जफर पयामी' के नाम से कहते फिरते थे, और इसी तखल्लुस से शेरो-शायरी भी करते थे; उधर बेटी मनोरमा (दीवान वरिंदर 'जफर पयामी' की पत्नी) भी मेरी पूरी तरह देखभाल करती है । मैं यहां बहुत खुश हूं और बिलकुल घर की तरह रह रहा हूं ।" यह कहकर वे हंसे, फिर बोले, "मुसलमान पुनर्जन्म में यकीन नहीं रखता, लेकिन अब कुछ ऐसा एहसास हो रहा है कि यह बात भी कुछ बेमानी नहीं है, वरना..."

मैं बीच ही में पूछ बैठा : "सुना है, आपका पृथ्वीराज चौहान के खानदान से भी कुछ ताल्लुक है ।"

"ताल्लुक नहीं, जनाब मैं उन्हीं का वंशज हूं, लेकिन मुगल बादशाह फर्रुखसियर के जमाने में एक खानदानी टुकड़ी इधर

जालंधर की तरफ कूच कर गयी और उसने इसलाम कबूल कर लिया। उसे 'हफ्तहजारी' का रुतवा मिला। 'हफ्तहजारी' का मतलब यह है कि हम ७ हजार सिपाहियों की फौज रख सकते थे।"

सन १९०० में जन्मे हफीज जालंधरी को अगर बंटवारे का खयाल तोड़ जाता था, तो खानदान का खयाल उन्हें कहीं और ही जोड़ जाता था। वे बोले, "हमारे घर में अब भी गाय का मांस नहीं खाया जाता, और घर की औरतों में तो अब भी वही पुराने संस्कार चले आ रहे हैं।"

सन १९५२ के मुशायरे में उनसे चेम्सफोर्ड क्लब में 'अभी तो मैं जवान हूं' नज्म सुनी थी। उसी के लिए मैंने पुनः अनुरोध किया।

मेरे इस अनुरोध पर गला साफ कर पहले वे अपने में ही कुछ गुनगुनाये, फिर तरन्नुम में आ गये—

**किधर चला है साकिया**
**इधर तो लौट, इधर तो आ**
**अरे ये देखता है क्या**
**सबू उठा, सबू उठा के प्याला भर**
**प्याला भर के दे इधर**
**समां तो देख बेखबर**
**वे काली-काली बदलियां**
**उफक पे हो गयीं अयां**
**ये क्या गुमा है बदगुमां**
**समझ ना मुझे नातवां**
**खयाले जुहद अभी कहां**
**अभी तो मैं जवान हूं:**

और अपनी इस नज्म के साथ वे जैसे-जैसे आगे बढ़े, मय तरन्नुम के, उससे भी कहीं अधिक तेज रफ्तार से पीछे लौटते दीख रहे थे। वही पुरानी आवाज और वही पुराने अंदाज! लगा, जैसे इस बीच कुछ भी तो नहीं बदला है, पर पाकिस्तान के 'कौमी तराना' के रचयिता की शर्तें शायद कुछ बदल रही हैं—

**जिंदगी और मिले और मिले और मिले**
**शर्त यह है कि पुराना वही लाहोर मिले।**

"कौन-सा लाहौर ?" मैंने पूछना चाहा, पर पूछा नहीं। कारण ? इसी बीच उनसे कोई और साहब मिलने आ गये थे— मय हवाईटिकट के, हैदराबाद जाने के लिए। हफीज का न अभी सफर रुका है, न शायरी, और न ही उन्हें सुनने के तकाजे।

ख्वाहिश थी, कुछ देर और बैठूं, सुनूं, सुनता रहूं, लेकिन जैसे ही यह खयाल आया कि निश्चित कोटे से मैं कहीं ज्यादा उनका वक्त ले चुका हूं, तो अपनी ख्वाहिश को दबा गया, फिर भी चलते-चलते एक बात और पूछ ही बैठा: "जनाब को कुछ याद है कि १९५२ के मुशायरे से लौटने पर आप बेदी साहब (बी. पी. एल. बेदी— कबीर बेदी के पिता) के साथ ३-मानसिंह रोड वाली कोठी में ठहरे थे ? मैं भी तब वहीं रह रहा था और इस 'साथ' का मुझे लाभ यह हुआ था कि मैंने आपसे कई नज्में सुनी थीं।" उन्हें उस पुरानी बैठक की याद ताजा हो आयी। बोले—

**अरे कर रहा हूं तलाश अपनों की**
**जब से गुम हो गये हैं बेगाने**

उनके सामने झुक 'सलाम' कर मैं आगे बढ़ लिया, लेकिन उन्हीं की एक और शायरी के सहारे—**'एक पहलू यह भी है कश्मीर की तसवीर का'**। आज भी उन्होंने वह सुनायी थी, पर एक शिकायत के साथ—"मुगलों ने वहां बड़े अच्छे-अच्छे बाग लगाये, इमारतें भी बनवायीं, पर जब भी मैं उन्हें देखता था, तब हमेशा एक अफसोस होता था: काश उन्होंने वहां के खूबसूरत इनसानों को खूबसूरत जिंदगी देने पर भी कुछ तवज्जो दी होती! भारत में अब सभी ओर इस बात पर तवज्जो दी जा रही है, यह देखकर खुशी होती है, और इससे भी ज्यादा इस बात पर कि हमारे बीच ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा बनायी गयी मनहूस दीवारें टूट रही हैं—पुराने ढर्रे भी। लेकिन खबरदार! 'मरी मरी' (पाकिस्तान के शहर) को मैंने सिर्फ इसलिए छोड़ दिया कि वहां फैशनपरस्ती का पूरा बुखार चढ़ा हुआ है। फैशन बुरा नहीं, लेकिन नकल भी ठीक नहीं—आखिर हममें 'हमारा' भी कुछ बाकी रह जाना चाहिए, और यह बात भारत और पाकिस्तान दोनों ही पर लागू होती है—आखिर, दोनों की तहजीब एक है। भाई मेरे, घर ही तो बटा है, तहजीब तो नहीं।"

कर रहा हूं तलाश अपनों की

**—बी ३/३४ जनकपुरी, नयी दिल्ली-५८**

# कादम्बिनी

# अगले अंक 'कहानी-अंक' के आकर्षण

## कारागार की सलाखें

मेरे नाखूनों में आलपीनें चुभायी गयीं . . . जयचंद, विदेशी दलाल और अव्वल दर्जे का धूर्त कहा गया

एक केंद्रीय मंत्री को आपात-स्थिति के दौरान दी गयी भीषण यातनाओं की कहानी: उन्हीं की जबानी

## पुराने नागों से निपटना अभी बाकी है

केंद्रीय गृहमंत्री चौधरी श्री चरणसिंह की कुछ महत्त्वपूर्ण घोषणाएं, जो आनेवाले कल का आभास कराती हैं।

● समाजवाद—एक ढोंग ● बड़े कारखानों को झुकना होगा ● हर गांव में हाथ-करघा और छोटे खेत ● आपात-स्थिति के दौरान किये गये अत्याचारों के लिए पुलिस शर्मिन्दा

और भी अनेक बातें जो चौधरी चरणसिंह ने 'कादम्बिनी' संपादक को बतायीं

## जिंदगी और मौत के दस्तावेज

हमारा पूर्व-घोषित स्तंभ अगस्त अंक से। प्रसिद्ध कथाकार जैनेन्द्रकुमार ने अपनी जीवित कलम से मृत्यु का संधि-पत्र लिखा है। पढ़िए—वे क्या चाहते हैं

## आंदोलनों के बीच गुजरती हिंदी कहानी

सही कहानी-लेखन को आघात पहुंचानेवाले लोग कौन हैं? एक विशिष्ट परिचर्चा भाग ले रहे हैं— ● धर्मवीर भारती ● राजेन्द्र यादव ● राजेन्द्र अवस्थी ● महीपसिंह ● धर्मेन्द्र गुप्त ● शैलेश मटियानी और अनेक पुराने-नये कहानीकार

और सार-संक्षेप में पढ़िए एक सनसनीखेज रहस्योद्घाटन

## जेलों में ऐश उड़ाने वाले राजनैतिक बंदी

**अपनी प्रति आज ही सुरक्षित कराइए**
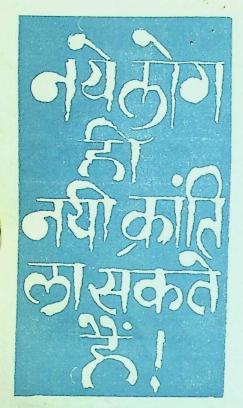
• शीला झुनझुनवाला

स्कूल जाता एक अनाथ बालक। बचपन में उसकी मां गुजर गयी थी। बड़ा हुआ तो पिता गुजर गये। भाई भी नहीं रहे। रोज कुआं खोदना और रोज पानी पीना, यही नियति थी। काम के नाम पर सुबह-सुबह कहीं गाय या भैंस दुहना तो शाम को किसी के घर का छिटपुट काम करना। आमदनी कुल मिलाकर ८-१० आना महीना। इसी में खाना-पीना और पढ़ने-लिखने का इंतजाम, पर बालक



मेधावी था। मैट्रिक तक पहुंच गया। परीक्षा हुई तो प्रथम श्रेणी में पास हुआ। परीक्षा में उतीर्ण होने की खुशी तो हुई, पर एक नीरव रुदन ने मन को घेर भी लिया। एक हाहाकार—निस्सीम, निःशब्द हाहाकार—मन में उमड़ उठा। मां-बाप-भाई सभी काल-कवलित हो चुके थे। सफलता की इस वेला में प्यार करके सराहनेवाला कोई नहीं था।

**हर स्त्री मां-बहन है!**

अकेलेपन की ऊब से त्रस्त बालक अपने सहपाठी के घर पहुंच गया। देखा, उसकी मां उसे बहुत प्यार कर रही है, गले लगा रही है और तरह-तरह से उसका सत्कार कर रही है, जबकि उसको केवल द्वितीय श्रेणी भर मिली थी। एक बार फिर अकेलेपन के एहसास ने घेर लिया और उपेक्षित आंखों से आंसू टपक पड़े। सहपाठी की मां ने बालक को रोते देखा तो पूछा, "क्या है रे? रोता क्यों है?"

"रोऊं नहीं तो क्या करूं?" बालक ने उत्तर दिया, "तू इसको प्यार कर रही है, सराह रही है। मैं इसलिए नहीं रोया कि तू इसे क्यों सराह रही है, बल्कि इसलिए रोया कि मुझे प्रथम श्रेणी मिली, फिर भी मुझे सराहनेवाला कोई नहीं है।"

मां की ममता पिघल उठी। उसने बालक को अंक में भर लिया और बोली, "रो मत पगले! उसकी तो मैं केवल एक

मां हूं। तू तो ज्यादा भाग्यशाली है, तेरी तो हर स्त्री मां है।"

बालक की आंखें खुल गयीं। उस दिन उसने आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की और सोचा, 'हर स्त्री को मां के रूप में ही देखूंगा, चाहे वह बड़ी हो या छोटी, सुंदर हो या असुंदर।' वह दिन और आज का दिन है, हर स्त्री 'नानाजी देशमुख' की मां है या बहन।

**एक समर्पित व्यक्तित्व**

नानाजी को देखकर एक सीधी, सुदृढ़ चट्टान की याद आती है, जिसमें पत्थर की तराश तो है पर साथ ही है एक विनयशील मधुरता, जैसे चट्टान के पास ही कलकल करता एक मधुर झरना बह रहा हो। उनका व्यक्तित्व एक समर्पित व्यक्तित्व है, अपने ध्येय के प्रति समर्पित, अपनी अस्मिता का आप ही रक्षक।

नानाजी देशमुख ने अपना राजनीतिक जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से आरंभ किया था। मैंने उनसे पूछा, **"देश में कांग्रेस-जैसे संगठन के रहते हुए, आपने आर. एस. एस. को ही क्यों चुना?"**

अपनी सहज मुसकान के साथ उन्होंने बताया कि प्रारंभ में सन '३७ से '३९ तक उन्होंने कांग्रेस संगठन में ही काम किया था, किंतु वहां उन दिनों भी उन्होंने देखा कि सबको पद की होड़ है। मनुष्य अपने से ऊपर उठकर कार्य करे, ऐसी भावना वहां है ही नहीं, जबकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में समर्पित कार्यकर्त्ताओं की कमी
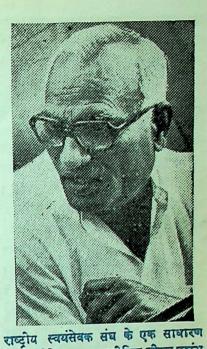
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक साधारण कार्यकर्ता से अपना राजनीतिक जीवन प्रारंभ कर आज जनता पार्टी के महासचिव हैं

नहीं थी। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ किसी को स्वार्थी नहीं कहता, क्योंकि गरीब से गरीब व्यक्ति भी मेहनत करता है। एक अनपढ़ आदमी भी चिलचिलाती धूप में कार्य करता है। क्यों और किसके लिए? अपने स्वार्थ के लिए? नहीं, वह काम करता है अपनी पत्नी, अपनी मां और अपने बेटे के लिए। यहां प्रेरणास्रोत परिवार है। यदि यही प्रेरणा-केंद्र समूचा समाज बन जाए या राष्ट्र बन जाए तो मानव की असली शक्ति विकसित हो सकती है।' राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की यह मूलभूत विचारधारा नानाजी देशमुख

को भा गयी और उन्होंने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया देशहित के लिए, दृष्टि-कोण के विकास के लिए और जन-जन के कल्याण के लिए।

## हम जातिवाद से ऊपर उठ रहे हैं

पिछले लोकसभा-चुनावों की चर्चा करते हुए श्री देशमुख ने कहा कि एक शांतिमय अभूतपूर्व क्रांति अपने देश में हुई है। आजादी के बाद '५२, '५७, '६२, '६७, और '७१—देश में पांच आम-चुनाव हुए। इन पांचों चुनावों में एक चीज बहुत अधिक चलती थी, जाति की भावना। यहां तक कहा जाता था कि वोट और बेटी जाति में ही दी जाएगी। इतना जबरदस्त प्रभाव जाति का था कि यदि अहीर खड़ा हुआ तो सब अहीर को वोट देते थे, यदि हरिजन खड़ा हुआ तो सारे हरिजन वोट उसी को जाते थे। इस प्रकार चमार अलग, भंगी अलग, राजपूत अलग, भूमिहार अलग, ब्राह्मण अलग। अलगाव की यह भावना किसी एक प्रदेश की नहीं थी, सारे देश में ही यही हाल था। इसके अलावा प्रादेशिकता की भावना रहती थी। अनेक क्षेत्रीय पार्टियां पनपने लगती थीं। जाति-वाद और क्षेत्रवाद के साथ-साथ सांप्र-दायिकता की भावना भी खूब उभरी। मुसलमान खड़ा होता तो मुसलमान वोट उसी को मिलते। इस छठे चुनाव में पहली बार एक अभूतपूर्व बात हुई कि लोग जाति, धर्म और क्षेत्रवाद से ऊपर उठे। इस दृष्टि से १९७७ का चुनाव भारत के इतिहास में एक प्रतीक के रूप में लिखा जाएगा। "लोकतंत्र की प्रथम आवश्यकता है जाति, धर्म और क्षेत्रवाद से मुक्ति और यह इसी चुनाव में प्रकट हुई," नानाजी ने कहा।

**क्या हमारा समाज जाति, मजहब और क्षेत्रीयता से स्वयं आक्रांत था या राज-नीतिक दलों ने उसे इस दिशा में बढ़ाया?**

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए नानाजी ने बताया कि "विडंबना यही रही कि राज-नीतिक दलों ने सिद्धांत, नीति और कार्य-क्रमों के आधार पर प्रचार करने के बजाय चुनाव जीता कैसे जाए, इस पर अधिक बल दिया। चुनाव जीतने के लिए सांप्रदायिकता का नारा लगाया गया तथा जातिवाद को बढ़ावा दिया गया। विशाल लक्ष्य को तो एक किनारे कर दिया गया, उसकी जगह एक छोटे लक्ष्य को रखा गया। फलस्वरूप जाति की एकता खतरे में पड़ गयी। पर-स्पर स्नेह, विश्वास समाप्त हो गया, जो सामाजिक जीवन के लिए बहुत आवश्यक होता है।" नानाजी ने हंसते हुए कहा, "मैंने तो शादी की नहीं है। आपने की है, आपको पता होगा, थोड़ा भी संदेह पति के संबंध में पत्नी को हो या पत्नी के संबंध में पति को, तो क्या जीवन चल सकता है? विश्वास सबसे पहली चीज है। परि-वार के लिए यह जितना आवश्यक है, समाज के लिए भी उतना ही जरूरी है। विश्वास होता है तो प्यार जगता है, प्यार
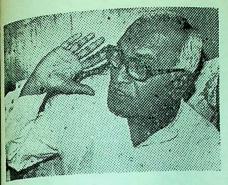
कमाने का साधन ही नहीं होगा तो गरीबी दूर कैसे होगी?

होता है तो सहयोग होता है और सहयोग रहता है तो उसे समाज या जीवन कहा जाता है। और ऐसे विश्वास या सहयोग का भाव पहली बार चुनाव में प्रकट हुआ है। आवश्यकता इसी बात की है कि बस सहयोग, प्रेम और विश्वास को सत्तारूढ़ दल देश के विकास के लिए आकर्षित करे। दूसरे शब्दों में, राष्ट्रनिर्माण के कार्य में छोटे-से-छोटे कार्यकर्त्ता का सहयोग अर्जित करे, तभी हमारा जनतंत्र संसार के लिए एक उदाहरण बन सकेगा।

मेरा अगला प्रश्न था—**क्या जनता पार्टी सैद्धांतिक स्तर पर समाजवाद का कोई विकल्प प्रस्तुत कर सकेगी?**

जनता पार्टी समाजवाद से नफरत नहीं करती। समाजवाद अब वह समाजवाद नहीं है जो मार्क्स की फिलासफी पर आधारित रहा था, जो केवल भौतिकवादी (मैटीरियलिस्टिक) रहा, या जो केवल यह सोचकर चला कि केवल राष्ट्रीयकरण ही एक समाधान है। हमारे समाजवाद का अर्थ यह है कि समाज में जो असमानता या विषमता दिखायी पड़ती है, वह दूर हो। वैसे तो हमारी फिलासफी ही 'सर्वभूतेषु' की है। दो बातें तुरंत दूर होनी चाहिए। पहली आवश्यकता है बेकारी दूर हो। यानी मैं कमाने लगूंगा, तभी तो मेरी गरीबी दूर होगी। कमाने का साधन ही नहीं होगा और कमाऊंगा ही नहीं तो गरीबी कैसे दूर होगी? इस दशा में गरीबी दूर करने का नारा निरर्थक है।

दूसरी आवश्यकता है, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विषमता दूर होनी चाहिए। आज आप देखेंगे कि कूड़े पर पत्तल डालो तो कुत्ते के साथ २-४ बच्चे भी कूड़े के ढेर पर इकट्ठे हो जाते हैं और पत्तल के लिए छीना-झपटी मच जाती है। दूसरी ओर 'एयरकंडीश्नर' के बिना आदमी नहीं रह सकता—तो यह विषमता किसी सच्चे समाज का प्रतीक नहीं हो सकती।

श्री देशमुख ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप देते हुए बताया कि समाज में अंतर इतना होना चाहिए जितना हाथ की पांच अंगुलियों में है। हाथ की अंगुलियों में

कोई छोटी है, कोई लंबी है, कोई पतली है तो कोई मोटी। पांचों बराबर नहीं हैं। किंतु यह ऐसी बनी हैं कि सब मिलकर काम करती हैं। यदि एक अंगुली ३ फुट की होती और एक आधे इंच की, एक मूसल के बराबर मोटी होती और दूसरी मिर्च के बराबर पतली, तो हाथ काम नहीं करता। आज के समाज की यही स्थिति है। एक ओर ऐशो-इशरत के सारे साधन उपलब्ध हैं, दूसरी ओर खाने के नाम पर एक ग्रास अन्न भी नहीं —यह कैसा समाजवाद है ?

नानाजी देशमुख के अनुसार भारत में विषमताहीन समाजवाद की कल्पना सहज और संभव हो सकती है।

**अभी तक इस प्रकार का समाजवाद देश में संभव क्यों नहीं हो सका ?**

इस प्रश्न के उत्तर में उनका कहना था कि हमने सदैव पश्चिम की नकल की। हमारे लिए क्या ठीक है, यह कभी सोचा नहीं। हम अमरीका गये, वहां कुछ देखा, रूस गये वहां कुछ समझा, और उन्हीं योजनाओं और चीजों को हम अपने देश में करने लगे, बिना यह सोचे-समझे कि हमारे देश-काल की परिस्थिति के अनुसार वे योजनाएं सही होंगी या नहीं। इस तरह का अंधानुकरण किसी भी देश के विकास के लिए अनुचित है। उन्होंने कहा, "मैं यह नहीं कहता कि दुनिया में विकास की जो आधुनिकतम चीजें हैं उनका उपयोग न करें। अवश्य उपयोग करें, किंतु सारी योजनाओं को,

कर्मठ जीवन के धनी नानाजी देशमुख
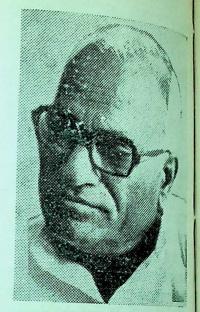
हमारी जो इतनी बड़ी जनशक्ति (मैन-पावर) है उसे आधार बनाकर अमल में लाना होगा। सारी योजनाएं पूंजी-प्रेरित (कैपीटल-इंटेसिव) नहीं बल्कि जनशक्ति-प्रेरित (मैन-पावर इंटेसिव) होनी चाहिए। इसीलिए, विकेंद्रीकरण का जो सिद्धांत महात्मा गांधी ने प्रारंभ किया था, उसी को हमें लाना होगा।"

**अगला संघर्ष वामपंथियों के साथ !**

सन '३७–'३९ में कांग्रेस में काम शुरू करने के बाद नानाजी देशमुख ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अपनी सेवाएं अर्पित कीं और फिर १९५१ में भारतीय जनसंघ की स्थापना के बाद उन्होंने जनसंघ में सम्मिलित होकर उसके संगठन, विकास

और पुनर्गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। १९७४ के बिहार-आंदोलन के समय बिना किसी शर्त के नानाजी देशमुख ने जयप्रकाश नारायण के आवाहन पर उनके आंदोलन में हिस्सा लिया। सन १९७५ में आपात्काल की घोषणा के तुरंत बाद वे 'भूमिगत' हो गये और छिपे तौर पर संगठन-कार्य करते रहे। संगठन की अपूर्व क्षमता उनमें है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। इसीलिए मेरा अगला प्रश्न था—

**विभिन्न वैचारिक विरोधाभासों के बीच तालमेल बैठाना क्या संभव हो सकेगा ? अगला संघर्ष कुछ अरसे के बाद वामपंथियों के साथ हो, क्या ऐसा संभव है ?**

नानाजी देशमुख ने कहा, "हमने कोई राजनीतिक सौदेबाजी का खेल नहीं खेला है। विभिन्न विचारधाराओं के लोग भले ही मिले हों और हर एक की अपनी अलग पहचान (आइडेंटिटी) भी रही हो, परंतु जब एक सिद्धांत मान लिया गया हो तो ऐसी कठिनाई उठने का कोई कारण नहीं है। लोकतंत्र में वैचारिक संघर्ष स्वाभाविक है, किंतु किसी असामान्य संघर्ष का कोई कारण नहीं होगा। धीरे-धीरे अलग पार्टियों का अस्तित्व भी नहीं रहेगा और संसदीय लोकतंत्र के लिए दो मजबूत पार्टियों की जो आवश्यकता होती है वही होगी। वामपंथी हमारे सामने कोई हौवा बनकर आयेंगे, ऐसा भी नहीं लगता है।

**नेतृत्व की कोई द्वितीय पंक्ति कांग्रेस ने तैयार नहीं की। क्या जनता पार्टी भी ऐसी गलती करेगी ?**—मैंने पूछा।

उनका उत्तर था—दुर्भाग्य से प्रारंभ से ही (बीच के १८ महीने के समय को यदि अपवादस्वरूप छोड़ दें) कांग्रेस ने व्यक्ति-पूजा (पर्सनैलिटी-कल्ट) को उभारा। सामूहिक नेतृत्व में नेतृत्व की दूसरी पंक्ति अपने आप तैयार होती रहती है, और दूसरी ही क्यों तीसरी, चौथी, पांचवीं तक बनती है, किंतु यदि तानाशाही हो तो कोई उसके सामने पनपता ही नहीं है, जैसे बड़े भारी बरगद के नीचे कोई दूसरा पौधा नहीं पनपता। इस तरह की समस्या हमारे यहां नहीं होगी।

**किसी भी पार्टी को सक्रिय और सतत प्रभावकारी रखने के लिए विभिन्न स्तरों पर कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की ही नहीं, योग्य नेताओं की भी जरूरत पड़ती है। इसके लिए क्या कोई सुनिश्चित कार्यक्रम है ?** मैंने उनसे अगला प्रश्न किया।

नानाजी ने बताया कि 'जनता पार्टी' का पूरा ढांचा नीचे से ऊपर की ओर तैयार किया जाएगा। कार्यकर्ताओं का उपयुक्त प्रशिक्षण होगा। गांवों में पंचायतें और शहरों में महल्ला-समितियां दल की नींव मजबूत करेंगी। ये समितियां देखेंगी कि उनके प्रभाव-क्षेत्र के लोगों की समस्याओं का समाधान हो रहा है या नहीं। कार्यकर्त्ताओं के काम करने की एक पद्धति होगी। किस तरह से लोगों को अधिक से अधिक सहयोग मिले और यह स्थानीय

समितियां लोगों में आस्था, विश्वास और सहयोग की भावना पैदा कर सकें इसके लिए अनेक प्रयोगों के लिए हम तैयार हैं। विभिन्न स्तरों पर विकास की नयी-नयी संभावनाएं खोजने के लिए कार्यकर्त्ताओं को ठोस कार्य दिये जाएंगे, जिन्हें वे शासन की सहायता से क्रियान्वित कर सकेंगे।

मेरा अंतिम प्रश्न था—**क्या आप नहीं समझते हैं कि एक अवधि के बाद पुरानों को अवकाश ग्रहण कर नयों के लिए रास्ता छोड़ना चाहिए ? क्या युवा पीढ़ी को नेतृत्व सौंपने में कोई खतरा है, विशेष-कर युवा कांग्रेस के रवैये को ध्यान में रखते हुए।**

श्री देशमुख ने जोर देते हुए कहा, इतना व्यापक कार्यक्रम है कि यह बिना युवकों के सहयोग के संभव ही नहीं हो सकता। नया दृष्टिकोण, नया परिवर्तन और नयी क्रांति लाने का काम नयों को ही करना होगा, तब नेतृत्व स्वाभाविक रूप से उनके हाथ में आयेगा।

उन्होंने आगे कहा, एक परिवार में जब पुत्र वयस्क हो जाता है तब पिता का हाथ बंटाने लग जाता है और परस्पर आत्मीय भाव उत्पन्न होता है—विश्वास का सृजन होता है। बीच में युवा पीढ़ी जो कुछ भ्रमित दिखायी दी थी, उसके लिए मैं युवकों को दोष नहीं दूंगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक भाव उत्पन्न हो गया था कि अब तो जो कुछ करेगी, सरकार करेगी। हमको अपना विकास देखना है—अपने परिवार का विकास।

नानाजी ने कहा, जहां १९४७ से पहले हर युवक और युवती के मन में देश के लिए कुछ करने का उत्साह था, वहां स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक परिवर्तन यह आया कि देश से हटकर दृष्टि अपने स्वार्थ पर केंद्रित हो गयी।

जब दृष्टिकोण बदल जाता है और उसकी परिधि सीमित हो जाती है तब साहस और ईमान के पैर नहीं जमते और फल यह होता है कि राहें बदल जाती हैं।

**नव-निर्माण नवयुवकों के हाथ**

इस माहौल में स्वतंत्र चिंतन और कहां रह गया था! धीरे-धीरे सरकार की ओर सब बातों में देखने की आदत पड़ी और जिसका परमुखापेक्षी होना पड़ेगा, उसके दबाव में तो रहना ही पड़ेगा। यही कारण था कि सरकार के विरुद्ध अन्याय होने पर भी आवाज उठाने का जो साहस अपेक्षित था वह समाप्त हो गया।

सभी युवक ऐसे हो गये हों, यह मैं नहीं कहता। ऐसे भी युवक थे जिनमें साहस का अभाव नहीं था। और ऐसे ही नवयुवकों को देखकर आशा होती है कि नवनिर्माण का काम केवल नवयुवक ही कर पायेंगे। पुरानों का तो हमें केवल आशीर्वाद ही ग्रहण करना होगा।

—८५ रवीन्द्रनगर, नयी दिल्ली

…ार कर उठी।

# वह किसी के शरीर में जीवित रहा

• एडवर्ड ब्रुक

यह सनसनीखेज घटना पहले पहल 'न्यूयार्क मरकरी' पत्र के १३ सितंबर, १८५१ के अंक में छपी थी। उसके बाद कई अन्य पत्रों ने भी इसको प्रकाशित किया। इस लेख का लेखक है वाल्टर सोडरस्ट्रोम और उसी के साथ यह घटना भी घटित हुई। वह मिशीगन के एक छोटे-गांव बैटल क्रीक में एक ऊन की मिल में काम करता था।

इस मिल से कोई दो मील की दूरी पर एक झील थी। वाल्टर अकसर उस झील में मछलियां पकड़ने जाता था। उस झील में तीन टापू थे। इनमें से एक टापू वाल्टर को अधिक पसंद था। वह अपनी नाव इसी टापू में उतारता था। इस टापू में लकड़ी की एक छोटी-सी खोली थी। पूछताछ करने पर पता चला कि उस खोली में स्टीफेन स्ट्रैंड नामक एक बूढ़ा रहता है। पेशे से नाविक, स्ट्रैंड मछलियां पकड़कर और जंगल में शिकार कर अपना पेट पालता था। संगी-साथी के नाम पर उसके पास बस एक कुत्ता और एक खौफनाक-सी काली बिल्ली थी।

एक दिन वाल्टर ने झील में मछलियां पकड़ीं और अपनी नाव से टापू पर उतरने लगा। वह अभी सूखी जमीन पर पांव भी नहीं रखने पाया था कि उसे किसी बिल्ली की हृदयविदारक चीत्कार सुनायी पड़ी। टापू में उगे छोटे-छोटे पौधों को लांघते हुए उसके तेज कदम किसी झाड़ी के पास आकर रुक गये। उसने देखा कि एक बड़े काले सांप ने एक काली बिल्ली को कुंडली मारकर लपेट रखा है और वह बड़ी जोर-जोर से फुफकारें मार रहा है। वाल्टर ने पतवार से प्रहार कर सांप का काम तमाम किया ही था कि बूढ़ा स्ट्रैंड भागता-भागता वहां आ पहुंचा। यह बिल्ली उसी की थी। उसने वाल्टर को कृतज्ञता-भरी दृष्टि से इस तरह देखा जैसे कोई मां अपने पुत्र की जान बचानेवाले की तरफ देखती है।

वाल्टर के एहसान से दबा स्ट्रैंड उसे अपनी कुटिया में ले गया। इस घटना ने दोनों के बीच मित्रता की नींव रख दी। फिर तो वाल्टर करीब रोज ही स्ट्रैंड के साथ मछलियां पकड़ने और शिकार करने जाने लगा। दोनों गहरे दोस्त बन

—मृतियां ...ल्टर को उस बूढ़े का व्यक्तित्व बड़ा रहस्यमय लगता। एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि बूढ़े ने अपने जीवन-रहस्य पर से स्वयं पर्दा उठा दिया।

उस दिन वाल्टर स्ट्रैंड के साथ मछलियों को भालों से बींधने का मजेदार खेल खेलने में इतना तल्लीन हो गया कि रात घिर आयी और भयंकर तूफान आ गया। आधी रात तक तूफान गरजता रहा और वाल्टर को वह रात स्ट्रैंड की खोली में ही काटनी पड़ी।

उस रात वाल्टर ने एक बड़ी अजीब बात देखी। जब तक तूफान का शोर मचता रहा, स्ट्रैंड का सारा शरीर सूखे पत्ते की तरह कांपता रहा। वह मानो किसी अदृश्य शक्ति से बुरी तरह भयभीत हो रहा था।

वह खोली के फर्श पर बेचैनी से पांव पटकता घूमता रहा। उसके चेहरे से गहरी पीड़ा झलकती थी, मानो वह अपने अंदर भारी संघर्ष कर रहा हो।

धीरे-धीरे तूफान शांत हो गया। इसके साथ ही स्ट्रैंड के बर्ताव में भी आश्चर्यजनक संयम आ गया, लेकिन स्ट्रैंड की आंखों को देखकर वाल्टर को फुरहरी-सी आ गयी। वह बड़ी अजीब निगाह से वाल्टर को देख रहा था। यह खामोशी स्ट्रैंड ने ही तोड़ी। वह वाल्टर से बोला, "मुझे तुम्हारे विचारों का आभास मिल रहा है। जो तुम सोच रहे हो वह बिलकुल सही है। मेरे जीवन के साथ एक अनोखी कहानी जुड़ी है। दोस्त होने के नाते मैं तुम्हें इस संबंध में बताना चाहता था।

"मेरा जन्म मेसाचुसेट्स के एक छोटे-से नगर में हुआ था। मैं करीब अठारह साल का था कि ह्वेल पकड़नेवाले एक जहाज में नौकर हो गया। चार साल बाद मैं घर लौट आया और अपना विवाह कर लिया। फिर कोई पांच साल तक घर रहकर एक मछेरे की जिंदगी बितायी। उसके बाद एक मालवाही जहाज में नौकरी कर ली। एक बार फ्रांस के एक बंदरगाह से चलकर हमारा जहाज आयरलैंड जा रहा था। बीच में ही इंगलैंड के कोर्नवाल तट के पास हमारा जहाज चट्टानों से टकरा गया। रात का वक्त था। एक जोरदार धमाका हुआ और जहाज टुकड़े-टुकड़े हो गया। मुझे केवल इतना याद है कि उस दुर्घटना के बाद मैं पानी में गिर गया और शीघ्र ही बेहोश हो गया था। जब मुझे होश आया तब मैंने महसूस किया कि मेरी आतमा देह से बाहर निकल चुकी है।"

यह कहकर स्ट्रैंड ने वाल्टर की ओर अजीब निगाह से देखा और फिर अपनी कहानी जारी रखी; "तुम्हें शायद विश्वास नहीं हो रहा है, लेकिन ऐसा वास्तव में हुआ था। उस समय न जाने क्यों मुझमें जीने की इतनी ललक हो उठी थी कि मैंने पागल की तरह अपने शरीर को ढूंढ़ना शुरू कर दिया। तभी मेरी दृष्टि किनारे पर पड़े एक फ्रांसीसी पर पड़ी।

वह अपने कुछ साथियों के साथ शौकिया समुद्री यात्रा करने फ्रांस से जहाज पर चढ़ा था, मैंने सोचा क्यों न इसके शरीर का फायदा उठाऊं ! मैं हर कीमत पर इस दुनिया में लौट आना चाहता था। वह फ्रांसीसी अब होश में आ रहा था। मेरी विदेह आत्मा और उसकी आत्मा में भयंकर लड़ाई छिड़ गयी। तुम्हें शायद बात अजीब लग रही होगी, लेकिन मेरे पास शब्द नहीं हैं कि की आत्मा भयंकर चीत्कार कर उठी। वह चीख अब भी मेरा पीछा करती है और उसकी आत्मा मेरे इर्द-गिर्द मंडराती रहती है।" और जिस दिन खतरनाक तूफान गरजता है, वह अपनी इस लड़ाई को भयंकर रूप से तेज कर देता है।

स्ट्रैंड ने बताया कि इसी खोली में अनेक बार उसका संघर्ष उस फ्रांसीसी की आत्मा से हो चुका है, लेकिन हर बार वह विजयी रहा है।
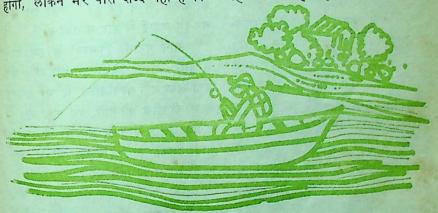
मैं उस भयंकर लड़ाई का वर्णन कर सकूं।

जब यह लड़ाई चल रही थी तब उस फ्रांसीसी की देह बुरी तरह से कसमसाकर ऐंठ रही थी और समुद्र तट के बालू पर लुढ़क रही थी मानो गहरी पीड़ा में हो। उसके चेहरे पर इस पीड़ा के लक्षण स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। इस कशमकश में मेरा पलड़ा भारी रहा और आखिर में मैंने ही उसकी देह पर अपना कब्जा जमाया। देह के छिन जाने से उस फ्रांसीसी

स्ट्रैंड ने बताया कि उसे फ्रांसीसी की जेब से कुछ चिट्ठियों के अलावा एक डायरी और एक सुनहरा लाइटर भी मिला था। लाइटर पर जेकब ब्यूमांट का नाम खुदा था। स्ट्रैंड उस लाइटर को वाल्टर को भेंट करना चाहता था। तभी वाल्टर को याद आया कि उसने स्ट्रैंड को अपना चित्र देने का वादा किया था। उसने धन्यवाद के साथ लाइटर ग्रहण किया और अगली मुलाकात

में चित्र लाने का वचन दिया।

स्ट्रैंड ने बताया कि किस तरह वह अपनी बदली हुई काया को लेकर अपने घर लौटा था, लेकिन उसकी पत्नी और उसके बच्चों ने उसे पहचानने से इनकार कर दिया था। दिल टूट जाने के कारण उसने जहाज की नौकरी छोड़ दी। फिर इस छोटे-से टापू पर आकर बस गया।

स्ट्रैंड की इस दास्तान को सुनकर वाल्टर का कौतूहल बढ़ गया। उसने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए जिस नगर में स्ट्रैंड रहता था, वहीं से निकलनेवाले एक पत्र के संपादक को खत लिखा। शीघ्र ही वाल्टर को जवाब मिला। उसमें लिखा था कि वाकई स्ट्रैंड नाम का एक नाविक उस नगर में रहता था और एक यात्रा के दौरान उसका जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। दुर्घटना के कुछ दिनों बाद एक आदमी उस गांव में आया था जो अपने को स्ट्रैंड बताता था, लेकिन वह छलिया निकला। फिर वह उस जगह को छोड़कर कहीं चला गया। उसकी पत्नी भी अपने बच्चों के साथ अपने भाई के पास जाकर रहने लगी। फिर उसकी भी कोई खबर नहीं मिली।

एक साल गुजर गया। इस दौरान कोई खास घटना नहीं घटी। एक रात वाल्टर के गांव में एक भयानक तूफान आया। अचानक उसकी नींद एक तीखी और अमानुषिक चीत्कार से टूट गयी। उसे किसी अनहोनी की आशंका हो रही थी। सुबह उठते ही वह झील के उस टापू की ओर गया। उसने स्ट्रैंड की खोली में कदम रखा तो ठक-सा रह गया। सारा सामान ऐसे बिखरा पड़ा था जैसे कोई भयानक भूचाल आया हो। स्ट्रैंड अपनी खोली से गायब था और उसकी बिल्ली भी कहीं नजर नहीं आयी। स्ट्रैंड का कुत्ता वहां था। वह भी थरथर कांप रहा था। वाल्टर को तुरंत खयाल आया—कहीं स्ट्रैंड की लड़ाई दोबारा उस फ्रांसीसी की आत्मा से न हुई हो! कहीं इस बार वह इस लड़ाई में हार न गया हो!

उसने पड़ोसी किसानों से इस बारे में पूछा, लेकिन किसी को भी स्ट्रैंड की कोई खबर नहीं थी। झील में भी उसकी लाश की खोज की गयी, पर कहीं पता न लगा। अजीब बात तो यह थी कि स्ट्रैंड के साथ उसकी काली बिल्ली भी न जाने किधर गायब हो गयी थी!

इन्हीं दिनों वाल्टर को कहीं से कुछ धन मिल गया और वह घूमने के लिए पेरिस चला गया, जहां उसका दोस्त चार्ली बुशनेल रहता था।

पेरिस में एक दिन उसकी मुलाकात फ्रांस की एक महिला कलाकार से हुई। लेकिन जैसे ही उस औरत को वाल्टर का परिचय दिया गया, वह मूर्छित हो गयी। अगले दिन ही इसका भेद खुला। वाल्टर के नाम उस फ्रांसीसी स्त्री का बुलावा आया। जब वाल्टर को उस औरत का नाम मालूम हुआ तब वह

खींचता है। राष्ट्रीय गीत जनता में प्राण फूंक सकते हैं, किंतु प्रेरणाशक्ति देशभक्ति होती है, संगीत नहीं। तथापि, अमरीका में संगीत का विकास क्रांति और गृहयुद्ध के काल में हुआ।

तुलनात्मक रूप से, संगीत कुछ ऐसे इने-गिने व्यक्तियों के लिए है, जिनमें उनकी परख का विशेष गुण हो। उसकी अपनी शैलियों और गुणग्राहकता की परंपराएं हैं। संगीत-समारोहों के श्रोता प्रायः गिने-चुने होते हैं। संगीत की सीमित लोकप्रियता या भावनात्मकीभाव के कारण रविशंकर अथवा उस्ताद अमीरुद्दीन खां की गंभीर रचनाओं के समाचार प्रायः देखने को नहीं मिलते। उसकी तुलना में फिल्मों के हीरो लोकप्रिय होते हैं। वे जनता के आदर्श हैं और उनके बारे में प्रायः बड़े-बड़े समाचार छपते रहते हैं। तब क्या ऐसा कहें कि संगीत का संबंध लोकतंत्र से नहीं? कला के लोकतंत्रीय मूल्यांकन पर तांक्वेविले का सिद्धांत ठीक लग सकता है, किंतु उनका कहना है कि कलाओं में रुचि रखनेवाले बहुत-से व्यक्ति निर्धन रहे।

एक प्रकार से, संगीत-समाज पूर्वजों के धार्मिक समारोहों की देन है। उसके बाद सभ्यता की देन है—राजनीति, विज्ञान, उद्योग। भारत में संगीत का मूल धर्म में है। सुदूर अतीत में जनसंख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी, लेकिन तब सभी के मन में धर्म के प्रति आदर-भाव था। धर्म की उत्पत्ति जनसाधारण के मानस से हुई। ऐसा मान भी लें, कुछ परममनीषी ऋषि-मुनियों ने धर्म की रचना की, तो भी यह निर्विवाद है कि इससे आम लोगों में तत्काल समभाव जगता है। ऐसा इस-लिए कि जीवन और मरण, सुख और दुःख के रहस्य सभी को समान रूप से आंदोलित करते हैं। अतः पुरातन भारतीय संस्कृति का मूल आध्यात्मिक संस्कृति है, भले ही उसे कर्मकांडों के रूप में लिया जाता

रहा हो।

आज यदि राजनीतिक एकता के आह्वान से प्रेरणा मिलती है, तो पुरातन-काल में भारतवासी मानव और उसके स्रष्टा के मूल प्रश्न से एक प्रकार की एकता अनुभव करते थे। हिंदू काल में यह एकता राजनीतिक न होकर धार्मिक थी। इससे यही प्रकट होता है कि आज की राजनीति ने तब तक जन्म नहीं लिया था। क्या किसी ने राजनीतिक रूप से संगठित यूनानी राष्ट्र की बात सुनी ? जरमनी और इटली में उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण तक राजनीतिक एकता स्थापित नहीं हुई ? आदि-हिंदू मातृभूमि की सात महान नदियों से क्यों प्रेम करते थे और नित्य क्यों उनका स्मरण करते थे ? तीर्थयात्रा के बहाने विशाल जनसमूह क्यों कन्या-कुमारी से बदरीनाथ तक सारे देश में भ्रमण करता रहता था ? धार्मिक परंपरा ही न उन्हें आपस में गूंथे हुए थी।

संगीत का विकास पूर्व आर्य कला की देन है। पूर्व आर्य देव शिव अथवा भैरव ने उसे अधिक पूर्णता प्रदान की। उन्होने ही भैरवी नाम से प्रार्थना-संगीत की रचना की। शिव को आदि देव अथवा ज्येष्ठ कहा गया है और विष्णु को श्रेष्ठ। महा-भारत में इसका उल्लेख है। विष्णु के परमभक्त नारद मुनि शिव द्वारा प्रति-पादित संगीत के प्रधान शिष्य बने।

यह अद्भुत बात है कि भारत के किसी पुरातन राग का नाम उसके रचयिता के नाम पर नहीं है। यूरोप में ऐसा चलन है। आस्ट्रो-जरमन संगीतशास्त्रियों बीथो-वन, मोज़ार्ट आदि ने अपनी रचनाओं पर अपने नाम की छाप छोड़ी है। मध्यकालीन भारत में केवल उस देश के नाम का उल्लेख है जिसमें राग की रचना हुई—भूपाली, जौनपुरी, गुर्जरी, मारवा (राजस्थानी), कर्नाटकी, बंगाली आदि। कुछ विशेष मिली-जुली राग-रागिनियों को ही उनके रचयिताओं के नामों से जाना जाता है—मियां की तोड़ी, मियां की मल्हार, मियां का कान्हड़ा।

मंदिर, गिरजाघर और मस्जिद धर्म-प्रसंगों में सम्मेलन-भाव की गंध और वातावरण-सा उपस्थित करते हैं। पूर्व-आधुनिक काल में धर्म ही सबसे अधिक समभाव जाग्रत करता था। समवेत प्रार्थ-नाओं का चलन वैदिक काल से ही है। पौराणिक काल के हिंदू मंदिरों ने एक
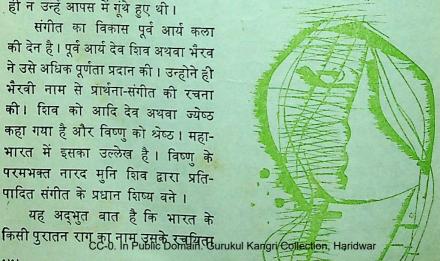
प्रकार से वैदिक कालीन वेदियों का स्थान ले लिया और समयानुकूल अनेक नूतन-ताओं की सृष्टि की, कंठ और वाद्य-संगीत का विकास हुआ। संगीत के साथ नृत्य भी जुड़ा। संगीत-कला की सहायता और भाव-प्रदर्शन के तंत्र से धर्म को जीवंत बनाने का पूरा प्रयत्न हुआ।

संगीत में मनोरंजन भी है और रचना-प्रक्रिया भी। संगीत निस्संदेह आव-श्यक मनोरंजन है, किंतु मनोरंजन ही उसकी इति नहीं। वह मन को पारलौकिक ऊंचाइयों तक उठाता है और दिव्य ताने-बाने में जीवन का आनंद बुनता है। आम कहावत है: ध्वनि, केवल ध्वनि का कोई अर्थ नहीं। किंतु संगीत का मधुर स्वर संगम या सरगम है। वह निश्चय ही सार्थक है। उसकी इस सार्थकता में अद्भुत उदात्त-वता का रस है, दैवीय संदेश की भव्यता है, मादक कंपनों की गूंज है।

संगीत का जन्म कला से होता है, पालन विज्ञान से। काल-कालांतर में कारीगरी और निपुणता, सुयोजना और शक्ति के साथ संगीत की धारणा को आगे बढ़ाया गया है। पुरातन और मध्य-कालीन भारत में यह मधुर कार्य विचारों और आदर्शों की श्री के साथ किया गया है। खेद है कि हमारे पास उसकी संक्षिप्त रूपरेखा भर के लिए ही समय है।

अथर्व-वेद में एक ऋषि जिज्ञासा करते हैं: मानव को संगीत किसने प्रदान किया? पक्षी एक ही स्वर में गाते हैं, किंतु मानव स्वरों के नित नये संगम से अपने संगीत-संसार की रचना करता है।

महान सूफी संत जलालुद्दीन रूमी भी संगीत की दुनिया के बारे में कुछ इसी प्रकार की बात करते हैं—

**यद्यपि धरती और जल ने हमें अपने**
**आवरण में ढक रखा है**
**हमें इन स्वर्गीय गीतों की अभी तक**
**धुंधली-सी याद है**
**लेकिन हम इन घोर सांसारिक आवरणों**
**से इस प्रकार घिरे हैं**
**थिरकते लोकों की ध्वनियां हम तक**
**कैसे पहुंच सकती हैं?**

भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के सांस्कृतिक मिलन से जहां भवन-निर्माण और चित्रकला को बल मिला, वहां संगीत-कला का भी विशेष विकास हुआ। वैदिक कालीन और शास्त्रीय कवि पहले ही इस दिशा में मधुरतम धुनों से आकाश, पृथ्वी और संपूर्ण वातावरण को गुंजरित कर चुके थे।

हर घटना के मूल में मात्र संयोग रहता है। औरंगजेब के मजहबी तास्सुब (धार्मिक पक्षपात) ने कला और संगीत-कला की आग पर पानी फेर दिया। कहा गया—संगीत मर चुका। कहते हैं, मुहम्मदशाह रंगीले ने मुर्दा और मरणासन्न राग-रागिनियों में नयी जान फूंकी। खयाल, टप्पा और ठुमरी को विशेष-कर नया जीवन मिला। इस प्रकार धार्मिक गीतों की गंभीर धुनों में लौकिक रागिनियों

के समावेश से संगीत का एक नया रूप सामने आया। औरंगजेब ने यदि अन्यथा किया होता तो संभवतः ऐसा न होता। कहते हैं, घटनाओं का विकास नहीं होता, वे अराजकता से जन्म लेती हैं।

कालांतर में संगीत-क्षेत्र में आकाश और धरती के इस मिलन में एक सुखद मोड़ आया। भैरवी के प्रस्तुतीकरण में अद्‌भुत भाव-परिवर्तन दिखायी दिया। भैरवी गहन आध्यात्मिक पुट लिये परंपरागत प्रार्थना-संगीत है, लेकिन उसने लीक से हटना शुरू कर दिया।

उदाहरणस्वरूप ऋग्वेद का यह मंत्र लीजिए—

**शृण्वन्तु विश्वेऽमृतस्य पुत्राः।**
**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोद्धत ॥**

इसकी तुलना इस शती के तीसरे दशक में प्यारे साहब मटियाबुर्ज के भव्य गंभीर सुर में मस्ये प्रेम-भावना से ओत-प्रोत इस रसीले अंश से लीजिए—

**रसीली तोरी अंखियां रे हां**
**जिया ललचाय।**

इससे प्रकट है कि संगीत एक जीवित कला है। जीवनधारा के मोड़ों के अनुकूल उसे ढालना संभव है। इस प्रसंग में राष्ट्र-निर्माण में संगीत-सम्मेलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आज संगीत अधिकांशतः सरकारी बनकर रह गया है। वास्तविक गुणी कलाकार, विशेषकर संगीत के प्रतिष्ठित पारखी शायद ही यहां बुलाये जाते हों। नौकरशाही और कला का योग कम ही होता है। ऐसे नीरस और निराशा के वातावरण में कुछ इने-गिने लोग ही संगीत के कलात्मक मूल्यों की प्रसार-संरक्षण द्वारा भारी सेवा करते हैं।

यह सच है, आज लोग लाभ के पीछे भाग रहे हैं, सुंदरता की उपेक्षा हो रही है। फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के स्रोत प्रायः सूख चले हैं। स्वार्थों से बढ़ते अंधकार में संसार का गला घुट रहा है, श्रेष्ठता की भावना मुरझा रही है।

आज ऐसे में जब चारों ओर मतभेद व्याप्त हैं और उदारता की दृष्टि धुंधली पड़ रही है, सबसे अधिक आवश्यकता है संगीत की—अच्छे संगीत की, जीवंत संगीत की।

पीड़ित आत्मा की पुकार 'गीतांजलि' के इन शब्दों में स्पष्ट प्रतिध्वनित होती है:

**जीवन जखन शुकाये जाय**
**गीत सुधा रसे एसो**

# क्षणिकाएं

## विवाह

एक दुखी—एक सुखी
दंपति को देखकर
एक सज्जन अचानक बोल उठे
"जीवन की अजीब रीति है विवाह
जिसमें निहित है 'आह' और 'वाह'!"

—नागेन्द्र कुमार खरे

## शाब्दिक सहानुभूति

झुंझलाकर
समाज सुधारक ने पूछा—
कब तक गरीब
जुल्म सहते रहेंगे ?
मैंने कहा—
तभी तक जब तक आप
इस सवाल को
इसी लहजे में कहते रहेंगे !

—अर्जुन पंजाबी

## भूल

मुझे मिट्टी में मिलाकर
तुम भूल गये
अंकुर यहीं से फूटेगा

—कुसुम दत्त

## सौंदर्य बोध

तुम जूड़े में गुलाब के स्थान पर
कैक्टस खोंस लेतीं
तो मुझे सौंदर्य बोध होता
क्योंकि सौंदर्य बोध पुरुष की सबसे बड़ी
कमजोरी है !

—ध्रुवनारायण कपूर

## मातृ भाषा

अध्यापक ने पूछा—
क्यों कहते हैं हम
अपनी भाषा को मातृभाषा
उत्तर मिला—
क्योंकि पिताजी को तो
बोलने का
अवसर ही नहीं मिल पाता !

—हरिराम विश्नोई

## याद

कड़वाई-जिन्दगी,
बताशे-सी याद
जेठ की दुपहरी में
जैसे बरसात

—सुरेश शर्मा 'रुद्राक्ष'

## चुम्बन

चंद्रमुखी !
अपना मुखड़ा
जरा मेरी ओर करो
मैं रूस और अमरीका को बताऊंगा
कि—
बिना धन खर्च किये भी
चांद को चूमा जा सकता है

—सूर्यकान्त नागर 'शशि'
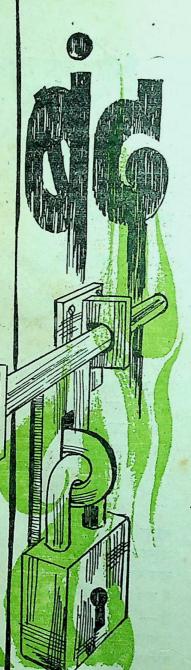
जुलूस साब की कोठी के अहाते में आ घुसा था। कहने को जुलूस मौन था, लेकिन कोठी के अहाते में आते ही वाचाल हो उठा था। हर आदमी अपनी-अपनी ढपली बजाने लगा था और कोठी का अहाता खासे शोर-शराबे से भर गया था।

सी. एम. साब काफी परेशान नजर आ रहे थे। वे जुलूस के लीडर किस्म के लोगों से, अलग-अलग ले जाकर, बातें कर रहे थे और उन्हें समझाने की कोशिश कर रहे थे कि साब इस वक्त उन लोगों से मिलने किसी तरह नहीं आ सकते। वे इस वक्त शहर में लगी प्रदर्शनी के किसी जरूरी मसले में फंसे हुए हैं। ... "फिर आप लोगों ने उस वक्त तो यह कहा था कि साब की कोठी तक जुलूस जाएगा और अगर साब नहीं मिलेंगे तो मुझे अपना ज्ञापन पेश कर देंगे। मैं हाजिर हूं। आप लोग मुझे ज्ञापन दे सकते हैं।"

इतना कहना भर था कि लोग कौओं की तरह कांव-कांव करने लगे थे और चीलों की तरह झपट्टा मारने लगे थे। शोर कोठी के भीतरी कोनों तक पहुंच रहा था और साब के बच्चे भयभीत-से दरवाजों में खड़े झांक रहे थे। बीबीजी भी खड़ी थीं, लेकिन जालीदार किवाड़ की ओट में। उन्हीं के पास बड़ी दी भी ... सबके चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं।

आखिर एक व्यक्ति भीड़ के बीच बेंच खींचकर खड़ा हो गया। उसने अपने

चारों ओर खड़े सिरों को संबोधित किया, —"साथियो ! व्यवस्था कितनी जाहिल और मक्कार है, यह इसका सबसे बड़ा प्रमाण है ! हम हजारों बुद्धिजीवी मौन जुलूस लेकर साब के बंगले पर आये और साब वहां प्रदर्शनी में बैठा रंगरेलियां मना रहा है। उसे इतनी फुर्सत नहीं है कि हम बुद्धिजीवियों से ज्ञापन तक ले सके।"

'शेम-शेम' की आवाज हजारों कंठों से निकली। वह आगे बोला, "तो साथियो ! हम लोगों ने भी तय किया है कि ज्ञापन हम अब साब को ही देंगे। सी. एम. साब को नहीं। हम सी. एम. साब से यह मांग करते हैं कि वे तुरंत साब को यहां बुलवाएं। यह हम बुद्धिजीवियों और नगर के प्रबुद्ध नागरिकों का सरासर अपमान है। उन्हें यहां आना ही होगा और हमसे यह ज्ञापन लेना ही होगा।"

सबने उस बेंच पर खड़े व्यक्ति का समर्थन किया था। सी. एम. साब ने डिप्टी साब को जीप से तुरंत भेज दिया था।

बीवीजी की सिर्फ अंगुलियां जालीदार किवाड़ के बाहर दिखायी दीं। मैं सकपकाकर दरवाजे की ओर बढ़ गया था।

"साब को फोन क्यों नहीं करवा देते ? आ जाएं। यह बवाल यहां से टले। पता नहीं क्या होने लगे यहां !" बीवीजी का स्वर काफी डरा हुआ था।

"साब को फोन मिलाया था . . . साब मिले नहीं। कहीं और बिजी हैं,"

मैंने कहा, "पर आप परेशान न हों। कुछ नहीं होगा। हम सब लोग तो हैं ही यहां।"

लेकिन अपनी इस बात पर मैं बाद में मन ही मन स्वयं हंसा भी। हजारों की इस भीड़ में हम लोग कर भी क्या लेंगे ?

बड़ी दी शायद ठंड महसूस करने लगी थीं। मैं शाल लाने कोठी में चला गया था। बड़ी दी का कमरा दूसरी मंजिल पर था। यों तो हर कमरे में अब तक मैं जा चुका हूं, पर बड़ी दी का यह कमरा . . . बाहर से कुंडा लगा था। खोलकर भीतर पहुंचा तो न जाने किन फूलों की सुगंध नथुनों में भर गयी। खुशबुओं के बारे में मुझे कोई खास ज्ञान नहीं था। हो भी कैसे सकता था ? अब तक की सारी जिंदगी गलीकूचों की दुर्गंध में बीती है . . . नाली के कीड़ों को खुशबू की क्या पहचान हो सकती है ?

## • दिनेश पालीवाल

साब के यहां आने से पहले की मेरी स्थिति क्या किसी जानवर की स्थिति से अच्छी थी ? हम पांच-सात लोग थे . . . एक जैसे। सिर पर कोई छाया नहीं थी। गरमियां और बरसात तो किसी तरह कट जाती थीं, लेकिन जाड़ा . . . और रूहें कांपने लगती थीं। हर दिन सब के

सब मिल-बैठकर इसी मसले पर सोचा करते थे, लेकिन सिर्फ सोचने भर से क्या हो सकता है . . .? और जाड़े आते ही रैन-बसेरे के मैनेजर ठाकुर बाबू को मस्का लगाना पड़ता था . . . हालांकि हम सब पढ़े-लिखे थे . . . कोई हाई-स्कूल, कोई इंटर . . . ठंड ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती थी, वहां भीड़ भी बढ़ती जाती थी। और जब रात को किसी-किसी आदमी या लड़के को खांसी उठती, या कोई बीमारी या किसी और रोग या दर्द से कराहता रहता तब जीवन एकदम नारकीय हो उठता . . . सुरेश तो अपनी नाक बंद किये रहता . . . साइंस पढ़ा था साला . . .

सुरेश ने उस शाम आते ही कहा था—"सब लोग तैयार हो जाओ । . . . कुछ दिन की बिजनेस हाथ आयी है! यस रेडी।" . . . और उसने बता दिया था कि शहर के दूसरे कोने पर राशन की दूकान के सामने चीजों के लिए बेकाबू हो गयी भीड़ पर पुलिस ने लाठीचार्ज किया है . . . भीड़ बहुत गुस्से में थी। भीड़ ने भी जमकर पथराव किया । जब पुलिसवाले घायल हुए तब उन्होंने अश्रु-गैस के गोले छोड़े . . . उससे भी जब भीड़ पर काबू न पाया जा सका तब हवाई फायर किये गये हैं . . . सुनते हैं, एकआध कोई मर-मरा भी गया है। चलो रेडी . . . अपने सामू दादा हैं न . . . उन्होंने बोला है।" सुरेश आगे बोला, "दो रुपये रोज मिलेगा। हम सबको . . . अलग-अलग . . . किसी को दीवारों पर लिखना होगा। किसी को पोस्टर चिपकाना होगा। किसी को पर्चे बांटना होगा और किसी को लाउडस्पीकर पर शहर भर में चिल्लाना पड़ेगा . . ."

कुछ दिनों के लिए हम सब अचानक बहुत बिजी हो गये थे। . . . साब से तभी साबका पड़ा था। तब यह छोटे साब थे। जुलूस के आगे-आगे रिक्शे में लाउडस्पीकर पर मैं नारे लगवा रहा था, 'जो हमसे टकरायेगा . . . चूर-चूर हो जाएगा। रोटी-कपड़ा दे न सके, वह सरकार निकम्मी है . . . या तो सस्ता गल्ला दो, वर्ना गद्दी छोड़ दो।'

न जाने उस दिन मुझे क्या हो गया था। . . . असल बात कुछ और ही थी। पिछले हफ्ते भर से कड़की चल रही थी और नुक्कड़वाले लाला ने खाना तो दूर, चाय तक पिलाने से मना कर दिया था। दो दिन की भूख मुझे जोश दिलाये हुए थी . . . और जब मैं अफसरों को आसपास खड़ा देख लेता था तब न जाने क्या जुनून-सा सवार हो जाता था . . . होश तब आता था जब मैं बोलना बंद करता था और लोग तालियां बजाने लगते थे। . . . मुझे पता भी नहीं चला था और उस दिन का जुलूस फिर लाठियों और आंसू-गैस के गोलों से तितर-बितर कर दिया गया था। . . . बाद में किसी ने बताया था कि जुलूस में कुछ ऐसे तत्व

घुस आये थे जो तोड़-फोड़ और लूट-पाट में . . .

रिक्शे सहित मुझे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था।

छोटे साब के मुंह में सिगार लगा हुआ था, "तुम तो अच्छे लड़के मालूम पड़ते हो! पढ़े-लिखे भी . . . यह सब छोड़ क्यों नहीं देते . . .? क्या मिलता है इस सबमें . . .?"

"हममें से कोई भी यह नहीं करना चाहता है साब . . . पर आप ही बताएं, हम लोग क्या करें . . .? जब कुछ भी करने को नहीं होता तब जो भी काम मिल जाता है, करने लग जाते हैं . . .!" जब तक बोलता रहा, साब मेरी आंखों में घूरते रहे। बाद में बोले "अगर हम तुम्हें किसी काम पर लगा दें तो . . ."

"मेहरबानी साब!" मैंने कहा था।

कुछ ही महीनों में साब का मैं सबसे विश्वासपात्र घरेलू आदमी हो गया था। बीबीजी और बड़ी दी भी विश्वास करती थीं। . . . साब की बदलियां होती रहीं। यहां से वहां आते-जाते रहे। पर मैं हर जगह उनके साथ रहा।

यहां पिछले तीन-चार साल से हैं . . . साब अब बड़े साब हो गये हैं। खासा रोब है! जिले के मालिक! सैकड़ों लोग रोज दरवाजे पर माथा टेकने आते हैं।

सब ठीक-ठाक चल रहा था। यह नौबत शायद कभी नहीं आयी थी। लेकिन

अचानक ही यह एक ऐसी घटना घट गयी थी कि साब परेशान हो गये थे।

रात को साब जब आये, बीबीजी ने पूछा, "अब क्या होगा?" साब उस वक्त भी काफी उलझन में थे—"क्या बतायें! सिर मुड़ाते ही ओले पड़ गये! पहली बार जिले का चार्ज मिला और साला यह सब हो गया! . . .

नेता-नगरी है। अगर बात तूल पकड़ गयी तो लेने के देने पड़ जाएंगे।"

बीबीजी साब की ओर एकटक ताकती रही थीं। बड़ी दी बोली थीं, "'लेकिन पापा, आपका इसमें क्या दोष है...? जिन लोगों ने यह सब किया, वे भोगेंगे...!"

"यही तो कोई नहीं मानता," वे बोले थे, "अंत में सारी जिम्मेदारी सबसे बड़े अफसर के सिर आकर गिरती है...हमारे रहते यह सब कैसे हो गया। जवाब तो हमसे तलब होगा। फोन पर फोन आ रहे हैं। राजधानी तक से फटकार आ चुकी है। तमाशा बन गया साला।"

साब ने सिलसिलेवार सारी घटना बतायी थी। आजकल कालेजों में लौंडे पढ़ने तो जाते ही नहीं हैं। अपने मां-बाप के भी सिरदर्द हैं और सरकार के भी!

कल रात, लड़कियों की वह नाटक कंपनी आयी हुई है... उसमें हुल्लड़ करने लगे। एक खूबसूरत-सी लड़की थी। नाचती-गाती थी। उससे एक ही गाना दसियों बार सुना। वह बेचारी बंद करे और यह सुसरे फिर वही गाना, वंसमोर! अकेली लड़की कहां तक नाचे! आखिर उसने नाचने-गाने से मना कर दिया तो कंपनी के मालिक की मारपीट कर डाली। यह भी कोई बात हुई!

साब बताते रहे थे.. रात को कंपनी के मालिक को मारा-पीटा। उसके पास भी कुछ गुंडे रहे होंगे। वे भी पिल पड़े और कुछ लड़कों की पिटाई कर दी। तो दिन में कालेज से सैकड़ों लड़के वहां पहुंचे और कंपनी का टेंट-वेंट उखाड़कर फेंक दिया। पुलिस खदेड़कर उन्हें कालेज तक पहुंचा आयी, लेकिन कालेज में घुसकर पुलिस पर उन लोगों ने पथराव शुरू कर दिया। तब पुलिस को कालेज के भीतर घुसना पड़ा। तब कहीं जाकर लड़के काबू में आये।

लेकिन अब यह नया सिरदर्द! लड़कों पर काबू पाया तो कालेज के अध्यापकगण बीच में आ गये और अब उनके साथ शहर के नेतागण। गले में कुरता डाला और क्रांति चालू!

मुझे सामू दादा का चेहरा याद आने लगा था।... पता नहीं अब उनका क्या हाल हो। साब कुछ भी कहें, लेकिन सामू दादा बुरे आदमी नहीं थे। हम लोगों को उन्होंने बहुत बार सहारा दिया था। भले ही सहारे के पीछे उनका अपना स्वार्थ रहता था।

शहर के बुद्धिजीवियों का यह मौन जुलूस आज साब की कोठी तक आया था। जुलूस मुख्यमंत्री के लिए ज्ञापन लाया था। साब सहित दूसरे अनेक अधिकारियों को अपने पदों से हटाने की मांग मुख्य थी। कालेज में घुसकर निर्दोष लड़कों को पुलिस और पी. ए. सी. ने पीटा है, इसका शहर के इन प्रबुद्ध नागरिकों को भारी खेद था। मांगें तुरंत न

स्वीकार की गयीं तो नगर-बंद किया जाएगा।

साब प्रदर्शनी से जीप में बैठकर आ गये थे। आते ही लोग उन पर जैसे टूट पड़े थे। तीखी बौछारें हुई थीं। जो जितनी भड़ास निकाल सकता था, निकाली थी। सब की बात सुनकर साब बेंच पर खड़े होकर विनम्र स्वर में बोले थे—"हमें खेद है कि यह सब जाने-अनजाने हो गया। पर अब आप हमारी शांति-व्यवस्था में सहयोग करें। जहां तक छोटे अधिकारियों को हटाने का सवाल है, आप की मांग हम अभी माने लेते हैं, लेकिन बड़े अधिकारियों को हटाने का अधिकार हमें नहीं है। आप लोगों ने सरकार को आगाह कर ही दिया है। सरकार जो भी आज्ञा करेगी, हम लोग मान लेंगे। जिन लड़कों को आप निर्दोष बताएंगे, हम लोग उन पर से मुकदमें वापस भी ले लेंगे। और आप बताएं कि हम क्या करें . . .?"

जैसा हमेशा होता है। तमाम छींटाकशी ही हुई। लोगों ने अफसरों के नाम ले-लेकर गलतियां गिनायीं। व्यंग्य किये। साब को ऐसे ढीले प्रशासन के लिए खुले आम कोसा।

बहरहाल जुलूस को जो कहना था, कहकर कोठी से वापस चला गया।

साब बाद में अहाते में बड़े अफसरों से बातें करते रहे। तनाव के कारण चेहरा खिंच-सा गया था। सी. एम. साब भी पास खड़े थे—"इन लोगों का इरादा शायद कल बंद रखने का है!"

"लेकिन यह तो बिलकुल गैरकानूनी काम है!" साब ने कहा।

"मानते हैं यह लोग!" सी. एम. ने असहायता प्रकट की, "अध्यापकों को तो किसी तरह मनाया भी जा सकता है, लेकिन इन लोगों के साथ कुछ पेशेवर नेता लोग हैं। आदत के मुताबिक वे इस मामले को अपनी वाहवाही के लिए तूल देते चले जा रहे हैं।"

"चुनाव नजदीक है न...!" साब ने धुआं उगला, "यह चुनाव इस देश को बर्बाद कर देंगे! दो-दो कौड़ी के आदमी हैं और कुरता-पाजामा पहनकर हम लोगों पर रोब झाड़ने चले आते हैं!...एक यह गुजरात और बिहारवाली हवा और चल रही है। सरकार समझती है, हम लोग अक्षम हैं..कुछ कर नहीं पा रहे। सचाई यह है कि सरकार के भी हाथ-पांव फूले हुए हैं।... सारा दोष हम लोगों के सिर!... बंद सफल हो गया तो खामख्वाह अपन लोगों की फजीअत हो जाएगी! इसलिए कोशिश करो... बंद सफल न होने पाये।"

और सी. एम. साब धीरे-धीरे शहर के प्रमुख लोगों के नाम लेते हुए बताते रहे कि आज वे कितने लोगों से मिले और प्रशासन को सहयोग देने के लिए कहा, लेकिन सब का खयाल है कि लड़कों का मामला है। प्रशासन से भयंकर गलती हुई है। नुमाइश में अगर लड़कों ने हुल्लड़

किया था तो वहां सिर पर भी अधिकारियों ने ही चढ़ाया था।

"यानी बंद होने दिया जाए।" साब की आंखें जरा चढ़ गयीं तो सी. एम. साब लड़खड़ा गये। वे किंचित हकलाकर बोले, "मैं यह कहां कहता हूं साब, लेकिन सोच लीजिए सर... विधानसभा का सत्र चलनेवाला है... नेता लोग यहां के मामले को वहां उठानेवाले हैं। कहीं ...!"

साब चुपचाप खड़े धुआं उगलते रहे थे।

बीबीजी ने साब से रात को कहा था, "आप लोग इन अखबारवालों का मुंह नहीं बंद कर सकते? आपके खिलाफ कितना कुछ लिखा है!"

"वह जमाना लद गया जब अफसरों की तूती बोलती थी। आजकल तो नेताओं की चलती है! जनता की चलती है!" साब खिन्न स्वर में बोले थे।

लड़कों से फिर कहीं झंझट न हो जाए, शहर में इसलिए पुलिस सिर्फ मुख्य-मुख्य जगहों पर रखी गयी थी। शेष हर जगह से हटा ली गयी थी। लड़के सुबह से ही बंद को सफल बनाने में जुट गये थे। स्टेशन पर उतरनेवाली सवारियां सामान के साथ सीढ़ियों पर खड़ी, रिक्शों के लिए परेशान होने लगीं।

शहर के सारे होटल बंद रहे। और रोज होटलों में खानेवाले लोग इधर-उधर भटकते रहे। सब्जी और दूधवालों तक को शहर में नहीं आने दिया गया।

बंद पूरी तरह सफल रहा।

बहुत-से सवाल उभरकर सामने आये। महत्त्वपूर्ण सवाल ... इससे लाभ क्या है? दुधमुंहे बच्चे को दूध नहीं मिल सका। घरों में सब्जियां नहीं पहुंचीं। पता नहीं कितनों के घरों में दालें भी होंगी या नहीं! कितने ऐसे लोग होते हैं, जो रोज कुआं खोदकर पानी पीते हैं। उन सबको खाना नसीब नहीं हुआ होगा। कितनों की रोजी मारी गयी। कितनों के घरों में चूल्हे नहीं जल सके!

लेकिन इन नेताओं को इन सब बातों से क्या मतलब है? मैं लगातार सोचे जा रहा था...

बंद की सफलता के बाद शाम को शहर के बीचोंबीच मैदान में भारी जनसभा हुई। उसमें नेताओं ने बड़े जोशीले भाषण दिये। साब तो नहीं आये, लेकिन सभा में साब के लोग चप्पे-चप्पे में थे। मैं भी खड़ा सुनता रहा था।

और वे दिन मुझे याद आते हैं जब ऐसे ही बंद कलकत्ता में होते थे और बात-बात पर कर्फ्यू लगते थे ... और हम लोग, हम भूखे मरते लोग. . .किसी भी तरह रोटी नहीं पाते थे। . . .यह भरे पेटवाले लोग ... नेता ... आंदोलनकारी ... साब लोग ... हम लोगों के बारे में भी कभी सोचते हैं? हम, जिनका जीवन इन बंदों में बुरी तरह बंद हो जाता है...!

**—राधाकृष्ण भवन, न्यू कॉलोनी**
**इटावा (उ. प्र.)**

शाम करीब पांच बजे तीनों बच्चे पशुवाटिका में ले आये गये। उसी समय मेरा बेटा राजेश बेदी वहां पहुंच गया। उसे एक दैनिक पत्र के लिए उन अनाथ बच्चों के फोटो खींचने थे।

बक्से को खोला गया तो वे चलने-फिरने के काबिल नहीं थे। उनके चेहरे विषादपूर्ण थे। स्वच्छ, हवादार, बड़े घरों में उन्हें भेजने के लिए प्रयत्न करना पड़ा। अपने चारों ओर अचानक प्रकाश, हवा और खुला स्थान देखकर वे अचंभे में पड़ गये। खुशी और आश्चर्य में वे एक-दूसरे के गले में बांहें डालकर चिपट गये।

**मौत को हकीकत नहीं मान रहा था**

राजधानी की एक और घटना सुनिए। दिल्ली की पशुवाटिका में रीता नाम की एक बूढ़ी चिम्पांजी थी। उसकी उम्र बीस साल से ऊपर थी। चिम्पांजियों की उम्र बीस से चौबीस साल तक होती है। १८ फरवरी, १९७० को उसकी अपनी कोठरी में मृत्यु हो गयी। पिछले चार महीनों से वह बीमार चली आ रही थी। पशुवाटिका के डॉक्टर के अनुसार जिगर के फोड़े और खून में उसका जहर फैल जाने से उसकी मृत्यु हुई थी। फरवरी के शुरू में उस पर दवादारू का असर होना बंद हो गया था। मौसमी का रस पीने के लिए पालक घंटों उसकी मिन्नत-खुशामद करते रहते थे। सिगरेट पीना उसका प्रिय व्यसन था, इससे उसे संतोष और तृप्ति मिला करती थी, लेकिन अंतिम दिनों में पालकों द्वारा दी गयी

खुशी का अतिरेक

सिगरेट और मौसमी के रस को वह छूती तक नहीं थी। विटामिनों और लिवर-एक्स्ट्रैक्ट के इंजेक्शनों के लगने के बावजूद वह लगातार कमजोर होती जा रही थी।

चिम्प-हाउस में रीता के साथ एक युवा चिम्प रवि रहा करता था। उसकी उम्र सात साल थी। उम्र में बड़ा अंतर होने के बावजूद दोनों में खूब पटती थी। बीमारी की गंभीर अवस्था में रीता को अपनी कोठरी के अंदर रखा जाता था। उसकी कोठरी के बाहर बरामदे में बैठा हुआ रवि उसे गौर से देखता रहता और अक्सर खेलने के लिए उसकी मिन्नत करता रहता था। बहुधा वह खाने से इनकार कर देता था। अंतिम नौ दिन तो वह रीता की कोठरी के दरवाजे पर लगातार टकटकी बांधे बैठा रहा था।

दर्शकों के लिए खुला चिम्प-हाउस अकस्मात बेरौनक हो गया। एक सफल अभिनेत्री के रूप में रीता ने 'इनसानियत' फिल्म में काम किया था। पशुवाटिका में वह सारे दिन एक मसखरे का अभिनय किया करती थी। तरह-तरह के खेलों से वह दर्शकों को खूब हंसाती थी।

**दावत में संयम टूट गया**

तुलनात्मक शरीर-विज्ञान, जीव-रसायन आदि से देखा गया है कि चिम्प बंदरों की अपेक्षा मनुष्य के अधिक करीब है। इसका मन वानर-सदृश की अपेक्षा मानव-सदृश अधिक है। यह हर प्रकार की सोसाइटी के वातावरण के लिए अतिशय संवेदनशील होता है। पशु-वाटिका के एक छोटे चिम्प को दावतों में ले जाया जाता था। एक दावत में खाने की समाप्ति के समय चेरी से भरा एक बड़ा बाउल मेज पर आया। इस लुभावने फल ने चिम्प के संयम को तोड़ डाला और उसने कुहनी तक अपनी दोनों बांहें चेरियों के अंदर घुसेड़ दीं। इस हरकत पर हरेक हंस पड़ा। उसने महसूस किया उसने कोई सामाजिक भूल कर दी है। शर्म के मारे उसने अपने हाथों से मुंह ढक लिया, ठीक वैसे ही जैसे मानव-शिशु करता है।

विषादमय आंखें
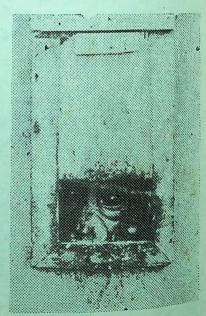
पिक्कू की चीखें क्या थीं मानो अमानवीय अत्याचारों का विरोध था

### विचारशील प्राणी

चिम्पांजी में सभ्यता की सभी सुख-सुविधाओं को हासिल करने की आकांक्षा जल्दी ही पैदा हो जाती है। हैम्बर्ग पशु-वाटिका का एक चिम्प तेजी से पैडल मारता हुआ साइकिल पर गलियों में चक्कर लगा आता था। सर्कस का चिम्प मोटरसाइकिल पर झट सवार हो जाता है।

इस प्रकार के सब क्रियाकलाप अधिकतर अनुकरण ही हैं। लेकिन, परीक्षणों से पता चलता है कि चिम्प में किसी भी दूसरे प्राणी की अपेक्षा विचार करने की अधिक शक्ति होती है। चिम्प की कोठरी में केले का एक गुच्छा लटका दिया गया। हाथ ऊंचा करके उसने उन्हें पकड़ने की कोशिश की, केलों तक उसका हाथ नहीं पहुंचा। वह बैठकर कुछ सोचने लगा। कोठरी में कुछ खाली बक्से रखे थे। उसने एक बक्से को उठाकर लटकते हुए गुच्छे के नीचे रखा। उसके ऊपर चढ़कर भी उसका हाथ नहीं पहुंचा। उसने पहला बक्सा हटाकर दूसरा बक्सा रखा। इससे भी उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ। उसने बारी-बारी से सभी बक्सों को आजमा लिया, पर उसका काम नहीं निकला। वह फिर सोच में पड़ गया। इस बार उसने एक के ऊपर दूसरा बक्सा रखकर ढेर लगा दिया। इस पिरामिड के ऊपर चढ़कर उसने केले तोड़ लिये।

### अविकसित आदमी

शताब्दियों पहले जो पर्यटक अफ्रीका गये थे वे विचित्र आदमियों की चौंका

देनेवाली कहानियां सुनाया करते थे। चिम्पांजी का पहला प्रामाणिक उल्लेख ऐंड्रू वेट्टेल की 'दि स्ट्रेंज एडवेंचर्स' में मिलता है। इस अंगरेज नाविक को १५९० में पुर्तगालियों ने कैद कर लिया था। यह अंगोला के पास अठारह साल रहा था। इसने दो पुच्छविहीन बंदरों का उल्लेख किया था। एक का नाम इसने पोंगो और दूसरे का एंजोको लिखा था। इसमें से पहला गोरिल्ला और दूसरा चिम्पांजी था। यूरोप में पहला चिम्पांजी १६४१ में देखा गया था और ५८ साल बाद वैज्ञानिक पद्धति से चिम्पांजी का वर्णन किया गया था। डॉक्टर सेवेज नामक एक मिशनरी ने १८४७ में इसकी आदतों के बारे में जानकारी दी थी।

चिम्पांजी भारी वदन का प्राणी होता है। वह मनुष्य से उतना नहीं मिलता जितना गोरिल्ला से। आकार में चिम्पांजी गोरिल्ला से वहुत छोटा होता है। चिम्पांजी और गोरिल्ला मनुष्य से केवल इस बात में मिलते हैं कि इनकी गरदन और त्रिकास्थि (सैक्रम) के बीच में सातवीं कशेरुका पायी जाती है। मनुष्य से इनमें एक मामूली-सा अंतर यह है कि इनमें पसलियों का एक अतिरिक्त जोड़ा पाया जाता है।

गोरिल्ला के समान चिम्पांजी भी केवल अफरीका में पाये जाते हैं। गैम्बिया, भूमध्यरेखा के समीप अफरीकी प्रदेशों, कांगो के दक्षिण और उगांडा तथा टांगानिका के पूर्व में वर्षाप्रधान उष्ण जंगलों में चिम्पांजी सर्वत्र पाये जाते हैं।
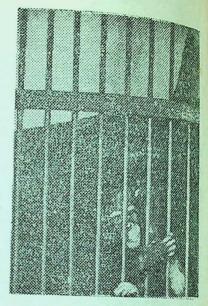
तनहाई में सीखचों के पीछे रवि

चिम्पांजी का प्राकृतिक आवास घने जंगल हैं, जहां उष्णदेशीय वनस्पतियां प्रायः अंधेरा बनाये रखती हैं। सामान्यतया यह गोरिल्ला की अपेक्षा अधिक वृक्षवासी है। लोआंगो के निकट ये तट के समीप पहाड़ों पर रहते हैं।

**पारिवारिक जीवन**

नर-चिम्पांजी अपने परिवार के लिए पेड़ के ऊपर रहने की जगह बनाता है। एक कर्तव्यपरायण पति के समान वह रक्षा के लिए नीचे रहता है। जब पड़ोस में भोजन कम हो जाता है तब परिवार वहां से चल पड़ता है और नयी जगह पर रहने लगता है। ये या तो परिवार के गिरोहों में रहते हैं या छोटी बिरादरियों में। दस

से अधिक शायद ही कभी इकट्ठे रहते हैं। खयाल है कि एक बार संगी का चुनाव करने के बाद नर और मादा जिंदगी-भर इकट्ठे रहते हैं।

चिम्पांजी सारे साल बच्चे देता रहता है। तारुण्य धीरे-धीरे आता है। तारुण्य का पहला चिह्न लैंगिक त्वचा का सूज जाना है। यह सूजन कुछ महीने बाद विलीन हो जाती है। इसके कुछ दिन बाद मासिक स्राव होने लगता है। औसतन आठ साल और ग्यारह महीने की उम्र में पहला मासिक स्राव शुरू होता है।

जन्म के बारह महीनों के अंदर चिम्पांजी के मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है। इसके छह या सात बरस बाद यह प्राणी संतानोत्पत्ति के योग्य हो जाता है। प्राय: एक ब्यात में एक बच्चा पैदा होता है। देखा गया कि १२० प्रसवों में छह बार जोड़े पैदा हुए थे। गर्भधारण की औसत अवधि २२६.८ दिन होती है। यह अवधि १९६ से २६० दिन तक हो सकती है।

खड़े हुए नर की अधिकतम ऊंचाई लगभग पांच फुट और मादा की चार फुट होती है। नर का भार सवा सौ से एक सौ साठ पौंड और मादा का भार सौ से डेढ़ सौ पौंड तक होता है। ये न तो शिकारी द्वारा मारे जाते हैं और न ही पकड़े जाते हैं। हां, वैज्ञानिक अध्ययन के लिए तथा पशुवाटिकाओं में रखने के लिए इन्हें पेशेवर लोगों द्वारा पकड़ा जा रहा है।

फ्रेंच गिनी के कींडिआ में स्थित पास्चर इंस्टीट्यूट में इन प्राणियों के पर्यवेक्षण और चिकित्सोपयोगी अध्ययन के लिए एक प्रयोगशाला है। यूरोप या दूसरे देशों की संस्थाओं में इन्हें भेजने से पहले यहां प्रत्येक चिम्पांजी को बंदी-जीवन में रहने का अभ्यास कराया जाता है।

मानवीय रोगों का अध्ययन करने में आज की वैज्ञानिक दुनिया में मनुष्य-सदृश बंदरों, विशेषकर चिम्पांजियों का बड़ा लाभ है। परीक्षणों के लिए सीरमों तथा वैक्सीनों का जो अंतःक्षेपण और सभी प्रकार की दवाओं का सेवन कराया जा रहा है, उसके लिए चिम्पांजी कहीं अधिक उपयोगी है। इस प्राणी के मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से इस बात पर बहुत प्रकाश पड़ा है कि बुद्धि का किस तरह विकास हुआ है।

सामान्यतया चिम्पांजी की बोली किलकारियां मारना और तरह-तरह के शोर करना है, जो उसके मनोभावों का द्योतक है। बंदरों के समान चिम्पांजी की भाषा समझने की कोशिशें की गयी हैं, परंतु, इन अनुसंधानों के परिणाम अब तक संदिग्ध कहे जा सकते हैं।

यह फलाहारी प्राणी है। कहा जाता है कि यह वाटिकाओं को बहुत नुकसान पहुंचाता है। कुछ गंजे चिम्पांजी कबूतरों, चूहों और चुहियों को भी मारकर खा लेते हैं।

—डी-२९, राजौरी गार्डन, नयी दिल्ली

# भूखे हैं तो क्या?
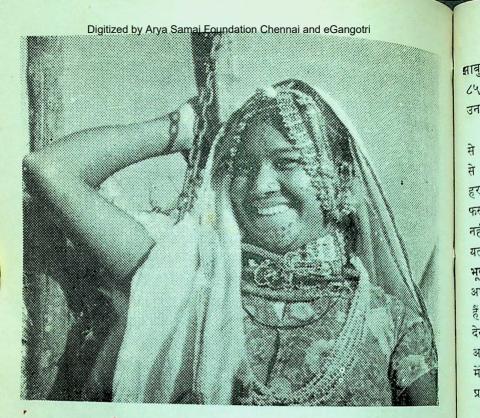
• प्रभा नाथ

'भील' शब्द के उच्चारण के साथ गरीबी और पिछड़ेपन के प्रतिनिधि एक ऐसे व्यक्ति का चित्र आंखों के सामने आता है, जो आधुनिक समाज के सदस्यों की तुलना में गंवार, असभ्य और आलसी है, किंतु यह चित्र भीलों से दूर रहकर उनके बारे में इधर-उधर से पढ़-सुनकर बनाया गया है।

मध्यप्रदेश के दक्षिण-पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र में गुजरात-राजस्थान-मालवा और निमाड़ की साधन-संपन्न संस्कृतियों के बीच बसा है आदिवासी भील-भिलालों का अंचल झाबुआ और धार क्षेत्र। वैसे तो भील-भिलाले विंध्याचल और सतपुड़ा के पहाड़ी क्षेत्रों में दूर-दूर तक फैले हुए हैं, परंतु उनका सबसे सघन क्षेत्र है

झाबुआ जिला, जहां की कुल आबादी का ८५ प्रतिशत आदिवासी है और यहीं पर उनकी संस्कृति के वास्तविक दर्शन होते हैं।

लंबे समय तक साहूकारों के शोषण से जकड़े हुए और बंजर भूमि की क्रूरता से पीड़ित भीलों की मुख्य विशेषता है हर हालत में उनका संतोष। साहूकार फसल ले गया तो व्यवस्था से शिकायत नहीं और वर्षा कम हुई तो ईश्वर से शिकायत नहीं। इसी संदर्भ में एक कहावत है—**भूकलो तो भूकलो, सूकलो तो सही,** अर्थात भूखे हैं तो क्या हुआ, सुख से तो हैं। केवल एक लंगोटी पहने समय बिता देना, इसी संतोष का प्रमाण है। वैसे आजादी के बाद इनकी आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है, किंतु संतोष की प्रवृत्ति इनमें सदा की भांति विद्यमान है।

शायद संतोष ही वह पूंजी है जिसके आधार पर भीलों ने हर हालत में सुखी

कठोर परिश्रम: स्वास्थ्य का रहस्य

रहना, जीवन का एकदम निकट से आनंद लेना सीखा है। हर मौसम में, जीवन के हर मोड़ पर मादल बजाना, बांसुरी छेड़ना, लोकगीत और लोकधुन पर हाथों में हाथ बांधकर थिरकना ये जानते हैं। इनके नृत्य की तीन प्रमुख शैलियां हैं, गरबा, पाली और घोर।

भील बांकुरा    माथे के बोर से पांव की बिछिया तक: सजीधजी झाबुआ की भीलनी

**गरबा** में गुजरात का प्रभाव है, किंतु उसमें भील-प्रदेश के संशोधन शामिल हैं। स्त्री और पुरुष गोल घेरा बनाकर कभी बांहों में बांहें फंसाकर, कभी कमर में हाथ डालकर, कभी आगे-पीछे झुक तालियां बजा, चार कदम दाहिनी ओर, चार कदम बायीं ओर चलते गोल-गोल घूमते हैं। **पाली** में पंक्ति सीधी हो जाती है—एक युवकों की पंक्ति, एक स्त्रियों की पंक्ति। हाथ परस्पर जुड़े होते हैं, लोकधुन पर समवेत लोकगीत गाते हुए युवकों की टोली तेजी से आगे बढ़ती है और युवतियों की पंक्ति के इतने निकट पहुंच जाती है कि सांसों में कुछ अंगुल का अंतर रह जाता है। उसके बाद उसी लय में लौट जाती है। इसके साथ ही युवतियों की पंक्ति आगे बढ़ती है, युवकों के बिलकुल निकट तक। इनमें अकसर युवक-युवती के सवाल जवाब होते हैं। तीसरी शैली **घोर** कहलाती है। गोल घेरे में होनेवाले इस नृत्य में सब कुछ मुक्त होता है। ढोल-मादल या अन्य वाद्य बजानेवाले भी घेरे में ही रहते हैं। लोग गीत गाते अपने-अपने में मस्त-मगन सब अपना-अपना नृत्य करते हैं।

नृत्य और गीत इनके जीवन के हर मोड़ में गुंथे हुए हैं। घर में काम करने के गीत, त्योहारों के गीत, विवाह तथा रस्मों के गीत, मेले और हाट-बाजार के गीत।

भीलों द्वारा हर परिस्थिति में जीवन

सजीला मातृत्व

का आनंद भोगने का एक कारण उनकी सुपुष्ट देहयष्टि भी है। त्वचा का रंग प्रायः सांवला या गेहुंआ होता है और इन रंगों के अनुरूप गहनों और वस्त्रों का चयन भीलों की सुरुचि का परिचायक है। महिलाएं अकसर लाल रंग पर पीले, सफेद एवं काले रंग की छींट की चुनड़ी या इन्हीं रंगों की लंबे पट्टेवाली 'मसरू' कही जानेवाली ओढ़ने पहनती हैं। इसकी लंबाई सात हाथ की होती है। नीचे घेरदार घाघरा १४ कली का नेफा लगा हुआ होता है। घाघरे का रंग सामान्यतः गहरा हरा, आसमानी या काला छींटवाला होता है। अकसर काम करने की तेजी में

घाघरा आधा ऊपर उठाकर खोंस लिया जाता है।

भील पुरुष सफेद गोल पगड़ी पहनते हैं, जो १६ हाथ लंबी होती है। काले रंग की आधी बांहोंवाली जाकेट ऊपर पहनी जाती है, जिसकी बांहें नीले सफेद या अन्य किसी रंग की होती हैं। इस जाकेट को झूलड़ी कहते हैं।

शरीर के विभिन्न अंगों की सजावट के लिए ये चांदी, गिलट, कथीर और कांच के मोती के गहने पहनते हैं। गुदना गुदवाते हैं। शरीर का अधिकांश भाग गहनों से, गुदनों से ढक जाता है। सिर से पैर तक बोर, लोड़िया, सांकलियां, कान की कोटरिया, गले की तागली, गलसन, तोरन हार, सांकली, हाथ की अंगुलियों में मूंदरी, हाथ पर हथेला, बांहों में करूंद्री, सोकले, गोल, नारियल की कासली, पाटड़ियां, कमर में कंदोर, पैर में कड़ला, कड़ी, अंगूठियां, बीछियां आदि होते हैं। भील पुरुष भी हाथ में चांदी के कड़ें, हाटके और सोने की मुरकियां पहनते हैं। अधिकतर लोग नंगे पैर ही रहते हैं।

भील समूह में रहना बहुत कम पसंद करते हैं। अपने-अपने खेत में अलग झोपड़ी बनाकर रहना इन्हें पसंद है। युवक विवाह के पश्चात अकसर माता-पिता से अलग घर बनाता है। अलग-अलग रहने के कारण चोरों से सुरक्षा के लिए मकान की दीवारें लकड़ी के लट्ठों को पास-पास गाड़कर बनाते हैं। ये मकान भी घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर वे तोड़ देते हैं और नया मकान बना लेते हैं। मकान, यानी झोपड़ी एक बड़े हॉल के समान होती है। उसी में पूरा परिवार रहता है, उसी में मवेशी बंधते हैं। इन्हें मुर्गी, बकरी, कुत्ते आदि पालने का बड़ा शौक है। घर के बरतन मिट्टी, अल्युमीनियम और पीतल के होते हैं। रोटी भी मिट्टी के कड़ेले पर बनायी

बाजार का रंग

गोदने की बहार

जाती है। मुख्य भोजन मक्का है।

ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी क्षेत्र में केवल एक फसल ही संभव होती है, उस पर वर्षा की आंखमिचौली गजब ढाती रहती है। पहाड़ों पर हल चलाकर मक्का बो दिया जाता है। पहाड़ का निचला भाग जहां पानी रुकने की संभावना होती है वहां धान बो दिया जाता है।

प्रमुख त्योहार होली के एक सप्ताह पहले से प्रारंभ होनेवाला 'भगोरिया' है। भगोरिया स्थान-स्थान पर इस अवधि में लगनेवाले हाटों का नाम है। इन मेलों में जीवन-साथी का चयन होता है। भगोरिया मेले में एक के बाद दूसरे स्थान पर घूमकर भील युवक-युवती अपने योग्य साथी का चयन करते हैं। पसंद आ जाने पर मरजी जानने के लिए भील युवक युवती को पान खिलाता है। यदि युवती पान स्वीकार कर लेती है, तो उसे सहमत मानकर उसके सिर पर गुलाल लगा देता है। बदले में युवती भी गुलाल लगा देती है। इसके बाद हाथ में हाथ डाल दोनों अपने परिचित समाज से दूर चले जाते हैं। दो-चार दिन में ही उनके रिश्तेदार उन्हें ढूंढ़ निकालते हैं। उसके बाद शुरू होती है लड़की के मूल्य-निर्धारण की चर्चा। पांच सौ रुपये से तीन-चार हजार रुपये तक लड़की और लड़के के माता-पिता की हैसियत के अनुसार। यह रुपया किश्तों में भी दिया जा सकता है। लड़की के किसी भी कारणवश अलग हो जाने पर रुपये वापस लौटाने की परंपरा है। एक से अधिक पत्नी भी रखी जा सकती है और युवती यदि एक पति को छोड़ दूसरा पति कर लेती है तो दूसरा पति पहले पति को उसके द्वारा चुकायी गयी कीमत वापस कर देता है।

ग्रीष्म ऋतु झाबुआ के लिए लगभग हर वर्ष आनेवाला एक संकटकाल है और इससे निरंतर जूझना ही इनकी अदम्य जीवनशक्ति का परिचायक है। मीलों चलकर पानी लाना साधारण बात है। ताड़ी और महुए की शराब इनके दुःख-सुख के साथी और कई मानों में दरिद्रता के कारण बन गये हैं। ये खुद शराब बनाते हैं। ताड़ी की चोरी के कारण कई हत्याएं हो जाती हैं। फिर नशे में झूमते हुए किसी भी गतिशील चीज पर तीर चल जाता है, बाद में पता चलता है कि मरनेवाला इनका सबसे बड़ा शुभचिंतक था। अपराध की सूचना देने अकसर वे स्वयं पुलिसथाने पहुंच जाते हैं।

भीलों में प्रसव महिलाएं नहीं, पुरुष करवाते हैं। वैसे अस्पताल जाने में भी कोई संकोच नहीं है।

बचपन और किशोरावस्था पिता की देखरेख में ढोर चराने, खेती का काम करने, जंगल से महुआ आदि बीनने में बीतता है। शिक्षा के प्रति झुकाव अब बढ़ रहा है।

किशोरावस्था के साथ ही अकसर साथी की तलाश शुरू हो जाती है।
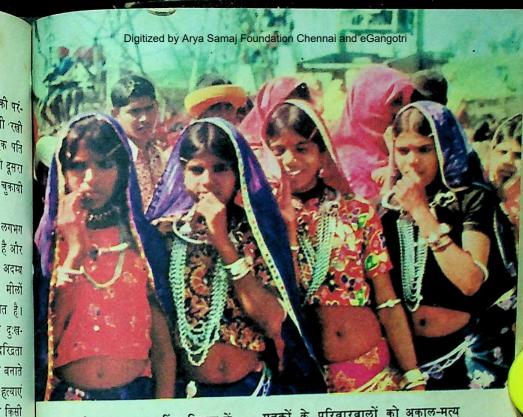
जीवन का चरम-बिंदु विवाह में ही होता है, जो साथी पसंद न आने पर आसानी से छूट भी जाता है। सारी उमर कठोर परिश्रम करते रहने को ये सहज रूप से स्वीकार कर चुके हैं। विवाह के बाद यह भी देखा गया है कि पत्नी पति से अधिक कार्य करती है, शायद कारण यह है कि पति उसकी कीमत चुकाकर उसे लाता है।

मुक्त वातावरण में, मुक्त जीवन लंबा और स्वस्थ होता है। बीमारी अपेक्षाकृत कम ही इन्हें पकड़ती है। अधिकतर अकाल-मृत्यु दुर्घटनाओं से होती है। जिनकी अकाल-मृत्यु होती है उनके स्मारक के रूप में ये लोग पत्थर पर [illegible] वाले 'गातले' लगाते हैं। अकसर ये गातले मृतकों के परिवारवालों को अकाल-मृत्यु की याद दिलाते हैं। परिणामस्वरूप कई बार पुश्तैनी दुश्मनियां भी चलती हैं। मृतकों को जलाया जाता है। शराब अंतिम क्रिया का भी एक अंग होती है। किंतु अंतिम संस्कार सवर्णों के समान लंबा नहीं होता।

भीलों का जीवन कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ वास्तव में जीने की चीज है। जरूरत है, अशिक्षा और शराब की लत को दूर करने की। इस दिशा में इनके स्वयं के मानस बदलने पर ही सफलता मिल सकती है। यह कार्य इनके ही वर्ग के प्रगतिशील व्यक्ति करें तो अधिक तेजी से सफलता हाथ लग सकती है।



—द्वारा श्री सुरेन्द्रनाथ,
कलेक्टर, झाबुआ (म. प्र.)
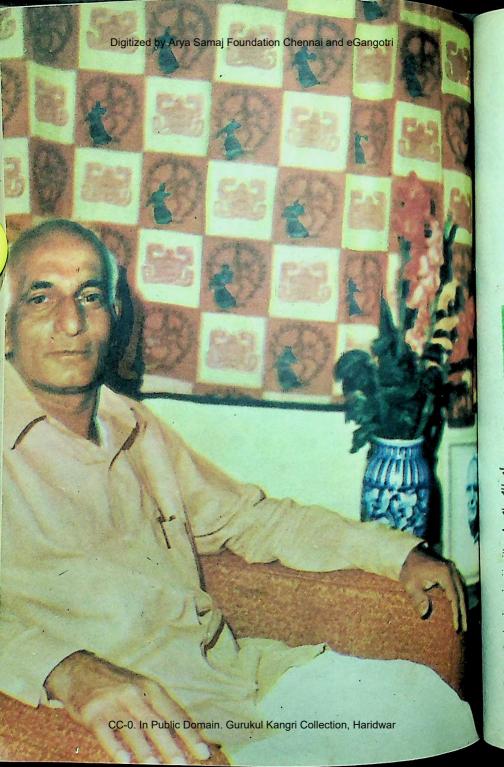
- सब कुरसी की पूजा करते हैं
- मैं एक फील्ड वर्कर रहा हूं
- हम अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेंगे
- एकता एक प्रक्रिया है, घटना नहीं
- हिंदी का प्रचार और तेजी से होगा
- माध्यम क्षेत्रीय भाषाएं नहीं, हिंदी होगी
- मेरे रहते अफसरशाही नहीं चलेगी
- मजदूरों के साथ सीधा संपर्क रखेंगे

# नये रेल-मंत्री की नयी दृष्टि

## कादम्बिनी संपादक से विशेष भेंट

रेल-मंत्रालय का वहीं पुराना कमरा। पहले भी कई बार इसी कमरे में हम भूतपूर्व रेल-मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी से मिल चुके हैं। कमरे में कोई विशेष परिवर्तन नहीं थे। वैसे ही सीधे-सादे और सहज भाव से नये रेल-मंत्री श्री मधु दंडवते ने हमारा स्वागत किया। उनकी टेबुल पर एक ओर 'मार्क्स ऐंड गांधी' शीर्षक एक पुस्तक रखी हुई थी और दूसरी ओर था फाइलों का ढेर। सिद्धार्थ कालेज में पचीस वर्षों तक फिजिक्स के प्राध्यापक रहने के बाद राजनीति में प्रवेश करते हुए श्री दंडवते इस बात से पूरी तरह परिचित थे कि यदि समाचार-पत्र आज उनके बारे में प्रकाशित कर रहे हैं तो यह मात्र कुरसी का प्रतिफल है। उनका कहना था कि यदि समाचार-पत्र श्री आडवाणी के बारे में रोज छाप रहे हैं तो सिर्फ इसलिए कि वे सूचना-मंत्री हैं।

हमें आश्चर्य था कि श्री दंडवते अपने मन में इस तरह के विचार किन आधारों पर ला रहे हैं, क्योंकि उनसे बातचीत का हमारा प्रयोजन उनका मात्र रेल-मंत्री होना नहीं बल्कि बुद्धिजीवी होना रहा है। श्री दंडवते ने तभी कहा था कि 'यह बुद्धिजीवी क्या होता है?' हम जानते हैं कि श्री दंडवते बुद्धिजीवी की परिभाषा से भलीभांति परिचित हैं। बहरहाल थोड़ी देर में वे

नये रेलमंत्री से चर्चा करते हुए 'कादम्बिनी' के संपादक और सहकारी संपादक

निश्चित भाव से एक प्रोफेसर की भांति धाराप्रवाह बोलने लगे। जिस आत्मीयता और बेलाग ढंग से उन्होंने बातें कीं, उनसे हम प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। जहां कुछ कठिन प्रश्न थे, वहां उन्होंने स्पष्ट कह दिया, 'रेल-बजट पेश होने के दूसरे दिन आपको इन प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा।' हमने अंदाज लगा लिया कि रेल-मंत्रालय की समूची कार्य-पद्धति में कुछ बड़े परिवर्तन के आसार स्पष्ट हैं। ये बातें रेल-बजट पेश होने के पहले की हैं।

## ● मैं एक फील्ड वर्कर रहा हूं

### साहित्य से भी खास लगाव

श्री दंडवते ने अपने जीवन-प्रसंगों के बारे में बताया, "मूलतः मैं तो एक फील्ड वर्कर रहा हूं, नीचे के स्तर पर कार्य करनेवाला फील्ड वर्कर और समाजवादी आंदोलन ऐसा था कि सिर्फ काम करने से चलता नहीं था, अध्ययन भी करना पड़ता था। आचार्य नरेन्द्रदेव और लोहिया-जैसे नेताओं के साथ काम किया। लोहिया तो आचार्य देव के निवास-स्थान पर ही रहते थे। इस तरह आचार्य नरेन्द्रदेव, लोहिया और जयप्रकाश के साथ काम करने से विचारों में भी परिपक्वता आयी और अध्ययन की आदत पड़ी।

हमारे यह प्रश्न पूछने पर कि आप किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ते हैं और आपके प्रिय लेखक कौन हैं, श्री दंडवते ने कहा, 'मेरी च्वाइस वैरीड है, पर साहित्य से मेरा खास लगाव है।'

श्री दंडवते ने बताया, वैसे तो गालिब और उर्दू शायरों के बारे में उन्होंने काफी कुछ सुन रखा था, लेकिन जेल-यात्रा में उन्होंने गालिब के शेरों का नया सौंदर्य जाना।

उन्होंने कहा, "जेल में हमारे साथ रामकृष्ण हेगड़े (जनता पार्टी के महामंत्री) और जमीयत-ए-इस्लाम के कुछ लोग थे, उनसे मैंने लगातार उर्दू लिपि सीखी। यों उर्दू मैं जबानी तौर पर जानता था, लेकिन

हर परिवर्तन के नये सूत्र सोचते हुए

हर टेलीफोन का उत्तर हाजिर है

जेल में लिपि भी पढ़ ली। हेगड़ेजी के सहवास में मैंने उर्दू शायरी का काफी अध्ययन किया। वैसे मैंने उर्दू, हिंदी, अंगरेजी, और मराठी कविता का भी अध्ययन किया है। दिनकर की कविताओं से मैं प्रभावित हूं। मराठी के कई लेखकों में जावड़ेकर, खांडेकर और फड़के मेरे प्रिय लेखक रहे हैं।

## ● अत्याचार बर्दाश्त नहीं करेंगे

### प्रेस के साथ शर्मनाक व्यवहार

आपात-स्थिति के दौरान जो कुछ उनके और उनके साथियों के साथ हुआ, श्री दंडवते ने उसकी विस्तार से चर्चा की। समूचे प्रसंग को उठाते हुए उन्होंने बताया, "मैं पार्लियामेंट की 'एस्टीमेट कमेटी' के सदस्य के नाते टूर पर था और एर्णाकुलम से बंगलौर आया था। २६ जून को आपात-स्थिति की घोषणा होते ही मुझे पकड़ लिया गया। मेरे साथ आडवाणीजी, श्यामनंदन मिश्र और अटलबिहारी वाजपेयी भी थे। हम सब विभिन्न समितियों के काम के सिलसिले में उधर गये थे। उसी वक्त हम सब लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया।

हमने फिर पूछा, "आपके साथ कोई ज्यादती तो नहीं हुई ?"

उत्तर मिला, "ज्यादती तो नहीं हुई, हां, एक बहुत बुरा अनुभव हुआ, जब जार्ज फर्नांडीस के भाई लारेंस फर्नांडीस को गिरफ्तार कर बंगलौर जेल में लाया गया। दस दिनों तक उनकी काफी पिटाई की गयी और फांसी की कोठरी में रखा गया। मैंने कुछ कैदियों के जरिये वहां के मालूमात हासिल किये कि किस ढंग से दस दिनों तक उनको कष्ट दिये गये। मैंने प्रधानमंत्री को एक बड़ा ही सख्त पत्र लिखा कि हम कभी इन अत्याचारों को बर्दाश्त नहीं करेंगे और एक दिन ऐसा आएगा जब इन सब अत्याचारों का जवाब मिलेगा। एक एम. पी. का खत होने के नाते उसे 'क्लियर' तो किया गया, लेकिन उसका जवाब नहीं

आया। गृह-सचिव पर पत्र का उल्टा असर हुआ। पांच मई से हमें २४ घंटे बैरकों में रखा जाने लगा। हम पंद्रह अगस्त तक इसी तरह बंद रहे। वही समय बुरा रहा। हम बाहर घूमने नहीं जा सकते थे। हां, बैरकों में आपस में बातचीत कर सकते थे। लारेंस के साथ जो व्यवहार जेल में हुआ, बयान करना कठिन है।"

हमने फिर पूछा, "आप अंगरेजों के जमाने में भी जेल गये हैं। तब के और आज के जेल-जीवन में आपने क्या फर्क पाया?"

दंडवतेजी का उत्तर था, "आपात-स्थिति के दौरान जेलों में अंगरेजों के समय से भी ज्यादा अत्याचार हुए। ऐसा नहीं कि अंगरेजों ने कम अत्याचार किये थे। जलियांवाला बाग-कांड तो भयानक रहा है, लेकिन एक बार जेल भेज देने पर या पुलिस-स्टेशन ले जाने पर इतने अत्याचार नहीं किये गये। आपात-स्थिति के समय तो अत्याचारों की कोई सीमा नहीं रही। आपात-स्थिति के दिनों प्रेस के साथ जिस ढंग से व्यवहार हुआ, उसकी तो कोई तुलना ही नहीं है।"

## ● एकता एक प्रक्रिया

### समाजवाद सबका लक्ष्य

'जनता पार्टी' कई घटकों की एक इकाई है, फिर उसमें अचानक एकता कैसे आ गयी, इस मूल प्रश्न का उत्तर विस्तार के साथ श्री दंडवते ने दिया, "बहुत-से लोगों को आश्चर्य होता है कि चंद घंटों में एकता कैसे हो गयी, लेकिन वास्तविक बात यह नहीं है। साल, डेढ़ साल—जितने भी दिन हम जेल में रहे रात-दिन हम इसी सवाल पर विचार करते रहे कि एकता कैसे आये। आडवाणीजी, मैं, श्यामनंदन मिश्र हर दिन एकता के बारे में चर्चा करते थे। और भी जो पांच-छह सौ कैदी थे, उनके साथ बात करते थे। हम लोगों ने एकता के बारे में कई ड्राफ्ट तैयार किये थे। अन्य जेलों में में भी इस तरह का चिंतन चलता रहा, एकता के बारे में, इस प्रकार यह एकता एक प्रक्रिया है, घटना नहीं है। जेल में चिंतन की जो प्रक्रिया हुई, उसका यह नतीजा है कि बाहर आने के बाद चंद घंटों में एकता हो गयी।"

हमने उन्हें रोककर कहा, "लेकिन परस्पर-विरोधी विचार तो अब और खुलकर सामने आ रहे हैं?"

दंडवतेजी बोले, "देखिए मैं यह नहीं मानता। टिकटों के बारे में कशमकश चलती होगी, लेकिन जहां तक विचार है, मैं समझता हूं कि हर पार्टी ने इस बारे में बहुत ही गंभीरतापूर्वक सोचा है कि आज तक जो उनके सिद्धांत थे, उनके बारे में क्या तबदीली की जा सकती है। एक उदाहरण दूं—पारंपरिक रूप से समझा जाता है कि जनसंघ समाजवाद-विरोधी दल है। हमने उन्हें बताया कि हमारे मन में समाजवाद की जो तसवीर है, वह भारतीय मूल्यों के साथ मिलती-जुलती है। जब हम समाजवाद की बात करते हैं तब यूरोप में कम्युनिस्टों के मन में समाज-

अफसरशाही नहीं चलेगी! हर समस्या का हल हाजिर है
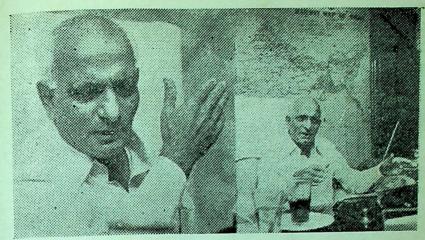
वाद की जो तसवीर है, उसे हम नहीं मानते । भारत के मानवतावादी और नैतिक मूल्यों के साथ हम समाजवाद को आगे बढ़ाना चाहते हैं । इस तरह की चर्चा के बाद सब लोगों ने एक राय से यह मान लिया कि हमारे जो उद्देश्य होंगे, उनमें एक यह भी होगा—समाजवादी समाज बनाना और समाजवादी राष्ट्र की स्थापना करना ।

गांधीजी के बारे में भी बहुत गलतफहमी थी । मैं एक बात आपको बताना चाहता हूं कि गांधीजी और खान अब्दुल गफ्फार खां ने आखिरी दम तक तकसीम का, भारत के विभाजन का, विरोध किया था । कार्यकारिणी में उन लोगों ने जो विचार रखे थे उसके बारे में बहुत कम लोगों को पता था । अटलबिहारी वाजपेयी ने हम लोगों से कहा कि गांधीजी के विचारों को दुबारा पढ़ने के बाद उन्हें पता चला कि गांधीजी और उनके विचारों में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं है ।

## ● हिंदी का प्रचार तेज होगा

### समितियों का कुंभ मेला नहीं

मैंने उन्हें बताया कि रेल-मंत्रालय से मेरा पुराना संबंध है और मैं स्वर्गीय ललितनारायण मिश्र के जमाने से रेल-मंत्रालय की राजभाषा सलाहकार-समिति का सदस्य हूं । इसमें संदेह नहीं है कि हिंदी का जितना काम रेल- मंत्रालय में हुआ है, अन्य मंत्रालयों में नहीं हुआ । इस स्पष्टीकरण के बाद हमारी जिज्ञासा थी कि नये रेल-मंत्री और क्या नये सुधार करने जा रहे हैं ?

श्री दंडवते ने बताया, मैं हिंदी-समितियों के काम को मजबूत करना चाहता हूं, उनको खतम करने का तो सवाल ही नहीं उठता । अंगरेजी में एक शब्द है स्ट्रीमलाइन । मैं अनेक समितियों की स्ट्रीमलाइनिंग करूंगा और अनपेक्षित
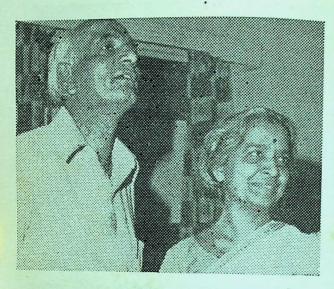
श्री दंडवते अपनी पत्नी श्रीमती प्रमिला दंडवते के साथ। समाजवादी आंदोलन के दौरान परिचय, विवाह और हर संघर्ष में साथ-साथ काम

समितियां नहीं रह पाएंगी। उदाहरण के लिए एक तो सलाहकार-समिति है और दूसरी कार्यान्वयन-समिति। हमें गृह-मंत्रालय से आदेश मिले हैं कि कार्यान्वयन-समिति में गैर-सरकारी सदस्य नहीं हो सकते। उनकी बात माननी पड़ेगी। हिंदी सलाहकार-समिति को मैं और प्रभावी बनाऊंगा और आप-जैसे अच्छे लेखकों का पूरा सहयोग लेना चाहूंगा।

हमने उन्हें टोककर बताया कि 'यदि कार्यान्वयन-समिति में गैर-सरकारी सदस्य नहीं होंगे तो सलाहकार-समितियों द्वारा दी गयी सिफारिशों पर अमल कैसे होगा?'

अभी हम अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाये थे कि श्री दंडवते ने तपाक से कहा कि 'इन दोनों समितियों के बीच किस तरह 'कोआरडिनेशन' (समन्वय) हो, इस पर विचार कर रहे हैं। हमारे यहां जो प्रमुख हैं, उनके साथ भी सलाह-मशविरा कर हम कोई रास्ता निकालेंगे। मैं खुद मानता हूं कि अफसरों के हाथों में ये सब काम देना ठीक नहीं होगा। पीपुल्स लेवल पर जो रिप्रजेंटेटिव हैं, उनका भी प्रभाव होना चाहिए।'

श्री दंडवते ने हमारे इस विचार से सहमति व्यक्त की कि ऐसे गैर-सरकारी सदस्य ज्यादा सतर्क होंगे, पर उन्होंने यह भी कहा, "माफ कीजिए, मैं समितियों का कुंभ-मेला नहीं लगाना चाहता।"

मैं निष्पक्ष रहना चाहता हूं और यदि जनता पार्टी के लोग चाहेंगे कि इन समितियों में सिर्फ जनता पार्टी का प्रभुत्व रहे तो नहीं करूंगा। वह चाहे जनता पार्टी का हो, कांग्रेस पार्टी का अथवा निष्पक्ष—हमारी कसौटी होगी कि हिंदी के साथ किसका कितना गहरा ताल्लुक है।

## • माध्यम क्षेत्रीय भाषाएं नहीं

### अंगरेजी को हटाना ही होगा

मैं आपको एक बात और बता दूं। मैंने तो अपने आफिस में एक फैसला कर दिया है कि हिंदीभाषी राज्यों के साथ तो हमारा पत्र-व्यवहार हिंदी में ही हो, लेकिन तथाकथित अहिंदी राज्यों से भी जो पत्र हिंदी में आते हैं, उनका जवाब भी हिंदी में ही दिया जाए।

श्री दंडवते ने बताया कि उनकी अपनी नीति यही रहेगी कि लोकसभा या राज्यसभा में हिंदी में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हिंदी में ही देंगे। उन्होंने आगे कहा, "आपको शायद नहीं मालूम, कई वर्ष पहले महाराष्ट्र में विश्वविद्यालय में शिक्षा के माध्यम को लेकर विवाद चला था। इस विषय को लेकर अनेक सेमीनार भी किये गये थे। आपको आश्चर्य होगा कि मैं 'माइक्रोसकोपिक माइनारटी' में था। हमारे कई पुराने लोगों ने कहा कि विश्वविद्यालय स्तर पर अंगरेजी को नहीं हटाना चाहिए, लेकिन मैंने जोर दिया कि 'स्टेटस-को' नहीं चलेगा। देश आजाद हो गया है, इसलिए अंगरेजी को तो हटाना ही पड़ेगा। हमारे महाराष्ट्र के कई लोगों ने सुझाव दिया कि अंगरेजी के स्थान पर मराठी को विश्वविद्यालय का माध्यम बनाया जाए, पर मैंने एक अलग दृष्टिकोण रखा। मैं यह चाहता हूं कि इस देश में 'एक्सपर्ट एजुकेशनिस्ट' की 'मोबीलटी' रहे। मैंने उन्हें एक उदाहरण भी देते हुए समझाया कि रायल इंस्टीट्यूट ऑव साइंस में, जहां मैं विद्यार्थी था, स्पेक्ट्रोस्पिक के बहुत अच्छे उपकरण हमारे फिजिक्स विभाग में थे। जब हमारे विभाग के अध्यक्ष डॉ. तावड़े रिटायर्ड हुए तो हमारे यहां इस विषय का कोई एक्सपर्ट नहीं था। बहुत लोगों ने सोचा कि बनारस विश्वविद्यालय से प्रोफेसर वासुंदी को बुलवाया जाए, पर सवाल आ गया शिक्षा के माध्यम का। प्रोफेसर वासुंदी के मित्रों ने कहा कि वासुंदी साहब अभी तो नहीं आएंगे, क्योंकि यदि शिक्षा का माध्यम मराठी हो गया तो वे नहीं पढ़ा पाएंगे। यदि हिंदी या अंगरेजी माध्यम होगा तो वे आ सकेंगे। यदि मराठी माध्यम होगा तो वाराणसी का प्रोफेसर रॉयल इंस्टीट्यूट में नहीं आ सकेगा। यदि हिंदी माध्यम होगा तो वाराणसी का प्रोफेसर रायल इंस्टीट्यूट में भी आ सकता है और बंबई का प्रोफेसर पटना जा सकता है। इसलिए विश्वविद्यालय-स्तर पर हिंदी पढ़ने में कोई दिक्कत नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरी तो यह निश्चित राय है कि विश्वविद्यालयों से जब अंगरेजी मीडियम जाएगा तब उसकी जगह प्रादेशिक भाषाओं को नहीं बल्कि हिंदी को लेना होगा। ऐसा करने के बाद ही 'एक्सचेंज ऑव प्रोफेसर' हो सकेगा और 'मोबीलिटी' ज्यादा बढ़ेगी। आचार्य नरेन्द्रदेव हमेशा कहते थे, यदि कोई कानूनी प्रबंध न करते हुए उत्तरी विश्वविद्यालयों में हम दक्षिण की किसी भाषा को अपनायें तो उसका 'रिसपांस' दक्षिण में भी होगा और हिंदी की भी प्रगति होगी।

## • अफसरशाही नहीं चलेगी

### जिम्मेदारी मेरी, रेलवे-बोर्ड की नहीं!

हमने श्री दंडवते से कहा कि हिंदी के मामले में आप बहुत उदार हैं, लेकिन

हमारा खयाल है कि यहां का रेलवे-ब्रोर्ड हिंदी का सबसे बड़ा विरोधी है। श्री दंडवते ने तुरंत कहा, वे विरोध करते रहें यह सब नहीं चलेगा। यह बात जरूर है कि दक्षिण से आये लोग हिंदी में उतनी दिलचस्पी नहीं लेते, लेकिन हमारे जो लोग उत्तर-भारत से आये हैं, उन्हें हिंदी में तुरंत सारा काम करना होगा। बातचीत का रुख रेल-मंत्रालय के राजभाषा-विभाग और अन्य विभागों की ओर मोड़ते हुए हमने कहा कि "इनके निदेशक रेलवे-बोर्ड के प्रति उत्तरदायी होते हैं और बोर्ड में अफसरशाही है, यह आप भी जानते हैं।"

श्री दंडवते ने इस बात पर जोर दिया कि "जिम्मेदारी मेरी है, बोर्ड की नहीं। सन १९०५ से १९७७ तक, कानून का यही आधार है कि रेलवे-बोर्ड रेल-मंत्रालय की हैसियत से काम करता है और रेल-मंत्री उसका प्रमुख होता है। सब महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों और निर्णयों के लिए भी रेल-मंत्री ही जिम्मेदार होता है। मैं किसी पर अन्याय नहीं करना चाहता और न किसी की नीयत पर हमला करना चाहता हूं, पर संसदीय लोकतंत्र में मंत्री पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इंगलैंड के मारिस नामक एक लेखक ने एक बहुत अच्छी किताब लिखी है। उनके अनुसार—When the minister fails to study the problem, apply his mind to the material, build up the intellectual ability to conduct the administration, when he refuses to do that, he becomes a prisoner in the hands of his officers. **(भावार्थ : जब कोई मंत्री समस्या का अध्ययन करने, उसका हल खोज निकालने और तत्संबंधी सामग्री देखने के साथ-साथ प्रशासन चलाने के लिए बौद्धिक क्षमता उत्पन्न करने में असफल रहता है, या यह सब करने से इनकार करता है तो वह अपने अफसरों के हाथों बंदी बन जाता है।)**

इसलिए अफसरशाही मेरे रहते तो यहां नहीं पनप सकती। मैं आपको यह भी बताना चाहता हूं कि जो भी निदेशक हैं, अफसर हैं, उन्हें कोई भी दिक्कत हो तो वे सीधे मेरे पास आ जाएं, उन्हें और किसी के माध्यम से आने की जरूरत नहीं है। मेरा भी सभी अफसरों से सीधा संपर्क है। मैं तो अफसरों से मिलता हूं और उनकी बैठकें 'अटैंड' करता हूं।"

## ● हड़तालों का निपटारा कैसे!

### मजदूर-वर्ग काफी समझदार

हमने बातचीत के अंत में देश में आपातस्थिति के बाद यत्र-तत्र शुरू हो गयी हड़तालों के बारे में जनता पार्टी की नीति जाननी चाही, "जब आप मंत्रालय में नहीं थे तब आप हड़तालों का समर्थन कर रहे थे, पर अब, जबकि आप सत्तारूढ़ हैं तब हड़तालों के प्रति आपका दृष्टिकोण कैसा होगा ?'

श्री दंडवते ने कहा, 'देखिए हम हड़तालों पर पाबंदी नहीं लगाना चाहते, लेकिन खुद मेरी यह राय है कि यदि मजदूरों के साथ आपका सीधा ताल्लुक है और आप उन्हें बता देते हैं कि आप उनके साथ अन्याय नहीं करेंगे तो स्ट्राइक होने की नौबत ही नहीं आएगी।'

उन्होंने बताया कि सीधे संपर्क से बहुत सारी गलतफहमियां दूर की जा

सकती हैं, 'यदि कोई धरना देने के लिए आता है तो हम उन्हें मना नहीं करते, वरन सीधे जाकर उनके बीच बैठते हैं। उनके साथ बातचीत करते हैं।'

हमने निजी क्षेत्र में होनेवाली हड़तालों का जिक्र किया और कहा कि मजदूरों की हर मांग मान ली जाती है तो उनकी मांगें बढ़ती ही जाएंगी, दूसरी ओर मालिक भी मजदूरों की मांगें नहीं मानें, यह भी गलत है। श्री दंडवते ने हमें रोककर कहा, 'देखिए, मैं आपको एक बात बताता हूं, और यही बात मैंने सार्वजनिक सभाओं और रेल-कर्मचारियों की सभाओं में भी कही है। पिछली बार सन '७४ में जब रेल-हड़ताल की गयी थी तब मजदूरों ने 'चार्टर ऑव डिमांड' रखते हुए कहा था कि ये मांगे 'निगोशियेबल' हैं, अर्थात उन पर बातचीत की जा सकती है, लेकिन सरकार ने कहा, 'नहीं, ये मांगें निगोशियेबल नहीं हैं और आपको 'सप्रेस' किया जाएगा।' हमारी यह नीति नहीं होगी। हम मांग लेकर आनेवाले कर्मचारियों को बैठाएंगे, उनसे बात करेंगे, उन्हें बताएंगे कि हमारी एकाउंट-बुक एक ही होगी। दिखलाने की एक और संसद में पेश करने की दूसरी, ऐसी कोई एकाउंट-बुक हमारे यहां नहीं रहेगी। हम उन्हें सारी स्थिति से अवगत कराने के बाद पूछेंगे कि यदि आप हमारी जगह होते तो क्या करते ? और इस ढंग से उनसे बात करेंगे। मुझे विश्वास है कि हमारा वर्किंग क्लास इतना 'मैच्योर' है कि यदि आप उन्हें समझाएंगे और कांफीडेंस में लेकर बात करेंगे तो वे समझ जाएंगे।'

हमने पूछा, 'क्या यह एप्रोच हर मंत्रालय में होगा ?' श्री दंडवते ने कहा, 'क्यों नहीं।'

**श्री मधु दंडवते : जन्म—२१ जनवरी, १९२५, अहमदनगर। शिक्षा-दीक्षा : एम. एस-सी. फिजिक्स, रायल इंस्टीट्यूट ऑव बंबई से। सन '४२ के 'अंगरेज भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान 'अगस्तवादी गुट' के नाम से काम तथा तभी सोशलिस्ट पार्टी से संबंध। १९४६ से १९७१ तक सिद्धार्थ कालेज, बंबई में फिजिक्स के प्रोफेसर। पर अध्यापन के साथ-साथ सक्रिय राजनीति में भी भाग। उनके अपने शब्दों में—'सन १९४२ से आज जनता पार्टी बनने तक मैं समाजवादी पार्टी में रहा। इस बीच कोई दल नहीं बदला।'**

अंत में हमने कहा, 'आपने हड़ताली कर्मचारियों को पुनः काम पर लेने का निर्णय किया है। तत्संबंधी समाचार पढ़कर अचानक ही मन में एक विचार आया कि आज आप इन हड़ताली मजदूरों को 'लायल' (निष्ठावान) कहकर काम पर ले रहे हैं। इससे उन लोगों के मन में जिन्होंने हड़ताल के दिनों में काम किया और सरकार के प्रति निष्ठावान रहे, चाहे उस समय कोई भी सरकार क्यों न रही हो, क्या फ्रस्ट्रेशन नहीं आएगा ?'

श्री दंडवते ने स्वीकार किया कि उनके इस निर्णय से कर्मचारियों में कुछ फ्रस्ट्रेशन तो है, पर साथ ही यह आश्वासन भी जोड़ दिया—'लेकिन उनके लिए भी हम कुछ कर रहे हैं। इस बारे में मैं आपको फिर कभी बताऊंगा।'

# अंगरेजी बाबू कुंभ मेला में

● डॉ. कमलाकांत चतुर्वेदी

गंगा आश्चर्य का चिह्न! भारतीय जीवन में गंगा नदी का वही स्थान है जो शायद शरीर में प्राण का होता है। भारतीय जनमानस के मन-प्राण से बंधी हुई गंगा सारे संकल्पों का समाहार है। यह आश्चर्य की बात हो सकती है कि अत्याधुनिक दुनिया में भी एक नदी के प्रति यह आस्था और विश्वास बना दिया जाए, लेकिन संभवतः समस्त भारतीय संस्कृति और चिंतन आशा और विश्वास के सहारे ही तो जीवित है।

**शरीर से गंदा और कुछ नहीं**

गंगा का महत्त्व मात्र आध्यात्मिकता में समाहित नहीं है, लेकिन यदि विहंगम रूप से देखा जाए तो वह देश की एकता का प्रतीक है। सम्राट अशोक के समय से उत्तर और दक्षिण भारत की सांस्कृतिक एकता गंगा के तट पर आकर ठहरी है। ऐसे गंगा के तट पर हर बारह वर्ष में पड़नेवाला कुंभ मेला और उसमें भी इस वर्ष संपन्न हुआ महाकुंभ, जो शायद १४४ वर्षों के बाद फिर होगा, एक पूरी परंपरा को

कुंभ महापर्व के लिए गंगा के तट को संवारा जा रहा है

**गंगा का महत्त्व मात्र आध्यात्मिकता में समाहित नहीं। उत्तर और दक्षिण भारत की सांस्कृतिक एकता गंगा के तट पर आकर ठहरी है। गंगा हमारे सारे संकल्पों का समाहार है।**

स्थिर दष्टि देता है ।

मैंने एक करोड़ से अधिक लोगों की भीड़ इस मेले में देखी । गंगा के मटमैले जल में श्रद्धालु लोगों को गोते लगाते देखा है । इनमें वृद्ध ही नहीं युवक भी हैं और निरा देहाती अपढ़ व्यक्ति ही नहीं बहुत पढ़े-लिखे और बुद्धिजीवी भी हैं । मेरी जिज्ञासा इन पढ़े-लिखे और बुद्धि-

एकमात्र अभिलाषा गंगास्नान की

जीवी व्यक्तियों को देखकर और अधिक तीव्र हुई कि आखिर ये क्या चाहते हैं। विज्ञान में विश्वास रखनेवाले और मनुष्य के शरीर को मात्र मशीनी उपकरणों की भांति देखनेवाले कलकत्ता के एक डॉक्टर से मेरी भेंट हुई । डॉ. राय चौधरी बहुत नामी व्यक्ति हैं और अधेड़ उम्र के हैं । उनके साथ उनकी पत्नी और दो बच्चे थे। "चौधरी साहब, आप तो चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से सफल व्यक्ति हैं।

फिर इस भीड़-भाड़ में और इस गंदे पानी में स्नान करने कैसे चले आये ?" डॉ. राय चौधरी ने कुछ सोचते हुए-से कहा था, "एक बात निश्चित है कि सौरमंडल में सूर्य, चंद्र, तारे, मंगल, बुध न जाने कितने ग्रह और उपग्रह हैं। पृथ्वी भी इन्हीं में से एक है । वह भी इन ग्रहों और उपग्रहों के साथ चक्र काट रही है । डॉ. होने के

साधुओं की चांदी है

बावजूद मैं यह मानता हूं कि ग्रहों का परस्पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। उदाहरण के लिए स्वयं अमरीका के वैज्ञानिकों ने सूर्य-ग्रहण और चंद्र-ग्रहण के प्रभावों को गहन अध्ययन के बाद स्वीकार किया है। गंदगी का प्रश्न है, तो मानव-शरीर के भीतर जो गंदगी है, वह कहीं नहीं है। मैं अपनी पत्नी और बच्चों के कहने से प्रयाग नहीं आया बल्कि मुझे विश्वास है कि ठीक अमावस्या के दिन पृथ्वी की जो स्थिति

होती है, उसमें गंगा स्नान करने से व्याधियों का नाश होता है। आप उसे निरा अंधविश्वास मानते हैं तो मानते रहें।

**कुंभ स्नान : पाखंड और ढोंग का अध्ययन**

मैं हतप्रभ था और उसी स्थिति में मेरी भेंट हुई प्रो. आर. एस. बनर्जी से। दर्शन-शास्त्र में निष्णात प्रो. बनर्जी आस्तिक व्यक्ति नहीं हैं। उनका कहना है कि दर्शन-शास्त्र के हर सिद्धांत को समझने के बावजूद मेरी धारणा बनी है कि दुनिया में सत्य कुछ भी नहीं है। यह मिथ्या जगत पाखंड और ढोंग पर टिका हुआ है, और मानव-जिज्ञासा की दृष्टि से इस पाखंड और ढोंग का अध्ययन बहुत जरूरी है। कुंभ की इस भीड़ में मैं एक-एक इकाई को देखता हूं और मेरे अध्ययन के लिए ये अच्छी सामग्री प्रस्तुत करती हैं। खोजियों के लिए ऐसी विशाल और विविध भीड़ और कहां मिलेगी!

प्रो. बनर्जी से जिस समय मैं बात कर रहा था तब तमिलनाडु के एक मंत्री महोदय उनके साथ थे। उन्होंने बातचीत करने से पहले ही यह कह दिया कि सब कुछ लिखिए, मगर मेरे नाम का उल्लेख मत करिए। मंत्री महोदय की आस्था अपने लिए नहीं, जनता के लिए थी। वे कहते हैं कि गंगा और शिव का नाम लेकर जनता के मन को आसानी से जीता जा सकता है। तमिलनाडु-जैसी जगह में गंगा-जल बांटकर जो पुण्य मिलेगा, सफलता की कहानी उससे बड़ी नहीं है। उन्होंने स्वीकार किया कि हम राजनीतिज्ञ हमेशा ढोंग करते आये हैं। आप मान लीजिए कि मेरा यहां आना भी एक ढोंग है। लेकिन एक बात और भी है और वह यह कि इतनी भारी भीड़ को देखकर मेरे सारे ढोंग आस्था और विश्वास में बदलते जा रहे हैं।

महाराष्ट्र की महिला पत्रकार कुमारी विजया देशपांडे अपनी बूढ़ी मां को लेकर महाकुंभ के पर्व में प्रयाग पहुंचीं। "मां की अंतिम इच्छा है कि इस कालजयी कुंभ को दोनों हाथों से उलीचकर सार्थक बनाया जाए। अपनी मां की इच्छा पूरी करना मेरा धर्म है। और फिर एक पंथ दो काज—इस भीड़ पर एक बढ़िया रिपोर्ताज और सुंदर फोटोग्राफ किसी भी विदेशी पत्रिका में आसानी से छप सकते हैं। मैं तो प्रोफेशनल हूं और यदि प्रोफेशन के साथ-साथ मां की सेवा करने का मौका भी मिल जाए तो क्या कहने!"

श्रद्धा से हाथ जुड़ गये
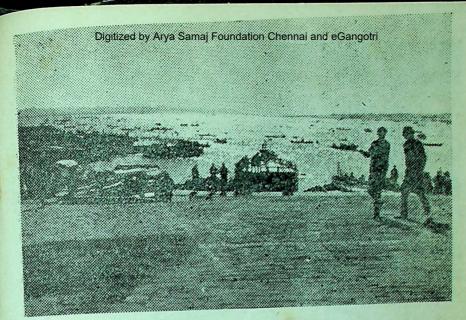
गंगा की रेत पर उतरती हुई शाम

## सांपों की भीड़

कुंभ मेले में घूमते हुए उस भयंकर भीड़ के भीतर हमने एक इतालवी व्यक्ति भी देखा, जो मूवी कैमरा लिये हुए बड़े जोश के साथ यहां-वहां घूम रहा था। भारत आते ही वह दिल्ली और बंबई-जैसे शहरों में खुली सड़क पर घूमते हुए शेर और 'स्नेक-चार्मर' देखना चाहता था। वहां तो देखने को मिले नहीं, प्रयाग की भीड़ में उसे जरूर मिलेंगे, यह विश्वास लेकर वह आया था। "आने के पहले मैं भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से मिला था और उन्होंने मुझे सुझाव दिया था कि यदि मुझे भारत की जनता से पहचान करनी है तो मुझे कुंभ देखने प्रयाग जाना चाहिए। उन्हीं के कहने पर मैं यहां चला आया। यहां आकर तो मेरी आंखें फटी रह गयीं। धर्म के प्रति उतनी अंधश्रद्धा मैंने और कहीं नहीं देखी। मैं महाकुंभ पर एक फिल्म भी बना रहा हूं।"

## भीड़ : एक सम्मोहन

मैंने उस उत्साही इतालवी युवक को कैमरा लिये हुए नागा साधुओं के बीच भागते हुए और गंगा के पानी में भीगते हुए देखा है। उसके साथ एक खूबसूरत लड़की भी थी। उसे भगवे कपड़े पहनाकर उससे वह अपनी फिल्म की नायिका का काम लेना चाहता था। अपने माइक से लोगों से बातचीत करना और फिर निरे देहातियों की तसवीरें खींचना उसका काम था। संगम के नितांत मटमैले पानी से रामनाम का जाप करते हुए गोता लेकर उभरती हुई औरतें और फिर वैसे ही कपड़ों में उनका बाहर आना—वह युवक इतना अधिक हतप्रभ हो उठा था कि मैंने कई बार तो उसे ही 'हर-हर गंगे' के नारे लगाते
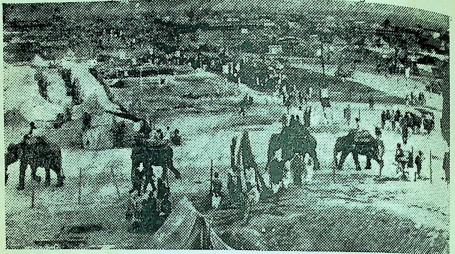
हाथियों का जुलूस : महापर्व की बेला

हुए देखा । पानी में कूदकर, गरदन भर पानी से लगातार फोटो लेते हुए भी मैंने उसे देखा। वास्तव में भीड़ में एक सम्मोहन होता है और मृगतृष्णा की तरह भीड़-तृष्णा नाम की भी एक चीज होती है—ऐसा मेरा खयाल है । आदमियों के जंगल में धारा की तरह दीखनेवाले बच्चे उस परंपरा को साक्षात करते हैं जो आगे आनेवाले महा-कुंभ के पर्वों में अपने साथ दूसरी धारा लेकर आयेंगे । यह महादेश धर्म के बहाने कितना बड़ा सत्य खोज लेता है, इसकी पहचान बाहर के व्यक्ति नहीं कर सकते । पूजा-पाठ, दीवाली, दशहरा और होली, फिर अमावस्या और पूर्णिमा को भी धर्म के साथ भले ही जोड़ दिया गया हो, मगर इनका संबंध आदमी के साथ है । मुझे बहुत-से लोग ऐसे मिले जो इस मेले में सिर्फ इसलिए आये हैं कि उन्हें जाने-अनजाने, भूले-बिसरे, परिचित और अपरि-चित ढेर-से व्यक्तियों के साथ मिलने का मौका मिलेगा । मेलजोल एक सामाजिकता है और हमारा देश व्यक्तिवाद और व्यक्ति-निष्ठा में डूबा हुआ है।

**इतिहास को समेटने का प्रयास**

महाकुंभ के अवसर पर मुझे बंगलौर के टी. वेंकटरमन मिले । ये सज्जन मैसूर विश्वविद्यालय में इतिहास के छात्र हैं। मॉड ढंग के बाल और हलकी-सी दाढ़ी। मैंने उन्हें रोका, "अरे भाई, आखिर तुम यहां क्या लेने आये हो?" उन्होंने तपाक से कहा—'मैं इतिहास को समेटने आया हूं। मैंने पढ़ा था कि सम्राट हर्ष प्रयाग के उसी महाकुंभ मेले में आकर लोगों को मनचाहा दान दिया करते थे । वे अपनी संपत्ति लुटाते थे, और आज मैं देख रहा हूं कि पंडों की यह भीड़ किस कदर उलटे जनता से संपत्ति लूटती है और दूसरी ओर यहां के नेता अपनी आस्तिकता के ढोंग

का लबादा ओढ़कर यहां आते हैं और जनता को लूटते हैं।' जिस समय मैं उस युवक से बातें कर रहा था, मैंने देखा सारी भीड़ भेड़ों की तरह भागती जा रही थी और इंदिरा गांधी की जय के नारे लगा रही थी। उनकी नजर में महाकुंभ के पुण्य से ज्यादा आकर्षण इंदिराजी में है और इंदिराजी ने ही नहीं समूचे नेहरू-परिवार ने गंगा और प्रयाग के नाम पर समूचे देश को भोगा है। यह समझ नहीं सका कि आखिर श्रीमती गांधी कौन-सा पुण्य लूटने के लिए वहां आयी थीं। यदि उनसे बात-चीत करने का मौका मिलता तो शायद पता लगता, लेकिन क्या वे अथवा इस देश का कोई जननेता अपने मन की सही आकांक्षाओं को बताने की हिम्मत रखता है? उनके मन में चाहे जो होता, वे दुहाई तो देतीं—जनता के विश्वास की धर्म के साथ जुड़ी भारतीय इकाई की ओर उन्हें मिले हुए जन-जीवन के विश्वास की।

श्रद्धा का अंत नहीं
एक बूढ़ी स्त्री साधुओं को कुछ दान देते हुए

**गंगा नहाना : पाप घटाना**

**आयुर्वेद में गंगा का पानी**

वैद्यराज महामहोपाध्याय शिवरत्न शर्मा अत्यधिक विनम्रशील हैं। उन्होंने बताया कि इससे पहले मैं दो बार कुंभ आना चाहता था किंतु एक बार मेरी पत्नी बीमार हुई और दूसरी बार एक रिश्तेदार का देहांत हो गया। मुझे लगा कि भगवान की इच्छा नहीं थी। लेकिन देखिए इस बार बिलकुल निर्विघ्न यात्रा संपन्न हुई। मैं अपनी पत्नी को भी ला सका। रेल में आसानी से जगह मिल गयी। उन्होंने बताया, आयुर्वेद की दृष्टि से गंगा का पानी शुद्ध है, क्योंकि वह हिमालय के ऐसे शिखरों से बहकर आता है जहां जीवनदायिनी शक्तियां मौजूद हैं। यही कारण है कि और नदियों के पानी में कीड़े पड़ जाते है, लेकिन गंगा के गंदे पानी में भी कीड़े नहीं पड़ते। मैं बहुत पवित्र मन से यहां आया हूं और भाई ऐसे-वैसे प्रश्न मुझसे नहीं पूछिए ऐसा ही पवित्र मुझे जाने दीजिए। ●

पाकिस्तानी कहानी

# नीला पत्थर

● अहमद नदीम कासमी

अम्मां ने हमें आधी रात को ही जगा दिया—"उठो बेटो ! मुंह-हाथ धो लो, कपड़े बदल लो। शेरू, मीरासी और नूरा सारबान बस पहुंचने ही वाले होंगे।"

उस समय चांद सीधा हमारे सिरों पर चमक रहा था। पिंजरे में सोता हुआ तोता अपने सिर को अपने पंख में कुछ इस तरह छिपाये पड़ा था जैसे कोई उसका सिर काटकर ले गया हो। बिल्ली रुई का एक गोला बनी बैठी थी। "मानो !" मैंने उसे बुलाया तो वह उठी। अंगड़ाई ली तो अपने कद से ड्योढ़ी लंबी हो गयी। फिर वह वहां से कूदकर मेरी चारपाई पर आ बैठी और खुर-खुर करती हुई मेरी गोद में घुसने लगी।

"तुमने बिल्ली की आदतें बिगाड़ दी हैं," अम्मां, जो हमारे लिए नाश्ता बनाने के लिए चूल्हा जला रही थीं, बोलीं, "अब तुम्हारे जाने के बाद वह दो-तीन दिन तक रोती फिरेगी।"

भाईजान ने पूछा, "और अम्मां ! हमारे चले जाने के बाद आप तो नहीं रोयेंगी न ?"

"नहीं तो !" अम्मां बोलीं और फिर रोने लगीं।

हम चारपाइयों पर से कूदकर अम्मां से लिपट गये और अम्मां हम दोनों के सिरों पर हाथ फेरते हुए रोती रहीं और कहती रहीं, "मैं क्यों रोऊं? मैं जिंदगी भर क्या कम रोयी हूं कि अब भी रोऊं, जबकि मेरे बच्चे मेरा सहारा बनने-वाले हैं। जब तुम दोनों नौकर हो जाओगे तब मैं अपनी गुजरी हुई जिंदगी से जी भरकर बदले लूंगी। मैं निवाड़ के पलंग पर सोऊंगी और तुम्हारी बीवियों से अपने पांव दबवाऊंगी।"

"हमारी बीवियां आजकल कहां रहती हैं अम्मां ?" मैंने पूछा।

अम्मां हंसने लगीं और मुझे सीने से भींचकर बोलीं, "वह तुम्हारे चचा की छत पर एक बड़ा-सा सितारा चमक रहा है न, उसमें रहती हैं। यह सितारा

थोड़ा-थोड़ा हिल रहा है। बताओ, क्यों हिल रहा है?"

फौरन बोला, "हवा से हिल रहा है।"

और अम्मां हंसती हुई बोलीं, "नहीं बेटा, हवा से कहां हिल रहा है। सितारा इसलिए हिलता हुआ लग रहा है कि तुम्हारी बीवियां तुम्हें देख-देखकर खुश हो रही हैं और तालियां बजा-बजाकर हंस रही हैं और कह रही हैं कि इस बुढ़िया के ठाठ देखो, हमसे पांव दबवायेगी! यह मुंह और मसूर की दाल!"

अचानक बिल्ली चारपाई से कूदकर फिर से मेरी गोद में घुस आयी। अम्मां उसकी गरदन का चमड़ा चुटकी में डालकर पानी से अपनी उंगलियां धोते हुए बोलीं, "उस बेजबान को तो पता चल गया है कि अतहर गरमियों की छुट्टियां बिताकर वापस कँवलपुर जा रहा है।"

हमने मुंह-हाथ धोकर कपड़े बदले, चूरी खायी और जब नूरे की प्रतीक्षा करते-करते थक गये तब अम्मां के कहने पर उसे बुलाने निकले।

गांव बिलकुल चुप था, जैसे सांस रोके पड़ा हो, "भाईजान", मुझ पर सन्नाटे का हौल छाने लगा, "चलिए वापस चलें। खुद अम्मां कहती हैं कि आधी रात के बाद गलियों में जिन्न घूमते हैं।"

भाईजान बोले, "अम्मां यह भी कहती हैं कि आयत अलकरसी पढ़ने से जिन्न भाग जाते हैं। आयत अलकरसी पढ़ो।"

मैंने सोचा, अगर ऐसी बात है तो खुद भाईजान आयत अलकरसी पढ़ते

हुए आगे क्यों नहीं बढ़ते, जबकि नूरे का घर कुल दो गलियां दूर है, पर मेरे पास ज्यादा सोचने का समय नहीं था। मैं आयत अलकरसी पढ़ने लगा।

अभी मैं 'वला-नोम' तक ही पहुंचा था कि गली के परले सिरे पर एक जिन्न प्रकट हुआ, "भाईजान!" मैंने चीखने की हद तक सरगोशी की और भाईजान से लिपट गया।

"आयत अलकरसी पढ़ो," उन्होंने भी चीख की हद तक सरगोशी की और अपने आप को मेरी पकड़ से आजाद किया, "अम्मां कहती हैं कि जिन्न से डरकर भागने से आदमी मर जाता है। फिर जिन्न उन बच्चों को तो बिलकुल कुछ नहीं कहते जो आयत अलकरसी पढ़ते हैं।"

गली के पत्थर लुढ़क और बज रहे थे। अब जिन्न हमसे कोई दस गज दूर रह गया था। फिर वह वहां रुक गया और बोला, "कौन हो तुम? जिन्न हो? भूत हो? कौन हो? बोलो, वरना पत्थर मारता हूं," और उसने झुककर एक पत्थर उठा ही लिया।

भाईजान फौरन बोले, पर अजीब तरह बोले। मैं उनकी आवाज पहचान ही न सका, "हम अकबर और अतहर हैं।"

"ओए बेड़ा तर जाए तुम्हारा!" वह पत्थर जमीन पर फेंककर हाथ झाड़ते हुए बोला, "मैं तो डर गया था। तुम तो मेरे साईं हो। मेरा तो दिल धड़कने लगा है। मैं भी कहूं, यह कौन हाथ-हाथ भर

की चीजें खड़ी हैं..." और फिर वह हंसा।

"तुम कौन हो?" अबके भाईजान बाकायदा कड़के।

वह बोला, "मैं तुम्हारा धोबी हूं, जमान धोबी। क्या कर रहे हो यहां आधी रात को?"

मैं पहली बार बोला, "हमारी छुट्टियां खतम हो गयी हैं। हम कैंवलपुर जा रहे हैं। हम शेरू मीरासी और नूरे साबान का इंतजार कर रहे हैं।"

"तुम इस समय क्या करते फिरते हो?" भाईजान ने जमान से यह सवाल ऐसे रोब से पूछा जैसे उस्ताद बच्चों से पूछते हैं।

जमान बोला, "मैं पत्थर काटने जा रहा हूं। हर रोज इस समय घर से निकलता हूं। सुबह की नमाज नीली

ढेरी पर पढ़ता हूं। फिर वहां नीला पत्थर काटता हूं। तुम्हारे चचा नया मकान बनवायेंगे न नीले पत्थर का !"

"क्या धोबी भी पत्थर काटते हैं ?" भाईजान ने हैरान होकर पूछा।

और जमान ने जवाब दिया, "जब धोबी के पास धोने को कुछ न हो तब उसे पत्थर ही काटने चाहिएं, वरना वह इनसानों को काटने लगेगा," वह जरा-सा रुका, पर हमें खामोश पाकर हंस दिया। फिर बोला, "क्या करूं ! छह बच्चे हैं। न उनकी मां है न दादी। सब मुझमें घुसे चले आते हैं, बिल्ली के बच्चों की तरह ! सब का दोजख भरना होता है, और खुदा मेरा सहारा है और मैं उनका सहारा हूं।"

"सहारा !" मैंने सोचा, यह सहारा क्या होता है ? अभी-अभी अम्मां भी कह रही थीं कि तुम मेरा सहारा हो। अब यह जमान धोबी कह रहा है कि खुदा उसका सहारा है और वह अपने बाल-बच्चों का सहारा है। आखिर क्या होता है यह सहारा ... "क्यों भाईजान, यह सहारा होता क्या है ?"

पर भाईजान ने तो मेरी बात सुनी ही नहीं। ताली बजा दी, "आ गया नूरा !"

"अब नीली ढेरी पर मुलाकात होगी," जमान धोबी बोला, "खुशाब का रास्ता वहीं से गुजरता है न ! मैं तुम्हें एक नीला पत्थर दूंगा जो मैंने छिपाकर रखा है। उसमें गहरी नीली लहरें हैं और नीली-नीली चिड़ियां-सी उड़ रही हैं और नीले-नीले फूल-से खिल रहे हैं। कुदरत भी अजीब-अजीब खेल खेलती है। मैं जब दोपहर को भी वह पत्थर देखता हूं तब जी चाहता है कि नमाज पढ़ने लगूं। ले जाना अपने साथ। अपने चाचाजी को देना। कहना, जमान धोबी

ने भेजा है। वह खुश होंगे। खुदा के बाद हम गरीबों का वही सहारा हैं।"

"सहारा!" मैं बाकायदा चौंक पड़ा, पर जमान आगे बढ़ गया था।

दूर से ऊंट-जितना लंबा लग रहा था। उसकी गरदन में लटकी हुई घंटी यों बज रही थी जैसे कोई लड़की गा रही हो। तब एक मुर्गे ने बांग दे डाली। फिर तो बांगों का तांता बंध गया। कादरे के बाड़े में एक बकरी मिमयायी और फौरन बबद कादरे का कुत्ता भौंका। गांव ने अंगड़ाई-सी ली, जैसे हमें विदा करने के लिए उठ बैठा हो। मैं अंदर भागा। फिर शेरू ने दरवाजे पर से पुकारा, "बीबीजी, परदा! मैं अंदर आकर बच्चों का संदूक उठा लूं।"

"दो संदूक हैं?" मैंने शेरू को डांटा।

"आहा... हा-हा-हा।" शेरू ने मेरी बगलों में हाथ रखकर मुझे पकड़ा और अपने सिर से भी ऊंचा ले गया, "अब तो मेरा छोटा साईं भी संदूकवाला हो गया। तुम्हारी मूंछें कब निकलेंगी? जल्दी-जल्दी से बड़े हो जाओ न! फिर मैं तुम्हारी शादी पर ऐसा-ऐसा ढोल बजाऊंगा, ऐसा-ऐसा ढोल बजाऊंगा कि तानसेन ने भी ऐसा ढोल न बजाया होगा। तुम्हीं तो मुझ गरीब का सहारा हो।"

फिर वही 'सहारा'! यह सहारे क्या होते हैं आखिर? मैं उस से पूछने लगा था कि उसने संदूक उठाकर कंधे पर रखा और बाहर चला गया। अंदर कोठे में अम्मी हमें लिपटाये कुछ पढती रहीं और हम पर छूह-छूह करती रहीं और रोती रहीं। फिर शेरू दूसरा संदूक भी ले गया और जाते हुए कह गया, "चलो जी!"

जब हम कजावे में बैठे तब भी ड्योढ़ी के दरवाजे के पीछे से अम्मी की रोयी-रोयी आवाज आ रही थी, "अल्लाह, इन्हें खैर-खैरियत से पहुंचाना। अल्लाह, इन्हें कोई नुकसान न पहुंचे। अल्लाह, तेरे बाद यही तो मेरे सहारे हैं।"

सहारे! मैं भाईजान से जरूर पूछता, पर हम दोनों के बीच ऊंट की बाधा थी और फिर मुझे एकदम बहुत-सा रोना भी जो आ गया था! ऊंट गली का मोड़ मुड़ा तो मैं संयत न रह सका। मैंने चीख मारी—अम्मीजी! और भाईजान कजावे में घुटनों के बल उठे और मुझे डांटा, "देखते नहीं हो, साथ शेरू और नूरा आ रहे हैं। वे क्या कहेंगे कि हम इतने बुजदिल हैं। पोंछ लो आंखें। चुप हो जाओ। आयत अलकरसी पढ़ो।"

मुझे भाईजान की आवाज भी भीगी-भीगी लगी। मैंने कहा, "आप भी आंखें पोंछ लें और आयत अलकरसी पढ़ें।"

और वह जैसे मान गये—अच्छा!

फिर मैंने कजावे में घुटनों के बल खड़े होकर कहा, "भाईजान, जब जमान धोबी अपने बच्चों को घर में छोड़कर नीली ढेरी पर जाता होगा तब हमारी तरह रोता होगा।"

"क्यों? वह क्यों रोये?" भाईजान

ने पूछा।

मैंने कहा, "हम अपनी अम्मी के सहारे हैं। वह अपने बच्चों का सहारा हैं। हम रो रहे हैं तो वह क्यों नहीं रोता?"

"चुप रहो"—भाईजान बोले, "यह तुम आयत अलकरसी पढ़ रहे हो?"

गांव से बाहर जब ऊंट खेतों की एक पगडंडी पर चलने लगा तब नूरे ने उसे रोक लिया। फिर शेरू ने कजावे के करीब आकर कहा, "लो जी, अब मैं वापस चलूं। बच्चे जागेंगे तो मुझे खाट पर न पाकर रोयेंगे।"

शेरू ने भाईजान से हाथ मिलाया और गांव की ओर लौट चला।

फिर एकाएक यों हुआ कि जैसे किसी ने चारों तरफ आसमान के किनारे-किनारे चोर-बत्ती घुमा दी हो। आस-पास की झाड़ियों पर कहीं से इतनी बहुत-सी चिड़ियां आ गयीं कि ऊंट की घंटी की रट दब गयी।

"यह तो आपस में लड़ रही हैं," मैंने भाईजान से कहा।

और ऊंट की मुहार थामकर हमारे आगे-आगे चलता हुआ नूरा हंसकर बोला, "नहीं मियां, लड़ कहां रही हैं? दिन भर चीं-चीं करती हैं, इसलिए गले साफ कर रही हैं!"

इस पर भाईजान यों हंसे जैसे पक्के फर्श पर बिल्लौर के बहुत-से लाल गिर पड़े हों। फिर वह बोले, "चाचा नूरे!"

नूरा पलटे बिना बोला, "जी मियां।"

भाईजान बोले, "हम नीली ढेरी पर किस समय पहुंचेंगे चाचा नूरे?"

"नीली ढेरी पर? जब सूरज पूरा निकल आयेगा न, उस समय हम नीली ढेरी पर होंगे।"

"उस समय तक जमान धोबी कितना नीला पत्थर काट चुका होगा?" मैंने पूछा।

"अरे!" नूरे ने चलते-चलते पहली बार पलटकर देखा—"मियां! तुम्हें किसने बताया कि जमान पत्थर काटता है?"

भाईजान बोले—"हम तुम्हारी राह देख रहे थे तो वह गली में से गुजरा था।

कहता था कि मैं तुम्हें नीली ढेरी पर मिलूंगा।"

"अच्छा!" नूरा आश्वस्त हो गया। फिर बोला—"यह लोग जाते ही तो पत्थर नहीं काटने लगते। अगर कल का पत्थर रखा होगा तो उसे काटेंगे, वरना सुबह-सवेरे पत्थरों को काटेंगे।"

"अरे! इतनी मेहनत करनी पड़ती है..." भाईजान बोले।

"हां जी!" नूरे ने अनुमोदन किया, "खून-पसीना एक करना पड़ता है। हड्डियों के अंदर का गूदा खुश्क करना पड़ता है। तब जाकर बाल-बच्चों के लिए रोटी कमायी जाती है।"

भाईजान को सदमा-सा पहुंचा। बोले, "तो फिर हमारे चचा जान ईंटों का मकान क्यों नहीं बनवा लेते?"

"अरे नहीं मियां," नूरा हंसा, "नीले पत्थर के मकान की तो शान ही और है। अकबर बादशाह नीले पत्थर के ही महल में रहता था। नीले पत्थर को बस लोहा समझो। मिस्त्री जब उन्हें संवारते और बराबर करते हैं तब एक-एक पत्थर एक-एक दिन लेता है।"

"अच्छा!"

"हां जी!"

हम नीली ढेरी पर पहुंचे तो दो आदमी भागते हुए हमारे पास से गुजरे। नूरे ने उन्हें टोका, "क्या बात है? खैर तो है?"

"खैर कहां भाई," उनमें से एक बोला, "किसी से गलती हो गयी। अभी लोग ठीक तरह से छिपने भी न पाये थे कि बारूद का धमाका हो गया और चट्टान के टुकड़ों ने मजदूरों को उधेड़कर फेंक दिया। कितने ही लोग लहूलुहान हो रहे हैं। हम गांव से आदमी लेने जा रहे हैं। उन्हें उठवाकर कस्बे के अस्पताल में पहुंचाने के लिए।"

"जमान तो ठीक है न?"

"जमान?" उस व्यक्ति ने पूछा।

"हां, हां भई! अपना जमान धोबी!"

"अच्छा, हां, वह धोबी!" वह व्यक्ति बोला, "नीले पत्थर की किरचों से उस बेचारे की तो आंखों की पुतलियां ही फूट गयी हैं। कांच की-सी तो होती हैं आदमी की आंखें!"

मेरे अंदर भय चिड़ियों के एक झुंड की तरह उठा और दूर-दूर फैल गया।

"पर जमान तो कहता था कि खुदा उसका सहारा है और वह अपने बच्चों का सहारा!" भाई जान जैसे फरियाद करते हुए बोले।

वह व्यक्ति जल्दी में था। जाते-जाते बोला, "हां! उस बेचारे ने भी यही रट लगा रखी है..."

ऊंट की गरदन में बजती हुई घंटी के इस सवाल ने अब पूरी ढेरी को अपने घेरे में ले लिया था और आस-पास की घाटियां उस गूंज को झोलियां भरकर जैसे ऊपर आसमान की ओर उछाल रही थीं।

—अनुवादक : सुरजीत

● डॉ. गौरीशंकर राजहंस

हांगकांग से प्रकाशित होनेवाले प्रसिद्ध समाचार-साप्ताहिक 'फार ईस्टर्न इकानामिक रिव्यू' में कुछ समय पहले एक व्यंग्य-चित्र छपा था, जिसमें यह दिखाया गया था कि श्रीमती गांधी और श्री भुट्टो कोलंबो को बेतार द्वारा संदेश भेज रहे हैं कि 'श्रीमती भंडारनायक से कहो कि वे हर कीमत पर अपने यहां चुनाव रद्द करायें'। तात्पर्य यह कि सारी दुनिया में अधिकतर लोग यह मान बैठे थे कि अपने को सत्ता में बनाये रखने के लिए श्रीमती भंडारनायक कोई न कोई बहाना करके अगले कुछ वर्षों तक अपने देश में चुनाव नहीं कराएंगी। सत्ता में जमे रहने के लिए उन्होंने पहले भी ऐसे अनेक काम किये, जिससे लोगों को यह भ्रांति होती रही कि शायद श्रीलंका में अब चुनाव नहीं होंगे।

**संयुक्त समाजवादी मोर्चा**

१९६६ में तीन प्रमुख राजनीतिक दलों ने एक संयुक्त समाजवादी मोर्चा 'लेफ्ट यूनाइटेड फ्रंट' बनाया था। इस मोर्चे के मुख्य घटक थे श्रीमती भंडारनायक की श्रीलंका फ्रीडम पार्टी, ट्रास्ट्की लंका

श्रीमती भंडारनायक

सम-समाज पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टी। इस मोर्चे ने तत्कालीन यूनाइटेड नेशनल पार्टी पर, जिसके अध्यक्ष तत्कालीन प्रधान-मंत्री श्री डडले सेनानायक थे, आरोप लगाया था कि वे देश को दक्षिणपंथ की ओर ले जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप गरीब जनता का शोषण हो रहा है। इस मोर्चे ने देश में समाजवाद लाने का नारा दिया और परिणामस्वरूप १९७० के चुनाव में इस मोर्चे को भारी बहुमत मिला।

समाजवादी मोर्चे की भारी विजय के कुछ ही महीने बाद देश में उग्र वाम-

# क्या भंडारनायक

पंथियों ने देशव्यापी तोड़फोड़ आरंभ कर दी। दिन-दहाड़े बैंक लूटे जाने लगे, रेलें व बसें जलायी जाने लगीं तथा सरकारी कारोबार करीव-करीब ठप-सा कर दिया गया। श्रीमती भंडारनायक ने पड़ोसी देशों की मदद से, जिसमें भारत भी एक था, इस विद्रोह को कुचल दिया और कई वामपंथी नेताओं को आजीवन कारावास दे दिया। साथ ही देश के संविधान को भी वदल डाला। देश के पहले संविधान की जगह पर गणतंत्रीय संविधान बनाया गया, जिसमें सारे अधिकार प्रधानमंत्री के हाथ में सीमित कर दिये गये। राष्ट्रपति को नाममात्र के लिए देश का शासनाध्यक्ष वनाया गया। संसद में बहुमत होने के कारण श्रीमती भंडारनायक ने आसानी से संविधान-संशोधन कर लिया। नये संविधान के अनुसार संसद का कार्यकाल ५ वर्ष के स्थान पर ६ वर्ष निर्धारित किया गया।

विपक्ष के लोगों ने जब यह मांग की कि संसद की ६ वर्ष की अवधि १९७० से गिनी जाए, तब श्रीमती भंडारनायक ने इसे ठुकरा दिया और कहा कि जब से संविधान पारित हुआ है तब से संसद की अवधि ६ वर्ष मानी जाएगी, अर्थात मनमाने ढंग से श्रीमती भंडारनायक ने अपने को सत्ता में बनाये रखने के लिए २ वर्ष की अवधि और बढ़ा ली। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत में भी आपातकालीन स्थिति के दौरान संसद का कार्यकाल ५ वर्ष से बढ़ाकर ६ वर्ष कर दिया गया था।

**आपातकालीन स्थिति और निरंकुश शासन**

संविधान में संशोधन करने के शीघ्र बाद श्रीमती भंडारनायक ने, यह कहकर कि देश को आंतरिक एवं वाहरी दुश्मनों से वड़ा खतरा है, देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी। अखबारों पर सेंसरशिप लगा दी गयी। कई अखवार बंद कर दिये गये और जो वचे उन्हें इस वात के लिए बाध्य किया गया कि वे श्रीमती भंडारनायक और उनकी सरकार के गुणगान करें। उसी तरह न्यायपालिका के भी अधिकार सीमित कर दिये गये। संविधान में ही यह व्यवस्था कर दी गयी कि आपातस्थिति के दौरान सरकार द्वारा किये गये कार्यों के लिए कोई न्यायपालिका का दरवाजा नहीं खटखटा सकेगा।

**पुत्र का असली शासन**

दूसरी तरफ श्रीमती भंडारनायक ने अपने

पुत्र श्री अनुरा भंडारनायक को भी तेजी से राजनीति में लाना शुरू कर दिया। श्रीमती भंडारनायक ने अपने २८ वर्षीय पुत्र के बारे में बार-बार यह कहा कि यह सीधा-सादा लड़का अपने पिता स्वर्गीय सोलोमन भंडारनायक के चरण-चिह्नों पर चलना चाहता है, जिन्होंने १९५१ में श्रीलंका फ्रीडम पार्टी की स्थापना की थी और जो १९५१ से १९५६ तक प्रधानमंत्री रहे। सन् १९५६ में एक सिर-फिरे बौद्ध ने उनकी हत्या कर दी थी। श्रीमती भंडारनायक ने अपने पुत्र श्री अनुरा को श्रीलंका फ्रीडम पार्टी की युवक शाखा का अध्यक्ष मनोनीत किया है। इस पर विपक्ष के सारे नेताओं ने श्रीमती भंडारनायक की तुलना श्रीमती गांधी से तथा श्री अनुरा की तुलना श्री संजय गांधी से की।

श्रीलंका में राष्ट्रीय स्तर की दूसरी प्रमुख पार्टी यूनाइटेड नेशनल पार्टी है, जिसके अध्यक्ष श्री जे. आर. जयवर्धन हैं। यह दक्षिणपंथी विचारधाराओं की राष्ट्रीय पार्टी है और श्रीमती भंडारनायक की श्रीलंका फ्रीडम पार्टी का सख्त विरोध करती है। जब से भारतीय लोकसभा के चुनाव में श्रीमती इंदिरा गांधी हारी हैं तब से श्री जयवर्धन ने जोर-शोर से कहना शुरू कर दिया है कि श्रीमती भंडार-नायक 'श्रीलंका की श्रीमती इंदिरा गांधी हैं और श्री अनुरा इस देश के संजय गांधी हैं'। इस बात से कुढ़कर श्रीमती भंडार-नायक ने अपने कई सार्वजनिक भाषणों में कहा कि यह ठीक है कि हमारी दोस्ती श्रीमती गांधी से उनके पिता स्व. जवाहर-लाल नेहरू के जमाने से है और उन्हें इस बात का हार्दिक दुःख है कि वे चुनावों में हार गयी हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि श्रीमा (श्रीमती भंडारनायक) इंदिरा हैं और अनुरा संजय है।

इस तरह श्रीमती भंडारनायक का निरंकुश शासन देश में शुरू हो गया, परंतु संसद के अंदर और बाहर उनका विरोध जारी रहा। उन पर कई बार आरोप लगाया गया कि वे अपने परि-वार के सदस्यों को राजनीति में बढ़ावा दे रही हैं। श्रीमती भंडारनायक की पुत्री एवं दामाद इंगलैंड के कैंब्रिज विश्वविद्या-

इजरायल की भू. पू. प्रधानमंत्री गोल्डा मायर

लय के पढ़े हुए हैं, जहां उनका प्रेम-विवाह हुआ था। दोनों ही उग्रवादी विचारधारा के हैं। एक तरफ श्रीमती भंडारनायक ने कई बार यह दोहराया है कि वे उग्र-पंथियों पर सख्ती बरतना चाहती हैं, दूसरी तरफ उन्होंने अपनी पुत्री को, जो उग्रपंथियों की नेता थीं, अपना सोशल सेक्रेटरी (सामाजिक मामलों की सचिव) बनाया।

जब संसद के साथ-साथ बाहर भी इस बात की कटु आलोचना हुई तब श्रीमती भंडारनायक ने कहा कि उन्होंने जानबूझकर ऐसा किया है जिससे उग्रपंथी यह समझ सकें कि अब भी श्रीमती भंडार-नायक को उन पर भरोसा है। परंतु यह केवल दिखावटी बातें थीं और सत्य यह था कि वे अपने परिवार के सदस्यों को धीरे-धीरे देश की राजनीति में प्रविष्ट कराना चाहती थीं।

**आम सभाओं में किराये के लोग !**

अभी हाल में 'मई-दिवस' के उपलक्ष्य में आयोजित एक विशाल सभा में श्रीमती भंडारनायक ने कहा कि विपक्ष के नेताओं ने लोगों को कितना बेवकूफ बनाया है कि मैंने जनता का विश्वास खो दिया है। यदि ऐसी बात होती तो आज लाखों लोग मेरा भाषण सुनने नहीं आते। इस पर विपक्ष के लोगों ने इल्जाम लगाया कि उनकी सभा में किराये के लोग जमा किये गये, जिसके लिए राष्ट्रीय ट्रांसपोर्ट बोर्ड ने २००० बसों का प्रबंध किया था।

श्रीमती इंदिरा गांधी

**बढ़ती महंगाई, पिसता मध्ययवर्ग**

श्रीमती भंडारनायक ने प्रधानमंत्री बनते ही अपने हाथ में अधिक से अधिक अधि-कार लेने शुरू कर दिये थे, जिसके परि-णामस्वरूप देश में अंदर ही अंदर अशांति फैलने लगी। महंगाई बड़ी तेजी से बढ़ी। दो-तीन वर्षों के अंदर ही महंगाई की दर ४० प्रतिशत हो गयी, जिसके कारण गरीब और मध्यमवर्ग के लोग घुट से गये। साथ ही बेकारी ने जोर पकड़ा तथा अल्पसंख्यकों की समस्याएं भी पहले से बदतर हो गयीं। उधर आर्थिक समस्याओं से जूझने के लिए श्रीमती भंडारनायक ने अपने भतीजे श्री फेलिक्स भंडारनायक को देश का वित्त मंत्री नियुक्त किया। परिणामस्वरूप संयुक्त समाजवादी मोर्चा उनके भाई-भतीजेवाद से ऊबने लगा।

१९७४ में लंका सम-समाज पार्टी

ने इस मोर्चे को छोड़ दिया और मार्च १९७७ में कम्युनिस्ट पार्टी ने भी श्रीमती भंडारनायक का साथ छोड़ दिया।

अब श्रीमती भंडारनायक की पार्टी (श्रीलंका फ्रीडम पार्टी) अकेली रह गयी है। इधर हाल में उनके अपने दल के दो मंत्री श्री आर. एस. परेरा और श्री डी. बी. सुबसिंग ने मंत्रि पद एवं दल से यह कहकर त्यागपत्र दे दिया कि दल के नाम पर एक ऐसा गुट इस देश में शासन कर रहा है, जो प्रत्यक्ष रूप से दिखायी नहीं पड़ता है। उनका इशारा स्पष्ट था। उनका कहना था कि जिस तरह भारत में श्री संजय गांधी अपनी मां के नाम पर शासन में हस्तक्षेप कर रहे थे, उसी तरह श्रीलंका में श्री अनुरा अपनी मां के नाम पर शासन चला रहे हैं और लोग श्रीमती भंडारनायक के डर से श्री अनुरा की उल्टी-सीधी आज्ञाओं का पालन कर रहे हैं। बाद में प्रमुख विपक्षी नेता श्री जय-वर्धन ने खुलकर यह आरोप लगाया कि श्री संजय गांधी की तरह इस देश का शासन अनुरा के हाथ में है और उसे श्रीमती भंडारनायक श्रीलंका का प्रधानमंत्री बनाना चाहती हैं।

श्री जगजीवनराम ने भी कांग्रेस से त्यागपत्र देते हुए श्रीमती गांधी पर ऐसा ही आरोप लगाया था कि उन्होंने (श्रीमती गांधी ने) परोक्ष रूप से श्री संजय गांधी को इस देश पर शासन करने का अवसर दिया। तब श्रीमती इंदिरा गांधी ने छूटते ही पूछा था कि आप इतने दिनों तक चुप क्यों थे? ठीक इसी प्रकार श्रीमती भंडारनायक ने अपने उन साथियों से, जिन्होंने उनके पुत्र पर देश का वास्त-विक प्रधानमंत्री जबरदस्ती बन जाने का आरोप लगाया, पूछा कि आपको इतने दिनों तक मुंह खोलने से किसने रोका था?

### अविश्वास का प्रस्ताव

फरवरी १९७७ में जब श्रीमती भंडार-नायक पर भाई-भतीजावाद का आरोप बहुत बढ़ गया और संसद में उन पर अविश्वास का प्रस्ताव लाया गया तब उन्होंने अपने को बचाने के लिए संसद की बैठक स्थगित कर दी। देश के संवि-धान के अनुसार अगस्त के अंत में संसद को भंग किया जाना चाहिए था और उसके बाद आम चुनाव कराये जाने चाहिए थे। लोगों को आशा थी कि किसी न किसी बहाने श्रीमती भंडारनायक चुनाव टाल देंगी और देश में 'इमरजेंसी' बनाये रखेंगी, परंतु लगता है कि व्यापक जन-आंदोलन से डरकर उन्होंने अंततः १८ मई को संसद भंग कर दी तथा आदेश दिया कि २१ जुलाई को आम चुनाव कराये जाएं।

चुनाव की घोषणा होने के बाद देश में राजनीतिक सरगरमी बड़ी तेजी से फैलने लगी है तथा आपातस्थिति समाप्त कर दी गयी है। अखबारों पर से सेंसरशिप हटा ली गयी है और आपात-स्थिति के दौरान जो समाचारपत्र बंद हो गये थे, फिर से शुरू कर दिये गये हैं।

यही नहीं, उग्र वामपंथी दलों, जिनमें जातिका विमुक्ति परामुना और महाजना विमुक्ति पक्ष प्रमुख हैं, पर से प्रतिबंध हटा दिया गया है और सरकार ने फिर से उन्हें मान्यता दे दी है। उधर देश की प्रमुख समाजवादी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी एवं ट्राट्स्की लंका सम-समाज पार्टी ने आपस में समझौता किया है कि वे एकजुट होकर चुनाव लड़ेंगे। इस तरह श्रीलंका में ४ राजनीतिक दलों में मुकाबला होगा।

जिस तरह भारत में चुनाव के पहले कांग्रेस सरकार ने केंद्र व राज्यों में अंधाधुंध सुविधाएं देना शुरू कर दिया था, उसी तरह श्रीलंका में भी सत्तारूढ़ दल ने लोगों को करों में राहत तथा कंट्रोल दर पर सामान देना शुरू कर दिया है। सबसे मजे की बात यह हुई है कि श्रीमती भंडारनायक के भतीजे श्री फ़ेलिक्स भंडारनायक ने बिना मंत्रिमंडल की सलाह लिये या बिना किसी ख्यातिप्राप्त अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्री की सलाह लिये मुद्रा का अतिमूल्यन २० प्रतिशत कर दिया, जिसका सीधा-सादा अर्थ यह हुआ कि विदेशों से आनेवाली वस्तुएं श्रीलंका में सस्ती पड़ेंगी तथा विदेशों को जानेवाली वस्तुओं के लिए निर्यातकों को अधिक पैसे मिलेंगे। इसका फल उल्टा ही हुआ है। अब जबकि विदेशी निर्यातकों को श्रीलंका में अपने सामान का उचित मूल्य नहीं मिल रहा है, उन्होंने अपना माल श्रीलंका के बदले अन्य देशों में भेजना शुरू कर दिया है। उधर श्रीलंका के निर्यातकों का माल खासकर चाय, रबर आदि विदेशी मंडियों में पहले जैसा नहीं बिक रहा है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में उनका मूल्य एकाएक ही २० प्रतिशत बढ़ गया है। एक विदेशी प्रेक्षक ने बहुत अच्छा कहा कि श्रीमती भंडारनायक ने सारे उपभोक्ताओं के लिए सारी वस्तुएं सस्ती कर दीं और उनके भतीजे ने एक ही कलम से अपनी अदूरदर्शिता के कारण सारे मालों को श्रीलंका से गायब करवा दिया।

### रसोईघर में हार

१९७० में जब यूनाइटेड नेशनल पार्टी के अध्यक्ष श्री डडले सेनानायक की पार्टी हार गयी थी तो एक विदेशी पत्रकार ने उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने बड़े रुंधे हुए गले से कहा था, "मेरी राजनीतिक मौत इस देश के रसोईघर में हो गयी।" इस बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि यह सच है कि मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों को महंगाई के कारण जीवन-यापन की आवश्यक वस्तुएं नहीं मिलने लगीं और लोगों ने क्रुद्ध होकर हमारी सरकार के खिलाफ वोट दिया।

क्या श्रीमती भंडारनायक की राजनीतिक हार भी रसोईघर में ही होगी?

—२४/१ राजेन्द्रनगर,
नयी दिल्ली-६०

# 'कृष्ण' एक अफसाना हो गया

• कर्त्तारसिंह दुग्गल

उर्दू अदब का जवाहरलाल नेहरू चल बसा है—जोय अनसारी ने कहा।

कृश्नचन्दर एक शोला था, उसे हमने शोलों के सुपुर्द कर दिया है—अली सरदार जाफरी के आंसुओं में भीगे हुए ये शब्द थे। कृश्नचन्दर के दाह-संस्कार के बाद सरदार जाफरी बोल रहे थे।

कृश्नचन्दर ने एक बार कहा था—अकेले लोग बहुत बदनसीब होते हैं। मैंने तो अपनी भूख में भी अपने आपको अकेला नहीं पाया। मेरी प्यास कभी सिर्फ मेरी नहीं रही। मेरी बेकारी में करोड़ों लोग शामिल रहे और बहुत-से मुल्क और कई सदियां। मैं एक हुजूम हूं, काफिला हूं, सफर हूं, इतिहास की चलती हुई सांस हूं, यानी एक मामूली शख्स।
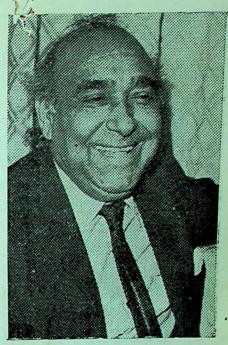
यह महान पंजाबी, जिसने सारी उम्र उर्दू में लिखा, जिसकी जिंदगी का ज्यादा हिस्सा बंबई में गुजरा, उसकी मौत के बाद यह फैसला नहीं हो पा रहा था कि किस मजहब की रौ-रीति के साथ उसका अंतिम संस्कार किया जाए। आर्यसमाजी घर में पैदा हुआ, मरते वक्त सैकड़ों मुसलमान और सिख उसके लिए आंसू बहा रहे थे। और यह तय पाया कि हिंदू धर्म-ग्रंथों का पाठ भी हो, कुरानखानी भी हो, गुरुवाणी के शब्द भी पढ़े जाएं। इस तरह कृश्नचन्दर को अंतिम विदा दी गयी।

मौत के बारे में कृश्नचन्दर की धारणा थी कि आदमी कभी नहीं मरता, जब तक कि वह अपने आपको मौत के हवाले न कर दे। पिछली बार जब बंबई के अस्पताल में कृश्नचन्दर को पेस-सेटर लगना था, तीन बार डॉक्टरों ने कोशिश की, पर वे सफल नहीं हुए। चौथी बार आखिरी बार थी, बहुत खतरनाक, कुछ भी हो सकता था। डॉक्टर ने कहा, "तीन मिनट आप हमें

देंगे ?"

"मैं तीस मिनट दे सकता हूं।" और कृश्नचन्दर का पेस-सेटर उसकी छाती में सफलतापूर्वक जमा दिया गया।

लेकिन, इस बार जब दिल का दौरा पड़ा, कृश्न की सहनशक्ति जवाब दे चुकी थी। पिछले दस सालों से इस मूजी रोग का मुकाबला करते-करते, इस बार जब वह घर से चलने लगा तब सलमा से कहा, "अब मुझमें और शक्ति नहीं रही। अस्पताल में यह मेरा आखिरी फेरा है।"

यह फैसला नहीं हो पा रहा था कि कृश्नचन्दर को किस अस्पताल में ले जाया जाए। उसका निजी डॉक्टर नानावती अस्पताल के हक में था। नानावती अस्पताल उसके घर के नजदीक भी था, पर बंबई अस्पताल में इंतजाम बेहतर था। पहले भी कृश्न बंबई अस्पताल में रहा। जब उसके निजी डॉक्टर ने ज्यादा जिद की तब कृश्न कहने लगा, "नानावती अस्पताल में स्कॉच पीने को मिलेगी ?"

कृश्नचन्दर एक बहुत बड़ा इनसान दोस्त था। मरने से पहले उसने सलमा से दो बातें कहीं।

एक यह कि पेस-सेटर को, जो उनकी छाती में दफन था, निकाल लिया जाए। दस-बारह हजार रुपये के इस यंत्र को उसके साथ जाया न किया जाए। किसी और जरूरतमंद के वह काम आ सकता है।

दूसरी बात यह कि इंटेंसिव केयर-रूम में दिल के और कई मरीज हैं। जब उसका अंत आये तब सलमा को हरगिज रोना नहीं होगा। बाकी रोगियों पर इसका बुरा असर पड़ सकता है। इसलिए आखिरी क्षणों में सलमा बाहर निकल गयी। कृश्न की महबूब सलमा उसके सिरहाने नहीं थी, जो उसका हाथ थामकर उसे रोक सके। और कृश्न चला गया।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद, अल्हड़ जवानी में कृश्नचन्दर आतंकवादियों से जा मिला। कलकत्ता में वह पिस्तौल चलाने और हथगोला फेंकने का प्रशिक्षण लेता रहा। बस, एक ही धुन कि अंगरेज की गुलामी से किसी तरह पीछा छुड़ाना है।

लेकिन, अभी बहुत समय नहीं गुज़रा था कि उसे महसूस हुआ कि जो रास्ता वह अपनाने जा रहा था वह उसके बस का नहीं है। लाहौर लौटकर कृश्नचन्दर ने संतसिंह सेखों के साथ मिलकर अंगरेजी में एक साप्ताहिक निकाला। उसका वेतन पचास रुपये था। लेकिन अखबार चल नहीं रहा था। हर महीने तनख्वाह मिलना मुश्किल होता जा रहा था। एक बार मकान का किराया न दे सकने के कारण उसका मालिक-मकान उससे बदतमीजी से पेश आया और कृश्नचन्दर ने फैसला किया कि अगर नौकरी ही करनी है तो बढ़िया-सी की जाए।

और वह ऑल इंडिया रेडियो में भरती हो गया। यहां हमारा साथ रहा। सआदत हसन मंटो भी थे। कुछ दिन बाद

राजेन्द्रसिंह बेदी भी आ गए। मुझे याद है, कृश्नचन्दर ने जब मेरी कहानी 'लेतरी की एक सुबह' पढ़ी, उस कहानी की तारीफ करते उसका मुंह नहीं थकता था। जब भी हम इकट्ठे होते, वह उस कहानी की चर्चा छेड़ देता। हम एक-दूसरे की रचनाओं को इस शौक से पढ़ते थे, इस शौक से उनका जिक्र करते थे कि लोग हमारे मुंह की तरफ देखते रह जाते। क्या मजाल जो कभी खयाल भी आया हो कि कोई बड़ा है या कोई छोटा।

कृश्नचन्दर रेडियो में ज्यादा दिन नहीं टिका। लाहौर से दिल्ली, दिल्ली से लखनऊ, लखनऊ से बंबई और फिर वह फिल्मों में चला गया। १९५१ की बात है। उन दिनों हम दिल्ली में थे। कृश्नचन्दर भी दिल्ली आया हुआ था। दिल्ली कालेज-वालों ने एक शाम हमें बुलाया। उर्दू अदीबों की इस महफिल में सलमा भी थी। तब सलमा किसी और शौहर की बीवी थी। कृश्न किसी और पत्नी का पति था, लेकिन फिर भी उस मजलिस में यूं लगता जैसे कृश्न और सलमा; सलमा और कृश्न एक-दूसरे के लिए ही बने हों। मुझे जहां तक याद है, उस मीटिंग की एक तसवीर भी ली गयी थी। यह तसवीर मेरे इस कथन की गवाह है—यदि किसी ने उसे संभाल कर रखा हो।

दिल्ली में प्रायः हमारी मुलाकात होती रहती थी। तब मैं भी रेडियो में ही था। एक दिन, तीसरे पहर, कृश्न

मुझसे ब्रॉडकास्टिंग हाउस में मिलने आया। उसी दिन सुबह वह और अब्बास मास्को से लौटे थे। बातों-बातों में कृश्न ने बताया कि मास्को के जिस कहवाखाने में पिछली शाम उन्होंने गुजारी थी, वहां एक क्षण आया जबकि उसने स्टुअर्ड को बुलाकर यह कहा कि उनके खर्चे पर कहवाखाने में बैठे सब लोगों को वोदका का एक-एक जाम पिलाया जाए। उसकी जेब रूसी नोटों से भरी हुई थी और अगली सुबह उसे स्वदेश लौट आना था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि उन ढेर-से नोटों का क्या करे। और यहां दिल्ली में शाम गुजारने के लिए उसे किसी दोस्त से कर्ज लेना होगा या होटल में बिल पर दस्तखत करने होंगे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को छोड़कर रूस में कृश्नचन्दर शायद सबसे ज्यादा लोकप्रिय भारतीय साहित्यकार है। उसके अनेक कहानी-संग्रह, उपन्यास और व्यंग्य रूसी भाषाओं में छप चुके हैं।

जब हम रांची में थे तब कृश्नचन्दर

## ज्ञान-गंगा

**किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा।**
**कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न भक्ति-मान् ॥**

—उस गौ से क्या लाभ जो न बच्चे दे और न दूध ही देती हो। ऐसे पुत्र से क्या लाभ जो न विद्वान हो और न भक्तिमान।

**अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं स्वल्पं तथा-युर्बहवश्च विघ्नाः।**
**सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।**

—शब्द-शास्त्र अपार है, अवस्था थोड़ी और विघ्न बहुतेरे हैं। इस कारण सार मात्र को ग्रहण करके असार को वैसे ही त्याग दें, जैसे हंस जल में से दूध निकाल लेते और जल त्याग देते हैं।

**यस्मिन् जीवति जीवन्ति वहवः सोऽत्र जीवतु।**
**वयांसि किं न कुर्वन्ति चंच्वा स्वोदर पूर-णम् ॥**

—जिसके जीने से बहुत-से पुरुष जिएं वही जीता है। वैसे, क्या पक्षी चोंच से अपना पेट नहीं भर लेते ?

**सुपूरा स्यात्कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जुलिः।**
**सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥**

—क्षुद्र नदी और मूषक की अंजुली शीघ्र भर जाती है। उसी प्रकार कायर पुरुष स्वल्प वस्तु से ही संतुष्ट हो जाते हैं।

**—प्रस्तोता : महर्षिकुमार पाण्डेय**

वहां आया। उन दिनों हमने कृश्न का एक नया रूप देखा। कृश्न की बेटी को छोटी आयु से ही कोई मानसिक रोग हो गया था। जब उसने सुना कि मैं रांची में हूं तब वह अपनी बच्ची को लेकर आ गया। रांची के अस्पताल में बच्ची का इलाज हुआ। आखिर उसे अस्पताल में स्थायी रूप से दाखिल करना पड़ा। बड़ी भयंकर बीमारी थी। हम सब लोग चिंतित थे, लेकिन कृश्न के चेहरे पर मैंने कभी परेशानी नहीं देखी। हर समय हंसता-खेलता रहता। जितने दिन हम लोग रांची में रहे, महीने में एक-दो बार मैं और मेरी पत्नी कृश्न की बेटी को अस्पताल में देखने जाते और उसके बारे में कृश्न को सूचित करते रहते।

कुछ दिन हुए, उसका छोटा भाई महेन्द्रनाथ चल बसा। कृश्न और सलमा, दोनों दिल्ली आये। उनका इरादा था कि कुछ रुपया इकट्ठा करके महेन्द्र के बीवी-बच्चों के खर्च का कुछ पक्का इंतजाम कर दिया जाए। हमारे दोस्त, योजना मंत्री, दुर्गाप्रसाद धर इस काम में मदद के लिए तैयार हो गये। लेकिन इससे पहले कि डी. पी. कुछ कर सकते वह खुद चल बसे।

महेन्द्रनाथ के बीवी-बच्चों की समस्या वैसी की वैसी बनी हुई थी कि कृश्नचन्दर ने अपनी बिसात भी समेट ली और खुद एक अफसाना हो गया।

**—पी-७ हौज खास,**
**नयी दिल्ली-११००१६**

• विद्यालय बंद नहीं होगा • भाषा-समस्या का हल • साहित्यकार की उदारता • बिना मजदूरी खाना पाप

## विद्यालय बंद नहीं होगा

राजस्थान के जिला श्रीगंगानगर में संगरिया नामक स्थान अपने शिक्षण-संस्थान के कारण प्रसिद्ध है। यही स्थान १९१७ से पहले अशिक्षा के अंधकार में डूबा हुआ था। एक भूतपूर्व सैनिक के प्रयास से यहां मिडिल स्कूल की स्थापना हुई थी, जो किसी तरह लड़खड़ाता हुआ १९३२ तक चलता रहा, पर उस वर्ष विद्यालय के बंद होने की नौबत आ गयी। संचालक ने इलाके के मान्य व्यक्तियों का सम्मेलन बुलाया और अर्थाभाव के कारण विद्यालय बंद किये जाने की सूचना दी।

सम्मेलन में एक अनपढ़ साधु भी था। उसने कहा कि विद्यालय इसलिए नहीं खोले जाते कि बाद में उन्हें बंद करना पड़े।

उस दिन से विद्यालय की बागडोर इस साधु के हाथ में आ गयी। दिन-रात परिश्रम और जनता के सहयोग से उस मिडिल स्कूल के स्थान पर इस साधु ने चार महाविद्यालय, तीन विद्यालय (दो उच्च माध्यमिक और एक शिक्षक-प्रशिक्षण) एक विशाल पुस्तकालय, एक सांस्कृतिक एवं पुरातत्त्व-संग्रहालय, एक आयुर्वेदिक औषधालय तथा कई अन्य छोटी-छोटी प्रवृत्तियां चालू कर दीं। यही नहीं, दानदाताओं की सहायता से रियासत के २८३ गांवों में प्राथमिक पाठशालाएं भी खुलवायीं।

पंजाब और राजस्थान के अनेक भागों में हिंदी का प्रचार किया, हिंदी साहित्य-सदनों की स्थापना की, छात्रावास खोले।

यह साधु थे स्वामी केशवानन्द, जो बारह वर्ष तक राज्यसभा के सदस्य रहे। संगरिया में उनके द्वारा स्थापित विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं का समूह ग्रामोत्थान-विद्यापीठ आज भी शिक्षा का ज्योति-स्तंभ बना हुआ है। इसी की सहायता के लिए धनसंग्रह करने वे मद्रास गये थे। लौटते समय १९७२ के हिंदी-दिवस पर दिल्ली की एक सड़क पर अकेले चल रहे स्वामी केशवानन्द ने प्राण त्याग दिये।

—गोविन्द शर्मा

## भाषा-समस्या का हल

स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन सभी धर्मों, जातियों और भाषाओं के लिए एक-सा अनुराग और एक-सी

दृष्टि रखते थे। हिंदी भाषा के प्रति भी उनको उतना ही मोह था, जितना उर्दू के प्रति।

एक बार गांधीजी डॉ. हुसैन के घर गये। उनके परिवार की किसी बच्ची ने गांधीजी से आटोग्राफ मांगा। गांधीजी कुछ क्षण सोचते रहे, लेकिन तभी उन्होंने बच्ची को उठाकर गोदी में बैठा लिया, और उसके हाथ से उसकी डायरी लेकर अपनी कलम से उस पर यह कहते हुए कि मैं हिंदी के बजाय उर्दू में लिख रहा हूं ताकि तुम इसे अच्छी तरह पढ़ और समझ सको, हस्ताक्षर कर दिये। डॉ. हुसैन इस दृश्य को देख रहे थे। उन पर इस घटना का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसी दिन से निश्चय किया कि हिंदी-भाषियों को वे अपने हस्ताक्षर हिंदी में ही दिया करेंगे। एक दूसरे की भाषा का इतना ध्यान रखने के पीछे स्वाभाविक ही देश की भाषा-समस्या को हल करने की भावना थी।

## साहित्यकार की उदारता

विश्वविख्यात अंगरेज साहित्यकार एच. जी. वेल्स ने लंदन-स्थित अपने नये मकान की तीसरी मंजिल के एक छोटे तथा साधारण कमरे को अपना शयन-कक्ष बनाया था।

एक बार की बात है, उनके एक मित्र ने उनसे पूछा, "आप इस साधारण कमरे को शयन-कक्ष क्यों बनाये हैं, जबकि आपके मकान की निचली मंजिल में अनेक शानदार कमरे हैं?"

"उन कमरों में मेरे नौकर रहते हैं।"

"आपने नौकरों को इतने शानदार कमरे क्यों दिये हैं, जबकि लोग उन्हें रद्दी कमरे देते हैं?" मित्र ने पूछा।

"मैंने जान-बूझकर उन्हें शानदार कमरे दे रखे हैं। कारण, किसी समय मेरी मां भी लंदन के एक परिवार की नौकरानी थी," वेल्स ने गंभीरता से उत्तर दिया।

—महाराज

## बिना मजदूरी खाना पाप

एक समय अवधेश नाम का एक युवक वर्धा में गांधीजी के आश्रम में आया। बोला, "मैं दो-तीन रोज ठहरकर यहां सब कुछ देखना चाहता हूं। बापूजी से मिलने की भी इच्छा है। मेरे पास खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं है। मैं यहीं भोजन भी करूंगा।"

गांधीजी ने उसे अपने पास बुलाया। पूछा, "कहां के रहनेवाले हो और यहां कैसे आये हो?"

अवधेश ने उत्तर दिया, "मैं बलिया जिले का रहनेवाला हूं। कराची कांग्रेस देखने गया था। मेरे पास पैसा नहीं है। इसलिए कभी मैंने गाड़ी में बिना टिकट सफर किया, कभी पैदल मांगता-खाता चल पड़ा। इसी प्रकार यात्रा करता आ रहा हूं।"

यह सुनकर गांधीजी, गंभीरता से

बोले, "तुम्हारे-जैसे नवयुवक को ऐसा करना शोभा नहीं देता। अगर पैसा पास नहीं था तो कांग्रेस देखने की क्या जरूरत थी? उससे लाभ भी हुआ? बिना मजदूरी किये खाना और बिना टिकट गाड़ी में सफर करना सब चोरी है और चोरी पाप है! यहां भी तुमको बिना मजदूरी किये खाना नहीं मिल सकेगा।"

अवधेश देखने में उत्साही और तेजस्वी मालूम देता था। उसने कहा, "ठीक है। आप मुझे काम दीजिए। मैं करने के लिए तैयार हूं।"

गांधीजी ने सोचा, इस युवक को काम मिलना ही चाहिए और काम के बदले में खाना भी मिलना चाहिए। समाज और राज्य दोनों का यह दायित्व है। राज्य तो आज पराया है, लेकिन समाज तो अपना है। वह भी इस ओर ध्यान नहीं देता, परंतु मेरे पास आकर जो आदमी काम मांगता है उसे मैं 'ना' नहीं कर सकता।

यह सोचकर उन्होंने उस युवक से कहा, "अच्छा अवधेश, तुम यहां पर काम करो। मैं तुमको खाना दूंगा और आठ आना रोज के हिसाब से मजदूरी भी दूंगा। जब तुम्हारे पास किराये के लायक पैसे हो जाएं तब अपने घर जाना!"

अवधेश ने गांधीजी की बात स्वीकार कर ली और वह वहां रहकर काम करने लगा।

**—पाण्डेय अजयकुमार सिन्हा**

## जेल में प्रेरणा

**जेल में अकेले रहते हुए मुझे बहुत बड़ा ज्ञान प्राप्त हुआ है। सारी दुनिया को एक नयी दृष्टि से देखने का मौका मिला है। जेल-जीवन के अकेलेपन में मैं पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता रहा हूं। मुझे विशेषकर अरविंद और स्वामी रामकृष्ण परमहंस के साहित्य से विशेष प्रेरणा मिली है। ईश्वर है या नहीं, यह मैं नहीं जानता, लेकिन विश्वास नाम की चीज कोई जरूर होती है।** —मोरारजी देसाई

**एक रात जेल में अचानक मुझे लगा जैसे किसी प्रकाश के साथ मेरा साक्षात्कार हो रहा है। हो सकता है वह सपना हो, लेकिन उससे जाहिर था कि अंधकार के ये दिन बहुत नहीं चलेंगे। जेल के भीतर जो प्रकाश-किरण मैंने देखी है वह अब बाहर भी फूटने को है।**

—फणीश्वरनाथ रेणु

**जब-जब मैं तन और मन से टूटने लगता था, कहीं न कहीं से आशा की झलक एक प्रकाश-किरण की तरह सामने आ जाती। कोई न कोई आदमी मिल ही जाता था, जो मेरे मन की वेदना को पहचान लेता था, क्योंकि उसके मन के किसी अज्ञात कोने में भी वही दर्द कसमसा रहा होता था। ऐसे क्षण मेरे पुनर्जन्म के क्षण होते थे और मैं नये साहस और उत्साह के साथ आगे बढ़ निकलता था।**

—लाड़लीमोहन निगम
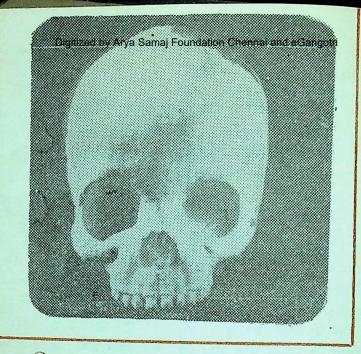
# खोपड़ी के सहारे कत्ल की गुत्थी सुलझी

● शुकदेव प्रसाद

पुलिस-अधिकारी ने उस व्यक्ति से पूछना शुरू किया, "तुम्हारा नाम इवान लुकोश्किन है ?"

"जी हां ! ..."

"तुम ओयाशांस्की के निवासी हो ?"

"जी हां !"

"तुम १९५३ में अपने गांव से गायब हुए थे ?"

"जी हां !"

"तुमने कोई दूकान लूटी थी ?"

"..."

इस प्रश्न को सुनकर वह कांप उठा और उसके मुंह से कोई आवाज नहीं निकली। पुलिस-अधिकारी ने डांटते हुए फिर पूछा, "तुमने दूकान लूटी थी ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

अपने साथ लाये एक मानव-कंकाल को दिखाते हुए पुलिस-अधिकारी ने पुनः प्रश्न किया, "इस कंकाल के बारे में तुम कुछ जानते हो ?"

"जी नहीं !"

"और उस घनी भौंहवाले आदमी का

क्या हुआ ?"

"कौन आदमी ? ..." वह चौंका।

"वही जिसके गाल की हड्डियां उभरी थीं ..."

"जी ... जी ..."

उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। पुलिस-अधिकारी ने डपटते हुए अपनी बात जारी रखी, "जिसकी ठुड्डी भारी थी और जो दाहिने पैर से लंगड़ा था ..." इतना सुनते ही वह बोल उठा, "बस, बस, आप चुप रहिए। मैं सब कुछ बताता हूं।" और उसने अपनी गलती कबूल ली कि उसी ने ही हत्या की थी।

बात दरअसल यह थी कि मास्को के ओयाशांस्की गांव में एक महिला अपने घर की मरम्मत करवा रही थी। दरवाजे के पास का तख्ता हटाने पर उसे एक नर-कंकाल दिखायी पड़ा। कंकाल को देखते ही उसके मुंह से चीख निकली। चीख सुनकर और भी आदमी दौड़ आये। उक्त महिला का पति कुछ दिनों से गायब था। उसी के घर पर एक नर-कंकाल देखकर लोगों ने इसकी सूचना पुलिस को दे दी।

उस महिला के पति का गायब होना और उसी के घर एक मानव-कंकाल का मिलना इस बात के प्रमाण थे कि महिला ने अपने पति का खून करके उसे दरवाजे के नीचे दफना दिया था। पुलिस-अधिकारी ने इस बात को उस महिला से भी पूछा तब उसने साफ इनकार कर दिया। प्रमाणों के अभाव में निश्चित रूप से उसके ऊपर कत्ल का इल्जाम नहीं लगाया जा सकता था।

पुलिस के सामने कत्ल की गुत्थी सुलझाने के लिए एक ही सूत्र था और वह था नर-कंकाल। लेकिन कंकाल के सहारे कैसे हत्या का रहस्योद्घाटन हो सकता था? जब कोई रास्ता नहीं नजर आया तब पुलिस-अधिकारियों को मास्को की विज्ञान-अकादमी के प्रोफेसर मिखाइल जेरासिमोव की याद आयी।

प्रोफेसर मिखाइल केवल मानव-खोपड़ी की मदद से किसी व्यक्ति का पूर्वरूप तैयार कर देते थे। उनकी मान्यता रही कि चेहरे की तरह ही खोपड़ी भी आदमी के जीवन का दर्पण होती है और किसी मनुष्य के चेहरे से उसके बारे में जो कुछ जाना जा सकता है वह उसकी खोपड़ी से भी जाना जा सकता है।

प्रोफेसर जेरासिमोव ने केवल खोपड़ी के सहारे कई व्यक्तियों की मूर्तियां तैयार की थीं।

प्रो. जेरासिमेव ने कई मृत्युप्राय व्यक्तियों के प्रोट्रेट तैयार किये जिनके सहारे उन दिवंगतों के स्मारक आदि बनाना संभव हुआ। उनकी बनायी गयी कृतियों में सबसे बहुर्चाचित कृति ताजिकिस्तान के राष्ट्रीय कवि रुदकी का प्रोट्रेट है।

पुलिस द्वारा दी गयी मानव-खोपड़ी के आधार पर प्रो. जेरासिमोव ने प्रोट्रेट तैयार किया और संपूर्ण विवरण पुलिस

को दे दिया। लेकिन यह क्या? प्रोफसर की रिपोर्ट उस औरत के पति इवान से मिलती ही नहीं थी!

ज्यों-ज्यों अधिकारी तह की गहराई में पहुंचने की कोशिश करते, मामला उलझता ही जाता था। अब समस्या यह थी कि आखिर यह खोपड़ी इवान की नहीं थी तो किसकी थी?

अब पुलिस-अधिकारियों के दिमाग में बात आयी कि कहीं इवान ज़िंदा तो नहीं है। अतः गुमशुदा लोगों के रिकार्ड देखे गये। लापता लोगों की लिस्ट देखने पर पता चला कि १९५३ में इवान तो गायब ही हुआ था, एक और रेल-कर्मचारी अपानासेंकों भी गायब हुआ था और प्रोफेसर की बतायी हुलिया उक्त रेल-कर्मचारी से एकदम मिलती थी।

इस बात के निश्चित हो जाने पर कि खुदाई के दौरान मिली हुई खोपड़ी अपानासेंकों की ही है, इवान की खोज शुरू हुई। और यह पुलिस का सौभाग्य था कि इवान अपने घर पर ही पकड़ा गया। निगरानी के लिए छिपे रूप में तैनात पुलिस के दरवाजे पर दस्तक देते ही इवान ने दरवाजा खोला और पकड़ लिया गया।

अकल्पनीय स्थिति में पाकर उसने अपना जुर्म कबूल कर लिया कि उसने ही रेल-कर्मचारी की हत्या की थी।

वास्तव में इवान ने ही अपानासेंकों की दूकान लूटकर उसे अपने फर्श के नीचे दबा दिया था। आगे उसने बताया कि

पत्नी के प्रेम ने पुलिस के शिकंजे में फंसाया

वह व्यक्ति दाहिने पैर से लंगड़ा था और दूकान लूटते वक्त वह रेलवे की वर्दी में था।

इवान अपने बचाव हेतु ही अपने गांव से ५०० मील दूर दूसरी सुरक्षित जगह जाकर बस गया था। लेकिन कभी-कभी अपनी पत्नी की अनुपस्थिति उसे खल जाती थी। अतः वह अपनी पत्नी के पास आ गया। यह इवान का दुर्भाग्य था कि ज्यों ही दरवाजे पर दस्तक हुई, इवान ने ही दरवाजा खोला। उसने कभी सपने में भी कल्पना न की थी कि पुलिस इस प्रकार उसके सामने आ जाएगी। उसे तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया।

**—सहायक संपादक 'विज्ञान', विज्ञान परिषद, दयानंद मार्ग, इलाहाबाद-२**

# प्रधानमंत्री फांसी के तख्ते पर

• डॉ. दिनेश राज

पूरब और दक्षिण-पूर्व एशिया में एक तानाशाह पैदा हुआ—तोजो। अपनी युवावस्था में जापान का यह युद्धकालीन प्रधानमंत्री जरमनी में सैनिक सहायक भी रहा और इसने हिटलर के उदय को देखा था। वही सपना तोजो के मन में भी पलने लगा। हिटलर, मुसोलिनी और तोजो ने पूरी दुनिया को अपने प्रभाव-क्षेत्र में बांट लेने की आकांक्षाएं पाल ली थीं।

पूरब में मैदान खाली पड़ा था। उपनिवेशों में अंगरेजों, फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों का विरोध हो रहा था तथा तोजो इस स्थिति का फायदा उठाकर जापानी साम्राज्य के विस्तार के लिए कृतसंकल्प था। यही कारण था कि वह पहले चीन के घुटने तोड़ देना चाहता था, रूस से भी निबट लेना चाहता था और फिर दक्षिण-पूर्वी एशिया पर एक-छत्र राज्य की बात सोच रहा था।

सन १९४० में यह युद्ध-मंत्री बना और जापान ने युद्ध में शामिल होने की पूरी तैयारी कर ली थी। सन १९४१ में प्रधानमंत्री बनते ही तोजो की अमानुषिकता खुलकर खेलने लगी, पर उसके रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा था प्रशांत महासागर में अमरीकी सैनिक अड्डा—पर्ल हार्बर। ७ दिसंबर, १९४१ को बिना युद्ध की घोषणा किये उसने पर्ल हार्बर पर हमला कर दिया और उसके बाद पूरब भी युद्ध की आग में जलने लगा।

युद्ध-बंदियों पर जितने अत्याचार जापानी हिरासत में हुए, उतने और कहीं नहीं हुए। तोजो की फौजें सिंगापुर और बर्मा तक चढ़ आयीं और दूसरा विश्वयुद्ध भारत के दरवाजे खटखटाने लगा।

लेकिन धीरे-धीरे पश्चिम में जरमनी और इटली का जोर कम हुआ और इधर जापान भी कुछ धीमा पड़ा; पर यह धीमा पड़ना और भी क्रूरताओं की तैयारी थी।

हिटलर और मुसोलिनी को तो परंपरागत हथियारों और विनाशकारी उपकरणों से पस्त कर दिया गया, पर जापानी वश में नहीं आ रहा था और कोई शक्ति युद्ध से उसे विरत नहीं कर पा रही थी। अतः अणुबम के इस्तेमाल का भयंकर निर्णय अमरीका को लेना पड़ा।

धीरे-धीरे जापानी जनता भी तोजो के विरुद्ध होती गयी, क्योंकि युद्ध से वह

आजिज आ गयी थी। वही तोजो, जिसने अपनी सेनाओं को मध्यकालीन राजसी विदाई दी थी और जिसके आगे बैंड बजते हुए गये थे, अब भीतर ही भीतर अपनी गलती और जनता के असंतोष को महसूस कर रहा था। लड़ाई के लिए कच्चे माल के गोदाम चुक रहे थे, उत्पादन रुक रहा था और चीन पूरी तरह उसके हाथ में नहीं आया था। युद्ध इतना लंबा खिंच जाएगा, तोजो को इसकी आशंका नहीं थी।

अंततः तोजो को प्रधानमंत्रित्व छोड़ना पड़ा, पर वह जापान को युद्ध में झोंक देने के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता था। और अणुबम से युद्ध का निपटारा कर दिया गया। युद्ध की सबसे बड़ी कीमत जापान ने चुकायी। उसकी आनेवाली नस्लों को विकलांग होने का खतरा पैदा हो गया।

तोजो स्वयं अपने देश की घृणा का शिकार हुआ। हिटलर और मुसोलिनी के फिर भी अत्यंत विश्वासपात्र मित्र अंत तक रहे, पर तोजो निपट अकेला रह गया, क्योंकि जापान ने जिस अणु-महाविनाश को भोगा, उसका मूलभूत कारण तोजो ही था।

सन १९४५ में आखिर जापान ने आत्मसमर्पण किया—लेकिन बहुत बड़ी कीमत चुकाकर। नागासाकी और हिरोशिमा की शांतिप्रिय जनता अणुबमों से अपंग, निर्वीर्य और विकलांग हो गयी। इस महाविनाश को आमंत्रित करने का दायित्व तोजो का ही था। चारों ओर तोजो के लिए घृणा की आग-ही-आग फैल चुकी थी। प्रधानमंत्री-पद, युद्धमंत्री-पद, सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति का ओहदा, या तानाशाही के सारे शक्ति-स्रोत और गौरव-पद उससे छीन लिये गये। अब वह सिर्फ घृणा, बेइज्जती, शंका तथा शर्म के बीच जीने के लिए बाध्य था। जब जापान ने आत्मसमर्पण किया तब तोजो ने समझ लिया कि अब अमरीकी विजेता और खुद उसकी जनता उसे नहीं छोड़ेगी, उसे कुत्ते की मौत मरना होगा और हो सकता है, उसके शव का भी अपमान किया जाए।

तोजो की शर्मनाक जिंदगी का एक और अध्याय तब शुरू हुआ जब उसकी आत्महत्या की कोशिश बेकार गयी और डॉक्टरों ने उसे बचाकर और भी लज्जित होने के लिए अमरीकी अधिकारियों को सौंप दिया।

तोजो के साथ तीस अन्य युद्ध अपराधी भी पकड़े गये, पर तोजो की दशा सबसे दुःखद और हीन थी। अन्य युद्ध-अपराधी तो फिर भी आपस में बातचीत कर लेते थे, परंतु तोजो के लिए सबके मन में घृणा थी। वे लोग, जो अमानुषिक कार्यों में साथ दे रहे थे, अब भी साथ ही थे।

युद्ध-अदालत में मुकदमा चला। तोजो के मंत्रिमंडल (जो कि युद्ध के महत्त्वपूर्ण वर्षों में सत्तारूढ़ था) के महत्त्वपूर्ण सदस्य अभियुक्त के रूप में बैठे थे और

दस्तावेज सिर झुकाये सुन रहे थे, जिनमें अमानुषिक, दिल दहला देनेवाली गाथाएं और नृशंस कारनामे नोट किये गये थे।

अपने ही कारनामों की तफसील सुनते हुए सब अभियुक्त शर्मसार बैठे थे। तोजो-मंत्रिमंडल के न्यायमंत्री और स्वयं एक अभियुक्त ने जहर-बुझी नजरों से तोजो को ताका। घृणा और हिकारत से होंठ बिचकाये और खौलती ग्लानि और पश्चात्ताप से वह उठ खड़ा हुआ। पास बैठे तोजो के सिर पर वह जोर से थप्पड़ मारकर चीख उठा, "इसी ने हमें, हमारे देश और मानवता को जलील किया है।"

युद्ध-अदालत सन्न रह गयी। यह नाटकीय कांड एक क्षण में समाप्त हो गया। वह मंत्री जो अपने प्रधानमंत्री की नजर से थरथराता था, आज अतीव घृणा में वह कार्य कर गया, जो वह सपने में भी नहीं कर सकता था। और अपनी जलालत को ढोता हुआ तोजो अदालत में थप्पड़ खाकर भी उसी तरह शर्मसार और सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। उसके पास उत्तर भी क्या था?

तोजो को सबसे जघन्य अपराधी पाया गया और २३ दिसंबर, १९४८ को उसे फांसी दे दी गयी। उसी जगह जहां वह कभी अपराजेय था!

**—बद्रीश आश्रम, राजाघाट, पो. कनखल-२४९४०८ (हरिद्वार), सहारनपुर (उ. प्र.)**

## बदलते मूल्य

**ठेकेदार कहे जा रहा था, "मैं काफी रकम दूंगा। बस, आपको तो इमारत पास करना है।"**

**—"अजी, यह इमारत तो दस बरसातें भी नहीं झेल पाएगी! इसमें पढ़नेवाले बच्चों का क्या होगा? आपकी दौलत आपको मुबारक, मैं इसे पास नहीं कर सकता।"**

**—"सोचिए! दुनिया में पैसा ही काम आता है। मैं काफी पैसा दे रहा हूं. . ."**

**—"मैं इस संबंध में अधिक बात नहीं करना चाहता। मैं बीवी-बच्चों वाला हूं, मुझे पैसे नहीं अपने बच्चे प्यारे हैं।'**

**इमारत नहीं पास हुई।**

**तीस वर्ष बाद . . .**

**उपर्युक्त इंजीनियर का इंजीनियर लड़का अपनी कोठी पर बैठा कह रहा था, "ठेकेदार साहब, इमारत का ठेका तो दिलवा दिया है, इस व्यवसाय में मैं भी शरीक हूं।"**

**"इंजीनियर साहब! क्या मैं आपको भूल सकता हूं। इमारत पास हो जाए तो सब कुछ ठीक हो जाएगा।"**

**"आप तो जानते ही हैं। महंगाई का घोड़ा कितना तेज दौड़ रहा है। कोरे वेतन से क्या होता है, हमें अपने बीवी-बच्चों का भी तो पेट पालना है।"**

**—"ठीक है। मैं तो पेशगी लेकर आया हूं।" मेज पर लिफाफा आ गया था।**

**—श्यामनारायण बैजल**

"कहिए प्रोफेसर साहब, क्या हाल है? आजकल क्या हो रहा है?"

"ठीक है! एक रिसर्च में जुटा था। वह आज पूरी हुई। विषय था—हवाईजहाज में आग लगने पर मुसाफिरों को कैसे बचाया जाए?"

"अच्छा, तो आपने क्या खोज की?"

"यही कि जिस जहाज में आग लगे, पहले तो उसमें कोई बैठे ही नहीं और यदि कोई बैठ भी गया हो तो जहाज रोक कर उसे उतार दिया जाए।"

*

प्रेमिका—यदि मैं तुमसे शादी करने का वायदा कर लूं तो तुम सिगरेट पीना छोड़ दोगे?

प्रेमी—बिलकुल।

प्रेमिका—शराब पीना भी?

प्रेमी—बिलकुल।

प्रेमिका—और शाम को क्लब जाना भी?

प्रेमी—बिलकुल।

प्रेमिका—और क्या-क्या छोड़ने की सोच रहे हो?

प्रेमी—तुमसे शादी करने का इरादा।

*

श्रीजी ने टेलीफोन लगवाने के लिए दरख्वास्त दी थी। बार-बार याद दिलाने पर भी जब डाकखानेवालों के कान पर जूं नहीं रेंगी तब उन्होंने गुस्से में आकर एक तार भेजा—मेरा आर्डर फौरन कैंसिल कर दो।

डाकखाने का जवाब आया—खेद है आपका आर्डर फौरन कैंसिल नहीं किया जा सकता। जब आपकी बारी आएगी, तभी कैंसिल होगा।

*

एक आदमी एक तसवीर को हाथ में लिये सुबकते हुए कह रहा था—'तुम क्यों मर गये?'

एक राहगीर ने यह देखा तो उससे पूछा—'क्यों भाई, क्या वह तुम्हारा पिता था?'

'नहीं।' —आदमी ने उत्तर दिया।

'भाई था?'

'नहीं।'

'तो फिर?'

'वह मेरी पत्नी का पहला पति था,' आदमी ने जिज्ञासा शांत की।

★

श्रीजी यदा-कदा फिल्मी स्टूडियो जाते और यहां-वहां ताक-झांक करते। एक दिन वह एक एक्स्ट्रा लड़की से मिले और कहने लगे—'हाय, तुम्हारे बिना मेरी जिंदगी बिन बादल की बरसात हो गयी है। जब तुम दीखती हो तब लगता है कि उमस भरे दिल में अचानक वर्षा की ठंडी फुहारें आ गयी हों। जब तुम बात करती हो तब लगता है कि मेरे दिल-दिमाग में हिमपात होने लगा हो ...'

'ठहरिए, ठहरिए, महाशय!' —लड़की बोली—'आप यह प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं या मौसम की रिपोर्ट सुना रहे हैं?'

● सुरेन्द्र श्रीवास्तव

★

पति शराब पीकर रात को लौटा। काफी देर वह द्वार पर खड़ा कोई चीज ढूंढ़ता रहा, पर वह न मिल पायी। खटपट सुनकर पत्नी जाग गयी। नीचे पति को खड़े पाकर उसने पूछा, "क्या बात है? ताली नहीं मिल रही है तो दूसरी फेंक दूं।"

"नहीं, ताली तो है, ताला नहीं मिल रहा है। दूसरा फेंक दो" "पति ने लड़-लड़खड़ाते हुए कहा।

● महेन्द्र जोशी

# हंसिकाएं काव्य में

## पोरस

हारे हुए नेताओं से
कहने लगे वह—
'बताइए तुरंत (तथाकथित—)
वीरों का कैसा हो वसंत?'

## वंश-परंपरा

तथाकथित 'मुगलवंश' का
इतिहास देखने पर ज्ञात हुआ।
सारा राज्य था मात्र
कुछेक मंत्रियों में बंटा हुआ

## सरकारी संपत्ति

अपनी घोषणा दोहराते हुए
बोले वह—'लोग जो चाहें—कहें
हमने तो ठोक-पीटकर कह दिया था—
सरकारी संपत्ति आपकी अपनी संपत्ति है
इसका मनमाना प्रयोग करें।'

## बचे उन्नीस

ऊधो मन नाहीं दस बीस
एक हुतो सो गयो ...
बाकी बचे उन्नीस।

## सावधान

होटल के मैनेजर ने
अनुवाद के नाम पर
(कमरे के बाहर)
'डू नॉट डिस्टर्ब' की जगह लगा दिया,
सावधान! आदमी है काम पर।

● डॉ० सरोजनी प्रीतम

कहानी

• मंजुल भगत

बेबेजी आज फिर तंदूर पर जा बैठी हैं। पिछले हफ्ते तो तीन बार वहीं से खा आयी थीं। घर की पकी साग-रोटी सवेरे जमादारिन को थमा दी थी। और दिन तो अकेली अपनी जान के लिए कुछ चढ़ाने को ही जी नहीं किया था। चटाइयों से घिरी, झीनी-झीनी-सी तो दीवारें हैं तंदूर की, फिर बेबेजी को भला उसी के घेरे में सुरक्षा क्यों प्रतीत होती है? बाओजी ने कैसी पक्की नींव डलवाकर, हर पल आगे खड़े होकर बनवाया था वह मकान! बाओजी की ही तरह पक्के लोहे-सीमेंट का चुना खड़ा था मकान, एकदम सख्त, सीधा-तना, जैसे बाओजी ही खड़े हों। फिर कोई बतलाये बेबेजी को कि एक रोज बाओजी का वह फौलादी जिस्म मिट्टी कैसे हो गया? फिर भला, इस मकान की पक्की दीवारों का ही काहे का भरोसा?

"काक्के, तूं गल-गल दा अचार नईं पांदां?"

"नईं, बेबेजी, साड्डी कढ़ी, अचार वर्गी हुन्दीऐ।"

"हुन तैन्नू की दसां? मैं मर्तबान पर-पर के अचार पांदी सी, अम्ब दा ते निंबुआं दा, गोभी ते शलगम...।"

"रोट्टी होर दवां ?"

"वस, पुत्तर । जीओ पुत्तर । ऐ तंदूर वड्डा होटल वन जावे ।" बेबेजी का मन इस 'रोट्टी होर दवां ?' की पूछ सुनकर ही ऐसा भर जाता कि लगता, जाने कितनी रोटियां वे पेट में उतार चुकी हैं ।

बेबेजी ने अपनी गिनी-चुनी रोटियों की एक जोड़ी खा ली, पर उनका मन अभी और बैठने को हो रहा था । लिपे-पुते मिट्टी के फर्श पर बोरी का आसन, पर सामने दहकता-महकता तंदूर, गरमाहट और अपनेपन का एक छोटा-सा दायरा बनाता ।

बेबेजी ने बदन पर दुशाला और कसकर लपेट लिया और तंदूरवाले से सवाल-जवाब करने लगीं ।

"अच्छा, पुत्तर, मैं तेरे लई इक मर्तबान गोभी-शलगम दा अचार पा दवांगी । तेरे गाक दूणे हो जाणगे, पलट के ऐत्थई आउणगे ते तिन रोटियां जादा खा जाणगे, अचार नाल ।"

पिछली सरदियों में भी बेबेजी ने दो बड़े मर्तबान भरकर, गोभी-शलजम का अचार उसके लिए डाल दिया था । तंदूरवाला पांच पैसे में एक टुकड़ा ग्राहकों को परोसने लगा था । ग्राहक तो अंगुलियां चाटते, कभी अचार तो कभी रोटी मांगते ही रह गये । सब्जी-दाल तो पड़ी रह गयी । जितने दिन अचार चला उसने दाल कम ही बनायी । बेबेजी ने तो लाख कहने पर भी अचार के दाम नहीं उठाये । अपनी रोटी के पैसे भी नकद चुकाती रहीं । बस जरा-सा बोलने-पूछने के बदले इतना सारा अचार आ गया । तंदूरवाला तो उनके कई बार के सुने-रटे मुहावरे भी हुंकारे भर-भरकर सुनने लगा ।

"मैं कैया, पुत्तर उंट नई रोन्दे, रोन्दे बोरे ।" यह मुहावरा बेबेजी जब-तब इस बात को याद कर-कर पेश कर दिया करतीं कि एक बार उन्होंने छोटे के सामने प्रस्ताव रखा था कि वे सब बेबेजी के साथ आकर रहें । वे कितने ही कामों से छोटे की बीवी को छुट्टी दे देंगी पर छोटे ने कह दिया कि वे ही क्यों न उन लोगों के साथ जाकर रह लें । उलटे, उन्हें इस उम्र में घर संभालने से छुट्टी मिल जाएगी, क्योंकि घर तो उनकी बहू अच्छा-भला संभाल सकती है ।

बेबेजी छोटे का इशारा साफ समझ गयी थीं कि वे लोग उन्हें अपने घर और काम-धाम को हाथ भी नहीं लगाने देना चाहते। तंदूरवाले के हुंकारा भरते ही प्रोत्साहित होकर बेबेजी अपना आखिरी फिकरा कस देतीं, जो अकसर उनके तंदूर पर से उठने का ऐलान होता, "बस जी, तीयां, जवांई लै गए, नुआं लै गये पूत, कैसे मनवर-जानकी, रै गए ऊत के ऊत।"

हालांकि बेबेजी की कोई बेटियां नहीं थीं जो जमाई उठा ले जाते, हां दो-दो बेटों को बेशक बहुएं उड़ा ले गयी थीं, पर इस दोहे के पढ़े जाते ही तंदूरवाला उन्हें नये सिरे से आश्वासन देने लगता कि वे काहे की अकेली हैं, आखिर तंदूरवाला तो वहां उन्हीं के आसरे बैठा है!

तंदूरवाले का आखिरी ग्राहक भी पैसे डालकर उठ गया। जब तंदूरवाला भी डकार ले चुका तो बेबेजी भी अपने कपड़े झटककर उठ खड़ी हुईं।

अपने मकान में घुसते ही पहले पुराने ढंग की ड्योढ़ी पड़ती थी, फिर जाकर कमरों का सिलसिला शुरू होता था। बाओजी का कहना था कि बाहर अगर कोई मंगता-जोगी खड़ा हो तो क्या जरूरत है कि बेबेजी उसके ऐन सामने पड़ जाएं? बेबेजी को जिन बातों से तकलीफ का अंदेशा रहता, उन बातों की नाकेबंदी बाओजी पहले से ही कर रखते। एक ही चूक उनसे हो गयी थी, और वह उनके बल-बूते के बाहर की चीज थी। जिस दिन वे उनकी दुनिया से उठ गये थे, उसी दिन से बेबेजी सारे ऐशो-आराम से बेखबर हो गयी थीं। अब उनके जिस्म को अधिक सर्दी-गरमी नहीं लगती। गोड़ों में दर्द भी उतने जोरों का नहीं उठता था।

बाओजी क्या गये, बेबेजी का शरीर काठ का हो गया और मन मोम का। इसी मन को लेकर वह मारी-मारी फिरा करतीं। न वह कहीं लगता, न कभी भरता। बस, खाली-खाली, उड़ा-उड़ा-सा ही रहता। तंदूर पर आकर जरा देर को बेबेजी जी उठतीं। बड़ा लड़का और बहू जब विलायत से आये हुए थे, बेबेजी तो तब भी नजर बचाकर एक फेरा तंदूर का लगा आतीं। बल्कि बहू की कोई न कोई शिकायत भी तंदूरवाले से कर जातीं। तंदूरवाला बड़ी मुस्तैदी से हुंकारा भरता रहता।

बेबेजी अकसर ही तंदूरवाले से अपने बीवी-बच्चे को ले आने का तकाजा भी किया करतीं।

एक रोज तंदूरवाले ने तंदूर बंद करते समय बेबेजी को बतलाया कि वह गांव जा रहा है। दो रोज बाद लौटेगा।

बीच में एक रोज छोड़कर जब बेबेजी ने आधी रात को तंदूरवाली झुग्गी के अंदर कुछ टिमटिमाता देखा तो अलस्सुबह ही वे वहां आकर खड़ी हो गयीं। खेस डली चिक को उठाकर आवाज देने को ही थीं कि सामने के नजारे ने उन्हें अवसन्न कर दिया। अंदर तो एक ही चारपाई पर तंदूरवाला दो साल के एक बच्चे और नौजवान खूबसूरत औरत के साथ बेसुध सोया था।

सिर पर दुपट्टा खींचती वे उलटे पांव भागी ही नहीं थीं, बल्कि अपनी पूरी आस्तीन की कमीज का बटन भी उन्होंने सहसा लगा लिया था।

घर पहुंचकर उनकी समझ में आया कि तंदूरवाला गांव से अपनी बीवी और बच्चे को ले आया है। उन्होंने थोड़ा-सा गाजर का हलवा चढ़ा दिया। फिर उसे असली घी में भूनकर कटोरदान में रख लिया। अब तो शाम को ही वहां जाएंगी। जाते वक्त बच्चे का मुंह मीठा कराने को कुछ तो चाहिए ही।

बाओजी को तो वे दूध में भी पंद्रह बादामों की पिसी गिरी के साथ-साथ एक बड़ा चम्मच असली घी घोलकर पिलाया करती थीं। पड़ोस के डॉक्टर दोस्त ने तो एक दिन उन्हें टोक दिया था कि बाओजी को तो बेबेजी खिला-खिलाकर ही मार देंगी। अब, कोई बतलाये बेबेजी को कि भला असली घी खाकर भी कभी कोई मरा है? ये डॉक्टर तो यमराज से मिले हुए हैं। जिन्हें रोग न मारे, उन्हें इनका इलाज मार दे। बाओजी को तो जिद ही करा दी कि वे बस घी का फिटा दूध नहीं पियेंगे, पर बेबेजी तो दो-दो जिद्दी बेटों को बहला-बहकाकर खिला चुकीं थीं। वे ऐसे ही हार माननेवाली कहां थीं! दूध में पिसी बादाम की गिरी मिलाकर जरा-सा असली घी छोड़ ही देतीं और चम्मच से हिलाती-हिलाती बाओजी के सिरहाने जा खड़ी होतीं।

बड़ा तो विलायत से आता ही तीन चार सालों में बस एक फेरा डालने। छोटा हिंदुस्तान में ही ऐसा गुम रहता कि वह भी इतना ही कम दिखलायी पड़ता।

बेबेजी तो बाओजी को ही बच्चों की तरह खिला लिया करतीं। सवेरे से रात पड़ने तक वे बाओजी के खाने लायक चीजें ही जुटाती रहतीं। बाओजी का शरीर तो एकदम कसरती था। वह तो बेबेजी को ही मोढ़े-गोड़े का दर्द न छोड़ता था। ऐसा खंभा-सा आदमी, और रात में सोते-सोते बेबेजी की बगल में से उठ गया। बेबेजी जब ईश्वर के दरबार में पहुंचेंगी तब वे उससे यह बात जरूर दरयाफ्त करेंगी कि जब किसी का प्यारा जहान से जाता है, तब उसके सगे के दिल पर कोई दस्तक क्यों नहीं होती भला? बस, यही सवाल उन्होंने ईश्वर के दरबार के लिए रख छोड़ा है।

●●

तंदूरवाले का निक्का तो बेबेजी से ऐसा हिला कि उन्हें छोड़ता ही नहीं था। उसकी बीवी पन्नो भी नेक जनानी निकली। बेबेजी के पांव को हाथ लगाना न भूलती थी। कभी-कभी तो तंदूरवाले को बेबेजी की निगहबानी की बानगी देखकर अपनी मां याद आ जाती।

एक दिन तंदूरवाला दोपहर तीन का शो देखने गया तो पन्नो निक्के को बाहर खेलता छोड़ लंबी तानकर सो गयी। उधर से बेबेजी आ गयीं। निक्के को धूल में लोटता देख उन्हें ऐसा गुस्सा आया कि शाम को साफ-साफ उसके बाप से कह दिया कि पन्नो के बस के बच्चे पालने नहीं हैं। सारी बात सुनकर तंदूरवाले ने वहीं एक झापड़ पन्नो के रसीद कर दिया था।

वह दिन और आज का दिन, पन्नो ने निक्के के लालन-पालन में लापरवाही नहीं बरती; पर निक्के का पांव खुद ही बाहर निकल गया था। वह आप ही दौड़ा-दौड़ा बेबेजी की कोठी जा पहुंचता। कभी-कभी तो वह अपने मां-बाप की आंख खुलने के पहले ही बेबेजी की गोद में पहुंच जाता और वहां बैठा मकई की गरमा-गरम रोटी पर मक्खन की पिघलती टिक्की के ऊपर खांड की बुरकी डलवाकर खा रहा होता।

धीरे-धीरे बेबेजी का तंदूर पर बैठना कम, पन्नो और निक्के का उनके आंगन में जमाव अधिक हो गया। कभी-कभी तो तंदूरवाला भी ग्राहकों से निबटकर बेबेजी के ही जा पहुंचता। फिर उसका पूरा परिवार ही बेबेजी के हाथ की बनी लजीज शै खाकर ही लौटता। बेबेजी कोठी की चिनाई-मरम्मत का काम भी तंदूरवाले को ही सौंप देतीं। जो काम उसके निज के बस का न होता, उसके लिए वह गली-नुक्कड़ से कोई न कोई कामगार खोज लाता।

अब रात तक तो बेबेजी अपने घर-बार में रमी रहतीं। रात को कोठी फिर

अकेली की अकेली खड़ी रह जाती। बेबेजी सोचतीं, बिस्तर पर पड़ा आदमी आखिर पासा भी कितनी बार पलटे! क्यों न तंदूरवाला अपनी औरत और बच्चे को लेकर कोठी में ही सो जाया करे? सारे कमरे तो खाली पड़े हैं। अगली सुबह उनका दावतनामा तंदूरवाले के सामने पेश था। उसे भला क्या आपत्ति हो सकती थी?

बस कोठी में अगले सवेरे निक्के की किलकारियों के साथ उगने लगे।

एक रोज बेबेजी सवेरे-सवेरे उठकर कोठी के बाहर का चक्कर लगा रही थीं। मन में व्यग्रता थी। दरअसल शाम की गाड़ी से उनके अमृतसर जाने की बात तय थी। दो साल से ऊपर हो गये थे, जब से बहन से मिलने अमृतसर जाना चाह रही थीं। बड़ा आया था तो बेबेजी ने उसके सम्मुख मासी से मिल आने का प्रस्ताव रखा भी था। उसने कहा था कि जाना तो उन लोगों को उसी तरफ है, पर रास्ते में जगह-जगह रुकना पड़ेगा और बेबेजी कहां उनके साथ रुलती फिरेंगी। छोटा आया तो भी बेबेजी इस बात को भूली नहीं थीं। उन्होंने उससे भी कहा था कि क्यों न वे सारे मोटर से ही जाकर मासी को मिल आयें? वह बोला था कि चार महीने पीछे उसकी घरवाली की ममेरी बहन की शादी है, तब तो निकलना पड़ेगा ही। दो-दो बार गाड़ी का पेट्रोल जलाना तो जरा फिजूलखर्ची है। उन्होंने कहा था कि पैसे वे दे देंगी, बस उन्हें तो साथ चाहिए। अकेले गाड़ी पकड़ने का हौसला उनका अब नहीं पड़ता। तो छोटा दन्न से बोला था कि बात सिर्फ पैसे की थोड़ी है—आखिर वक्त की भी कोई कीमत होती है! उसके वक्त की कीमत चुकाना तो बेबेजी की समझ में नहीं आया कि कैसे हो पाएगा, सो प्रोग्राम नहीं बना।

अब तंदूरवाले से बात की तो वह फट से राजी हो गया। पन्नो और निक्का भी साथ चल रहे थे। वह चार दिन के लिए 'तंदूर बंद' की तख्ती भी वहां लटका आया था। बेबेजी ने तो असली घी के लड्डू और मेवे-भरी पिन्नियां भी बनाकर साथ बांध ली थीं। बेबेजी बाहर का चक्कर लगाते-लगाते अंदाजा लगा रही थीं कि पूरा दिन डूबने तक उन्हें क्या-कुछ करते रहना चाहिए कि आज का दिन जल्दी कट जाए और शाम की गाड़ी का वक्त हो जाए।

तभी उन्हें एक टैक्सी ने कोठी के दरवाजे पर रुककर चौंका दिया। चौंकने की बात भी थी, क्योंकि टैक्सी की सवारियां और कोई नहीं, छोटा उसकी स्त्री और बच्चे ही थे। बेबेजी का मुंह खुला का खुला रह गया। छोटे ने बहू के साथ उतरकर पैर छुए। आशीष देती बेबेजी के मन में बात आयी कि इस बार छोटा मोटर से नहीं आया कि कहीं फिर से अमृतसर चलने की बात न उठ जाए।

बच्चे शरमाते-सकुचाते से हाथ जोड़ने लगे तो बेबेजी ने लपककर उन्हें सीने से लगाया और सिर पर हाथ फेरने लगीं। टैक्सी से असबाब के नाम पर कुल जमा चार अदद अटैचियां ही उतरी थीं। उन चारों ने एक-एक अटैची थामी और फुरती से कोठी में घुस गये। बेबेजी मुंह खोले, धीरे-धीरे, पीछे आती रहीं। तब तक छोटा तो अटैची लिये, सीधा तंदूर-वाले के कमरे में जा पहुंचा। सामने का नजारा बेबेजी भांप ही गयीं। तंदूरवाला तो एक बगल में निक्के को लिये और दूसरी में पन्नो को समेटे बेसुध पड़ा होगा, उन्होंने सोचा। छोटा जब मुख पर एक अस्वस्थ-सी लाली लिये पलटा तो उन्हें अपना अनुमान ठीक ही लगा।

"ये कौन लोग यहां घुस पड़े हैं?" छोटे ने सवाल दाग दिया।

"पुत्तर तंदूरवाला ए। सामने ऐंदा तंदूर ऐ।"

"तो?"

बेबेजी को, 'तो' का तो जवाब ही न सूझा। तभी पन्नो अंगड़ाई तोड़ती, दुपट्टे को सीने पर टिकाती प्रकट हो गयी। उसे देखकर तो छोटे की घरवाली की आंखें भी माथे तक चढ़ गयीं।

"नी पन्नो, पाव्वी दे पैरी पै।" बेबेजी ने फट से आदेश दिया। पन्नो तुरंत छोटे की बीवी के कदमों पर झुक गयी। इतने में बेबेजी कमरे में से निक्के को समेट लायीं।

"हथ्थ जोड़ वे।" उन्होंने उसे फरमान दिया तो रोने की तैयारी करता निक्का झठ हाथ जोड़ने लगा।

"बेबेजी जरा इधर आना।" छोटा फैली अटैचियों पर से टापता बेबेजी को कोने में ले गया।

"ये तंदूरवाले का पूरा टब्बर यहां क्यों है?"

"हाय, पुत्तर, ऐत्थे सौन्दा ऐ। मन्नू कल्ले डर लगदा ऐ।"
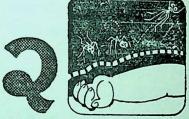
"यह भी कोई ढंग है?"

बेबेजी छोटे को छोड़, निक्के को नाली पर ले जाकर पेशाब कराने लगीं। साथ ही फुसफुसाकर पन्नो से कहा कि वह अंदर तंदूरवाले को जाकर बतला आये कि अब आज, अमृतसर जाना नहीं हो सकेगा। पर बात की भनक छोटे के कानों में पड़ गयी थी। बेबेजी ने बात कुछ इतना फुसफुसाकर भी नहीं कही थी।

दो रोज तक जायदाद के वारिस ने जो तंदूरवाले के परिवार की कोठी में निरंतर आवाजाही और आवभगत देखी तो उसकी नसें मारे जलन के चम-चम करने लगीं। आखिर कुछ ऊंची आवाज में सबको सुनाकर उसने बेबेजी से पूछा, "बेबेजी, यहां इतनी भीड़ जमा करके रखने से आखिर फायदा? ये लोग कब तक ऐसे ही यहां मंडराते रहेंगे?"

पर बेबेजी के तटस्थ उत्तर का आशय सुनकर तो वह काठ ही हो गया। पहले तो बेबेजी ने उससे बहुत औपचारिकतापूर्ण शब्दों में यह जानना चाहा था कि छोटा अभी और कितने दिनों की छुट्टी लेकर आया है। दूसरे, उन्होंने उसे यह समझाना चाहा कि छोटा बिलकुल बुरा न माने उनके कहने का, पर चाहिए उसको तार देकर ही आना, जिससे बेबेजी अगर कहीं बाहर शहर गयीं हुईं हैं, तो छोटे को गेट पर कहीं ताला झूलता न मिले। —ई-१९१, ईस्ट आव कैलाश, नयी दिल्ली-२४

## सबसे ऊंचा जलप्रपात !

सन १९२४ में बेलगांव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। अधिवेशन की समाप्ति पर कुछ लोग आस-पास के दर्शनीय स्थल देखने चल पड़े। एक कार्यकर्ता ने गांधीजी के पास जाकर पूछा, "बापू, आप शरावती का जलप्रपात देखने चलेंगे? आठ सौ फुट की ऊंचाई से वह गिरता है। सुंदर रमणीय स्थल है।"

"मैं कैसे चल सकता हूं भला! अब मैं क्या सारे स्थल ही देखता रहूंगा? काम इतना पड़ा है! महादेव भी नहीं जा सकेगा। काका को ले जाएं।"

"बापू! यह जलप्रपात वास्तव में देखने योग्य है। अहा! कैसे-कैसे तुषार-बिंदु उड़ते हैं! कितने इंद्रधनुष बनते हैं! हम जैसे गंभीर निसर्ग के, मूर्तिमंत अनंत के सान्निध्य में ही हों! ऐसा कोई जलप्रपात देखा है आपने?"

"हां, कितनी ही बार देखा है," बापू ने धीमे स्वर में कहा।

"शरावती-जितना ऊंचा?"

"हां, उससे भी काफी ऊंचा!"

"वह कौन-सी जगह है? कहां से आता है उसका पानी?"

"वर्षा का पानी—पर्जन्यधारा! कितनी ऊंचाई से गिरती है!"

काका साहब और दूसरे लोग शरावती जल-प्रपात देखने गये, लेकिन गांधीजी अपने काम में लगे रहे।

— गोपालदास नागर

## आमों की चोरी

मई-जून का माह और छुट्टी का मौसम—समय दोपहर का। हम आठ-दस मित्रों ने, जो सभी दस वर्ष से कम उम्र के थे, उस दिन घूमने के लिए अपने नगर जगदलपुर के काकतीय नरेशों के राजमहल को चुना। सिंहद्वार के भीतर प्रवेश करने पर देखा कि एक भी पहरेदार या चौकीदार नहीं है। घूमते हुए हम लोग बाहर ही बाहर राजमहल के पीछे बाड़े की ओर पहुंच गये। वहां बारहमासी आमों के वृक्ष ने हमें अपनी ओर आकर्षित किया। आम खाने के लालच में हम लोगों ने पेड़ पर धावा बोल दिया और आमों को तोड़-तोड़कर नीचे गिराने लगे। सभी अपने-अपने हिसाब में लगे हुए थे—एक, दो, दस, बीस, पचास . . . . । तभी अचानक सब चौंक पड़े—'पकड़ो-पकड़ो' की आवाज सुनकर। दो आदमी लट्ठ लिये हमारी ओर ही आ रहे थे। हम लोग अपनी-अपनी जान लेकर भागे, लेकिन हममें से एक पकड़ में आ ही गया। उसके बाद उस दोस्त की जो हालत हुई, उसी के शब्दों में सुनिए—"दोनों लट्ठवाले मुझे महाराजा के सामने ले गये।"

'क्या है ?' महाराजा साहब ने पूछा।

"आठ-दस लड़के बाड़ी में घुसकर आमों का नुकसान कर रहे थे। सब तो भाग गये, लेकिन यह एक ही लड़का पकड़ में आया है,' एक लट्ठवाला बोला।

महाराजा प्रवीरचंद्र भंजदेव जो बच्चों से काफी स्नेह करते थे, गरज पड़े और बोले—

'तुम्हें झाड़ चढ़ना आता है ?'

'जी . . . जी . . . नहीं'

'आता है कि नहीं ?' गरजकर पूछा।

'आ . . . आता है।'

'आम और तोड़ोगे ?'

'जी . . . जी . . . नहीं।'

'तोड़ोगे कि नहीं ?' फिर गरजे।

'तोडूंगा।'

'अच्छा, तुम अपनी कमीज उतारो और इसमें जितना आम बांध सको, तोड़ लो। बलराम, तुम इस लड़के को बाड़ी में ले जाओ और आम तोड़कर बांधने के बाद फिर मेरे पास ले आओ।' महाराजा ने आज्ञा दी।

'जी।' लट्ठवाला बलराम यह कहकर मेरा हाथ पकड़कर बाड़ी में अंदर ले आया। करीब पंद्रह-बीस आम तोड़कर उसे कमीज में बांधकर फिर प्रवीरचंद्र भंजदेवजी के सामने खड़ा हुआ।

'हो गया बेटे ?' प्यार से पूछा।

'जी . . . जी . . ।' मैं कांपते हुए बोला।

'पैंट उतारो,' फिर वे गरज पड़े।

कांपते हुए मुझे पैंट भी उतारना पड़ा। अब मैं पूरा नंगा था। फिर महाराजा साहब बोले—'इस पैंट को आम की गठरी के ऊपर रखो।'

'अब गठरी को सिर के ऊपर रखकर यहां से घर के लिए तेजी से भागो।'

मरता क्या नहीं करता, मैं भाग खड़ा हुआ।

अब जब भी वह घटना याद आती है, तब अचानक हंसी आ जाती है।

**—जोगेंद्र महापात्र 'जोगी,' जगदलपुर**

## भिखारी नहीं शायर

घटना उस समय की है जब मैंने नयी-नयी नौकरी शुरू की थी। पोस्टिंग नीमच में हुई थी। सारा दिन दफ्तर में काम करने के बाद शाम को लाइब्रेरी चला जाता, क्योंकि अकेला रहता था। उस समय वहां मेरी कोई सोसाइटी भी नहीं थी और मुझे बचपन से ही लिखने-पढ़ने का शौक था। एक शाम मैं लाइब्रेरी में अध्ययन कर रहा था। और भी अनेक सज्जन बैठे पत्र-पत्रिकाएं पढ़ रहे थे। तभी एक वयोवृद्ध सज्जन लाइब्रेरी में दाखिल हुए, जिनके लंबे-लंबे एवं बिखरे हुए बाल थे। रेशम की तरह सफेद दाढ़ी थी। कमर झुकी हुई थी, मैले और फटे हुए कपड़े पहने हुए थे। हाथ में छड़ी थी।

शक्ल-सूरत से फकीर नजर आते थे। लाइब्रेरी में दाखिल होते ही कहने लगे, "हाजरीन, बंदा किस काबिल है' मुझ गरीब पर भी नजरे-करम हो जाए। आप की तवज्जह खास चाहता हूं।" अभी उनका यह एलान अधूरा ही था कि हमारे पास बैठे हुए एक महोदय ने जेब से चवन्नी निकाली और उनके हाथ पर रख दी। ऐसे ही पास बैठे हुए दूसरे, तीसरे और चौथे आदमी ने भी किया। अभी यह सिलसिला जारी ही था कि देखता हूं उन वयोवृद्ध सज्जन की आंखों से आंसू उमड़कर गालों पर आ गये हैं। रुंधे हुए गले से बोले—"मेरे मेहरबानो! मैं कोई भिखारी नहीं हूं, मैं तो एक शायर हूं। आज के उर्दू के अखबार 'इनकलाब' में मेरी एक गजल छपी है। मैं तो उसकी दाद हासिल करने के लिए हाजिर हुआ हूं।" उनका यह कहना था कि हम सब पर घड़ों पानी पड़ गया। काटो तो खून नहीं! आज भी जब इस घटना की याद आती है तो कलेजा मुंह को आता है।

**—कुलदीप तलवार**

# मरना हमारा अधिकार है

● मनमोहन वशिष्ठ

सन १९७५ में दक्षिण-अफ्रीका के एक डाक्टर हार्टमैन ने अपने ८७ वर्षीय कैंसर-पीड़ित बूढ़े पिता को पेंथोटल नामक दवा की अधिक खुराक देकर सदैव को सुख की नींद सुला दिया। कोर्ट ने डाक्टर पर हत्या का मुकदमा चलाया और डाक्टर का बयान सुनकर उसे कोर्ट उठने तक की सजा दी, जो सिर्फ एक घंटे थी। ज्यूरिच के ट्रीमली अस्पताल के इनचार्ज डॉक्टर अर्स हमरली ने असाध्य रोग से पीड़ित ९ मरीजों से जीवन प्रदान करनेवाले चिकित्सा-यंत्र हटवाकर उन्हें सहज रूप से मरने की छूट दे दी। डॉक्टर को कुछ समय के लिए निलंबित कर, फिर वहाल कर दिया गया। सन १९७६ में लेग (बेल्जियम) में २५ वर्षीय एक मां पर उसकी एक-वर्षीया शारीरिक विकारयुक्त बेटी की हत्या का मुकदमा चलाया गया। उसने अपनी बेटी को शहद में मिलाकर कोई दवा खिला दी, जिससे वह मर गयी थी। १२ सदस्यों की जूरी ने मां को निर्दोष मानकर छोड़ दिया। ये तीन उदाहरण ऐसे हैं जो चिकित्सा-जगत में ठीक न हो सकनेवाले मरीजों के साथ घटित हुए हैं। फ्री यूनीवर्सिटी ऑव ब्रुसेल्स के न्यूरोसर्जरी के डॉक्टर जीन ब्रीयवा का कहना है कि जिन मरीजों के जीवित रहने की कोई आशा ही न हो उन्हें स्वेच्छा से सहज मौत मरने की छूट देने में एतराज ही क्या है?

**स्वेच्छा से मरने का अधिकार**

डेनमार्क और स्वीडन में अनेक संगठन अब स्वेच्छा से मरने का अधिकार दिये जाने की मांग करने लगे हैं। डेनमार्क की 'माई लाइफ ट्रीटमेंट' और स्वीडन की 'दी राइट टु ऑवर डेथ' जैसे संगठनों का तो कहना है कि अब लोग इस बात को सोचने लगे हैं कि अस्पताल में बुरी स्थिति में पड़े रहने के बजाय क्यों न शान से मरा जाए। स्वीडिश राष्ट्रीय न्यायिक विभाग के अध्यक्ष बोरजी लैंगटन का कहना है कि हजारों स्वीडिश लोगों ने इस बात की इच्छा प्रकट की है कि यदि कभी वे अस्पताल में बुरी स्थिति में पड़े हों तो उन्हें मरने दिया जाए। कोपेनहेगन में २,००० लोगों ने एक कागज पर हस्ताक्षर कर बुरी स्थिति में होने पर स्वेच्छा से मरने की इच्छा जाहिर की है। ऐसे लोगों
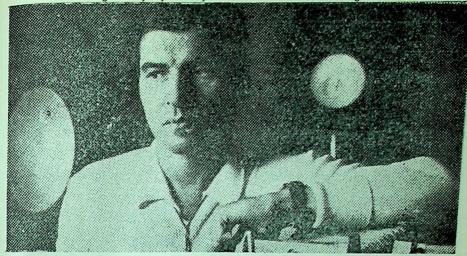
की संख्या अब दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

हालैंड में इस प्रश्न पर अपनी राय देनेवालों में ६१ प्रतिशत लोगों ने स्वेच्छा से मरने का कानूनी अधिकार दिये जाने के पक्ष में अपनी राय प्रकट की। आस्ट्रेलिया में ७१ प्रतिशत लोगों ने ऐसी सहमति प्रकट की। फ्रांस के एक पत्र 'क्युटीडीयन डी पेरिस' के अनुसार ९२ प्रतिशत लोगों ने स्वेच्छा से मरने का अधिकार दिये जाने के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है।

**फ्रैंको की सहज मृत्यु**

यूरोप में सहज मृत्यु का सबसे बड़ा उदाहरण है स्पेन के फ्रांसिस फ्रैंको का। सन १९७५ में फ्रैंको पांच सप्ताह तक जिंदगी और मौत के बीच झूलता रहा। फ्रैंको की चिकित्सा करनेवाले ३० डॉक्टरों के दल ने उसे जीवन प्रदान करनेवाले यंत्रों की मदद से बचाने की कोशिश की। बाद में जनमत की मांग पर डॉक्टरों ने उन यंत्रों को फ्रैंको के पास से हटा दिया। यंत्रो के हटाने के दूसरे दिन ही फ्रैंको खत्म हो गया। आखिर ऐसा निर्णय क्यों किया गया? जाहिर है कि फ्रैंको ऐसी स्थिति में था जहां उसके ठीक होने की कोई उम्मीद नहीं थी। उसे सहज मृत्यु से मरने की छूट डॉक्टरों ने दी।

डेनिश डॉक्टर्स यूनियन के अध्यक्ष फ्रांसिस जाचारियस का कहना है कि डॉक्टरों का संघ इस बात में विश्वास करता है कि मरीज की इच्छा पर ही इस बात को छोड़ दिया जाए कि वह कितने समय तक कृत्रिम जीवन प्रदान करनेवाले यंत्रों की सहायता से जीना चाहता है।

बेलजियम में डॉक्टर नैतिक कानूनों

से प्रभावित होते हैं। जब एक मरीज 'कोमा' (अचेतनावस्था) में हो तब मरीज के परिवारवालों के कहने पर जीवन-प्रदान कररनेवाले यंत्रों को हटाने के लिए डॉक्टर सहमत हो जाते हैं। फिनलैंड के कानूनों के बारे में नेशनल मेडिकल बोर्ड के अध्यक्ष डॉक्टर आंटी आसोटालो का कहना है कि ऐसे मरीजों की जिनके दिमाग के अवयव पूरी तरह निष्क्रिय हो गये हों, चिकित्सा बंद करने के बारे में सोचा जाना चाहिए। इसी मत का समर्थन करते हुए फ्री यूनीवर्सिटी ऑव ब्रुसेल्स की न्यूरोअनाटोमी के प्रोफेसर डॉ. ओलिवर पेरिर का कहना है कि ज्यादातर डॉक्टर इस बात से सहमत होंगे कि जब दिमाग के तंतु मर जाते हैं तब आदमी मांस के लोथड़े के सिवा कुछ नहीं रह जाता।

**यंत्रों को कब हटाया जाए?**

कई बार बीमारी की स्थिति में डॉक्टर बीमार को कुछ खास यंत्र लगाते हैं, विशेष कैलोरीयुक्त भोजन और अति प्रोटीनयुक्त इंजेक्शन लगाते हैं। क्या इन यंत्रों या चीजों को असाध्य रोग से पीड़ित मरीज को न देकर उसे शांतिपूर्वक मरने दिया जाए? वियना विश्वविद्यालय के प्रो. कार्ल होरमान, जो कैथोलिक नैतिक सिद्धांत पढ़ाते हैं, कहते हैं कि हम ऐसे कानून के, जिसमें डॉक्टर इंजेक्शन लगाकर किसी मरीज को मार दे, खिलाफ हैं, पर ऐसे कानून के पक्ष में हैं जिसमें मरीज जीवन देनेवाले यंत्रों के हटवाने से शांतिपूर्वक मर जाए।

ब्रिटेन के मेडिकल सुरक्षा-संघ के डाक्टर जोनवाल का कहना है कि ब्रिटेन में अब कुछ डॉक्टर असाध्य रोग से पीड़ित

# शत्रु का संहार : मृत्यु पर विजय

बोधिसत्व ने जब बोधिचित्त ग्रहण किया तब उन्होंने समस्त बुद्धवर्ग के समक्ष सर्वस्व-त्याग की घोषणा की।

उन्होंने प्रार्थना की--"व्याधिपीड़ित के लिए मैं वैद्य, औषध और परिचारक बन जाऊं। मैं अन्न और जल का वर्षण कर क्षुधार्त और पिपासु की व्यथा दूर कर सकूं। निर्धन के निकट मैं अक्षय रत्न-भंडार के रूप से प्रकट हो सकूं। मैं अनाथों का नाथ, यात्रिगण का सार्थवाह, पारार्थी की नौका, दीपार्थी का दीप, शय्यार्थी की शय्या एवं दासार्थी का दास हो सकूं। जब तक समस्त संसार दुःख से मुक्त न हो तब तक मैं सब का सेवक होकर विराजमान रहूं।"

भवभूति कहते हैं--"रसों में करुण रस प्रधान है।" परमपुरुष की अनुग्रह-शक्ति ही करुणा है, जो किसी भाग्यवान

मरीजों के पास से जीवनदायी यंत्र हटाने की छूट देने लगे हैं। ऐसा तभी संभव है जब मरीज के रिश्तेदार डॉक्टर से लिखित अनुरोध करें। ब्रिटेन के स्वास्थ्य-मंत्रालय के एक प्रवक्ता ने हाल में बताया है कि सामान्य कानून ठीक न होनेवाले मरीजों के पास से कृत्रिम जीवन प्रदान करनेवाले चिकित्सा-यंत्रों को हटाने की छूट देता है।

सहज मृत्यु का फैसला कौन और कब करे, यह प्रश्न जटिल है। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति इतनी अच्छी बन गयी है कि डाक्टर चिकित्सा-यंत्रों के द्वारा मौत के मुंह में जाते मरीज को इलाज के द्वारा काफी समय तक रोक सकते हैं, लेकिन मरते व्यक्ति को कब तक बचाया जाए? असाध्य और कष्टदायक रोग से ग्रसित होने पर डॉक्टर, रोगी और रोगी के संबंधियों की सहमति से जबरदस्ती जीने से मुक्ति दिलाने का निर्णय किया जा सकता है। हाल में अमरीका के कैलीफोर्निया राज्य में ऐसी स्थिति को कानूनी रूप दे दिया गया है। कैलीफोर्निया राज्य के गवर्नर श्री ब्राउन ने वर्षों से बेहोश पड़ी लड़की क्यूलान के न्यूजर्सी के उच्च न्यायालय में चले मुकदमे को ध्यान में रखकर तथा न्यूजर्सी में मृत्यु को जन्म-जितना ही पवित्र माननेवाले कुछ नये संगठनों के तेजी से पैदा होने के कारण एक ऐसे बिल पर दस्तखत किये हैं जिसके अंतर्गत कैलीफोर्निया में अब असाध्य और कष्टदायक रोग से पीड़ित होने पर कोई भी मरीज जीवन प्रदान करनेवाले यंत्रों को हटवाकर कानूनी रूप से मर सकता है।

—७, यू. बी. जवाहरनगर, दिल्ली-७

## • दादा सीताराम

के हृदय-क्षेत्र में बीज के रूप में आरोपित हो महाकरुणा के वटवृक्ष का रूप धारण करती है। और इसी महाकरुणा के आवेश से ऋषि एक ऐसी स्थिति की कामना करते हैं जिसमें सब सुखी हों और कोई भी दुःख के संस्पर्श से व्यथित न हो।

सर्वेभवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्रानि पश्यन्तु ...

महर्षि व्यास ने अपने महाकाव्य के एक पात्र से कहलवाया है—"मेरी कामना है कि प्राणिमात्र की आर्ति का नाश हो।"

महाभारत-काल के बाद भी भारतीय चिंतन की यह धारा सूखी नहीं। यहां के यौगिक, तांत्रिक, भक्ति-साहित्य में इसे बराबर बहते देखा गया।

महायोगी अरविंद ने इसी भावना

# मृत्यु के अधिकार--जैसी कोई चीज नहीं



किसी मरणासन्न व्यक्ति को उसकी अंतिम असह्य पीड़ा से मुक्त करने के लिए क्या किसी औषध द्वारा उसका तत्काल अंत किया जा सकता है, चाहे उसका यह मृत्यु-वरण स्वैच्छिक ही क्यों न हो? कुछ लोगों ने पक्ष में दलीलें दी हैं, किंतु इसके विपरीत पक्ष भी है। यहां सिंगापुर विश्वविद्यालय के डॉ. ग्वी ए. एच. लेंग ने तत्काल मृत्यु के ऐसे तथा-कथित अधिकार की कड़ी आलोचना की है। उनका कहना है 'मृत्यु के अधि-कार' जैसी कोई चीज नहीं होती, क्योंकि अधिकार सकारात्मक होते हैं तथा ये व्यक्तिगत हित के लिए मांगे जाते हैं अथवा व्यक्ति को दिये जाते हैं। किसी भी दृष्टि-कोण से उक्त प्रकार की बलात मृत्यु पाप है।

'मृत्यु का अधिकार' जीने के अधिकार की अस्वीकृति है।

डॉ. लेंग के अनुसार समाज को ऐसे मरणासन्न लोगों का अंत करने का निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है और न किसी व्यक्ति को इसकी तरफदारी ही करना चाहिए। वस्तुतः मरने के अधि-कार की मांग करने का अर्थ है—हत्या का अधिकार या किसी के जीवन की आहुति देने का अधिकार।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि मृत्यु से पूर्व की अतिशय पीड़ा भोगनेवाले क्या तत्काल मरने की इच्छा प्रकट नहीं कर सकते?

डॉ. लेंग का मत है कि यह बात संबंधित व्यक्ति पर छोड़ देनी चाहिए कि वह अपने जीवन को समाप्त करना चाहता है या जीना चाहता है। इसके लिए कष्ट में पड़े व्यक्ति को 'मृत्यु के अधिकार' नाम से कोई अधिकार देने की जरूरत नहीं है। वहां अधिकार की जरूरत ही नहीं होती जहां किसी को कुछ करने से कोई रोक नहीं सकता। कोई भी व्यक्ति यदि मरना

---

के वशीभूत हो 'अतिमानस अवतरण' (डिवाइन डिसेंट) का महाप्रयत्न किया। बंगाल के वामाक्षेपा और प्रभु जगद्बंधु भी ऐसे अवतरण का संकेत दे गये हैं।

जो प्रबुद्ध हैं, जिन्होंने अपनी मुक्ति एवं अपनी शांति की कामना का भी त्याग कर दिया है और जिन्होंने परदुःख को अपनी ही पीड़ा समझा है वे ही इस महा-स्वप्न को देख सकते हैं।

महाकरुणा के स्वप्न देखे गये, परंतु जो प्रयास स्वप्न को वास्तविकता में बद-लने के लिए किये गये वे सफल नहीं हो सके। जिन्होंने वह स्वप्न देखा वे कालचक्र का अतिक्रमण करके स्वयं एक ऐसी स्थिति में चले गये जहां से पुनः लौटना नहीं होता—'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमंमम'

चाहता है तो वह उसके लिए स्वतंत्र है। यहां तक कि सजा की धमकी भी आत्म-हत्या करने से किसी व्यक्ति को रोक नहीं सकती।

किसी सजा की 'अति' आत्महत्या से अधिक हो ही नहीं सकती। इसलिए व्यक्ति को वह अधिकार नहीं दिया जा सकता जो उसके पास पहले से है, यानी जीवन को समाप्त करने का अधिकार।

अगर कोई व्यक्ति घोर मानसिक विकृति, मस्तिष्क-क्षय या अवचेतन की अवस्था में है तो वह स्वयं मरने के तथा-कथित अधिकार का उपयोग नहीं कर सकता।

फिर दूसरे व्यक्ति पीड़ित व्यक्ति को किस आधार पर मार सकते हैं? यदि कोई यह कहे कि मरणासन्न व्यक्ति की पीड़ा को दूर करने के लिए उसे मारा जा सकता है, तब यह प्रश्न उठता है कि जो अचेतन है उसे पीड़ा किस बात की?

यह कहा जा सकता है कि असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति के कारण दूसरों को परेशानी उठानी पड़ती है और इसलिए समाज को ऐसे व्यक्ति को नष्ट करने का अधिकार मिलना चाहिए, तो इसका जवाब यह है कि यह परेशानी समाज की नहीं वरन केवल उनकी है जो रोगी की देखभाल नहीं करना चाहते। अधिकार का उपयोग एक व्यक्ति (रोगी) के लिए किया जाना चाहिए न कि उनके आस-पास रहनेवालों के लिए।

इसके उत्तर में कि जीवन वही जीने लायक है जो अच्छा हो, डॉ. लेंग का कहना है कि यह अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है कि खराब जीवन मृत्यु से भी बुरा होता है।

दरअसल जो व्यक्ति 'मृत्यु के अधि-कार' की मांग करते हैं वे मारने का अधि-कार चाहते हैं। मृत्यु के अधिकार के नाम से मरणासन्न व्यक्ति को कुछ दिया नहीं जा सकता, बल्कि उससे लिया ही जाता है।

**—बिमल चंद्र** ●

---

**महाकरुणा के अवतरण के लिए आवश्यक है कि योगी पहले तो उस महा-शक्ति के साथ उसके परमधाम में एक हो जाए, फिर उससे युक्त होकर सांसारिक आयाम (डाइमेंशन) में वापस लौट आये। प्राचीन काल में बुद्धदेव ने महाबोधि प्राप्त कर निर्वाण में प्रवेश करना अस्वी-कार करके बुद्धत्व स्वीकार किया था। संसार से विमुख होकर परमधाम में स्थिति प्राप्त कर लेना उच्च स्थिति है, परंतु वह खंडयोग है। इससे उच्चतर स्थिति वह है जहां योगी परमधाम में प्रवेश करके भी प्राणिमात्र के दुःख से व्यथित हो परम-धाम की चेतना के साथ इस सांसारिक आयाम से संयुक्त हो जाता है। यही अखंड महायोग है।** ●

सेंसर से रुकी कविताएं

## बीमार दरख्त

न कोई चीख
न कोई शोर
न घायल पंखों की फड़फड़ाहटें
हर जगह चुप्पी, सन्नाटा
छाया इस कदर
बुत आदमी जो बन बैठा
उसके गालों पर बरसा चांटा

खा रहे थे लाश
नोचकर कुछ कौवे
चील और गिद्ध
उनकी हर कोशिश थी
हमारी परिभाषाएं हों किस तरह
गलत सिद्ध

किवाड़ें बंद
हवाएं सहमी
पत्थर डरे
सड़कों पर पड़े कारतूसों के खोल
पीढ़ियां बना दी गयीं गूंगी
इसलिए कि कल वे न बोलें
न कोई अपील
न कोई सुनवाई
न कोई फरियाद
कैद हो रहे थे मौलिक अधिकार
कर्फ्यू के नाम से पड़ गये
दरख्त सब बीमार

—विमलकुमार
सदस्य लोक सेवा आयोग, पटना

## उनींदा शहर

इस शहर के लोग
अब उनींदे हो गये हैं
रातों की खामोशियां अब
इन्हें नहीं सुला पाती हैं
वक्त की आवाज अब बेअसर है
प्रस्तावों और प्रयोगों से ये लोग
अब ऊब गय हैं
सड़कों पर बिना बैसाखियां
ये लोग चल नहीं पाते
(क्योंकि) 'क्यू' में खड़े-खड़े
इनकी टांगों को लकवा मार
गया है
पतझड़ के पत्तों की तरह
अब ये जीवन से
झड़ते जा रहे हैं
वक्त की बैसाखियां भी अब
इनका दामन छोड़ रही हैं
गर्द का गुबार और
जीवन का कारवां
इन्हें अंधियारे में छोड़ गये हैं
और
इसी कारण शहर के लोग,
उनींदे हो गये हैं!

—यशवन्त कोठारी
मदनमोहन मालवीय आयुर्वेदिक
महाविद्यालय, उदयपुर

# वे पल

छायाओं-से घेरे रहते वे पल
जो साथ-साथ बीते
चंदनी हवाओं ने
निंदियारे तालों को झकझोरा
भीतर तक सिहर गयी
मौन कमल-पांखुरी
छलक गया छंद का झकोरा

फिर कोई आंख डबडबायी
मौसम का गंध-कलश पीते
गीतमुखी यादों के
भीगे एहसास कसमसाये
दस्तक से चौंके
कुछ सतरंगी स्वप्न
मिलनातुर पंख फड़फड़ाये
सुरमई धुंधलके पर धूप-चित्र
तुमने यों बार-बार चीते

—योगेन्द्र दत्त शर्मा

एक महा हाहाकार चल रहा है अंदर-बाहर!

श्रद्धांजलि

# काल रुका नहीं !

● डॉ. भगवतीशरण मिश्र

द्वापर में एक भीष्म हुआ था । शरों की शय्या पर पड़े-पड़े उसने कुरुक्षेत्र के मैदान में हाथ बांधे काल को ललकारा था—

'काल, रुक जाओ, अभी जाने का समय नहीं हुआ । सूर्य को जरा उत्तरायण होने दो।'

कलियुग का यह साहित्य-महारथी रेणु, हिंदी-कथा का भीष्म पितामह न सही, शर-शय्या राजेंद्र सर्जिकल की रोग-शय्या से ही मृत्यु को ललकारता रहा ।

और . . . वह पछाड़ खाती रही उसके दरवाजे पर, बगल में बहती गंगा के तटों पर पछाड़ खाती बेबस निरीह लहरों की तरह ।

पटना के प्रसिद्ध सर्जन यू. एन. शाही ने पेट खोला था रेणु का। तब किसी को

नयी दिल्ली में—काश ! रेणु राजधानी के बदलते हुए तेवर देख सकते
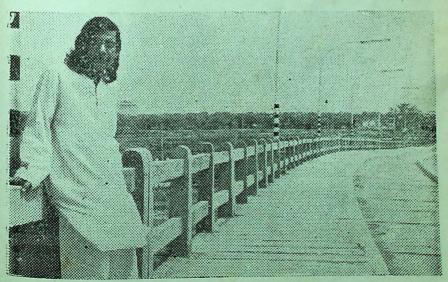
यह विश्वास नहीं था कि अंदर सब कुछ इतना भयावह और विकराल होगा। अल्सर तो अल्सर, अंदर कैंसर भी था। सर्जनों की टीम हताश हो गयी। अल्सर को निकालकर भी कैंसर निकालना ऐसी स्थिति में संभव नहीं था। उम्मीद थी, आपरेशन के घावों के सूखने के बाद कैंसर से फिर किसी बड़ी जगह भिड़ लेंगे, पर भगवान को कुछ और ही मंजूर था।

ग्यारह की रात को ही कानों-कान खबर पूरे नगर में फैल गयी। रात भर दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रही। लोगों की आंखों में आंसू उमड़ते रहे। छात्र-छात्राएं लाश के पास पछाड़ खाती रहीं। उसी समय लगा था, एक साहित्यकार की मृत्यु भी शानदार हो सकती है। अपने अवसान के इस क्षण किसी शहंशाह से कम नहीं था बिहार के कोसी-अंचल का यह साहित्य-सेवी, जिसने अपने आंचल को बेदाग रखने के लिए, जयप्रकाश-आंदोलन के समय, शाही खिताब (पद्मश्री) को भी राह के ठीकरे की तरह ठोकर मार दिया था।

रेणु राजा भी था और रंक भी। पैदा हुआ एक जमींदार परिवार में। चाहता तो ऐश-मौज की जिंदगी बिता जीवन की सुख-सुविधाओं का भोग करता, पर अभावग्रस्तों की जिंदगी के इस कथाकार ने अभाव का ही वरण किया और जमींदारी-हवेली को तिलांजलि दे रंकों, मुसीबत-परस्तों की टोली से जा मिला। नौकरी उसे रास नहीं आयी। कॉलेज का लेक्चरर रहा, उसे छोड़ा; पटना-रेडियो-स्टेशन के प्रोग्राम एक्जिक्यूटिव पद से भी संबंध तोड़ा और मात्र लेखनी के सहारे खड़ा हो गया। पर अभावग्रस्तता स्वतंत्रता की शर्त भले हो, रोगों के विरुद्ध वह एक अत्यंत ही कमजोर ढाल है। रेणु अभावग्रस्त रहा, रोगग्रस्त भी।

पहले टी. बी. ने धर दबोचा तो लंबे अर्से तक अस्पताल पकड़े रहा। यहीं मिलीं लतिकाजी, अस्पताली परिचारिका के रूप में। उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ तो अस्पताल से निकल शादी ही कर ली। घर में पत्नी थी पद्मा, पर किसी और पर मन आया तो सिवा शादी के और किसी संबंध की कल्पना ही नहीं कर सकता था यह स्वाभिमानी कलाकार। उसका 'आंचल' यहां भी मैला नहीं हुआ। लतिकाजी के सिवा किसी और के साथ ऐसी-वैसी बात न किसी ने सुनी, न देखी। लतिका भी ऐसी कि पति-परायणता और सेवा-भावना का साक्षात उदाहरण ही बन गयी। रेणु के समान फक्कड़ पति की परिचर्या आसान नहीं थी। एक-एक बजे, दो-दो बजे रात तक वह डोलता रहता इस कवि-सम्मेलन में तो उस नुक्कड़-गोष्ठी में और रिक्शा लिये खाक छानती रहतीं लतिकाजी पटने की सड़कों और गलियों की, पता नहीं कब कहां भंग की तरंग में पड़े हों पतिदेव!

हां, भिन्न था रेणु अपने समकालीन

दोस्तों का जमघट—घर कभी खाली रहा नहीं !

लेखक-बंधुओं से कई अर्थों में। नहीं माना उसने कभी साहित्यकार को मात्र एक निरीह प्राणी। नहीं कबूल की उसने कभी भी कोई सीमा। नहीं समझा किसी जमीन को अपरिचित। जब कभी समाजसेवा ने पुकारा, वह पिल पड़ा शोषितों और दलितों के त्राण में।

जब कभी राजनीति में कोई नयी लहर जगी, उसने अपने साथ पाया रेणु को। १९७२ में तो विधानसभा के लिए भी वह खड़ा हो गया। भले ही हार गया, पर चस्का नहीं गया राजनीति का। १९७४ के जे. पी. आंदोलन के तो प्राण ही रहा वह।
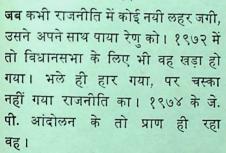
गत वर्ष जब गंगा और सोणभद्र के उमड़ते पानी ने पटना की गलियों में एक सप्ताह तक डेरा डाल जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया, लोगों के चूल्हे-चौके से अनाज तो अनाज, उनके बूढ़े-बच्चों के शरीर से प्राण तक चुन लिये, तब फूट पड़ी थी पानी की अनवरत धारा उस कलाकार की आंखों से भी। 'दिनमान' में लगातार प्रकाशित हुई थी इसकी बाढ़-डायरी कई सप्ताहों तक, जिसने कई सूखी आंखों को भी गीला कर दिया था।

१९४५ में आरंभ हुई थी रेणु की कथा-यात्रा, जब कलकत्ते के 'विश्वमित्र' में प्रकाशित हुई थी उसकी प्रथम कहानी—'बट बाबा'। आज मात्र बत्तीस वर्षों के पश्चात उसकी कथा-यात्रा परिवर्तित हो गयी शव-यात्रा में। इस बीच आयीं कई छोटी-बड़ी कहानियां, पर प्रमुख रही पांच पुस्तकें—'मैला आंचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जलूस' और 'कितने चौराहे'। चुनाव में हार के बाद एक संस्मरणात्मक पुस्तक आयी थी, 'कागज की नाव'।

जिस जे. पी. आंदोलन के लिए इतना खून-पसीना एक किया, उसी की सुखद परिणति के साथ ही उसकी जो आंखें मुंदीं तो मुंदी ही रह गयी। जो जीवन भर देश और राज्य की खुशहाली के सपने संजोये रहा, उसकी बंद आंखों में, पता नहीं, उन उन्नीस दिनों में, कौन सपने कैद रहे !

●

# वे हमेशा संघर्ष करते रहे!

• कन्हैयालाल नंदन

सुबह अखबार उठाकर मेरी बच्ची दौड़ी हुई कमरे में आयी। बोली, 'डैडी, रेणु अंकल की डेथ हो गयी' और मैं अवाक उसे कुछ उत्तर न दे सका।

अपरिहार्य हादसा था यह, जो घट गया था। २४ मार्च, ७७ से लेकर ११ अप्रैल, ७७ तक रेणुजी की १९ दिन की लगातार बेहोशी उनके साथ मन से जुड़े हुए लोगों को रोज-रोज व्यग्र से व्यग्रतर करती रही। उसकी अंतिम परिणति यह कि हिंदी अपने ढंग के एक बेजोड़ कथाकार से हीन हो गयी। यों 'अपने ढंग के बेजोड़ कथाकार' एक चलताऊ फिकरा हो सकता है, लेकिन रेणुजी के संदर्भ में वह इतनी बड़ी असलियत है कि उसे झुठलाना किसी के वश की बात नहीं। उनके बेजोड़ होने के एक नहीं, अनेक कारण थे। उन्होंने अपने पहले ही उपन्यास 'मैला आंचल' की शैली से आंचलिक उपन्यासों की एक नयी धारा को जन्म दिया और शहरियों को उस उपेक्षित अंचल की संवेदनाओं, जीवन-स्पंदनों से परिचित कराया, जहां 'जयप्रकाश जिंदाबाद' की जगह 'जय-परगास जिंदाबाघ' और 'रजिन्नर बाबी की जै' बोली जाती है; शब्द से अधिक जहां भावना बड़ी होती है, जहां मंच पर नौटंकी नहीं, खेला होता है।

यही खेला ही तो है जो 'तीसरी कसम', अर्थात 'मारे गये गुलफाम' कहानी और फिल्म का केंद्र-बिंदु बनकर हीरामन और हीराबाई के जरिये आम दर्शक और श्रोता का दुख-दर्द बनता है।

यादों के पन्नों में टटोलता हूं तो मुझे लूकरगंज, इलाहाबाद का एक उजाड़-सा बंगला याद आता है, जहां मुझे मेरे सहपाठी ज्ञानरंजन ले गये थे। ठीक दो-पहर का समय, गरमी के दिन। ज्ञान-रंजन ने दरवाजा खटकाया तो अंदर से आवाज आयी, 'लतिकाजी, देखिए कोई आया।' और लतिकाजी ने मुस-कराते हुए दरवाजा खोला। वह दरवाजा हमेशा मेरे लिए उसी आत्मीयता से खुला रहा।

कितनी बार उनके पास गया हूं— टूटे मन से, अधूरे मन से, पस्तहिम्मती से; और लौटा हूं एक ताकत लेकर। शायद उन्हें मुझमें एक संघर्षशील युवा की तसवीर दिखायी देती थी और वे मेरी

पस्तहिम्मती में दस-पांच-पंद्रह मिनट की बातों से ऐसी शक्ति का संचार कर देते थे कि मैंने उनका घर अपनी शक्ति का एक स्टोररूम मान लिया था। जब भी 'लीडर प्रेस' की गलियों में झांकना हो, तो लूकरगंज में ज्ञानरंजन का घर और रेणुजी का वह उजाड़ बंगला, जिसमें आत्मीयता का भरापूरा एक समूचा संसार था, मेरे लिए इलाहाबादी काबा बन गये थे।

फिर मैं बंबई पहुंच गया। उनके बंबई-प्रवास के दिनों में मेरी मुलाकातों का सिलसिला बढ़ता रहा। शैलेन्द्र और

'कागज से लिखी जिंदगी ही बच रह जाएगी, दोस्त।'

रेणुजी जब एक दिन मेरे घर आये तब मैं बाहर निकलूं, इसके पहले ही मेरी बिटिया उनसे भेंटा गयी। उसे रेणुजी का जो प्यार मिला था, वह उस दिन रेणुजी के निधन की खबर से किस तरह आहत हुई, यह देखकर मैं बस अवाक ही रह गया था।

मुझे याद नहीं पड़ता कि संघर्षों का इतना लंबा सिलसिला और किसी साहित्यकार ने जिया हो। सन ४२ के स्वातंत्र्य-संग्राम में सक्रिय हिस्सा लिया, फिर नेपाल की राणाशाही के खिलाफ लड़े, फिर लंबी बीमारी से लड़े। साहित्य-सृजन में लगे तो 'मैला आंचल' के बाद 'परती परिकथा' लिखी, 'ठुमरी', 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'आदिमरात की महक', 'अग्नि-खोर' . . . प्रकाशित हुईं। 'जुलूस' छपकर आने पर जब उन्होंने मेरे गोरे-गांववाले घर पर शैलेन्द्रजी के साथ प्यार से मुझे थमाया तब बोले, "तुम्हें इसमें बतायी कुछ घटनाएं साफ नजर आ जाएंगी, इसीलिए यह प्रति तुम्हें दे रहा हूं।" 'जुलूस' की वह प्रति मेरे लिए कई गुना कीमती हो गयी थी।

संघर्ष की महिमा में अनेक बार पढ़ा था कि संघर्ष ही जीवन है, संघर्ष की समाप्ति ही जीवन का अंतिम छोर है। रेणुजी की जीवनयात्रा उसका साक्षात उदाहरण बनकर सामने आयी। काश कि हम उनके जीवन से संघर्षों के प्रति गहन आस्था का एक नया सबक सीख सकें! ●

कहानी

# आदिकाल

● सतीश जायसवाल

पहाड़ी रास्ते पर रात भर का सफर तय करके जब सुबह-सुबह प्रमोदिनी दंतेवाड़ा पहुंची तब उसे लग रहा था कि बदन का हर जोड़ ढीला होकर पेंच से खुल जाएगा और फोल्डिंग फर्नीचर की तरह उसके हाथ-पैर सब अलग-अलग निकल आयेंगे। सिर भी बुरी तरह भन्ना रहा था।

एक तो वैसे ही उसको बस में नींद नहीं आती, उस पर दाढ़ी-पगड़ीवाले सरदारजी का पड़ोस हो गया था। जरा-सी झपकी लगती नहीं कि मन में खटका-सा हो जाता कि बगल में बैठा हुआ आदमी न मालूम क्या कर जाए। नींद हराम हो जाती। सरदारजी की आंखें तमाम रात सोने के कमरे में जलनेवाले जुगनू-बल्ब की तरह जलती हुई उजाला करती रहीं और प्रमोदिनी के लिए निद्रा-निषेध का सूचना-फलक-सा जगमगाता रहा। बस-अड्डे पर यशवर्द्धन को देखकर उसकी जान में जान आयी और खुद को बचाकर सुरक्षित ले आने का पूर्ण संतोष उसने गहरी सांस के साथ अपने भीतर खींचा। फिर उसने यश से कहा, "एक कप अच्छी-सी चाय और थोड़ी-सी निर्विघ्न नींद मिल जाए डी. ओ. साहब, तो सचमुच मजा आ जाए।"

सामान उतरवाते हुए यश हंस पड़ा, "पहले घर तो चलो मैडम, दोनों चीजें मिलेंगी, भरपूर।"

यश ने अपने हाथों चाय बनायी। तब तक प्रमोदिनी बिस्तर पर लेटकर बदन सीधा करती रही। चाय इतनी अच्छी बनी थी कि तबियत तरो-ताजा हो गयी और उसे कहना पड़ा, "वाह, तुम तो क्या बढ़िया चाय बनाने लग गये!"

रेडियो-सीलोन की विज्ञापन-शैली में यश ने कहा, "मैं सिर्फ लिपटन की येलो लेबल चाय इस्तेमाल करता हूं।"

यश की उस विनोद-मुद्रा पर प्रमोदिनी के पेट में बल पड़ने लगे, "अब बस करो जी, मेरे तो हंसते-हंसते दर्द होने लगा।"

अच्छी चाय के बाद अब थोड़ी-सी निर्विघ्न नींद के लिए प्रमोदिनी व्यवस्था कर रही थी कि तभी दरवाजा खोलकर शिवा भीतर आयी थी। उसको देखकर प्रमोदिनी हैरत में पड़ गयी। सर्दी के मारे तो दरवाजे-खिड़कियों के भीतर बंद कमरा जमा जा रहा था और शीशों पर इतनी गहरी धुंध थी कि बाहर सफेद
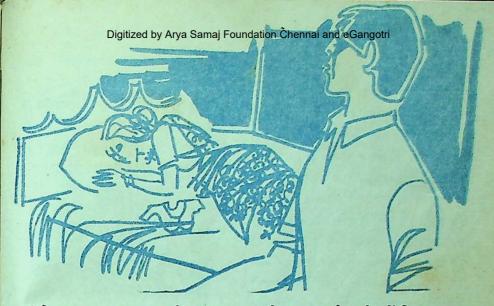
धुएं के अलावा कुछ नजर नहीं आ रहा था। यहां गरम कपड़ों के भीतर भी रह-रहकर बदन कंपकपा उठता और इस भीषण सर्दी में शिवा कुल डेढ़-दो हाथ भर चौड़ी पट्टी की तरह दुहरा लुगड़ा लपेटकर काम पर आयी थी। थोड़ी देर तक तो प्रमोदिनी इसी हैरत में भरकर उसे ताकती रही, फिर अपने-आप उसकी दृष्टि शिवा की अनावृत छाती पर स्थिर हो गयी। उन पुष्ट गोलार्द्धों को देखकर तो थोड़ी देर के लिए उसके मन में एक अद्‌भुत-सी पौरुषेय आकांक्षा भी उपजी कि एक बार इन प्रस्तर-पिंडों की कठोरता को अपने हाथों से छूकर भी तो देख लो। फिर जब उसका ध्यान अपनी ओर लौटा तब 'मेडनफार्म-ब्रा' का सुरक्षा-आधार निरर्थक लगने लगा।

प्रमोदिनी की ललचायी हुई लाचार दृष्टि इतनी भेदक थी कि शिवा को लगने लगा, उसके शरीर में छिद्र बनाकर भीतर घुस जाएगी। उसे शर्म-सी आने लगी और उसने दोनों हाथों का घेरा बनाकर, जितना बन सका, खुला बदन ढांकने का यत्न किया। फिर जब कुछ नहीं सूझा तब भीतर चौके में भाग गयी। प्रमोदिनी हंस पड़ी, "अच्छा, तो यही है तुम्हारी वह टॉपलेस-ब्यूटी जिससे तुम्हारा काम चल रहा था!"

क्या मालूम, यह बात प्रमोदिनी ने प्रमोद में कही या प्रमाद में? लेकिन यश को जरूर इससे उलझन हुई कि कैसे एक औरत दूसरी औरत को लेकर इस ढंग से सोच सकती है!

जब प्रमोदिनी को उसके माता-पिता के घर छोड़कर यश यहां ड्यूटी-ज्वाइन करने आया था तब बस्तर के संबंध में दोनों के मन में अद्‌भुत कल्पना-चित्र थे—बिना कपड़ोंवाली आदिवासी औरतें

और सींगों से सजावट करनेवाले आदमी। प्रमोदिनी को बराबर यही चिंता लगी रहती कि उस जंगल में मालूम नहीं यश कैसे रहता है, क्या खाता-पीता है! तब यश ने उसे निश्चिंत करने के लिए पत्र में लिख दिया था—'काम करनेवाली एक आदिवासी लड़की रख ली है। जब तक तुम आती हो, उसी से काम चलता रहेगा।'

उधर प्रमोदिनी की हितैषी मित्र-मंडली की अपनी सुझाव-औषध भी बराबर चल रही थी—'बस्तर-जैसे जंगल में आदमी को अकेला छोड़कर तू यहां इतनी निश्चिंत कैसे बैठी है री?'

उनके लिए बस्तर के माने दो ही बातें थीं, कच्ची शराब और पकी जामुन की तरह भरे-भरे बदनवाली आदिवासी लड़कियां—दोनों चीजें इफरातन। आखिर प्रमोदिनी को, एक तरह से अपनी ही जिद पर, दंतेवाड़ा आना पड़ा। यश तो चाहता था कि वह कुछ और ठहर जाती तो डी. ओ. को मिलनेवाला बंगला कब्जे में आ जाता और वह खुद जाकर उसे लिवा लाता, लेकिन प्रमोदिनी ने साफ-साफ लिख दिया—'उस जंगल में मुझे किसी महल की कल्पना नहीं। अब जो, जैसा मिल गया है उसमें गुजारा कर लेंगे। मैं आ रही हूं।'

उस सुबह वहां बिन कहे-सुने भी बहुत सारी बातें हो गयीं और अपने-आप अनेक मर्यादाएं भी निर्धारित हो गयीं। शायद जब घर के भीतर जनान-घर का

निर्माण होता है तब घर का मर्द बुरी तरह दुतकारा हुआ बाहरी आदमी नजर आने लगता है। ऐसा ही कुछ यश के साथ हो गया। चुप बैठकर देखते रहने के अलावा वह कुछ भी कर सकने की स्थिति में नहीं रह गया। थोड़ी देर के लिए प्रमोदिनी को निर्विघ्न नींद का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा और चौके में जाकर शिवा को घर के कायदे-परदे के विषय में विस्तार-पूर्वक समझाना जरूरी हो गया। अपनी पेटी खोलकर उसने कुछ पुराना-सा पड़ गया ब्लाउज निकाला और जाकर शिवा को पहना आयी। तब जाकर कहीं उसका पहला आवश्यक काम पूरा हुआ। और उसे लगा कि अब थोड़ी देर के लिए नींद

ले सकती है। बाकी, उठने के बाद फिर धीरे-धीरे सब व्यवस्थित कर लेगी। यश ने खिड़कियों पर परदे खींच दिये और आकर प्रमोदिनी की बगल में लेट गया। लेकिन बदन पर हाथ रखते ही प्रमोदिनी ने उसे दुतकार दिया, 'नहीं, कम से कम दिन और रात का फर्क तो करो, यश।'

यश ने पूरे कमरे में नजर घुमाकर देखा, वहां परदा खींच देने से रात–जैसी पूर्ण एकांतिकता निर्मित हो चुकी थी। प्रमोदिनी चाहती तो उसका मन रखने के लिए ही उसकी बात मान सकती थी, लेकिन उसका व्यवहार इतना ठंडा और निर्लिप्त था कि यश के मन में कुछ और कहने के लिए कोई आग्रह नहीं हुआ। उसने बगल में लेटी हुई अपनी पत्नी के शरीर को किसी गैर-औरत के शरीर की तरह देखा। इस शरीर को देखकर यश को एक अजीब-सी कल्पना हुई कि यह शरीर इसी तरह कपड़ों में लिपटा हुआ जनमा होगा। इसके साथ मन-मन वह यह भी हिसाब लगा रहा था कि इसके आसरे इस वस्तर में रहते हुए कितने अकेले दिन वह सफलतापूर्वक गुजार गया।

मालकिन नाम की एक औरत के घर में आते ही इतनी सारी बदलावटें आ गयीं कि वह आदिवासी लड़की शिवा एक थका देनेवाली असहजता के सिवा कुछ भी आग्रह नहीं कर सकी। लेकिन एक बात वह अच्छी तरह समझ चुकी थी कि इस घर में दो औरतों की समाई नहीं हो सकती। बड़ी देर तक तो वह हाथ में झाड़ू लिये कमरे के बाहर खड़ी रही कि भीतर जाए अथवा नहीं! इसके पहले उसने ऐसा असमंजस महसूस नहीं किया था। साहब सोते रहते थे या फाइलों पर लिखते रहते थे और वह कमरे में बेझिझक भीतर घुसकर झाड़-बुहारकर आती थी। आखिर बड़ी हिम्मत करके वह भीतर घुसी और दोहरी होकर झाड़ू

लगाने लगी।

प्रमोदिनी का ब्लाउज उसे छोटा पड़ रहा था। कसा-कसा ब्लाउज पहन लेने से वह एकदम बदली हुई दीख रही थी। अपने इस बदलेपन को वह भी महसूस कर रही थी, अटपटा-अटपटा-सा कुछ। लेकिन अपने पर पड़नेवाली यश की दृष्टि की तीक्ष्णता उसे काटने लगी। सामने झुक आने से प्रमोदिनी के पुराने ब्लाउज के कमजोर हुकों पर कसाव और दबाव बढ़ गया था। गहरी नीचाई तक कटे हुए ब्लाउज के गले में से होकर यश की दृष्टि ठोस स्पर्श की तरह उस दर्रे-जैसे बन गये अनावरण में प्रवेश करने लगी। शिवा को ऐसा लगा जैसे अभी-अभी थोड़ी देर पहले मालकिन ने जो ब्लाउज अपने हाथों से उसको पहनाया था, एकबारगी खुला पड़ रहा है।

यश के भीतर एक विद्रोह-सा उमड़ने लगा। उसने चाहा कि शिवा अपने सहज, उन्मुक्त रूप में ही रहे तो कितना अच्छा हो, फिर उसके सामने एक अजब उलझन हुई कि इतने दिन हुए, इस बात की तरफ उसका ध्यान ही नहीं गया था कि उसके यहां काम करनेवाली कैसी दीखती है, क्या पहनती है। अब उसने गौर से उसे देखा, वह अच्छी दीख रही थी।

लेकिन अच्छे की यह प्रतीति सहज नहीं थी। अब तक जिसे खुले में देखते रहने का उसे अभ्यास हो गया था, उस पर सहसा परदा पड़ते ही कहीं, कुछ दूषित होने लगा। यश को लगा कि यह प्रदूषण उसे तेजी से चरित्रहीन कर रहा है। दुत्कारे हुए उस आदमी ने सहारे के लिए, बगल में लेटी हुई, अपनी पत्नी के शरीर की तरफ देखा। लेकिन वह अभी थोड़ी देर पहले ही उसको दिन और रात में फर्क करने का उपदेश देकर निश्चिंत पड़ गयी थी। उसने अपने मन को समझाया—'इस, दिन और रात के फर्क को तो तोड़ा भी जा सकता है।'

अपने बगल में पड़े हुए उस शरीर को देखकर उसे फिर से लगा कि जैसे यह इसी तरह कपड़ों में लिपटे हुए जनमा होगा। एकाएक उस पर गुस्सा हावी होने लगा। दरअसल उसकी जरूरत किसी जंगली जानवर की तरह जागने लगी थी और अंगड़ाई लेकर, बदन तोड़कर आलस्य दूर कर रही थी। लेकिन यह सब इतना अनियंत्रित था कि वह कुछ-कुछ डरने भी लगा। इस डर को वह एक बनावटी गुस्से या कि झूठे विद्रोह की आड़ में छिपाकर रखने की कोशिश में जुटा हुआ था। लेकिन सच यह है कि उसकी जरूरत उस पर भारी पड़ रही थी और बराबर उसे दबोचे जा रही थी। थोड़ी देर तक तो वह दुबका पड़ा रहा, फिर दग्ध होने लगा। और उसकी आंखें, तमाम रात सोने के कमरे में जलनेवाले बल्ब की तरह उजाला करने लगीं।

यह उजाला शिवा के शरीर को बेधने लगा। और यह दृष्टि-बेध ठीक

प्रमोदिनी की उस ललचायी हुई दृष्टि की तरह था जिससे शिवा को लगने लगा कि उसके शरीर में छिद्र बनाकर भीतर घुस जाएगी। वह घबरा गयी और एका-एक किसी अनिष्ट आशंका से कांप उठी।

किसी घोर अरण्य की तरह भय शिवा के भीतर व्यापक होने लगा और वह असुरक्षित पड़ने लगी। ऐसे में उसके मन ने भागना शुरू किया। लेकिन आत्म-रक्षा के लिए दौड़ता हुआ उसका मन आबादी की दिशा के एकदम विपरीत जंगलों की तरफ ही दौड़ लगा रहा था। डंकिनी नदी की परली तरफ को, जिधर साल और सागौन और पलाश और महुआ के पहरे लगे हुए हैं। हाथ की झाड़ू को वहीं कमरे में पटककर शिवा बाहर भागी, कमरे से चौके की तरफ। इतने थोड़े-से फासले में पता नहीं कितनी लंबी दूरी का बोध था कि शिवा थक गयी और उसकी सांस चलने लगी। वह पसीने से भीग चुकी थी। चौके की सुरक्षित आड़ में पहुंचते ही उसने मालकिन का पहनाया हुआ ब्लाउज उतारकर फेंक दिया।

इसके साथ ही उसे एक विचित्र-सी अनुभूति हुई, जैसे उसने अपने-आप को किसी भारी अनिष्ट से सुरक्षित बचा लिया। उसने लुगड़ा का एक फेरा खोल-कर चेहरे और छाती पर से पसीना पोंछा और थोड़ी देर तक वहीं फर्श पर दीवार के सहारे टिककर अपनी सांसों को साधती रही। वह अच्छी तरह से समझ चुकी थी और इस बार निर्णय ले चुकी थी कि इस घर में दो औरतों की समाई नहीं हो सकती। वह आड़ से बाहर निकल आयी। फिर उसने कमरा पार किया और बाहर आयी। तब उसने घर की बाहरी सीढ़ी भी पार की और रोजाना की तरह अहाते का दरवाजा बंद करके सड़क पर निकल गयी। लेकिन उसका यह जाना रोजाना की तरह नहीं था, क्योंकि अब इस घर में उसके लिए समाई नहीं थी।

उसने यश से छुट्टी नहीं मांगी या फिर भी वह समझ रहा था कि अब शिवा काम पर नहीं आयेगी। वह कमरे से निकल-कर बरामदे में आ गया था और उसने यह भी देख लिया था कि प्रमोदिनी का पहनाया हुआ कपड़ा, जाते-जाते, शिवा उतार गयी है। यश को यह अच्छा लगा था, क्योंकि जाती हुई वह आदिवासी लड़की सहज और उन्मुक्त दीख रही थी।

यश ने चौके में जाकर फर्श पर पड़ा हुआ प्रमोदिनी का वह ब्लाउज उठा लिया और लाकर प्रमोदिनी के बिस्तर पर इस तरह रख दिया कि आंख खुलते ही उसकी नजर में आ जाए। लेकिन पता नहीं प्रमो-दिनी कब से जाग रही थी और यह सब अपनी आंखों से देख रही थी। उसने आधी मुंदी आंखों से बिस्तर पर पड़े हुए ब्लाउज को देखा, फिर करवट बदल-कर निश्चिंत सो गयी। अब उसके लिए कोई विघ्न वहां नहीं था।

—जूनी लाइंस, बिलासपुर (म. प्र.)

**राजमोहन खन्ना, लखनऊ: एक वैज्ञानिक उपन्यास में पढ़ा कि मनुष्यों और भौतिक चीजों को ठोस चीजों (दीवार, पहाड़ आदि) से इस प्रकार गुजारा जा सकता है कि ठोस चीजें उनके गुजरने पर भी ज्यों की त्यों रहें। क्या यह संभव है? यदि हां, तो कैसे?**

विज्ञान की दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं, लेकिन ऐसा अभी तक हो नहीं पाया है। सैद्धांतिक रूप से न्यूट्रिनो (Newtrinas) नामक कणों के आधार पर इस संभावना की कल्पना की जा सकती है। न्यूट्रिनो कण अदृश्य, आवेश-रहित (Neutral) और इतने हलके होते हैं कि इनमें मात्रा और भार लगभग नहीं के बराबर होता है। ये कभी स्थिर नहीं रह सकते और प्रकाश की-सी तीव्र गति से सदा चलते रहते हैं। इसीलिए इन्हें पकड़ पाना बहुत मुश्किल होता है और इनका पता प्रायः इनकी अनुपस्थिति से चलता है। हाल ही में वैज्ञानिकों ने जेनेवा में एक प्रयोग करके देखा कि यदि न्यूट्रिनो कणों को जूरा पर्वत की ओर निर्देशित कर दिया जाए तो वे पर्वत को पार करके दूसरी तरफ बाह्य अंतरिक्ष में विलीन हो जाते हैं। इस आधार पर उनकी मान्यता है कि यदि इन कणों को पृथ्वी के केंद्र की ओर निर्देशित कर दिया जाए तो उनमें से ९९ प्रतिशत पृथ्वी के आर-पार निकल जाएंगे। आपके द्वारा पठित उपन्यास में शायद इसी आधार पर यह कल्पना की गयी होगी कि भौतिक वस्तुओं को न्यूट्रिनो कणों में परिवर्तित करके उन्हें दीवारों या पहाड़ों से गुजार दिया जाए और उस पर पहुंचने पर उन कणों को पुनः भौतिक वस्तुओं में परिवर्तित कर लिया जाए। लेकिन पदार्थ का इस प्रकार दो-दो बार इतना सूक्ष्म रूपांतरण कर पाना फिलहाल तो असंभव ही है।

**विनोद पुरी रंजू, लुधियाना: रासायनिक लेसर किरणें क्या हैं?**

पहले लेसर किरणें केवल विद्युत-शक्ति से प्राप्त की जाती थीं जिसके लिए विपुल विद्युत-शक्ति का उत्पादन करना पड़ता था, लेकिन अब हाइड्रोजन और फ्लोरीन–जैसी गैसों के मिश्रण से भी लेसर किरणें पैदा की जा सकती हैं। इस प्रकार उत्पन्न की जानेवाली किरणों को रासायनिक लेसर कहा जाता है। ये किरणें इतनी प्रचंड और विनाशक होती हैं कि एक सेकंड के २० अरबवें हिस्से में २०० अरब वाट के स्पंदन पैदा

कर सकती हैं और इतने कम समय में ही धातु को भाप बनाकर उड़ा सकती हैं।

**सुनंदा रोहतगी, कानपुर : एल्डोराडो** (Eldorado) **नामक स्थान, जहां सर वाल्टर रैले सोना खोजने गये थे, कहां पर है?**

यद्यपि एल्डोराडो नामक दो नगर अमरीका में हैं, एक केन्सास में तथा दूसरा आर्केन्सास में, लेकिन वाल्टर रैले से इनका कोई संबंध नहीं है। वाल्टर रैले (१५५२-१६१८) इंगलैंड की रानी एलिजाबेथ का दरबारी, लेखक और साहसिक व्यक्ति था। जेम्स प्रथम के राज्यारोहण के बाद उसे देशद्रोह के अपराध में मृत्युदंड दिया गया, लेकिन बाद में उसकी सजा बदलकर उसे लंदन के टावर में बंद कर दिया गया, जहां उसने लगभग १२ वर्ष रहकर 'विश्व का इतिहास' लिखा। वहां से निकलने के लिए उसने एक बहाना बनाया कि आरिनोको नदी के किनारे एल्डोराडो में सोने की खान है और वह वहां से अपार सोना खोजकर ला सकता है, लेकिन वास्तव में ऐसा कोई स्थान नहीं था। रैले उस यात्रा में स्पेनवासियों से लड़कर खाली हाथ लौटा और लौटने पर उसे फांसी दे दी गयी। तबसे एल्डोराडो या 'सोने का देश' एक मुहावरा बन गया जिसका संबंध कल्पना के आधार पर किये जानेवाले निष्फल प्रयत्न से है।

**मोहम्मद शमीम, ग्वालियर : बागवानी में दोहरी खुदाई** (double digging) **कैसे की जाती है? कृपया विस्तार से समझायें।**

दोहरी खुदाई के लिए जमीन को दो लंबे आयताकार हिस्सों में बांट लिया जाता है। इसके बाद दोनों हिस्सों में दो-दो फुट चौड़ी और एक फुट गहरी खाइयां खोदी जाती हैं। दिये गये चित्र के अनुसार खुदाई का तरीका यह है कि पहली खाई खोदकर उसकी मिट्टी को प्लाट से बाहर डाल दिया जाता है, फिर दूसरी खाई खोदकर उसकी मिट्टी को पहली खाई में और तीसरी खाई खोदकर उसकी मिट्टी को दूसरी में डालते हुए क्रमशः सारी खाइयां खोदते-भरते चले जाते हैं। अंतिम खाई में पहली खाई से निकली हुई मिट्टी को भर दिया जाता है।
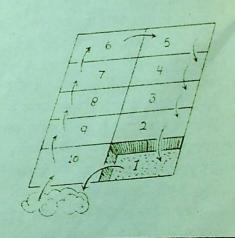
**राजकुमार जैन, बीकानेर ( राजस्थान) : कलाकार की सृजन-प्रक्रिया की वैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है ?**

की ही नहीं जा सकती, अपितु अनेक मनोविज्ञानियों, प्राणिविज्ञानियों, मानवविज्ञानियों, समाजविज्ञानियों तथा सौंदर्यशास्त्रियों ने सृजन-प्रक्रिया की वैज्ञानिक व्याख्याएं की हैं। ये समस्त व्याख्याएं इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि सृजन-प्रक्रिया कोई दैवी चमत्कार नहीं है। सृजन की क्षमता प्रत्येक मनुष्य में होती है, जैसे कि मस्तिष्क प्रत्येक मनुष्य में होता है। जिस प्रकार बौद्धिक क्षमता या उसका विकास मस्तिष्क के आकार पर नहीं, बल्कि मनुष्य के वातावरण, शिक्षा और सीखने की प्रक्रिया आदि पर निर्भर होता है, उसी प्रकार सृजन-क्षमता भी उक्त कारणों से विकसित या अवरुद्ध हो सकती है। मूर्ख कालिदास के कवि बन जाने की कथा सृजन-क्षमता के इसी विकास का उदाहरण है ।

**अरुण प्रदीप, धामपुर (उ. प्र.) : किसी विद्यार्थी को दो विषयों में २०० और ३०० पूर्णांकों में से क्रमशः ५५ और ६५ प्रतिशत अंक प्राप्त होने पर माध्य के नियम के अनुसार उसके कुल महायोग का प्रतिशत ६० होना चाहिए, लेकिन वास्तव में यह ६१ प्रतिशत है। यह एक प्रतिशत अंकवृद्धि क्यों ? गलती कहां है ?**

आप औसत और परिशुद्ध गणना का अंतर नहीं समझ रहे हैं। यदि आप उस विद्यार्थी के अंकों का प्रतिशत परिशुद्ध (Accurate) रूप में प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको उसके दोनों विषयों में प्राप्त वास्तविक अंकों ११० और १९५ के योग को १०० से गुणा करके कुल ५०० पूर्णांकों से विभाजित करना होगा (११०+१९५×१००/५००) जो इस प्रकार ६१ प्रतिशत ही होगा। लेकिन जब आप उसके औसत (Average) प्रतिशत अंक जानना चाहेंगे तब आपको दोनों प्रतिशतों के योग को केवल २ से विभाजित करना होगा (५५+६५/२) जो इस प्रकार केवल ६० प्रतिशत होगा।

**कुमार रुद्र, प्रतापगढ़ (उ. प्र.) : क्या परदे पर चलती हुई फिल्म को हम हाल में बैठकर फ्लैश की सहायता से कैमरे में उतार सकते हैं ?**

यदि आपके पास बढ़िया 'मूवी कैमरा' है तो आप हाल में चलती फिल्म को उतार सकते हैं, मगर फ्लैश या किसी प्रकार के प्रकाश की सहायता से नहीं, अंधेरे में ही; क्योंकि परदे पर चलती-फिरती छायाएं अंधेरे में ही दिखायी देती हैं। हाल में तेज रोशनी होते ही वे अदृश्य हो जाएंगी।

## चलते-चलते एक प्रश्न और...

**कुमारी क. ख. ग. : सौभाग्य और दुर्भाग्य में क्या अंतर है ?**

किसी सौभाग्यवती को उसके पति के साथ देखिए।

—बिंदु भास्कर

• हेलन

# प्रेमिका का खत गलत लिफाफे में
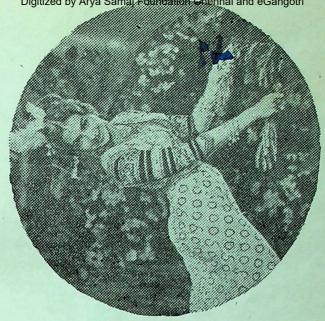
मेरी जिंदगी—तुम्हारा सुडौल और भरा बदन, तुम्हारी हिरनी-सी आंखें, नागिन-सी लहराती जुल्फें, सलोना मुखड़ा, रसभरे अधर, दिल पर बिजली गिरानेवाली मुसकान—सब कुछ याद है मुझे। तुम्हारी बलखाती चाल, दिल को मदहोश बना देनेवाला नाचने का अंदाज, भला कैसे भूल सकता हूं! आज तुम मुझसे दूर हो, इतनी दूर कि सारी जिंदगी चलकर भी मैं तुम तक नहीं पहुंच सकता। लेकिन एक दिन वह भी था, शायद तुम्हें याद हो, जब तुम मेरे इतने करीब थीं कि...जाने दो, वक्त के साथ सारी दास्तान खत्म हो गयी। अब उसे याद करने से क्या फायदा! आज तुम्हारे पास सब कुछ है, लेकिन मेरे पास कुछ भी नहीं, क्योंकि मेरी तो सब कुछ

तुम ही थीं ! तुम सोच रही होगी, मैं कोई पागल हूं । किसी हद तक तुम्हारा ऐसा सोचना शायद ठीक भी है । तुमसे अलग होकर भला मैं और बन भी क्या सकता हूं ! इसी पागलपन में ही मैं यह खत तुम्हें लिख रहा हूं । पता नहीं, तुम तक पहुंचेगा भी या नहीं, और यदि पहुंच भी गया तो क्या फायदा ! फिर भी लिख दिया है—क्यों ? यह नहीं मालूम !

तुम्हारा—

जिसे तुम अपना नहीं सकतीं ।

खत पढ़कर खत्म किया तो ऐसा महसूस हुआ कि जैसे लिखनेवाला नहीं, बल्कि स्वयं मैं पागल हूं । जो कुछ पढ़ा, समझ में नहीं आया, इसलिए एक ही सांस में फिर पढ़ गया सारा खत । फिर भी उलझन नहीं सुलझी । मुझे यकीन नहीं हुआ कि वह खत किसी ने मेरे ही नाम लिखा था । लेकिन लिफाफा उलट कर देखा तो साफ-साफ मेरा ही नाम और पता लिखा था । यह एक अजीब पहेली थी । गुजरी जिंदगी में किसी भी व्यक्ति के साथ मेरा इस तरह का ऐसा कोई संबंध नहीं था, जो मुझे ऐसा खत लिखता । मैंने लाख सोचा, लेकिन समझ में नहीं आया । प्रशंसकों के प्यार-मोहब्बत के खत तो आये दिन आते ही रहते हैं, लेकिन यह खत सबसे निराला था ।

जब कुछ समझ में नहीं आया, तब मैंने खत बंद किया और शूटिंग पर चली गयी, लेकिन वहां भी उस खत की बातें बार-बार मुझे याद आती रहीं । कभी उस आदमी पर मुझे हंसी आती तो कभी गुस्सा, जिसने वह खत लिखकर मुझे ख्वाहमख्वाह उलझन में डाल दिया था ।

दिन बीते और उसके साथ-साथ खत की याद भी मैं करीब-करीब भूल गयी थी कि एक दिन मुझे एक ऐसा खत मिला जिसने बरबस ही मुझे उस खत की याद दिला दी । लेकिन उसे पढ़ते ही मेरी सारी उलझन दूर हो गयी । दूसरा खत उसी व्यक्ति का था, जिसमें उसने मुझसे माफी मांगते हुए लिखा था कि भूल से वह खत जो उसने अपनी माशूका को लिखा था मेरे यहां चला आया था ।

अपनी उस भूल के कारण को स्पष्ट करते हुए उसने लिखा था कि दो खत उसने साथ-साथ लिखे थे—एक मुझे और दूसरा अपनी माशूका को । भूल से खत गलत लिफाफों में बंद हो गये थे । जो खत उसने मेरे नाम से लिखा था, उसमें फिल्म 'दिल और प्रीत परायी' में मेरे डांस की तारीफ करते हुए एक ऑटोग्राफ्ड फोटो मांगा था ।

**मेरी निर्भीकता की सजा**

बचपन में मुझे हाथियों के साथ खेलने का बहुत मौका मिलता था । बर्मा से हिंदुस्तान आते वक्त भी कई मील मैं हाथी पर बैठ कर आयी थी ।

हाथियों के साथ इस तरह काफी समय गुजार चुकने के कारण पिछले दिनों हाथियों के साथ एक फिल्म के कुछ दृश्यों

की शूटिंग के लिए जब मैं मैसूर गयी तब अपने को चारों तरफ से हाथियों से घिरा पाकर मुझे जरा भी घबराहट न हुई। एक ऐसा नृत्य-दृश्य फिल्माया जा रहा था जिसमें हाथियों के बीच नाचती हुई मैं एक गीत गाती हूं। मैं हाथियों से बिलकुल नहीं डरती थी, इसलिए कभी मैं किसी हाथी का पांव पकड़कर लिपट जाती थी, तो कभी किसी की सूंड़ पकड़कर उसे छेड़ देती थी। मेरी इस निर्भीकता के कारण वह दृश्य बड़ा ही स्वाभाविक बन रहा था कि तभी मैंने एक हाथी की सूंड़ ज्यों ही पकड़ी, पता नहीं उसे क्या सूझा कि उसने अगले ही पल मुझे अपनी सूंड़ में उठा लिया। मैं डर से चीख उठी। शूटिंग बंद हो गयी। सारी यूनिट के लोग उस हाथी के पास जब तक पहुंचे तब तक वह मुझे अपनी सूंड़ में फंसाकर काफी ऊपर उठा चुका था। मैं चीख रही थी और सारी यूनिट के लोग स्तब्ध खड़े मुझे बचाने का उपाय सोच रहे थे। मेरी चीख अपने आप धीमी पड़ती गयी और मैं बेहोश हो गयी।

कुछ देर बाद जब होश आया तब मैंने अपने को बिस्तर पर पाया। यूनिट के सभी लोग मेरे आस-पास खड़े थे। बाद में लोगों ने बताया कि थोड़ी देर तक वह हाथी उसी तरह सूंड़ ऊपर उठाये खड़ा रहा, फिर उसे न जाने क्या सूझी कि उसने मुझे धीरे से जमीन पर लुढ़का दिया और तेज आवाज करता हुआ भाग निकला।

उसने मेरी जान बख्श दी, इसीलिए आज मैं भी हाथी को सीधा समझदार जानवर कहती हूं।

**मुझे भूतनी समझ लिया था!**

यदि आपने 'बेवकूफ' फिल्म देखी है तो आप वह दृश्य नहीं भूले होंगे, जिसमें एक हब्शी लड़की के मेकअप में मैं नाचती हूं। रात में करीब दो बजे उस डांस की शूटिंग खत्म हुई। मेकअप छुड़ाने में काफी वक्त लगता, इसलिए यह निश्चय कर कि घर पहुंचकर चेहरा साफ करूंगी, मैं गाड़ी में बैठ गयी। घर पहुंचने के बाद दरवाजा खोलते ही नौकरानी की नजर ज्यों ही मुझ पर पड़ी, वह जोरों से चीख पड़ी।

अंदर पहुंचकर उसे बुलाकर मैंने कारण पूछना चाहा कि कमरे में लगे बड़े शीशे में अपनी शक्ल दिखायी पड़ी और सारी बात मेरी समझ में आ गयी। उतनी रात में मेरी वह हुलिया देख कोई भी डर सकता था। नौकरानी के चीखने का भी यही कारण था। बाद में उसने बताया कि उतनी रात में मेरे बिलकुल काले चेहरे को देखकर उसने मुझे कोई भूतनी समझ लिया था।

आज मैं पीछे मुड़कर देखती हूं कि हब्शी ही नहीं, मैंने क्या-क्या बनकर नृत्य नहीं किया! मोरनी के पंख लगाये, आदिवासियों की कोई पोशाक नहीं बची जो मैंने न पहनी हो, लेकिन फिर भी माशूका को लिखा प्रेमी का पत्र और हाथी मेरा साथी बहुत याद आता है!

**—प्रस्तोता : बद्रीप्रसाद जोशी**

# उन्होंने जीवन में महाप्रकाश को समोहित किया

• राममोहन पाठक
• शशिधर इस्सर

'बाबा' का प्रथम दर्शन दो वर्ष पूर्व हमने मां आनंदमयी आश्रम में किया था। उनके चेहरे पर असीम तेज था। शांत मुद्रा में बैठे वे देवतुल्य लग रहे थे। पाल ब्रंटन की पुस्तक 'ए सर्च इन सीक्रेट इंडिया' में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजजी का उल्लेख था, पर हमने उनका दर्शन नहीं किया था। अतः हम दर्शन करने गये थे। वे कभी-कभी ही धीमी-सी आवाज में एकाध वाक्य बोलते थे। वृद्धावस्था और रुग्णता के कारण शरीर जर्जर हो चुका था। फिर भी, आश्रमवासी बताते थे कि वे हर रात महानिशा में बिलकुल चैतन्य होकर साधना में रत हो जाते थे। प्रायः लोग कविराजजी को तांत्रिक बताते हैं, पर तांत्रिक की अपेक्षा वे तंत्र-साहित्य के विद्वान अधिक थे। जीवन के लगभग ५०–६० वर्षों में उन्होंने जो साधना की, उसका मुख्य उद्देश्य विश्व को महाप्रकाश का आभास कराना था।

८९ वर्ष की अवस्था में गत १२ जून, '७५ को इस महामनीषी साधक का पार्थिव शरीर पंचतत्त्व में विलीन हो गया, पर उनके शिष्यों का कहना है कि 'बाबा' का सूक्ष्म शरीर आज भी इसी लोक में है।

**प्रारंभिक जीवन और शिक्षा**

पंडित गोपीनाथ कविराज का जन्म ढाका जिले में अपने पितामह के वासस्थान धामराई ग्राम में सन १८८० में हुआ था। उनका पैतृक स्थान मैमनसिंह जिले के दान्या ग्राम में था। पिता गोकुलनाथ कविराजजी और माता के बचपन में ही स्वर्गवासी हो जाने के कारण गोपीनाथ-जी अपने मामा कालाचंद सान्याल के मैमनसिंह जिले के कांटालिया ग्राम में चले आये। उन्होंने ढाका के जुबली हाईस्कूल से इंट्रेंस परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की। १९०७ में वे शिक्षा हेतु कलकत्ता आये, परंतु बाद में जयपुर चले गये। तत्कालीन जयपुर स्टेट के प्रधानमंत्री संसारचंद सेन के पुत्र-प्रपौत्रों के शिक्षक नियुक्त हुए और महाराजा कालेज में प्रविष्ट हो गये। संस्कृत, अंगरेजी, भार-तीय संस्कृति और इतिहास के प्रति उनकी विशेष रुचि रही। वर्ड्सवर्थ की एक

पौत्र शशि शेखर (बायें) तथा आध्यात्मिक उत्तराधिकारी दादा सीताराम

कविता की व्याख्या पर वहां के प्रोफेसर ने कहा था कि इतनी अच्छी व्याख्या तो मैं भी नहीं कर सकता। उसने कविराजजी को छात्रवृत्ति दिलवायी। १९१० में बी. ए. उत्तीर्ण कर कविराजजी जयपुर छोड़कर लौट गये और कुछ समय पश्चात काशी चले आये। १९१३ में यहीं क्वींस कालेज से उन्होंने प्रथम श्रेणी में एम. ए. किया और क्वींस कालेज के प्रिंसिपल डॉक्टर वेनिस के इच्छानुरूप १९१४ में वे सरस्वती-भवन-ग्रंथालय के अध्यक्ष बने। कविराजजी के अनुरोध पर मूल्यवान संस्कृत ग्रंथों पर उनकी गवेषणा एवं प्रकाशन हेतु 'सरस्वती भवन स्टडी' और हस्तलिखित पुस्तकों के प्रकाशन के लिए 'सरस्वती भवन टेक्स्ट' नामक पत्र निकाले गये। पंडित गंगानाथ झा के अवकाश-ग्रहण के पश्चात १९२४ में कविराजजी क्वींस कालेज के प्रधानाचार्य बनाये गये। इस पद पर वे १९३७ तक बने रहे।

भारत सरकार ने उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर १९२४ में उन्हें महा-महोपाध्याय की उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के अध्यक्ष तथा अनेक पदों को संभाला। १९४७ में इलाहाबाद और १९५४ में काशी हिंदू विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डी. लिट्ट. की मानद उपाधि दी गयी। १९५९ में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ने उनका सम्मान किया और १९६४

में भारत सरकार ने उन्हें पद्मविभूषण से अलंकृत किया। इसी वर्ष वे रायल एशियाटिक सोसाइटी के 'फेलो' बने। साहित्य अकादमी ने भी सम्मान किया। १९६५ में हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें साहित्य वाचस्पति की उपाधि दी। १९६७ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद ने उन्हें अभिनंदन-ग्रंथ भेंट किया। संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा भी कविराजजी को सम्मानित किया गया था।

कविराजजी ने हिंदी, संस्कृत, बंगला और अंगरेजी में लगभग ८५ ग्रंथों में भूमिका, प्राक्कथन आदि लिखे थे। बंगला में 'तंत्र ओ अगम शाक्तेर-दिग्दर्शन', हिंदी में 'तांत्रिक वांगमय में शाक्त दृष्टि', 'भारतीय संस्कृत और साधना', 'अखण्ड महायोग' आदि पुस्तकें लिखी थीं। अपने आध्यात्मिक गुरु परमहंस योगिराज विशुद्धानंदजी पर ग्रंथों का प्रणयन किया था और अंगरेजी एवं बंगला में कविता भी रची थी।

**अखंड महायोग और कविराजजी**

कविराजजी के अछूते जीवनवृत्त को जानने की इच्छा से उनके मानसपुत्र और आध्यात्मिक उत्तराधिकारी दादा सीतारामजी से, कविराजजी के सिगरा स्थित आवास पर, जहां दादा सपरिवार रहते हैं, हमने भेंट की। मेरी जिज्ञासा का समाधान करते हुए उन्होंने कहा—योगियों के लिए स्थूल शरीर का रहना या न रहना विशेष महत्त्व नहीं रखता। गुरुजी आज भी हमारे बीच में हैं।

इसी पर चर्चा चल पड़ी 'अखंड महायोग संघ' की, जिसकी कविराजजी ने स्थापना की थी। दादा ने बताया कि वैदिक काल से **'सर्वे भवंतु सुखिनः'** का सिद्धांत प्रचलित था, परंतु उसकी क्रियापद्धति प्रचलित नहीं थी और न उसका वर्णन ही कहीं उपलब्ध था। इस क्रियापद्धति का साक्षात्कार परमहंस विशुद्धानंदजी को ज्ञानगंज आश्रम में हुआ था। यह स्थान तिब्बत और मंचूरिया के पर्वतीय क्षेत्रों के आसपास है, परंतु इसका भौतिक विवरण किसी को ज्ञात नहीं है। आज भी वहां पर सिद्ध-पुरुष साधनारत हैं। गौतम बुद्ध ने इसी

महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज

साधना-पद्धति की कल्पना की थी। 'बोधिचित्त' की प्राप्ति के पश्चात महाप्रयाण के पूर्व बुद्धवर्ग से गौतम ने प्रार्थना की थी कि अब अपने समस्त पुण्यों का त्याग कर उन्हें समस्त जीवों को अर्पित करता हूं।

विशुद्धानंदजी ने अखंड योग की इसी साधना को स्वीकार किया। इस स्थिति को अन्य महापुरुषों ने नाना प्रकार से स्वीकार किया है। संत वामाक्षेपा ने कहा कि व्यक्ति-कुंडलिनी के पश्चात पूरी समष्टि की कुंडलिनी जाग्रत होनेवाली है और नया विश्व सामने आयेगा। जगतवंद्य महाप्रभु ने महाउद्धारण नाम से नयी लीला का प्रकाश किया। महर्षि अरविंद ने महामानव के अवतरण से इसी बात की कल्पना की थी। मेहरबाबा ने अद्भुत स्थिति की सूचना और परिवर्तन का संकेत दिया था। राधास्वामी संप्रदाय के महाराज ने भी इसी तरह का संकेत दिया था। कल्पना सभी ने की, परंतु साधना-पद्धति का संकेत नहीं था।

प्रकाश बाबा विशुद्धानंद को मिला और क्रिया-पक्ष की शिक्षा उन्हें प्राप्त हुई। सिद्धांत यह है कि क्रिया-पक्ष द्वारा शरीर को सर्वप्रथम इस योग्य बनाया जाए कि अगर महाप्रकाश (भगवान) का पृथ्वी पर अवतरण हो तो शरीर उस प्रकाश को अपने में समाहित कर ले। अगर एक शरीर में भी प्रकाश का अवतरण हुआ तो संबंधित सभी शरीरों में, जो साथ रहते हैं, प्रकाश फैल जाएगा

माता आनंदमयी के साथ। नीचे बैठे हैं डॉ. गौरीनाथ शास्त्री

और पूरा विश्व आलोकित हो जाएगा।

कविराजजी सदैव महानिशा (अर्द्ध-रात्रि) में नित्य अनवरत साधना करते थे। साधना का यह क्रम बीमारी आदि में भी नहीं छूटता था। परलोकगमन के मात्र ३—४ दिन पूर्व तक उन्होंने साधना की। साधना-पद्धति का ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात उन्होंने अपना सहयोगी ढूंढ़ा। कुछ मिले भी तो वे देहशुद्धि की क्रिया में ही पड़कर रह गये। आंतरिक साधना-पद्धति की ओर नहीं जा सके। मेरा उनसे प्रथम संपर्क १९३५ में हुआ और इस प्रकार मैं गुरु के श्रीचरणों में लगातार ४० वर्षों तक रहा। १९५८ में मुझे गुरुजी ने दीक्षा देकर अपना आध्या-

वाराणसी में कविराज का निवासस्थान
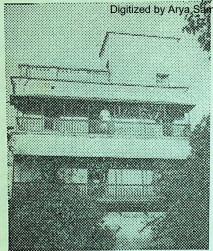
त्मिक उत्तराधिकारी बना दिया।

कुमारी-पूजन को कविराजजी ने साधन माना। कुमारी-पूजन का अर्थ है कुंडलि, अर्थात नाभि-केंद्र का जागरण। सभी स्पंदन नाभि से ही उठते हैं, अतः इसके जागरण के बिना महासत्ता का आभास नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि देह-धारी ही अखंड योग कर सकते हैं, जो देह छोड़ चुके हैं वे नहीं। जीव ईश्वर बन सकता है, पर मनुष्यत्व की प्राप्ति कठिन है। यही मनुष्यत्व की प्राप्ति साधना का मुख्य उद्देश्य है। इस साधना-धारा के अनुसार मनुष्यत्व से बढ़कर कोई स्थिति नहीं है। इसके पश्चात ही पूर्णब्रह्म की स्थिति आ सकती है।

कविराजजी के सिद्धांतों के अनुसार अखंड महासत्ता प्राणिमात्र का स्वयं वरण कर सकती है। इसे कर्म द्वारा पाना संभव नहीं, हर साधक को अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए साधना से आकार तैयार करना चाहिए, जिससे समुद्र में तैरते हिमखंड के समान सत्ता एक होते हुए भी अलग प्रतिभासित हो और संत-रण का आनंद ले सके। यदि एक व्यक्ति भी इस स्थिति में पहुंच जाए तो पूरे विश्व का कल्याण संभव है।

१९५० में शास्त्र-चर्चा के बीच ही अपने एकमात्र पुत्र जितेन्द्रनाथ कविराज के निधन का समाचार सुनकर भी वे विचलित नहीं हुए और मात्र एक मिनट मौन धारण करने के पश्चात पुनः शास्त्र-चर्चा में लीन हो गये। इसी प्रकार १९६९ में पत्नी का निधन हुआ, पर उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखायी पड़ा। डॉक्टर राधाकृष्णन, आचार्य नरेंद्रदेव, ऊ नू-जैसे अनेक महापुरुष बाबा के पास आश्रम में आते-जाते रहते थे, पर मां आनदमयी का उन्हें असीम पुत्रवत स्नेह प्राप्त था। मृत्यु के २—३ मिनट पूर्व तक उनकी चेतना बनी रही। ज्येष्ठ पूर्णिमा की शुभ घड़ी में उन्होंने शरीर त्यागा और महानिशा के पूजन के समय ठीक १२ बजे अग्नि-संस्कार हुआ। मस्तक में ब्रह्मांध्र की जगह छोटा गड्ढा हो गया था।

महाप्रकाश के अवतरण तक कवि-राजजी की परंपरा अविच्छन्न रूप से चलती रहेगी। इसी उद्देश्य से अखंड महायोग संघ की उन्होंने स्थापना की थी।

**—डी ६/१३ रानो भवानी गली,**
**वाराणसी-२२,०००१**

# मराठों के राजकाज में हिंदी

● डॉ. रामबाबू शर्मा

राजपूत सल्तनत तथा मुगल शासकों की भांति मराठों के शासकों की राजभाषा हिंदी ही थी। अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ जब मराठों ने मालवा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, बुंदेलखंड के शासन में हिस्सा प्राप्त किया, राजस्थान और पंजाब पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न प्रारंभ किये और उत्तर भारत में हरिद्वार, प्रयाग, काशी, गया आदि तीर्थों में अपना प्रभाव और शासन स्थापित कर लिया तब उनका संपर्क व्यापक रूप से उत्तर के नरेशों, अधिकारियों, व्यापारियों और किसानों के साथ स्थापित हुआ। ऐसी स्थिति में प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए इन मराठा राजाओं, पेशवाओं और सरदारों को अपने प्रशासन की व्यापकता के साथ-साथ हिंदी को अपने राजकाज की भाषा बनाना पड़ा।

मराठा शासकों का दैनिक राजकाज हिंदी भाषा के माध्यम से संचालित होता था। राजकाज से संबद्ध अनेकानेक प्रमाण-पत्र, निर्देश, राजनीतिक और आर्थिक समझौते, संधि-पत्र, किसानों से वसूल की गयी रकमों की रसीदें एवं अन्यान्य प्रकार के पत्र हिंदी में ही लिखे जाते थे। इन शासकों के राजकाज से संबद्ध सैकड़ों प्रलेख राज्य अभिलेखागार; बीकानेर, पेशवा दफ्तर; पूना तथा राष्ट्रीय अभिलेखागार; दिल्ली से प्राप्त हुए हैं, जिनका संपादन डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तथा डॉ. बेलकर ने किया है। मराठा प्रशासन में राजकाज चलाने के लिए जिन हिंदी वाक्यांशों, एवं उपवाक्यों के प्रयोग होते थे वे सरल-सुलभ, लोक प्रचलित, संक्षिप्त तथा अर्थपूर्ण भाषा में होते थे। इन वाक्यांशों के प्रयोग से यह और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है कि जनभाषा ही राजभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित हो सकती है तथा राजभाषा के प्रयोग में उन व्यक्तियों का बराबर ध्यान रखना पड़ता है, जिनके लिए वह भाषा प्रयोग में लायी जा रही है। इस संबंध में मराठा दस्तावेज़ों से उद्धृत कतिपय वाक्यांश देखिए—

— **'ये काम षातर सकुजी भोंसले पठाया है'**

— **'संकुजी भोंसले कहे सो प्रमान करना'** (सं० १८४९)

— **'सनधि लिषि दही श्री महाराजाजी**

**राजा बहादर नारी शकरजी की सरकार तै'** (अठारहवीं शती के हिंदी पत्र--डॉ. केलकर)

— **'आग्या पत्र पडत श्री वाजी राउमुष प्रधान बचनात पटेल मौजे उजुपुर'**

— **'अप्रच्च फौज का मुकाम नजीक आया है तो तुम षातर जमा से मीलने कु आवजा'** ।

— **'अस यहां षरीफ की किस्तबंदी करी है'**

— **'तहसील करके षजानौ नरसिंहगर पहुंचाके'**

इन सुरक्षा, अर्थ, कृषि, आदेश, संदेश, सूचना, राजस्व आदि से संबद्ध वाक्यांशों से थोड़े में बहुत कहने की उक्ति स्पष्ट रूप से चरितार्थ होती है । इस प्रकार के हजारों उपवाक्य इन प्रलेखों में देखे जा सकते हैं, जो वर्तमान राजभाषा हिंदी के आधुनिक संदर्भ में पारिभाषिक वाक्यावली का कार्य कर सकते हैं ।

मराठा अभिलेखों में प्रशासन से संबद्ध विभिन्न विभागों की पारिभाषिक शब्दावली प्राप्त होती है । यह वह लोक प्रचलित शब्दावली है जो हमारे जन-जीवन में आत्मसात हो गयी है तथा इस शब्दावली का प्रयोग हमारे असंख्य किसानों, मजदूरों, व्यापारियों और विद्वानों के द्वारा आज भी उनके दैनिक व्यवहार में यथावत होता है । इस शब्दावली की जानकारी से हमारी पारिभाषिक शब्दावली संबंधी समस्या का समाधान आंशिक रूप से अवश्य हो सकता है तथा हमारे कुछ सरकारी कर्मचारियों तथा अधिकारियों के मन में हिंदी के प्रति जो एक निराशात्मक दृष्टिकोण वन गया है उसका समाधान भी सरलता से हो सकता है । वे जैसे ही इस परिचित पारिभाषिक शब्दावली को पढ़ेंगे उन्हें ऐसा प्रतीत होगा मानो वे राजभाषा हिंदी से बहुत पहले से परिचित थे और ऐसी स्थिति में हिंदी में काम करना उनके लिए एक रुचिकर कार्य होगा । उदाहरणार्थ मराठों के विभिन्न विचारों से संबद्ध कतिपय पारिभाषिक शब्द देखिए :

**अधिकारियों के नाम**

अमीन, कानुगो, किलेदार, जमातदार, दीवान, पोहदार, महाराजा, पुदराज्य, कामदार, खुफिया नवीस, पंडितराव, मुष प्रधान, कारकून, गुमास्त, चौकीदार, पातसाहि, राऊ राजा, जासुस, सुवेदार, पंतप्रधान, सरदार, महारानि, जेठे सरदार ।

**शासन-व्यवस्था संबंधी**

अर्ज, आग्या, चाकरी, तैनात, दरवार, फरमाना, मनसूवा, मुकदमा, अखतयार, करार, वचन, कैद, डाक, दफदर, नजराना, परवाना, भेंट, मुखत्यारी, दफतरदीवानी, राजकाज ।

**भूमि तथा राजस्व संबंधी**

अवादी, कस्बा, खालसै, इनामी, जागा, पठारी, तहसील, खडी चुकावना, जमावासिल, जागीर, जिमीदारी, परगना, पेशकसी, खरीद की किस्तबंदी, फसल,

हवेली, हीसा, वीघे, हुंडी, महसुल, चुंगी, हासल ।

**सेना तथा युद्ध संबंधी**

असवार, काम आना, खुफिया, चौकी पहारा, छापा, जखमी, जोरावरी, आक्रमण, मैदान, गोली, घीराव, डेरा, फौजसीवंदी (मिलीटरी एसटैवलिशमेंट), लसकर, वेमरजाद तोवखाना, वदंवस्त, संरक्षण, हंगामा, हदपार, सेना ।

**अर्थ संबंधी**

कीमत, उधार, नकद, बयाज, तोरा (टूट), कर्ज, जमा, दर, रिन, (ऋण), हुंडी, खजाना, मुद्रा, रोक, हिसेव, रुपा, पैसा ।

मोहर पर अंकित हिंदी अक्षर

राजकाज संबंधी इन मराठा हिंदी दस्तावेजों में पारिभाषिक शब्दावली ही नहीं, अपितु ऐसे असंख्य मुहावरे भी पाये जाते हैं जो प्रशासन संबंधी विभिन्न विभागों से संबद्ध हैं । इन मुहावरों के माध्यम से जटिल से जटिल विषयों को सरल बनाने तथा सरल और संक्षिप्त ढंग से बहुत कुछ कह देने की प्रवृत्ति का पता लगता है । ये मुहावरे केवल हिंदी के ही नहीं, अपितु निकटवर्ती अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी तत्कालीन हिंदी भाषा में आत्मसात हो गये हैं । अतः हमें इन राजकाज संबंधी मुहावरों को हृदयंगम करना चाहिए तथा इनके द्वारा अपनी वर्तमान राजभाषा हिंदी को अधिक समृद्ध, सक्षम और सशक्त बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । उदाहरण के लिए कुछ मुहावरे देखिए :

**प्रशासन संबंधी कतिपय मुहावरे**

मोर्चा उठाना, ठिकाना, नजर न आना, अमल वहाल करना, गादी पर दाषल करना, तहस-नहस करना, चरन देखना, बांह पकड़ना, हजुरि पहुंचाना, चरित्र देखते रहना ।

**मराठी से प्रभावित मुहावरे**

चौकसी करना (तलाशी करना), फौज पर चाल करना (आक्रमण करना), मड़ीसर करना (अधिकार कर लेना), घोड़े चलाना (घुड़सवारों के दस्ते से आक्रमण करना) ।

मुगल प्रशासकों की भांति मराठा प्रशासकों के यहां से भी विभिन्न प्रकार के पत्रों का प्रयोग किया जाता था। इन पत्रों में टिप, सनधि, आग्या पत्र, कवज, याददास्ति, अर्जदास्ति, सक्का, जमावासिल, कावजा, कबुलीअति एवं रसीद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। टिप आधुनिक टिप्पणी का ही नाम था। यद्यपि इस पत्र का प्रयोग विचित्र विषयों के लिए किया जाता था तथापि मराठाकालीन प्राप्त सामग्री के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस पत्र का प्रयोग विशेषकर आर्थिक विषयों के लिए ही किया जाता था।

इसी प्रकार मराठाकालीन सनधि, आग्यापत्र, कवज अर्जदास्ति, याददास्ति, जमा वासिल, कबुलीआंत रसीद एवं नकल क्रमशः वर्तमान प्रमाणपत्र, कार्यालय आदेश, अधिकार पत्र, प्रार्थना पत्र, स्मरण पत्र, जमा तथा वसूली पत्र, स्वीकृति पत्र, पावती तथा प्रतिलिपि के लिए प्रयुक्त होते थे। यथा—

**'टिप लिष देइ पं. श्री पंडित प्रधान जू एते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिंदू पति देवजूने लिषि दै रपैया ६०००१) रपैयो साठी हजार एक फागुन के महिना में हजुर पुना में पहुंचा इदेइ संवत १८३० शाके**

१६५१ (१६८५) विजय नाम संवत्सरे कार्त्रिक सुदि ७ शुक्रे लिपितं हुवे वेणी हत्तेनः (अठारहवीं शती के हिंदी पत्र—डॉ. केलकर, पत्र ३५३)

- सनधि लिषि दही श्रीमहाराजाजी राजा बहादर, 'नारी शकरजी की सरकार तें'
- आग्या पत्र पडत श्री वाजीराव मुष प्रधान वचनात...

**अर्जदास्त**

- 'श्रीमंत राज्य श्री राव साहिब जु के हजुर जाहिर होइ येते अर्जदास्ति सेवक तरफदार वुलाषी दास केनि बांचने'
- रुक्का लिषिदयों राज श्री पंडित गनपति राजवु कां एतै मौजे मलका के म्हते आसाराम म्हते रामचंद म्हते, दिभान म्हते सभाराम ने देने'
- नकल 'रसीद राजश्री पंडित क्रसनाजी गोविंद ऐते श्रमहंत गोबर्धन पुरी जी के आसीर्वचनं वंच्याने'

"श्री रामजू"

कवुली अति लिषि दही श्री महाराज श्री राजा बहादुर श्री नाना साहिब जी की सिरकार मो जेमीदार मां. सुकिलि हारी के श्री भीआ नामक भरि दैहि।

मराठा शासकों के इन राजकीय हिंदी पत्रों की लेखन पद्धति परंपरागत थी। इन पत्रों के प्रारंभ ही में सरकारी मुहर '१' का अंक मंगलसूचक शब्द, पत्र का प्रकार तथा नकल अथक चीठी लिखा जाता था। मुहरें प्रायः गोलाकार होती थीं तथा इनके मध्य में संबद्ध प्रशासक एवं राज्य का नाम होता था। न्याय संबंधी पत्रों की मुहरों में संबद्ध न्यायालय का प्रकार, स्थान का नाम, उसकी संख्या

एवं स्थिति आदि स्पष्ट रूप से अंकि
किये जाते थे।

'१' का अंक 'एकमेव ब्रह्म' का प्रती
होता था। तत्पश्चात 'श्री लक्ष्मी कां
'राम' आदि मंगल वाचक शब्दों के प्रयो
होते थे। इसी क्रम में पत्र का नाम, 'लि
अथवा 'लिखतंगं' प्राणक के सम्मान
'राजामानये', 'राजाश्री', 'श्री बड़ासाहेब
'गरीबप्रवर', 'राजश्री पंडीत दीवान
'राजकाज धुरंधर श्री मुख्य प्रधान', अभि
वादन के लिए सलामत, सलमति, आसि
र्वाद वाचन्ये राम राम, 'निमसका
दंडौत आदि, कुशल-क्षेम संबंध विभि
प्रकार के वाक्यांश राजनीतिक, साम
जिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा शिकाय
आदि संबंधी मुख्य विषय एवं पत्र के अं
में शिष्टाचार एवं नम्रता संबंधी वाक्यांश
मिती तथा तारीख, तथा स्थान का नाम
पत्र का प्रकार तथा प्रेषक का नाम औ
सही निशानी एवं प्रेषक के हस्ताक्ष
आदि लिखने की पद्धति थी।

राजकाज संबंधी इन हिंदी अभिलेख
में विभिन्न विभागों से संबद्ध शब्दावल
पायी जाती है। इस शब्दावली के स्रोत
संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, मराठ
अरबी, फारसी, बुंदेलखंडी एवं ब्रजभाष
आदि हैं यथा मुद्रा, समय (संस्कृत)
टिक्क हत्थि, हत्थ (प्राकृत), अठ
डीला पधारयों, मोकला (राजस्थानी
अनमान मोहरा, बाजू, समागमे (मराठी
अमलदार, अमीन, सूबेदार (फारसी

उस बाबा ने कहा, "तुम्हें धन चाहिए ?" दोनों भाई पहले तो डर गये, फिर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बाबा ने बताया कि पास की एक समाधि पर एक मंदिर है, वहां बहुत-सा धन गड़ा है। उसे तुम निकाल लो।

दोनों भाइयों ने अपने आपको सामान्य बनाते हुए कहा, "बाबाजी, हम बहुत दूर रहते हैं। रास्ता भी खतरनाक है। चोर-डाकू हमें लूट लेंगे। आप ऐसा करें कि सारा धन हमारे घर पहुंचवा दें, उसके बाद हमें जो आदेश देंगे हम वैसा ही करेंगे।"

बाबा उनकी बात मान गये। धन उनके घर पहुंचा दिया गया। बाबा ने कहा कि धन प्राप्त होने के तीन महीने के भीतर जहां तुम बैठे हो (वह झिड़ी नामक स्थान था) वहां पर दो मंदिर बनवा देना।

मुगल प्रशासकों की भांति मराठा प्रशासकों के यहां से भी विभिन्न प्रकार के पत्रों का प्रयोग किया जाता था। इन पत्रों में टिप, सनधि, आग्या पत्र, कवज, याददास्ति, अर्जदास्ति, सक्का, जमावासिल, कावजा, कबुलीअति एवं रसीद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। टिप आधुनिक टिप्पणी का ही नाम था। यद्यपि इस पत्र का प्रयोग विचित्र विषयों के लिए किया जाता था तथापि मराठाकालीन प्राप्त सामग्री के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इस पत्र का प्रयोग विशेषकर आर्थिक विषयों के लिए ही किया जाता था।

इसी प्रकार मराठाकालीन सनधि, आग्यापत्र, कवज अर्जदास्ति, याददास्ति, जमा वासिल, कबुलीआंत रसीद एवं नकल क्रमशः वर्तमान प्रमाणपत्र, कार्यालय आदेश, अधिकार पत्र, प्रार्थना पत्र, स्मरण पत्र, जमा तथा वसूली पत्र, स्वीकृति पत्र, पावती तथा प्रतिलिपि के लिए प्रयुक्त होते थे। यथा—

**'टिप लिष देइ पं. श्री पंडित प्रधान जू एते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिंदू पति देवजूने लिषि दै रपैया ६०००१) रपैयो साठी हजार एक फागुन के महिना में हजुर पुना में पहुंचा इदेइ संवत १८३० शाके**

१६५१ (१६८५) विजय नाम संवत्सरे कार्त्रिक सुदि ७ शुक्रे लिपितं हुवे वेणी हत्तेनः (अठारहवीं शती के हिंदी पत्र—डॉ. केलकर, पत्र ३५३) गिरफ्तार)।

अस्तु, इन प्रलेखों में वर्तमान 'आ' [illegible] स्थान पर 'ई', ह्रस्व 'इ' के स्थान पर [illegible]र्घ 'ई', 'थ' के स्थान पर 'त', 'व' के स्थान [illegible]र 'अ', 'र' के स्थान पर पूर्व स्वर पर [illegible]फ का प्रयोग, तालव्य 'श' के स्थान पर [illegible]त्य 'स', 'ओ' के स्थान पर 'व', 'ख' [illegible] स्थान पर 'ष', तथा 'ब' के स्थान पर [illegible]' आदि ध्वनियों के प्रयोग की प्रवृत्ति [illegible]ायी जाती है।

**नौकरशाही प्राचीन परंपरा**

[illegible]स प्रकार मराठा प्रशासन में हिंदी भाषा [illegible] ताम्र-पत्र लिखने, मरा[illegible]ो से हिंदी [illegible]ाषा में अनुवाद करने, विभिन्न विभागों [illegible] संबद्ध राजकाज चलाने, क्षेत्रीय तथा [illegible]खिल भारतीय स्तर पर संबंध सुधारने [illegible]था स्थापित करने, राजनीतिक समझौते [illegible]रने एवं सेना, अर्थ, प्रशासन, कृषि आदि [illegible]ार्यों के संचालन करने में हिंदी भाषा का [illegible] प्रयोग होता था।

[illegible] अब उपलब्ध इन सैकड़ों प्राचीन [illegible]भिलेखों से यह और भी अधिक स्पष्ट [illegible] जाता है कि हिंदी प्राचीनकाल से [illegible]द्र तथा हिंदीभाषी राज्यों के शासकों [illegible] अतिरिक्त अखिल भारतीय संदर्भ में [illegible]हिंदी भाषी शासकों के प्रशासन की [illegible]ाषा भी रही है। वस्तुतः हिंदी भाषा के [illegible]ाजकाज में प्रयोग की एक प्राचीन एवं [illegible]ौरवशाली परंपरा रही है।

**—सी-२/१३६, जनकपुरी,**
**नयी दिल्ली-११००५८**

के झुंड आते हैं। वहां पर छोटी-छोटी 'देहरियां' (पुरखों की समाधियां) हैं। इन देहरियों के आसपास खुली जमीन है। जितने दिन भी लोग यहां रहते हैं, खुले आसमान के नीचे सोते हैं।

इस मंदिर के ५७-वर्षीय पुजारी गोस्वामी कृष्णदत्त से जब भेंट हुई तब उन्होंने इस मंदिर के इतिहास के बारे में बताया—आज से लगभग साढ़े पांच सौ वर्ष पहले (संवत १४८७ विक्रमी) में इन मंदिरों के बारे में पता चला था। यहां पर बियावान जंगल था। दो भाई सुद्धू और बुद्धू इस जंगल से निकलते थे कपड़े की फेरी लगाने के लिए।

एक दिन वे जंगल से जा रहे थे। उस दिन उन्होंने थकान कुछ ज्यादा महसूस की थी अतः सुस्ताने के लिए जंगल में बैठ गये। बैठे-बैठे उन्हें झपकी-सी आ गयी। इतने में उन्हें एक बाबा के दर्शन हुए।

उस बाबा ने कहा, "तुम्हें धन चाहिए?" दोनों भाई पहले तो डर गये, फिर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। बाबा ने बताया कि पास की एक समाधि पर एक मंदिर है, वहां बहुत-सा धन गड़ा है। उसे तुम निकाल लो।

दोनों भाइयों ने अपने आपको सामान्य बनाते हुए कहा, "बाबाजी, हम बहुत दूर रहते हैं। रास्ता भी खतरनाक है। चोर-डाकू हमें लूट लेंगे। आप ऐसा करें कि सारा धन हमारे घर पहुंचवा दें, उसके बाद हमें जो आदेश देंगे हम वैसा ही करेंगे।"

बाबा उनकी बात मान गये। धन उनके घर पहुंचा दिया गया। बाबा ने कहा कि धन प्राप्त होने के तीन महीने के भीतर जहां तुम बैठे हो (वह झिड़ी नामक स्थान था) वहां पर दो मंदिर बनवा देना।

---

बायें पृष्ठ पर : तंत्रगुरु शिष्य, पार्श्व में देहरी, मेले का एक दृश्य

बाबा जित्तो और बुआ बाल-कन्या के मंदिर

दोनों भाइयों ने आधा-आधा धन बांट लिया और अपने व्यापार को खूब बढ़ाया। गांव के लोग उनकी इस हालत पर ईर्ष्या करने लगे। दोनों भाई दौलत के खुमार में इस तरह डूबे कि बाबा को दिया गया वचन भी भूल गये।

लेकिन धन तो ढलती हुई परछाईं की तरह होता है। धीरे-धीरे स्थिति यह हो गयी कि वे जिस काम को भी हाथ में लेते नुकसान ही नुकसान होता। एक दिन वे क्या देखते हैं कि उनके घर में कीड़े ही कीड़े हैं—पानी में कीड़े, आटा-दाल-चावल में कीड़े, अंदर कीड़े, बाहर कीड़े। वे बहुत परेशान हुए। भूखे मरने की नौबत आ गयी। सपने में फिर वही बाबा दिखायी दिये। कहा, "तुम लोग तो धन के लालच में इतना डूबे कि अपना वचन ही भूल गये। अब तुम सुबह उठकर दाल-चावल एकसाथ मिलाकर खिचड़ी बनाना। जब वह खिचड़ी तैयार हो जाए तब झिड़ी के उसी स्थान पर ले जाकर प्रसाद बांटना और कुछ ईंटों का इंतजाम कर मंदिर बनवा देना। तुम लोगों को कोई कष्ट नहीं होगा।"

जब सुद्धू और बुद्धू की आंख खुली तब बाबा भी गायब और कीड़े भी। ईंटों का प्रबंध कर बाबा द्वारा बताये स्थान पर छोटा-सा मंदिर तैयार किया गया। तब से वहां पर खिचड़ी का 'प्रसाद' बांटा जाता है।

मंदिर का नाम 'बुआ' और 'जित्तो', के नाम पर रखा गया। इसके बारे में गोस्वामी कृष्णदत्त ने इस प्रकार बताया —बाबा जित्तो वैष्णो देवी के उपासक थे। कटरा से चार मील दूर वह घार-कोट में रहते थे। बताया जाता है कि एक दिन उन्हें जब वैष्णो देवी ने दर्शन दिये और कुछ मांगने के लिए कहा तब बाबा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि एक ऐसी कन्या दे दें जो आप-जैसी ही हो। मां वैष्णो ने बाबा के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। अगले दिन सवेरे छोटी-सी, बड़ी ही सुंदर कन्या उन्हें मिली।

बाबा जित्तो जहां भी जाते उस कन्या को अंगुली पकड़े साथ ले जाते। बाबा के रिश्तेदारों का व्यवहार दिनोंदिन उस के प्रति खराब होता चला गया। अंततः वह अपना गांव छोड़कर झिड़ी नामक इस गांव में आ गये।

उन दिनों जम्मू का राजा मालदेव का बेटा जयदेव था। बाबा जित्तो उसके पास गये और कुछ जमीन देने के लिए कहा। राजा जयदेव ने उन्हें झिड़ी की जमीन दे दी और कहा, "जंगल काटो और खेती करो। इसमें एक-चौथाई हिस्सा सरकार का होगा और तीन-चौथाई तुम्हारा।"

जमीन मिल जाने के बाद बाबा जित्तो ने पहले जंगल की सफाई की। उसके बाद खेत जोता। थोड़ी दूर एक तालाब खोदा। मां वैष्णो की प्रार्थना भी हमेशा करते रहते। इस बीच वर्षा हुई और तालाब भर गया। खेत में

उन्होंने गेहूं बोया । गेहूं की कटाई करने के बाद बाबा ने जागीरदार से अपना हिस्सा ले जाने को कहा। बाबा जब स्नान करने के लिए तालाब पर गये थे तब जागीरदार के आदमी आकर बाबा का सारा गल्ला उठा ले गये। बाबा ने जब अपना हिस्सा मांगा तब उन्होंने देने से इनकार कर दिया। बाबा जित्तो उस समय वहां से यह कहकर कि अगर मैं नहीं खाऊंगा तो तुम्हें भी नहीं खाने दूंगा, चल दिये। रात को जहां पर गल्ला पड़ा था उस पर बैठकर बाबा ने कटार अपने सीने में घोंप ली। सारे गेहूं में खून ही खून मिल गया। बाबा की इस शहादत से जोरों की वर्षा हुई। रक्त से भीगा हुआ गेहूं आसपास के इलाके में फैल गया। बाबा के शरीर त्यागने के बाद उसकी चिता को जब आग दी गयी तब 'बुआ' कन्या ने भी अपनी आहुति दे दी। खून से सने गेहूं के दाने जहां-जहां भी गये और जिसने भी खाया, उसका सिर हिलने लगा। कुछ समय तक तो यह हाल रहा कि पशु-पक्षी भी सिर हिलाते थे। फरीदचंद नाम का एक बालक मां की कोख से सिर हिलाते हुए पैदा हुआ।

'झिड़ी' मेले को 'किसान मेला' या 'शहीद मेला' भी कहते हैं।

गोस्वामीजी के अनुसार तालाब में स्नान करने से व्यक्ति की हर बीमारी दूर होती है, कोढ़ का नाश होता है, जिस परिवार में बच्चे नहीं होते या नहीं बचते इस तालाब में स्नान करने से उनका घर फलफूल जाता है। यहां के तालाब के जल तथा एक दाना खिचड़ी का यदि कोई व्यक्ति चालीस दिन सुबह स्नान करके खाये तो उसे किसी तरह का रोग नहीं होता।

झिड़ी के मेले की सीमा में शराब पीना मना है। यहां पर मांस की दूकानें भी नहीं हैं। हथियार लाने पर भी पाबंदी है। ज्यादातर लोग दो-तीन दिन मेले में रहते हैं। उस समय मंदिर में जो चढ़ावा चढ़ता है, उससे सारे साल तक पुजारी और उसके कुनबे का गुजारा होता है।

कार्त्तिक पूर्णिमा की सुबह जब झिड़ी से लगभग दो मील दूर तालाब में स्नान किया जाता है तब वहां का दृश्य बहुत ही मार्मिक होता है। जिन लोगों को भूत-प्रेत, चुड़ैल या अन्य प्रेतात्माओं की शिकायत होती है, पहले उनको तंत्र-विद्या के जानकार 'अखाड़ों' में बिठाया जाता है। स्त्रियों के बाल खोल दिये जाते हैं और बालों की सुइयां निकाल ली जाती हैं। अंत में तालाब में स्नान कराने से पहले उनसे यह पूछा जाता है कि तुम लोग जा रहे या रही हो, न? जब वे हामी भरते हैं तब उन्हें तालाब में डुबकी दिलवायी जाती है।

बात दरअसल विश्वास की है। लोगों को विश्वास है, इसलिए यहां आनेवाले लोगों की भीड़ हर साल बढ़ती ही चली जाती है।

**—'दिनमान', १०, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२**

# दो उपन्यास और एक काव्य संग्रह

**मकान** : हिंदी-उपन्यासकारों के नारी-विषयक दृष्टिकोण और तद्विषयक रीतिकालीन मनोवृत्ति में कोई विशेष फर्क नहीं है—दोनों ही नारी को भोग्या से अधिक महत्त्व नहीं देते—चाहे नारी कोई भी क्यों न हो? सितारवादक नारायण बनर्जी दिल्ली से स्थानांतरित होकर एक छोटे शहर में आते ही मकान की तलाश में भटकने लगते हैं। इसी संदर्भ में वे अनेक लोगों के संपर्क में आते हैं—नगर-निगम के प्रशासक, ट्रेड यूनियन लीडर श्री बारीन हालदार तथा पुरानी शिष्या श्यामा और संगीत-प्रेमी वेश्या-पुत्री सिम्मी। एक तरफ सितार से उनका संबंध टूटने लगता है तो वे श्यामा और सिम्मी में अपने जीवन के बिखराव को समेटने की कोशिश करते हैं। मकान की समस्या से जूझते हुए नारायण बनर्जी के लिए मकान एक ऐसा स्वप्न होकर रह जाता है जो कभी यथार्थ के धरातल को स्पर्श नहीं कर पाता। नारायण बनर्जी के माध्यम से उपन्यासकार ने एक कलाकार के जीवन की आकांक्षाओं, असंगतियों और तनाव को सफल अभिव्यक्ति दी है। यह प्रस्तुत उपन्यास की विशिष्टता है।

श्रीलाल शुक्ल निश्चित रूप से एक सशक्त कथाकार हैं—'मकान' में एक संगीतज्ञ के जीवन को आधार बनाकर उन्होंने जिस सफलता से कथा का ताना-बाना बुना है, वह एक समर्थ उपन्यासकार के ही वश की बात है।

श्रीलाल शुक्ल हिंदी-व्यंग्य के प्रतिष्ठित हस्ताक्षरों में से एक हैं—अपने उपन्यासों में वे बीच-बीच में जो मीठी चुटकी लेते हैं और इस तरह स्थितियों को और भी आकर्षक बना देते हैं—यह विशेषता हिंदी के कम ही उपन्यासकारों में दिखायी देती है। यह विशिष्टता भाषा को शक्ति और जीवंतता प्रदान करती है। 'राग दरबारी' में जहां शुक्लजी के व्यंग्य का लक्ष्य राजनीति और समाज था, वहां 'मकान' में कलाकार के प्रति ब्यूरोक्रेट की मनोवृत्ति तथा समाज के अन्य वर्गों की उसके प्रति मौखिक सहानुभूति ही उनके व्यंग्य का मूल लक्ष्य है। संपूर्ण उपन्यास पढ़ने के उपरांत नारायण बनर्जी की असामयिक मृत्यु अनेक प्रश्नचिह्न लगाकर

कलाकार के प्रति समाज की कर्तव्यभावना को अनुत्तरित छोड़ देती है। श्रीलाल शुक्ल का यह उपन्यास निश्चित रूप से हिंदी-जगत में चर्चित होगा।

**मकान**

**लेखक—श्रीलाल शुक्ल, प्रकाशक—राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ—२६२, मूल्य—१६ रुपये**

**यह सच है :** श्रीमती अमृता प्रीतम भावुक उपन्यासकार हैं और यह भावुकता कभी-कभी उनके उपन्यासों के कथ्य, शिल्प और भाषा पर इतनी हावी हो जाती है कि उपन्यास अपनी संप्रेषणीयता को खो बैठते हैं। 'यह सच है' अमृताजी का नया उपन्यास है, कविता के क्षेत्र में अपनी रोमांटिक चेतना को वे जितनी सफलता से अभिव्यक्त कर पाती हैं, कथा के माध्यम से उसमें वे उतनी ही असफल रहती हैं। 'यह सच है' की उर्सिला का चरित्र किसी भी स्तर पर प्रभावित करने में समर्थ नहीं हो पाता। पूरा उपन्यास खत्म करने के बाद भी मन पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ता और न ही ऐसा लगता है कि किसी नयी रचनात्मक दुनिया के बीच से गुजरे हैं। पुस्तक की भाषा कृत्रिम और बोझिल है तथा उसमें टटकेपन का नितांत अभाव है।

**यह सच है**

**लेखिका—अमृता प्रीतम**

**प्रकाशक—राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ—९३, मूल्य—६.०० रुपये**

**—मुकुन्द द्विवेदी**

## काव्य संग्रह

**मखमूर** देहलवी ने दिल्ली के बारे में कहा—"यहां पत्थर बहुत मिलते हैं, लेकिन दिल नहीं मिलते।" महानगर सीमेंट-इस्पात के जंगल हैं।

डॉ. शशि अध्यवसायी नृवंशशास्त्री और परिश्रमी संपादक हैं। उनकी कविताएं पहले भी मैंने पढ़ी थीं—'लहू के फूल'। तब वे 'सैनिक समाचार' के संपादक थे। सैन्य जीवन से संबंधित थीं तब की वे कविताएं। उन्होंने बच्चों के लिए भी लिखा है। उनके अपने शब्दों में, जो इस कविता-संग्रह में है :

**और मैं बिखर गया, अपने ही भीतर में**
**अक्षर-सा शब्द-सा, बन सका न वाक्य**
**किसी अभीप्सित पंक्ति का** (पृ. ४७)

यह अहसास 'शशि' को कवि बनाता है।

वह विनम्र है, उसके कोई दावे नहीं हैं। उसके भीतर कहीं वनचर आदिवासी शिशु अभी भी 'औक्खां पहाड़ां-राजीणा' गाता है। यह इस संग्रह की मुझे सर्वोत्तम कविता लगी। इसलिए कि उसे महानगरीय जीवन की कृत्रिमता बहुत अखरती है, जहां आदमी भेड़िया, जिंदा-मुर्दा मक्खी फंसाने के लिए जाला बुननेवाली मकड़ी और गिद्ध बन गया है। कविताओं के शीर्षकों से नकली जिंदगी और यांत्रिक सभ्यता के प्रति नफरत टपकती है, जैसे आधुनिकता का कैंसर, बौना, माडर्न सेक्स, कुर्सियां ही कुर्सियां, महानगर में कठफोड़वा (यह इस संग्रह की दूसरी विशिष्ट कविता है),

आदमी तिलचट्टे-सा, सामूहिक भोग, शहर की छत, सड़ांध-बदबू-दुर्गंध आदि। कई उक्तियों में काफी सचोट व्यंग्य है।

सभ्यता के बढ़ते चरणों के साथ यह 'एटेविज्म', कितना सच है! महानगरीय साहित्यकार को शहर की छत पर ठोका हुआ, उलटा लटका बिजली का पंखा बताया गया है। यह सब सदुद्देश्य से प्रेरित है। इसके पीछे गहरा दर्द और नैतिक प्रेरणा है, जैसे 'नशे से धुत्त' में, लेकिन मेरी शिकायत इतनी-सी है कि कई स्थानों पर कविता वक्तव्य बन जाती है, गद्यप्राय लगती है। पुरानी पीढ़ी से शिकायत यही तो थी। वह जानता है कि बिंब बदल गये हैं, पर कहीं कहीं अभिधा लक्षणा पर हावी है।

मुझे 'शरद में शहर', 'रात की कब्र', 'नंगी छायाएं', 'बौना', 'पर्यवेक्षण', 'सफेद छायाएं', 'खोखले कहकहे', 'परिशिष्ट' आदि कविताएं अच्छी लगीं। नृवंश-विज्ञान के अध्येता से मुझे उम्मीद थी कि कुछ और नये अनुभव हिंदी की आधुनिक कविता को यह कवि देता। शायद आगे देगा। आत्म-कथ्य बहुत ईमानदार है 'स्वकथन' नाम से, आरंभ में।

नीला चटर्जी का कवर अच्छा है।

**--डॉ. प्रभाकर माचवे**

**शिल्पनगर में**
**लेखक--डॉ. श्यामसिंह 'शशि', प्रकाशक--प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली-३०, पृष्ठ--११२, मूल्य--१५ रुपये**

## निबंध-संग्रह

**तुलसीदास आधुनिक संदर्भ में :** संस्कृति तथा साहित्य ऐसी जड़ वस्तुएं नहीं हैं जिनमें मात्र अंधश्रद्धा रखने से हमारी कर्तव्य-पूर्ति हो जाती हो। प्रत्येक युग में मानव को इनमें अपना जीवनदायी स्रोत खोजना पड़ेगा। तुलसीदास ने अपने युग में हमारी परंपरागत सांस्कृतिक मान्यताओं को एक नया समन्वयात्मक रूप दिया था। उनके कृतित्व को किसी युग अथवा ऐतिहासिक काल की सीमारेखा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत पुस्तक में तुलसीदास के कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर ३९ चुने हुए लेखों का संकलन है, जो जाने-माने विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। इनमें भक्ति, अध्यात्मवाद, क्रांतिचेतना, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, राजनीति, काव्य, सौंदर्यबोध आदि अनेकानेक विषयों पर आज के संदर्भ में विचार किया गया है और यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि तुलसीदास आज भी किस सीमा तक हमें अनुप्रेरित करते हैं। यह पुस्तक तुलसीदास को न केवल हमारे युग से जोड़ती है, वरन हमें अपनी सांस्कृतिक शाश्वतता का भी बोध कराती है।

**--कृष्णचन्द्र शर्मा**

**तुलसीदास आधुनिक संदर्भ में**
**संपादक--विष्णुकान्त शास्त्री तथा जगन्नाथ सेठ, प्रकाशक--बंगीय हिन्दी परिषद, १५, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-१२, पृष्ठ--४१६, मूल्य--३० रुपये**

सार-संक्षेप
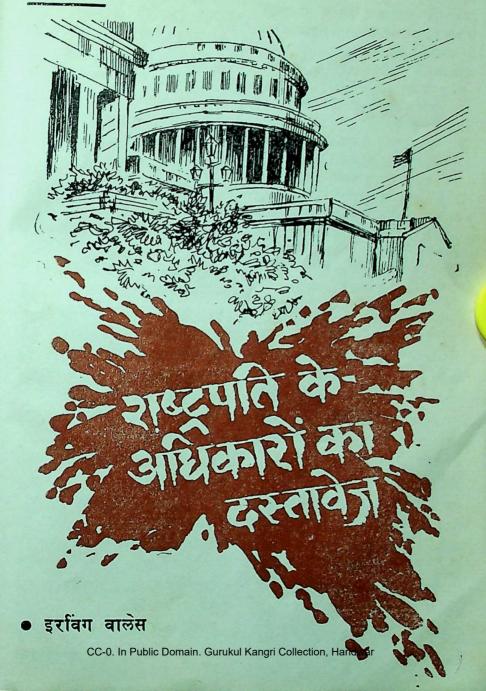
• इर्विंग वालेस

**किसी भी लोकतंत्रीय देश में तानाशाही शासन की स्थापना का सबसे सरल तरीका है आपात-स्थिति की घोषणा, और फिर संविधान में संशोधन कर मूल नागरिक अधिकारों का अपहरण।**

**सुप्रसिद्ध अमरीकी उपन्यासकार इरविंग वालेस ने अपने बहुचर्चित उपन्यास 'द आर डाक्युमेंट' में एक ऐसी ही स्थिति की कल्पना की है जो हमारे देश में पिछले वर्षों घोषित आपातकाल की स्थिति से पूरी तरह मेल खाती हैं। ऐसी कोई भी महान कृति देश-काल की सीमाओं से परे होती है। हम सेंसर के कारण 'द आर डाक्युमेंट' को पहले न छाप सके। अब प्रस्तुत है इस रोमांचक कृति का सार। प्रस्तोता——देवेन्द्र कुमार।**

हत्या, बलात्कार, डाकाजनी, बंधक, अपहरण, ब्लैकमेल——हर जगह, हर कहीं अपराधों की बाढ़! और उसमें डूबने जा रहा था संयुक्त राज्य अमरीका। पूरा देश जैसे चोर-बदमाशों के आसरे था। घर से निकलनेवाले नहीं जानते थे कि वे सुरक्षित वापस आ सकेंगे या नहीं। रात को सोनेवालों को पता नहीं था कि अगली सुबह का उजाला उनके भाग्य में है या नहीं। क्या प्रजातंत्र का, जनता के अबाध अधिकारों का यही अर्थ होता है?

नहीं, कतई नहीं। अगर प्रजातंत्र को बचाना है, तो इस अबाध अधिकार पर, जो कि मात्र अराजकता का अधिकार बनकर रह गया था, अंकुश लगाना जरूरी हो गया था। इसीलिए अमरीकी राष्ट्रपति वड्सवर्थ ने संविधान में ३५ वें संशोधन का बिल रखा था। उसे कांग्रेस के दोनों सदनों का समर्थन मिल गया। ५० में से ४७ राज्य ३५ वें संशोधन-विधेयक पर मतदान कर चुके थे। ३६ ने उसे स्वीकार किया था और ११ ने अस्वीकार। संशोधन को संविधान में सम्मिलित करने के लिए ३८ राज्यों की सहमति आवश्यक थी। ३५ वें संशोधन के अंतर्गत आपातस्थिति में लोगों के, मूल अधिकारों (बिल ऑव राइट्स) को स्थगित किया जा सकता था। राष्ट्रपति को आशा थी कि इसके बाद देश में कानून और व्यवस्था की स्थिति को सुधारा जा सकेगा। अराजक अमरीकी समाज को अपराधहीन बनाना संभव होगा। लेकिन, कुछ लोग इसके विपरीत सोच रहे थे। उनका मानना था कि ३५ वें संशोधन से सरकार को अबाध तानाशाही-अधिकार मिल जाएंगे। जनतंत्र का गला घुट जाएगा। इसलिए वे आंदोलन चला रहे थे कि बाकी तीन राज्य ३५ वें संशोधन को अस्वीकार कर दें।

क्रिस्टोफर कोलिंस जल्दी में था। राष्ट्रपति-भवन पहुंचना था। उसे याद नहीं था कि उसने इस्माइल यंग को कब समय दिया था। लेकिन, अब जबकि वह आ ही गया था, तो कुछ देर तो बात करनी ही थी।

कोई और होता तो कोलिंस मना

करवा देता। पर यंग को एफ. बी. आई. के डायरेक्टर ट्यानन ने भेजा था। कोलिंस ट्यानन को रुष्ट नहीं करना चाहता था। यह बात दूसरी थी कि वह अमरीका का अटार्नी-जनरल था और ट्यानन उसके मातहत एफ. बी. आई. का डायरेक्टर। लेकिन कोलिंस को कभी ऐसा लगा नहीं, उल्टे ट्यानन का अव्यक्त प्रभाव उसे हर कहीं उपस्थित दिखायी देता था। शायद इसका एक कारण यह रहा हो कि वह अभी हाल ही अटार्नी-जनरल बना था। बना क्या था, यह भी एक संयोग ही था। अटार्नी-जनरल बेक्सटर सांघातिक रूप से बीमार और बेहोश, मौत से लड़ रहा था। इसीलिए कोलिंस को उसका पद मिल गया था। अभी एक ही सप्ताह हुआ था।

इस्माइल यंग ट्यानन के संबंध में एक आत्मकथात्मक पुस्तक लिख रहा था और जानना चाहता था कि ट्यानन के बारे में कोलिंस की क्या राय है।

कोलिंस के सामने ट्यानन का लंबा-तड़ंगा फुरतीला शरीर तैर गया था। उसका चेहरा, जिसकी रेखाओं में कितने राज छिपे थे, उसकी चंचल बेधक दृष्टि, जो हर पल दूसरों के रहस्य अनावृत करने को आतुर रहती थी।

उसने कुछ प्रश्नों के अस्पष्ट उत्तर दिये थे। ३५ वें संविधान-संशोधन पर भी बात हुई थी, और फिर राष्ट्रपति-भवन जाने की बात कहकर उसे विदा कर दिया था।

घर से करेन का फोन आया था। चलने के लिए उठ रहा था, तभी ट्यानन का हरकारा आया। एक पत्र के साथ पिछले मास की अपराध-स्थिति की समीक्षा और दिनोंदिन बढ़ते-फैलते अपराधों के खौफनाक आंकड़े भेजे थे उसने।

कोलिंस का दिमाग इसी में उलझा था। हालांकि शुरू-शुरू में वह ३५ वें संशोधन के लिए मानसिक रूप से उतना प्रस्तुत नहीं था, लेकिन इधर जो अपराध-संबंधी आंकड़े मिल रहे थे, उनसे कोलिंस को ३५ वां संविधान-संशोधन अनिवार्य प्रतीत होने लगा था।

●●

करेन को साथ लेकर वह ह्वाइट-

हाउस पहुंचा, तो विशेष कक्ष में राष्ट्रपति वड्सवर्थ, वर्नन ट्यानन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्ति उपस्थित थे। सबकी नजरें टेलीविजन पर टिकी थीं। न्यूयार्क असेंबली में किसी सदस्य का भाषण चल रहा था। एक-एक शब्द देश की वर्तमान अराजक स्थिति की भयंकरता की ऐसी खौफनाक तसवीर प्रस्तुत कर रहा था कि कोलिंस के रोंगटे खड़े होने लगे।

ट्यानन करेन के हाल-चाल पूछने लगा—"कहिए मिसेज कोलिंस, आजकल आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है। ठीक तो हैं न ?"

करेन ने महसूस किया कि ट्यानन ने 'आजकल' शब्द पर अधिक जोर दिया है। उसकी दृष्टि न चाहते हुए भी अपने पर से फिसल गयी। कुछ देर बाद वह कोलिंस के पास बैठी, तो उसने कहा कि ट्यानन किस तरह उसके स्वास्थ्य के प्रति चिंता प्रकट कर रहा था।

"ओह! यह तो साधारण शिष्टाचार की बात थी।"

"नहीं, वह यह बताना चाहता था कि उसे पता है कि मेरे अंदर एक शिशु पल रहा है," करेन ने तल्खी से कहा।

"उसे मालूम नहीं हो सकता।"

"नहीं, उसका इशारा इसी तरफ था। शायद वह यह जताना चाहता होगा कि छोटी-से-छोटी और गुप्ततम बात भी उससे छिपी हुई नहीं है।"

कोलिंस ने अपने को अंदर ही अंदर कुछ डरा हुआ महसूस किया, फिर उसकी नजरें टेलीविजन-स्क्रीन पर टिक गयीं। विधायक का जोरदार भाषण समाप्त हुआ, तो राष्ट्रपति ताली बजाकर बोले, "इतना शानदार भाषण मैंने कम ही सुना है। मतदान से ठीक पहले इस तरह का भाषण बहुत अच्छा असर डालेगा। ट्यानन, ऐसा लगता है जैसे यह तुम्हारा ही लिखा हुआ था। उसके मुंह से तुम्हीं बोल रहे थे।"

कक्ष में उपस्थित लोग जानकार ढंग से हंसने लगे। ट्यानन मुसकरा रहा था।

मतदान प्रारंभ हो गया था। टेलीविजन पर 'हां, ना' के संकेत उभरते आ रहे थे—एक पल खामोशी रही, फिर सब खुशी से उछल पड़े। न्यूयार्क ने ३५ वें संशोधन को अपनी सहमति दे दी थी।

अब ओहियो राज्य विधानसभा का दृश्य टेलीविजन-स्क्रीन पर था। सब सांस रोके देख रहे थे। 'हां, ना, हां, ना' के संकेतों के बीच एक आवाज गूंजी, "हम पिछड़ रहे हैं। विपक्षी मत अधिक हैं।"

ओहियो राज्य ने ३५ वां संविधान संशोधन अस्वीकार कर दिया।

वड्सवर्थ ने क्षुब्ध स्वर में पूछा, "ऐसा कैसे हो गया ? हमें तो अपनी जीत का पूरा विश्वास था।"

तभी स्क्रीन पर उद्घोषक का चेहरा उभरा—वह कह रहा था—"हमें पता चला है कि मतदान से पहले टोनी पियर्स

के नेतृत्व में 'डिफेंडर्स आॅव बिल आॅव राइट्स' के आंदोलनकारियों ने संशोधन कें विपक्ष में धुआंधार प्रचार किया था। शायद . . ."

उसकी वाकी बात ट्यानन की गरजदार आवाज में दब गयी। वह पियर्स को गालियां दे रहा था—"हमें उस कुत्ते के बारे में सब मालूम है। एफ. बी. आई. के इस भूतपूर्व एजेंट के कारनामे मैं अच्छी तरह जानता हूं। कितना बदमाश और चलता-पुर्जा है यह! मैं इसे . . ."

"छोड़ो वर्नन," राष्ट्रपति कह रहे थे, "उसे जो नुकसान करना था, कर चुका। लेकिन हमें यह देखना है कि आगे ऐसा न हो। अब केवल कैलीफोर्निया ही बचा है। वहां हमें हर हालत में जीतना है। वरना. . ."

अब वह कोलिंस की ओर देख रहे थे। "कोलिंस, तुम कैलीफोर्निया के रहनेवाले हो न! तुम इस मामले में हमारी मदद कर सकते हो। अनौपचारिक रूप से सभाओं व गोष्ठियों में भाषण देकर अप्रत्यक्ष तौर पर ३५वें संशोधन का समर्थन कर सकते हो।"

कोलिंस कुछ कह पाता, इससे पहले ही मामला तय हो गया।

उसी समय उसका अंगरक्षक दौड़ता हुआ अंदर आया। सूचना दी—'अस्पताल में नोहा बेक्सटर को होश आ गया है। वह आपको बुला रहे हैं। मरने से पहले कुछ कहना चाहते हैं।'

लेकिन जब वह अस्पताल पहुंचा, तो नोहा बेक्सटर का देहांत हो चुका था। कोलिंस की भेंट काले वस्त्रों में लिपटे पादरी से हुई। कोलिंस को देखकर उन्होंने अपना परिचय दिया, "मैं फादर दुब्रिस्की हूं। नोहा बेक्सटर को मरे दस मिनट हो गये।"

कोलिंस के कानों में अब भी वही संदेश गूंज रहा था। 'आखिर मरने से पहले नोहा बेक्सटर क्या कहना चाहते थे उससे। कोलिंस का उनसे विशेष परिचय भी नहीं था, लेकिन फिर भी उन्होंने उसे ही क्यों बुलाना चाहा? ऐसा कौन-सा रहस्य था? वह पूछ बैठा, "फादर, क्या मरने से पहले नोहा बेक्सटर ने आपसे

कुछ कहा था—क्या थे उनके अंतिम शब्द ?'

फादर दुबिंस्की गहरी दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे, फिर शुष्क स्वर में बोले, "हां, कुछ कहा था, लेकिन वह किसी को बताने की बात नहीं है। उनका 'लास्ट कनफेशन' था, जो गुप्त होता है—केवल ईश्वर के प्रति कहा गया। मैं बता नहीं सकता।"

कोलिंस ने हर तरह से उन्हें समझाना चाहा, पर फादर दुबिंस्की टस से मस न हुए।

●●

ये लोग आर्लिंग्टन कब्रिस्तान से लौट रहे थे। तब कोलिंस ने बेक्सटर के अंतिम संदेश का जिक्र किया। फादर दुबिंस्की की हठधर्मी के बारे में भी बताना नहीं भूला। "आखिर बेक्सटर ने मुझे क्यों बुलाया ? क्या बताना चाहते थे वे ?"

एक पल को ट्यानन और उसके निकटतम सहयोगी एडक की निगाहें मिलीं।

"तो दुबिंस्की ने तुम्हें बताने से इनकार कर दिया," ट्यानन ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

कोलिंस के जाने के बाद ट्यानन ने एडक से कहा, "तुम फादर दुबिंस्की से पता लगाओ, उसने बेक्सटर से क्या सुना ! हो सकता है, मरते समय बेक्टसर की आत्मा चीख उठी हो। हमारे लिए उसे पता लगाना बहुत जरूरी है। लेकिन, दुबिंस्की के पास जाने से पहले उसके अतीत का कोई कमजोर पृष्ठ खोजकर अपने साथ ले जाना। तुम्हें उसका मुंह खुलवाने में आसानी होगी।"
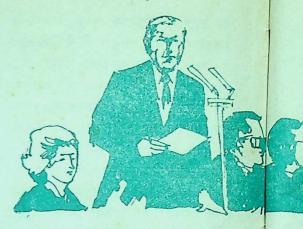
●●

कोलिंस का मित्र हिलार्ड उससे मिलने आया था। वह कैलीफोर्निया में जूनियर सीनेटर था। विषय वही था—३५वां संशोधन। हिलार्ड कह रहा था, "मैं जानता हूं, कैलीफोर्निया में संशोधन को बहुमत मिलने जा रहा है, हालांकि मन से सब इसका विरोध कर रहे हैं।"

"वह कैसे ?"

"जैसे राष्ट्रपति और गर्वनर के बीच समझौता हुआ है कि गर्वनर ३५वें संशोधन के पक्ष में प्रचार करेगा और बदले में राष्ट्रपति अमरीकी सीनेट के लिए उसके उम्मीदवारों को अपना समर्थन देंगे। और तुम जानते ही हो कि ऐसी बातें हमेशा

अलिखित होती हैं ।"

"लेकिन क्या तुम इससे इनकार करोगे कि आजकल तुम्हारे राज्य में अपराध एकाएक बहुत बढ़ गये हैं ? जनता दिनोंदिन बढ़ती अराजकता से बहुत त्रस्त है," कोलिंस ने सरकारी पक्ष प्रस्तुत करते का प्रयास किया ।

"अपराध चाहे न बढ़े हों, पर आंकड़े जरूर बढ़ा-चढ़ाकर दिखाये गये हैं," हिलार्ड ने गंभीरता से कहा ।

कोलिंस को कहीं आघात लगा, "क्या मतलब ?"

"कैलीफोर्निया के कुछ पुलिस-अधिकारियों ने मुझसे शिकायत की है । ये राज्य में अपराध-संबंधी जो आंकड़े एफ. बी. आई. को भेज रहे हैं, वह उन्हें प्रचारित न करके, बढ़ा-चढ़ाकर बनाये गये आंकड़ों का धुआंधार प्रचार कर रहा है । कैलीफोर्निया पुलिस का कहना है कि उनका विश्वास इतना निकम्मा नहीं है । यह सब ट्यानन कर रहा है," हिलार्ड ने फुसफुसाते हुए कहा ।

"क्या वे पुलिस-अधिकारी इस संबंध में बयान देने को तैयार हैं ?" कोलिंस ने पूछा ।

"यही तो मुश्किल है । इस तरह ये अपने को फंसाना नहीं चाहते । तुम जानते हो न, सच को अकसर मुंह से निकालना मुश्किल होता है । पियर्स पहले ट्यानन के साथ रहा है। उसके हथकंडों से क्षुब्ध होकर ही पियर्स ने एफ. बी. आई. को छोड़ दिया था । उसे पता है कि ट्यानन के शासन में एफ. बी. आई. किस तरह जन-स्वाधीनता का गला घोंट रही है । ३५वां संशोधन इस तानाशाही का चरम-रूप होगा ।"

कोलिंस ने फिर ३५वें संशोधन के समर्थन में कुछ कहना चाहा, पर मन अंदर ही अंदर कड़वा होता आ रहा था, आप-से-आप, न जाने क्यों ?

●●

कोलिंस को अपने कानों पर भरोसा नहीं हो रहा था । फादर दुबिस्की ने उसे बुलाया था । वही दुबिस्की, जिन्होंने बड़ी निर्ममता से उसकी मांग ठुकरा दी थी, आज उसे कुछ गुप्त बात बताने के लिए बुला रहे थे । उन्होंने कोलिंस को हिदायत दी थी कि वह शाम के झुटपुटे में चर्च के पिछले दरवाजे से अकेला अंदर आये, क्यों-

कि अगले दरवाजे पर भेदिये तैनात थे। भेदिये—लेकिन किसके ?

निर्देशानुसार कोलिंस पिछले दरवाजे से अंदर गया। फादर दुबिस्की दरवाजे के पास ही खड़े थे। उसे खटखटाने की जरूरत नहीं पड़ी। फादर दुबिस्की ने उसे तुरंत अंदर बुलाकर दरवाजा बंद कर दिया।

कोलिंस कुछ पूछता इससे पहले ही उन्होंने सब बता दिया था—कि एडक किस तरह उन्हें ब्लैकमेल करने आया था। उसने कहा था कि वे वह सब बता दें जिसे 'लास्ट कनफेशन' कहकर वे अपने अंदर छिपाये बैठे थे, नहीं तो उनकी पिछली जिंदगी के काले कारनामे जनता में प्रचारित कर दिये जाएंगे।

"और तभी मैंने फैसला कर लिया था कि बताना है तो तुम्हें ही बताऊंगा। तुम्हीं उसे जानने के अधिकारी हो, क्योंकि बेक्सटर ने तुम्हें ही बुलाया था।"

कोलिंस बिना कुछ बोले फादर दुबिस्की की ओर देखता जा रहा था। क्या सचमुच ट्यानन वैसा ही है जैसा लोग कहते हैं? "मैं अपने अतीत से नहीं डरता। मैं तुम्हें बताऊंगा," और फादर दुबिस्की जेब से एक कागज निकालकर पढ़ने लगे —बेक्टसर मरने से पहले कुछ पल के लिए होश में आया था और तुरंत उसने तुमसे मिलने की इच्छा प्रकट की थी। कहा था—कोलिंस को बुलाओ। और फिर निम्नलिखित असंबद्ध शब्द बड़बड़ाकर वह सदा के लिए शांत हो गया—'हां, मैंने पाप किया है फादर . . . और मेरा सबसे बड़ा पाप है ... अब वे मुझे नहीं रोक सकते . . . मैं मुक्त हूं . . . मुझे किसी का डर नहीं . . . यह ३५वें संशोधन के बारे में है . . . आर डाक्युमेंट . . . खतरा . . . खतरनाक ... हर कीमत पर इसका भंडाफोड़ तुरंत करना चाहिए . . . ट्रिक . . . जाओ . . . मिलो . . ."

और इसके बाद सब समाप्त हो गया।

बेक्सटर के अंतिम शब्द सुनने से पहले कोलिंस ने जो रोमांच अनुभव किया था, उसकी जगह उलझाव की अनुभूति उभर आयी थी—उन शब्दों का अर्थ उसकी समझ में नहीं आया था। कोलिंस सिर्फ इतना समझ पाया था कि बेक्टसर को ३५ वें संशोधन के बारे में कोई भयंकर बात मालूम थी, वे उसका भंडाफोड़ करना चाहते थे; लेकिन वह बात क्या थी, यह बताने से पहले ही वे चल बसे।

जब वह दुबिस्की के पास से लौटा तब उसके दिमाग पर बहुत बोझ था। एक शब्द हथौड़े की तरह उस पर चोट कर रहा था—आर डाक्युमेंट . . . आर डाक्युमेंट . . . प्रकाश की एक किरण और फिर घुप्प अंधेरा। कहां जाए, किससे पूछे? ट्यानन से? . . . लेकिन लगता है ट्यानन ठीक आदमी नहीं। उसने दुबिस्की का नाम ले दिया था, तो एडक ने फादर को ही धमकियां देनी शुरू कर दीं। तब . . . हां, बेक्सटर की पत्नी हन्ना बेक्सटर से मिला

जा सकता है। शायद उसे आर डाक्युमेंट के बारे में कुछ पता हो।

बेचारी हन्ना बेक्सटर! अपने दुःख में लिपटी हुई। उसे कुछ पता नहीं था। बेक्सटर घर में दफ्तर की कोई बात ही नहीं करता था। बस, इतना पता चला कि जिस रात बेक्सटर को दौरा पड़ा, उस समय ट्यानन और एडक कमरे में उसके साथ थे। किसी बात पर चर्चा चल रही थी; लेकिन बातचीत का विषय क्या था, यह हन्ना को मालूम नहीं। बेक्सटर की निजी फाइलों की अलमारी भी ट्यानन उठवाकर अपने दफ्तर ले गया।

कोलिंस निराश होकर चलने लगा तो ११-१२ वर्ष का एक लड़का हाथ में टेपरिकार्डर लिये अंदर आया।

"यह रिक है, मेरा पोता। टेपरिकार्डर का दीवाना। हर समय टेप ही करता रहता है।"

हन्ना के यह कहते ही रिक ने टेप-रिकार्डर चला दिया। हन्ना और कोलिंस की बातचीत सुनायी देने लगी।

कोलिंस को बरबस हंसी आ गयी और वह रिक की पीठ थपथपाकर निकल आया।

डोनाल्ड रेडनबाघ का नाम उसके कानों में गूंज रहा था। हन्ना ने बताया था कि रेडनबाघ बेक्सटर का अकेला अभिन्न मित्र था। लेकिन १० लाख डालर की सरकारी रकम चुराने के आरोप में आजकल १५ वर्षों की जेल भुगत रहा था। शायद उसे पता हो आर डाक्युमेंट के बारे में।

कोई चारा न देख, उसने ट्यानन से भी आर डाक्युमेंट का रहस्य पूछा था, पर उसने ऐसी अनभिज्ञता दिखायी कि बस... सब तरफ से निराश होकर कोलिंस का मन बुझ-सा गया। ऐसे में उसे करेन की याद आयी। उसकी पत्नी करेन, जिसके सामीप्य की उष्णता निराशा की अंधेरी बर्फीली ठंडक को कुछ तो पिघलायेगी ही।

●●

ट्यानन का दफ्तर का कमरा। एडक और ट्यानन।

ट्यानन : कोलिंस ने आर डाक्युमेंट के बारे में पूछा है। वह भोला बनता है। लेकिन वह मुसीबत खड़ी करने पर आमादा है।

एडक : हमसे पहले अपने लिए।

ट्यानन : उस पर नजर रखो। उसकी छाया बन जाओ, हर पल, हर क्षण।

एडक : हूं। (मुसकराता है।)

●●

कोलिंस की पहली पत्नी हेलन सान फ्रांसिस्को में रहती थी। ३५वें संशोधन पर सरकारी पक्ष प्रस्तुत करने के लिए वहां कुछ सभाओं में व टेलीविजन-डिबेट में भाग लेना था, राष्ट्रपति के आदेश पर। चलने से पहले उसने हेलन से अपने लड़के जोश को फोन किया तो वह १८-वर्षीय छात्र भड़क उठा। उसने कहा, "डैडी, मैं भी इस संशोधन के विरोधियों में शामिल हो गया हूं, क्योंकि यह प्रजातंत्र-विरोधी

है। मुझे अच्छा नहीं लगता कि आप इसके पक्ष में प्रचार करें। आप आएंगे, तो मैं आपको ऐसी जगह ले चलूंगा कि आपकी आंखें खुल जाएंगी।

और अब कोलिंस जोश के साथ कार में बैठा हुआ किसी अज्ञात स्थान की ओर बढ़ रहा था।

काफी लंबे सफर के बाद कार एक निर्जन स्थान पर रुकी। सामने कंटीले तारों से घिरा एक लंबा-चौड़ा घेरा था। उसमें कुछ एक-मंजिले बैरक और बीच में टावर दिखायी दे रही थी।

"यह है नया यातना-शिविर, यहां ३५वें संशोधन के बाद प्राप्त तानाशाही कानून से लोगों को पकड़कर रखा जाएगा। ऐसे सैकड़ों बनाये जा रहे हैं, पूरे देश में।"

"क्या तुम अपनी बात को प्रमाणित कर सकते हो?"

"सच क्या सदा प्रमाणित हो सकता है? शायद आप भी इस बारे में अच्छी तरह जानते होंगे," जोश ने कुछ तसल्ली से कहा।

कोलिंस ने देखा, पहरेदार उसकी ओर आ रहा है। उसने कहा, "मैं अमरीका का अटार्नी-जनरल हूं। क्या मैं अंदर जा सकता हूं?"

"जी नहीं, यह नौसेना का गुप्त संचार केंद्र है। वाशिंगटन से अनुमति के बिना

प्रवेश नहीं मिल सकता।" पहरेदार ने विनम्र दृढ़ता से मना कर दिया।

"वह झूठ बोल रहा है," जोश फुसफुसाया, "हाय रे अप्रमाणिक सत्य!"

कोलिंस को जोश का व्यक्तित्व दयनीय लगा। वह उसका कंधा थपथपाकर बोला, "मैं तुल लेक से इस केंद्र के बारे में पता करूंगा। अगर तुम्हारी बात सच निकली तो मैं तुम्हारा साथ दूंगा।" उसे मन ही मन भरोसा था कि जोश को भ्रम हुआ है।

लेकिन उसका अपना भ्रम जल्दी ही भंग हो गया। उसने गुप्त रूप से तुल लेक नौ-सेना केंद्र के बारे में पता करवाया, तो ज्ञात हुआ कि वहां नौसेना का कोई केंद्र नहीं है, न ही बनाने का इरादा है।

स्तंभित होकर वह सोचता रह गया, क्या जोश का कहना सच है? अगर है तो . . . और यह भी पता चला था कि एफ. बी. आई. के एजेंट कैलिफोर्निया के विधायकों को डरा-धमका रहे हैं, ब्लैकमेल कर रहे हैं—हरेक के अतीत को उजागर करने की धमकी देकर। अतीत शायद सिर्फ याद करने की चीज होती है। उसका भूत सामने देखना किसी को पसंद नहीं। अतः अधिकांश विधायकों की राय ३५वें संशोधन के पक्ष में होती जा रही थी।

●●

टेलीविजन-डिबेट में पियर्स ने उसके तर्कों की धज्जियां उड़ा दीं। उसने कहा था—"हमने जिस स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया है, ३५वां संशोधन उसे समाप्त कर देगा, क्योंकि जनता के मूलभूत अधिकार स्थगित हो जाएंगे।

कोलिंस ने कहा—"अगर कभी मूल अधिकार निलंबित हुए, तो ऐसा थोड़े समय के लिए होगा।"

पियर्स, "शुरू में सब यही कहते हैं, लेकिन तानाशाही एक बार आ जाए, फिर जमकर बैठ जाती है। आज तक सभी जगह यही हुआ है। मैं मरते दम तक इसका विरोध करूंगा।"

धीरे-धीरे कोलिंस ने अपने तर्कों को उदासीन होते महसूस किया। वह किसी दूसरे की लड़ाई लड़ रहा था। उसके अंदर भी विरोध उभरने लगा था। जो कुछ अब तक देखा है, महसूस किया है, वह तो ३५ वें संशोधन के काले पक्ष को ही अधिक उजागर करता है। फिर . . .

●●

वह मुख्य न्यायाधीश मेनार्ड से मिला था। मेनार्ड भी व्यक्तिगत रूप से उस संशोधन का विरोधी था, पर वह खुलकर विपक्ष में आने को तैयार नहीं था। उसने कहा, "कोलिंस, जिस दिन मुझे विश्वास हो जाएगा कि तुम जो कह रहे वह सही है, तो मैं तुरंत त्यागपत्र देकर सामने आ जाऊंगा।"

●●

ट्यानन का कक्ष। एडक और ट्यानन। टेप चल रहा है। कोलिंस और मेनार्ड का टेप पर वार्त्तालाप।

# बेहतरीन कारोबारी टॉनिक
# यूरोप
# रोज़ाना दो बार
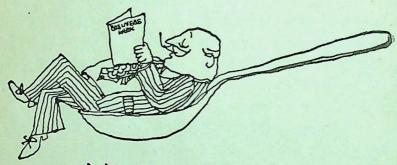
यूरोप में अपनी कारोबारी क्षमता
बढ़ाइये. पेश है हमारा नुसख़ा—
रोज़ाना दो उड़ानें.
१७ प्रति सप्ताह
महाद्वीप के सभी महत्वपूर्ण व्यापार-
केन्द्रों से संपर्क स्थापित करते हुए.

लंदन के लिए १५. रोम के लिए ५.
जिनेवा के लिए ३. फ्रैंकफुर्ट के लिए ६.
पेरिस के लिए ५. मौस्को के लिए २.
आम्स्टरडम के लिए १.

**एयर-इंडिया**

"कुत्ते ! समझते नहीं, हम छाया की तरह उनके पीछे हैं। एडक, तुम कोलिंस के अतीत में जाओ, गंदगी बाहर लाओ। हम उसका मुंह काला कर देंगे।" ट्यानन गुर्राता है।

"यस बॉस ..." एडक का स्वर।

"हमें कुछ नहीं करना होगा। लेकिन इसके लिए काफी रकम चाहिए। गुप्त रूप से। ठीक है ... रेडनवाघ ... हां, वही," ट्यानन वड़वड़ा रहा है।

रात का गहरा अंधेरा। ट्यानन और एडक जेल के पीछे जंगल में छिपे खड़े थे। उसने जेलर जेनकिंस से कहा था कि वह रेडनवाघ को लेकर आये। जेनकिंस ट्यानन की मुट्ठी में था। उसका आदेश टाल नहीं सकता था।

रेडनवाघ और जेनकिंस आये। ट्यानन ने स्पष्ट प्रस्ताव रख दिया—'रेडनबाघ, अभी तुम्हें जेल में १२ वर्ष और काटने हैं, लेकिन मैं तुम्हें तुरंत मुक्त करा सकता हूं। बदले में तुम मुझे साढ़े सात लाख डालर दोगे, तुमने १० लाख डालर फ्लोरिडा के जंगल में कहीं छिपा रखे हैं। उसी में से ढाई लाख डालर तुम रखना। पुलिस वह रकम बरामद नहीं कर पायी थी। हम जेल में तुम्हारी मृत्यु का समाचार प्रसारित करवा देंगे। तुम एक नये व्यक्ति के रूप में जेल से बाहर आओगे। सब जरूरी कागजात की व्यवस्था मैं करवा दूंगा।" मैंने इस तरह कई लोगों को नया जीवन दिया है। शर्त यही है कि तुम अपने रिश्तेदारों से कभी नहीं मिलोगे, क्योंकि रेडनवाघ मर जाएगा। अगर सौदा मंजूर हो तो हाथ मिलाओ।'

●●

'रेडनबाघ दो दिन हुए मर चुका है।' कोलिंस जेल में जेनकिंस का यह जवाब सुनकर हक्का-वक्का रह गया था। आशा की अंतिम लौ भी अंधेरे में खो गयी थी।

रेडनवाघ, नहीं-नहीं, हरबर्ट मिलर (क्योंकि रेडनवाघ मर चुका था) उस समय एक नौका में बैठा हुआ फिशर द्वीप की ओर बढ़ रहा था। उसका चेहरा बदल दिया गया था। दाढ़ी-मूंछ साफ। बालों का स्टाइल दूसरा। चश्मे की जगह कांटेक्ट-लेंस। इस समय तो उसे फिशर द्वीप के जंगल में साढ़े सात लाख डालर उस व्यक्ति को सौंपने थे, जो उसे मि. हरबर्ट मिलर कहकर पुकारे—संकेत शब्द था—लिंडा।

●●

कोलिंस रेडनवाघ की लड़की सूसन के घर के बाहर खड़ा था। सूसन ने उसे अनिच्छापूर्वक अंदर आने दिया। वह रेडनबाघ और आर डाक्युमेंट के बारे में पूछता रहा, पर सूसन का एक ही उत्तर था—'मुझे कुछ पता नहीं।'

कोलिंस निराश होकर विदा ले रहा था, तभी एक पुरुष अंदर घुस आया और बोला, 'मेरा नाम रेडनवाघ है। मैं मरा नहीं हूं। मैं तुम्हें बताऊंगा।'
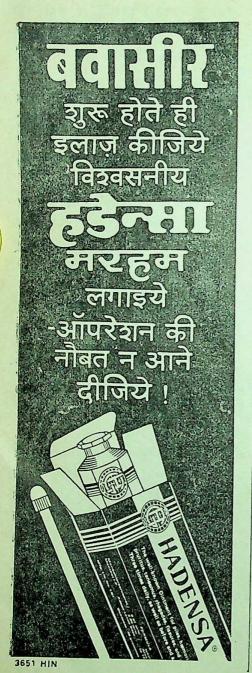
बवासीर
शुरू होते ही
इलाज़ कीजिये
'विश्वसनीय
हडेन्सा
मरहम
लगाइये
-ऑपरेशन की
नौबत न आने
दीजिये !
HADENSA
3651 HIN

कोलिंस अचरज से उसे देखता रह गया।

सबसे पहले रेडनबाघ ने ट्यानन को अपनी सौदेबाजी और बाद की घटनाएं सुनायीं, फिर कहा, "कोलिंस, अगर ३५ वां संशोधन-विधेयक कैलीफोर्निया में पारित हो गया तो अमरीका में जनतंत्र की जगह तानाशाही आ जाएगी—और तब ट्यानन इस देश का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति होगा।

"यह सच है कि बेक्सटर और मैं गहरे दोस्त थे। उसने मुझे आर डाक्युमेंट के बारे में बताया था। यह डाक्युमेंट ३५ वें संशोधन का अलिखित भाग है—दो खंडों में। आर का अर्थ है रिकांस्ट्रक्शन या पुर्ननिर्माण।"

"किसका?"

"अमरीका का। ट्यानन अमरीका को एकदम अपराधरहित समाज बना देना चाहता है। उसी योजना यानी आर डाक्युमेंट के पहले खंड के बारे में बेक्स-टर को मालूम था, दूसरे पर ट्यानन काम कर रहा है।"

कोलिंस को याद आ रहा था कि आर डाक्युमेंट के बारे में पूछने पर ट्या-नन ने किस भोलेपन से मना कर दिया था।

"अमरीका में अनेक कंपनियों ने अपनी बस्तियां बसायी हैं। ट्यानन ने कंप्यूटरों की मदद से पता लगाया कि इन कंपनी-शहरों में अपराध की दर सबसे कम है। उसने देखा कि वहां के निवासी अनुशासित हैं। उसने आरगो सिटी की प्रबंधक आरगो स्मेल्टिंग कंपनी को टैक्स-चोरी के अपराध में कार्रवाई की धमकी देकर वहां का प्रबंध अपने हाथों में ले लिया है। वह वहां ३५ वें संशोधन की स्थितियों को परीक्षण के तौर पर लागू करके देख रहा है।

"माई गाड! यह तो अवैध काम है।"

"लेकिन ३५वें संशोधन के बाद पूरे देश में वैध हो जाएगा।"

"ठीक है हम स्वयं आरगो सिटी चलेंगे। मैं चीफ जस्टिस मेनार्ड को भी खबर देता हूं।" कहकर कोलिंस उठ खड़ा हुआ।

मेनार्ड, कोलिंस और रेडनवाघ अलग-अलग आरगो सिटी पहुंचे थे। सैलानियों के रूप में। तीनों ने वहां घूमकर जो कुछ देखा था, उससे वे आतंकित हो उठे थे।

मेनार्ड कह रहा था, "कोलिंस मैं इस संशोधन का खुलकर विरोध करूंगा। यहां रेडियो-स्टेशन पर बाहर के प्रोग्राम नहीं आते। अखबार में बाहर की खबरें नहीं छपतीं। बोलने पर भेदिये शिकायत कर देते हैं। किसी जनसभा या प्रदर्शन की इजाजत नहीं है। चार वर्ष पूर्व एक आंदोलन हुआ था, तो उसे पूरी बेरहमी से कुचल दिया गया।"

"हां, उन्हें तपते रेगिस्तान में एक यातना-शिविर में क्रूरतम यंत्रणाएं दी

# कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की बदबू रोकिये... दंतक्षय का प्रतिकार कीजिये

हर भोजन के बाद अपने दांत कोलगेट से साफ़ कीजिये। यह ठीक उसी तरह दांतों की रक्षा करता है, जैसे दुनियाभर के दंत विशेषज्ञ कहते हैं।

दांतों में छुपे हुए अन्नकणों में कीटाणू बढ़ते हैं। इनसे सांस में बदबू पैदा होती है, और बाद में दांतों में सड़न।

इसीलिए, हमेशा भोजन के फौरन बाद कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ कीजिये। यह सांस को ताज़ा, दांतों को सफ़ेद और दांतों की सड़न रोकने में असरदार साबित हो चुका है।
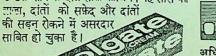
देखिये, कोलगेट के भरोसेमंद फ़ॉर्मूले का काम।

दांतों में छिपे हुए अन्नकणों में सांस में बदबू और दांत में सड़न पैदा करने वाले कीटाणु बढ़ते हैं।

कोलगेट का अनोखा, असरदार झाग दांतों के कोने में छिपे हुए अन्नकणों को और कीटाणुओं को निकाल देता है।

नतीजा: आपके दांत आकर्षक सफ़ेद, आपकी सांस तरोताजा और दंतक्षय की रोकथाम।

अधिक तरोताज़ा सांस और अधिक सफ़ेद दांतों के लिये दुनिया भर में ज़्यादा से ज़्यादा लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट टूथपेस्ट ही खरीदते हैं।

**सिर्फ़ एक दांतोंका डॉक्टर ही इससे बेहतर देखभाल कर सकता है**

DCG.62HN

गयीं, तो उनका मनोबल टूट गया," रेडन-चाघ ने कहा।

"पुलिस बिना सूचना या वारंट के किसी भी समय, कहीं घुसकर तलाशी ले सकती है। किसी को बिना कारण बताये गिरफ्तार करके, बिना मुकदमा चलाये, कितने भी दिन जेल में रखा जा सकता है," कोलिंस ने बताया।

"और ३५वें संशोधन के पारित हो जाने पर यह स्थिति पूरे देश की होगी। मैं तुरंत राष्ट्रपति से बात करूंगा। अगर वे नहीं मानेंगे तो त्यागपत्र दे दूंगा," मेनार्ड ने उत्तेजना से कहा।

तीनों आरगो सिटी से चले, तो एक जासूस ट्यानन से टेलीफोन पर बात कर रहा था, 'हां, वे अभी-अभी गये हैं, कोलिंस और मेनार्ड।'

●●

राष्ट्रपति का फोन था ट्यानन के लिए—

"वर्नन, हम मुश्किल में फंस गये। अभी मेनार्ड का फोन आया था। वह त्यागपत्र देकर ३५ वें संशोधन का विरोध करने की तैयारी कर रहा है। वह आरगो सिटी गया था। आप निश्चिंत रहें।" ट्यानन ने राष्ट्रपति को आश्वस्त किया।

●●

और उसी रात मेनार्ड दंपति की हत्या कर दी गयी।

राष्ट्रपति वड्सवर्थ और कोलिंस। कोलिंस ने एक-एक करके ट्यानन के सारे कारनामे खोलकर रख दिये। पर राष्ट्रपति ने कहा, तो तुम चाहते हो कि इन बेसिर-पैर के आरोपों के आधार पर मैं वर्नन ट्यानन को एफ. बी. आई. से निकाल दूं।

कोलिंस प्रस्तर-प्रतिमा की तरह जड़ बना बैठा रह गया। फिर उसने निर्णय कर लिया कि अब आगे उसे क्या करना है।

"मैं अपना त्यागपत्र भेज रहा हूं। मैं ३५वें संशोधन के खिलाफ काम करूंगा।"

●●

दफ्तर में त्यागपत्र तैयार करके वह बाहर निकल रहा था, तभी ट्यानन से मुठभेड़ हुई।

ट्यानन ने दो टूक शब्दों में कहा, "कोलिंस, हमने तुम्हारी पत्नी के अतीत का पता लगा लिया है। उसके पहले पति की मृत्यु सड़क-दुर्घटना में नहीं हुई। उसकी हत्या स्वयं करेन ने की थी। अगर तुम त्यागपत्र दोगे, हमारा विरोध करोगे, तो उस पर मुकदमा चलाया जाएगा। सोच लो, हत्या का मुकदमा . . ."

कोलिंस कल्पना की आंखों से करेन को कटघरे में हत्या की अपराधिनी के रूप में खड़ी देख रहा था।

"मुझे तुम्हारी शर्त मंजूर है। वर्नन, मैं करेन पर आंच नहीं आने दूंगा।" कोलिंस ने डूबते स्वरों में कहा।

●●

कोलिंस के हाथ में करेन का पत्र था।

वह घर छोड़कर चली गयी थी।

"डियर, मुझे ढूंढ़ना मत। मैं सच पता करके लौटूंगी। मैं तुम्हारी कमजोरी नहीं बनना चाहती। —करेन"

●●

कोलिंस एक बार फिर हन्ना बेक्सटर से मिलने गया था। वह कमरे में बैठा था, तभी परदे के पीछे से रिक निकल आया। हाथ में वही टेपरिकार्डर। एकाएक वह चौंक उठा। बोला—"वाह मास्टर रिक, तुम तो छिपे रुस्तम निकले!"

"मेरे बाबा भी यही कहते थे, क्योंकि जब भी ये कोई बात करते थे, मैं टेप कर लेता था। आखिरी बार मैंने तब टेप किया जब बाबा ट्यानन और एडक के साथ इस कमरे में बैठे बातें कर रहे थे—आर डाक्युमेंट के बारे में।"

"रिक . . . रिक . . ." वह टेप कहां है जो तुमने आखिरी बार टेप किया था, जब बेक्सटर, ट्यानन और एडक कमरे में थे," कहते हुए कालिंस उत्तेजना से भर उठा।

"वह टेप तो मैंने फाइलों की उस अलमारी में रख दिया था, जिसे ट्यानन दफ्तर ले गया। उस टेप पर मैंने ए. जी. जी. (अटार्नी-जनरल ग्रांडपा) लिखा था।"

कोलिंस पस्त हो उठा। लगा जैसे जीती हुई बाजी फिर उसके हाथ से निकल गयी।

निराशा के गहरे अंधेरे में एक अच्छी खबर मिली थी। टेक्सास से पियर्स के मित्र ने खबर दी थी कि करेन निर्दोष है। वह गवाह झूठी है।

फोन पर करेन से भी बात हुई। कोलिंस ने टेप के बारे में पूरी कहानी बता दी। करेन ने उत्तेजित स्वर में कहा, "कोलिंस डियर, तुम इस्माइल यंग से बात करो। ट्यानन ने उसे बेक्सटर के टेप व सामग्री दी थी।" यंग ने उन टेपों से नये टेप तैयार किये हैं।

उत्तेजना में फोन गिरते-गिरते बचा। कोलिंस और पियर्स यंग के पास पहुंचे। उसे पूरी घटना बतायी और ए. जी. जी. वाला टेप सचमुच मिल गया। यंग ने टेप चलाया तो वर्नन ट्यानन की रोबदार आवाज कमरे में गूंजने लगी।

●●

कैलीफोर्निया सीनेट में मतदान शुरू होने जा रहा था, दो मिनट बाकी थे—तभी कोलिंस वहां पहुंचा। उसने सीनेट के अध्यक्ष से कहा—"आप मतदान रोक दें। मैं आपके सामने ऐसी गवाही प्रस्तुत करने जा रहा हूं, जिसे सुनकर आप ३५वें संशोधन के बारे में अपनी राय अवश्य बदल देंगे।

सीनेट के अध्यक्ष ने बहुत हीले-हवाले किये, पर कोलिंस अड़ा रहा। आखिर तय हुआ कि पहले अध्यक्ष कोलिंस का लाया टेप सुनेंगे, फिर अगर जरूरी समझेंगे, तो सीनेट के दूसरे सदस्यों को भी सुनवायेंगे।

टेप बजना शुरू हुआ।

ट्यानन : नोहा, हम अकेले हैं न ?

बेक्सटर : हां !

ट्यानन : सावधानी जरूरी है, क्योंकि मुझे आर डाक्युमेंट के आखिरी अंश पर बात करनी है ।

बेक्सटर : क्या ?

ट्यानन : जब ३५वां संशोधन पारित हो जाएगा, तब आपात-स्थिति के नाम पर तुम जनता के मौलिक अधिकार स्थगित कर दोगे।

बेक्सटर : ऐसा कैसे हो सकता है ?

ट्यानन : लेकिन हम आपात-स्थिति पैदा कर देंगे, क्योंकि कभी-कभी देश को बचाने के लिए एक व्यक्ति का बलिदान जरूरी हो जाता है। तुम राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहोगे, कुछ इस तरह—साथी देशवासियो, मैं गहरे संकट की स्थिति में आप लोगों से बात करने खड़ा हुआ हूं। आप सब जानते हैं कि कल राष्ट्रपति वड्सवर्थ की हत्या कर दी गयी। यह अराजकता की चरमसीमा है। हमें ऐसे में एक होकर देशघाती, समाजविरोधी तत्त्वों को दबाना है। इसीलिए मैं ३५ वें संशोधन के अधीन बिल ऑव राइट्स को निलंबित कर रहा हूं।

बेक्सटर : ओह ! क्या मेरे कान सही सुन रहे हैं। राष्ट्रपति वड्सवर्थ की हत्या—तुम्हारे आदेश पर...

ट्यानन : भावुक न बनो नोहा !

बेक्सटर : आह ! आह !

ट्यानन : अरे, नोहा को क्या हुआ ? जल्दी . . . डाक्टर को बुलाओ !

टेप खामोश हो गया।

कैलीफोर्निया सीनेट के अध्यक्ष ने दोनों हाथ ऊपर उठा लिये।

●●

वाशिंगटन डी. सी.

कोलिंस हवाईअड्डे से बाहर आया। ह्वाइटहाउस की कार उसे लेने आयी थी। कोलिंस ने न्यूज-स्टैंड से अखबार लिया। सुर्खी थी—**राष्ट्रपति की हत्या के षड्यंत्र का भंडाफोड़——ट्यानन के कारनामे——३५वां संशोधन गिरा**

तभी पियर्स आकर उससे लिपट गया। बोला, "कोलिंस बधाई ! तुम्हारे कारण ही यह हो सका है। और हां, ट्यानन ने गोली मारकर आत्महत्या कर ली। एडक लापता हो गया।

राष्ट्रपति भवन—ह्वाइटहाउस।

विशेष कक्ष में भारी भीड़। जैसे ही कोलिंस अंदर घुसा, सबकी नजरें उस पर जम गयीं। राष्ट्रपति से बात करती करेन आकर उससे लिपट गयी। वह रो रही थी—"कोलिंस डियर . . ."

राष्ट्रपति वड्सवर्थ ने उसका हाथ थाम लिया, बोले, "कोलिंस, मैं शर्मिंदा हूं। तुमने मुझे नहीं, पूरे देश को बचा लिया। प्रजातंत्र की रक्षा कर ली। हमें ३५ वें संशोधन की अब कभी जरूरत नहीं पड़ेगी।

कोलिंस मुसकरा रहा था। उसकी आंखों में आंसू थे। ●

# ताज़गी और रौनक़ के लिये

# हमाम



हमाम से स्नान, आपके और आपके सारे परिवार के लिये रौनक़ और ताज़गी का दूसरा नाम···

ऐसी ताज़गी जिससे सबका मन झूम उठे।

**नहाने का साबुन, ज़्यादा दिन चलता है!**

दि टाटा ऑइल मिल्स कम्पनी लिमिटेड

CASTH-16-152-HN

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से सन्तोष नाथ द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नयी दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित